॥ श्रीः ॥

महाकविभासप्रणीतं

भासनाटकचक्रम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

विद्वन्मण्डलसम्पादितम्

प्रधान-सम्पादकः

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम. ए., पी-एच्. डी., साहित्याचार्यः

संस्कृत-विभागः, कलासंकायः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

[द्वितीयो भागः]



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८७

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४४

मूल्य : रु० [illegible]५-०० (भाग १-२)

पो० बा० ११९८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग) वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन ६३१४५

THE

BHĀSANĀṬAKACHAKRAM

(Thirteen Trivandrum Plays of Bhasa)

Edited with the

Sanskrit & Hindi Commentaries

By

A Board of Scholars

Chief Editor

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA

M. A., Ph. D., Sahityacharya

Department of Sanskrit, Arts Faculty

Banaras Hindu University

[**Part—2**]



KRISHNADAS Academy

VARANASI--221001

1987

Oriental Publishers and Distributors

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi–221001

(INDIA)

First Edition

19[illegible]7

Price : Rs. 125–00 (Parts 1–2)

Also can be had from

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICI

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 1008, Varanasi–221001 (India)

Phone: 63145

भासनाटकचक्रम्

प्रथमो भागः

द्वितीयो भागः



'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः'

(प्रसन्नराघव)

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला
३७

भासनाटकचक्रे

बालचरितम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-
पण्डित रामनाथत्रिपाठी शास्त्री



चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
वाराणसी
१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६
मूल्य : ५–००

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
37



BĀLACHARITA

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

'Kalyani' Sanskrit-Hindi Commentaries

BY

Pt. RAMANATH TRIPATHI SHASTRI



Chaukhamba Amarabharati Prakashan

VARANASI–221001
1979

Oriental Publishers & Book-Sellers
Post Box No. 138
K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition
1979
Price Rs 5-00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

दो शब्द

श्री कृष्ण की बाललीलाओं पर आधारित एवं संस्कृत नाट्य साहित्य में बहुचर्चित महाकवि भास कृत 'बालचरित' नाटक का 'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेत अभिनव संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। इस संस्करण की अपनी विशेषता है—

(१) आरम्भ में वृहद् भूमिका की योजना कर कवि और उसकी कृति के विषय में सभी ज्ञातव्य बातों पर सरल और सुबोध हिन्दी में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। (२) संस्कृत-व्याख्या को ऐसी सरलतम और विशद शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससे सामान्य पाठक भी सरलता से लाभान्वित हो सकें। (३) गद्य-पद्य सभी भागों का अर्थ हिन्दी में भलीभाँति स्पष्ट कर दिया गया है। (४) यथास्थान आवश्यक शब्दों का व्याकरण-सम्बन्धी विवेचन भी कर दिया गया है। (५) प्रसङ्ग-वश आये हुए अलङ्कारों, छन्दों एवम् अन्तर्गत कथाओं पर प्रकाश डाला गया है। (६) अन्त में 'हिन्दी नोट्स' छन्दों, अलङ्कारों, अपाणिनीय प्रयोगों, सुभाषितों तथा पद्यों की सूची भी 'परिशिष्ट' में दे दी गयी है।

इस प्रकार इस संस्करण को सर्वथा उपादेय बनाने का भरसक प्रयास किया गया है। यदि पाठकों को इससे कुछ भी सन्तोष हुआ, तो वही मुझे कृतकृत्य होने के लिए पर्याप्त होगा।

उन सभी पूज्य विद्वानों के समक्ष नतमस्तक हो अपना आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से मुझे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता मिली है। चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन संस्थान के कर्मठ संचालक महोदय तथा उनके कर्त्तव्यनिष्ठ सहयोगी जन धन्यवाद के पात्र हैं जिनके प्रशंसनीय सहयोग से यह संस्करण पाठकों के कर-कमलों में पहुँच सका है।

अन्त में अज्ञानवश अथवा प्रमाद-वश हुई त्रुटियों एवं प्रूफ-सम्बन्धी अशुद्धियों के लिए क्षमा-याचना करता हूँ। इति—

शा० दुर्गापूजा
वि० संवत् २०३६

विद्वद्विनेयः—
रामनाथ त्रिपाठी

भूमिका

महाकवि भास

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ कवियों में से हैं। कविकुलगुरु कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से प्रश्न कराया है कि प्रथितयश वाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की कृतियों का अतिक्रमण कर, वर्तमान कवि कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों किया जा रहा है ?[1] इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में महाकवि भास अत्यन्त प्रसिद्ध थे और उनके नाटकों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। हर्ष के सभा-पण्डित बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका (१—नाटकीय व्यंग्य 'पताका स्थान' २—ध्वजा) से युक्त देवकुलों के तुल्य अपने नाटकों से अच्छा यश प्राप्त किया।[2] यहाँ यह अवधेय है कि संस्कृत के नाटक सामान्यतया नान्दी से प्रारम्भ होते हैं किन्तु भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं और उनमें नान्दी का सर्वथा अभाव रहता है। वाक्पतिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक प्राकृत महाकाव्य में भास को 'जलणमित्ते'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) कहा है।[3] भास ने वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने की झूठी खबर फैलाकर नाटकीय वस्तु-विकास का उपयुक्त अवसर निकाला है। अतः बहुत सम्भव है इसी से भास को 'ज्वलनमित्र कहा गया है । राजशेखर ने अपनी 'काव्य-

---

१. 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।'—मालविकाग्निमित्र

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित।

३. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुआरे।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारि अन्दे अ आणन्दो ॥—गउडवहो।

मीमांसा' में भास के नाटकों की अग्निपरीक्षा तथा 'स्वप्नवासवदत्त' को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया है।[1] नाटककार जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' में भास को कविता कामिनी का हास कहा है।[2] भास के नाटकों में हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों रूपों की सफल संघटना हुई है अतः जयदेव का कथन अमूलक नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं प्राचीन काल में संस्कृत साहित्य में भास का बड़ा गौरवपूर्ण स्थान था। इधर जब १९१२ ई० में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री द्वारा भास के तेरह नाटक प्रकाशित किये गये तब से भास के विषय में सर्वाङ्गीण गवेषणा का क्रम ही चल पड़ा, तत्परिणामस्वरूप उनके नाटकों की रचना-पद्धति, भाषाशैली एवं रसवत्ता को देखते हुए आधुनिक साहित्य-समीक्षकों और सहृदयों ने बड़े आदर से उनको प्रसिद्ध नाटककार के गौरवपूर्ण पद पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया।

भास का नाटकचक्र

महाकवि भास के रूपकों की संख्या तेरह है। उनके नाम हैं—

१—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, २—अविमारक, ३—स्वप्नवासवदत्त, ४—प्रतिमानाटक, ५ - अभिषेक, ६—मध्यमव्यायोग, ७—पञ्चरात्र, ८—दूतवाक्य ९—दूतघटोत्कच, १०—कर्णभार, ११—ऊरुभङ्ग, १२—बालचरित, १३—चारुदत्त।

भास की उक्त कृतियों को विषय की दृष्टि से पाँच भागों में बाँट सकते हैं—

१—रामायण पर आधारित—प्रतिमानाटक और अभिषेक।

२—महाभारत पर आधारित—मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्र, दूतघटोत्कच, कर्णभार, ऊरुभङ्ग और दूतवाक्य।

---

१. भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥—काव्यमीमांसा।

२. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय॥—प्रसन्नराघव।

३—बृहत्कथा पर आधारित—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्त और अविमारक।

४—कृष्णकथा पर आधारित—बालचरित।

५—लोकप्रचलित कथा पर आधारित—चारुदत्त।

१९४१ ई० में गोण्डल निवासी राज वैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफल' नामक एक रूपक प्रकाशित किया है जो रामायण पर आधारित है, कुछ लोग उसे भी भासकृत मानते हैं। किन्तु प्रोफेसर झाला का कथन है कि यद्यपि 'यज्ञफल' अन्य भासीय नाटकों की तरह ही प्रारम्भ और समाप्त होता है पर इसमें बहुत सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में नहीं थीं। राम धनुर्भङ्ग से पूर्व प्रेमदाढ्र्य के लिए सीता से उद्यान में मिलते हैं, राम को भी दुष्यन्त की तरह शंका होती है कि सीता कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं, विश्वामित्र नगर और ग्राम्य जीवन की तुलना कर ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते हैं आदि। अतः अधिक सम्भव यही होता है कि 'यज्ञफल' भासीय नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार की रचना है।

भास नाटक चक्र का एक कर्तृत्व

उपर्युक्त सभी नाटकों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर इनमें हमें कुछ ऐसी आश्चर्यजनक समानताएं प्राप्त होती हैं जिनके बल पर निश्चित रूप से मानना पड़ता है कि ये सभी नाटक किसी एक ही कवि की कृति हैं। जैसे—

१—ये सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' वाक्य से प्रारम्भ होते हैं।

२—इन नाटकों में कहीं भी उनके रचयिता का नाम तथा परिचय नहीं मिलता है।

३—प्रायः सभी नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। केवल 'कर्णभार' में 'प्रस्तावना' शब्द का प्रयोग हुआ है।

४—इनमें से अधिकांश नाटकों में एक सा ही 'भरतवाक्य' मिलता है। स्वप्नवासवदत्त, दूत वाक्य और बालचरित में 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥'—इस

प्रकार का भरत वाक्य है। शेष नाटकों के भरत वाक्य में भी प्रायः 'राज-सिंहः प्रशास्तु नः' इस वाक्य का प्रयोग अवश्य मिलता है।

५—इन सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में अद्भुत समानता पायी जाती है।

६—इन नाटकों में भरत-प्रतिपादित नाट्यनियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है। मृत्यु, युद्ध आदि का रंगमञ्च पर प्रदर्शन किया गया है तथा अभिषेक, पूजा, शपथ अथवा अश्रु-प्रक्षालन के लिये जल रङ्गमञ्च पर लाया है। इसी प्रकार शयन, क्रीडा तथा दूराह्वान की भी योजना रंग-पर ही की गयी है।

७—इन नाटकों में कुछ शब्दों का प्रयोग उनके प्रचलित अर्थों से भिन्न अर्थ में किया गया है। जैसे—आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग अनेकत्र ऐसे अर्थों में हुआ है जिसका विधान नाट्य शास्त्र में नहीं है।

८—इन सभी नाटकों में 'आकाशभाषित' की योजना प्रायः मिलती है।

९—इनमें से कई नाटकों में छोटे-छोटे पात्रों के नामों में अभिन्नता पायी जाती है। जैसे—प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और दूतवाक्य इन दोनों नाटकों में कञ्चुकी का नाम बादरायण है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्त, प्रतिमानाटक, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण और अभिषेक इन चारों नाटकों में प्रतिहारी का नाम विजया है।

१०—प्रायः सभी नाटकों में नाट्यनिर्देश की न्यूनता समान रूप से मिलती है। जो नाट्यनिर्देश दिये भी गये हैं उनमें दो-दो, तीन-तीन निर्देश एक साथ हैं। जैसे—'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'।

११—इन सभी नाटकों के नामों का उल्लेख तत्तन्नाटकों के अन्त में ही किया गया है, अन्यत्र नहीं।

१२—अधिकांश नाटकों में 'पताका स्थान' और 'मुद्रालङ्कार' का एक समान प्रयोग किया गया है।

१३—इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया गया है, अतः अनेकत्र अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

१४—इन सभी नाटकों में समान भावना, समान दृश्यों की अवतारणा,

समान शब्दों और समान वाक्यों की उपलब्धि एवं समान वर्णन-पद्धति द्रष्टव्य है !

उपर्युक्त समानताओं के आधार पर यह स्पष्ट सिद्ध है कि इन नाटकों का प्रणेता कोई एकही व्यक्ति था। इन नाटकों में से स्वप्नवासवदत्त की रचना भास द्वारा हुई, इसमें राजशेखर का पूर्वोक्त साक्ष्य उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'अभिनव भारती' में स्वप्नवासवदत्त का उल्लेख किया है।[१] फलतः अन्य नाटकों को भी भासकृत माना गया है जो पूर्वोक्त समानताओं के आधार पर नितान्त युक्त है।

भास का समय

कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में भास को आदर पूर्वक स्मरण किया है, अतः स्पष्ट सिद्ध है कि भास कालिदास से प्राचीन थे। कुछ लोग कालिदास का समय ४०० ई० बताते हैं तदनुसार भास ४०० ई० से पूर्व के सिद्ध होते हैं। कुछ विद्वान् कालिदास का समय ईसा की प्रथम शताब्दी निश्चित करते हैं, उस आधार पर भास ईसा की प्रथम शताब्दी से प्राचीन ठहरते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में 'अपीह श्लोकौ भवतः' कह कर दो श्लोक उद्धृत किये हैं, इनमें दूसरा श्लोक 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में मिलता है। जो इस प्रकार है—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

चाणक्य ने उक्त श्लोक को अवश्य ही भास से लिया होगा। यदि किसी स्मृति का होता तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते। इतिहासकार चाणक्य का समय ई० पू० ४०० मानते हैं अतः भास इससे प्राचीन ठहरते हैं।

भास के प्रतिमानाटक में बृहस्पति कृत अर्थशास्त्र में रावण की दक्षता का उल्लेख हुआ है।[२] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से बहुत पहले का है। यदि भास चाणक्य के बाद होते तो उसके अर्थशास्त्र का उल्लेख

१. क्वचित्क्रीडा—यथा वासवदत्तायाम्।
२. भोः काश्यप गोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये……बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं।…

अवश्य करते। भास के नाटकों में पाये जाने वाले अपाणिनीय प्रयोगों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पाणिनि के सर्वमान्य होने से पूर्व ही भास के नाटकों की रचना हो चुकी थी। भास के नाटकों से प्रतिभासित होनेवाली सामाजिक दशा मौर्यकालीन सामाजिक दशा से मिलती-जुलती है। उक्त प्रमाणों के आधार पर भास का समय ई० पू० पाँचवीं शताब्दी निश्चित होता है श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने अनेक प्रवल प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि महाकवि भास ई० पू० चौथी शताब्दी में हुए थे। यही मत प्रायः विद्वानों को मान्य है।

भास का जीवनवृत्त

भास के नाटकों से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि वे ब्राह्मण थे। भास ने ब्राह्मणों के प्रति जो श्रद्धा दिखायी है[1], समाज-व्यवस्था के प्रति उनका जो आग्रह दिखायी देता है उससे यही प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण और वर्णाश्रमधर्म के पक्षपाती थे। देवता और यज्ञ में उनकी आस्था थी। भास के नाटकों में प्रयुक्त 'इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥'—भरतवाक्य वताता है कि भास दक्षिण भारत के नहीं, उत्तर भारत के निवासी थे। उनकी धरती की सीमा उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्यपर्वत तक है। इसी सीमा के बीच कहीं न कहीं उनका स्थान रहा होगा। इनके नाटकों में उत्तर भारत के देशों का अधिक वर्णन है।

भास किसी राजा के राजपंडित अवश्य रहे होंगे। उन्होंने अपने राजा के लिए राजसिंह शब्द का प्रयोग किया है किन्तु निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द उनके राजा का विशेषण है या उसकी संज्ञा है। भास राजघरानों तथा राजकीय जीवन से सुपरिचित थे। वे संयुक्त परिवारप्रथा के पक्षपाती, हास्यप्रिय किन्तु गुरुजनों का समादर करनेवाले नम्रप्रकृति के

१. द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्'—(मध्यम व्यायोग १।६)।
'ब्राह्मणवचनमनृतमपि सत्यं पश्यामि'—(बालचरित २।११)।
'ब्राह्मणवचनमिति। न मयातिक्रान्तपूर्वम् ।'—(कर्णभार १।२३)।

व्यक्ति थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखशांतिमय था। वे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत, स्वतन्त्रता एवं न्याय के पोषक आशावादी व्यक्ति थे। वे परम गोभक्त, वैष्णव धर्मावलम्बी तथा सर्वतोमुखी प्रतिभावाले महाकवि थे।

भास की नाट्यकला

भास के नाटकों की कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इनके नाटकों में पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोकप्रचलित कथानकों का उपयोग हुआ है, फिर भी पात्रों के चरित्र की प्रोज्ज्वलता प्रदर्शित करने के लिए कवि ने कथानकों में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। इनकी यह मौलिकता और नाटकों की विविधता इनकी नाट्य-कुशलता का पूरा परिचय देती है। कथावस्तु का विन्यास इतने कौशलपूर्ण ढंग से हुआ है कि प्रेक्षकों अथवा पाठकों की कुतूहल वृत्ति निरन्तर बढ़ती ही रहती है। सच तो यह है कि संस्कृत नाटककारों में भास ही एक ऐसे कलाकार हैं जिनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण दर्शकों को मानव-जीवन के बहुरङ्गी रूपों के पर्यवेक्षण का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। विविध रूपकों के लिए विभिन्न क्षेत्रों से कथानक का संयोजन होने से विभिन्न कोटि के पात्रों का सृजन स्वाभाविक है फिर भी भास की नाट्यकुशलता ने उन विविध कोटि के और बहुसंख्यक पात्रों के आचरण में कृत्रिमता नहीं आने दी है। सभी पात्र हमें हमारी ही परिधि के जीते-जागते प्राणी लगते हैं। इतने अधिक पात्रों के चरित्रों का परिस्थिति-गत विकास पूर्ण स्वाभाविक रूप में करना भास के ही बूते की बात है। प्रत्येक नाटक के नायक के केन्द्रीय महत्त्व का सम्यक् निर्वाह करते हुए भास ने किसी भी पात्र को, चाहे वह काञ्चुकीय, गणिका अथवा सेवक ही क्यों न हो, व्यक्तित्व-विकास से वञ्चित नहीं होने दिया है और न नाटक की कथा तथा उसकी मुल संवेदना ही कहीं उलझने पायी है। इस सफलता का सारा श्रेय भास की सतर्क अद्भुत नाट्यप्रतिभा हो है। कथोप-कथन की दृष्टि से भी भास के रूपक निर्दोष हैं। कहीं भी निरर्थक और अना-वश्यक वार्तालाप को स्थान नहीं दिया गया है। इनके कथोपकथन कथानक को निरन्तर आगे बढ़ाने तथा पात्र की स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल हैं।

भास के नाटकों की प्रमुख विशेषता उनकी अभिनेयता है। ये सभी नाटक थोड़े हेर-फेर के साथ बड़ी सरलता से रंगमंच पर अभिनीत होने योग्य बने हैं। इनमें न तो वर्णन की प्रचुरता है और न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही है अतः इनके अभिनय में किसी तरह के प्रतिरोध की गुञ्जाइश नहीं है।

भास का नैपुण्य चरित्रचित्रण में अद्वितीय है। वे अपने पौराणिक पात्रों को इतनी वास्तविकता, मनोवैज्ञानिकता और मार्मिकता से चित्रित करते हैं कि वे पाठकों अथवा दर्शकों को सर्वथा नवीन लगते हैं। भास ने पद्यों के माध्यम से अपने पात्रों में संवाद कराने का जो ढंग अपनाया है वह भी उनकी नाट्यकला के वैलक्षण्य का द्योतक है। किसी पद्य को कई भागों में विभक्त कर उन्हें वे अपने विभिन्न पात्रों के मुख से कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत करवाते हैं जिससे संवादों में भावोत्तेजकता और चुटीलापन पैदा हो जाने से विशेष नाटकीयता आ जाती है। भास के प्रायः सभी पात्र अन्तर्द्वन्द्व युक्त होने के कारण काल्पनिक नहीं लगते अतएव उनके प्रति दर्शकों के हृदय में पूर्ण सहानुभूति उत्पन्न होती है। अपने नाटकों में भास ने इसी उद्देश्य से संघर्षपूर्ण घटनाक्रम की सृष्टि की है।

नाटकों को प्रभावोत्पादक बनाने में भास की कवित्वशक्ति का भी बड़ा हाथ है। इनकी कविता में प्रवाह और प्रसाद है। भास ने प्रसङ्ग वश अपने नाटकों में सन्ध्या, रात्रि, तपोवन, मध्याह्न इत्यादि का जो वर्णन किया है वह बड़ा ही सजीव तथा पूरे दृश्य का बिम्ब ग्रहण कराने में पूर्ण सफल हुआ है। मानवीय तथा बाह्य प्रकृति के चित्रण में भास बेजोड़ हैं। रात के सघन अन्धकार का प्रभावशाली वर्णन देखिए—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥ —बालचरित १।१५

भास के इस पद्य का पूर्वार्द्ध अपने वैशिष्ट्य के कारण अलंकारशास्त्र में उत्प्रेक्षा का प्रसिद्ध उदाहरण माना जाता है।

भास के नाटकों में सुन्दर से सुन्दर उपमाएँ मिलती हैं—

सूर्य इव गतो रामः, सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता॥ प्रतिमा २।७

२ बा० च० भू०

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ।। प्रतिमा ३।१०

भास ने अनेकत्र पात्रों के मुँह से जो नीतिश्लोक कहलवाये हैं वे भी भर्तृहरि के नीतिश्लोकों के समान ही हृदयावर्जक हैं। इस प्रकार भास के नाटकों में नाटकीय विधान के साथ कवित्व का स्तुत्य सहयोग मिलता है।

भास की शैली

भास के नाटकों की शैली अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है। प्रसाद, माधुर्य और ओज इनकी शैली के विशेष गुण हैं। भास को विकट बन्ध, क्लिष्ट कल्पना और लम्बे-लम्बे समस्त पदों से घृणा है क्योंकि नाटक के लिये ये सब सर्वथा अनुपयुक्त हैं। छोटे-छोटे सरल वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यंजना भास की शैली की प्रमुख विशेषता है। इनके द्वारा प्रयुक्त, लोकोक्तियों एवं सूक्तियों से अलंकृत छोटे-छोटे वाक्यों की व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता को देखकर सहज अनुमान होता है कि इनके समय में संस्कृत लोक-व्यवहार की भाषा रही होगी। यद्यपि इनकी शैली प्रायः प्रसाद एवं माधुर्यगुण से ही अधिक सम्पन्न है तथापि प्रसंगानुकूल वीर रस की अभिव्यक्ति में ओज का भी आश्रय लिया है और वीर रस की व्यंजना में भी इन्हें पूरी सफलता मिली है।

भास के नाटकों में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा जैसे सरल भावोत्कर्षक एवं प्रचलित अलंकारों का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है। सीमित शब्दों तथा सरल भाषा में हृद्गत भावों को अभिव्यक्त करना भास की अपनी विशेषता है। राम के वन चले जाने पर दशरथ की करुण दशा का चित्र सीधे-सादे शब्दों में देखिए—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हा हेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ।।
हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ।।—प्रतिमा २।३।४

भास ने दर्शक या पाठक का कौतूहल बढ़ाने के लिए कहीं-कहीं ऐसे

नाटकीय-व्यंग्यों की अवतारणा की है कि वे दर्शक या पाठक के हृदय को सहसा झकझोर देते हैं। जैसे—'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के लिए कौन राजा उपयुक्त है, उसी समय कञ्चुकी आकर सहसा कहता है—'वत्सराज'। इस प्रकार उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल जाता है, यद्यपि कञ्चुकी कहने आया था कि वत्सराज वन्दी बना लिया गया, जैसा कि आगे वह स्वयं स्पष्ट करता है। इसी प्रकार 'अभिषेक' नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा? उसी समय एक राक्षस सहसा आकर कहता है 'राम'। यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि राम ने इन्द्रजित को मार डाला। भास की यह पद्धति अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

भास अल्प शब्दों के द्वारा भाव-व्यंजना के अतिरिक्त कहीं-कहीं शब्द-प्रयोग के बिना ही, या यों कहिए कि मौन का आश्रय लेकर हृद्गत समस्त भावों की मार्मिक व्यंजना कर देते हैं। जैसे—'अनुक्त्वैव वनं गताः।'—प्रतिमा २।१७। इससे बढ़कर शैली की संक्षिप्तता और क्या हो सकती है? राम-लक्ष्मण-सीता के अकथनीय हृद्गत भावों के मर्मस्पर्शी चित्र भी उपस्थित कर दिये और अपनी ओर से उसके लिए एक भी शब्द का प्रयोग नहीं करना पड़ा। अतः भास की शैली नाटककारों के लिए आदर्श शैली कही जानी चाहिए।

भास के दोष

भास के नाटकों में कुछ त्रुटियाँ भी मिलती हैं। जैसे—(१) 'निष्क्रम्य प्रविशति' आदि द्रुतगतिवाले नाटकीय निर्देशों का आधिक्य इनकी वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न कर देता है। (२) इनके नाटकों में कालान्विति का भी अभाव है जिसे स्वप्नवासवदत्त, चारुदत्त, बालचरित, अभिषेक आदि नाटकों में स्पष्ट देखा जा सकता है। (३) कृष्ण के निर्जीव शस्त्रास्त्रों का ('बाल-चरित' में) मानवरूप में रंगमंच पर उपस्थित होना अस्वाभाविकता उत्पन्न कर देता है। (४) नाट्यशास्त्र द्वारा वर्जित दृश्यों (युद्ध, मरणादि) को भी रंगमंच पर दिखाया गया है। (५) अपरिचित पात्रों का सहसा प्रवेश नाट्य-शास्त्र-विरुद्ध है। इससे अस्वाभाविकता भी आ जाती है।

किन्तु ये दोष साधारण हैं। इनसे भास के महत्त्व में कोई कमी नहीं आती। 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।'

बालचरित-कथासार

भगवान् कृष्ण की बाललीलाओं पर आधारित यह नाटक पाँच अङ्कों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अङ्क—

इस अङ्क में नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रविष्ट होकर मङ्गलाचरण करने के बाद ज्यों ही प्रस्तुत नाटक के विषय में सामाजिकों को को कुछ सूचित करने के लिए उद्यत होता है त्योंही महर्षि नारद लोकरक्षार्थं देवकी के घर उत्पन्न हुए विष्णु के दर्शन के लिए रंगमंच पर आते हैं। वे हाथ में नवजात शिशु (श्री कृष्ण) को लिये हुए देवकी को वसुदेव की ओर जाती हुई देखते हैं।। भगवान् नारायण के दर्शन से कृतकृत्य नारद उनकी प्रदक्षिणा कर स्तुति करते हुए ब्रह्मलोक के लिये प्रस्थान करते हैं।

छः पुत्रों के विनाश से शोक सन्तप्त देवकी इस सातवें पुत्र की रक्षा के लिए व्यग्र हो उसे हाथ में लिये हुये वसुदेव के पास पहुँची। वसुदेव ने उस आधीरात के सन्नाटे में बच्चे को कहीं दूर पहुँचाने का प्रस्ताव किया। देवकी यह जानना चाहती है कि इसे कहाँ ले जांयगे। किन्तु वसुदेव भी नहीं समझ पा रहे हैं कि कहाँ ले जांय। अन्त में 'जहाँ भाग्य हमें ले जाय'—इस प्रकार भाग्य का आश्रय लेकर वसुदेव बच्चे को लेकर चल पड़े और देवकी कलेजे पर पत्थर रखकर घर के भीतर चली गयी।

नगर से बाहर आने पर वर्षा-जल से बढ़ी हुई यमुना को देखकर वसुदेव घबराये नहीं। वे भाग्य पर भरोसा कर यमुना को तैर कर पार करने की बात सोच ही रहे थे कि नदी का जल दो भागों में विभक्त हो गया। यमुना ने उन्हें मार्ग दे दिया और वे उस पार पहुँच कर विचार करने लगे—इसी पास की गोप-बस्ती में नन्दगोप रहता है। मैंने उसका उपकार किया है। कंस के के कहने पर उसे जंजीर में बांधा अवश्य था, किन्तु कोड़े नहीं लगाये थे। उसी

के घर चलूँ, किन्तु रात में उसके यहाँ जाना ठीक नहीं होगा। ऐसा सोचकर वसुदेव एक वट वृक्ष के नीचे प्रभात वेला की प्रतीक्षा करने के लिए खड़े हो गये।

विधि का विधान बड़ा विचित्र होता है। उसी रात को नन्द गोप की स्त्री यशोदा ने भी एक पुत्री को जन्म दिया। वह पैदा होते ही मर गयी और यशोदा भी प्रसववेदना से मूर्च्छित हो गयी। गाँव में दूसरे दिन ही इन्द्रयज्ञ नामक उत्सव होने वाला था अतः उत्सव में विषाद न हो इस उद्देश्य से नन्द उस मृत पुत्री को लेकर वहीं यमुना के किनारे पहुँच गया। नन्द का करुण विलाप सुनकर वसुदेव ने उसे पहचान कर अपने पास बुलाया और उसे धैर्य धारण करा के प्रस्ताव किया कि वह मृतपुत्री को विसर्जित कर इस पुत्र को अपने घर ले जाकर इसका पालन-पोषण करे। पहले तो नन्द कंस के भय से इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ किन्तु बाद में वसुदेव द्वारा किये गये उपकार का स्मरण कराने पर वह वैसा करने के लिए सहर्ष तैयार हो गया। कृष्ण की महिमा से नन्दगोप को भूमि से निकलने वाली जल की धाराएं प्राप्त होती हैं। वह उनमें शुद्ध हो कर जब बालक कृष्ण को ग्रहण करता है और उसकी गुरुता से आश्चर्य चकित हो उसे ग्रहण करने से अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब वसुदेव उसे बालक की प्रार्थना करने का निर्देश देते हैं जिससे वह हलका हो जाय। इसी समय विष्णु के पाँच आयुध और गरुड रंगमंच पर आकर बालक (कृष्ण) की स्तुति करते हैं और कृष्ण की बाललीलाओं का आनन्द भोगने के लिए वे स्वयं गोपवंश में जन्म लेने का निश्चय करते हैं। नन्दगोप वसुदेव को बच्चे का सुचारु रूप से पालन-पोषण करने का वचन देकर उसे लेकर अपने घर लौट गया और वसुदेव भी मथुरा लौटने का विचार कर ही रहे थे कि सहसा मृत बालिका जीवित हो रोने लगी। प्रसन्न वसुदेव उस बच्ची को लेकर मथुरा की ओर चल पड़े। यमुना उसी प्रकार रुकी हुई थी। वसुदेव यमुना को पार कर मथुरा पहुँचे और देवकी को धीरज बँधाने के लिए रनिवास में गये।

द्वितीय अंक—

राज भवन में चाण्डाल युवतियों का प्रवेश होता है। वे कंस के साथ परिहास करती हैं। कंस उन्हें खदेड़ने का उद्योग करता है। उनके अन्तर्हित हो जाने पर कंस भीतर चलने का विचार करता है! इतने में मधूक ऋषि का शाप परिजन समेत पहुँच कर अपना परिचय देता हुआ, कंस को भीतर जाने से रोकता है और उस घर पर अपना प्रभुत्व जताता है। शाप थोड़ी देर के लिये अदृश्य हो जाता है। कंस भी शय्या पर जाकर विश्राम करते-करते सो गया। अवसर पाकर शाप परिजन समेत पुनः जब भीतर प्रवेश करने लगा तब राजलक्ष्मी ने उसे भीतर प्रवेश करने से रोका। शाप ने राजलक्ष्मी को बताया कि भगवान् विष्णु की आज्ञा है. तुम कंस के शरीर से निकल जाओ। विष्णु की आज्ञा जानकर लक्ष्मी कंस के शरीर को छोड़कर विवश हो विष्णु के पास चली गयी और शाप की दुनियाँ सोते हुए कंस के अन्दर प्रवेश कर उसे धर्माचरण से विमुख करने में लग गयी। शाप भी कंस के शरीर में प्रविष्ट हो अदृश्य हो गया।

प्रतिहारी के आने पर कंस उससे चण्डाल युवतियों के घुस आने वाली बात कहता है। प्रतिहारी द्वारा उसे विश्वास होता है कि ये सारी घटनाएँ सत्य नहीं, दुःस्वप्नमात्र हैं। कंस ने कञ्चुकी को बुलाकर कर कहा कि जाकर ज्योतिषी और पुरोहित से पूछो—आज रात में जो आँधी, भूकम्प, उल्कापात और देवताओं की मूर्तियाँ दिखायी दी हैं उनका क्या फल है। कंचुकी ने उन लोगों से पूछकर आकर बताया कि उन लोगों ने कहा है—जो सर्वदा अन्तरिक्ष में निवास करता है वह प्राणियों के कल्याणार्थ इस मृत्युलोक में उत्पन्न हुआ है। उसके प्रादुर्भाव के समय पृथ्वी में कम्पन, आकाश में दुन्दुभिवादन और तुम्हे ये अशुभ दर्शन हुए हैं। यह सुनकर कंस ने यह पता लगाने के लिए कहा कि यह पुत्र किसे हुआ है। कञ्चुकी ने आकर कहा कि देवकी का कन्या हुई है। पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ क्योंकि केवल पुत्री के उत्पन्न होने पर बड़े शकुनों का होना असम्भव है, किन्तु सत्यवादी वसुदेव के कहने से उसे विश्वास हुआ। अपनी मृत्यु से भयभीत कंस ने उस लड़की के ही वध का निश्चय किया और उसे मंगवा कर ज्यों ही शिला पर

पटका उसने साश्चर्य देखा कि उस लड़की के शरीर का एक भाग भूमि पर पड़ा है और दूसरा आकाश में अनेक तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दिखायी दे रहा है। देवी के पार्षद कुण्डोदर, शूल, नील, मनोजव आदि उपस्थित हो अपना पराक्रम बताते हैं और देवी के आदेश से ग्वालों के घर जन्म लेते हैं। इतने में रात्रि समाप्त हो जाती है और कंस दुःशकुन की शान्ति के लिए शान्तिकर्म करने के लिए पूजा-गृह में जाता है।

तृतीय अङ्क—

इस अङ्क के आरम्भ में प्रवेशक की संघटना से प्रेक्षकों को सूचित किया गया है कि जब से नन्दगोप को पुत्र हुआ है तब से गोधन और उनके दूध में महान् वृद्धि हुई है। उसका पराक्रम आश्चर्यजनक है। उसने बचपन में ही पूतना, शकट, धेनुक, केशी आदि दानवों का वध कर डाला तथा यमलार्जुन को गिरा दिया। संकर्षण (बलराम) ने प्रलम्बासुर का वध कर दिया। प्रवेशक समाप्त होने पर श्रीकृष्ण गोपालों और गोपकन्याओं के साथ हल्लीसक नृत्य करते हैं। इसी समय अरिष्टर्षभ नामक दानव वहाँ वृषभ रूप में श्रीकृष्ण को मारने के लिए आता है जिसे देखकर गोप और गोवृन्द सब भयभीत हो जाते हैं। कृष्ण गोप-गोपिकाओं को अलग हटा कर उस दानव से भिड़ जाते हैं और उसका वध कर देते हैं। इसके बाद ही दामक नामक गोप ने श्रीकृष्ण को सूचना दी कि यमुनाह्रद में कालिय नाग ऊपर उठ आया है—यह सुनकर बलराम जी उसका दर्पप्रशमन करने के लिए उधर दौड़े गये हैं। श्रीकृष्ण भी ऐसा सुनकर उधर ही चल देते हैं।

चतुर्थ अङ्क—

भगवान् श्री कृष्ण यमुना ह्रद में प्रवेश करना चाहते हैं किन्तु अनिष्ट की आशङ्का से त्रस्त गोपिकाएँ उन्हें मना करती हैं। श्रीकृष्ण और बलराम उन्हें सान्त्वना देते हैं। श्रीकृष्ण यमुना ह्रद में कूद पड़ते हैं। और वे कालिय नाग के फणों पर आरूढ हो जाते हैं। कालिय उन्हें अपने विषज्वाला से भस्म करने की चेष्टा करता है किन्तु अन्त में श्रीकृष्ण की प्रभुता से पराभूत होकर शरणागत हो जाता है। श्रीकृष्ण के पूछने पर कालिय

वताता है कि आपके वाहन गरुड के डर से मैं यहाँ घुसा हूँ। श्रीकृष्ण उसे अभय-दान देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे मस्तक पर मेरा चरणचिह्न देखकर गरुड तुम्हें छोड़ देगा। कालिय यमुना ह्रद में व्याप्त विष को वापस लेकर सपरिवार वहाँ से चला गया। श्रीकृष्ण यमुनाह्रद से चुने गये पुष्पों को गोपियों में वितरित करते हैं। इसी समय कंस का भेजा हुआ भट आकर श्रीकृष्ण से कहता है—मथुरा में 'धनुषयज्ञ' हो रहा है जिसमें कंस ने आप दोनों को सपरि-जन बुलाया है। श्रीकृष्ण और बलराम कंसादि राक्षसों के वध का उपयुक्त अवसर देखकर तुरन्त उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं।

पञ्चम अङ्क—

कंस श्रीकृष्ण को अपने मल्लों से मरवाने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था और उसने ध्रुवसेन (भट) से जानना चाहा कि श्रीकृष्ण आया कि नहीं। भट ने उसे बताया—श्रीकृष्ण और बलराम ग्वालबालों के साथ नगर में आ गये हैं। उन्होंने धोबियों से वस्त्र छीनकर धारण कर लिए, कुवलयापीड गज को मार डाला, मदनिका नाम की कुब्जा को गन्धद्रव्य ले जाती हुई देखकर उसके हाथ से गन्धद्रव्य लेकर अपने शरीर में लगा लिया और उसके कुबड़ेपन को अपने हाथ के परामर्श से दूर कर दिया। अब फूलों के बाजार से पुष्प लेकर उन्हें धारण कर धनुष-शाला की ओर गये हैं। कंस के पूछने पर भट ने आगे का वृत्तान्त बताया—धनुष के दो टुकड़े करके इस समय सभा मण्डप की ओर गए हैं। कंस भट को आदेश देता है कि वह चाणूर और मुष्टिक को भेजे और कृष्ण-बलराम से कहे कि युद्ध के लिए तैयार हो जायं। कंस प्रासाद पर चढ़ कर द्वन्द्व युद्ध देखता है। दुन्दुभी-वादन के साथ युद्ध प्रारम्भ होता है। कृष्ण चाणूर का और बलराम मुष्टिक का वध कर डालते हैं। तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रासाद पर चढ़कर कंस का सिर पकड़ कर नीचे गिरा देते हैं और उसका भी वध कर डालते हैं। वसुदेव सारी सेना को आकर समझाते हैं और कृष्ण तथा बलराम को अपना ही पुत्र बताते हुए उनका परिचय देते हैं। श्रीकृष्ण और बलराम वसुदेव को प्रणाम कर उनका शुभाशीर्वाद ग्रहण करते हैं। वसुदेव भी उन सत्पुत्रों से अपने को धन्य समझते हैं। वसुदेव की आज्ञा से

उग्रसेन कारागार से मुक्त किये जाते हैं और उनका अभिषेक होता है। इस प्रकार वृष्णि राज्य की पुनः प्रतिष्ठा होती है।

आकाश में दुन्दुभिनाद होता है और पुष्पों की वर्षा होती है! भगवान् का गुणानुवाद करते हुए नारद का आगमन होता है। भगवान् श्रीकृष्ण नारद का अर्घ्य-पाद्यादि से सत्कार करते हैं। नारद भगवान् को प्रणाम कर कृतकृत्य हो देवलोक को चले जाते हैं। और भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

बालचरित नाटक : समीक्षा

इस नाटक में बाल श्रीकृष्ण के चरित वर्णित हैं अतः अभेदोपचार से नाटक का नाम भी 'बालचरित' रखा गया है। नाटक का विशेषण होने से नपुंसक लिङ्ग है (बालचरितम्)।

कवि ने श्रीकृष्ण की उन्हीं बाल-लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है जो श्रीमंद्भागवत तथा अन्य पुराण एवं महाभारतादि में उपलब्ध हैं। कवि ने श्रीकृष्ण के विषय में प्रचलित किंवदन्तियों का भी आधार लिया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार यमुना जी में बाढ़ आयी थी किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का चरण स्पर्श कर वे वसुदेव जी के लिए इतनी घट गयीं कि उनमें घुटने से नीचे जल रह गया। भास ने श्रीकृष्ण की महत्ता और चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए घटना के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है—'द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम्, इतः प्रधावति।' (जल दो भागों में बँट गया है, इधर ठहरा है उधर बह रहा है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार वसुदेव जी जब गोकुल पहुँचे तो भगवान् की माया से वहाँ भी लोग गाढ़ी नींद में सो रहे थे। उसी समय यशोदा को भी लड़की हुई थी किन्तु गाढ़ी नींद में सो जाने से उन्हें यह भी पता नहीं था कि लड़की हुई है या लड़का। वसुदेव जी सीधे नन्द जी के घर में चले गये। उन्होंने यशोदा जी की नवजात लड़की उठा ली और भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ रख दिया और मथुरा लौट आये। भास ने यहाँ भी परिवर्तन कर दिया है। नन्द और वसुदेव की भेंट यमुना-तट पर हुई जहाँ नंद मृत पुत्री के शव को विसर्जित करने आया था। नंद जब श्रीकृष्ण को लेकर चला

गया तब वह पुत्री पुनर्जीवित हो गयी जिसे वसुदेव ने कंस को प्रवञ्चित करने का अच्छा साधन समझ कर उठा लिया और वे मथुरा लौट आये। इसी प्रकार भास ने कृष्ण को सातवाँ पुत्र कहा है जब कि वास्तव में वे आठवें पुत्र थे। कंस देवकी के छः पुत्रों को मार चुका था। सातवें पुत्र संकर्षण को योग माया ने देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया था। अब कृष्ण सातवें पुत्र थे जिनका वध कंस द्वारा होता। इस आशय से यदि भास ने कृष्ण को सातवाँ पुत्र कहा तो बात दूसरी है।

'बालचरित' पाँच अङ्कों का नाटक है जिसमें उसके सभी तत्त्वों का सम्यक् सन्निवेश किया गया है। कथा प्रख्यात है और नायक धीरोदात्त श्रीकृष्ण हैं। इस नाटक में स्त्रीपात्रों का बाहुल्य होते हुए भी नायिका के रूप में किसी की अवतारणा नहीं की गयी है। शृङ्गार रस की योजना भी नहीं की गयी है। कृष्ण--कथा प्रधान और संकर्षण की कथा पताका रूप में आई है।

रस की दृष्टि से इसमें वीर रस प्रधान है तथा भयानक, अद्भुत, रौद्र, करुण आदि रस अङ्ग रूप में आये हैं। नाटक की आश्चर्यमयी घटनाएँ, जैसे—वसुदेव द्वारा श्रीकृष्ण को ले जाते समय गहन अन्धकार में प्रकाश का होना, यमुना-जल का दो भागों में विभक्त हो जाना, शुद्धि के लिए भूमि खोदने पर नन्दगोप को भूमि से निकलने वाली जलकी चार धाराओं का प्राप्त होना, नन्द गोप की मृत पुत्री का पुनर्जीवित होना आदि अद्भुत रस का आस्वादन कराती हैं। देवकी का निम्नांकित चित्रण करुणा से आर्द्र कर देता है—

'अगणित परिखेदा याति पण्णां सुताना—
मपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा।
बहुगुणकृतलोभा जन्मकाले निमित्तै
सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती॥ १।१०

बालक को वसुदेव के हाथ में सौंपकर देवकी हृदय से बालक के साथ और शरीर से घर के भीतर जा रही है। उसका करुणापूर्ण चित्र देखिए--

'हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता॥—१।१३

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा कंस के स्वप्नों के चित्रण में रौद्र और भयानक रसों की सृष्टि हुई है। मधूक ऋषि का शाप स्वरूपतः और कर्मणा बड़ा भयावह है—

'श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि
चण्डालवेषेण विरूपचण्डम्।
कपालमालातिविचित्रवेषः
कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम्॥'—२।५

तृतीय अङ्क में गोपों और गोपकन्याओं के साथ कृष्ण के हल्लीसक नृत्य करने पर वृद्ध गोपाल की उक्ति 'ही ही सुष्ठु गीतम्। सुष्ठु वादितम्। सुष्ठु नर्तितम्। यावदहमपि नृत्यामि। परिश्रान्तःखल्वहम्।' में तथा पञ्चम अङ्क में कंस के मारे जाने पर सभी गोपालों की 'ही ही गोपालकानां राज्यं संवृत्तम्'—इस उक्ति में हास्य रस की झलक मिलती है।

इसी प्रकार नारदादि भक्तों द्वारा भगवान् विष्णु के प्रति भक्ति-प्रदर्शन में शांतरस की योजना हुई है। संक्षेप में हम सकते हैं कि इस नाटक में शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य सभी रसों की सफल योजना की गयी है।

पात्रों के संवाद चुस्त और चुटीले हैं। वीररस के प्रसंग में संवाद की भाषा ओजपूर्ण है। अरिष्टर्षभ, कालियनाग तथा चाणूर आदि के साथ कृष्ण के संवाद द्रष्टव्य हैं। पद्य के छोटे-छोटे टुकड़े कर प्रत्येक टुकड़े को एक-एक पात्रों के मुख से संवादरूप में प्रस्तुत करने की शैली इस नाटक में भी प्रयुक्त की गयी है जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक है[1]।

इस नाटक में भी कहीं-कहीं भास का ध्यान कालान्विति की ओर नहीं गया है। प्रथम अक में वसुदेव बालक को जब नन्द गोप के हाथ में देते हैं तो रात्रि के पर्यवसान का उल्लेख है किंतु वसुदेव के मथुरा लौटकर पहुँचने पर वे मथुरा में लोगों को पूर्ववत् गाढ निद्रा में प्रसुप्त पाते हैं।

भास की वर्णन शैली का काव्यात्मक रूप बालचरित में निखरा हुआ दीख पड़ता है[2]। भास शब्दों के आश्रय से भाव-दशाओं और परिस्थितियों का पूरा दृश्य पाठकों के सामने खड़ा कर देते हैं[3]। कवि ने उपमा, रूपक और

---

१. द्रष्टव्य ५।१०। २. द्रष्टव्य १।१५,१९। ३. द्रष्टव्य ३।३। तथा ४।१।

उत्प्रेक्षादि अत्यन्त प्रचलित और सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया है जो भावाभि व्यंजना में अत्यन्त सहायक हुए हैं।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। उन्होंने लोक-कल्याण तथा असुरों के संहार के लिए मानवरूप में अवतार लिया है। उनके जन्म के समय से ही अद्‌भुत घटनाएं घटित होती हैं। वसुदेव आधी रात के समय नवजात कृष्ण को जब गोकुल पहुँचाने के लिये चलते हैं उस समय गहन अन्धकार में भी उन्हें अलौकिक प्रकाश से सहायता मिलती है। हिलोरें लेती यमुना का जल दो भागों में बँट कर उन्हें मार्ग दे देता है।

व्रज में निवास करते समय श्रीकृष्ण बाल्यावस्था में ही पूतना राक्षसी का स्तन-पान करते हुए वध कर डालते हैं। गाय चराते हुए वे केशी, अरिष्टर्षभ आदि दुर्दान्त दानवों का संहार करते हैं। कालियनाग का दमन कर वे उसे यमुनाह्रद से दूर निकाल कर लोक का कल्याण करते हैं। धनुर्यज्ञ के बहाने कृष्ण को जब कंस मथुरा आने का आदेश देता है, उस समय उसकी चाल समझते हुए भी वे असुरों के संहार का उपयुक्त अवसर समझकर निर्भय वहाँ जाकर कंस के चाणूर आदि प्रसिद्ध वीरों का वध करते हैं। कुवलयापीड जैसे गजराज के दाँत उखाड़ कर उसे मार डालते हैं। अन्त में कंस के भी प्राण हर लेते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण की वीरता और तेजस्विता उनकी अलौकिकता का परिचय देती हैं। कुब्जा दासी की कुब्जता को श्रीकृष्ण के द्वारा दूर किये जाने में एक ओर उनकी अलौकिकता सिद्ध होती है तो दूसरी ओर कृतज्ञता का भाव भी स्पष्ट है।

श्रीकृष्ण की अलौकिकता के साथ कवि ने उनके मानवीय पक्ष का भी रोचक एवं मोहक चित्रण किया है। वे गोप-बालकों के साथ गाय चराते हुए विविध क्रीडायें करते हैं और मित्रों के साथ घर-घर माखन चोरी करते हैं। उनकी ये बाल-सुलभ चेष्टाएं व्रजवासियों के हृदय में अपूर्व वात्सल्यरस का संचार किया करती हैं। गोप-बालिकाओं के साथ वे हल्लीसकनृत्य करते हुए उन्हें आत्म-विभोर करते हैं।

इस प्रकार कृष्ण के चरित्रचित्रण में हमें उनकी अलौकिकता के साथ उनके मानवीय अंश का भी नाटककार दर्शन कराता है फिर भी उनका भगवत्तत्व ही पूरे उभार के साथ प्रेक्षकों के सामने आया है।

वलराम—वलराम श्रीकृष्ण के समान ही शील-शक्ति-सौन्दर्य--सम्पन्न हैं। उनकी प्रत्येक लीला में वे सहचर का कार्य करते हैं। अरिष्टर्षभ के साथ श्रीकृष्ण के युद्ध समय में भयभीत गोप बालकों और बालिकाओं को लेकर पर्वत शिखर पर चढ़कर वहीं से उन्हें अरिष्टर्षभ के वध का दृश्य दिखाते हैं। वलराम जी को श्रीकृष्ण की अलौकिक-शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। यमुना ह्रद में कालिय नाग के ऊपर उठने का समाचार सुनकर वलराम ही पहले उधर दौड़े जाते हैं। श्रीकृष्ण पहुँच कर स्वयं उसके दर्प को विनष्ट करने के लिए उद्यत होते हैं। उस समय वैसा करने से मना करती हुई गोपाङ्गनाओं को श्रीकृष्ण की सफलता में पूरे विश्वास के साथ वलराम जी धैर्य और आशा वँधाते हैं। श्रीकृष्ण के साथ वलराम जी भी कंस के 'धनुर्यज्ञ' उत्सव में पहुँचते हैं। वहाँ मुष्टिक जैसे मल्ल का क्षण भर में संहार करते हैं। उनकी ललित एवं गम्भीर आकृति को देखकर कंस भी आश्चर्य चकित रह जाता है। श्रीकृष्ण द्वारा कंस का वध होने पर कंस की समुद्र के समान उमड़ती हुई सेना का वारण करने के लिए वलराम का उत्साह स्तुत्य है—

> द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनाद
> विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यष्टिकुन्तम्।
> पवनवलविकीर्णं फेन जालोर्मिमालं
> जलनिधिमिव दोर्भ्यां क्षोभयाम्येष सैन्यम् ॥—५।१२।

वसुदेव—वसुदेव की भावुकता और सहृदयता में करुणा का उद्रेक प्रेक्षकों के हृदय को आर्द्र कर देता है। छः पुत्रों के शोक से सन्तप्त एवं सातवें की रक्षा में आकुल देवकी को देख कर वसुदेव का हृदय करुणा से भर जाता है। वे बालक को लेकर भाग्य पर भरोसा कर आधी रात के समय में निकल पड़ते हैं। बालक की गुरुता पर उन्हें नारी-जाति के प्रति पूर्ण सहानुभूति होती है—

विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलेक्षणः ।
गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः ॥—१।१२ ।

वसुदेव साहस, उत्साह, स्वाभिमान और पराक्रम की भावना से ओत-प्रोत हैं। वे भरी यमुना को पूरे साहस और उत्साह से पार करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। बिजली कौंधने पर उन्हें जब भ्रम होता है कि पापी कंस मुझे दीपकों से घेर कर पकड़ने आ रहा है, उस समय उनका स्वाभिमान बोल उठता है—अच्छा, मैं इसका गर्व चूर करूँगा। वे अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए तलवार खींच लेते हैं। यमुना पार करने पर नन्द गोप से भेंट होने पर वसुदेव परिस्थिति वश पूरे भाग्यवादी दिखायी पड़ते हैं। वे नन्द गोप से कहते हैं—दुरात्मा कंस मेरे छः पुत्रों को मार चुका है। यह सातवाँ है। पुत्रों के विषय में मेरा भाग्य अनुकूल नहीं है। इसे ग्रहण करो, यह तुम्हारे ही भाग्य से जीवित रहे। कंस के भय से नन्द गोप के तैयार न होने पर अपने किये गये उपकार की याद दिलाकर उसमें प्रत्युपकार की भावना जगाते हैं।

वसुदेव की सत्यवादिता पर कंस को भी पूरा विश्वास है। देवकी के कन्या हुई हुई—ऐसा सुनकर कंस को सहसा विश्वास नहीं होता है। वह उसकी पुष्टि वसुदेव से कराता है क्योंकि वह जानता है कि वसुदेव असत्य नहीं बोलते हैं किन्तु यहाँ वसुदेव ने कंस को प्रवञ्चित किया। ऐसा करने में वसुदेव जी तर्क का सहारा लेते हैं—'कुमाररक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि।' उनकी दृष्टि में कुमार की रक्षा सर्वोपरि है। उसके लिए झूठ, झूठ नहीं सत्य समझा जाना चाहिए [स ते हितं सत्यम्]।

इसके बाद पञ्चम अंक में कंस वध के अनंतर वसुदेव जी का दर्शन होता है। वे सत्पुत्रों से आप्तकाम पिता के रूप में दीख पड़ते हैं। मथुरा-वासियों को कृष्ण-बलराम पर आक्रमण के लिए उद्यत देखकर वसुदेव उन्हें रोकते हैं और सानन्द कृष्ण और बलराम का परिचय देते हुए सात्त्विक गर्व का अनुभव करते हैं। वसुदेव जी की उदारता और त्याग भी अनुकरणीय है। कंस के मारे जाने के बाद राज्य उन्हें स्वतः सुलभ था तथापि उन्होंने कंस के पिता उग्रसेन को राजा बनाया।

कंस—कंस भूकम्पादि से शङ्कित अवश्य दिखायी देता है, पर उसे अपने पौरुष पर पूर्ण विश्वास है। वह मधूक ऋषि के शाप को देखकर भी डरता नहीं। जब वह उसके हृदय में प्रवेश करने को उद्यत होता है तब भी वह उसे असम्भव वस्तु की प्रार्थना ही समझता है। अपशकुनों का कारण भगवान् का जन्म है—ऐसा कञ्चुकी के मुख से जान कर वह उनका पता लगाता है और देवकी को ही लड़की हुई है—ऐसा जान कर उसे सहसा विश्वास नहीं होता है। कंस को वसुदेव की सत्यवादिता पर पूर्ण विश्वास है। यद्यपि वसुदेव ने उससे तथ्य को छिपाया फिर भी उसकी वसुदेव के प्रति धारणा अविचल रही।

पुरुषार्थवादी कंस अपने पुरुषार्थ से भाग्य को बदल देने का पूर्ण निश्चय करता है। वह देवकी के अनुनय और वसुदेव की प्रार्थना को ठुकरा कर कन्या-वध का निष्फल प्रयास करता है। कंस कृष्ण को मारने के लिए अनेक असुरों को भेजता रहता है। अपने प्रयत्न में सफल न होने पर धनुर्यज्ञ के बहाने राम-कृष्ण को मथुरा में बुलाता है। यहाँ भी उन्हें मरवाने का हर सम्भव प्रयास करता है। अनेक बड़े-बड़े असुरों के निधन के बाद कंस को श्रीकृष्ण की अलौकिक शक्ति पर विश्वास हो जाता है। वह बलराम के भी सौन्दर्य और पराक्रम की प्रशंसा करता है। किन्तु 'अब पछिताये होत क्या, चिड़िया चुग गई खेत'—इस लोकोक्ति के अनुसार उसे अपने प्राण गँवाने पड़े।



पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

नारद : देवर्षि
वसुदेव : कृष्ण के पिता
नन्दगोप : वसुदेव का मित्र : गोकुलाध्यक्ष
उग्रसेन : कंस का पिता
दामोदर : श्रीकृष्ण, वसुदेव के पुत्र
संकर्षण : बलदेव, ,, ,,
गरुड़ : विष्णु का वाहन
चक्र, शार्ङ्ग, शङ्ख, नन्दक : भगवान के हथियार
राजा : कंस : मथुरा का राजा
चाणूर : कंस का आश्रित पहलवान
मुष्टिक : ,, ,,

भट : कंस का नौकर (ध्रुवसेन)
कंचुकी : ,, ,, (बालाकि)
शाप : शाप का अधिष्ठातृ देव
सब : रक्षा करने वाले पुरुष
कुंडोदर : कात्यायनी के नौकर
शूल : ,, ,,
नील : ,, ,,
मनोजव : ,, ,,
वृद्धगोपालक : ग्वाला
दामक : ,,
अरिष्टर्षभ : असुरविशेष
कालिय : यमुनानिवासी महानाग

स्त्री पात्र

देवकी : श्रीकृष्ण की माता
प्रतिहारी : देवकी की द्वारपालिका
धात्री : मायादारिका की उपमाता
सब : चण्डाल युवतियाँ
कात्यायनी : देवी
सब : घोष-सुन्दरी ग्वालिन

राजश्री : राज्य की देवता
प्रतिहारी : कंस की द्वारपालिका मधुकरिका
प्रतिहारी : कंस की द्वारपालिका यशोधरा
कौमोदकी : भगवान् की गदा

भासनाटकचक्रे

बालचरितम्

'कल्याणी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

नीलाम्बुदाभाय मनोहराय परात्मने गो-द्विजपालकाय ।
ब्रह्मादिसेव्याय दयापराय नमोऽस्तु कृष्णाय जनार्दनाय ॥

अथ तत्रभवान् कविताकामिनीहासो महाकविर्भासो नटैरनुष्ठितवाद्यवादनादिरूपया नान्द्या रङ्गसामाजिकवृन्दे ह्युन्मुखीकृते सति, निर्विघ्नं चिकीर्षितग्रन्थसमाप्तये, तस्य सानन्दाभिनयसम्पत्तये, सामाजिकानामानुषङ्गिकमङ्गलसिद्धये च शिष्टाचारज्ञापितस्मृतितर्कितश्रुतिबोधितकर्त्तव्यताकमाशीर्वादात्मकं स्वरचितं नान्द्यात्मकं मङ्गलं सूत्रधारमुखेन पाठयितुं ततो नाटकीयकथावस्तूपक्षेपं कारयितुं च रङ्गमञ्चे सूत्रधारमवतारयन् निर्दिशति—नान्द्यन्त इति । नान्द्यन्ते—नान्दी = आनको नाम वाद्यविशेषः ('दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्भा नालूश्च नान्द्यपि' इति वैजयन्ती) नान्द्याः, उपलक्षणत्वाद् वाद्यान्तराणामपि अन्ते = अवसाने (भावे सप्तमी) । ततः = तदनन्तरम्, वाद्यवादनादिरूपनन्दीसमापनानन्तरमेवेत्यर्थः, क्रियान्तरेण कालक्षेपमकृत्वेति भावः । 'ततः' इतिपदेन नान्दीसमापनसूत्रधारप्रवेशक्रिययोर्मध्ये क्रियान्तराभावो

([वाद्यवादनादिरूप] नान्दी के समाप्त होने पर तुरन्त उसके बाद ही सूत्रधार प्रवेश करता है।)

सूत्रधारः—

शङ्खक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः ।

द्योत्यते, अन्यथा नान्द्यन्ते इति भावसप्तम्यैव सूत्रधारप्रवेशक्रियाभावावगमात् तत इति पदस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत । नान्दीति पदेनात्र वाद्यवादनरूपैव नान्दी ग्राह्या, न तु 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥' इति लक्षणलक्षिता कविरचिता मङ्गलश्लोकात्मिका नान्दी, तस्याः सत्काव्यरूपतया रङ्गप्रयोज्यत्वेन सूत्रधारादेः कस्यचित्प्रवेशं विना प्रयोक्तुमशक्यत्वात् । प्रविशति = रङ्गमञ्चे समागच्छति । सूत्रधारः—सूत्रं धारयतीति सूत्रधारः (कर्मण्यण्) प्रधाननटः । "वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥" इति तल्लक्षणम् । भरतस्त्वाह—"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्य भिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥" इति ॥

नाटकप्रयोगात्पूर्वं सूत्रधारो नाटकग्रन्थादौ कविनिबद्धां मङ्गलपद्यरूपामाशीर्वचनात्मिकां नान्दीं पठति—शङ्खक्षीरवपुरिति ।

पुरा = पूर्वम्, प्राचीनकाले । कृतयुगे—कृतयुगं नाम युगचतुष्टयेऽन्यतमं युगम्, तस्मिन्, सत्ययुग इत्यर्थः । शङ्खक्षीरवपुः—शङ्ख इव, क्षीरम् = दुग्धमिव (गौरम्) वपुः = शरीरं यस्य स तथोक्तः, शङ्खदुग्धगौर इत्यर्थः । नाम्ना = संज्ञया तु नारायणः—नाराः = आपः, अयनं यस्य सः विष्णुरित्यर्थः । 'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥'–(मनुस्मृतिः १।१०) त्रेतायाम् = त्रेतायुगे, सुवर्णप्रभः–सुवर्णस्य = काञ्चनस्य प्रभा = कान्तिरिव प्रभा यस्य स तथोक्तः, काञ्चनकान्तिरित्यर्थः, त्रिपदार्पितत्रिभुवनः—त्रिभिः पदैः, अर्पितम् = आक्रान्तमित्यर्थः त्रिभुवनम् = त्रैलोक्यं येन स तथोक्तः, विष्णुः = वामन इत्यर्थः, द्वापरे युगे

सूत्रधार—सत्ययुग में पहले शङ्ख और दूध के समान (गौर) शरीर वाले नारायण, त्रेता में सुवर्ण के समान कान्ति वाले, तीन डगों में तीनों लोकों को आक्रान्त कर लेने वाले विष्णु (वामन) भगवान्, द्वापर युग में रावण का संहार करने के लिए दूर्वा के समान श्यामलकान्ति वाले वे राम और कलियुग

दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसन्निभः कलियुगे वः पातु दामोदरः ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते । अङ्ग ! पश्यामि ।

रावणवधे = रावणविनाशे तत्समय इत्यर्थः, दूर्वाश्यामनिभः—नितरां भानमिति निभा (नि + √भा + अङ् + टाप्) = कान्तिः, दूर्वाया इव श्यामा निभा = कान्तिर्यस्य सः, दूर्वाश्यामलाङ्ग इत्यर्थः । सः = प्रसिद्धः, रामः = दाशरथिः, कलियुगे यः अञ्जनसन्निभः = अञ्जनसदृशश्यामवर्णः, स दामोदरः–दाम = रज्जुः उदरे = कटिप्रदेशे यस्य सः, कृष्ण इत्यर्थः, वः = युष्मान् श्रोतॄन् पाठकान् समाजिकाँश्चेत्यर्थः नित्यम् = सर्वदा, पातु = रक्षतु । कृतयुगे नारायणः, त्रेतायां वामनः, द्वापरे रामः, कलियुगे श्रीकृष्णः सामाजिकान् सर्वदा रक्षत्विति सरलार्थः । युगचतुष्टये नामभेदेनैक एव जगदीश्वरो युष्मान् पात्विति भावः ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

एवम् = ईदृशम् । आर्यमिश्रान्—आर्याश्च ते मिश्राः इति आर्यमिश्राः तान् = महानुभावानित्यर्थः । आर्यलक्षणं यथा—"कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥" इति । मिश्राः = आदरणीयाः । विज्ञापयामि = सूचयामि । अये = विस्मयद्योतकमव्ययपदम् । मयि = सूत्रधारे इत्यर्थः । विज्ञापनव्यग्रे—विज्ञापनम् = सूचनम्, तत्र व्यग्रः = साभिप्रायं व्यस्तः, तस्मिन् (भावे सप्तमी) । अङ्ग = भोः (सम्बोधनार्थकाः स्युः प्याट्पाडङ्ग हे है भोः' इत्यमरः ।)

में अंजन के सदृश (श्याम) दामोदर (कृष्ण) आप (सामाजिकों) की नित्य रक्षा करें ॥ १ ॥

आप महानुभावों को ऐसा सूचित कर रहा हूँ । अरे ! क्या बात है ? मेरे सूचना देने में व्यस्त होते ही शब्द-सा सुनाई दे रहा है । अच्छा, देखता हूँ (क्या बात है) ।

(नेपथ्ये)

अहं गगनसञ्चारी ।

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

पतत्यसौ पुष्पमयी च वृष्टिर्नदन्ति तूर्याणि च देवतानाम् ।
द्रष्टुं हरिं वृष्णिकुले प्रसूतमभ्यागतो नारद एष तूर्णम् ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

स्थापना

नेपथ्ये = कुशीलवकुटुम्बस्यस्थानं नेपथ्यं, तत्र ।

गगनसंचारी—गगने = आकाशे संचरितुं शीलमस्येति स तथोक्तः ।

सूत्रधार इति । विज्ञातम् = अवगतम् ।

सूत्रधारः शब्दहेतुं निरूपयति—पतत्यसाविति । असौ = दृश्यमाना । पुष्पमयी = पुष्पाणामित्यर्थः । वृष्टिः = वर्षणम्, पतति । आकाशाद् देवाः पुष्पवृष्टिं कुर्वन्तीतिभावः । देवतानाम् = सुराणाम्, तूर्याणि = दुन्दुभयश्च नदन्ति = घोषं कुर्वन्ति । वृष्णिकुले = वृष्णिर्नाम राजा, तस्य कुले = वंशे । प्रसूतम् = प्रादुर्भूतम्, हरिम् = विष्णुम्, कृष्णमिति यावत्, द्रष्टुम् = विलोकयितुम्, एष नारदः-नरस्य धर्मो नारं, तद्ददाति (नार + √दा + कः) तन्नामा देवर्षिः, तूर्णम् = शीघ्रम्, अभ्यागतः = सम्प्राप्तः । इति मया (सूत्रधारेण) विज्ञातमिति भावः । अत्रोपेन्द्रवजेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम् ॥२॥

(नेपथ्य में)

मैं आकाश में घूमने वाला हूँ ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

यह (आकाश से) पुष्प वृष्टि हो रही है और देवताओं की भेरियाँ बज रही हैं । वृष्णिकुल में उत्पन्न हुए श्रीकृष्ण का दर्शन करने ये नारद जी शीघ्रता पूर्वक पधारे हैं ॥ २ ॥

(चला गया)

इति स्थापना

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः—अहं गगनसञ्चारी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
ब्रह्मलोकादिह प्राप्तो नारदः कलहप्रियः ॥ ३ ॥

भोः !

क्षीणेषु देवासुरविग्रहेषु नित्यप्रशान्ते न रमेऽन्तरिक्षे ।
अहं हि वेदाध्ययनान्तरेषु तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि ॥ ४ ॥

नारदः प्रविश्य स्वपरिचयं ददाति—अहमिति । अहम् गगनसञ्चारी = गगने = आकाशे सञ्चारी = संचरणशीलः, त्रिषु लोकेषु = त्रिभुवने, विश्रुतः = प्रसिद्धः, कलहप्रियः-कलहः=कलिः, प्रियः=प्रीतिकरो यस्य सः, नारदः=तन्नामा देवर्षिः, ब्रह्मलोकात् = ब्रह्मणः लोकात्, विधातुः सकाशादिति भावः । इह = अत्र, भूलोके । प्राप्तः = आगतः ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ३ ॥

नारदस्ततः स्वप्रकृतिं विज्ञापयति—क्षीणेष्विति । देवासुरविग्रहेषु—देवानामसुराणां च विग्रहेषु = कलहेषु, क्षीणेषु = नष्टप्रायेषु, नित्यप्रशान्ते = सर्वदा प्रशममुपगते, अन्तरिक्षे = आकाशे स्वर्गे इत्यर्थः, न रमे = = अहमानन्दं नानुभवामि । अहं हि = नारदः, वेदाध्ययनान्तरेषु—वेदानामध्ययनम्, तस्यान्तरेषु = अन्तरालेषु तन्त्रीश्च = वीणाया लोहनिर्मितसूत्राणि च वैराणि च = कलहांश्च, घट्टयामि = वीणां वादयामीत्यर्थः, कलहांश्च समुत्पाद्य वर्धयामीत्यर्थश्च । देवासुरविग्रहस्य क्षीणतया देवलोके सर्वदा शान्ति-साम्राज्यं वर्तते, तस्मादहं कलहप्रियत्वात्तत्रानन्दं नानुभवामि । सम्प्रति वेदाध्ययनेन वीणावादनेन कलहसंयोजनेन च स्वसमयं यापयामीति नारदोक्तेराशयः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम् ॥ ४ ॥

(तदन्तर नारद प्रवेश करते हैं ।)

नारद—मैं आकाश मार्ग से गमन करने वाला, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, कलहप्रिय नारद ब्रह्मलोक से यहाँ आया हूँ ॥ ३ ॥

अजी,

देवताओं और असुरों के कलह की गति मन्द पड़ जाने से नित्य प्रशान्त स्वर्ग में मेरा मन नहीं लगता है । मैं वेदाध्ययन के बीच-बीच में (वीणा के) तारों को छेड़ा करता हूँ और वैर का संयोजन किया करता हूँ ॥ ४ ॥

अपि च,

भक्तिः परा मम पितामहभाषितेषु
सर्वाणि मे बहुमतानि तपोवनानि ।
सत्यं ब्रवीमि करजाग्रहता च वीणा
वैराणि भीमकठिनाः कलहाः प्रिया मे ॥ ५ ॥

तद् भगवन्तं लोकादिमनिधनमव्ययं लोकहितार्थे कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतं नारायणं द्रष्टुमिहागतोऽस्मि । अये, इयमत्रभवती देवकी । मायया शिशुत्वमुपागतं त्रिलोकेश्वरं प्रगृह्य वसुदेवेन सह शनैः स्वगृहान्निष्क्रामति । यैषा,

---

भक्तिरिति । मम = नारदस्य, पितामहभाषितेषु—पितामहस्य = ब्रह्मणः, भाषितेषु = वचनेषु, परा = परमा । भक्तिः = श्रद्धा (वर्तते) । मे = मम नारदस्येत्यर्थः, सर्वाणि तपोवनानि बहुमतानि = अत्यादृतानि (सन्ति) । सत्यम् = यथार्थम्, ब्रवीमि = वदामि, विज्ञापयामीत्यर्थः, करजाग्रहता—करे जातः करजः = नखः, तस्य अग्रेण = अग्रभागेन, हता = घट्टिता वीणा = महती नाम वीणा, वैराणि = द्वेषाः, भीमकठिनाः भयंकर कठोराः कलहाः = विग्रहाः मे = मम प्रियाः = प्रीतिकराः (सन्ति) ॥ वसन्ततिलकावृत्तम् । तल्लक्षणं यथा-'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।' इति ॥ ५ ॥

तद्भगवन्तमिति । भगवन्तम् = षडैश्वर्यसम्पन्नम् । लोकादिम्-लोकेषु आदिम्, आदिपुरुषमित्यर्थः । अनिधनम्-नास्ति निधनं = मरणं यस्य तम्, अविनाशिनमित्यर्थः । अव्ययम् = शाश्वतम्, नित्यम् । अये=आश्चर्यद्योतकमव्ययम् । शिशुत्वमुपागतम् = शिशुभावंप्राप्तम् । त्रिलोकेश्वरम् = त्रिभुवनपतिम् प्रगृह्य = आदाय ।

और भी,

ब्रह्मा के वचनों में मेरी बड़ी भक्ती है । सभी तपोवनों का मैं बहुत सम्मान करता हूँ । मैं सत्य कहता हूँ कि नखाग्र से छेड़ी गयी वीणा और भयंकर एवं कठोर वैर तथा कलह मुझे प्रिय है ॥ ५ ॥

सो लोकों में आदिपुरुष, अविनाशी, अव्यय (शाश्वत), लोक कल्याण करने के हेतु कंस के वध के लिए वृष्णि कुल में प्रादुर्भूत भगवान् नारायण का

लोकानामभयकरं गुरुं सुराणां
दैत्यानां निधनकरं रथाङ्गपाणिम् ।
शोकार्ता शशिवदना निशि प्रशान्ता
बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती ॥ ६ ॥

एष भगवान् नारायणः,

अनन्तवीर्यः कमलायताक्षः सुरेन्द्रनाथोऽसुरवीर्यहन्ता ।

नारदो देवकीमुपवर्णयति—लोकानामिति । लोकानाम्=त्रयाणां भुवनानाम् अभयकरम् = भयापहारिणम् । सुराणाम् = देवानाम्, गुरुम् = श्रेष्ठम, देवाधिदेव मित्यर्थः । दैत्यानाम् = दानवानाम्, निधनकरम्-करोतीति करः, निधनस्य= विनाशस्य करः तम, असुरहन्तारमित्यर्थः । रथाङ्गपाणिम्-रथाङ्गम् = चक्रं पाणौ यस्य स तम्, चक्रायुधमित्यर्थः (व्यधिकरण बहुव्रीहिः, 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इति वार्तिकेन पाणिशब्दस्य परनिपातः ।) शोकार्ता—शोकेन पुत्रभाविनिधनशङ्काजनितदुःखेन आर्ता = पीडिता । शशिवदना—शशी=चन्द्र इव वदनम् = मुखं यस्याः सा, प्रशान्ता = तूष्णीं भूतेत्यर्थः, (एषा देवकी) बाहुभ्याम् = भुजाभ्याम् मन्दरं गिरिमिव = मन्दराख्यं पर्वतमिव, वहन्ती = धारयन्ती, स्वगृहान्निष्क्रामतीति पूर्वेणान्वयः । उपमालङ्कारः । प्रहर्षिणीवृत्तम् तल्लक्षणं यथा-'त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।' इति ॥ ६ ॥

नारदस्ततो भगवन्तं वासुदेवं वर्णयति—अनन्तवीर्य इति । अनन्तवीर्यः— अनन्तम् = असीमम, वीर्यम् = पराक्रमो यस्य सः । कमलायताक्षः-कमले इव

दर्शन करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ । अरे ! यही (तो) भगवती देवकी हैं । माया से शिशु भाव को प्राप्त त्रिलोकीनाथ को लेकर वसुदेव के साथ धीरे-धीरे घर से निकल रही हैं । यह जो—

शोक सन्तप्त चन्द्रमुखी रात में चुप-चाप (अपनी) भुजाओं से, संसार को अभय करने वाले, सुरगुरु, दानवों के संहारकर्त्ता चक्रपाणि को मन्दराचल के समान वहन किए हैं ॥ ६ ॥

ये भगवान् नारायण हैं ।

इनकी शक्ति अनन्त है, कमल दल के समान इनके विशाल नेत्र हैं । ये देवताओं के स्वामी हैं । ये राक्षसों की शक्ति को नष्ट करने वाले हैं । तीनों

त्रिलोककेतुर्जगतश्च कर्ता भर्ता जनानां पुरुषः पुराणः ॥ ७ ॥

हन्तैतदुत्पन्नं कलहस्य मूलम्। यावदहमपि भगवन्तं नारायणं प्रदक्षिणीकृत्य ब्रह्मलोकमेव यास्यामि नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय।

नारायणाय नरलोकपरायणाय
लोकाननाय कमलामललोचनाय।
रामाय रावणविरोचनपातनाय
वीराय वीर्यनिलयाय नमो वराय ॥ ८ ॥

आयते = विस्तृते, अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः, पद्मविशालनेत्रः। सुरेन्द्रनाथः—सुराणाम् = देवानामिन्द्रः सुरेन्द्रः = सुरराजः तस्य नाथः = स्वामी, इन्द्रस्यापि पालयितेत्यर्थः। असुरवीर्यहन्ता-असुराणाम् = दानवानां वीर्यम् = पराक्रमः, तस्य हन्ता = विनाशकः, त्रिलोककेतुः-त्रयाणां लोकानां केतुः = पताकेव, त्रैलोक्यश्रेष्ठ इत्यर्थः। जगतः = संसारस्य, कर्ता = विधाता, जनानाम् = लोकानाम्, भर्ता = पालकः, पुराणः = सनातन. पुरुषः एष भगवान् नारायण इति पूर्वणान्वयः, दृश्यत इति शेषः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिः ॥७॥

नारदो भगवन्तं नारायणं नमस्यति—नारायणायेति। नारायणाय-नाराः जलम् अयनं यस्य तस्मै, क्षीरसागरशायिने विष्णवे इत्यर्थः। नरलोकपरायणाय–नरलोके = मानवलोके, तद्रक्षणे इत्यर्थः, परायणः = तत्परः तस्मै। लोकाननाय–लोकानाम् आननम् = मुखम्, श्रेष्ठ इत्यर्थः तस्मै। कमलामललोचनाय–कमले इव अमले = स्वच्छे सुन्दरे इत्यर्थः, लोचने = नेत्रे यस्य तस्मै। रावणविरोचनपातनाय–रावणस्य = लङ्कापतेर्दशमुखस्य, विरोचनस्य = तन्नामकदैत्यस्य च पातनाय = विनाशकारणाय। वीराय = पराक्रमशालिने वीर्यनिलयाय—वीर्यम् = पराक्रमः, तस्य निलयः = आश्रयस्थानम्, तस्मै।

लोकों की पताका हैं, संसार के कर्त्ता और लोकों का भरण-पोषण करने वाले पुराण पुरुष हैं ॥ ७ ॥

हर्ष है (हन्त) यह कलह का मूल उत्पन्न हो गया। तो तुरन्त मैं भी भगवान् नारायण की प्रदक्षिणा कर ब्रह्मलोक को ही जाऊंगा। तीनों लोकों के आदि कारण भगवान् को नमस्कार।

नारायण, मानवलोक (के कल्याण) में तत्पर, लोक-श्रेष्ठ, कमल के समान

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति बालहस्ता देवकी ।)

देवकी—हद्धि, पुत्तअस्स मे महाणुभावत्तणं सूअइस्सन्दाणि जम्मसमअसमुब्भूदाणि महाणिमित्ताणि पच्चक्खीकरअन्ती अवि कंसहदअणिसंसत्तणं चिन्तअन्ती सुट्ठु ण पच्चआमि मन्दभाइणी। कहिं णु गदो अय्यउत्तो। (परिक्रम्य अग्रतो विलोक्य) अम्मो, एसो अय्यउत्तो हरिसविम्हअफुल्लणअणो इदो एव्व आअच्छदि। [हा धिक्, पुत्रकस्य मे महानुभावत्वं सूचयिष्यन्ती जन्मसमयसमुद्भूतानि महानिमित्तानि प्रत्यक्षीकुर्वत्यपि कंसहतकनृशंसत्वं चिन्तयन्ती सुष्ठु न प्रत्येमि मन्दभागिनी। क्व नु गत आर्यपुत्रः। अम्मो, एष आर्यपुत्रो हर्षविस्मयफुल्लनयन इत एवागच्छति।]

(ततः प्रविशति वसुदेवः)

वसुदेवः—(सविमर्शम्) भोः ! किं नु खल्विदम्,

वराय = श्रेष्ठाय। रामाय = दाशरथये। नमः = प्रणतिः (अस्त्विति शेषः)। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

महानिमित्तानि = शुभशकुनानि। प्रत्यक्षीकुर्वती = पश्यन्ती। सुष्ठु न प्रत्येमि = सम्यङ् न विश्वसिमि। मन्दभागिनी-मन्दचासौ भागः अस्त्यस्या इति नित्ययोगे मतुबर्थे इनिः, स्त्रियां च ङीप्। अम्मो-आश्चर्यसूचकमव्यय पदम्। हर्षविस्मयफुल्लनयनः—हर्षेण = पुत्रजन्मजनितमोदेन, विस्मयेन =

स्वच्छ (सुन्दर) नेत्रों वाले, रावण और विरोचन का संहार करने वाले, पराक्रम के आगार बलवान् श्रेष्ठ राम को नमस्कार है ॥ ८ ॥

(चला जाता है।)

(तदनन्तर हाथों में बालक को लिए देवकी प्रवेश करती है।)

देवकी—हाय ! धिक्कार है, यद्यपि जन्म के समय में हुए, मेरे प्रिय पुत्र की महत्ता सूचित करने वाले शुभ शकुनों को प्रत्यक्ष देख रही हूँ, फिर भी मुझ मन्द भाग्य वाली को निगोड़े कंस की क्रूरता को सोच कर पूर्ण विश्वास नहीं हो रहा है। आर्यपुत्र कहाँ गए ? अरे ! हर्ष और विस्मय से विकसित नेत्र वाले ये आर्यपुत्र इधर को आ रहे हैं।

(तदनन्तर वसुदेव प्रवेश करते हैं।)

वसुदेव—(विचार पूर्वक) अजी ! ये सब क्या है ?

भ्रमति नभसि विद्युच्चण्डवातानुविद्धै-
र्नवजलदनिनादैर्मेदिनी सप्रकम्पा ।
इह तु जगति नूनं रक्षणार्थं प्रजाना-
मसुरसमितिहन्ता विष्णुरद्यावतीर्णः ॥ ९ ॥

(विलोक्य) एषा देवकी,

अगणितपरिखेदा याति षण्णां सुताना-
मपचयगमनार्थं सप्तमं रक्षमाणा ।

शुभशकुनदर्शनजनिताश्चर्येण च फुल्ले = विस्फारिते, लोचने = नयने यस्य सः ।

वसुदेवो निमित्तं पश्यन् विमृशति—भ्रमतीति । नभसि = आकाशे, विद्युत् = तडित्, भ्रमति = इतस्ततो विद्योतत इत्यर्थः । चण्डवातानुविद्धैः–चण्डेन = तीव्रेण, वातेन = वायुना अनुविद्धाः = संयुक्ताः तैः, नवजलदनिनादैः-नवानाम् = नूतनानाम्, जलसंभृतानामित्यर्थः, जलदानाम् = मेघानां निनादैः = गर्जितैः । मेदिनी = पृथिवी । सप्रकम्पा = प्रकम्पेन सहिता (वर्तते) सातिशयं कम्पत इत्यर्थः । तु=इदानीं चेत्यर्थः । इह जगति=अस्मिन् मर्त्यलोके । नूनम्= निश्चयेन, प्रजानाम् = जनानाम् ('प्रजा स्यात्सन्ततौ जने' इत्यमरः) रक्षणार्थम्= परित्राणार्थम् । अद्य = अस्मिन् दिने । असुरसमितिहन्ता -असुराणाम्= राक्षसानाम्, समितिः = समूहः, तस्याः हन्ता=विनाशकः, अवतीर्णः = प्रादुर्भूतः । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं च यथा – 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' । इति ॥ ९ ॥

देवकीं विलोक्य वसुदेवो वर्णयति—अगणित परिखेदेति–(एषा देवकी) षण्णाम्=षट्संख्याकानां सुतानाम्=पुत्राणाम्, अपचयः=हानिः, तस्य गमनम्=दूर भवनम्, तदर्थम्, अनेनैव पुत्रेण षट्पुत्राणां हानिर्दूरो भवत्विति

आकाश में बिजली कौंध रही है, तीव्र वायु से संयुक्त नूतन मेघों के गर्जन से पृथ्वी अत्यन्त कांप रही है । और अब निश्चय ही इस संसार में लोक रक्षा के लिए असुर-समूह को विनष्ट करने वाले विष्णु भगवान् ने अवतार ग्रहण किया है ॥ ९ ॥

(देख कर) यह देवकी,

छः पुत्रों की हानि के दूर हो जाने के लिए सातवें की रक्षा करने वाली

वहुगुणकृतलोभा जन्मकाले निमित्तैः
सुत इति कृतसंज्ञं कंसमृत्युं वहन्ती ॥ १० ॥

देवकी—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

वसुदेवः—देवकी ! अर्धरात्रः खलु वर्तते । प्रसुप्तो मथुरायां सर्वो जनः । तस्माद् यावन्न कश्चित् पश्यति, तावद् वालं गृहीत्वाऽपक्रामामि ।

देवकी—कहिं अय्यउत्तो इमं णइस्सदि । [क्वार्यपुत्र इमं नेष्यति ।]

तदर्थमिति भावः । सप्तमम् = कंसेन निहतेभ्यः षड्भ्यः पुत्रेभ्योऽनन्तरम् तद्वध्यमिमं सप्तमं पुत्रम् । रक्षमाणा=रक्षन्ती ('रक्षमाणा' इति शानजन्तोऽपाणिनीयप्रयोगः, रक्षधातोः परस्मैपदत्वेन शानचोऽप्राप्तेः ।) । जन्मकाले=जन्म समये, अस्य पुत्रस्येति भावः । निमित्तैः= शुभशकुनैः, वहुगुणकृतलोभा-वहुभिर्गुणैः कृतः लोभो यस्यास्तथाभूता, अयं पुत्रो वहुगुणयुक्तो भविष्यतीति लोभं गतेति भावः । सुत इति = पुत्र इति, कृतसंज्ञम्—कृता संज्ञा = अभिधानम् यस्य तम्, कंसमृत्युम्=कंसकालम् । वहन्ती = धारयन्ती, अगणितपरिखेदान-गणितः=तिरस्कृत इत्यर्थः, परिखेदः=परिश्रान्तिः यया सा, याति=गच्छति । अत्र कंसमृत्युहेतोः कृष्णस्य कंसमृत्युत्वेनाभिधानात् हेतुरलङ्कारः । 'अभेदेनाभिधा हेतुर्हेतोर्हेतुमता सह' इति तल्लक्षणात् । मालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

वसुदेव इति । अर्धरात्रः—रात्रेरर्धमिति अर्धरात्रः=निशीथकालः । 'अर्धं नपुंसकम्' इति षष्ठी तत्पुरुषे 'अहस्सर्वैकदेश संख्यात पुण्याच्च रात्रेः' इति अच् समासान्तः । मथुरायाम्-मथुरा नाम कंसस्य राजधानी तस्याम् । अपक्रामामि =सुदूरम् गच्छामि ।

जन्म समय में शुभ शकुनों के कारण (पुत्र के) अनेक गुणों से लुब्ध होकर 'पुत्र' ऐसा नाम रखकर कंस की मृत्यु को थकावट की परवाह न करती हुई लिए जा रही है ॥ १० ॥

देवकी—(निकट जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव—देवकी ! आधी रात की वेला है । मथुरा में सब लोग सोए हुए हैं । तो जब तक कोई देखता नहीं, तब तक वालक को लेकर मैं चलता हूँ ।

देवकी—आर्यपुत्र इसे कहाँ ले जाइएगा ?

वसुदेवः—देवकि ! सत्यं ब्रवीषि। अहमपि न जाने। किन्तु एकच्छत्रच्छायां पृथिवीं समाज्ञापयति दुरात्मा कंसः। तत् क्व नु खल्वयमायुष्मान् नेतव्यो भविष्यति। अथवा यत्र दैवं विधास्यति, तत्र बालं गृहीत्वाऽपक्रामामि।]

देवकी—अय्यउत्त। इच्छामि दाव णं सुदिट्ठं कत्तुं। [आर्यपुत्र ! इच्छामि तावदेनं सुदृष्टं कर्तुम्।]

वसुदेवः—अयि अतिपुत्रवत्सले !

> किं द्रष्टव्यः शशाङ्कोऽयं राहोर्वदनमण्डले।
> त्वयाऽप्यस्य सुदृष्टस्य कंसो मृत्युर्भविष्यति ॥ ११ ॥

देवकी—सव्वहा ण भविस्सदि। [सर्वथा न भविष्यति।]

एकच्छत्रच्छायाम्-एका छत्रच्छाया यस्यां ताम्, एकेनैव छत्रेण व्याप्तामित्यर्थः। पृथिवीं समाज्ञापयति=भूमिं शास्ति।

वसुदेवः पुत्रं द्रष्टुमुत्सुकां देवकीं प्रबोधयति—किं द्रष्टव्यः इति। राहोः=राहुर्नाम राक्षसः, विप्रचित्तास्य सिंहिकायाश्च पुत्रः, तस्य। वदनमण्डले=मुखमण्डले। अयम्=वालः कृष्ण इत्यर्थः। शशाङ्कः=चन्द्रः, किम्=किमर्थम्, द्रष्टव्यः=द्रष्टुं योग्यः। त्वया=देवक्या, सुदृष्टस्य=सम्यगवलोकितस्यापि, अस्य वालकस्य, कंसः=कंसो नाम तव देवक्या भ्राता। मृत्युः=निधनकर्ता, भविष्यति। अत्र कंस-कृष्णयो राहुशशाङ्काभ्याम् भेदेनाध्यवसायात् भेदेऽप्यभेदरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥११॥

वसुदेव—देवकी ! सच कह रही हो। मुझे भी नहीं मालूम; क्योंकि दुष्ट कंस का सारी पृथ्वी पर एकछत्र राज्य है तो इस चिरंजीवी को कहाँ ले जाना चाहिए। अथवा भाग जहाँ पहुँचाएगा वहाँ बच्चे को लेकर जाऊँगा।

देवकी आर्यपुत्र ! तब तक इसे जी भर देख लेना चाहती हूँ।

वसुदेव – अरी पुत्र पर अतिशय स्नेह रखने वाली !

राहु के मुख में (स्थित) इस चन्द्र को किसलिए देखना चाहिए। तुम्हारे द्वारा जी भर के देखे गये भी इस (बालक) का कंस काल होगा (ही)॥ ११ ॥

देवकी—(ऐसा) बिल्कुल नहीं होगा।

वसुदेवः—यद् भवत्याऽभिहितं, तत् सर्वदैवतैरभिहितं भवतु। आनय।

देवकी—गह्लदु अय्यउत्तो। [गृह्णात्वार्यपुत्रः।]

वसुदेवः—(गृहीत्वा) अहो गुरुत्वं बालस्य। साधु,

> विन्ध्यमन्दरसारोऽयं बालः पद्मदलेक्षणः।
> गर्भे यया धृतः श्रीमानहो धैर्यं हि योषितः॥ १२॥

देवकि! प्रविश त्वमभ्यन्तरम्।

देवकी—एसा गच्छामि मन्दभाआ (निष्क्रान्ता।) [एषा गच्छामि मन्दभागा।]

वसुदेवः—एषा देवकी,।

बालकं गृह्णन् वसुदेवस्तस्य गुरुतां प्रशंसन्नाह---विन्ध्येति। पद्मदलेक्षण:-पद्मदले=कमलपत्रे इव ईक्षणे =नेत्रे यस्य सः, कमललोचन इत्यर्थः। अयं बालः=शिशु, विन्ध्यमन्दरसारः-विन्ध्यश्च मन्दरश्च इति विन्ध्यमन्दरौ तत्तन्नामानौ पर्वतौ, तयोः सार=सामर्थ्यम्, गाम्भीर्यमिति यावत् स इव सारो यस्य सः, विन्ध्यगिरिरिव मन्दरगिरिरिव च गुरुत्वसम्पन्न इति भावः। यया= स्त्रिया, (अयं) श्रीमान्=शोभासम्पन्नः, गर्भे=उदरे, धृतः=ऊढः, हि= निश्चयेन, (तस्याः) योषितः=स्त्रियाः, देवक्या इत्यर्थः। धैर्यम्=सामर्थ्यम्, अहो=आश्चर्यम्, आश्चर्यजनकमिति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १२॥

वसुदेव—जो आप ने कहा, ईश्वर करे सब देवताओं का (भी) यही कथन हो। (बालक को) ले आओ।

देवकी—आर्यपुत्र (इसे) लें।

वसुदेव—(लेकर) अहो! कितना गम्भीर बालक है! बहुत अच्छा, यह कमलपत्र के समान नेत्रों वाला बालक विन्ध्याचल और मन्दराचल के समान गम्भीर है। जिसने इस शोभाशाली (बालक) को गर्भ में धारण किया उस स्त्री का धैर्य आश्चर्यजनक है॥ १२॥

देवकी! तुम भीतर चली जाओ।

देवकी– यह मैं अभागिन जा रही हूँ।

वसुदेव—यह देवकी,

हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति ।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधाकृता ॥ १३ ॥

हन्त प्रविष्टा देवकी । यावदहमपि नगरद्वारं संश्रयामि । एष भोः,
प्रथमसुतविनाशजातमन्युर्नृपतिभयाकुलितः प्रगृह्य बालम् ।
त्वरिततरमिह प्रयामि मार्गे गिरिमिव मन्दरमुद्वहन्भुजाभ्याम् ॥१४॥

बालकं नयन् वसुदेवो गृहाभ्यन्तरं गच्छन्तीं देवकीमुपवर्णयन्नाह—हृदयेनेहेति । एषा देवकी, इह = अत्र हृदयेन, तत्र अङ्गैः = शरीरावयवैः, देहेनेति भावः, द्विधाभूतेव—भागद्वयविभक्ता इव गच्छति । एषा अत्र बालकेन सह हृदयेन गच्छति, तत्र देहेन च गच्छति । इत्थमेकैव देवकी द्विधाभूतेव गच्छतीति मन्ये । यथा = येन प्रकारेण, चन्द्रलेखा = चन्द्रकला द्विधाकृता सती नभसि = आकाशे, तोये = जले च गच्छति । उपमोत्प्रेक्षयोः परस्पर सापेक्ष्येण स्थितेः संकरः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१३॥

हन्तेति । हन्त-खेदसूचकमव्ययपदम् । नगरद्वारं संश्रयामि = नगरद्वारमभिगच्छामीत्यर्थः ।

बालं नयन् वसुदेवः स्वावस्थां वर्णयति—प्रथमसुतेति । प्रथमसुतविनाशजातमन्युः—प्रथमम् = पूर्वम्, सुतानाम्=पुत्राणाम् विनाशः = वधः तस्मात् जातः = समुत्थः मन्युः = शोकः यस्य स तथाभूतः, नृपतिभयाकुलितः—नृपतिः = राजा, कंस इत्यर्थः, तस्माद् यत् भयम् तेन आकुलितः = व्याकुलः सन्, बालम् = शिशुम्, भुजाभ्याम् = बाहुभ्याम्, प्रगृह्य = आदाय, मन्दरं गिरिमिव मन्दराचलमिव, उद्वहन् =नयन्, इह मार्गे=अस्मिन् मार्गे, त्वरिततरम् = शीघ्रतरम्, प्रयामि = गच्छामि । अत्र त्वरिततरप्रयाणे प्रथमसुतविनाशजातमन्युत्वस्य नृपतिभयाकुलितत्वस्य च हेतुत्वेनोपन्यासात् काव्यलिङ्गम्, मन्दरं गिरिमिवेत्यत्रोपमालङ्कारश्च, तयोर्द्वयोर्मिथो नैरपेक्ष्येण संस्थितेः संसृष्टिः ।

यहां हृदय से और वहां शरीर से, दो भागों में बंटी हुई-सी उसी प्रकार जा रही है, जिस प्रकार चन्द्रमा की कला आकाश में और जल में (प्रतिबिम्ब रूप से) दो भागों में बंट जाती है ॥ १३ ॥

हा ! देवकी अन्दर चली गयी । तो मैं भी नगर के द्वार पर पहुंचूं । अरे यह मैं पहले के पुत्रों के विनाश से शोक-सन्तप्त और राजा (कंस) के

(परिक्रम्य) इदं नगरद्वारम् । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये प्रसुप्तो मधुरायां सर्वो जनः । यावदपक्रामामि (परिक्रम्य) निष्क्रान्तोऽस्मि मधुरायाः । अहो वलवांश्चायमन्धकारः । सम्प्रति हि,

लिम्पतीव तमोऽगांनि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १५ ॥

अहो तमसः प्रभुत्वम् ।

अप्रकाशा इव दिशो घनीभूता इव द्रुमाः ।

पुष्पिताग्रावृत्तम् तल्लक्षणं च यथा-'अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' । इति ॥ १४ ॥

वसुदेवो रात्रेरन्धकारं वर्णयति—लिम्पतीवेति । तमः = गाढान्धकारः, अङ्गानि = शरीरावयवान्, लिम्पतीव = आच्छादयतीव । नभः = आकाशम्, अञ्जनम् = कज्जलम्, वर्षतीव = वर्षणं करोतीव । दृष्टिः = प्रेक्षणशक्तिः, असत्पुरुषसेवेव = दुष्टजनानां शुश्रूषेव, निष्फलताम् = व्यर्थताम्, गता = याता 'लिम्पतीव' इत्यत्र 'वर्षतीव' इत्यत्र च क्रियोत्प्रेक्षा । 'असत्पुरुषसेवेव' इत्यत्रोपमाऽलङ्कारः । तेषां परस्परनैरपेक्ष्येण संस्थितेः संसृष्टिः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१५॥

तमसः = अन्धकारस्य, प्रभुत्वम् = प्रभावः अहो इत्याश्चर्ये ।

वसुदेव स्तमसः प्रभुत्वं प्रतिपादयति-अप्रकाशा इति । दिशः = आशा, अप्रकाशाः न प्रकाशो विद्यते यासु ताः, प्रकाशशून्या इव । द्रुमाः=वृक्षाः, घनीभूताः

भय से व्याकुल हो वालक को वाहुओं से लेकर मन्दराचल के समान उठाये हुए इस मार्ग में अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक जा रहा हूँ ॥ १४ ॥

(घूम कर) यह नगर का द्वार है । तो प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश कर) अरे ! मथुरा में सब लोग सोये हुए हैं । तो भागता हूँ । (घूमकर) मथुरा से मैं निकल चुका हूँ । अहो ! यह कितना घना अन्धकार है । इस समय—

अन्धकार मेरे अङ्गों को लिप्त-सा कर रहा है, मानों आकाश अञ्जन की वर्षा कर रहा है और दुष्टपुरुष की सेवा के समान मेरी दृष्टि निष्फल हो गयी है ॥ १५ ॥

अन्धकार का कैसा प्रभाव है !

सुनिविष्टस्य लोकस्य कृतो रूपविपर्ययः ॥ १६ ॥

नाहं गन्तुं समर्थः। अये दीपिकालोकः। किन्नु खलु दुरात्मा कंसो ममापक्रमणं ज्ञात्वा दीपिकाभिः परिवृतो मां ग्रहीतुमागतो भवेत्। भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि। (खड्गमुत्कोशयति। निवृत्यावलोक्य) अये न कश्चिद् दृश्यते। आ,

तमसा संवृते लोके मम मार्गमपश्यतः।
अपक्रमणहेतोस्तैस्तु कुमारेण प्रभा कृता ॥ १७ ॥

अघना घनाभूता इति घनीभूताः = निविडतां गता इव (दृश्यन्ते) (अभूत तद्भावे च्विः) सुनिविष्टस्य = सुस्थितस्य, लोकस्य = संसारस्य, रूपविपर्ययः = स्वरूप विपर्यासः, कृ ाः = विहित. । घनान्धकारेण जगद् विपरि-वर्तितमिव प्रतीयत इति भावः उत्प्रेक्षालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १६ ॥

नाहमिति। अहम् = वसुदेव इत्यर्थः। गन्तुं न समर्थः = न शक्तो गन्तुम्, अन्धकारस्य निविडत्वादिति भावः। नु = इति वितर्के। अपक्रमणम् = पलायनम्। दीपिकाभिः परिवृतः = दीपकवाहकैर्जनैः परिवेष्टित इत्यर्थः। माम् = वसुदेवम, ग्रहीतुम = वन्दिनं कर्तुम्। आगतः = सम्प्राप्तः। दर्पप्रश-मनम् = दर्पस्य = गर्वस्य, प्रशमनम् = विनाशमित्यर्थः। उत्कोशयति = कोशा-न्निःसारयति। निवृत्त्य = परावृत्य। आ = विस्मयादिद्योतकमव्ययपदम्।

वसुदेव आलोकहेतुं निरूपति—तमसेति। लोके = संसारे, तमसा = अन्धकारेण संवृते = आच्छन्ने सति (भावेसप्तमी)। मार्गमपश्यतः = पन्थान मनवलोकयतः, मम = वसुदेवस्य। अपक्रमणहेतोः- अपक्रमणस्य = पलायनस्य

दिशायें प्रकाश-रहित-सी, वृक्ष परस्पर सटे-से (मालूम होते हैं) सुन्दर स्थित संसार का (इस अन्धकार ने) रूप ही बदल दिया है ॥ १६ ॥

मैं जाने में समर्थ नहीं हूँ। अरे! यह मशाल का प्रकाश! क्या दुष्ट कंस मेरे भागने का पता पाकर मशाल वालों से परिवृत हो मुझे पकड़ने आ गया है! अच्छा मैं इसका गर्व चूर करता हूँ (तलवार म्यान से खींचता है। लौटकर और देखकर) अरे, कोई दिखायी नहीं पड़ता है। ओ,

संसार के अन्धकाराच्छन्न हो जाने पर मुझे मार्ग सूझ नहीं पड़ता था,

एष मार्गः । यावदपक्रामामि । अये इयं भगवती यमुना कालवर्ष-सम्पूर्णा स्थिता । अहो व्यर्थो मे परिश्रमः । किमिदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् ।

इमां नदीं ग्राहभुजङ्गसङ्कुलां
महोर्मिमालां मनसापि दुस्तराम् ।
भुजप्लवेनाशु गतार्थविक्लवो
वहामि सिद्धिं यदि दैवतं स्थितम् ॥ १ ॥

हेतोः ('षष्ठी हेतुप्रयोगे' इति षष्ठी) कुमारेण = अनेन बालकेन, प्रभा = प्रकाशः, कृता = विहिता । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

एष मार्ग इति । अपक्रामामि = पलाये । अये = खेदद्योतकमव्ययपदम् । कालवर्षसम्पूर्णा-काले = समये प्रावृषि इत्यर्थः, वर्षः = वर्षणम्, तेन सम्पूर्णा = संभृता । अहोखेदसूचकमव्ययपदम् । व्यर्थः = निष्फलः । दृष्टम् = ज्ञातमित्यर्थः ।

वसुदेवश्चिन्तितमुपायमाह—इमामिति । दैवतम्=भाग्यम्, स्थितम्=अनुकूलमित्यर्थः, यदि = चेत्, तर्हि ग्राहभुजङ्गसङ्कुलाम्—ग्राहैः = मकरैः, भुजङ्गैः = व्यालैश्च सङ्कुलाम् = व्याप्ताम्, महोर्मिमालाम्—महती = भीषणेत्यर्थः, ऊर्मीणाम् = वीचीनां, माला = श्रेणी यस्यां ताम् । मनसापि = चेतसापि, दुस्तराम् दुःखेन तरीतुं शक्याम् । इमाम् = पुरोवर्तिनीम्, नदीम् = कालिन्दीम्, भुजप्लवेन = भुजावेव प्लवः = नौका, तेन बाहुनौकया, गतार्थविक्लवः—गतः = नष्टः, अर्थः = उद्देशो यस्य स गतार्थः, स चासौ विक्लवः = कष्टग्रस्तश्चेति तथोक्तः, नष्टोद्देश्यो व्याकुलश्चेत्यर्थः । सिद्धिम् = सफलताम्, आशु = शीघ्रम् । वहामि = प्राप्नोमि । इयं यमुना मकरसर्पादिभयंकरजन्तुमि-

---

किन्तु मेरे भागने के लिए कुमार ने (यह) प्रकाश कर दिया ॥ १७ ॥

यह मार्ग है । तो भागता हूँ । अरे ! यह भगवती यमुना इस वर्षाऋतु में वर्षा के जल से पूरी भरी हुई है । ओह ! मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया । अब क्या करूँगा ? अच्छा समझ गया ।

यह नदी मकर-व्यालादि जन्तुओं से व्याप्त और उत्ताल तरंगों वाली है, इसे पार करने की बात मन में भी सोची नहीं जा सकती है (अतएव) मेरा

(तथा कृत्वा सविस्मयम्) हन्त द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम्, इतः प्रधावति। दत्तो मे भगवत्या मार्गः। यावदपक्रामामि। (अवतीर्य) निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः! अये हुङ्कारशब्द इव श्रूयते। व्यक्तं घोषसमीपे वर्तते मन्दभाग्यः। आ, अत्र च समीपघोषे मम वयस्यो नन्दगोपः प्रतिवसति। स खलु मया कंसाज्ञया निगलितो न कशाभिहतश्च। यावत् प्रविशामि। अथवा रात्रौ वसुदेवः प्रविष्ट इति शङ्किता

र्व्याप्ता उत्तालतरङ्गोपेता च मनसापि तरीतुमशक्या, तन्मे प्रयोजनं नष्टमभूत् वैकल्यं च गतोऽस्मि। ईदृशोऽप्यहं यदि दैवमनुकूलं वर्तते तर्हि भुजनौकया इमां यमुनां तीर्त्वा कार्यसिद्धिं करिष्यामीति वसुदेवोक्तेरभिप्रायः॥ वंशस्थविलं वृत्तम्। तल्लक्षणं च यथा-वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ।' इति॥ 'भुजप्लवेन' इत्यत्र रूपकालङ्कारः। अपि च 'ग्राहभुजङ्गसङ्कुलाम्' इति 'महोर्मिमालाम्' इति च पदस्य, नद्याः मनसापि दुस्तरत्वे हेतुत्वेनोपन्यासात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः। पूर्वार्द्धस्यापि च गतार्थविक्लवत्वे हेतुत्वेनाभिधानात् काव्यलिङ्गम्। तेषां च संसृष्टिः॥ १८॥

हन्त द्विधेति। हन्त = हर्षद्योतकमव्ययपदम्। द्विधा = भागद्वयेन, छिन्नम् = विभक्तम्। इतः प्रधावति = अपरतः प्रवहति। भगवत्या = यमुनयेत्यर्थः। अपक्रामामि = पारं गच्छामि। अवतीर्य = पारं गत्वा। व्यक्तम् = सुस्पष्टम्। घोषसमीपे—घोषः = गोपानां वसतिः, तस्य समीपे। मन्दभाग्यः = मन्दं भाग्यं यस्य सः, वसुदेव इत्यर्थः। आ = स्मृतिद्योतकमव्ययपदम्। वयस्यः = सखा। निगलितः = शृङ्खलया बद्धः। कशाभिहतः = कशया अभि-

---

प्रयोजन नष्ट हो चुका और मैं विकल हूँ तथापि यदि भाग्य ने साथ दिया तो मैं अपनी भुजा रूपी नौका से (इसे पार करने में) शीघ्र सफलता पाऊँगा॥ १८॥

(वैसा कर, विस्मय के साथ) हर्ष है, जल दो भागों में विभक्त हो गया। इधर ठहरा हुआ है और इधर बह रहा है। भगवती (यमुना) ने मुझे मार्ग दे दिया तो पार जाता हूँ। (पार होकर) मैं यमुना से निकल चुका। अरे! हुङ्कार की ध्वनि-सी सुनायी देती है। लगता है कि यह अभागा (वसुदेव) गोपों की वस्ती के पास ही स्थित है। ओ, इसी समीपवर्ती गोपों की वस्ती में मेरा

गोपालका भविष्यन्ति। तस्मादिह न्यग्रोधपादस्याधस्तात् प्रभातवेलां रजन्याः प्रतिपालयामि। भो भो न्यग्रोधदेवताः! यद्ययं बालो लोकहितार्थं कंसवधार्थं वृष्णिकुले प्रसूतश्चेद्, घोषात् कश्चिदिहागच्छतु। न, न, मम वयस्यो नन्दगोप एवागच्छतु।

(ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा नन्दगोपः।)

नन्दगोपः—(सशोकम्) दालिए! दालिए! किं दाणिं णो गेहलच्छिं ण लभिअ तदो णो उज्झिअ णं गच्छसि। सम्पदि हि महिसपद-सम्पादपदिसं अहो बलिअं अन्धआलं।

दुहिणविणट्ठजोहा लच्छी वट्टइ णिमीलिआकाला।
सम्पाउदप्पपुत्ता णीलणिवसणा जहा गोवी॥ १६॥

अज्ज हि अड्ढलत्ते अम्हाणं कुडुम्बिणीए जसोदाए पसूदा इअं च दाली तस्सिंपिणी जादमत्ता एव्व ओग्गदप्पाणा संवुत्ता। पुव्वे अम्हाणं घोसस्स उइदो इन्द-यण्णो णाम उस्सुवो भविस्सदि। ता मा खु एदं दुक्खं गोवजणाहि अणुहूअमाणं त्ति मए एक्काइणा णिगलगुलुचलणेण इमं दालिअं गहिअ णिग्गदो म्हि। जसोदा वि

हतः = अथवा अभिहतः = ताडितः। न्यग्रोधपादस्य = वटवृक्षस्य। प्रतिपालयामि = प्रतीक्षे।

मित्र नन्दगोप रहता है। उसे मैंने कंस की आज्ञा से जंजीर में बाँधा था, किन्तु कोड़े नहीं लगाये थे। तो प्रवेश करता हूँ। अथवा रात में वसुदेव घुस आया है, गोपों को ऐसी शङ्का हो जायगी, अतः यहाँ वटवृक्ष के नीचे प्रभात होने की प्रतीक्षा करूँगा। हे हे वटदेवता! यदि यह बालक लोककल्याण के लिए कंस को मारने के लिए वृष्णि कुल में उत्पन्न हुआ हो तो गोपों की बस्ती से कोई यहाँ आ जाय। नहीं, नहीं मेरा मित्र नन्दगोप ही आवे।

(तदनन्तर बच्ची को लेकर नन्दगोप प्रविष्ट होता है।)

नन्दगोप—(शोक के साथ) पुत्रि! पुत्रि! आज तुम हमारी गृहलक्ष्मी के आनन्द का उपभोग न करके, क्यों हम लोगों को छोड़कर जा रही हो। इस समय, अहा! सैकड़ों भैंसों के समूह के समान प्रगाढ़ अन्धकार है।

तवष्विणी णैव जाणादि दालओ वा दालिआ वा पपूद त्ति मोहं गदा। दालिए! दालिए!! [दारिके! दारिके! किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि। संप्रति हि महिषशतसंपातसदृशोऽहो बलवानन्धकारः।

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
संप्रावृतप्रसुप्ता नीलनिवसना यथा गोपी॥ १९॥

अद्य ह्यर्धरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या यशोदया प्रसूतेयं च दारी तपस्विनी जातमात्रैवापगतप्राणा संवृत्ता। श्वोऽस्माकं घोषस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो

दारिके = पुत्रि। किम् = किमर्थम्। इदानीम् = सम्प्रति। नः = अस्माकम्। रन्त्वा = आनन्दमनुभूय। न उज्झित्वा—नः = अस्मान् उज्झित्वा = परित्यज्य। ननु = सम्बोधने प्रयुक्तमव्ययपदम्। महिषशतसंपातसदृशः—महिषानाम् = सैरिभाणाम् शतानि = शतसङ्ख्याकानि तेषां संपातः = सङ्घः तेन सदृशः। बलवान् = प्रगाढ इत्यर्थः।

अन्धकारप्रभुत्वं वर्णयति—दुर्दिनेति। दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना—दुर्दिनेन = मेघाच्छन्नेन दिनेन विनष्टा = अदृष्टा ज्योत्स्ना = चन्द्रिका यस्यां सा। ('चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः)। निमीलिताकारा—निमीलितः = प्रच्छन्नः आकारः = स्वरूपं यस्याः सा। रात्रिः = निशा। यथा = येन प्रकारेण, नीलनिवसना—नीलम् = श्यामलम्, निवसनम् = वस्त्रं यस्यास्तथाविधा, संप्रावृतप्रसुप्ता— संप्रावृता—सम्यक् प्रावृता = आच्छादिता, सा चासौ प्रसुप्ता च = कृतशयना च गोपी = गोपस्य वधूटी वर्तते। उपमाऽलङ्कारः। आर्या जातिः। तल्लक्षणं यथा—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादशद्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥इति॥ १९॥

अद्य ह्यर्धरात्र इति। अद्य हि = अस्मिन्नेव दिने। अर्धरात्रे = निशीथे। अस्माकम् = नन्दगोपस्येत्यर्थः। कुटुम्बिन्या = पत्न्या। प्रसूता = जनिता।

मेघाच्छन्न होने के कारण चाँदनी से रहित सब आकारों को छिपाने वाली रात, नीले वस्त्रों से अङ्गों को ढक कर सोती हुई गोपी के समान लगती है॥१९॥

आज ही आधी रात में हमारी पत्नी यशोदा से उत्पन्न यह बेचारी कन्या

भविष्यति। तद् मा खल्वेतद् दुःखं गोपजनैरनुभूयमानमिति मयैकाकिना निगलगुरुचरणेनेमां दारिकां गृहीत्वा निर्गतोऽस्मि। यशोदापि तपस्विनी नैव जानाति दारको वा दारिका वा प्रसूत इति मोहं गता। दारिके! दारिके!।]

वसुदेवः—को न खल्वयं रात्रौ परिदेवयति। अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी।

नन्दगोपः—किं दाणिं णो गेहलच्छिं ण लमिअ तदो णो उज्झिअ णं गच्छसि। (किमिदानीं नो गेहलक्ष्म्यां न रन्त्वा ततो न उज्झित्वा ननु गच्छसि।)

वसुदेवः—स्वरेण प्रत्यभिजानामि। मम वयस्येन नन्दगोपेन

इयम् = बाहुभ्यामूह्यमाना। दारी = पुत्री। तपस्विनी = दयनीया वराका। अपगतप्राणा - अपगताः = विनष्टाः प्राणा यस्याः सा, मृतेत्यर्थः। संवृत्ता = जाता। श्वः = आगामिनि दिवसे। घोषस्योचितः = गोपग्रामयोग्यः। निगलगुरुचरणेन—निगलः = पादबन्धनम् (निगडोऽपि डलयोरभेदात्) तेन गुरु= भारयुक्तौ चरणौ यस्य तेन। एकाकिना = असहायेन। मया = नन्दगोपेन। दारिकाम् = पुत्रीम्। यशोदेति। तपस्विनी = वराका, 'अस्मायामेधास्रजोविनिः' इति विनिः, स्त्रियां ङीप् (ऋन्नेभ्यो ङीप्)।

परिदेवयति = विलपति। सब्रह्मचारी = तुल्यः। तपस्वी = वराकः। प्रत्यभिजानामि = परिचिनोमि। शब्दापयामि = आह्वयामि। आपः=

पैदा होते ही मर गयी। कल हमारे गोपग्राम के योग्य इन्द्रयज्ञ नामक उत्सव होगा अतएव गोप लोगों के द्वारा इस दुःख का अनुभव न किया जाय, ऐसा सोचकर इस बच्ची को लेकर मैं अकेला बेड़ी से बोझिल चरणों से निकल आया हूँ। यशोदा भी बेचारी नहीं जानती कि पुत्र उत्पन्न हुआ है या पुत्री, और वह मूच्छित हो गयी। (हा) पुत्री! पुत्री!

वसुदेव—कौन यह रात में विलाप कर रहा है। अवश्य ही हमारी तरह यह बेचारा (दुःखी) है।

नन्दगोप—अरे, क्यों मेरी गृहलक्ष्मी में न रम करके हमें छोड़कर तू जा रही है।

वसुदेव—स्वर से पहचान रहा हूँ। मेरा मित्र नन्द गोप होना चाहिए।

भवितव्यम्। यावच्छब्दापयामि। वयस्य ! नन्दगोप ! इतस्तावत्।

नन्दगोपः—(सभयम्) अविहा को दाणिं मं षुदपुलुवेण विअ षलयोगेण णन्दगोव ! णन्दगोव ! त्ति मं षद्दावेदि। किण्णु लक्खशा वा, आदु पिषाषो वा। ईदिषीए पदिभअलअणीए मदलिआ दालिआ मम हत्थे। किं णु हु कलिष्षं। [अविहा क इदानीं मां श्रुतपूर्वेणेव स्वरयोगेन नन्दगोप ! नन्दगोप ! इति मां शब्दयति। किं नु राक्षसो वा, उत पिशाचो वा। ईदृश्यां प्रतिभयरजन्यां मृता दारिका मम हस्ते। किं नु खलु करिष्यामि।]

वसुदेवः – वयस्य नन्दगोप ! अलमन्यशङ्कया। इतस्तावत्।

नन्दगोपः—(कर्णं दत्त्वा। सावधानम्) अम्मो, षलयोगेण भट्टा वषुदेव त्ति जाणामि। जाव उवषप्पिष्षं। अहव तहि मम किं कय्यं।

प्रापणम् (भावे घञ्) शब्दस्य आपः इति शब्दापः, शब्दापं करोमि इति शब्दापयामि—'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्, णिजन्तात् वर्तमाने लट्।

अविहा = भयद्योतकमव्ययपदम्। शब्दयति = शब्दं करोति, आह्वयतीत्यर्थः। शब्द + √णिच् (तत्करोति तदाचष्टे) + लट्)। प्रतिभयरजन्याम्—प्रतिभया = भीषणा, सा च रजनी = रात्रिः, तस्याम्।

वयस्य = सखे ! अलमन्यशङ्कया—अन्या शङ्का इति अन्यशङ्का तया अलम् (गम्यमानापि क्रिया कारक विभक्तौ प्रयोजिका इति करणत्वात् तृतीया) अन्यशङ्कया साध्यं नास्तीत्यर्थः। अन्यशङ्कां मा कार्षीरितिभावः।

तो पुकारता हूँ। वयस्य ! नन्दगोप ! इधर पहले आओ।

नन्दगोप—(भय के साथ) अरे ! कौन इस समय मुझे, पहले सुनी गई सी आवाज से नन्दगोप ! नन्दगोप ! ऐसा पुकार रहा है। क्या कोई राक्षस है अथवा पिशाच है। इस तरह की भीषण रात्रि में मरी लड़की मेरे हाथ में है। (अब) मैं क्या करूंगा।

वसुदेव—वयस्य नन्दगोप ! दूसरी शङ्का मत करो। इधर (आओ।)

नन्दगोप—(कान लगाकर, सावधानी से) अरे ! आवाज से तो स्वामी

एदिणा कंसस्स लञ्जो वअणं सुणिअ अवलद्धो कसाहिं तालिअ णिअ-लेहिं बद्धो म्हि। ता ण गमिस्सं। अहव धिक्खु मे णिसंसभावं। मम गुणसहस्सं किदं दुक्खे दुक्खइ, सुहे सुहिणो होदि, तहवि सुमलामि लाअसासणेण किदं एक्कबन्धणं। जाव उवसप्पिस्सं। इयं दाली। किं कलिस्सं। होदु एवं दाव कलिस्सं। (उपसृत्यावलोक्य च। (सविस्मयम्) पभादा लअणी। एसो भट्टा वसुदेवो दालअं गह्णिअ ठिठदो।। (उपसृत्य) जेदु भट्टा जेदु। [अम्भो, स्वरयोगेन भर्ता वसुदेव इति जानामि। यावदु-पसर्प्स्यामि। अथवा तत्र मम किं कार्यम्। एतेन कंसस्य राज्ञो वचनं श्रुत्वाऽ पराद्धः कशाभिस्ताडयित्वा निगलैर्बद्धोऽस्मि। तन्न गमिष्यामि। अथवा धिक् खलु मे नृशंसभावम्। मम गुणसहस्रं कृतं, दुःखे दुःख्यति, सुखे सुखी भवति, तथापि स्मरामि राजशासनेन कृतमेकबन्धनम्। यावदुपसर्प्स्यामि। इयं दारी। किं करिष्यामि भवत्वेवं तावत् करिष्यामि। प्रभाता रजनी। एष भर्ता वसुदेवो दारकं गृहीत्वा स्थितः। जयतु भर्ता जयतु।]

अम्भो इत्याश्चर्ये! भर्ता = स्वामी। उपसर्प्स्यामि = समीपं गमिष्यामि। नृशंसभावम् = क्रूरताम्, धिग्योगे द्वितीया। गुणसहस्रम्—गुणानाम् = उपका-राणां सहस्रम्' सहस्रसंख्याका उपकारा इत्यर्थः। दारी = पुत्री।

वसुदेव हैं—ऐसा समझता हूँ। तो समीप चलता हूँ अथवा वहाँ मेरा क्या काम ? इसने कंस राजा का वचन सुनकर मुझे अपराधी मानकर कोड़े लगाकर बेड़ी से जकड़ दिया है। तो नहीं जाऊँगा। अथवा मेरी क्रूरता को धिक्कार। मेरे इसने हजार उपकार किए हैं, मेरे दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होता है, फिर भी राजाज्ञा से किए गए एक उसी बन्धन को ही याद करता हूँ (उपकारों को नहीं) तो समीप जाऊँगा। यह बच्ची क्या करूँगा। अच्छा, तो ऐसा ही करूंगा। (निकट जाकर, देखकर, विस्मय से) सवेरा हो चुका है। ये स्वामी वसुदेव बच्चे को लेकर खड़े हैं। (निकट जाकर) स्वामी की जय हो! जय हो!

वसुदेवः—वयस्य नन्दगोप ! अपि भगवतीभ्यो गोभ्यः कुशलम् ।

नन्दगोपः—आम भट्टा । कुपलं । [आम् भर्तः ! कुशलम् ।]

वसुदेवः—अथ भवतः परिजनस्य कुशलम् ।

नन्दगोपः—परिजणमिति आम भट्टा ! कुशलं । [परिजनमिति । आम् भर्तः ! कुशलम् ।]

वसुदेवः—वयस्य ! किमिदानीं प्रच्छाद्यते ।

नन्दगोपः—भट्टा ! णत्थि किञ्चि [भर्तः ! नास्ति किंचित् ।]

वसुदेवः—मम खलु प्राणैः शापितः स्याद्, यदि सत्यं न ब्रूयात् ।

नन्दगोपः —का गई । पुणादु भट्टा । अज्ज अड्ढलत्ते अम्हाणं कुडुम्बिणीए, ण हि ण हि, तुम्हाणं दासीए जसोदाए पसूदा इअं च दाली तवण्णिणी जादमत्ता एव्व ओग्गदप्पाणा पंवुत्ता । सुवे अम्हाणं घोषप्प उइदो इन्दयञ्ञो णाम उप्पवो भविष्पदि । ता मा खु एदं दुक्खं गोवजणेहि अणुहूअसाणं त्ति मए एक्काइणा णिगलगुलुचलणेण इमं दालिअं गहिअ णिग्गदो म्हि । जसोदा वि तवण्णिणी णेव जाणादि

वसुदेव इति । गोभ्यः कुशलम्—गोभ्य इति चतुर्थ्यन्तं पदम्, गवामित्यर्थः । आशिष्येव कुशलपदयोगे चतुर्थी विधीयते (चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः) नात्राशीः, तत् षष्ठ्येवोचिता ।

वसुदेव—मित्र नन्दगोप ! भगवती गौओं का कुशल तो है ?

नन्दगोप—हाँ, स्वामी ! कुशल है ।

वसुदेव—आप के परिवार का कुशल है ?

नन्दगोप—परिवार ? हाँ, स्वामी ! कुशल है ।

वसुदेव—मित्र ! इस समय छिपा क्या रहे हो ?

नन्दगोप—स्वामी ! कुछ नहीं ।

वसुदेव—तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध, यदि सच-सच न कहो ।

नन्दगोप—क्या उपाय है ? स्वामी सुनें । आज आधी रात में हमारी गृहिणी, नहीं-नहीं आप की दासी यशोदा से उत्पन्न हुई यह बेचारी पुत्री पैदा होते ही मर गई । कल हमारे गोपग्राम के योग्य इन्द्र यज्ञ नामक उत्सव होगा तो अन्य गोप इस दुःख का अनुभव न करें, इसलिए इस पुत्री को लेकर बेड़ी

दालओ दालिआ या पपूद त्ति मोहं गदा। [का गतिः। शृणोतु भर्ता। अद्यार्धरात्रेऽस्माकं कुटुम्बिन्या, न हि न हि, युष्माकं दास्या यशोदया प्रसूतेयं च दारी तपस्विनी जातमात्रैवापगतप्राणा संवृत्ता। श्वोऽस्माकं घोपस्योचित इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति। तद् मा खल्वेतद् दुःखं गोपजनैरनुभूयमानमिति मयैकाकिना निगलगुरुचरणेनेमां दारिकां गृहीत्वा निर्गतोऽस्मि। यशोदापि तपस्विनी नैव जानाति दारको दारिका वा प्रसूत इति मोहं गतः।]

वसुदेवः—हन्त भो! न शक्यं लोकस्याधिष्ठानभूतं कृतान्तं वञ्चयितुम्। वयस्य! काष्ठभूतं कलेवरं त्यज्यताम्।

नन्दगोपः—ण पक्कुणोमि। भट्टा! ण पक्कुणोमि। [न शक्नोमि भर्तः! न शक्नोमि।]

वसुदेवः—ईदृशो लोकधर्मः त्यज्यताम्।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि। दालिए! दालिए! (इति रोदिति।) [यद् भर्ताज्ञापयति। दारिके! दारिके!।]

वसुदेवः—वयस्य! अलमलं रुदितेन। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

का गतिः = क उपायः।

वसुदेव इति। लोकस्याधिष्ठानभूतम् = लोकस्य स्वामिनमित्यर्थः। कृतान्तम् = कालम्, यमराजमित्यर्थः। कलेवरम् = शरीरम्। काष्ठभूतम् = निर्जीवमित्यर्थः।

के कारण बोझिल पैरों से मैं बाहर निकल आया हूँ। बेचारी यशोदा भी नहीं जान पाई कि पुत्र उत्पन्न हुआ या पुत्री, और मूर्छित हो गयी।

वसुदेव—अरे बड़े दुःख की बात है। लोक के अधिष्ठानभूत (अर्थात् स्वामी) यमराज को धोखा नहीं दिया जा सकता उससे वचना बड़ा मुश्किल है। मित्र (इस) काठ हो गए (निर्जीव) शरीर को त्याग दो।

नन्दगोप—नहीं हो सकता, स्वामी! नहीं हो सकता है।

वसुदेव—ऐसी ही लोक की रीति है। त्याग दो।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा। (हा) पुत्री! पुत्री! (ऐसा रोता है।)

वसुदेव—मित्र! रोओ मत। उठो-उठो।

नन्दगोपः—(तथा कृत्वोपगम्य) जेदु भट्टा । इमिणा दासजणेण किं कत्तव्वं । [जयतु भर्ता । अनेन दासजनेन किं कर्तव्यम् ।]

वसुदेवः—वयस्य ! ननु त्वमपि जानासि दुरात्मना कंसेन मम षट् पुत्रा निधनमुपानीता इति ।

नन्दगोपः—जाणामि भट्टा ! जाणामि । [जानामि भर्तः ! जानामि ।]

वसुदेवः—तत् सप्तमोऽयं दीर्घायुः । नास्ति मम पुत्रेषु भाग्यम् । तव भाग्याज्जीवितु गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—भाआमि भट्टा ! भाआमि । यदि कंषो लाआ षुणादि-वसुदेवष्ष दालओ णन्दगोवष्ष हत्थे णाषो णिक्खित्तो त्ति, किं बहुणा, गदं एव्व मे पीषं । [बिभेमि भर्तः बिभेमि । यदि कंसो राजा शृणोति-वसुदेवस्य दारको नन्दगोपस्य हस्ते न्यासो निक्षिप्त इति, किं बहुना, गतमेव मे शीर्षम् ।]

वसुदेवः—(आत्मगतम्) हन्त विपन्नं कार्यम् । उक्तज्ञाः खलु नृशंसाः । तदेवं कथयामि । (प्रकाशम्) वयस्य नन्दगोप ! ।

बिभेमि = भयं यामि, कंसादिति भावः । शीर्षम् = शिरः ।

वसुदेव इति । विपन्नम् = नष्टम् । उक्तज्ञाः खलु नृशंसाः - उक्तम् = अनुमितं संभावितं वा इत्यर्थः, जानन्तीति तथोक्ताः, नृशंसाः = पापिनः । पापिनोजनाः संभावितं हि (अनिष्टम्) जानन्ति ।

नन्दगोप—(वैसा करके, पास जाकर) स्वामी की जय हो, इस दास को क्या करना है ?

वसुदेव—मित्र ! अरे तुम भी जानते हो कि पापी कंस के द्वारा मेरे छः पुत्र मार डाले गए ।

नन्दगोप—जानता हूँ, स्वामी ! जानता हूँ ।

वसुदेव—तो यह चिरंजीव सातवां (पुत्र) है । पुत्रों के विषय में मेरा भाग्य नहीं है । तुम्हारे (ही) भाग्य से यह जीवित रहे, इसलिए इसे लो ।

नन्दगोप—डरता हूँ, स्वामी ! डरता हूँ । यदि राजा कंस ने सुना कि वसुदेव का पुत्र नन्दगोप के हाथ में धरोहर रक्खा गया है तो अधिक क्या कहूँ मेरा सिर गया हुआ ही (समझिए) ।

यद्यस्मि भवतः किञ्चिन्मया पूर्वकृतं भवेत्।
तस्य प्रत्युपकारस्य कालस्ते समुपागतः॥ २० ॥

नन्दगोपः—किं किं पच्चुवकालं त्ति। जदि कंसो वा होदु, कंसस्स पिदा उग्गसेणो वा होदु। आणेदु भट्टा दालअं [किं किं प्रत्युपकार इति। यदि कंसो वा भवतु- कंसस्य पितोग्रसेनो वा भवतु। आनयतु भर्ता दारकम्।]

वसुदेवः—वयस्य। गृह्यताम्।

नन्दगोपः—भट्टा! असोक्खिदम्हि, मदलिआ दालिआ गहीदा। मुहुत्तअं पडिवालेदु भट्टा। जाव जमुणाजलं गच्छिअ चोक्खं कलेमि। [भर्तः अशौचितोऽस्मि, मृता दारिका गृहीता। मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भर्ता यावद् यमुनाजलं गत्वा शौचं करोमि।]

वसुदेवो नन्दगोपेन स्वकृतमुपकारं स्मारयति—यद्यस्मीति। 'भवतः' इति पदस्य देहलीदीपकन्यायेन 'अस्मीति पदेनाप्यन्वयः कार्यः। यदि = चेत्, भवतः = नन्दगोपस्य, अस्मि वयस्य इति भावः। मया = वसुदेवेन, भवतः = नन्दगोपस्य, किञ्चित् = किमपि पूर्वकृतम् = पूर्वोपकारः, भवेत् = स्यात्तर्हि तस्य = पूर्वकृतस्य, प्रत्युपकारस्य, ते = तव नन्दगोपस्य, कालः = समयः, समुपागतः = संप्राप्तः। इमं बालकं गृहीत्वा ममाप्युपकारं करोतु भवानिति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २० ॥

वसुदेव—(मन ही मन में) खेद! कार्य नष्ट हो गया। पापी जन संभावित बात को समझ जाते हैं। तो ऐसा कहता हूँ। (प्रकट) मित्र नन्दगोप!

यदि मैं आप का हूँ, और मैंने आपका पहले कोई उपकार किया हो, तो तुम्हारे लिए उसके प्रत्युपकार का (यह) समय उपस्थित है॥२०॥

नन्दगोप—क्या, क्या? प्रत्युपकार? यदि कंस हो अथवा कंस का बाप उग्रसेन हो (उसकी परवाह नहीं) आप स्वामी पुत्र को ले आइए (दीजिए)।

वसुदेव—मित्र! लीजिए।

नन्दगोप—स्वामी! मैं मृत बच्ची को ग्रहण करने से अपवित्र हो चुका हूँ, अतः स्वामी थोड़ी देर प्रतीक्षा करें, जब तक मैं यमुना जल में जाकर (अपनी) शुद्धता कर लूँ।

वसुदेवः—वयस्य । घोषवासात् प्रकृत्या शुचिरेव भवान् ।

नन्दगोपः—तेण हि अम्हाणं घोषण्ण उइदं पङ्खुणा चोक्खं कलेमि । तेन ह्यस्माकं घोषस्योचितं पांसुना शौचं करोमि ।)

वसुदेवः—कोऽत्र दोषः । क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणावेदि । (तथा कुर्वन् सविस्मयम्) अच्छ-लीअं अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं । पङ्खूणि मग्गमाणण्ण धलणीं भिन्दिअ जुगप्पमाणा पलिलधाला उट्ठिदा । [यद् भर्ताज्ञापयति । आश्चर्य-माश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । पांसून् मार्गयतो धरणीं भित्वा युगप्रमाणा सलिल-धारोत्थिता ।]

वसुदेवः—बालस्यैव प्रभावः क्रियतां शौचम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह । (तथाकृत्वोपसृत्य) भट्टा ! अअम्हि । [भर्तः ! तथा । भर्तः ! अयमस्मि ।]

वसुदेवः—गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! अदिदुब्बला मे बाहा मन्दलघदिपं बालअं

नन्दगोप इति । पांसून् = धूलीः । मार्गयतः = अन्विष्यतः । युगप्रमाणा = युग इव स्थूला इत्यर्थः । उत्थिता = निःसृता ।

वसुदेव—मित्र ! गोप ग्राम में रहने से आप स्वभावतः शुद्ध ही हैं ।

नन्दगोप—तो मैं गोप ग्रामोचित धूल से ही अपने को पवित्र कर लूँ ।

वसुदेव—इसमें क्या दोष ? पवित्र हो जाइए ।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा । (वैसा करता हुआ, आश्चर्य से) आश्चर्य ! स्वामी ! आश्चर्य ! धूल खोजते ही धरती फोड़कर युग (जुआ) के समान (मोटी) जलधारा निकली ।

वसुदेव—(यह) बालक का ही प्रभाव है । पवित्र हो लो ।

नन्दगोप—अच्छा स्वामी ! (वैसा करके, समीप जाकर) स्वामी ! यह मैं (उपस्थित) हूँ ।

वसुदेव—(पुत्र को) लो ।

नन्दगोप—स्वामी ! मेरी अत्यन्त निर्बल भुजाएँ मन्दराचल के समान

गहिदुं ण समत्थो। [भर्तः ! अतिदुर्बलौ मे बाहू मन्दभाग्योऽहं बालकं ग्रहीतुं न समर्थौ।]

वसुदेवः—वयस्य ! महाबलपराक्रमः खलु भवान्।

नन्दगोपः—सुणादु भट्टा मम बलपरक्कमं। चन्दालिञ्जणाए वसभे सिङ्गं गहिअ मोचेमि। पङ्कणिमग्गाणि सअडचक्काणि उद्धरामि। ईदिसो वि अहं दारअं गहिदुं ण समत्थो म्हि। [शृणोतु भर्ता मम बलपराक्रमम्। चन्द्रालिञ्जनाय वृषभे शृङ्गं गृहीत्वा मोचयामि। पङ्कनिमग्नात् शकटचक्रात् समुद्धरामि। ईदृश इदानीमहं दारकं ग्रहीतुं न समर्थोऽस्मि।]

(ततः प्रविशन्ति पञ्चायुधानि गरुडश्च)

गरुडः

अहं सुपर्णो गरुडो महौजाः शार्ङ्गायुधस्यास्य रथो ध्वजश्च।
पुरा हि देवासुरविग्रहेषु वहामि यो विष्णुबलेन विष्णुम्॥ २१॥

गरुडः प्रविश्य स्वपरिचयं ददाति—अहं सुपर्ण इति। अहम् = गरुडः, सुपर्णः = सुष्ठु = शोभनं पर्णम् = पक्षो यस्य सः, सुपर्ण इति विशेषणविशिष्ट इत्यर्थः। गरुडः = गरुड इति नाम्ना प्रसिद्धः, महौजाः—महत् ओजः = पराक्रमः यस्य सः, अत्यन्तबलशालीत्यर्थः। शार्ङ्गायुधस्य—शार्ङ्गं नाम धनुः, आयुधम् = अस्त्रं यस्य तस्य, अस्य = कृष्णरूपेणावतीर्णस्य विष्णोः, रथः = स्यन्दनः, ध्वजः = केतुश्चास्मि। पुरा = पूर्वकाले, देवासुरविग्रहेषु = देवासुर-

---

(गम्भीर) बालक को वहन करने में समर्थ नहीं है।

वसुदेव—मित्र ! आप महान् बल और पराक्रम रखते हैं।

नन्दगोप—स्वामी मेरा बल और पराक्रम सुनें। यदि कोई बैल पृथिवी को खोद रहा हो तो उसे सींग पकड़ कर अलग हटा सकता हूँ। पहियों से लदी गाड़ी को कीचड़ में फँसने पर निकाल सकता हूँ। किन्तु इस समय ऐसा मैं बालक को लेने में असमर्थ हूँ।

(तदनन्तर पाँचों अस्त्र और गरुड प्रवेश करते हैं)

गरुड—मैं सुन्दर पंखों वाला, महान् ओजस्वी, शार्ङ्गपाणि भगवान् का

चक्रः—

चक्रोऽस्मि कृष्णस्य कराग्रशोभी मध्याह्नसूर्यप्रतिमोग्रतेजाः।
त्रिविक्रमे चामृतमन्थने च मया हता दानवदैत्यसङ्घाः ॥ २२ ॥

शार्ङ्गः— शार्ङ्गोऽस्मि विष्णुकरलग्नसुवृत्तमध्या
स्त्रीविग्रहात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा।

संग्रामेषु, भोः = हे, (सम्बोधनार्थकाः स्युः 'प्याट्पाडङ्ग है हे भोः' इत्यमरः) विष्णुबलेन = भगवच्छक्त्या, भगवदनुग्रहेणेति भावः विष्णुम् = भगवन्तं नारायणम्, वहामि = ऊढवानित्यर्थः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिवृत्तम् ॥ २१ ॥

चक्रः स्वपरिचयं ददाति—चक्रोऽस्मीति । कृष्णस्य = वासुदेवस्य, कराग्रशोभी-करस्य अग्रम् तत्र शोभते इति तथोक्तः, मध्याह्ने यः सूर्यः स प्रतिमा = उपमानं यस्य तथाविधश्च उग्रतेजाः—उग्रम् = तीक्ष्णं तेजः = प्रतापो यस्य स तथोक्तः, चक्रः = चक्रनामा आयुधोऽस्मि । मया = चक्रेण, त्रिविक्रमे = वामनावतारे इत्यर्थः च = पुनः, अमृतमन्थने च दानवदैत्यसङ्घाः = दानवाः दनुपुत्राः, दैत्याः = दितिपुत्राश्च तेषां सङ्घाः = समुदयाः हताः = विनाशिताः । उपजातिवृत्तम् ॥ २२ ॥

अथ शार्ङ्गोनाम हरिधनुः स्वपरिचयं ददाति—शार्ङ्गोऽस्मीति । (अहं) शार्ङ्गः = शृङ्गस्य विकारः (विकारार्थे अण्) शार्ङ्गोनाम धनुरस्मि । विष्णुकरलग्नसुवृत्तमध्या विष्णोः = नारायणस्य करे = हस्ते, लग्नम् = अनुषक्तम्, सुवृत्तम्

रथ और ध्वज गरुड़ हूँ । मैं पहले देवासुर संग्रामों में भगवान् विष्णु को उनकी ही कृपा से (अपनी पीठ पर) वहन कर चुका हूँ ॥ २१ ॥

चक्र—मैं कृष्ण की उँगली में शोभा पानेवाला, मध्याह्नकालीन सूर्य के समान तीक्ष्ण तेजवाला चक्र हूँ । मैंने वामनावतार के समय और अमृतमन्थन के समय दानवों तथा दैत्यों के समूहों को विनष्ट किया है ॥ २२ ॥

शार्ङ्ग—विष्णु के हाथ में अनुषक्त सुन्दर मध्यभागवाला, स्त्री स्वरूप होने पर भी पुरुष के समान बलवीर्य रखने से अत्यन्त दर्प वाला मैं शार्ङ्ग हूँ । विष्णु का कार्य सिद्ध करने के लिए युद्धभूमि में मैंने शत्रुसङ्घ के हाथी,

यस्यार्थमाहवमुखेषु मयारिसङ्घाः
प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः प्रभग्नाः ॥ २३ ॥

कौमोदकी—

कौमोदकी नाम हरेर्गदाहमाज्ञावशात् सर्वरिपून् प्रमथ्य ।
मया हतानां युधि दानवानां प्रक्रीडितं शोणितनिम्नगासु ॥ २४ ॥

शङ्खः— अहं हि शङ्खः क्षीरोदाद् विष्णुना स्वयमुद्धृतः ।

= सम्यक् वर्तुलाकारं मध्यम् = मध्यभागः कटिप्रदेशश्च यस्याः सा । स्त्रीविग्रहात्—स्त्रीशरीरात्, पुरुष-वीर्यबलातिदर्पा-पुरुषस्येव वीर्येण = पराक्रमेण, बलेन = सामर्थ्येन च अत्यन्तं दर्पः = गर्वः यस्याः सा । यस्यार्थम्—यस्य = विष्णोः, अर्थम् = प्रयोजनम्, यत्कृते इत्यर्थः । आहवमुखेषु=सङ्ग्रामभूमिषु, मया=शार्ङ्गेण, प्रभ्रष्टनागरथवाजिनराः-प्रभ्रष्टाः = विनष्टाः, नागाः = गजाः, रथाः = स्यन्दनाः, वाजिनः = अश्वाः, नराः = मनुष्याश्च सैनिका इत्यर्थः, येषां ते तथाभूताः, अरिसङ्घाः–अरीणाम् = शत्रूणां सङ्घाः = समूहाः, प्रभग्नाः = पराजिताः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २३ ॥

अथ कौमोदकी नाम गदा स्वपरिचयं ददाति—कौमोदकीति । अहम् कौमोदकी नाम, हरेः = विष्णोः, गदा = आयुधविशेषः, (अस्मि) । मया = कौमोदक्या, (विष्णोः) आज्ञावशात् = आदेशकारणात्, सर्वरिपून् = अशेषशत्रून्, प्रमथ्य = विनाश्य, युधि = रणे, हतानाम् = मारितानाम्, दानवानाम् = दनुजानाम्, शोणितनिम्नगासु—शोणितानाम्=रुधिराणाम्, निम्नगासु = नदीषु, प्रक्रीडितम् = यथेच्छं क्रीडा कृता । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम् ॥२४॥

अथ शङ्खः स्वकीयं परिचयं ददाति—अहं हि शङ्ख इति । क्षीरोदात् = दुग्धसिन्धोः, स्वयम् = आत्मनैव, विष्णुना = नारायणेन, उद्धृतः = निष्कासितः,

---

रथ, घोड़े और (पैदल) मनुष्यों (सैनिकों) को नष्ट करके उन्हें परास्त किया है ॥ २३ ॥

कौमोदकी—मैं कौमोदकी नामक विष्णु की गदा हूँ । (विष्णु की) आज्ञा से मैंने सारे शत्रुओं का मन्थन कर, युद्धक्षेत्र में (मेरे द्वारा) मारे गये दानवों के रुधिर की नदियों में बहुशः क्रीडा की है ॥ २४ ॥

शङ्ख—मैं क्षीरसागर से स्वयं विष्णु के द्वारा निकाला गया शङ्ख हूँ । मेरे

मम शब्देन नश्यन्ति युद्धे ते देवशत्रवः ॥ २५ ॥

नन्दकः— नन्दकोऽहं न मे कश्चित् सङ्ग्रामेष्वपराङ्मुखः ।
गच्छामि स्मृतमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २६ ॥

चक्रः— चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दका दैत्यमर्दनाः ।
वासुदेवस्य कार्यार्थं प्राप्ताः पारिषदा वयम् ॥ २७ ॥

तस्मादागम्यताम् । वयमपि मनुष्यलोकमवतीर्णस्य भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुचरितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोषमेवावतरिष्यामः ।

अहं शङ्खः अस्मि । युद्धे = संग्रामे, ते = प्रसिद्धाः, देवशत्रवः – देवानाम् = सुराणां शत्रवः = रिपवः दैत्या दानवाश्चेत्यर्थः । मम = शङ्खस्य, शब्देन = निनादेन, नश्यन्ति = गतप्राणा भवन्ति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २५ ॥

अथ नन्दको नाम खड्गः स्वकीयं परिचयं ददाति—नन्दकोऽहमिति । अहम् नन्दकः = नन्दको नाम खड्गोऽस्मि । सङ्ग्रामेषु = युद्धेषु, कश्चित् = कोऽपि योद्धा, मे = मम, अपराङ्मुखः—नपराङ्मुखः । पुरतः स्थित इत्यर्थः, न = न भवितुमर्हति प्रभविष्णुना = महापराक्रमशालिना विष्णुना = हरिणा, स्मृतमात्रेण = स्मरणादेव, गच्छामि तमुपसर्पामि ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २६ ॥

अथ चक्रो हरेरायुधानां तेषामागमनप्रयोजनं निवेदयति—चक्रशार्ङ्गेति । दैत्यमर्दनाः = असुरसंहारकाः, चक्रशार्ङ्गगदाशङ्खनन्दकाः = तत्तदभिधाः, वयं पारिषदाः = अनुचराः, हरेरिति भावः । वासुदेवस्य—वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः (अपत्यार्थेऽण्) तस्य कार्यार्थम् = कार्यं साधयितुं प्राप्ता = समागताः अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २७ ॥

अनुचरितुम् = सफली कर्तुमित्यर्थः । गोपालकवेषप्रच्छन्नाः—गोपालकवेषेण

घोषमात्र से युद्ध में वे देवताओं के शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥

नन्दक—मैं नन्दक नामक खड्ग हूँ । युद्ध में मेरे सामने कोई पराङ्मुख न होनेवाला नहीं है । (अर्थात् कोई खड़ा नहीं रह पाता है) । भगवान् विष्णु के स्मरण करते ही मैं उनके पास पहुँच जाता हूँ ॥ २६ ॥

चक्र—दैत्य विनाशक चक्र, शार्ङ्ग, गदा, शंख और नन्दक नामक हम सब विष्णु के अनुचर उनके कार्य की सिद्धि के लिए उपस्थित हुए हैं ॥ २७ ॥

तो आइए, हम भी मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए भगवान् विष्णु के बाल-

सर्वे—तथास्तु । (विष्णुमुपस्थिताः)

वसुदेवः—वयस्य ! बाल एव नमस्यताम् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! तह ! लाअदालअ ! णमो दे णमो दे । ही, होदु, अत्ताणं एव अत्ताणं णिव्वावेहि । अम्हाणं गोपजणष्प तुमं गहिदुं को वलपलक्कमो । भर्तः ! तथा । राजदारक ! नमस्ते नमस्ते । ही, भवतु, आत्मनैवात्मानं निर्वाहय । अस्माकं गोपजनस्य त्वां ग्रहीतुं को बलपराक्रमः ।

चक्रः—नमो भगवते नारायणाय । भगवन् ! महाविष्णो !

कार्याण्यकार्याण्यमरासुराणां
त्वया भविष्यन्ति बहूनि लोके ।
तस्माज्जनस्यास्य लघुत्वयोगात्
कुरु प्रसादं यदुवंशकेतो ! ॥ २८ ॥

प्रच्छन्नाः = संगुप्ताः, घोषम् = आभीरवसतिम् । अवतरिष्यामः = उत्पत्स्यामहे ।

चक्रो भगवन्तं नारायणं स्तौति—कार्याणीति । यदुवंशकेतो—यदुवंशस्य केतुः पताका श्रेष्ठ इत्यर्थः, हे यदुकुलश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण ! लोके = संसारे, त्वया = वासुदेवेन, अमरासुराणाम् = देवानां दैत्यानांच, बहूनि = अनेकानि, कार्याणि = रक्षारूपाणि, अकार्याणि = विनाशरूपाणि भविष्यन्ति = संपत्स्यन्ते । तस्मात् = तस्माद्धेतोः, लघुत्वयोगात् = गाम्भीर्यमपहाय लघुत्वभावं स्वीकृत्येत्यर्थः । अस्य जनस्य = नन्दगोपलक्षस्य अस्य जनस्य प्रसादम् = अस्मिन् जनेऽनुग्रहं कुरु । उपजातिर्वृत्तम् ॥ २८ ॥

चरित को सफल बनाने के लिए गोपालों के वेष में छिपे हुए गोप ग्राम में अवतीर्ण हों ।

सब—ऐसा ही हो । (विष्णु के समीप स्थित होते हैं ।)

वसुदेव—मित्र ! तुम्हारे द्वारा इस बालक का ही नमस्कार किया जाय ।

नन्दगोप—स्वामी ! अच्छा ! राजकुमार ! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है । अच्छा, तुम स्वयम् अपना निर्वाह करो । हम जैसे ग्वालों के पास तुम्हें ग्रहण करने के लिए कौन बल-पराक्रम है ।

चक्र—भगवान् नारायण को नमस्कार है । हे भगवान् महाविष्णु ! संसार में तुम्हारे द्वारा अनेक बार देवों की रक्षा के कार्य और दानवों के विनाश

वसुदेवः—गृह्यताम् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । (गृह्णाति) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः—वयस्य ! प्रभाता रजनी प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—अच्छलीअं अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं इमे वन्धणे पडिते । [आश्चर्यमाश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम् । इमे वन्धने पतिते ।]

वसुदेव—सर्वमेतत् कुमारस्य प्रभावः । प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

वसुदेवः—अथवा एहि तावत् ।

नन्दगोपः—भट्टा ! अअम्हि । [भर्तः ! अयमस्मि ।]

वसुदेवः—

जाने नित्यं वत्सलं त्वां प्रकृत्या
स्नेहोऽप्यस्मिन्नर्थ्यते रूढभावः ।

वसुदेवो नन्दगोपं वालकृष्णरक्षां याचते—जाने नित्यमिति । त्वाम् = नन्दगोपमित्यर्थः । प्रकृत्या=स्वभावेन, नित्यम् = सदा, वत्सलम् = वात्सल्य-युक्तम्, जाने = अवगच्छामि । अस्मिन्नपि = एतस्मिन् मम सुतेऽपि, रूढभावः

के अकार्य होंगे अतएव हे यदुकुल श्रेष्ठ ! आप अपना भार हलका करके इस जन (नन्दगोप) पर अनुग्रह करें ॥ २८ ॥

वसुदेव -(बच्चे को) लीजिए ।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा । (लेता है)

वसुदेव—मित्र ! रात प्रभात में परिणत हो गयी, आप लौट जायं ।

नन्दगोप—स्वामी ! आश्चर्य ! आश्चर्य ! (मेरे दोनों पैर के) ये वन्धन (शिथिल होकर) गिर गये ।

वसुदेव—यह सब कुमार का प्रभाव है । आप लौट जायं ।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा ।

वसुदेव— अथवा इधर आओ ।

नन्दगोप—स्वामी ! यह हूँ ।

वसुदेव—मैं तुम्हें स्वभाव से ही नित्य वात्सल्ययुक्त समझता हूँ । अब इस वालक में तुम्हारे वढ़े हुए स्नेह की प्रार्थना करता हूँ । इस समय अत्यन्त जलों

अस्मिन् काले दग्धभूयिष्ठशेषं
न्यस्तं बीजं रक्षितुं यादवानाम् ॥ २९ ॥

कुमारस्य किं करिष्यति भवान्।

नन्दगोपः—पुणादु भट्टा। एकस्सिंप गेहे गच्छिअ खीरं पीवइ, अण्णस्सिंप गेहे गच्छिअ दधि भक्खइ। अपरस्सिंप गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलइ। अण्णस्सिंप गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ। इदलस्सिं गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि। किं बहुणा, अम्हाणं घोषस्स पदी होइ। [शृणोतु भर्ता। एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति। अपरस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिलति। अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते। इतरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते। किं बहुना, अस्माकं घोषस्य पतिर्भवति।]

वसुदेवः—एवमस्तु। प्रतिनिवर्ततां भवान्।

नन्दगोपः—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्तः।) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

वसुदेवः—ननु निर्गतो नन्दगोपः। यावदहमपि मधुरामेव यास्यामि। (परिक्रम्य) रुदितशब्द इव श्रूयते। किं नु खलु कंसभयात् प्रतिनिवृत्तो

=प्रवर्द्धमान इत्यर्थः, स्नेहः = वात्सल्यम्, अर्थ्यते याच्यते वा। अस्मिन् काले = इदानीम्, दग्धभूयिष्ठशेषम्—दग्धानि च तानि भूयिष्ठानि तत्र शेषम्, न्यस्तम् = न्यासरूपेण दत्तम्, यादवानाम् = यदुवंशिनाम्, बीजम् = बीजस्वरूपं श्रीकृष्णमित्यर्थः, रक्षितुम् = पालयितुम्. अर्थ्यते = प्रार्थ्यते। शालिनीवृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।' इति ॥ २९ ॥

में बचे हुए यदुकुल के बीज स्वरूप इस धरोहर (बालक) की रक्षा की भीख माँगता हूँ ॥ २९ ॥

कुमार के लिए आप क्या करेंगे ?

नन्दगोप—स्वामी सुनें। एक घर में जाकर दूध पियेगा, दूसरे घर में जाकर दही खायेगा और अन्य घर में जाकर मक्खन खायेगा, अन्य घर में जाकर खीर खायेगा और दूसरे घर में जाकर मट्ठे के घड़े पर ताक लगायेगा। अधिक क्या कहूँ हमारे गोप ग्राम का यह स्वामी बनेगा।

वसुदेव—ऐसा ही हो। आप लौट जायँ।

नन्दगोप—जो स्वामी की आज्ञा। (चला जाता है।)

वसुदेव—नन्दगोप जा चुका, तो मैं भी मथुरा को ही जाता हूँ। (घूमकर) रोने का-सा शब्द सुनायी पड़ रहा है ! क्या कंस के भय से नन्दगोप

नन्दगोपः। (परिक्रम्य) अये प्रत्यागतप्राणेयं दारिका। यावदिमां गृहीत्वा देवक्या हस्ते निक्षिप्य दुरात्मानं कंसं वञ्चयामि। (गृहीत्वा) अहो गुरुत्वमस्याः। एतदपि कुमारात् किञ्चिदन्तरं महद् भूतम्। यावदपक्रामामि। अये इयं भगवती यमुना तथैव स्थिता। यावद-पक्रामामि। निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः। एतन्नगरद्वारम्। तथैव प्रसुप्तो मधुरायां सर्वो जनः। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) इदं खलु दुरात्मनः कंसस्य गृहं ज्येष्ठाश्रितमिव दृश्यते। इदमस्मदीयं गृहं श्रियारूढमिव दृश्यते। यावदहमप्यन्तःपुरं प्रविश्य देवकीं समाश्वासयामि। ईश्वराः स्वस्ति कुर्वन्तु। (निष्क्रान्तः।)

प्रथमोऽङ्कः।



वसुदेव इति। ज्येष्ठाश्रितम्—ज्येष्ठा=श्रियाः भगिनी अलक्ष्मीरितियावत्, तया आश्रितम् युक्तमित्यर्थः। श्रियारूढम् श्रिया=लक्ष्म्या शोभया वा रूढम्= विकसितम् सुशोभितं मनोरमं वेत्यर्थः।

इति 'कल्याणी' संस्कृत व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः।



लौट आया ? (घूमकर) अरे ! इस बच्ची के प्राण लौट आये। तो इसे लेकर देवकी के हाथ में डाल कर पापी कंस को ठगूँगा। (लेकर) अहा ! इसका कैसा वजन है ! यह (वजन) भी कुमार से कही अधिक हो गया है। तो जाता हूँ। अरे ! ये भगवती यमुना वैसे ही स्थित हैं, तो मैं पार करता हूँ। मैं यमुना से निकल चुका। यह नगर का (बाहरी) दरवाजा है। मथुरा में सब लोग वैसे ही सोये हुए है। तो प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश कर) यह पापी कंस का घर अलक्ष्मी से युक्त-सा दिखायी दे रहा है। यह हमारा घर शोभा से मनोरम-सा दिखायी पड़ रहा है। तो मैं भी अन्तःपुर में प्रवेश कर देवकी को समाश्वस्त करता हूँ। ईश्वर कल्याण करें। (चला जाता है।)

प्रथम अंक समाप्त।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति चण्डालयुवतयः ।)

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ ! अम्हाणं कण्णाणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यायां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

(ततः प्रविशति राजा ।)

राजा—भोः ! किन्नु खल्विदम् ।

यन्मेदिनी प्रचलिता पतिताग्रहर्म्या
सन्तारनौरिव विकीर्णमहोर्मिमाला ।
सेव्यैः प्रधानगुणकर्मफलैर्निमित्तैः
किं वाग्रतो व्यसनमभ्युदयो नु तन्मे ॥ १ ॥

राजा कंसोऽग्रतश्चाण्डाल युवतीः पश्यन् वितर्कयति—किन्नु खल्विदम् इति । किं नु खल्विदम्=अये ! किमेतत्सर्वम् । तदेव स्पष्टीकरोति—यन्मेदिनीति । विकीर्ण-महोर्मिमाला—विकीर्णाः=परितः विस्तृताः, महोर्मीणाम् वृहत्तरंगाणां मालाः = श्रेणयो यस्यां सा तथोक्ता, सन्तारनौः—सन्तारः=नदीतटम् तस्य नौः=नौका, सेव मेदिनी=पृथिवी, यत्=यस्मात् कारणात् प्रचलिता=सातिशयं प्रकम्पिता । (तथा) पतिताग्रहर्म्या—पतितानि=विध्वस्तानि अग्रहर्म्याणि=प्रासादशिखराणि यस्यां सा तथा भूता (जाता) । तत्=तस्मात्कारणात्, प्रधानगुणकर्मफलैः=प्रधानं गुणकर्म-फलं येषां तैः, प्रधान्येनगुणकर्मफलसूचकैरिति भावः । सेव्यैः=सेवनीयैः, अवश्यमेव

(तदनन्तर चण्डालयुवतियाँ प्रवेश करती हैं ।)

सव—आइए, स्वामी आइए, हमारी कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह हो ।

तदनन्तर राजा प्रवेश करता है ।)

राजा—अरे ! यह सब क्या है ?

जो विस्तृत उत्ताल तरंगमाला से युक्त (प्रताडित) तट पर स्थित नौका की भाँति पृथ्वी डगमगा उठी और प्रासादों के शिखर (टूटकर) धराशायी

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ । भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

राजा—यस्मान्न रक्षिपुरुषाः प्रचरन्ति केचिद्
यस्मान्न दीपकधराः प्रमदाश्चरन्ति ।
तस्मादिमा मम गृहं समनुप्रविष्टा
नीलोत्पलाञ्जननिभा भयदाः श्वपाक्यः ॥ २ ॥

सर्वाः—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ ! अम्हाणं कण्णआणं तुए सह विवाहो होदु । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ । अस्माकं कन्यकानां त्वया सह विवाहो भवतु ।]

भोक्तव्यैरिति यावत् । निमित्तैः शकुनैः, मे=मम, अग्रतः=भविष्यकाले, व्यसनम्=विपद्, किं वा = अथवा, अभ्युदयः=समुन्नतिः, नु इति वितर्के, किन्तु भाव्यमिति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमाऽलंकारः ॥ १ ॥

कंसश्चाण्डालयुवतिप्रवेशहेतुं निरूपयति–यस्मान्नेति । यस्मात्=यस्मात्कारणात्, केचित् = केऽपि, रक्षिपुरुषाः—रक्षितुं शीलमेषामिति रक्षिनः (ताच्छील्ये णिनिः) रक्षाधिकृताः, ते च पुरुषाः, न प्रचरन्ति = न भ्रमन्ति । यस्मात्=यतः, दीपकधराः = दीपकग्राहिण्यः, प्रमदाः=स्त्रियः, दास्य इति यावत्, न चरन्ति=न संचरन्ति, तस्मात् = तस्मात्कारणात्, नीलोत्पलाञ्जननिभाः—नीलोत्पलेन = नीलकमलेन, अञ्जनेन = कज्जलेन च निभाः = सदृश्यः, भयदाः=भीषणाः इमाः श्वपाक्यः = चण्डालयुवतयः, मम = कंसस्य, गृहं समनुप्रविष्टाः = समागताः । वसन्ततिलकं वृत्तम् । उपमालंकारः ॥ २ ॥

हो गये तो प्रधानतया कर्मफल स्वरूप अवश्य भोक्तव्य (इन) शकुनों से क्या भविष्य में मुझपर विपत्ति आनेवाली है अथवा मेरा अभ्युदय होने वाला है ? ॥ १ ॥

सव—आइए, स्वामी आइए, हमारी कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह हो ।

राजा—क्योंकि यहाँ । कोई पहरेदार घूम नहीं रहे हैं और न दासियाँ हीं दीपक लिये टहल रही हैं, इसी से नील कमल और अञ्जन सदृश (काली) भीषण ये चण्डाल युवतियों मेरे घर में पूर्ण रूप से घुस आयीं हैं ॥ २ ॥

राजा—अहो धृष्टाः खल्वेताश्चण्डालयुवतयः—

क्रोधेन नश्यति सदा मम शत्रुपक्षः
सूर्यः शशी हुतवहश्च वशे स्थिता मे ।
योऽहं यमस्य च यमो भयदो भयस्य
तं मापवादवचनैः परिघर्षयन्ति ॥ ३ ॥

सर्वा—आअच्छ भट्टा ! आअच्छ । [आगच्छ भर्तः ! आगच्छ]

राजा—आ अपध्वंसः । कथं सहसैव नष्टाः । यावदिदानीमभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।

(ततः प्रविशति शापः ।)

कंसश्चाण्डालयुवतीनां धाष्टर्यं निरूपयति—क्रोधेनेति । मम = कंसस्य, क्रोधेन = कोपेन, सदा शत्रुपक्षः = वैरिसमूहः, नश्यति = नाशं गच्छति । सूर्यः = रविः, शशी = चन्द्रमाः, हुतवहः = अग्निश्च, एते सर्वे, मे = मम, वशे = नियन्त्रणे, स्थिताः = तिष्ठन्ति । योऽहम् = कंसः, यमस्य च = यमराजस्यापि, यमः = कृतान्तः, भयस्य = भीतेः, भयदः = भीतिजनकः, तम् = तादृशम्, मा = माम्, ('त्वामौ द्वितीयायाः' इतिसूत्रेण मादेशः) कंसमित्यर्थः । अपवादवचनैः= निन्दावचोभिः, परिघर्षयन्ति = अवमन्यन्ते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३ ॥

राजेति । आः = खेदद्योतकमव्ययपदम् । अपध्वंसः = अधःपतनम्, मम कीदृशमधःपतनं जातमिति भावः । नष्टाः = अदृश्याः । अन्तर्हिता इत्यर्थः ।

सब—आइए, स्वामी आइए; हमारी कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह हो ।

राजा- अरे ! ये चण्डालयुवतियाँ कैसी ढीठ हैं ?

मेरे क्रोध से सदा शत्रुपक्ष नष्ट हो जाता है । सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि मेरे वश में हैं । मैं जो यम का भी यम और भय को भी भय देने वाला हूँ, उस मुझको (ये चण्डालयुवतियाँ) निन्दपूर्णवचनों से अपमानित कर रही हैं ॥३॥

सब—आइए, स्वामी आइए ।

राजा—ओह ! (यह) अधःपतन ! अरे ! ये सहसा ही गायब कैसे हो गयीं ? अच्छा, तो मैं अब अन्दर ही प्रवेश करता हूँ ।

(तदनन्तर शाप प्रवेश करता है ।)

शापः—हं, क्वेदानीं प्रविशसि। इदं खलु मम गृहं संवृत्तम्।

राजा—

> कोऽयं विनिष्पतति गर्भगृहं विगाह्य
> उल्कां प्रगृह्य सहसाञ्जनराशिवर्णः।
> भीमोग्रदंष्ट्रवदनो ह्यहिपिङ्गलाक्षः
> क्रोधो महेश्वरमुखादिव गां प्रपन्नः॥ ४॥

को भवान्।

शाप इति। हम् = क्रोधसूचकमव्ययपदम्। संवृत्तम् = संजातम्। मूर्तिमतः शापस्य स्वरूपं प्रतिपादयति कंसः।

कोऽयमिति। अयम् = दृश्यमानः, कः = अज्ञातजनः, गर्भगृहम् = गृहाभ्यन्तरम्, विगाह्य = विलोड्य, उल्काम् = ज्वालम्, प्रगृह्य = करेण आदाय, अञ्जनराशिवर्णः = कज्जलसमूहसदृशः कृष्णवर्णः, सहसा = अकस्मात्, विनिष्पतति = प्रविशति। हि = निश्चयेन, भीमोग्रदंष्ट्रवदनः—भीमे = भयावहे, उग्रे= तीक्ष्णे, दंष्ट्रे = विशालदन्तौ यस्मिंस्तादृशं वदनम् = मुखं यस्य सः, अहिपिङ्गलाक्षः—अहेः = सर्पस्येव पिङ्गले = पिङ्गलवर्णे अक्षिणी=नेत्रे यस्य सः, ('बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्' इति समासान्तः षच्)। क्रोधः = साक्षात् क्रोध इत्यर्थः, महेश्वरमुखात्—महेश्वरस्य = रुद्रदेवस्य मुखात् = आननात् (मुखं परित्यज्येत्यर्थः) गाम् = भुवम्, प्रपन्नः = समागतः। उत्प्रेक्षालंकारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ४॥

शाप—ऐं, अब कहाँ घुस रहे हो? यह तो मेरा घर हो चुका है।

राजा—यह काजलराशि के समान वर्णवाला कौन सहसा जलती लुकाठी लिये हुए घर के अन्दर धड़धड़ाता चला आ रहा है? भयंकर तीखे दाँतों से युक्त मुखवाला, तथा सर्प के नेत्रों के समान भूरी आँखों वाला यह (ऐसा मालूम पड़ता है) मानों महेश्वर के मुख से साक्षात् क्रोध पृथिवी पर आ गया है॥ ४॥

आप कौन हैं?

शापः—किं न जानीषे माम्। अहं खलु मधूकस्य ऋषेः शापो वज्रबाहुर्नाम।

श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि चण्डालवेषेण विरूपचण्डम्।
कपालमालातिविचित्रवेषः कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम्॥ ५॥

कंसः—असम्भाव्यमर्थं प्रार्थयसि।

सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जं
मेरुं न कम्पयति वायसपक्षपातः।

कंसेन पृष्टः शापः स्वपरिचयं ददाति—श्मशानमध्यादिति। अहम् = मधूकस्य ऋषेः शापः, कपालमालातिविचित्रवेषः—कपालानाम् = मुण्डानां मालया, अतिविचित्रः = अत्यद्भुतः, वेषः = स्वरूपं यस्य सः, चण्डालवेषेण = चण्डालस्वरूपं धृत्वेत्यर्थः, राज्ञः कंसस्य = कंसनाम्नो भूपतेः, विरूपचण्डम् = विकृतं रूपं यस्य तच्च चण्डम् = उद्धतम् कुत्सितं तीक्ष्णं चेति यावत्, हृदयम् = चित्तम्, प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम् श्मशानमध्यात् श्मशानप्रदेशात्, आगतोऽस्मि = अत्र संप्राप्तोऽस्मि। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम्॥ ५॥

कंसः स्वहृदयप्रवेशस्यासम्भाव्यत्वं निरूपयति—सौवर्णकान्तेति। सौवर्णकान्ततरकन्दरकूटकुञ्जम्—सौवर्णानि = सुवर्णमयानि, कान्ततराणि = अतिशयेन रमणीयानि कन्दराणि = गुहाः, कूटानि = शिखराणि च, कुञ्जानि = लतागृहाणि च यत्र तम्, मेरुम् = सुमेरुपर्वतम्, वायसपक्षवातः—वायसस्य = काकस्य पक्षवातः = पर्णकम्पनजनितवायुः, न कम्पयति = न चालयति। भोः = सम्बोध-

---

शाप—क्या मुझे नहीं जानते हो? मैं मधूक ऋषि का शाप वज्रबाहु हूँ।

राजा कंस के कुत्सित तथा उग्र हृदय में प्रवेश करने के लिए नरमुण्ड की माला से विचित्र वेषवाला मैं चण्डाल के वेष में श्मशान के बीच से (यहाँ आया हूँ॥ ५॥

कंस—तुम असम्भव बात की इच्छा कर रहे हो।

सुवर्णमय तथा अत्यन्त रमणीय गुफाओं, शिखरों तथा कुञ्जों वाले सुमेरु पर्वत को कौए के पंख की हवा नहीं हिला सकती है। अजी, तुम उपहास

हास्योऽसि भोः ! समकरक्षुभितोर्मिमालं
पातुं य इच्छसि कराञ्जलिना समुद्रम् ॥ ६ ॥

शापः—काले ज्ञास्यसि ।

राजा—हं, कथं सहसैव नष्टः । यावदहमपि शयनमुपगम्य नयनव्याक्षेपं करोमि । (स्वपिति ।)

शापः—अये प्रसुप्तः । अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! तदागम्यतामभ्यन्तरं प्रविशामः ।

सर्वाः—एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(प्रविश्य)

राजश्रीः—न खलु प्रवेष्टव्यम् ।

नार्थकमव्ययपदम् । हास्यः = उपहासास्पदम्, असि । यः (त्वम्) कराञ्जलिना = हस्ताञ्जलिपुटेन, समकरक्षुभितोर्मिमालम् = मकरैः = ग्राहैः सहितं, क्षुभिता = क्षोभं प्राप्ता, चञ्चलीभूतेत्यर्थः, ऊर्मीणाम् = तरङ्गाणां माला = श्रेणिः यस्मिंस्तथाविधं समुद्रम् = सागरम्, पातुमिच्छसि = पानं कर्तुं वाञ्छसि ।

अत्र शापस्य कंसहृदयप्रवेशेच्छा कराञ्जलिना समकरक्षुभितोर्मिमालस्य समुद्रस्य पानेच्छेवेति बिम्बप्रतिबिम्बभावबोधनात् निदर्शनाऽलंकारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

के पात्र हो, जो मकर समूह सहित चञ्चल तरङ्गमाला वाले समुद्र को हाथ की अञ्जलि से पीना चाह रहे हो ॥ ६ ॥

शाप—(यह तो) समय पर जानोगे ।

राजा—ऐं, कैसे सहसा ही अदृश्य हो गया । तो मैं भी शय्या पर चलकर आँखें मूंद लूं । (सोता है)

शाप—अरे सो गया । हे अलक्ष्मि ! हे खलति ! हे कालरात्रि ! हे महानिद्रे ! हे पिङ्गलाक्षि ! तो आओ, हम सब अन्दर प्रवेश करें ।

सब—ऐसा ही हो ।

(प्रवेश कर)

राजश्री—भीतर मत घुसो ।

शापः—का भवती।

श्रीः—किं मां न जानीषे। अहं खल्वस्य लक्ष्मीः।

शापः—एवम्। राजश्रीः! अपक्रामतु भवती। इदं खलु मम गृहं संवृत्तम्।

श्रीः,

लङ्कोपमं मम गृहं न विचिन्त्य मूढ!
कस्याश्रयाद् विशसि मामवधूय रात्रौ।
किं भाषितेन बहुना न च शक्यमेतद्
द्रष्टुं प्रवेष्टुमिह तेऽद्य मयाऽभिजुष्टम्॥ ७॥

राजश्रीः शापं राजभवनप्रवेशान्निवारयति—लङ्कोपममिति। हे मूढ = मूर्ख! न विचिन्त्य = युक्तायुक्तं न विचार्य, रात्रौ = निशि, कस्य = बलिनः पुरुषस्य, आश्रयात् = बललाभात्, माम् = राजश्रियम्, अवधूय = अविगणय्य, लङ्कोपमम् — लङ्कासदृशम्, मम = राजश्रियाः, गृहम् = कंसहृदयरूपं दुर्गम्, विशसि = प्रवेष्टुं यतसे। बहुना = अधिकेन, भाषितेन = कथनेन, किम् = नास्ति किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। मया = राजश्रिया, अभिजुष्टम् = संसेवितम्, एतद् = गृहम्, ते = त्वया, शापेनेत्यर्थः। इह भवने, प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्तुम् (दूरम्), अद्य = इदानीम्, द्रष्टुं न च शक्यम् = वीक्षितुमपि न शक्यम्। प्रवेशे सर्वथाऽसमर्थोऽसीति भावः। लङ्कोपममित्यत्रोपमालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ७॥

शाप—आप कौन हैं?

श्री—क्या मुझे नहीं जानते हो। मैं इन (राजा कंस) की लक्ष्मी हूँ

शाप—अच्छा, आप राजश्री हैं! राजश्री! आप चली जाँय। यह मेरा घर हो चुका है।

श्री—अरे मूर्ख! बिना सोचे-समझे रात में मेरी अवहेलना करके लङ्का-सदृश मेरे सदन में किसके बल से प्रवेश कर रहा है? अधिक कहने से क्या? मेरे द्वारा संसेवित इस भवन में इस समय तुम्हारा प्रवेश करना तो दूर, तुम इसे (आँख उठा कर) देख भी नहीं सकते हो॥ ७॥

शापः—भगवति पद्मालये ! अपक्रामतु किल कंसशरीरात्। विष्णुराज्ञापयति।

श्रीः—कथं विष्णुराज्ञापयतीति भोः ? कष्टम्।

न चाहं चिरसंवासात् त्यक्तुं शक्नोमि पार्थिवम्।
बलवान् गुणसङ्ग्राही दृढं तपति मामयम्॥ ८॥

भवतु। अनतिक्रमणीया विष्णोराज्ञा। तस्मादहमपि विष्णुसकाशमेव यास्यामि। (निष्क्रान्ता।)

शाप इति। पद्मालये—पद्मम् = कमलम्, आलयः = वासस्थानं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ, हे राजलक्ष्मि ! इत्यर्थः। अपक्रामतु = दूरं गच्छतु। कंसशरीरात् = राज्ञः कंसस्य देहात्।

विष्णोरादेशात्कंसशरीरं परित्यजन्ती राजश्रीः स्वसन्तापमभिव्यनक्ति न चाहमिति। चिरसंवासात्–चिरम् = बहुकालम्, संवासः = निवसनम्, तस्मात्, चिरसंवासजनितमोहादिति भावः। अहम् = राजश्रीः, पार्थिवम् = पृथिव्या ईश्वरः पार्थिवः तम्, राजानं कंसमित्यर्थः। त्यक्तुम् = विहातुम्, न च शक्नोमि= असमर्थाऽस्मि। अयम् = कंसः, बलवान् = बलशाली, गुणसङ्ग्राही—गुणानाम्= शौर्यादिगुणानाम्, संग्राही = संग्रहणशीलः शौर्यादिसकलगुणान्वित इत्यर्थः। (अत एवास्य त्यागे) माम् = राजश्रियं दृढम् = अत्यन्तम्, तपति = सन्तप्तां करोति। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ८॥

अनतिक्रमणीया = अनुल्लङ्घनीया। विष्णोराज्ञाऽवश्यमेव पालनीयेतिभावः।

शाप—अरे ! अरे ! भगवती लक्ष्मी ! आप कंस के शरीर से निकल जांय। भगवान् विष्णु की यह आज्ञा है।

श्री—क्या भगवान् विष्णु की आज्ञा ! अरे, बड़ा कष्ट है।

अधिक दिनों से रहने के कारण मैं (इस) राजा को छोड़ नहीं सकती हूं। (छोड़ते समय) यह बलवान् और गुणग्राही राजा मुझे बहुत ही सन्ताप दे रहा है॥ ८॥

अच्छा, भगवान् विष्णु की आज्ञा का उल्लंघन कर नहीं सकती। तो मैं भी विष्णु के पास ही जाऊंगी। (चली गयी)

शापः—अपक्रान्ता राजश्रीः ! हन्तेदानीमिदमस्माकमावासः संवृत्तः। अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! अभ्यन्तरं प्रविश्य स्वजातिसदृशी क्रीडा क्रियताम्।

सर्वाः—अज्जप्पहुदि अवणीदधम्मचारित्तो होहि। [अद्यप्रभृत्यपनीतधर्मचारित्रो भव।]

शापः—

परिष्वजामि गाढं त्वां नित्याधर्मपरायणम्।
प्राप्नोमि मुनिशापस्त्वामचिरान्नाशमेष्यसि ॥ ९ ॥

(अन्तर्हितः।)

शाप इति। अपक्रान्ता = कंसशरीरं त्यक्त्वाऽपगता। हन्त = हर्षद्योतकमव्ययपदम्। इदम् = कंसहृदयम्। आवासः = निवासस्थानम्। स्वजातिसदृशी = स्वजातिगुणोचिता। क्रीडा = लीला।

कंसमाविशन् शापो ब्रवीति—परिष्वजामि गाढमिति। नित्याधर्मपरायणम्—नित्यम् = सदा, अधर्मे अनाचारे, परायणम् = संसक्तम्, त्वाम् = कंसम्। गाढम् = दृढम्, परिष्वजामि = आलिङ्गामि ('परिष्वजामि' इत्यत्र परस्मैपदत्वं चिन्त्यम्, 'परिष्वजे' इति प्रयोगः समीचीनः।) मुनिशापः—मुनेः = मधूकस्य, शापः = वज्रबाहुरहम्, त्वाम् = कंसम्, प्राप्नोमि = आविशामीत्यर्थः। (त्वम्) अचिरात् = शीघ्रमेव, नाशम् = मृत्युम्, एष्यसि = प्राप्स्यसि। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ९ ॥

शाप—राजश्री चली गयी। हर्ष का विषय है कि अब यह हमारा घर हो गया। अलक्ष्मि ! खलति ! कालरात्रि ! महानिद्रे ! पिङ्गलाक्षि ! भीतर घुस करके अपनी जाति के योग्य क्रीडा करो।

सब—आज से तुम (कंस) धर्माचरण से रहित हो जाओ।

शाप—मैं तुझ सदा अधर्मपरायण का दृढ़ आलिङ्गन करता हूँ। मुनि का शाप मैं तुझे पकड़ता हूँ। तू शीघ्र नाश को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥

(अदृश्य हो गया)

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

राजा—हम् !

प्रतिहारी—भट्टा ? जसो धरा खु अहं । [भर्तः ! यशोधरा खल्वहम् ।]

राजा—यशोधरे ? किं त्वया मातङ्गीजनप्रवेशो न दृष्टः ।

प्रतिहारी—हं मादङ्गिजणत्ति । णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स व जणस्स, इह प्पवेसो दुल्लहो, किं उण मादङ्गिजणस्स । [हं मातङ्गीजन इति, नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्यैव जनस्येह प्रवेशो दुर्लभः, किं पुनर्मातङ्गीजनस्य ।]

राजा—किं स्वप्नो नु मयानुभूतः । यशोधरे ! गच्छ । बालाकिः काञ्चुकीयः प्रवेश्यताम् ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता ।) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः ।

(प्रवेश कर)

प्रतिहारी—स्वामी की जय हो ।

राजा—ऐं (कौन ?)

प्रतिहारी—स्वामी ! मैं यशोधरा हूँ ।

राजा—यशोधरा ! क्या तुमने चाण्डालिनियों को प्रविष्ट होते नहीं देखा ?

प्रतिहारी—ऐं ! चाण्डालिनियाँ ! नित्य स्वामी के चरणों के पास बने रहने वाले लोगों का ही यहाँ प्रवेश दुर्लभ है, फिर चाण्डालिनियों की क्या बात ?

राजा—क्या मैंने स्वप्न देखा है ! यशोधरा ! जाओ, कञ्चुकी बालाकि को बुला लाओ !

प्रतिहारी—स्वामी की जो आज्ञा ।

(तदनन्तर कञ्चुकी प्रवेश करता है ।)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो ।

राजा—आर्य वालाके ! प्रष्टव्यौ सांवत्सरिकपुरोहितौ—अद्य रात्रौ वातोद्भ्रामभूमिकम्पोल्कापाता दैवतप्रतिमाश्च प्रतिभासिताः किमर्थमिति।

काञ्चुकीयः—महाराज ! सांवत्सरिकपुरोहितौ विज्ञापयतः।

राजा—किमिति।

काञ्चुकीयः—श्रूयताम्।

भूतं नभस्तलनिवासि नरेन्द्र ! नित्यं
कार्यान्तरेण नरलोकमिह प्रपन्नम्।
आकाशदुन्दुभिरवैः समहीप्रकम्पै-
स्तस्यैष जन्मनि विशेषकरो विकारः ॥ १० ॥

कञ्चुकी सांवत्सरिकपुरोहितभाषितं कंसाय राज्ञे निवेदयति—भूतमिति। हे नरेन्द्र = राजन् ! नित्यम् = अविनाशि, नभस्तलनिवासि—नभस्तले = आकाशे निवसति यत् तत्, भूतम् = तत्त्वम् दिव्यशक्ति सम्पन्नो विष्णुरित्यर्थः। कार्यान्तरेण = कार्यविशेषेण, मर्त्यानां कल्याणार्थमित्यर्थः। इह नरलोकम् = मृत्युलोकम्, प्रपन्नम् = अवतीर्णम्। तस्य = भूतस्य जन्मनि = प्रादुर्भाव-काले, आकाशदुन्दुभिरवैः—आकाशे = गगने दुन्दुभीनाम् = भेरीणां रवैः = शब्दैः, समहीप्रकम्पैः = भूकम्पसहितैः, एषः = अनुभूयमानः, विशेषकरः = विशेषम् = विशेषफलमित्यर्थः करोतीति तथोक्तः, विशेषफलसूचकः, विकारः अशुभदर्शनरूपः, संजात इति शेषः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १० ॥

राजा—आर्य वालाकि ! ज्योतिषी और पुरोहित से पूछना है—आज रात में आँधी, भूकम्प, उल्कापात और देवताओं की मूर्तियाँ जो दिखायी पड़ीं उनका क्या फल है ?

कञ्चुकी—महाराज ! ज्योतिषी और पुरोहित बताते हैं।

राजा—क्या ?

कञ्चुकी—सुनिये—

राजन् ! अन्तरिक्ष में निवास करने वाला अविनाशी तत्त्व (ब्रह्म) विशेष कार्य से (कल्याणार्थ) इस मृत्युलोक में प्रादुर्भूत हुआ है। उसके प्रादुर्भाव के समय भूकम्प के साथ-साथ आकाश में दुन्दुभी की ध्वनि से उपलक्षित यह विशेषफल सूचक अशुभ-दर्शनरूप विकार हुआ है ॥ १० ॥

राजा—

कस्मिञ्जाते सशैलेन्द्रा कम्पितेयं वसुन्धरा ।
ज्ञायतां कस्य पुत्रोऽयं किं वा जन्मप्रयोजनम् ॥ ११ ॥

इति ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराज ! प्रसूतवती किल देवकी ।

राजा—किं प्रसूतम् ।

काञ्चुकीयः—दारिका प्रसूता ।

राजा—मा तावत् । एतानि महानिमित्तानि दारिकाप्रसूतिमात्रेण उत्पद्यन्ते ?

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महाराजः । अनृतं नाभिहितपूर्वं मया । भवतो भृत्यवर्गपरिवृत्ताया: धात्र्या हस्ते दृष्टा सा ।

राजा कंसः कञ्चुकीमाज्ञापयति—कस्मिन्निति । कस्मिन् = प्राणिनि, जाते = प्रादुर्भूते, इयम् = वर्तमाना, सशैलेन्द्रा = गिरिराजसहिता, वसुन्धरा = पृथिवी, कम्पिता = प्रचलिता । अयम् = प्रादुर्भूतः, कस्य = पुरुषविशेषस्य, पुत्रः = सुतः वा = अथ च, जन्मप्रयोजनम् = उत्पत्तिहेतुः, किमिति ज्ञायताम् । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ११ ॥

राजा—किस के प्रादुर्भूत होने पर पर्वतों के सहित यह धरती डगमगा उठी । पता लगाओ-यह किसका पुत्र है और इसके जन्म लेने का प्रयोजन क्या है ॥ ११ ॥

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा । (निकल कर पुनः प्रवेश कर) महाराज ! देवकी ने सन्तान को जन्म दिया है ।

राजा—क्या पैदा हुआ है ?

कञ्चुकी—लड़की पैदा हुई है ।

राजा—ऐसा नहीं । इतने बड़े शकुन (कहीं) केवल लड़की के पैदा होने से होते हैं ?

कञ्चुकी—महाराज प्रसन्न हों । मैंने (कभी) पहिले भी झूठ नहीं कहा है ! आप के सेवक समूह से घिरी धाई के हाथ में उसे देखा है ।

राजा—अथवा ब्राह्मणवचनमनृतमपि सत्यं पश्यामि। गच्छ, वसुदेवस्तावदाहूयताम्।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः।)

राजा—धर्मशीलः सत्यवादी वसुदेवः। अथ तु मम समीपेऽनृतं न ब्रवीति। भवतु, श्रोष्यामस्तावत्।

(ततः प्रविशति वसुदेवः।) 9530/

वसुदेवः—

षण्णां सुतानां समुपेत्य नाशं वहन्निदं शोककृशं शरीरम्।
आहूयमानोऽकरुणेन राज्ञा गच्छाम्यहं भृत्य इवास्वतन्त्रः ॥ १२ ॥

राज्ञा कंसेनाहूतो वासुदेवः स्वकीयां दशां निरूपयन्नाह—षण्णामिति। षण्णाम् = षट्संख्याकानाम् सुतानाम् = पुत्राणाम्, नाशम् = निधनम्, समुपेत्य = प्राप्य, इदम्, शोककृशम्—शोकात् = पुत्रवधजनितदुःखात् कृशम् = क्षीणम्, शरीरम् = देहम्, वहन् = धारयन्, अकरुणेन = निर्दयेन राज्ञा = नृपेण कंसेनेत्यर्थः, आहूयमानः = आकार्यमाणः, अहम् = वासुदेवः, अस्वतन्त्रः = पराधीनः, भृत्यः = सेवक इव, गच्छामि = यामि नृपसकाशमिति भावः। इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम्। उपमाऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

राजा—अथवा ब्राह्मण के मिथ्या भी वचन को सत्य समझता हूँ। जाओ, जरा वसुदेव को बुला लाओ।

कञ्चुकी—महाराज की जो आज्ञा। (चला गया)

राजा—वसुदेव धर्मात्मा और सत्यवादी हैं। वे मेरे सामने झूठ नहीं बोलते हैं। अच्छा, हम सुनेंगे।

(तदनन्तर वसुदेव प्रवेश करते हैं।)

वसुदेव—

छः पुत्रों के नष्ट होने से शोक के कारण इस क्षीण शरीर को धारण किये हुए मैं निर्दयी राजा के द्वारा बुलाया गया परतन्त्र सेवक की तरह (उसके समीप) जा रहा हूँ ॥ १२ ॥

भोः ! एवंविधा लोकवृत्तिः ।

स्मरतापि भयं राजा भयं न स्मरतापि वा ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥ १३ ॥

(उपसृत्य) शौरसेनीमातः ! आस्यते ।

राजा— यादवीमातः । आस्यताम् ।

वसुदेवः —बाढम् । (उपविश्य) शौरसेनीमातः ? किमर्थं वयमाहूताः ।

भोरिति । एवंविधा = ईदृशी । लोकवृत्तिः = संसारस्य व्यवहारः । तामेव लोकवृत्तिं निरूपयति—स्मरतापीति । भयम् = भीतिम्, स्मरतापि = मनसि कुर्वतापि, वा = अथवा, भयं न स्मरतापि = भीतिं न कुर्वतापि, उभाभ्यामपि = द्विप्रकारकाभ्यामपि पुरुषाभ्यां, भयात् अपि = भीतभावादपि, अभयादपि = निर्भीकभावादपि, राजा = नृपः, गन्तव्यः = गमनीयो भवति ।

राज्ञाऽऽहूयमानः कश्चिन्मनसि भयं कुर्यादन्यो वा न भयं कुर्यात् किन्तु द्वावपि पुरुषौ विवशौ भूत्वा स्थितिद्वयेऽपि भीतभावादपि निर्भीकभावादपि नृपसकाशं गच्छत एवेति स्पष्टार्थः । तस्माद्भयेन किञ्चित्साध्यं नास्ति, मया वसुदेवेन निर्भयं तत्र गन्तव्यमिति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १३ ॥

उपसृत्येति । शौरसेनीमातः = शौरसेनी माता यस्य तत्सम्बुद्धौ तथोक्त । 'शौरसेनीमातः' इत्यपाणिनीयप्रयोगः, नद्यृतश्चेति सूत्रेण कपो दुर्वारत्वादिति बोध्यम् । एवमग्रे 'यादवीमातः' इत्यत्रापि बोध्यम् । शौरसेनीमातः = हे कंस ! इत्यर्थः । यादवीमातः = हे वसुदेव ! इत्यर्थः ।

अरे ! ऐसा (ही) संसार का व्यवहार है ।

भय करने वाले को भी अथवा भय न करने वाले को भी, दोनों को डर के कारण भी अथवा अभय के कारण भी (दोनों स्थितियों में) राजा के पास जाना ही पड़ता है ॥ १३ ॥

(समीप जा कर) शौरसेनी नामक माता वाले (कंस) ! मैं उपस्थित हूँ ।

राजा—यादवी माता वाले (वसुदेव) ! बैठ जाइए ।

वसुदेव—अच्छा । (बैठ कर) हे शौरसेनी माता वाले (कंस) ! किसलिए हमें बुलाया गया है ?

राजा—यादवीमातः! प्रसूतवती किल देवकी ?

वसुदेवः—अथ किम्, प्रसूतवती।

राजा—किं प्रसूतम्।

वसुदेवः—(आत्मगतम्) मयापि नामानृतं वक्तव्यं भविष्यति। अथवा कुमाररक्षणार्थमनृतमपि सत्यं पश्यामि। किमिदानीं करिष्ये भवतु, दृष्टम्। (प्रकाशम्) दारिका प्रसूता तया।

राजा—

दारिका वा कुमारो वा हन्तव्यः सर्वथा मया।
दैवं पुरुषकारेण वञ्चयिष्याम्यहं ध्रुवम्॥ १४॥

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा। अम्हाअं भट्टिणी विण्णवेदि-दारिअत्ति

वसुदेवमुखादपि दारिका जन्म श्रुत्वा कंसः कथयति—दारिका वेति। दारिका = पुत्री वा, कुमारः = पुत्रो वा, मया = कंसेन, सर्वथा = सर्वप्रकारेण हन्तव्यः = संहर्तव्यः, अहम् = कंसः, पुरुषकारेण = पुरुषार्थेन, दैवम् = भाग्यम्, ध्रुवम् = निश्चितम्, वञ्चयिष्यामि = प्रतारयिष्यामि, परिवर्तयिष्यामीति यावत्। अनुष्टुव्वृत्तम्॥ १४॥

राजा—हे यादवी माता वाले (वसुदेव)! सुना जाता है कि देवकी ने बच्चा जना है।

वसुदेव—हाँ, जना है।

राजा—क्या उत्पन्न हुआ है ?

वसुदेव—(स्वगत) मुझे भी असत्य बोलना होगा। अथवा पुत्र की रक्षा के लिए मैं असत्य को भी सत्य समझता हूँ। अब क्या करना चाहिए ? अच्छा, समझ गया। (प्रकट उसने बच्ची को जन्म दिया है।

राजा—

लड़की हो या लड़का, उसे तो मुझे सर्वथा मारना ही है। मैं पुरुषार्थ के द्वारा अवश्य ही भाग्य को ठगूंगा (परिवर्तित कर दूंगा)॥ १४॥

(प्रवेश कर)

प्रतिहारी—स्वामी की जय हो। हमारी स्वामिनी (देवकी) निवेदन

बालेत्ति अ करीअदु किल महाराएण अणुक्कासो । [जयतु भर्त्ता । अस्माकं भट्टिनी विज्ञापयति-दारिकेति बालेति च क्रियतां किल महाराजेनानुक्रोशः]

वसुदेवः—शौरसेनीमातः ! क्रियतां तपस्विन्या देवक्या वाक्यम्। दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति ।

राजा—किं भवान् स्मरति समयम् !

मधूकस्य ऋषेः शापं श्रुत्वा मे समयस्तदा ।
देवक्या धारितान् गर्भान् दास्यामीति त्वया कृतः ॥ १५ ॥

वसुदेवः—समय इति । एप न व्याहरामि ।

प्रतिहारी—भट्टा किं त्ति अम्हाअं भट्टिणीए णिवेदिदव्वं । [भर्तः ! किमित्यस्माकं भट्टिन्यै निवेदयितव्यम् ।

प्रतिहारीति । भट्टिनी = स्वामिनी, देवकीत्यर्थः । विज्ञापयति = निवेदयति । महाराजेन = कंसेनेत्यर्थः । अनुक्रोशः = करुणा ।

वसुदेव इति । तपस्विन्याः = वराक्याः । दारिकासु = कन्यासु । वसुदेववचो निशम्य कंसो वसुदेवेन तत्कृतपूर्वं समयं स्मारयति—मधूकस्येति । मे = मयि, कंसविषये इत्यर्थः । मधूकस्य = तन्नाम्नः, ऋषेः = महर्षेः, शापम् = अवक्रोशम्, देवक्या अष्टमो बालकस्त्वां (कंसं) हनिष्यतीतिरूपम् , श्रुत्वा = आकर्ण्य, त्वया = वसुदेवेन, देवक्या = मद्भगिन्या धारितान् गर्भान् = शिशूनित्यर्थः, दास्यामि = अर्पयिष्यामि, इति = एवंरूपः, समयः = संविद् ('समयाः शपथाचारकालसिद्धान्त संविदः' इत्यमरः ।) कृतः = विहितः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१५॥

कर रही हैं कि कन्या और बच्ची है—ऐसा समझ कर महाराज (इस पर) दया करें ।

वसुदेव—हे शौरसेनी के पुत्र ! दुखिया देवकी की प्रार्थना आप मान लें । लड़कियों पर स्त्रियों का अपेक्षाकृत अधिक स्नेह होता है ।

राजा—क्या आप को (अपनी) शर्त का स्मरण है ?

मधूक ऋषि के शाप को सुन कर उस समय तुमने मुझ से शर्त की थी कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बच्चों को दे दिया करूँगा ॥ १५ ॥

वसुदेव—शर्त ! अब कुछ नहीं बोलना है ।

प्रतिहारी—स्वामी ! हमें स्वामिनी (देवकी) से क्या निवेदन करना होगा ?

राजा—यशोधरे ! उच्यतां देवक्याः-न युक्तमिदानीं निर्बन्धमभिधातुम् । अन्यत् प्रियतरं करिष्यामीति ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—यशोधरे ! एवं क्रियताम् ।

प्रतिहारी—सुहं प्रविसदु किल भट्टा । [सुखं प्रविशतु किल भर्ता ।]

वसुदेवः—विविक्तमिच्छता ममापि नाम परापत्यं निधनमुपनेतव्यं भवति । किन्तु खलु कुमारमेवानीय प्रयच्छामि । अथवा,

दारिकेयं मृता पूर्वं पुनरेव समुत्थिता ।
अस्य बालस्य माहात्म्यान्नैषा वधमवाप्स्यति ॥ १६ ॥

वसुदेव इति । विविक्तमिच्छता - विभेदं कुर्वतेत्यर्थः, स मम पुत्रः, इयं तु परकीया कन्या इति भेदं कुर्वतेति भावः ।

वसुदेवो दारिकासमर्पणनिश्चयमुपपादयति —दारिकेयमिति । इयम् = वर्तमाना । दारिका = कन्या । पूर्वम् = प्राप्तिकाले । मृता = प्राणविहीना ! पुनरेव = पश्चात् । समुत्थिता = जीविता । अस्य बालस्य = एतस्य मम पुत्रस्य । माहात्म्यात् = प्रभावात् । एषा = कन्या । वधम् = मृत्युम्, न अवाप्स्यसि = न लप्स्यते । यथेयं दारिका पूर्वं मृताऽऽसीत् किन्तु मदीयतत्पुत्रप्रभावात् पुनरुज्जीविता जाता तथैवेयं तत्प्रभावेण कसेनापि हन्तुं न शक्यते इति मे द्रढीयान्

राजा—यशोधरे ! देवकी से कह दो कि इस समय (ऐसी) दुराग्रह की बात उसे कहना उचित नहीं है । कोई दूसरा उसका इससे भी अधिक अभीष्ट कार्य (दूसरे समय) कर दूंगा ।

प्रतिहारी—जो स्वामी की आज्ञा ।

राजा—यशोधरे ! ऐसा करो !

प्रतिहारी—स्वामी सुख से प्रवेश करें ।

वसुदेव—(स्वगत ?) अपने और पराये के भेदभाव की चाह से (इस समय) मेरे द्वारा भी परायी सन्तान की हत्या होगी । तो क्या कुमार को ही लाकर दे दूँ । अथवा,

यह बालिका पहले मर चुकी थी किन्तु इस बालक के प्रभाव से (जब) पुनरुज्जीवित हो गई (तो) यह मृत्यु को नहीं प्राप्त होगी ॥ १६ ॥

यावदहमपि देवकीं समाश्वासयामि। (निष्क्रान्तः।)

राजा—यशोधरे प्रवेश्यतां सा दारिका।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि। [यद् भर्ता आज्ञापयति] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति दारिकां गृहीत्वा धात्री रक्षिपुरुषाश्च।)

सर्वे—सणिअं सणिअं अय्या। इदं मज्झमदुवालं। पविसदु अय्या। [शनैः शनैरार्या। इदं मध्यमद्वारम्। प्रविशत्वार्या।]

धात्री—(प्रविश्य) जेद भट्टा। इअं दारिआ अम्हेहि चिरप्पहुदि रक्खिदा। (जयतु भर्ता। इयं दारिकास्माभिश्चिरात् प्रभृति रक्षिता।]

राजा—अहो! राजदर्शनीयेयं दारिका। मयापि नाम स्त्रीवधः कर्तव्यो भवति।

धात्री—सणिअं सणिअं भट्टा! [शनैः शनैः भर्तः!]

राजा—इयं कंसशिला। यावत् साहसमनुष्ठास्यामि।

विश्वासः। तदस्याः समर्पणे न कामपि हानिं पश्यामि इति वसुदेवोक्तेराशयः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १६॥

अतः मैं भी देवकी को धैर्य बंधाऊँ। (चला गया)

राजा—यशोधरे! उस बालिका को ले आओ।

प्रतिहारी—जो स्वामी की आज्ञा। (चली गयी।)

(तदनन्तर बालिका को लेकर धाई और रक्षा पुरुष प्रवेश करते हैं।)

सर्व—धीरे-धीरे आर्या (चलें)। यह बिचला द्वार है। आर्या प्रवेश करें।

धात्री—(प्रवेश करके) स्वामी की जय हो। हमने बड़ी देर से इस बालिका की रक्षा की है।

राजा—अहो! यह बालिका राजाओं के दर्शन योग्य है। मुझे भी स्त्री जाति का वध करना पड़ रहा है।

धात्री—स्वामी! धीरे-धीरे (चलें):

राजा—यह कंसशिला है तो मैं साहस करता हूँ।

अयं हि सप्तमो गर्भ ऋपिशापबलोत्थितः ।
अस्मिन् नाशं गते गर्भे मम शान्तिर्भविष्यति ॥ १७ ॥

(गृहीत्वा प्रहृत्य) अये,

एकांशः पतितो भूमावेकांशो दिवमुन्नतः ।
मां निहन्तुमिहोद्भूतः करैः शस्त्रसमुज्ज्वलैः ॥ १८ ॥

अये इयमिदानीं

कंसो दारिकावधे स्वोद्देश्यं निरूपयति—अयं हीति । हि = यतः, ऋषिशापबलोत्थितः—ऋषेः = मधूकस्य, यः शापः तस्य बलेन=प्रभावेण, उत्थितः= प्रादुर्भूतः । अयम् = पुरोवर्ती, सप्तमः (देवक्याः) गर्भः = शिशुः, दारिकारूप इति भावः । अस्मिन् गर्भे = शिशौ, नाशं गते = निधनं प्राप्ते (भावे सप्तमी) मम = कंसस्य, शान्तिः = परिरक्षणम्, भविष्यति । मम मृत्युभयं दूरमपसरिष्यतीत्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

कंसस्तां दारिकां गृहीत्वा, प्रहृत्य तदाश्चर्यमयं रूपं दृष्ट्वाऽऽह—एकांश इति । (अस्य गर्भस्य) एकांशः = एको भागः । भूमौ = पृथिव्याम्, पतितः, एकांशः = अपरो भागः, दिवम्=आकाशम्, उन्नतः=उत्पतितः । शस्त्रसमुज्ज्वलैः= शस्त्रैः = विविधैः आयुधैः, समुज्ज्वलैः विभूषितैः, करैः = बाहुभिः, माम् = कंसम्, निहन्तुम् = मारयितुम् । इह = भूतले, उद्भूतः = अवतीर्णः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

यह ऋषि (मधूक) के शाप से प्रादुर्भूत सातवाँ गर्भ है । इसके नष्ट हो जाने पर मुझे शान्ति हो जायगी ॥ १७ ॥

(लेकर प्रहार करके) अरे !

इसका एक भाग भूमि पर पड़ा है और दूसरा आकाश में पहुँच गया है । शस्त्रों से विभूषित बाहुओं से मुझे मारने के लिए इस लोक में यह (बालिका) अवतीर्ण हुई है ॥ १८ ॥

अरे ! इस समय यह—

तीक्ष्णाग्रं शूलमालम्ब्य रौद्रवेषेण जृम्भते ।
विनाशकाले सम्प्राप्ते कालरात्रिरिवोत्थिता ॥ १९ ॥

(ततः प्रविशति कात्यायनी सपरिवारा ।)

कात्यायनी—

शुम्भं निशुम्भं महिषं च हत्वा कृत्वा सुरांस्तान् हतशत्रुपक्षान् ।
अहं प्रसूता वसुदेववंशे कात्यायनी कंसकुलक्षयाय ॥ २० ॥

कंसस्तस्या दारिकायास्तदानीन्तनं स्वरूपं वर्णयति—तीक्ष्णाग्रमिति । इदानीम् = सम्प्रति, इयम् = दारिका, विनाशकाले = प्रलयसमये सम्प्राप्ते = आगते सति, उत्थिता = प्रादुर्भूता, कालरात्रिरिव = विश्वविनाशसूचकमहाप्रलयरात्रिरिव, दुर्गेवेत्यर्थः । तीक्ष्णाग्रम्—तीक्ष्णम् = निशितम्, अग्रम् = अग्रभागो यस्य तादृशम्, शूलम् = त्रिशूलम् , आलम्ब्य = करेण गृहीत्वा, रौद्रवेषेण = भयङ्कररूपेण जृम्भते = सर्वत्र प्रसरति । उपमाऽलङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥

कात्यायनी स्वप्रादुर्भावप्रयोजनमाह—शुम्भमिति । शुम्भम् = शुम्भनामानम् असुरम्, निशुम्भम् = निशुम्भनामानमसुरम्, महिषम् = महिषासुरं च, हत्वा = मारयित्वा, तान् = असुरपीडितान्, सुरान् = देवान्, हतशत्रुपक्षान्—हतः = विनाशितः, शत्रुपक्षः = अरिसमुदयो येषां तथाविधान् कृत्वा, अहम् कात्यायनी= कात्यायनीति नाम्ना प्रसिद्धा देवी, कंसकुलक्षयाय—कंसस्य कुलम् = वंशः, तस्य क्षयाय = संहाराय, वसुदेववंशे—वसुदेवस्य, वंशे = कुले, प्रसूता = प्रादुर्भूता उपजातिर्वृत्तम् ॥ २० ॥

तीखे नोक वाले त्रिशूल को लेकर भयंकर रूप से; प्रलयकाल के आ जाने पर कालरात्रि (कालिका) के समान सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥ १९ ॥

(तदन्तर परिवार समेत कात्यायनी प्रवेश करती है ।)

कात्यायनी—(पहले) शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुर का वध करके उन देवताओं के शत्रु-समुदाय का विनाश कर (अब) मैं कात्यायनी कंस के कुल को विनष्ट करने के लिए वसुदेव के वंश में उत्पन्न हुई हूँ ॥ २० ॥

कुण्डोदरः—

कुण्डोदरोऽहमजितो रणचण्डकर्मा
देव्याः प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः ।
शीघ्रं प्रयामि गगनादवनिं विशालां
दृप्तान् जिघांसुरसुरानतिवीर्यदर्पान् ॥ २१ ॥

शूलः—

शूलोऽस्मि भूतमिह भूमितले प्रपन्नो
देव्याः प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः ।

कुण्डोदरो नाम देव्या अनुचरः स्वपरिचयं ददाति—कुण्डोदर इति । अहम् कुण्डोदरः = तन्नाम्ना प्रसिद्धः, देव्या अनुचरः, अजितः = रिपुभिर्जेतुमशक्यः, रणचण्डकर्मा -- रणे = युद्धे, चण्डम् = भयंकरम्, कर्म = कृत्यं यस्य तथाविधः, देव्याः = कात्यायन्याः, प्रसूतिजनितोग्रमहानिनादः—प्रसूत्या = प्रादुर्भावेण जनितः = उत्थितः, उग्रः = भयंकरः, महानिनादः = घोर शब्दो यस्य स तथाविधः, अतिवीर्यं दर्पान्—अतिवीर्येण = पराक्रमातिशयेन दर्पः = अहंकारो येषां तान्, दृप्तान् = गर्वितान्, असुरान् = दैत्यान्, (न लोकाव्ययेति षष्ठी निषेधः ।) जिघांसुः = हन्तुमिच्छुः, गगनात् = अन्तरिक्षात्, विशालाम् = विस्तृताम्, अवनिम् = भूमिम्, शीघ्रम् = सपदि, प्रयामि = गच्छामि । वसन्ततिलका ॥ २१ ॥

शूलः स्वपरिचयं ददाति—शूलोऽस्मीति । देव्याः = कात्यायन्याः, प्रसादजनितोज्ज्वलचारुवेषः—प्रसादेन = अनुग्रहेण, जनितः = उत्पन्नः, उज्ज्वलः =

कुण्डोदर—मैं (शत्रुओं से) अजेय, युद्ध में भयंकर कर्म करने वाला, देवी के प्रादुर्भाव से जनित भयंकर गर्जना करने वाला कुण्डोदर हूँ । पराक्रम के आधिक्य से दर्प युक्त गर्वीले असुरों का वध करने की इच्छा से आकाश से विशाल धरती पर शीघ्र जा रहा हूँ ॥ २१ ।

शूल—देवी के प्रसाद से सम्पन्न दीप्त एवं सुन्दर स्वरूप वाला मैं शूल यहाँ भूतल पर अवतीर्ण हुआ हूँ । जिस प्रकार स्वामिकार्त्तिकेय ने समुद्र के उस

कंसं निहत्य समरे परिकर्षयामि
तं पादपं जलनिधेरिव कार्तिकेयः ॥ २२ ॥

नीलः—

अहं हि नीलः कलहस्य कर्ता सङ्ग्रामशूरो नपराङ्मुखश्च ।
निहन्मि कंसं युधि दुर्विनीतं क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः ॥ २३ ॥

दीप्तिमान्, चारुः = सुन्दरः; वेषः = स्वरूपं यस्य स तथोक्तः, इह=अत्र, भूमितलम् = भूतलम्, प्रपन्नः = अवतीर्णः, शूलः=शूलनामा, भूतम् = सत्त्वविशेषः शस्त्रविशेष इति यावत्, अस्मि। जलनिधेः=समुद्रस्य, तम् = प्रसिद्धम्, पादपम्= वृक्षम्, कार्त्तिकेयः = कृत्तिकानाम् अपत्यंपुमान्, स्कन्द इत्यर्थः, स इव, समरे = युद्धे, कंसं निहत्य = संहृत्य, परिकर्षयामि = परितो नयामि, (वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्) ॥वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २२ ॥

नीलो नाम कोऽपि देव्यनुचरः स्वमाहात्म्यमभिव्यनक्ति —अहं हीति । अहं हि नीलः=नीलाभिधानः, कलहस्य = विग्रहस्य, कर्त्ता = कारकः, संग्रामशूरः = संग्रामे=रणे, शूरः = वीरः, न पराङ्मुखः संग्रामात् कदापि न पलायनकर्ता (अस्मि) । यथा = येन प्रकारेण क्रौञ्चम्=क्रौञ्चाभिधानम् अचलम्, प्रकृष्टः= शक्तिसम्पन्नः, शक्तिधरः=कार्त्तिकेयः (शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः इति कार्तिकेयपर्यायेष्वमरः ।) युधि=रणे, दुर्विनीतम्=दुराचारम्, कंसम्, निहन्मि= संहरिष्यामीत्यर्थः (वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्) उपमाऽलङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ २३ ॥

(प्रसिद्ध) वृक्ष को नष्ट किया था, उसी प्रकार युद्ध में मैं कंस को मार कर चारों ओर घसीटूंगा ॥ २२ ॥

नील —मैं कलहकर्ता, युद्ध वीर, (संग्राम से) पलायन न करने वाला नील हूं । जैसे वीरोत्तम स्वामिकार्त्तिकेय ने क्रौंच पर्वत को विदीर्ण किया था उसी प्रकार मैं युद्ध में कंस का वध करूंगा ॥ २३ ॥

मनोजवः—

मनोजवो मारुततुल्यवेगो देव्यास्तु कार्यार्थमिहोपयातः ।
करोमि सङ्ग्रामशिरःसु दैत्यान् वह्निर्नलानां निलयं यथैव ।। २४ ।।

कात्यायनी—कुण्डोदर ! शङ्कुकर्ण ! महानील ! मनोजव ! तदागम्यताम् । भगवतो विष्णोर्बालचरितमनुभवितुं गोपालकवेषप्रच्छन्ना घोपमेवावतरिष्यामः ।

सर्वे—यदाज्ञापयति भगवती । (निष्क्रान्ता सपरिवारा कात्यायनी ।)

राजा—अये प्रभाता रजनी ।

मनोजवो नाम कश्चिदपरो देव्यनुचरः स्वमाहात्म्यमभिव्यनक्ति—मनोजव इति । मनोजवः—मनसः जवः = वेग इव जवो यस्य सः, एतदभिधानः (अहम्) मारुततुल्यवेगः—मारुतः = पवनः, तत्तुल्यो वेगो यस्य स तथाविधः, देव्याः = कात्यायन्यास्तु कार्यार्थम् = कार्यं साधयितुम्, इह = अत्र भूमौ, उपयातः प्राप्तः । यथा = येन प्रकारेण वह्निः = अग्निः, नलानाम् = तृण विशेषाणाम्, निलयम् = समूहम् (भस्मसात्) करोति (तथैव) संग्रामशिरःसु = रणभूमिषु दैत्यान् = असुरान् (विनष्टान्) करोमि । उपजातिवृत्तम् । उपमाऽलंकारः ।। २४ ।।

मनोजव—मैं वायु के समान वेग वाला मनोजव देवी (कात्यायनी) का कार्य सम्पन्न करने के लिए यहाँ आया हूँ । जैसे अग्नि नल (नरकट) के समूह को (भस्मसात्) कर देती है, वैसे ही मैं रणभूमि में असुरों को (विनष्ट) कर देता हूँ ।। २४ ।।

कात्यायनी—कुण्डोदर, शङ्कुकर्ण, महानील मनोजव ! तो आओ भगवान् विष्णु की बाललीला का आनन्द लेने के लिए गोपों के वेष में छिप कर हमलोग गोप-बस्ती में अवतीर्ण हों ।

सव—जो भगवती की आज्ञा । (परिवार समेत कात्यायनी निकल गयी ।)

राजा—अरे ! सवेरा हो गया ।

अन्तः प्रविश्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्मोचितं गृहम् ।
करोमि विपुलां शान्तिं मम शान्तिर्भविष्यति ॥ २५ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

—: ❀ :—

कंसः स्वचिकीर्षितमिदानीमभिव्यनक्ति—अतः प्रविश्येति । अतः, शान्त्यर्थम्, शान्तिकर्मोचितम् = शान्तिकर्मयोग्यम्; गृहम् = सदनम्, प्रविश्य, विपुलाम् = महतीम्, शान्ति = शान्तिकर्म, करोमि (येन) मम = कंसस्य, शान्तिः = शमः, भविष्यति । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २५ ॥

इति 'कल्याणी' व्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः ।

—: ० :—

अतः शान्तिकर्म के योग्य घर में शांतिकर्म करने के लिये प्रवेश कर खूब शान्तिकर्म करूँ । (उससे) मुझे शान्ति मिलेगी ॥ २५ ॥

(सब चले गये ।)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।



तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—भो मेघदिण्ण ! क्खु, वषभदिण्ण । क्खु कुम्भदिण्ण । क्खु, घोषदिण्ण । क्खु पकालेथ पकालेथ गोधणं । एदे ण्प वुन्दावणे पकामं पाणीअं पादूणं हुम्भारवं करन्तो आअन्तु गोधणं । एषो गोवज्जहादा णिक्कमिअ परिघट्टिअवम्मीअमूलो भुजङ्गेहि कुवण्णेहि णीलुप्पलादामेहि षिगलग्गेहि विअ वषभो षोभदि । अण्णो वि एषो वषभा उाषदप्पषारिअपुच्छो णिकुञ्चिअजाणू षषीव धवलङ्गो अग्गविषाणेहि महीं उव्वहन्तो विअ षोभदि । जाव दाणि दामअं षद्दावआमि । अले दामअ ! भअवदीणं षुथले ओदालिअ षहवच्छाणं तुवं पि आअच्छ । [भो मेघदत्त ! खलु, वृषभदत्त ! खलु, कुम्भदत्त ! खलु, घोषदत्त ! खलु, प्रकालयत प्रकालयत गोध-

---

वृद्धगोपाल इति । प्रकालयत = प्रेरयत । गोव्रजात् = गोसमुदायात् । परिघट्टित-वल्मीकमूलः—परिघट्टितम् = शृङ्गाभ्यां विदारितं, वल्मीकस्य मूलम् = अधो भागो येन स तथोक्तः । भुजङ्गैः = सर्पैः । कुवर्णैः = श्यामैरित्यर्थः । शृङ्गलग्नैः = शृङ्गयोः लग्नैः = संसक्तैः । उच्छ्रितप्रसारितपुच्छः—उच्छ्रितः = उन्नमितः, प्रसारितः = ऊर्ध्वं विस्तारितः पुच्छो येन स तथोक्तः । निकुञ्चितजानुः—निकुञ्चिते = न्युब्जीकृते जानुनी येन स तथोक्तः । शशीव =

(तदनन्तर वृद्धगोपालक प्रवेश करता है ।)

वृद्धगोपालक—अजी मेघदत्त, वृषभदत्त, कुम्भदत्त और घोषदत्त ! गायों को को हांको हांको । इस वृन्दावन में यथेच्छ पानी पीकर हुङ्कार करती गायें आवें । यह गायों के झुण्ड से निकल कर वाल्मीक के मूलभाग से (सींगों से) खोदने के कारण एक बैल ऐसा शोभित हो रहा है मानों उसकी सींगों में काले सर्प अथवा नीलकमल की मालाएं लिपटी हैं । दूसरा भी यह बैल पूंछ को

नम। एतस्मिन् वृन्दावने प्रकामं पानीयं पीत्वा हुम्भारवं कुर्वदायतु गोधनम्। एष गोव्रजान् (?) निष्क्रम्य परिघट्टितवल्मीकमूलो भुजङ्गैः कुवर्णैः नीलोत्पलदामभिः शृङ्गलग्नैरिव वृषभः शोभते। अन्योऽप्येष वृषभ उच्छ्रितप्रसारितपुच्छो निकुञ्चितजानुः शशीव धवलाङ्गोऽग्रविषाणाभ्यां महीमुद्वहन्निव शोभते। यावदिदानीं, दामकं शब्दयामि। अरे दामक। भगवतीः सुस्थलेऽवतार्य सहवत्सास्त्वमप्यागच्छ।]

(ततः प्रविशति दामकः।)

दामकः—अहो महन्तं तिणजालं षामिण णन्दगोवष्ष। षुदजणणदिणादो आलहिअ अहिअदलं आणन्दुब्भुदं वड्ढइ। भोदु, इह चिट्ठदु गोधणं, जाव मादुलं उवषप्पिष्षं। (उपसृत्य) मादुल ! वन्दामि। [अहो महत् तृणजालं स्वामिनो नन्दगोपस्य। सुतजननदिनादारभ्याधिकतरमानन्दाद्भुतं वर्धते। भवतु, इह तिष्ठतु गोधनं, यावन्मातुलमुपसर्प्स्यामि। मातुल ! वन्दे।]

चन्द्र इव। धवलाङ्गः—धवलम् = शुभ्रम्, अङ्गम् = शरीरं यस्य स तथोक्तः। अग्रविषाणाभ्याम् = शृङ्गयोरग्रभागेन, महीम् = पृथ्वीम्। उद्वहन्निव = धारयन्निव। शब्दयामि = आह्वयामि, शब्दं करोमीत्यर्थे 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्। भगवतीः = गा इत्यर्थः। सुस्थले = शुष्के समतले च भूभागे।

दामक इति। महत् = पर्याप्तमित्यर्थः। तृणजालम् = शष्पराशिः। मातुलम् = वृद्धगोपालकमित्यर्थः।

ऊपर उठाये और फैलाए हुए तथा जाँघों को सिकोड़े हुए, चन्द्रमा के समान धवल शरीर वाला, सींगों के अग्रभाग से धरती को धारण करता हुआ-सा शोभित हो रहा है। तो मैं दामक को पुकारता हूँ। अरे ओ दामक ! बछड़ों सहित भगवती गौओं को सूखी समतल जमीन पर उतार कर तू भी आ जा।

(तदनन्तर दामक प्रवेश करता है।)

दामक—अहो ! स्वामी नन्दगोप की (यहाँ) पर्याप्त घास है। पुत्रजन्म के दिन से खूब विचित्र आनन्द बढ़ रहा है। अच्छा, गायें यहीं रहें, मैं मामा के पास जाऊँगा। (समीप जाकर) मामा ! प्रणाम।

वृद्धगोपालकः—षन्ती होदु षन्ती होदु अम्हाणं गोघणष्ष अ। [शान्तिर्भवतु शान्तिर्भवत्वस्माकं गोधनस्य च।]

दामकः—मादुल ! जदप्पहुदि णन्दगोवपुत्ते पषूदे, तदप्पहुदि अम्हाणं गोधणं वज्जिअरोअं षंवुत्तं। ण (णं ?) षव्वाणं गोवजणाणं पोदी वड्ढइ। अण्णं च, खादे खादे मूलाणि, फलाणि गुम्हें गुम्हे। मधु केत्तिअं दुघ्घदि क्खीरं तत्तअं एव्व घिदं। [मातुल ! यदाप्रभृति नन्दगोपपुत्रः प्रसूतः, तदाप्रभृत्यस्माकं गोधनं वर्जितरोगं संवृत्तम्। ननु सर्वेषां गोपजनानां प्रीतिर्वर्धते, अन्यच्च, खाते खाते मूलानि, फलानि गुल्मे गुल्मे। मधु कियद् दुह्यते क्षीरं तावद् एव घृतम्।]

वृद्धगोपालकः—अण्णं च इदं अच्छलिअं। दषरत्तप्पषूदे णन्दगोववुत्ते पूतणा णाम दाणवी विषषम्पूरिदत्थणा णन्दगोवीए रूवं गह्णिअ आअदा। तदो ताए दालअं गह्णिय तष्ष मुहे त्थणं पक्खित्तं। तदो तं विजाणिअ पुविदा पाडिदा चम्मवषेषा दाणवी भविअ तत्तो एव्व मुदा। तदो मापमत्ते णन्दगोववुत्तो षअडो णाम दाणवो षअडवेषं गह्णिअ

वृद्धगोपालक इति। अस्माकम्—गोपालकानाम्। गोधनस्य = गवां चेत्यर्थः। शान्तिर्भवतु = कल्याणमस्तु।

दामक इति। वर्जितरोगम्—वर्जितः = निराकृतः रोगः यस्य तथाभूतम्। संवृत्तम् = जातम्। प्रीतिः = स्नेहः।

वृद्धगोपालक—हमारा और गायों का कल्याण हो।

दामक—मामा ! जब से नन्दगोप का पुत्र उत्पन्न हुआ, तब से हमारी गायें रोग-रहित हो गयीं। सभी गोपजनों में परस्पर स्नेह बढ़ रहा है। और गड्ढे-गड्ढे में मूल, लता-लता में फल लग गए हैं। कितना मधु है, दूध दुहते ही ऊपर घृत तैरने लगता है।

वृद्धगोपालक—और अन्य भी ये आश्चर्य हैं। नन्दगोप का पुत्र दस दिन का ही जब था, पूतना नामक दानवी अपने स्तनों को विष से पूर्ण कर नन्दगोपी (यशोदा) का रूप धारण कर आयी। तब उसने कुमार को लेकर उसके मुख में स्तन डाल दिया। तब उसकी वास्तविकता को जानकर कुमार

आददो। तं पि जाणिअ एक्कपादप्पहारेण चुण्णीकिदो षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो। तदो माषपरिवुत्ते नन्दगोववुत्ते एक्कंषि गेहे गच्छिअ खीरं पिबइ, अण्णषि गेहे गच्छिअ दधिं भक्खइ, एक्कंषि गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलदि, अण्णषि गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ, अपरषि गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि। तदो लुट्ठाहि गोवजुवदीहि णन्दगोविए उत्तं तदो। लुट्ठाए णन्दगोवीए दामं गह्लिअ तष्ष मज्झे बन्धिअ षेव उलूहले वज्झं। तदा तं पि उलूहलं आघट्टअन्तं पेक्खिअ जमलज्जुणे णाम दाणवे णिक्खित्तं। तदो दुवेएक्कीभूदे। तेषां अन्तलेण गच्छन्तेण णन्दगोववुत्तेण आघट्टअन्तेण षमूलविडवं चुण्णीकिदे ते वि दाणवे भविअ तत्तो एव्व मुदे। तदो गोवजणेहि उत्तं महाबलपलक्कमो अजप्पहुदि भट्टिदामोदलो णाम होदु त्ति। तदो आहावणप्पहावणमत्ते णन्गोववुत्ते पलंबो णाम दाणवो णन्दगोववेसं गह्लिअ आअदो। तदो पङ्कलिषणं कठे णिक्खिविअ गच्छन्तं तं विजाणिअ भट्टिणा षंकलिपणेण तष्ष दाणवष्ष षीषे मुट्ठिप्पहारो किदो। तेण प्पहारेण उक्खित्तचक्खू षो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो गोवजणेहि परिवुदो तालहलाणि गह्लिदुं तालवणं गदो। तहिं तालवणे धेणुओ णाम दाणवो गद्दभवेसं गह्लिअ आअदो। तदो तं पि जाणिअ भट्टिदामोदलेण तष्ष भविअ तत्तो एव्व मुदो। तदो केसीणाम दाणवो तुलङ्गवेसं गह्लअ आअदो। तदा तं पि जाणिअ भट्टिदामोदलेण तष्ष मुहे कोप्परो दिण्णो। तदो तेण दुज्जो (?) पाडिदो तुलङ्गो। षो वि दाणवो भविअ तत्तो

ने उस सोयी छद्मवेष वाली को ऐसा पटका कि दानवी रूप में आ कर वहीं मर गयी। उसके बाद नन्दगोप का पुत्र जब केवल महीने भर का था शकट नामक दानव शकट का वेष धारण कर आया। उसे भी समझ कर कुमार ने एक पैर के प्रहार से ही चूर कर दिया। वह भी दानव होकर वहीं मर गया। एक महीने का होकर नन्दगोप का पुत्र एक घर में जा कर दूध पीता है, दूसरे घर में जा कर दही खाता है, एक घर में जाकर मक्खन खाता है, दूसरे घर में जा कर खीर खाता है, दूसरे घर में जा कर मट्ठे के मटके पर ताक

एव मुदो। एदाणि अण्णाणि अ कम्माणि किदाणि भट्टिदामोदलेण।
[अन्यच्चेदमाश्चर्यम्। दशरात्रप्रसूते नन्दगोपपुत्रे पूतना नाम दानवी विषसम्पूरितस्तना नन्दगोप्या रूपं गृहीत्वागता। ततस्तया दारकं गृहीत्वा तस्य मुखे स्तनः प्रक्षिप्तः। ततस्तां विज्ञाय सुप्ता-पातिता सापि दानवी भूत्वा तत एव मृता। ततो मासमात्रे- नन्दगोपपुत्रे शकटो दानवः शकटवेषं गृहीत्वागतः। तमपि ज्ञात्वैकपादप्रहारेण चूर्णीकृतः सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः। ततो मासपरिवृत्तो नन्दगोपपुत्र एकस्मिन् गेहे गत्वा क्षीरं पिबति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा दधि भक्षयति, एकस्मिन् गेहे गत्वा नवनीतं गिरति, अन्यस्मिन् गेहे गत्वा पायसं भुङ्क्ते अपरस्मिन् गेहे गत्वा तक्रघटं प्रलोकते। ततो रुष्टाभिर्गोपयुवतिभिर्नन्दगोप्यै उक्तम्। ततो रुष्टया नन्दगोप्या दाम गृहीत्वा तस्य मध्ये बद्ध्वा शेषमुलूखले बद्धम्। ततस्तदप्युलूखलमाघट्टयत् प्रेक्ष्य यमलार्जुनयोर्नाम दानवयोर्निक्षिप्तम्। ततो द्वावेकीभूतौ। तयोरन्तरेण गच्छता नन्दगोपपुत्रेणाघट्टयता समूलविटपं चूर्णीकृतौ तावपि दानवौ भूत्वा तत एव मृतौ। ततो गोपजनैरुक्तं महाबलपराक्रमोऽद्यप्रभृति भर्तृदामोदरो नाम भवतु इति। तत आधावनप्रधावनमात्रे नन्दगोपपुत्रे प्रलम्बो नाम दानवो नन्दगोपवेषं गृहीत्वागतः ततः संकर्षणं

दशरात्रप्रसूते = दशदिनदेशीये। नन्दगोपपुत्रे = नन्दगोपकुमारे। विषसम्पूरितस्तना—विषेण सम्पूरितौ = संभरितौ स्तनौ यस्याः सा तथोक्ता। नन्दगोप्याः = यशोदायाः। दारकम् = पुत्रम्, कृष्ण मित्यर्थः। प्रक्षिप्तः = प्रवेशितः। ताम् = छद्मवेषामित्यर्थः। विज्ञाय = ज्ञात्वा। मा—संपरिवृत्तः = मासदेशीयः। दाम = रज्जुम्। तस्य = पुत्रस्य, कृष्णस्येत्यर्थ।

लगाता है। उससे रुष्ट गोपियों ने नन्दगोपी (यशोदा) से कहा। रुष्ट नन्दगोपी ने रस्सी लेकर उसकी कमर में बाँधकर शेषभाग को ओखली में बाँध दिया। उसके बाद उस ओखली को घसीटते हुए, दृष्टि डाल कर उसने यमल और अर्जुन नामक दानवों पर फेंक दिया। तब वे दोनों एक हो गये। (ओखली को) घसीटते हुए नन्दगोप पुत्र ने उन दोनों के बीच से जा कर मूल और शाखा समेत उन्हें चूर कर दिया। वे दोनों दानव हो कर वहीं मर गये। तब गोपजनों ने कहा—महान् बल और पराक्रम वाला यह कुमार आज से स्वामी दामोदर नाम से प्रसिद्ध हो। उसके बाद जब नन्द-गोपपुत्र उछलने-

कण्ठे निक्षिप्य गच्छन्तं तं विज्ञाय भर्त्रा संकर्षणेन तस्य दानवस्य शीर्षे मुष्टिप्रहारः कृतः। तेन प्रहारेणोत्क्षिप्तचक्षुः सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः। गोपजनैः परिवृतस्तालफलानि ग्रहीतुं तालवनं गतः। तत्र तालवने धेनुको नाम दानवो गर्दभवेषं गृहीत्वागतः। ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य वामपादं गृहीत्वोत्क्षिप्य पातितानि तालफलानि! सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः। ततः केशी नाम दानवः तुरङ्गवेषं गृहीत्वागतः। ततस्तमपि ज्ञात्वा भर्तृदामोदरेण तस्य मुखे कर्पूरो दत्तः। ततस्तेन द्विधा पाटितस्तुरङ्ग। सोऽपि दानवो भूत्वा तत एव मृतः। एतान्यन्यानि च कर्माणि कृतानि भर्तृदामोदरेण।]

दामकः—मादुल! षव्वं दाव चिट्ठदु। अज्ज भट्टिदामोदलो इमस्सिं वुन्दावणे गोवकण्णआहि षह हल्लीषअं णाम पकीलिदुं आअच्छदि। [मातुल! सर्वं तावत् तिष्ठतु! अद्य भर्तृदामोदरोऽस्मिन् वृन्दावने गोपकन्यकाभि सह हल्लीसकं नाम प्रक्रीडितुमागच्छति।]

मध्ये = कटिप्रदेशे। कण्ठे निक्षिप्य = कण्ठप्रदेशे उपस्थाप्य। शीर्षे = शिरसि। उत्क्षिप्तचक्षुः—उत्क्षिप्ते = बहिर्निर्गते चक्षुषी = नेत्रे यस्य स तथाविधः। उत्क्षिप्य = ऊर्ध्वमुत्थाप्य। कूर्परः = करस्य अङ्गविशेषः। पाटितः = विनाशितः।

कूदने लगा तब प्रलम्ब नामक दानव नन्द-गोप का वेष धारण कर आया। उसके बाद संकर्षण को अपने कंठ पर लेकर जाते हुए उसे जान कर स्वामी संकर्षण ने उस दानव के सिर पर मुक्कों से प्रहार किया। उस प्रहार से उसकी आँखें निकल आयीं और वह दानव होकर वहीं मर गया। (भर्तृदामोदर) ग्वालों के साथ तालफल लेने तालवन में गये। वहाँ तालवन में धेनुक नामक दानव गधे का वेष धारण कर आया। तब उसे भी जानकर भर्तृदामोदर ने उसके बाएं पैर को पकड़कर उसे ऊपर फेंक कर तालफल गिरा लिए। वह भी दानव होकर वहीं मर गया। उसके बाद केशी नामक दानव घोड़े का रूप धारण करके आया। तब उसे भी जानकर भर्तृदामोदर ने अपनी केहुनी उसके मुख में दे दिया जिससे वह घोड़ा दो टुकड़े होकर गिर पड़ा। वह भी दानव होकर वहीं मर गया। इस तरह के अन्य चरित्र स्वामी दामोदर ने किए।

दामक—मामा! यह सब तो होने दो। आज स्वामी दामोदर इस

वृद्धगोपालकः तेण हि षव्वेहि गोवजणेहि षह भट्टिदामोदलष्व हल्लीषअं पेक्खम्ह । [तेन हि सर्वैर्गोपजनैः सह भर्तृदामोदरस्य हल्लीसकं पश्यामः]

दामकः—जं मादुलो आणवेदि । [यद् मातुल आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

★

(प्रविश्य ।)

वृद्धगोपालकः—

अणुदिअमत्ते पुय्ये पणमह षव्वादलेण षीषेण ।
णिच्चं जगमादूणं गोणाणं अमिदपुण्णाणं ॥ १ ॥

अहो अम्हाणं पक्कणाणं षमिद्धी । आडोवषज्जाओ पडहरूववेषाओ वाहलिदुं गच्छामो । अम्हाअं गोवकण्णआओ ! घोषषुन्दलि ! वणमाले ! चन्दलेहे ! मिअक्खि ! आअच्छह आअच्छह षिग्घं ।

[अनुदितमात्रे सूर्ये प्रणमत सर्वादरेण शीर्षेण ।
नित्यं जगन्मातॄणां गवाममृतपूर्णानाम् ॥ १ ॥

वृद्धगोपालक इति । वृद्धगोपालको गोपजनान्निर्दिशति—अनुदितमात्र इति । सूर्ये = रवौ, अनुदितमात्रे—न उदितः इति अनुदितः, तस्मिन्नेव अनु-

---

वृन्दावन में गोपकन्याओं के साथ हल्लीसक नामक नृत्य की क्रीडा करने के लिए आ रहे हैं।

वृद्धगोपालक—तो अवश्य सारे गोपजनों के स्वामी दामोदर का हल्लीसक नृत्य हम सब देखेंगे।

दामक—मामा की जो आज्ञा।

(दोनों चले गये।)

प्रवेशक समाप्त।

(प्रवेश कर)

वृद्धगोपालक—सूर्योदय से पहिले ही (दुग्ध रूप) अमृत से पूर्ण लोकमाता गौओं को बडे आदर के साथ सब लोग शिरसा प्रणाम करो ॥ १ ॥

अहो अस्माकं पक्कणानां समृद्धिः । आटोपसज्जाः पटहरूपवेषा व्याहर्तुं गच्छामः । अस्माकं गोपकन्यकाः ! घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे ! मृगाक्षि ! आगच्छतागच्छत शीघ्रम् ।

(ततः प्रविशन्ति सर्वाः ।)

सर्वाः—मादुल । वन्दामो । [मातुल ! वन्दामहे ।]

वृद्धगोपालकः—दालिआ ! एपो भट्टा दामोदलो गोक्खीरपण्डरेण भट्टिणा षङ्कलिषणेण षह गोवलएहि अ परिवुदो गुहाणिक्खित्तो षिहो विअ इदो एव्व आअच्छदि । [दारिकाः ! एष भर्ता दामोदरः गोक्षीरपाण्डरेण भर्त्रा सङ्कर्षणेन सह गोपालकैश्च परिवृतः गुहानिक्षिप्तः सिंह इवेत एवागच्छति ।।]

दितमात्रे, सूर्योदयात्प्रागेवेत्यर्थः । सर्वादरेण = श्रद्धातिशयेन, शीर्षेण = शिरसा, अमृतपूर्णानाम्—अमृतेन = दुग्धरूपेण पूर्णानाम्, जगन्मातॄणाम् = लोकानां मातृरूपाणाम्, गवाम् = धेनूनाम्, नित्यम् = प्रतिदिनम्, प्रणमत = यूयं वन्दध्वम् ।। आर्याजातिः ।। १ ।।

अस्माकम् = गोपालकानाम्, पक्कणानाम् = वसतीनाम्, समृद्धिः = सम्पन्नता । आटोपसज्जाः—आटोपेन = आडम्बरेण सज्जाः । पटहरूपवेषाः = शोभनवस्त्रैर्विभूषिताः । व्याहर्तुम् = विहारं कर्तुम् ।

सर्वा इति । वन्दामहे = प्रणमामः ।

दारिकाः = पुत्र्यः । गोक्षीरपाण्डरेण = गोक्षीरमिव गोदुग्धमिव पाण्डरः =

अहो ! हमारी बस्तियों की कितनी समृद्धि है ! हम सब खूब सज-धज कर शोभनवस्त्रों से विभूषित हो विहार करने जा रहे हैं । हमारी गोप-कुमारियों ! घोष सुन्दरी ! वनमाला ! चन्द्ररेखा! मृगाक्षी ! तुम सब आओ, जल्दी आओ ।

(तदनन्तर सब प्रवेश करती हैं ।)

सब—मामा ! हम सब प्रणाम करती हैं ।

वृद्धगोपालक—पुत्रियो ! ये स्वामी दामोदर, गोदुग्ध के समान गोरे स्वामी

(ततः प्रविशति गोपजनपरिवृतो दामोदरः सङ्कर्षणश्च ।)

दामोदरः—(सविस्मयम्) अहो प्रकृत्या रमणीयानां गोपकन्यकानां वेषग्रहणविशेषः ।

एताः प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्रा
गोपाङ्गनाः कनकचम्पकपुष्पगौराः ।
नानाविरागवसना मधुरप्रलापाः
क्रीडन्ति वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ताः ॥ २ ॥

शुभ्रवर्णः, गौर इति यावत्, तेन । भर्त्रा = स्वामिना, सङ्कर्षणेन = रामेण । गुहानिक्षिप्तः = कन्दरास्थितः ।

दामोदरो गोपकन्यकानां रमणीयतां प्रतिपादयति—एता इति । प्रफुल्लकमलोत्पलवक्त्रनेत्राः—प्रफुल्लानि = विकसितानि यानि कमलानि = रक्तकमलानीत्यर्थः । उत्पलानि = नीलकमलानि च तानीव वक्त्राणि = आननानि, नेत्राणि च यासां ताः (यथासंख्यम् उपमा च) कनकचम्पकपुष्पगौराः—स्वर्णचम्पकपुष्पाणीव गौरवर्णाः । नानाविरागवसनाः—नानाविरागम् – अनेकवर्णम्, वसनम् = वस्त्रं यासां ताः । वन्यकुसुमाकुलकेशहस्ता—वन्यानि = वने भवानि यानि कुसुमानि = पुष्पाणि तैः आकुलः = व्याप्तः, केशहस्ताः = कचह समूहो यासां ताः । मधुरप्रलापाः—मधुरः = मनोहरः प्रलापः = भाषणं यासां ताः । एताः गोपाङ्गनाः, क्रीडन्ति = क्रीडां कुर्वन्ति । उपमाऽलङ्कारः वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

सङ्कर्षण के साथ और गोपालों से घिरे हुए, गुफा में स्थित सिंह की भाँति इधर को ही आ रहे हैं ।

(तदनन्तर गोपों से घिरे हुए दामोदर और सङ्कर्षण प्रवेश करते हैं ।)

दामोदर—(आश्चर्य के साथ) अहो ! स्वभावतः सुन्दर गोपकन्याओं की विशेष वेष-भूषा कितनी अच्छी है !

विकसित कमल के समान मुख तथा नीलकमल के समान नेत्रों वाली, स्वर्ण चम्पक पुष्प के समान गोरी, रंग-विरंगे वस्त्रों वाली, वन के पुष्पों से व्याप्त केश-कलाप वाली ये मधुरभाषिणी गोपाङ्गनाएँ क्रीडा कर रही हैं ।।२।।

सङ्कर्षणः— एते गोपदारकाः समागताः ।

रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः केचिन्नदन्तः स्थिताः
केचित् पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः क्रीडन्ति नानाविधम् ।
घोषे जागरिमा (?) गुरुप्रमुदिता हुम्भारशब्दाकुले
वृन्दारण्यगते समप्रमुदिता गायन्ति केचित् स्थिताः ॥ ३ ॥

वृद्धगोपालकः—आम भट्टा । षव्वे षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः ! सर्वे सन्नद्धा आगताः !]

दामकः -जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

सङ्कर्षणो गोपदारकाणां वर्णनं करोति—रक्तैरिति । रक्तैः = रञ्जितैः, वेसुकडिण्डिमैः = पटहैः (अत्र वेणुकडिण्डिमैरिति पाठः समीचीनः प्रतीयते, वेणुकैः = वंशीभिः, डिण्डिमैः = पटहैश्चेति तस्यार्थः) प्रमुदिताः = प्रसन्नाः, केचित् – गोपदारकाः, नदन्तः = हर्षध्वनिं कुर्वन्तः, स्थिताः = समवेताः सन्ति । केचित् = अपरे, पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः—पङ्कजपत्राणीव नेत्राणि वदनानि = मुखानि येषां तथाविधाः, नानाविधम् = विविधप्रकारम् (क्रियाविशेषणमेतम्) क्रीडन्ति = क्रीडां कुर्वन्ति । हुम्भारशब्दाकुले = गवादिकृत—हुङ्कारशब्दैर्व्याप्ते, वृन्दारण्यगते = वृन्दावनप्राप्ते, घोषे – आभीरवसतौ, जागरिमा—जागरितुर्भावः ('जागरितृ' इति तृजन्ताद् भावे इमनिच्, 'तुरिष्ठेमेयः सु' इति तृचोलोपः, परनिमित्ताभावादिटि निवृत्तिः) = जागृतिः । गुरुप्रमुदिता = महान् हर्षः वर्तते इति शेषः । केचित् = गोपाः, समप्रमुदिताः = तुल्यानन्दिताः, स्थिताः, गायन्ति=गानं कुर्वन्ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥३॥

सङ्कर्षण—ये गोपकुमार आ गये ।

कुछ (गोपकुमार) लोग रंगीन नगाड़ों से प्रमुदित हो हर्ष-ध्वनि कर रहे हैं । कमलपत्र के समान नेत्र और मुख वाले कुछ लोग अनेक प्रकार से क्रीडा कर रहे हैं । (गायों के) रंभाने के शब्द से प्राप्त, वृन्दावन में पहुँचे हुए (पूरे) गाँव में जागृति और महान् हर्षोल्लास है । कुछ लोग समान रूप से प्रसन्न होकर गा रहे हैं ॥ ३ ॥

वृद्धगोपालक—हाँ स्वामी ! सब तैयार हो कर आ गये हैं ।

दामक—जय हो स्वामी की ।

सङ्कर्षणः—दामकः ! सर्वे गोपदारकाः समागताः ?

दामकः—आम भट्टा ! षव्वे षण्णद्धा आअदा । [आम भर्तः ! सर्वे सन्नद्धा आगताः ।]

दामोदरः—घोषसुन्दरि ! वनमाले ! चन्द्ररेखे । मृगाक्षि ! घोषवासस्यानुरूपोऽयं हल्लीसकनृत्तबन्ध उपयुज्यताम् ।

सर्वाः— जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

सङ्कर्षणः—दामक ! मेघनाद ! वाद्यन्तामातोद्यानि ।

उभौ—भट्टा ! तह । [भर्तः ! तथा ।]

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तुम्हे हल्लीसअं पकीलन्ति । अहं एत्थ किं करोमि । [भर्तः । यूयं हल्लीसकं प्रक्रीडथ । अहमत्र किं करोमि ।]

दामोदरः—प्रेक्षको भवान् ननु ।

वृद्धगोपालकः—भट्टा ! तह । [भर्तः ! तथा ।]

(सर्वे नृत्यन्ति ।)

दामोदर इति । घोषवासस्य अनुरूपः = आभीरग्रामस्य योग्यः । हल्लीसकनृत्तबन्ध उपयुज्यताम् = हल्लीसकनृत्यं प्रारम्यताम् ।

सङ्कर्षण इति । आतोद्यानि = वाद्यानि ।

सङ्कर्षण—दामक ! सब गोपकुमार आ गए ?

दामक—हाँ स्वामी ! सब तैयार होकर आ चुके हैं ।

दामोदर—हे घोष-सुन्दरी ! वनमाला ! चन्द्ररेखा ! मृगाक्षी ! आभीर वस्ती के योग्य यह हल्लीसकनृत्य प्रारम्भ किया जाय ।

सब —जो स्वामी की आज्ञा ।

सङ्कर्षण—दामक ! मेघनाद ! बाजे बजाये जांय ।

दोनों—अच्छा स्वामी !

वृद्धगोपालक – स्वामी ! तुम सब हल्लीसक नृत्य करोगे, मैं यहाँ क्या करूँ ?

दामोदर – अरे ! आप दर्शक बनें ।

वृद्धगोपालक—अच्छा स्वामी !

(सब नाचते हैं ।)

वृद्धगोपालकः—हो ही षुट्ठु ईदं। पुट्ठु वाइदं। षुट्ठु णच्चिदं। जाव अहं वि णच्चेमि। परिस्सन्तो खु अहं। [ही ही सुष्ठु गीतम्। सुष्ठु वादितम्। सुष्ठु नर्तितम्। यावदहमपि नृत्यामि। परिश्रान्तः खल्वहम्।]

(प्रविश्य)

गोपालकः—हा हा भट्टा अवक्कमदु इमादो देसादो। [हा हा भर्ता अपक्रामत्वस्माद् देशाद्।]

दामोदरः—दामक ! किमसि सम्भ्रान्तः।

गोपालकः—एषो अलिट्टवषभो णाम दाणवो पिण्डोकिदणिग्घादरूवो भूमिदलं खुरपुडेहि लिहन्तो, जष्व घोषो मेघरवत्ति षङ्किदो जादो। [एषोऽरिष्टवृषभो नाम दानवः पिण्डीकृतनिर्घातरूपो भूमितलं खुरपुटैर्लिखन् यस्य घोषो मेघरव इति शङ्कितो जातः।]

दामोदरः—एवं प्राप्तोऽरिष्टर्षभः। इमा नो गोपदारिका दारकांश्च गृहीत्वैतत् पर्वतशिखरमारुह्य दुरात्मनो मम च युद्धविशेषं पश्यत्वार्यः। अहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि।

(सङ्कर्षणस्तैः सह निष्क्रान्तः)

वृद्धगोपालक—अहा हा ! अच्छा गाया। अच्छा बजाया। अच्छा नाचा। तो मैं भी नाचूं, किन्तु मैं थका हुआ हूँ।

(प्रवेश कर)

गोपालक—हा हा ! स्वामी इस देश से भाग चलें।

दामोदर—दामक ! तुम क्यों घबराये हुए हो ?

गोपालक—यह विनाश का पिण्डीकृत स्वरूप अरिष्ट वृषभ नामक दानव खुरों से भूतल को खोद रहा है जिसकी हुङ्कार से मेघ के गर्जन की शङ्का होती है।

दामोदर—ऐसा, अरिष्टर्षभ आ गया। आर्य (सङ्कर्षण) इन हमारी गोपकुमारियों तथा कुमारों को लेकर इस पर्वतशिखर पर चढ़कर दुष्ट (दानव) का और मेरा विशेष युद्ध देखें। मैं इसके गर्व को नष्ट करूंगा।

(सङ्कर्षण उन सब के साथ चले गए।)

दामोदरः—एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः।

कृत्वा खुरैर्भूमितलं प्रभिन्नं शृङ्गैश्च कूलानि समाक्षिपंश्च।
भयार्तगोपैः प्रसमीक्ष्यमाणो नदन् समाधावति गोवृषेन्द्रः॥ ४॥

(ततः प्रविशत्यरिष्टर्षभः।)

अरिष्टर्षभः—एष भोः?

शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः खमिवालिखंश्च
शत्रोर्वधार्थमुपगम्य वृषस्य रूपम्।

दामोदरो वृषभरूपस्यारिष्टासुरस्य वर्णनं करोति—कृत्वा खुरैरिति। खुरैः = खुरपुटैः, भूमितलम् = भूतलम्, प्रभिन्नम् = विदीर्णम्, कृत्वा, शृङ्गैः = विषाणैश्च, कूलानि = तटानि, यमुनाया इति भावः। समाक्षिपन् = पातयंश्च, भयार्तगोपैः—भयेन आर्ता ये गोपाः तैः, प्रसमीक्ष्यमाणः = दृश्यमानः, नदन् = नादं कुर्वन्, गोवृषेन्द्रः = वृषभश्रेष्ठः, समाधावति = वेगेन इत एवागच्छति। उपजातिवृत्तम्॥ ४॥

अरिष्टर्षभः स्वागमनप्रयोजनं विज्ञापयति—शृङ्गाग्रकोटिकिरणैरिति। अहम् = वृषभरूपोऽरिष्टासुरः, शत्रोः=कृष्णस्येत्यर्थः, वधार्थम् = हननार्थम्, वृषस्य = वृषभस्य, रूपम् = स्वरूपम्, उपगम्य = धृत्वेत्यर्थः, शृङ्गाग्रकोटिकिरणैः—शृङ्गाग्रम् = विषाणाग्रम्, तस्य या कोटिः = वक्रभागः, तस्याः किरणैः = रश्मिभिः, खम् = आकाशम्, आलिखन् इव = रेखांकितमिव कुर्वन्,

---

दामोदर—यह, यह दुष्ट अरिष्टर्षभ—

खुरों से पृथ्वीतल को खोंद कर तथा सींगों से (यमुना के) कूलों को ढाहता हुआ, भय से व्याकुल गोपों के द्वारा देखा जाता हुआ और हुंकड़ता हुआ वृषभश्रेष्ठ दौड़ा चला आ रहा है॥ ४॥

(तदन्तर अरिष्टर्षभ प्रवेश करता है)

अरिष्टर्षभ—अरे! यह—

मैं शत्रु (कृष्ण) का वध करने के लिए वृषभ का रूप धर कर सींगों की नोक की किरणों से आकाश को रेखांकित (अर्थात् विदीर्ण) सा करता

वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमान-
माक्रम्य शत्रुमहमद्य सुखं चरामि ॥ ५ ॥

हुङ्कारशब्देन ममेह घोषे स्रवन्ति गर्भा वनिताजनस्य ।
खुराग्रपातैर्लिखितार्धचन्द्रा प्रकम्पते सद्रुमकानना भूः ॥ ६ ॥

क्व नु खलु गतो नन्दगोपपुत्रः । भो नन्दगोपपुत्र ! क्वासि ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! इत इतः । एष स्थितोऽस्मि ।

अरिष्टर्षभः—(दृष्ट्वा) अहो,

शृङ्गाग्रेण विदारयन्निति भावः । वृन्दावने सललितम् = सविलासम्, प्रतिगर्जमानम् = मम हुम्भारवं श्रुत्वा गर्जितं कुर्वन्तम्, शत्रुम् = कृष्णम्, आक्रम्य = आक्रान्तं कृत्वा, हत्वेत्यर्थः, अद्य = अस्मिन् दिने, सुखम् = सुखपूर्वकम्, चरामि = चरिष्यामीत्यर्थः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५ ॥

अरिष्टर्षभः स्वसामर्थ्यं विज्ञापयति—हुङ्कारशब्देनेति । मम = अरिष्टर्षभस्य हुङ्कारशब्देन = हुङ्कृत्या, इह = अत्र, घोषे = आभीरवसतौ, वनिताजनस्य = स्त्रीसमूहस्य, गर्भाः = भ्रूणाः, स्रवन्ति = पतन्ति । खुराग्रपातैः = खुराग्राणां पतनैः, लिखितार्धचन्द्रा—लिखितम् = अङ्कितम्, अर्धचन्द्रम् अर्धचन्द्राकारं चिह्नं यस्यां सा, सद्रुमकानना—द्रुमैः = वृक्षैः, काननैः = वनैः सह विद्यमाना, भूः = मही, प्रकम्पते = प्रकम्पिता भवति । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ६ ॥

हुआ, आज वृन्दावन में मेरी दहाड़ सुनकर सविलास दहाड़ने वाले शत्रु (कृष्ण) को आक्रान्त कर सुख से चरूँगा ॥ ५ ॥

मेरे हुङ्कार शब्द से इस आभीर-वस्ती में स्त्रियों के गर्भ गिर रहे हैं। मेरे खुरों के अग्रभाग के पड़ने से अर्धचन्द्राकार चिह्नों से युक्त वृक्ष-वनों समेत धरती अत्यन्त काँप रही है ॥ ६ ॥

वह नन्दगोप का बच्चा कहाँ चला गया ! अरे ! नन्दगोप के बच्चे ! तू कहाँ है ?

दामोदर—अरे नीच वृषभ ! इधर-इधर- मैं यह हूँ।

अरिष्टर्षभ—(देखकर) आश्चर्य !

सारवान् खल्वयं बालो यो मां दृष्ट्वा महाबलम् ।
उग्ररूपं महानादं नैव भीतो न विस्मितः ॥ ७ ॥

दामोदरः—

किमेतद् भो ! भयं नाम भवतोऽद्य मया श्रुतम् ।
भीतानामभयं दातुं समुत्पन्नो महीतले ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभः—भो बालस्त्वम् । अतः खलु भयं न जानासि ।

दामोदरमविचलितं पश्यन्नरिष्टर्षभः साश्चर्यमाह—सारवानिति । अयम् = पुरो दृश्यमानः, बालः = दामोदरः, सारवान्—सारः = सामर्थ्यमस्त्यस्येति तथोक्तः (अस्ति) खलु इति निश्चये । यः = दामोदरः, माम् = अरिष्टर्षभम्, महाबलम्—महत् बलम् = सामर्थ्यं यस्य तं तथाभूतम्, उग्ररूपाम्—उग्रम् = भयंकरं रूपम् = स्वरूपं यस्य तम्, महानादम्—महान् नादः = हुंकारध्वनिर्यस्य तं तथाविधं दृष्ट्वा = अवलोक्य, नैवभीतः = भयं न गतः, न विस्मितः = न विस्मयं गतः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७ ॥

दामोदरस्तथोक्तवन्तमरिष्टर्षभं प्रत्याह—किमेतदिति । भोः = वृषभ ! एतत् = त्वदुक्तं भयं नाम किम् = किमाकारकं (भवति) । अद्य = अस्मिन् दिने, भवतः = त्वत्तः, मया = दामोदरेण, श्रुतम् = आकर्णितम् । भीतानाम् = भयाकुलानां जनानाम्, अभयं दातुम् = भयं दूरीकर्तुम्, महीतले = पृथिव्याम्, समुत्पन्नः = प्रादुर्भूतः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ८ ॥

निस्सन्देह यह बालक बड़ा पराक्रमी है जो मुझ भयंकर रूप वाले, महान् गर्जनध्वनि वाले महान् पराक्रमी को देखकर न भयभीत हो रहा है और न ही आश्चर्यचकित हो रहा है ॥ ७ ॥

दामोदर—

अजी ! यह क्या (कह रहे हो) ? भय का नाम तो मैंने आज तुम्हीं से सुना । भयभीतों को अभय देने के लिए (ही) मैंने पृथ्वी पर अवतार लिया है ॥ ८ ॥

अरिष्टर्षभ—अजी ! तू (अभी) बच्चा है, इसी से तू भय नहीं जानता है ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! किं वाल इति मां प्रधर्षयसि ।

किं दष्टः कृष्णसर्पेण बालेन न निहन्यते ।
बालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कन्देन निधनं गतः ॥ ९ ॥

भवितव्यम् ।

अपीदं शृणु मूर्ख ! त्वं कठिनोपलसञ्चयः ।
किं न पल्लवमात्रेण शैलो वज्रेण पातितः ॥ १० ॥

दामोदरो दृष्टान्तेन बालस्य माहात्म्यमुपपादयति—किं दष्ट इति। बालेन = शिशुना, कृष्णसर्पेण = कृष्णवर्णेन विषधरेणाहिना, दष्टः, किं न निहन्यते = निधनं न याति, यात्येवेत्यर्थः। हि = यथा सुविदितम्, पुरा = पूर्वस्मिन् समये, बालेन = शिशुना, स्कन्देन = कार्त्तिकेयेन, क्रौञ्चः = तन्नामा पर्वतः, निधनं गतः = विदारितः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ९ ॥

दामोदरः पुनरप्यरिष्टर्षभं भर्त्सयन्नाह—अपीदमिति। मूर्ख = विवेकशून्य! त्वम् = दुरात्मा, इदमपि शृणु = आकर्णय, जानीहि इत्यर्थः कठिनोपलसञ्चयः— कठिनानाम् = कठोराणाम्, उपलानाम् = प्रस्तराणाम्, सञ्चयः = राशिः, पुञ्जीभूतकठिनप्रस्तरस्वरूप इत्यर्थः। शैलः = पर्वतः, पल्लवमात्रेण = पल्लव-परिमाणेन, वज्रेण = कुलिशेन, किं न पातितः = किं न विदारितः, विदारित एवेत्यर्थः। तथा बालोऽप्यहं हि त्वां हन्तुं समर्थ इति भावः। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १० ॥

दामोदर—अरे ! अधम गोवृषभ ! क्या मुझे बालक कह कर तू मेरा अपमान करता है ?

क्या काले (विषधर) सर्प-शिशु से डँसा गया व्यक्ति मरता नहीं ? ऐसा सुविदित है कि पूर्वकाल में बालक स्कन्द से क्रौञ्च-पर्वत विदीर्ण किया गया था ॥ ९ ॥

होना (ही) चाहिए ।

मूर्ख ! तू यह भी सुन ले । क्या कठोर पत्थरों का पुञ्ज पर्वत, पल्लव के तुल्य परिमाण वाले वज्र से नहीं गिराया जा चुका है ? ॥ १० ॥

अरिष्टर्षभः—भो नन्दगोपपुत्र ! किं व्यवसितम् ।
दामोदरः—त्वां निधनमुपनेतुम् ।
अरिष्टर्षभः समर्थो भवान् ?
दामोदरः—कः संशयः ।
अरिष्टर्षभः—तेन हि गृह्यतां स्वजातिसदृशं प्रहरणम् ।
दामोदरः—प्रहरणमिति । हं भोः ।

गिरितटकठिनांसावेव बाहू ममैतौ
प्रहरणमपरं तु त्वादृशां दुर्बलानाम्
अथ मम भुजदण्डैः पीड्यमानश्च शीघ्रं
यदि न पतसि भूमौ नास्मि दामोदरोऽहम् । ११ ॥

'नास्ति मादृशानां बलिनां प्रहरणस्यावश्यकतेति दामोदरः प्रतिपादयन्नाह–गिरितटेति । गिरितटकठिनांसौ—गिरेः = पर्वतस्य तटः = अधोभाग इत्यर्थः, स इव कठिनौ = कठोरौ, अंसौ = स्कन्धौ ययोस्तौ, एतौ बाहू = भुजावेव मम = मादृशस्य वीरजनस्य (प्रहरणम्) । त्वादृशां दुर्बलानां तु अपरम् = अन्यत् प्रहरणम् = आयुधम् । अथ = अस्यां स्थितौ, मम = दामोदरस्य, भुजदण्डैः पीड्यमानः = आक्रान्तश्च, शीघ्रम् = अविलम्बम्, भूमौ = भूतले, न पतसि यदि = चेत्, (तर्हि) अहं दामोदरो नास्मि = दामोदर इति स्वाभिधानं त्यक्ष्यामीत्यर्थः । मालिनी—वृत्तम् । तल्लक्षणम्—"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।" इति ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभ—अरे नन्दगोप के बच्चे ! तू ने क्या इरादा किया है ?
दामोदर—तुम्हें मारने का ।
अरिष्टर्षभ—तुम समर्थ हो ?
दामोदर—(इसमें) कौन-सा सन्देह ?
अरिष्टर्षभ—तो अपनी जाति के अनुरूप शस्त्र ग्रहण करो ।
दामोदर—शस्त्र ? अजी—

पर्वत के अवयव के समान कठोर कन्धे वाले ये मेरे दोनों भुज ही शस्त्र हैं । अन्य शस्त्र तो तुझ जैसे दुर्बलों को चाहिए । ऐसी स्थिति में मेरे

अरिष्टर्षभः—तेन हि प्रवर्ततां युद्धम् ।

दामोदरः—भो गोवृषाधम ! यदि ते शक्तिरस्ति, मां पादेनैकेन स्थितं स्थानात् कम्पय ।

अरिष्टर्षभः—कोऽत्र संशयः (तथा कर्त्तुं चेष्टयित्वा मूर्च्छितः पतति ।)

दामोदरः—भो गोवृष ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि । अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः ।

अरिष्टर्षभः—(आश्वस्य, आत्मगतम्) अहो दुष्प्रसह्योऽयं बालः ।

रुद्रो वाऽयं भवेच्छक्रो विष्णुर्वापि स्वयं भवेत् ।
अमिथ्या खलु मे तर्कः स एव पुरुषोत्तमः ॥ १२ ॥

अरिष्टर्षभो बालस्य दुष्प्रसह्यत्वमनुभूय साश्चर्यमाह—रुद्रोवाऽयमिति । अयम् = बालः, रुद्रः = शिवः, वा = अथवा, शक्रः = इन्द्रः, भवेत्, वा = अथवा, स्वयम् = साक्षात्, विष्णुरपि भवेत् = भवितुं शक्नुयात् । खलु = निश्चयेन, मे = मम अरिष्टर्षभस्य, तर्कः = अनुमानम्, अमिथ्या = सत्यम्, अय सः = प्रसिद्धः पुरुषोत्तमः = विष्णुरेव । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १२ ॥

भुजदण्डों से पीसे जाते हुए तू यदि शीघ्र धराशायी नहीं हो जाता तो मैं दामोदर नहीं ॥ ११ ॥

अरिष्टर्षभ - तो युद्ध प्रारम्भ हो ।

दामोदर—अरे अधम गोवृष ! यदि तुममें शक्ति है तो एक पैर से मैं खड़ा हूँ, तू मेरी जगह से मुझे हटा दे ।

अरिष्टर्षभ—इसमें कौन-सा सन्देह है ? (वैसा करने की चेष्टा करके मूर्च्छित होकर गिर पड़ता ।)

दामोदर—अरे गोवृप ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो । इसी पराक्रम से आप गर्वीले बने थे ?

अरिष्टर्षभ—(आश्वस्त होकर, स्वगत) अहो ! इस बालक का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता है ।

यह रुद्र अथवा इन्द्र हो सकता है, अथवा स्वयं विष्णु भी हो सकता है । निश्चय ही मेरा अनुमान असत्य नहीं हो सकता है, यह वही पुरुषोत्तम हरि है ॥ १२ ॥

आ,

यत्र यत्र वयं जातास्तत्र तत्र त्रिलोकधृत् ।
दानवानां वधार्थाय वर्तते मधुसूदनः ॥ १३ ॥

भवतु । विष्णुना हतस्याप्यक्षयो लोको मे भविष्यति । तस्माद् युद्धं करिष्यामि । (प्रकाशम्) भो नन्दगोपपुत्र ! पुनरपि जातो मे दर्पः ।

दामोदरः—हम् । तिष्ठ तिष्ठेदानीम् ।

किं गर्जसे भुजगतो मम गोवृषेन्द्र !
पातप्रवृद्ध इव वार्षिककालमेघः ।
एहि क्षिपामि धरणीतलमभ्युपेहि
वज्राहतस्तट इवाञ्जनपर्वतस्य ॥ १४ ॥

अरिष्टर्षभः पुनरपि हरेर्व्यापकत्वं समर्थयन्नाह—यत्रेति । यत्र यत्र = यस्मिन् यस्मिन् स्थाने, वयम् = दानवाः, जाताः = उत्पन्नाः, तत्र तत्र = तस्मिन् तस्मिन् स्थाने, दानवानाम् = दनुजानाम्, वधार्थाय = निधनं कर्तुम्, त्रिलोकधृत् मधुसूदनः = हरिः वर्तते=विद्यते । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १३ ॥

दामोदरो गोवृषं भर्त्सयन्नाह—किं गर्जस इति । पातप्रवृद्धः—पाताय = जलवर्षणाय विनाशाय च प्रवृद्धः = प्रवृद्धिं गतः, वार्षिककालमेघः—वार्षिकः = वर्षासु भवः, स चासौ कालश्च श्यामः यो मेघः, स इव, मम = दामोदरस्य, भुजगतः = बाहुपाशबद्ध इत्यर्थः, हे गोवृषेन्द्र=अरिष्टर्षभ ! (त्वं) किम् = किमर्थम्, गर्जसे = गर्जनं करोषि । एहि=आगच्छ, क्षिपामि = पातयामि, वज्राहतः—

ओह !

जहाँ-जहाँ हम (दानव) पैदा हुए, वहीं-वहीं त्रैलोक्यरक्षक मधुसूदन हरि, दानवों का वध करने के लिए विद्यमान रहते हैं ॥ १३ ॥

अच्छा, विष्णु के द्वारा मारे जाने पर भी मुझे अमर-लोक मिलेगा । अतः युद्ध करूँगा । (प्रकट रूप में) अरे नन्दगोप कुमार ! मुझे फिर भी गर्व हो गया है ।

दामोदर—हुँः, ठहरो-ठहरो अभी ।

रे गोवृषेन्द्र ! पतन (१. जलवर्षण, २. विनाश) के लिए उमड़े हुए वर्षाऋतु के काले मेघ के समान तू मेरी भुजाओं में पड़ा क्यों गरज रहा है ? आ,

(तथा कृत्वा) एष एष दुरात्मारिष्टर्षभः,

विसृतरुधिरधाराक्लिन्ननासास्यनेत्रं
चलितककुदवालः प्रस्फुरत्पादकर्णः ।
निपतति विगतात्मा भूतले वज्रभिन्नो
गिरिरिव शिखराग्रैर्गोवृषो दानवेन्द्रः ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

दामकः—जेदु भट्टा । एषो भट्टा षङ्कलिषणो पव्वदादो जमुणाहले कालिओ णाम महाणाओ उट्ठिदो त्ति षुणिअ तं पडिगओ । बालेहि

वज्रेण आहतः=खण्डितः, अञ्जनपर्वतस्य = कज्जलगिरेः, तटः = अवयव इव, धरणीतलम् = भूतलम्, अभ्युपेहि = प्राप्नुहि । उपमाऽलङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १४ ॥

दामोदरोऽरिष्टर्षभस्य तदानीन्तनी दशां वर्णयति—विसृतरुधिरेति । विसृतरुधिरधाराक्लिन्ननासास्यनेत्रम्—विसृता = विस्तारं गता या रुधिरस्यधारा = रक्तप्रवाहः, तया क्लिन्नम् = आर्द्रं नासास्यनेत्रम् – नासिकामुखनेत्रं यथा स्यात्तथा । चलितककुदवालः—चलिताः = प्रकम्पिताः, ककुदस्य = वृषाङ्गविशेषस्य वालाः = केशाः यस्य स तथाभूतः, प्रस्फुरत्पादकर्णः—प्रस्फुरन्तौ = प्रकम्पमानौ पादौ = चरणौ, कर्णौ च यस्य सः, वज्रभिन्नः—वज्रेण = कुलिशेन भिन्नः = विदीर्णः, शिखराग्रैः, गिरिः = पर्वत इव, विगतात्मा—विगतः =

तुझे गिराता हूँ । तू वज्र से विदीर्ण किये गये कज्जलगिरि के अवयव के समान धराशायी हो जा ॥ १४ ॥

(वैसा करके) यह, यह दुष्ट अरिष्टर्षभ,

निकली हुई रुधिर की धारा से, इसकी नाक, मुख और नेत्र आर्द्र हो रहे है, डिल्ले के वाल कांप रहे हैं, पैर और कान फरफरा रहे हैं । यह दनुजराज वृषभश्रेष्ठ वज्र से विदीर्ण शिखरों वाले पर्वत के समान भूतल पर गिर रहा है ॥ १५ ॥

(प्रवेश करके)

दामक—स्वामी की जय हो । ये स्वामी सङ्कर्षण 'यमुना के ह्रद

वालेहि भट्टा। पङ्कलिषणं। जयतु भर्ता। एष भर्ता संकर्षणः पर्वताद् यमुनाह्रदे कालियो नाम महानाग उत्थित इति श्रुत्वा तं प्रति गतः। वारय वारय भर्तः! संकर्षणम्।)

दामोदरः—कालियो नाम मयापि श्रूयते सदर्पः पन्नगपतिः। भवत्वहमस्य दर्पप्रशमनं करोमि।

गोब्राह्मणादयस्तेन सुजूष्यन्ते किल प्रजाः।
अद्यप्रभृति शान्तात्मा निष्प्रभः स भविष्यति॥ १६॥

(निष्क्रान्तौ।)

तृतीयोऽङ्कः।

—×—

प्रणष्टः आत्मा यस्य सः, गोवृषः = वृषभश्रेष्ठः, दानवेन्द्रः, भूतले = पृथिव्यां, निपतति = पतितो भवति। उपमाऽलङ्कारः। मालिनीवृत्तम्॥ १५॥

दामोदरः—कालियस्य दर्पप्रशमनाय सङ्कल्पं कुर्वन्नाह—गो ब्राह्मणादय इति तेन = कालियनागेन गावश्च ब्राह्मणाश्चेत्यादयः प्रजाः=जनाः सुजूष्यन्ते = निहन्यन्ते (जूष हिंसायामित्यस्माद्धातोः कर्मणि लट्) किलेति प्रसिद्धौ। अद्यप्रभृति = अद्यारभ्य सः = कालियनागः निष्प्रभः = प्रभारहितः, शान्तः = दर्पशून्यः आत्मा यस्य स तथोक्तः भविष्यति॥ अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १६॥

इति 'कल्याणी' संस्कृत व्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः।

—×—

(कुण्ड) में कालिय नामक महानाग उठा है' ऐसा सुनकर पर्वत से उसकी तरफ चले गये है, हे स्वामी! सङ्कर्षण को रोकिये।

दामोदर—मैं भी कालिय नामक बड़े गर्वीले सर्पराज को सुना करता हूँ। अच्छा, मै इसके दर्प को विनष्ट करूँगा।

ऐसा सुना जाता है कि उसके द्वारा गो-ब्राह्मण इत्यादि लोग पीड़ित किये जाते हैं। आज से वह प्रभारहित और शान्त हो जायगा॥ १६॥

(दोनों चले गये।)

तृतीय अङ्क समाप्त।



अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति दामोदरः ।)

दामोदरः—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः
कान्ता प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयोर्विस्रस्तकेशस्रजः ।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता-
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गनाः ॥१॥

दामोदरः कालियनागाद् भीता गोपाङ्गना वर्णयति—एता इति । मत्ताः =मदयुक्ता ये चकोरशावाः =चकोरपक्षिणां शिशवः, तेषां नयनानीव नयनानि यासां ताः, प्रोद्भिन्नौ =प्रस्फुटितौ कम्रौ =मनोहरौ स्तनौ =कुचौ यासां ताः, प्रस्फुरिता =प्रोद्गता अधरोष्ठानां रुचिः =कान्तिर्यासां ताः, विस्रस्ताः =च्युताः केशानाम् =कचानाम्, स्रजः -पुष्पमाला यासां ताः, गलितम् =स्रस्तम् उत्तरीयवसनं =प्रावारः यासां ताः, त्रासेन =भयेन आकुलम् स्खलितमित्यर्थः, व्याहृतम् =वचनं यासां ताः, कान्ताः =मनोहारिण्यः, सम्भ्रान्ताः =संक्षुब्धाः, गोपाङ्गनाः =गोपयुवतयः, पन्नगपतिम् = सर्पराजं कालियं दृष्ट्वैव त्रस्ताः=भीताः, माम्=दामोदरम्, अनुयान्ति =अनुगच्छन्ति । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

(तदनन्तर दामोदर प्रवेश करता है ।)

दामोदर—मदयुक्त चकोर-शिशुओं के नेत्रों के समान नेत्रों वाली, प्रस्फुटित मनोहर कुचों वाली, जिनके अधरोष्ठों की कान्ति जगमगा रही है, सुन्दर गोपाङ्गनाएँ सर्पराज कालिय को देखकर ही भयभीत और घबड़ाई हुई मेरा अनुगमन कर रही हैं। इनके केशों की पुष्पमालाएँ गिर गयी हैं तथा भय के कारण इनके वचन हकलाहट युक्त रुक-रुक कर निकल रहें हैं तथा उत्तरीय वस्त्र (अपने स्थान से) खिसक गये है ॥ १ ॥

(ततः प्रविशन्ति गोपकन्यकाः ।)

सर्वाः—मा खु मा खु भट्टा ! एदं जलासअं पविसिदुं । एसो खु दुट्ठमहोरअकुलावासो । (मा खलु मा खलु भर्तः ! एतं जलाशयं प्रवेष्टुम् । एषः खलु दुष्टमहोरगकुलावासः ।)

दामोदरः—न खलु न खलु विपादः कार्यः । पश्यन्तु भवत्यः ।

निष्पक्षिव्यालयूथं भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भो-
गम्भीरं स्निग्धनीरं ह्रदमुदधिनिभं क्षोभयन् सम्प्रविश्य ।
गोपीभिः शङ्किताभिः प्रियहितवचनैः पेशलैर्वार्यमाणः
कालिन्दीवासरक्तं भुजगमतिवलं कालियं धर्षयामि ॥ २ ॥

गोपाङ्गनाभिर्निवार्यमाणो दामोदरः स्वनिश्चयमाह—निष्पक्षीति । निर्गतानि पक्षिणाम् = जलखगानां व्यालानाम् = जलसर्पाणां च यूथानि यस्मात् तम्, भयचकितेन = भयकम्पितेन करिव्रातेन = गजसमूहेन विप्रेक्षितम् = विलोकितं यदम्भः = जलम् तेन गम्भीरम् = अगाधम्, स्निग्धम् = मसृणं, नीरम् = जलं यस्य तम्, उदधिनिभम् = समुद्र-तुल्यम्, - ह्रदम् = अगाधजलम् (जलाशयो जलाधारस्तत्रागाधजलो ह्रदः' इत्यमरः ।) क्षोभयन् = आन्दोलितं कुर्वन्, सम्प्रविश्य = अन्तः प्रविश्य, शङ्किताभि. गोपीभिः = गोपवधूटीभिः, पेशलैः = मनोहरैः,मधुरैरिति यावत्, प्रियहितवचनैः—स्निग्धहितकरवचोभिः, वार्यमाणः निषिद्धयमानः (अपि) कालिन्दी = यमुना तत्र यो वासः सततनिवासः, तस्मिन् रक्तम् = प्रीतिमन्तम्; अतिवलम् = बलशालिनम् , कालियम् = कालियनामानम्, भुजगम्—भुजं कुटिलं गच्छतीति भुजगः = सर्पः, तम् (भुजमिति

(तदनन्तर गोपकन्याओं का प्रवेश)

सब—हे स्वामी ! इस जलाशय में प्रवेश मत करें, मत करें । यह दुष्ट भयंकर सर्प (कालिय) के कुल का आवासस्थान है ।

दामोदर—नहीं, आप लोक शोक न करें, देखें—

जलपक्षियों और (अन्य) जल सर्पों के समूह से काँपते हुए गज समूहों के द्वारा देखे जाते हुए जल से गम्भीर, स्निग्ध जल वाले, समुद्रतुल्य ह्रद को क्षुब्ध करता हुआ मैं इसके अन्तस्तल में प्रवेश कर डरी हुई गोपियों से मधुर

सर्वाः—भट्टा ! पङ्कलिपण ? वालेहि वालेहि भट्टिदामादलं। (भर्तः । संकर्षण ! वारय वारय भर्तृदामोदरम् ।)

(प्रविश्य)

सङ्कर्षणः—अलमलं भयविपादाभ्याम् । दर्शितोऽनुरागः पश्यन्तु भवत्यः ।

विपदहनशिखाभिर्यन्मुखात् प्रोद्गताभिः
कपिशितमशिवाभिश्चक्रवालं दिशानाम् ।

क्रियाविशेषणम्, भुज + √गम् + डः) धर्षयामि = पराभूतं करिष्यामि ह्रदादस्माद्ध्लान्निष्कास्य बहिः प्रेषयामीत्यर्थः । स्रग्धरा वृत्तम । तल्लक्षणं यथा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ २ ॥

कृष्णविपर्ययकानिष्टशङ्कया सम्भ्रान्तं गोपीजनं सङ्कर्षणः समाश्वासयति—यस्य = कालियस्य मुखात् प्रोद्गताभिः = वहिर्निःसृताभिः, अशिवाभिः = विनाशकारिणीभिः, विषमेव दहनः = अग्निः (रूपकालङ्कारः) तस्य शिखाभिः ज्वालाभिः दिशानाम् (अत्र आवन्तो दिक् शब्दः, आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा' इति भागुरि वचनात् ।) चक्रवालम् = मण्डलम् ('चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः ।) कपिशितम् = कृष्णलोहितवर्णीकृतम् ('कपिशो धूम्रधूमलो कृष्णलोहिते' इत्यमरः) कपिशशब्दात् 'तत्करोतितदाचष्टे' इति गणसूत्रेण णिच्, तदन्तात्कर्मणि क्तः । तादृशश्चण्डनागः=भयंकर

मनोहर हितकर वचनों के द्वारा मना करने पर (भी) यमुना में निवास के अनुरागी अत्यन्त वलवान् कालियसर्प को यहाँ से वाहर निकाल देता हूँ ॥२॥

सव—स्वामी सङ्कर्षण ! रोको, स्वामी दामोदर को रोको ।

(प्रवेश करके)

सङ्कर्षण—तुम सव भय और विषाद न करो । तुम सव ने अपना अनुराग दिखा दिया । देखिए—

जिसके मुख से निकली हुई विनाश कारिणी विषानल की लपटों से दिङ्मण्डल भूरे वर्ण का कर दिया गया वह भयंकर सर्प (कालिय) वेगपूर्वक

सरभसमभियान्तं कृष्णमालक्ष्य शङ्की
नमयति शिरसान्तर्मण्डलं चण्डनागः ॥ ३ ॥

सर्वाः—हं भट्टिदामोदलो वि तादिसो एव्व । (हं भर्तृदामोदरोऽपि तादृश एव ।)

दामोदरः—सर्वप्रजाहितार्थं द्रुततरं नागं मे वशं करोमि । (इति ह्रदं प्रविष्टः ।)

सर्वाः—हा हा धूमो उट्ठिदो । [हा हा धूम उत्थितः ।)

दामोदरः—अहो ह्रदस्य गाम्भीर्यम् इह हि,

सितेतराभुग्नदुकूलकान्तिद्रुतेन्द्रनीलप्रतिमानवीचिम् ।
इमामहं कालियधूमधूम्रां सान्तर्विषाग्निं यमुनां करोमि ॥४॥

सर्पः कालियः, सरभसम् = सवेगम्, अभियान्तम् = आक्रमणं कुर्वन्तम्, कृष्णम् = दामोदरम्, आलक्ष्य = दृष्ट्वा, शङ्की = भीतः सन्, शिरसा = मूर्ध्ना, अन्तर्मण्डलम् = फणमण्डलम्, नमयति = नतं करोति । मालिनी वृत्तम् ॥ ३ ॥

दामोदरः स्वसङ्कल्पं प्रतिपादयति—सितेतराभुग्नेति । अहम् = दामोदरः, अन्तः = मध्ये विषाग्निना सहितामिति सान्तर्विषाग्निम्, कालियस्य धूमेन विषजनितेनेतिभावः, धूम्राम् = धूमाभाम्, इमाम् = पुरतो दृश्यमानाम्, यमुनाम् = कालिन्दीम्, सितेतरम् = असितम्, नीलवर्णमित्यर्थः आभुग्नम् = किञ्चिद्वक्रम् (यमुनाधारा या किञ्चिद्वक्रत्वादिति भावः) यत् दुकूलम् =

आक्रमणार्थ जाते कृष्ण को देख कर आशंका से शिरसा फणमण्डल को झुका रहा है ॥ ३ ॥

सब—हैं ! स्वामी दामोदर भी वैसा ही है ।

दामोदर—सारे प्राणियों के कल्याणार्थ मैं बहुत शीघ्र ही सर्प को अपने वश में करता हूँ । (ऐसा कह कर जलाशय में प्रवेश करता है ।)

सब—हाय ! हाय ! धुआँ उठ रहा है ।

दामोदर—जलाशय की गहराई आश्चर्यजनक है । यहाँ अवश्य—भीतर विषाग्नि से युक्त तथा कालिय के (विष जनित) धुएं से धूमिल इस यमुना

(निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति वृद्धगोपालकः ।)

वृद्धगोपालकः—हा भट्टा ! एपो कण्णआहिं वालिअमाणो जमुणाह्लं पविट्ठो। मा खु मा खु साहसं करिअ पविसिदुं । एत्थ वग्घा वराहा हत्थिणो पाणीअं पिविअ तहिं तहिं एव्व विमरन्ति। कहं ण दिस्सदि। किं दाणि करोमि। होदु, इमं दाव कुम्भवलाअं आलुहिअ णिज्झाआमि। (आरुह्यावलोक्य) हा हा धुमो उट्ठिदो। (हा भर्तः ! एष कन्यकाभिर्वार्यमाणो यमुनाह्रदं प्रविष्टः। मा खलु मा खलु साहसं कृत्वा प्रवेष्टुम्। अत्र व्याघ्रा वराहा हस्तिनः पानीयं पीत्वा तत्र तत्रैव विम्रियन्ते। कथं न दृश्यते। किमिदानीं करोमि। भवतु, इमं तावत् कुम्भपलाशमारुह्य निध्यायामि। हा हा धूम उत्थितः।)

सङ्कर्षणः—पश्यन्तु भवत्यः।

क्षौमम्, तस्य कान्तिरिव कान्तिर्यस्यास्तादृशी तथा च द्रुतस्य = द्रवीभूतस्य इन्द्रनीलस्य = इन्द्रनीलमणेः प्रतिमानाः = तुल्याः, वीचयः = लहर्यः यस्यास्तादृशीं करोमि = विदधामि, कालियं निष्कास्य यमुनां तत्प्रकृतिं प्रापयामीत्यर्थः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४ ॥

को अभी नीले रंग के किंचित् वक्र महीन वस्त्र की कान्ति के समान कान्ति से युक्त तथा द्रवित इन्द्र नीलमणि के समान लहरों वाली बना देता हूँ ॥ ४ ॥

(निकल गया)

(तदनन्तर वृद्धगोपालक प्रवेश करता है।)

हाय ! स्वामी ! यह कन्याओं के द्वारा मना किया जाता भी यमुना के ह्रद में प्रवेश कर गया। नहीं, प्रवेश करने का साहस न करो। यहाँ बाघ, सूअर और हाथी पानी पीकर वहीं के वहीं मर जाते हैं। क्या देख नहीं रहे हो ? अब क्या करूँ ? अच्छा. इस कुम्भपलाश पर चढ़ कर तब तक टकटकी लगाये देखता हूँ। (चढ़ कर, देखकर , हाय ! हाय ! धुआँ उठ रहा है।

सङ्कर्षण—आप लोग देखिए—

दामोदरोऽयं परिगृह्य नागं विक्षोभ्य तोयं च समूलमस्य ।
भोगे स्थितो नीलभुजङ्गमस्य मेघे स्थितः शक्र इवावभाति ॥५॥

वृद्धगोपालकः—ही ही पाहु भट्टा । पाहु । (ही ही साधु भर्तः ! साधु ।)

(ततः प्रविशति कालियं गृहीत्वा दामोदरः ।)

दामोदरः—एष भोः ।

निर्भर्त्स्य कालियमहं परिविस्फुरन्तं
मूर्ध्न्यञ्चितैकचरणश्चलबाहुकेतुः ।
भोगे विषोल्वणफणस्य महोरगस्य
हल्लीसकं सललितं रुचिरं वहामि ॥ ६ ॥

सङ्कर्षणः कालियस्य फणोपरि स्थितं दामोदरं वर्णयति—दामोदर इति । अयम् दामोदरः = श्रीकृष्णः, नागम् = सर्पम्, परिगृह्य = करेण गृहीत्वा, समूलम् = समग्रमित्यर्थः, तोयम् = जलं च विक्षोभ्य = प्रमथ्य, अस्य नीलभुजङ्गमस्य = कृष्णसर्पस्य, भोगे = फणे स्थितः, मेघे = जलदे स्थितः शक्रः = इन्द्र इव अवभाति - शोभते । उपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रा-वृत्तम् । तल्लक्षणम्—'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' । इति ॥ ५ ॥

कालियं परिगृह्य दामोदरः सहर्षमाह—निर्भर्त्स्येति । अहम् = दामोदरः, परिविस्फुरन्तम् = देदीप्यमानम्, पराक्रमं प्रदर्शयन्तमित्यर्थः, कालियम् = कालियनामानं भुजङ्गमं निर्भर्त्स्य = तिरस्कृत्य, विजित्येत्यर्थः, मूर्ध्नि=शिरसि कालियस्येति भावः अञ्चितः = सुशोभित इत्यर्थः,एकः चरणो यस्य स तथोक्तः, चलः = चञ्चलः, बाहुरेव केतुः = ध्वजो यस्य स तथोक्तः सन्, विषेण = गरलेन उल्वणाः = उग्राः फणा यस्य तथाविधस्य महोरगस्य = विशालसर्पस्य भोगे =

यह दामोदर नाग को पकड़ कर और समग्रजल को क्षुब्ध कर इस काले सर्प के फण पर स्थित, बादल पर स्थित इन्द्र के समान शोभित हो रहा है ।५।

वृद्धगोपालक—ही ही स्वामी ! ठीक किया, आप ने ठीक किया ।

(तदनन्तर कालिय को पकड़ कर दामोदर प्रवेश करता है ।)

दामोदर—अरे यह—

पराक्रम दिखाने वाले कालिय को परास्त कर, उसके सिर पर एक पैर

सर्वाः—अच्छलीअं भट्टा ! अच्छलीअं। कालिअस्स पञ्च फणाणि अक्कमन्तो हल्लीपअं पकीलदि। (आश्चर्यं भर्तः ! आश्चर्यम्। कालियस्य पञ्च फणानाक्रामन् हल्लीसकं प्रकीडति।)

दामोदरः - यावदहमपि पुष्पाण्यपचिनोमि।

कालियः—आः,

लोकालोकमहीधरेण भुवनाभोगं यथा मन्दरं
शैलं शर्वधनुर्गुणेन फणिना यद्वच्च यादोनिधौ।
स्थूलाखण्डलहस्तिहस्तकठिनो भोगेन संवेष्टितं
त्वामेव त्रिदशाधिवासमधुना सम्प्रेषयामि क्षणात् ॥७॥

फणे, सललितम् = क्रीडापूर्वकम्, रुचिरम् = सुन्दरम्, हल्लीसकम् नृत्य-विशेषम्, वहामि – करोमीत्यर्थः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

कालियो दामोदरं निर्भर्त्सयन्नाह—यथा = येन प्रकारेण, लोकालोक-महीधरेण = लोकालोको नाम पर्वतविशेषः, तन्नामा महीधरः = पर्वतः तेन भुवनस्य = संसारस्य, आभोगम् = विस्तारम्, यद्वच्च = यथा च यादोनिधौ—यादसाम् = जलजन्तूनां निधिः = आकरः तस्मिन् समुद्रे, शर्वधनुर्गुणेन–शर्वस्य = शिवस्य यद्धनुः तस्य गुणेन = प्रत्यञ्चाभूतेन, फणिना = सर्पेण शेषनागेनेत्यर्थः, मन्दरं शैलम् = मन्दराचलम्, स्थूलः = विशालकायः आखण्डलस्य = इन्द्रस्य यो हस्ती = गजः, ऐरावत इत्यर्थः, तस्य हस्तः = शुण्डादण्डः, तद्वत् कठिनः = कठोरः (अहं) भोगेन = देहेन, संवेष्टितम् = परिवेष्टितम्, त्वाम् = दामोदरमेव,

---

रख कर चञ्चल बाहुरूप ध्वजा वाला मैं विष से उग्र फण वाले विशाल सर्प के फण पर क्रीडापूर्वक सुन्दर हल्लीसक नृत्य करता हूँ ॥ ६ ॥

सब—आश्चर्य ! हे स्वामी ! आश्चर्य ! कालिय के पाँचों फणों को आक्रान्त कर हल्लीसक नृत्य कर रहा है।

दामोदर—जब तक मैं भी पुष्पों को चुन लूँ।

कालिय—ओह !

लोकालोक पर्वत से परिवेष्टित लोक-विस्तार की तरह तथा शिव के धनुष के प्रत्यञ्चाभूत शेषनाग से समुद्र में परिवेष्टित मन्दराचल के समान तुम्हें

वृद्धगोपालकः—हा हा भट्टा ! एसो भट्टिदामोदलो पुप्फाणुकारेहि पदेहि आआरवन्तं विअ जमुणाहलं महाणाअं पादेण परिघट्टअन्तो पुप्फाणि अवइणोदि । (अवतीर्य) पाहु ! भट्टा पाहु । फल्लेहि फल्लेहि । अहं वि पहाओ होमि । अहो भाआमि भट्टा ! भाआमि । जाव इमं वुत्तन्तं णन्दगोवस्स णिवेदेमि । (निष्क्रान्तः ।) (हा हा भर्तः ! एष भर्तृदामोदरः पुष्पानुकाराभ्यां पदाभ्यामाकारवन्तमिव यमुनाह्लदं महानागं पातेन परिघट्टयन् पुष्पाण्यवचिनोति । साधु भर्तः ! साधु । फालय फालय । अहमपि सहायो भवामि । अहो बिभेमि भर्तः ! बिभेमि । यावदिमं वृत्तान्तं नन्दगोपाय निवेदयामि ।)

दामोदरः—

विध्वस्तमीनमकराद् यमुनाह्रदान्ताद्
दर्पोच्छ्रयेण महता दृढमुच्छ्वसन्तम् ।

अधुना = साम्प्रतम्, क्षणात् = शीघ्रमेवेत्यर्थः, त्रिदशाधिवासम् = त्रिदशाः = देवाः, तेषामधिवासम् - आलयम्, स्वर्गमित्यर्थः, संप्रेषयामि = प्रापयिष्यामीत्यर्थः । उपमाऽलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

दामोदरो वृद्धगोपालकादीनां भयं दूरीकर्तुमाह—विध्वस्तेति । एषः = अहं दामोदरः, महता = अपरिमितेन, दर्पोच्छ्रयेण = गर्वाधिक्येन दृढम् = अत्यन्तम्, उच्छ्वसन्तम् = फूत्कारं कुर्वन्तम्, आयतः = विस्तृतः, वृत्तः = वर्तुलाकारः,

---

इन्द्र के विशालकाय गज ऐरावत की सूँड के समान कठोर मैं अपने शरीर से परिवेष्टित कर अभी क्षण भर में सुरधाम को भेज देता हूँ ॥ ७ ॥

वृद्धगोपालक—हा हा ! स्वामी ! यह स्वामी दामोदर पुष्प के समान पैरों से प्रहार कर मूर्तिमान् यमुना ह्रद-से महानाग को कुचलते हुए पुष्प चुन रहे हैं । ठीक, स्वामी ठीक है । कार्य निष्पन्न करो, निष्पन्न करो, मैं भी सहायक होता हूँ । अरे डरता हूँ, स्वामी ! डरता हूँ । मैं इस वृत्तान्त को (इसी समय) नन्दगोप से निवेदित करता हूँ ।

दामोदर—यह मैं, महान् दर्प के अधिक्य के कारण अत्यन्त फूत्कार करने वाले, विशाल वर्तुलाकार फण वाले पापी को बलपूर्वक, जिसमें मछलियाँ और

आशीर्विषं　　कलुषमायतवृत्तभोग-
　　मेष प्रसह्य सहसा भुवि विक्षिपामि ॥ ८ ॥

कालियः—एष भोः !

रोषेण धूमायति यस्य देहस्तेनैव दाहं पृथिवी प्रयाति।
ज्वालावलीभिः प्रदहामि सोऽहं रक्षन्तु लोकाः समरुद्गणास्त्वाम् ॥ ९ ॥

दामोदरः—कालिय ! यदि ते शक्तिरस्ति, दह्यतां ममैको भुजः।

भोगः = फणः यस्य तम्, कलुषम् = पापिनम्, आशीर्विषम् = सर्पम्, कालियमिति यावत्, प्रसह्य = बलात्, सहसा = सपदि, विध्वस्ताः = विनाशिताः, मीनाः = मत्स्याः, मकराः = जलजन्तुविशेषा यस्मिन् तस्मात्, यमुनाया ह्रदान्तात् = जलाशयमध्यात्, भुवि = पृथिव्याम्, विक्षिपामि = आनीय पातयामि। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

कालियो दामोदरं निर्भर्त्सयन्नाह —रोषेणेति। यस्य = कालियस्य रोषेण = क्रोधेन, क्रोधाग्निनेत्यर्थः, देहः = शरीरम्, धूमायति = धूमो भवति (धूमशब्दात् भवत्यर्थे 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति क्यष्, 'वा क्यषः' इति परस्मैपदत्वं वा। दीक्षितमते तु क्यङेव (धूमायते) स्यात्। द्रष्टव्या नामधातुप्रकरणे पूर्वोक्तसूत्रे सिद्धान्तकौमुदी।) तेनैव = रोषेण, पृथिवी = धरा, दाहं प्रयाति = दग्धा भवति। सोऽहम् = कालियः, ज्वालावलीभिः—ज्वालानाम् = क्रोधाग्नेर्विषाग्नेर्वा शिखानाम् अवलीभिः = श्रेणीभिः, त्वाम् = दामोदरम् प्रदहामि = भस्मसात् करोमि। समरुद्गणाः = देवसमूहसहिताः, लोकाः = जनाः, रक्षन्तु = त्रायन्ताम्। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ९ ॥

घड़ियाल मर चुके हैं उस यमुना के ह्रद के भीतर से अविलम्ब भूमि पर ला फेंकता हूँ ॥ ८ ॥

कालिय—अजी, यह—

जिसके क्रोध से शरीर धुआँ हो रहा है और उसी से पृथिवी भस्म हो जाती है वह मैं (क्रोध या विष की) लपटों से तुम्हें भस्म करता हूँ, देवों के सहित लोग तुम्हें बचावें ॥ ९ ॥

दामोदर—कालिय ! यदि तुममें शक्ति है तो मेरी एक भुजा जलाओ।

कालियः—हहह,

चतुःसागरपर्यन्तां ससप्तकुलपर्वताम् ।
दहेयं पृथिवीं कृत्स्नां किं भुजं न दहामि ते ॥ १० ॥

हं, तिष्ठेदानीम् । एष त्वां भस्मीकरोमि । (विषाग्निं मुञ्चति)

दामोदरः—हन्त दर्शितं ते वीर्यम् ।

कालियः—प्रसीदतु प्रसीदतु भगवान् नारायणः ।

दामोदरः—अनेन वीर्येण भवान् गर्वितः ।

कालियः—प्रसीदतु भगवान् ।

गोवर्द्धनोद्धरणमप्रतिमप्रभावं
बाहुं सुरेश ? तव मन्दरतुल्यसारम् ।

कालियः स्वसामर्थ्यमभिव्यनक्ति—चतुःसागरपर्यन्तामिति । ससप्तकुल-पर्वताम्—सप्तकुलपर्वताः = महेन्द्रादयः, तैः सहिताम् (महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥) । चतुः सागरपर्यन्ताम्—चत्वारः सागराः पर्यन्तः = सीमा यस्यास्ताम् कृत्स्नाम् = समग्राम् पृथिवीम् = धरित्रीम् , दहेयम् = दग्धुं शक्नुयाम् , ते = तव दामो-दरस्य भुजम् = बाहुमेकम् , न दहामि किम् = दग्धुं न शक्नोमि किम् । दहाम्येवेति भावः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१०॥

दामोदरस्य बाहुं दग्धुमशक्तः कालियस्तं प्रसादयितुं स्तौति—गोवर्द्धनेति ।

कालिय—हहह,

सातकुल पार्वतों सहित चार समुद्रों तक विस्तृत समस्त पृथिवी को जला सकता हूँ, तो क्या तुम्हारी एक भुजा को नहीं जला सकता ? ॥ १० ॥

हैं ! रुको अभी । यह (मैं) तुझे भस्म किये देता हूँ । (विषाग्नि छोड़ता है ।)

दामोदर - अरे ! तुम पराक्रम दिखा चुके ?

कालिय—प्रसन्न हों, आप भगवान् नारायण प्रसन्न हों ।

दामोदर—इसी पराक्रम पर आप गर्व करते थे ?

कालिय—भगवान् प्रसन्न हों ।

हे सुरेश ! गोवर्धन गिरि को उठाने वाले, अनुपम प्रभाव वाले मन्दराचल

का शक्तिरस्ति मम दग्धुमिमं सुवीर्यं
यं संश्रितास्त्रिभुवनेश्वर ! सर्वलोकाः ॥ ११ ॥

भगवन् ! अज्ञानादतिक्रान्तवान्, सान्तःपुरः शरणागतोऽस्मि।

दामोदरः—कालिय ! किमर्थमिदानीं यमुनाह्रदं प्रविष्टोऽसि।

कालियः—भगवतो वरवाहनाद् गरुडाद् भीतोऽहमिह प्रविष्टोऽस्मि। तदिच्छामि गरुडादभयं भगवत्प्रसादात्।

दामोदरः—भवतु भवतु।

सुराणामीशः सुरेशस्तत्सम्बुद्धौ हे सुरेश = देवाधिप ! गोवर्धनस्य = तन्नाम्नः पर्वतस्य उद्धरणम् = उत्थापकम्, इन्द्रकृतातिवृष्टिकाले गोकुलवासिनां रक्षणार्थमिति भावः। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्तरि ल्युट्। न प्रतिमा = उपमा यस्य स तादृशः प्रभावः = तेजो यस्य तं, मन्दरेण = मन्दराचलेन तुल्यः सारः = सामर्थ्यं यस्य तम्, तव = दामोदरस्य, इमम् = पुरोवर्तिनम्, शोभनं वीर्यं यस्मिन् तम् पराक्रमशालिनमित्यर्थः, बाहुम् = भुजम्, दग्धुम् = भस्मीकर्तुं, का शक्तिः = किं नाम सामर्थ्यं, मम = कालियस्य, अस्ति = वर्तते कथमपि कदापि भवतस्तथाविधं बाहुं दग्धुं नाहं समर्थ इत्याशयः। हे त्रिभुनेश्वर ! यम् = बाहुम्, सर्वलोकाः संश्रिताः = आश्रित्य स्थिताः सन्ति। वसतितिलकंवृत्तम् ॥११॥

के समान दृढ़, आप के इस पराक्रमशाली बाहु को जलाने की मेरी कौन-सी शक्ति है ? हे त्रिलोकीनाथ, जिस (बाहु) पर सभी लोक आश्रित है ॥ ११ ॥

भगवन् ! अज्ञानवश मैं हद से आगे बढ गया। मैं रानियों के साथ शरणागत हूँ।

दामोदर—कालिय ! इन दिनों तुम यमुना में क्यों प्रविष्ट रहते हो ?

कालिय—आप के श्रेष्ठ वाहन गरुड़ से डरा हुआ मैं यहाँ घुसा रहता हूँ। तो मैं आप के अनुग्रह से गरुड़ से अभय चाहता हूँ।

दामोदर—अच्छा, अच्छा।

मम पादेन नागेन्द्र ! चिह्नितं तव मूर्धनि ।
सुपर्ण एव दृष्ट्वेदमभयं ते प्रदास्यति ॥ १२ ॥

कालियः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

दामोदरः - प्रविशतु भवान् ।

कालियः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः ।

दामोदरः—अथवा एहि तावत् ।

कालियः—भगवन् ! अयमस्मि ।

दामोदरः—अद्यप्रभृति गोब्राह्मणपुरोगासु सर्वप्रजास्वप्रमादः कर्तव्यः ।

कालियः—भगवन् ! मद्विषदूषितमिदं जलम् । तदिदानीमेव विषं संहृत्य यमुनाह्रदान्निष्क्रामामि ।

गरुडादभयमिच्छन्तं कालियं प्रत्याह दामोदरः—मम पादेनेति । नागानाम् = सर्पाणामिन्द्रः = श्रेष्ठ तत्सम्बुद्धौ हे नागेन्द्र = नागराज ! तव = कालियस्य मूर्धनि = मस्तके मम = दामोदरस्य पादेन = चरणेन, चिह्नितम् = चिह्नं कृतम् । सुपर्णः=गरुड, इदम् = चिह्नम्, दृष्ट्वैव = पश्यन्नेव, ते = तुभ्यम्, अभयं प्रदास्यति = न हि त्वामाक्रान्तं करिष्यतीत्यर्थः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥१२॥

दामोदर इति । अद्य प्रभृति = अस्माद् दिवसादारभ्य । गोब्राह्मणपुरोगासु—गावश्च ब्राह्मणाश्च पुरोगाः = मुख्याः यासां तासु, गो ब्राह्मणप्रभृति-

---

हे नागराज ! मेरे पैर ने तुम्हारे मस्तक पर चिह्न बना दिया है, इसे देखकर ही गरुड तुम्हें अभय प्रदान करेगा ॥ १२ ॥

कालिय—अनुगृहीत हूँ ।

दामोदर—आप (ह्रद में) प्रवेश कीजिए ।

कालिय—भगवान् नारायण की जो आज्ञा ।

दामोदर—अथवा पहले (इधर) आओ ।

कालिय—भगवान् ! मैं यह हूँ ।

दामोदर—आज से गो-ब्राह्मण इत्यादि सभी प्राणियों के प्रति प्रमाद न करना (अर्थात् उन्हें पीड़ित न करना) ।

कालिय—भगवन् ! यह जल मेरे विष से दूषित हो चुका है । तो इस समय विप को अपने अन्दर वापस खींचकर यमुना ह्रद से निकल जाता हूँ ।

दामोदरः—प्रतिनिवर्ततां भवान् ।

कालियः—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (सपरिजनो निष्क्रान्तः।)

दामोदरः—यावदहमपि ह्रदाद् गृहीतानि पुष्पाणि गोपकन्यकाभ्यः प्रयच्छामि ।

सर्वाः—एसो भट्टा अम्हाणं हिअआणन्दं करन्तो अक्खदसरीरो इदो एव्व आअच्छदि । जेदु भट्टा । [एष भर्तास्माकं हृदयानन्दं कुर्वन् अक्षतशरीर इत एवागच्छति । जयतु भर्ता ।)

सङ्कर्षणः दिष्टया गोब्राह्मणहितं कृतम् ।

दामोदरः—गृह्यन्तां पुष्पाणि ।

सर्वाः—भट्टा ! एदाणि मुणिसङ्घेहि अणवइदपुव्वाणि पुप्फाणि पलामिट्ठाणि चन्दादिच्चकिरणेहि अपरिमद्दिदाणि । भाआमा भट्टा ! (भर्तः ! एतानि मुनिसङ्घैरनवचितपूर्वाणि पुष्पाणि परामृष्टानि चन्द्रादित्यकिरणैरपरिमर्दितानि । बिभीमो भर्तः ! ।)

ष्वित्यर्थः । सर्वप्रजासु = सकलप्राणिषु । अप्रमादः कर्तव्यः = अपराधो न कर्तव्य, स्वविषानलेन तासां हानिर्न कर्तव्येति भावः ।

अनवचितपूर्वाणि—न पूर्वम् अवचितानि इति अनवचितपूर्वाणि, सङ्क्रान्त विषत्वादिति भावः । चन्द्रादित्यकिरणैः—चन्द्रस्य आदित्यस्य=सूर्यस्य च किरणैः, अपरिमर्दितानि = अनालिङ्गितानि, अस्पृष्टानीति यावत् । परामृष्टानि = करेण स्पृष्टानीत्यर्थः, भवतेति शेषः अवचितानीति यावत् । बिभीमः = भयं प्राप्नुमः ।

दामोदर—आप वापस जाइए ।

कालिय - भगवान् नारायण की जो आज्ञा ।

दामोदर—मैं भी ह्रद से चुने हुए पुष्प गोपकन्याओं को देता हूँ ।

सव -- यह स्वामी हमारे हृदय को आनन्द प्रदान करते हुए, जिनके शरीर को किसी भी प्रकार से क्षति नहीं पहुँची है, इधर ही आ रहे हैं । स्वामी की जय हो ।

सङ्कर्षण—भाग्य से गो-ब्राह्मण का कल्याण कर दिया गया ।

दामोदर—पुष्प लीजिए ।

सब—स्वामी ! आप ने इन पुष्पों का चयन किया जिन्हें इसके पहिले मुनियों ने (भी) नहीं चुना था और चन्द्र-सूर्य की किरणें भी जिन्हें नहीं छूती थीं । हम डर रही हैं ।

दामोदरः—पूर्वं दृष्टभया वित्रस्तास्तपस्विन्यः । न भेतव्यं न भेतव्यम्। इदानीं खलु मत्करस्पर्शनात् सौम्यभावमुपगतानि, गृह्यन्ताम् ।

सर्वाः—जं भट्टा आणवेदि [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

भटः—भो गोपालक ! क्व गतो नन्दगोपपुत्रः ।

गोपालकः—एसो भट्टा कालिअं णाम महाणाअं परिपीडिअ गोवकण्णआहि परिवुदो ट्ठिओ। (एष भर्ता कालियं नाम महानागं परिपीड्य गोपकन्यकाभिः परिवृतः स्थितः ।)

भटः—(उपगम्य) भो नन्दगोपपुत्र ! अनुगतार्थनामधेयस्य महाराजस्योग्रसेनस्य पुत्रः कंसराजो भवन्तमाज्ञापयति ।

दामोदरः—कथमाज्ञापयतीति ।

भटः—मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवो भविष्यति। तमनुभवितुं सपरिजनाभ्यां भवद्भ्यामागन्तव्यमिति ।

दामोदरः—आर्य ! अयं ननु देवरहस्यकालः ।

दामोदर—पहले से ही भय देख कर ये बेचारी डरी थीं। डरो न, डरो न। अब निश्चय ही मेरे हाथ के स्पर्श से ये पुष्प (विषरहित हो) सुखद भाव को प्राप्त हो गये हैं। ग्रहण कीजिए।

सब—जो स्वामी की आज्ञा ।

(प्रवेश करके)

भट—हे गोपालक ! नन्दगोप का पुत्र कहाँ गया ?

गोपालक—यह स्वामी ! कालिय नामक महानाग को परास्त कर गोपकन्याओं से घिरे हुए खड़े हैं।

भट—(समीप जाकर) हे नन्दगोप के पुत्र ! सार्थक नाम वाले उग्रसेन महाराज के पुत्र कंसराज ने आप को आज्ञा दी है।

दामोदर—क्या, आज्ञा दे रहा है !

भट—मथुरा में 'धनुर्मह' (धनुर्यज्ञ) नामक महोत्सव होगा। उसका आनन्द लेने के लिए तुम दोनों को परिवार सहित आना है।

दामोदर—आर्य ! निश्चय ही देवताओं के रहस्य (कंसवध) का यही समय है।

सङ्कर्षणः—शीघ्रमिदानीं गमिष्यावः।

दामोदरः—बाढम्। प्रथमः कल्पः। एष भोः।

प्रभ्रष्टरत्नमुकुटं परिकीर्णकेशं
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रम्।
आकृष्य कंसमहमद्य दृढं निहन्मि
नागं मृगेन्द्र इव पूर्वकृतावलेपम्॥ १३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

चतुर्थोऽङ्कः।

कृष्णः स्वचिकीर्षितमभिव्यनक्ति प्रभ्रष्टरत्नमुकुटम्—प्रभ्रष्टम् = शिरोदेशात् पृथिव्यां पतितं रत्नमुकुटम् = रत्नखचितं शिरोभूषणं यस्य तम्, परिकीर्णकेशम्—परिकीर्णाः = अव्यवस्थिताः केशाः = कचा यस्य तम्, विछिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रम्—विच्छिन्नः = त्रुटितः, हारः = मुक्तामाला, पतितम् = भुवि लुठितम् अङ्गदम् = केयूरम्, लम्बसूत्रम् = नाभिपर्यन्तविस्तृता सुवर्णमाला च यस्य तम्, कंसम् = कंसनामानं वैरिणम्, आकृष्य = सिंहासनादपकृष्टं कृत्वा, अहम् = कृष्णः, अद्य = अस्मिन् दिने, पूर्वकृतावलेपम्—पूर्वम् = प्राक् कृतः अवलेपः = गर्वः येन तथा विधम्, नागम् = गजम्, मृगेन्द्रः=सिंह इव, दृढम् = पूर्णतः, निहन्मि = मारयिष्यामीत्यर्थः। उपमाऽलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १३॥

इति 'कल्याणी' संस्कृत टीकायां चतुर्थोऽङ्कः।

सङ्कर्षण—अब शीघ्र हम दोनों (वहाँ) जायँगे।

दामोदर—अवश्य, बहुत अच्छा सुझाव है। अरे यह—

आज, पहिले से दर्प युक्त गजराज के समान कंस को सिंह के समान मैं (सिंहासन से) खींच कर पूर्णतया मार डालूँगा। उस समय उनका रत्नजटित मुकुट (भूमि पर) गिरा हुआ होगा, केश बिखरे होंगे, हार टूटा हुआ होगा, केयूर और लम्बसूत्र (नाभिपर्यन्त माला)भूमि पर पड़ा हुआ होगा॥१३॥

(सब चले गये।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

—:*:—

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति राजा।)

राजा—

श्रुत्वा व्रजे विपुलविक्रमवीर्यसत्त्वं
दामोदरं सह बलेन समाचरन्तम्।
आदिश्य कार्मुकमहं तमिहोपनीय
मल्लेन रङ्गगतमद्य तु घातयामि ॥१॥

ध्रुवसेन ; ध्रुवसेन !

(प्रविश्य)

राजा कंसः स्वचिकीर्षितं विज्ञापयति—श्रुत्वेति। व्रजे = व्रजभूमौ, विपुलः = महान् विक्रमः = पराक्रमः, वीर्यम् = वीरता, सत्त्वम्=बलं च यस्य तम्, दामोदरम् = श्रीकृष्णम्, बलेन = बलदेवेन सह = साकम्, समाचरन्तम् = आगच्छन्तम् श्रुत्वा = आकर्ण्य, अहम् = कंसः, कार्मुकम् = कर्मवीरम् (कर्मन् + उकञ्) अत्र कार्मुकमिति पदं श्रीकृष्णविशेषणम्। तं कृष्णम्, आदिश्य = आदिष्टं कृत्वा, इह = अत्र रङ्गभूमौ, उपनीय=आहूय, रङ्गगतम् = रङ्गभूमिप्राप्तं तं, मल्लेन = चाणूरादिना, अद्य घातयामि = निधनं प्रापयिष्यामि। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

(तदन्तर राजा प्रवेश करता है।)

राजा—

व्रज में महान् पराक्रम, शौर्य तथा बल से सम्पन्न दामोदर को बलदेव के साथ आता हुआ सुनकर मैं उस कर्मवीर को आदेश देकर यहाँ बुला कर रंग भूमि में आने पर उसे (चाणूर आदि) मल्लों से मरवा डालूँगा ॥ १ ॥

ध्रुवसेन ! ध्रुवसेन !

(प्रवेश कर के)

भटः—जयतु महाराजः।

राजा—ध्रुवसेन ? किमागतो नन्दगोपपुत्रः।

भटः—श्रोतुमर्हति महाराजः—प्रविशन्नेव दामोदरः ससङ्कर्षणो गोपजनपरिवृतो रजकेभ्यो वस्त्राण्याच्छिद्य गृहीतवानिति श्रुत्वा महामात्रेणोत्पलापीडो नाम गन्धहस्ती सञ्चोदितस्तमभिघातयितुम्। ततः

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य सभीतगोपालकवृन्दमध्ये।
बालो बलेनाद्रिनिभं गजेन्द्रं दन्तं समाकृष्य जघान शीघ्रम् ॥२॥

राजा—कथं जघानेति ? गच्छ। भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। एष इदानीं नन्दगोपपुत्र उत्सवाधिकारोच्छ्रितध्वजपताकमवसक्तमाल्य-

---

भटः कंसाय निवेदयति—तमापतन्तमिति। सभीतगोपालकवृन्दमध्ये-सभीताः=भयत्रस्ताः ये गोपालकाः तेषां वृन्दस्य मध्ये, सहसा=अकस्मात्, आपतन्तम्=आगच्छन्तम्, अद्रिनिभम्=पर्वततुल्यम् तं गजेन्द्रम्=उत्पलापीडम्, समीक्ष्य=दृष्ट्वा, बलेन=पराक्रमेण, दन्तम् समाकृष्य=उत्पाट्य, शीघ्रम्=अविलम्बम्, जघान=मारितवान्॥ उपजातिर्वृत्तम्॥२॥

भट इति। उत्सवाधिकारोच्छ्रितध्वजपताकम्—उत्सवस्य=धनुर्यज्ञस्य अधिकारेण=प्रकरणेन उच्छ्रिताः—उन्नताः ध्वजाः पताकाश्च यत्र तम्।

भट—महाराज की जय हो।

राजा ध्रुवसेन ! क्या नन्दगोप का पुत्र आ गया ?

भट—महाराज सुनें, प्रवेश करते ही बलराम के साथ गोपों से घिरे हुए दामोदर ने धोबियों से वस्त्र छीन कर ले लिया—ऐसा सुनकर महामन्त्री ने कुवलयापीडनामक गन्धराज को उसे मारने के लिए प्रेरित किया। उसके बाद भयभीत ग्वाल-समूह के बीच पर्वत सदृश्य उस गजराज को सहसा आता देखकर बालक (दामोदर) ने शीघ्र (अपने) बल से (उसके) दाँतों को उखाड़ कर मार डाला ॥ २ ॥

राजा—क्या, मार डाला ! जाओ, फिर वृत्तान्त का पता लगाओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा। (निकल कर पुनः प्रवेश कर) महाराज की

दामालङ्कृतमुत्थापितागुरुधूपसमाकुलं राजमहापथं प्रविश्य राजकुलद्वारे गन्धसमुद्गावसक्तहस्तां मदनिकां नाम कुब्जिकां दृष्ट्वा तस्या हस्ताद् गन्धमादाय स्वगात्रमनुलिप्य तेनैव हस्तेन कुब्जस्यानुमार्जनेन विगत-कुब्जभावां तां कृत्वा मालाकारापणेभ्यः पुष्पाण्याहृत्यावबध्य धनुः—शालाभिमुखो गतः।

राजा—किन्नु खलु तेन व्यवसितम्। तेन हि शीघ्रं गच्छ। भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः।

अवसक्तमाल्यदामालङ्कृतम्—अवसक्तानि = आलम्बितानि माल्यानि = पुष्प-माला येषु तथाविधानि यानि दामानि = रज्जवः, तैरलङ्कृतम् = सुसज्जितम्, उत्थापितागुरुधूपसमाकुलम्—उत्थापितः = ऊर्ध्वंगमितो यः अगुरुधूपः = अगुरु-धूपादिसुगन्धितपदार्थानां धूमः तेन समाकुलम् = व्याप्तम्। राजमहापथम् = आयतं राजमार्गम्। गन्धसमुद्गावसक्तहस्ताम्—गन्धानाम् = सुगन्धित-वस्तूनां समुद्गः = पिहिता मञ्जूषा तत्र अवसक्तः = संलग्नः हस्तो यस्यास्ताम्, करेण गन्धसमुद्गकं वहन्तीमित्यर्थः मदनिकाम् = मदनिकानाम्नीं दासीम्, कुब्जिकाम् = पृष्ठभागेन कुब्जाम्। अनुमार्जनेन = परामर्शेन। विगतकुब्जभावाम्—विगतः = दूरीकृतः, कुब्जभावो यस्यास्तथाविधम्। आहृत्य = गृहीत्वा, अवबध्य = धृत्वा।

राजेति। व्यवसितम् = कृतम्। भूयः = पुनः।

जय हो। यह नन्दगोप का पुत्र इस समय उत्सव के प्रकरणसे उन्नत ध्वज-पता-काओं से युक्त, लटकी हुई पुष्प मालाओं से सुशोभित, ऊपर की ओर पहुँचाये गये अगर और धूप के धुंए से व्याप्त विस्तृत राजमार्ग पर प्रवेश कर, गन्ध द्रव्य की पिटारी हाथ पर लिए हुए मदनिका नामक कुब्जा को देखकर उसके हाथ से गन्ध द्रव्य लेकर अपने शरीर पर लेप करके तथा उसी हाथ से कूवड़ का स्पर्श कर उसका कूवड़ापन दूर कर मालियों की दुकानों से फूल लेकर, धारण करके धनुपशाला की ओर गया है।

राजा—उसने (वहाँ) (न जाने) क्या किया हो ? तो शीघ्र जाओ और पुनः समाचार जानो।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। धनुःशालारक्षकेण सिंहबलेन वार्यमाणस्तं कर्णमूले प्रहृत्य हत्वा धनुः समादाय द्विखण्डं कृत्वा साम्प्रतमुपस्थानाभिमुखो गतः। स हि,

आपीडदामशिखिबर्हविचित्रवेषः
पीताम्बरः सजलतोयदराशिवर्णः।
अभ्येति रोषपरिवृत्तविशालनेत्रो
रामेण सार्धमिह मृत्युरिवावतीर्णः ॥३॥

भट इति। सिंहबलेन = सिंहबलनाम्ना भृत्येन। कर्णमूले = गण्डस्थल इत्यर्थः प्रहृत्य = प्रहारं कृत्वा, हत्वा = निधनं कृत्वा। उपस्थानाभिमुखो गतः- सभामण्डपमभिप्रस्थितः।

भटो दामोदरवर्णनं करोति—आपीडदामेति। आपीडदाम्ना = शिरोमाल्येन, शिखिबर्हेण-शिखिनः = मयूरस्य बर्हेण = पिच्छेन च विचित्रः = सुन्दरः, वेषः = स्वरूपं यस्य सः पीतम् = पीतवर्णम्, अम्बरम् = वस्त्रं यस्य सः। सजलतोयद- राशिवर्णः—जलेन सहित इति सजलः = जलसंभृत इत्यर्थः, स चासौ तोयदः = मेघः, तस्य राशिः = समूहः, तस्य वर्ण इव वर्णः = रूपं यस्य सः। रोषपरिवृत्त- विशालनेत्रः—रोषेण = क्रोधेन, परिवृत्ते = अन्यथा भूते, विशाले = आयते, नेत्रे = अक्षिणी यस्य स तथोक्तः, सः = कृष्णः, रामेण = सङ्कर्षणेन सार्धम् = सह, मृत्युः = कृतान्तः, स इव, इह = अत्र, अवतीर्णः = आविर्भूतः, अभ्येति = तव (कंसस्य) सकाशमागच्छति। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३ ॥

भट—महाराज की जो आज्ञा। (निकल कर और प्रवेश कर के) महाराज की जय हो। धनुषशाला के रक्षक सिंहबल के द्वारा मना किया गया वह उसकी कनपटी पर प्रहार कर उसे मार कर, धनुष को लेकर उसके दो खण्ड करके इस समय सभामण्डप की ओर गया। वह तो,

सिर पर पुष्पमाला और मयूर पंख धारण कर सुन्दर वेष बनाये, जलपूर्ण मेघराशि के समान श्याम वर्णवाला, पीले वस्त्र को धारण किए हुए, क्रोध से दूसरे प्रकार के विशाल नेत्रों वाला, (साक्षात्) मृत्यु-सा अवतीर्ण, बलराम के साथ, इधर को ही आ रहा है ॥ ३ ॥

राजा—सावेगमिव मे हृदयम् । गच्छ; यथानिर्दिष्टौ चाणूरमुष्टिकौ प्रवेशय, वृष्णिकुमाराणां सन्नाहमाज्ञापय ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः ।)

राजा—यावदहमपि प्रासादमारुह्य चाणूरमुष्टिकयोर्युद्धं पश्यामि । (आरुह्य) मधुरिके ! विघाट्यतां द्वारम् ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(राजा प्रविश्योपविशति ।)

(ततः प्रविशतश्चाणूरमुष्टिकौ ।)

चाणूरः —

एसो म्हि जुद्धसज्जो मत्तो हत्थीव दप्पसम्पुण्णो ।
भञ्जेमि अज्ज बालं दामोदलं लंगमज्झम्मि ॥४॥

[एषोऽस्मि युद्धसज्जो मत्तो हस्तीव दर्पसंपूर्णः ।
भनज्म्यद्य बालं दामोदरं रङ्गमध्ये ॥]

राजेति । सावेगम् आवेगः = सम्भ्रमः, तेन सहितम्, सम्भ्रान्तमित्यर्थः । वृष्णिकुमाराणाम् = यादवकुमाराणाम् । सन्नाहम् = सुसज्जाम् । वृष्णिकुमारा अपि सन्नद्धाःस्युरिति विज्ञापयेत्यर्थः ।

चाणूरोऽपि स्वबलं प्रतिपादयति—एषोऽस्मीति । मत्तः = मदयुक्तः,

राजा—मेरा हृदय घबड़ाहट से युक्त-सा हो रहा है । जाओ, जैसा पहिले बताये जा चुके हैं, चाणूर और मुष्टिक को ले आओ । वृष्णिकुमारों को युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दे दो ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (निकल गया)

राजा—मैं भी प्रासाद पर चढ़ कर चाणूर और मुष्टिक का युद्ध देखता हूँ । (चढ़ कर) मधुरिके ! द्वार खोल दो ।

प्रतिहारी—स्वामी की जो आज्ञा ।

(राजा प्रवेश कर बैठता है ।)

(तदनन्तर चाणूर और मुष्टिक प्रवेश करते हैं)

चाणूर—मस्त गज के समान गर्व से भरा मैं यह चाणूर युद्ध के लिए

मुष्टिकः—

लोहमयमुट्ठिहत्थो णामेण अ मुट्ठिओ लुट्ठि।
पादेमि अज्ज लामं गिलिवलकूटं जहा वज्जो ॥ ५ ॥
[लोहमयमुष्टिहस्तो नाम्ना च मुष्टिको रुष्टः।
पातयाम्यद्य रामं गिरिवरकूटं यथा वज्रः ॥]

भटः—एष महाराजः। उपसर्पेतां भवन्तौ।

उभौ—(उपेत्य) जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता।]

राजा—चाणूरमुष्टिकौ! सर्वप्रयत्येन युवाभ्यामानृण्यं कर्तव्यम्!

हस्ती = गज इव, दर्पसम्पूर्णः दर्पेण = गर्वेण, सम्पूर्णः = सम्भृतः, एषः = अहं चाणूरः, युद्धसज्जः—युद्धाय = मल्लयुद्धं कर्तुं सज्जः = बद्धपरिकरः, अस्मि। अद्य = अस्मिन् दिने, साम्प्रतमित्यर्थः। बालम् = बालकम्, दामोदरम् = कृष्णम्, रङ्गमध्ये = मल्लयुद्धभूमिमध्ये, भनज्मि = चूर्णं करिष्यामीत्यर्थः। 'हस्तीव' इत्यत्रोपमा। गाथा छन्दः ॥ ४ ॥

मुष्टिकोऽपि सगर्वं स्वपराक्रमं निर्वक्ति—लोहमयेति। लोहमयी मुष्टिर्ययोः, तादृशौ हस्तौ यस्य स तथोक्तः। नाम्ना = अभिधानेन च मुष्टिकः, रुष्टः = सञ्जातरोषः, अद्य = साम्प्रतम्। गिरिवरकूटम् = पर्वतशिखरम् यथा = येन प्रकारेण, वज्रः = कुलिशः, रामम् = बलरामम्, पातयामि = धराशायिनं करिष्यामीत्यर्थः। उपमाऽलंकारः। गाथा छन्दः ॥ ५ ॥

राजेति। सर्वप्रयत्नेन युवाभ्यामानृण्यं कर्त्तव्यम्—चाणूरमुष्टिकौ! युवां

तैयार हूँ। आज बालक दामोदर को अखाड़े के अन्दर चूर चूर कर डालूँगा ॥ ४ ॥

मुष्टिक—मैं नाम से मुष्टिक हूँ। मेरे हाथ का मुक्का लोहे के समान (कठिन) है। क्रुद्ध हो मैं आज बलराम को उसी प्रकार धराशायी कर दूँगा, जिस प्रकार वज्र पर्वत शिखर को गिराता है ॥ ५ ॥

भट—यह महाराज है। तुम दोनों समीप चले आओ।

दोनों—(समीप जाकर) स्वामी की जय हो।

राजा—चाणूर और मुष्टिक! सब प्रकार के प्रयत्न से तुम दोनों (अपने

उभौ—सुणादु भट्टा । अड्ढिदकरणसन्धावन्धप्पहारेहि जुद्धविसेसेहि सिद्धिं गच्छामो । हं पेक्खदु भट्टा । [शृणोतु भर्ता । (आढि्ठद !) करण सन्धावन्धप्रहारैर्युद्धविशेषैः सिद्धिं गच्छामः । हं पश्यतु भर्ता ।]

राजा—वाढमेवं क्रियताम् । ध्रुवसेन ! प्रवेश्यतां गोपदारकौ ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशतो दामोदरसङ्कर्षणौ ध्रुवसेनेन सह ।)

दामोदरः—आर्य !

मर्त्येषु जन्म विफलं मम तानि घोषे
कर्माणि चाद्य नगरे धृतये न तावत् ।
यावन्न कंसहतकं युधि पातयित्वा
जन्मान्तरासुरमहं परिकर्षयामि ॥ ६ ॥

तथा प्रयतेथां यथा कृष्णं वलरामं च हत्वाऽनृणौ भवेतम इति कंसोक्तेरभिप्रायः ।

दामोदरः स्वचिकीर्षितं कथयति - मर्त्येष्विति । मम = दामोदरस्य, मर्त्येषु = मानवेषु जन्म, तावत् विफलम् = व्यर्थम् । घोषे = आभीरवसतौ, अद्य नगरे = मथुरायां च, तानि = कृतानि, कर्माणि न धृतये = धैर्याय, यावत्, अहम् = दामोदरः, जन्मान्तरासुरम् = अन्यत् जन्म जन्मान्तरम् पूर्वजन्मेत्यर्थः तस्मिन् असुरम् राक्षसम्, कंसहतकम् = अधमं कंसम्, युधि = रणे,

---

को) ऋण-मुक्त कर लो ।

दोनों—स्वामी सुनें, अनेक करणसकन्ध और आवन्ध प्रहारों वाले विशेष-युद्ध से सफलता प्राप्त करेंगे । आदरणीय स्वामी देखें ।

राजा—ठीक, ऐसा ही करो । ध्रुवसेन ! दोनों गोप कुमारों को भीतर ले आओ ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (चला गया)

(तदनन्तर ध्रुवसेन के साथ दामोदर और संकर्षण प्रवेश करते हैं ।)

दामोदर—आर्य !

मृत्युलोक में मेरा जन्म तब तक व्यर्थ है और आभीर बस्ती में तथा आज इस नगर में किये उन कर्मों से मुझे तब तक धैर्य नहीं है जब तक जन्म-

सङ्कर्षणः—

प्रविश्य रङ्गं कृतलोहमुष्टिं तं मुष्टिना मुष्टिकमद्य रुष्टम् ।
हत्वा चरिष्याम्यनिलप्रचण्डः प्रलम्बमम्भोदमिवान्तरिक्षे ॥ ७ ॥

भटः—एष महाराजः । उपसर्पेतां भवन्तौ ।

उभौ—आः कस्य महाराजः ।

भटः—सर्वस्य जगतोऽस्माकं च ।

दामोदरः—अद्यप्रभृति न भविष्यति ।

भटः—जयतु महाराजः ! एतौ तौ ।

पातयित्वा = धराशायिनं कृत्वा, न परिकर्षयामि = तस्य परिकर्षणं न करोमि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

सङ्कर्षणोऽपि स्वचिकीर्षितमभिव्यनक्ति—प्रविश्येति । अद्य = अस्मिन् दिने, रुष्टम् = संजातक्रोधम्, कृतलोहमुष्टिम्—कृता लोहवत् मुष्टिर्येन तं तथोक्तम्, तम् = प्रसिद्धम्, मुष्टिकम् = मुष्टिकनामानं मल्लम्, रङ्गम् = मल्लशालाम्, प्रविश्य = तत्र गत्वा, अन्तरिक्षे = आकाशे, प्रलम्बम् = प्रलम्बनशीलम्, अम्भोदम् = मेघम्, अनिलप्रचण्ड = झञ्झावातः, स इव हत्वा = विनष्टं कृत्वा, चरिष्यामि = विचरणं करिष्यामि । उपमाऽलङ्कारः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोर्मिश्रणादुपजातिर्वृत्तम् ॥ ७ ॥

जन्मान्तर के राक्षस अधम कंस को युद्ध में धराशायी कर मैं उसे घसीटता नहीं हूँ ॥ ६ ॥

सङ्कर्षण—

आज लोहे के समान मुष्टि वाले उस क्रुद्ध मुष्टि को यज्ञशाला में प्रवेश कर (अपनी) मुष्टि से, आकाश में लटके हुए बादलों को झंझावात के समान मैं विनष्ट कर विचरण करूँगा ॥ ७ ॥

भट—यह महाराज हैं । तुम दोनों उनके समीप जाओ ।

दोनों—ओह ! किसके महाराज ?

भट—सारे संसार का और हम सबका ।

दामोदर आज से नहीं रहेगा ।

भट—महाराज की जय हो । ये वे दोनों (उपस्थित) हैं ।

राजा—(विलोक्य) अयं स दामोदरः । अहो,

श्रीमान् मदान्धगजधीरविलासगामी
श्यामः स्थिरांसभुजपीनविकृष्टवक्षाः ।
पूर्वं श्रुतानि चरितानि न चित्रमस्य
लोकत्रयं हि परिवर्तयितुं समर्थः ॥ ८ ॥

अयं नु ललितगम्भीराकृतिः पूर्वजोऽस्य राम इति श्रूयते ।
अभिनवकमलामलायताक्षः शशिनिभमूर्तिरुदारनीलवासाः ।

श्रीकृष्णं विलोक्य राजा कंसस्तं प्रशंसन्नाह—श्रीमानिति । अस्य = कृष्णस्य, पूर्वम् = पुरा, श्रुतानि = कर्णगोचरीकृतानि चरितानि = कार्याणि, न चित्रम् = न आश्चर्यम् । हि = यतः, श्रीमान् = शोभासम्पन्नः, मदान्धः मत्तो यो गजस्तद्वत् धीरं विलासं च गन्तुं शीलमस्येति तथोक्तः, स्थिरौ = सुदृढौ अंसौ = स्कन्धौ, भुजौ = वाहू, पीनम् = मांसलम्, विकृष्टम् = विस्तृतं वक्षः=वक्षस्थलं यस्य सः, श्यामः=श्यामवर्णः (अयं दामोदरः) लोकत्रयम् त्रिलोकीम्, परिवर्तयितुं समर्थः = अन्यथा कर्तुं शक्तः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥८॥

अयम् = पुरोवर्ती, ललिता = मनोहरा, गम्भीरा च आकृतिर्यस्य स तथोक्तः, अस्य = दामोदरस्य पूर्वजः = ज्येष्ठो भ्राता, रामः = वलरामः ।

अथ वलरामं कंसः प्रशंसन्नाह—अभिनवेति । अयम् = वलरामः, अभिनवम् = प्रत्यग्रं यत् कमलम्, तद्वत् अमले = स्वच्छे, आयते = विस्तृते च अक्षिणी = नेत्रे यस्य स तथोक्तः, शशिनिभा = चन्द्रसदृशी मूर्तिः = शरीरं यस्य

राजा—(देख कर) वह दामोदर यह है । अहो !

पहिले सुने गये इसके चरित आश्चर्यजनक नहीं हैं । शोभासम्पन्न, मत्तगज के समान गम्भीर तथा विलासपूर्वक गमन करने वाला, दृढ कन्धों, भुजाओं और मांसल एवं चौड़े वक्षस्थल वाला यह साँवला दामोदर तीनों लोकों को परिवर्तित करने में समर्थ है ॥ ८ ॥

यह सुन्दर गम्भीर आकृति वाला, इसका बड़ा भाई वलराम है, ऐसा सुना जाता है । इसके नेत्र नूतन ताजे कमल के समान स्वच्छ एवं विशाल हैं, इसका शरीर चन्द्रमा के समान (शुभ्र) है, इसका वस्त्र अत्यन्त सुन्दर नीले रंग का

रजतपरिघवृत्तदीर्घबाहुश्चलदसितोत्पलपत्रचित्रमालः ॥ ६ ॥

दामोदरः—आर्य ! एतावेवावाभ्यां युद्धसन्नद्धाविति मन्ये ।

सङ्कर्षणः—भवितव्यम् ।

राजा—ध्रुवसेन ! प्रवर्ततां युद्धम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः (मालां क्षिपति ।)

मल्लौ—अह्वो ! वादेथ वादेथ सङ्खपटहाणि । [अह्वो ! वादयत वादयत सङ्ख्यपटहान् ।]

चाणूरः—एहि दामोदल ! अज्ज मे भुजजुअल्लेहि सिद्धिं गच्छ । [एहि दामोदर ! अद्य मे भुजयुगलेन सिद्धिं गच्छ ।]

स तथोक्तः, उदारम् = सुन्दरम्, नीलम् = नीलवर्णञ्च वासः = वस्त्रं यस्य स तथोक्तः, रजतपरिघः रजतम् = रूप्यम् ('रजतं रूप्यं खर्जूरं श्वेतमित्यपि' इत्यमरः) तन्निर्मितो यः परिघः = अर्गला, तद्वत् वृत्तौ = वर्तुलाकारौ, दीर्घौ = विशालौ च बाहू = भुजौ यस्य स तथोक्तः, चलत् = चञ्चलं यत् असितोत्पलपत्रम् = नीलकमलदलम्, तस्य चित्रा = मनोहारिणी माला यस्य स तथोक्तः, पूर्वजोऽस्य राम इति श्रूयते इति पूर्वोक्तेनान्वयः । उपमाऽलंकारः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा । इति ॥ ९ ॥

है । इसके बाहु चाँदी के बने हुए परिघ के समान वर्तुलाकार एवं विशाल हैं तथा नीलकमल दल की मनोहारिणी माला यह धारण किए हुए है ॥ ९ ॥

दामोदर—आर्य ! ये ही दोनों हमारे साथ युद्ध के लिए तैयार हैं—ऐसा मैं समझता हूँ ।

सङ्कर्षण—होना चाहिए ।

राजा—ध्रुवसेन ! युद्ध प्रारम्भ हो ।

भट—महाराज की जो आज्ञा । (माला फेंकता है ।)

दोनों मल्ल—अजी, युद्ध के नगाड़े बजाओ ।

चाणूर—आओ दामोदर, आज मेरी दोनों भुजाओं से सफलता प्राप्त करो ।

दामोदरः—

प्राप्तोऽस्मि तिष्ठ मम वेगमिमं सहस्व ।

मुष्टिकः—ए ए लाम ! अज्जमेमुट्ठिपिट्ठिगत्तगलिअलुहिलपडल-मज्जोजीविअं उज्झसि । [ए ए राम अद्य मे मुष्टिपिष्टगात्रगलितरुधिर-पटलमज्जो जीवितमुज्झसि]

सङ्कर्षणः—त्वामद्य मुष्टिक ! यमाय निवेदयामि ।

(सर्वे नियुद्ध कुर्वन्ति ।)

दामोदरः—(चाणूरं निहत्य)

भग्नास्थिरेष निहतो

दामोदरश्चाणूरमाह्वयमानः प्राह—प्राप्तोऽस्मीति । प्राप्तः = आगतोऽस्मि, तिष्ठ = स्थिरो भव, मम = दामोदरस्य, इमम् = क्रियमाणम्, वेगम् = प्रहार-संवेगम्, सहस्व = अनुभव ।

मुष्टिको बलराममाह्वयते—ए ए रामेति । मुष्टिपिष्ट०—मुष्टिभिः पिष्टानि = चूर्णीकृतानि गात्राणि = अङ्गानि, तेभ्यो गलितम् = बहिर्निःसृतम् रुधिरपटलम् = शोणितराशिः, मज्जा = वसा च यस्य सः, जीवितम् = जीवनम्, प्राणानिति यावत्, उज्झसि = परित्यक्ष्यसि ।

बलरामो मुष्टिक प्रत्याह—त्वामिति । मुष्टिक ! अद्य = अस्मिन् दिने त्वाम् = मुष्टिकम्, यमाय निवेदयामि = हत्वा यमराजसकाशं प्रेषयिष्यामीत्यर्थः ।

चाणूरं हत्वा दामोदर आह—भग्नेति । भग्नानि = चूर्णीकृतानि अस्थीनि यस्य सः, एषः चाणूरः, निहतः - निधन प्रापितः ।

दामोदर—मैं पहुँचा ही हूँ, ठहरो मेरे इस प्रहार के वेग को झेलो ।

मुष्टिक—हे हे राम ! आज मेरे मुक्के से तेरे पिसे हुए अङ्गों से रुधिर और मज्जा वह चलेगी और तू प्राण छोड़ देगा ।

सङ्कर्षण—मुष्टिक ! आज तुझे यमराज के हवाले करूँगा ।

(सब युद्ध करते है)

दामोदर—(चाणूर को मार कर)

सङ्कर्षणः—— निहतो मयापि

दामोदरः—कंसासुरं च यमलोकमहं नयामि ॥ १० ॥

(प्रासादमारुह्य कंसं शिरसि निगृह्यपातयित्वा) एष एष दुरात्मा कंसः,

विस्तीर्णलोहितमुखः परिवृत्तनेत्रो
भग्नांसकण्ठकटिजानुकरोरुजङ्घः ।
विच्छिन्नहारपतिताङ्गदलम्बसूत्रो
वज्रप्रभग्नशिखरः पतितो यथाद्रिः ॥ ११ ॥

संकर्षणोऽपि प्राह—निहत इति । मयापि = संकर्षणेनापि (एव मुष्टिकः) निहतः = विनाशितः ।

दामोदरस्तवः प्राह—अहम् = कृष्णः, कंसासुरम् = कंसाख्यं राक्षसम्, यमलोकम् = यमपुरीम्, नयामि = प्रापयामि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १० ॥

दामोदरः कंसस्य दुरवस्थां वर्णयन्नाह—विस्तीर्णेति । विस्तीर्णम् = प्रसृतम्, लोहितम् = रुधिरं यत्र तादृशं मुखम् = आननं यस्य स तथाविधः, परिवृत्ते = अन्यथाभूते नेत्रे = नयने यस्य सः, भग्नौ = विदीर्णौ अंसौ = स्कन्धौ, कण्ठ, कटिः, जानुनी, करौ = बाहू, ऊरू, जङ्घे च यस्य स तथाविधः, विच्छिन्नः = भग्नः हारः, पतितः = भूमिं गतः अङ्गदः = केयूरः, लम्बसूत्रम् = नाभिपर्यन्तविस्तृतामाला यस्य स तथोक्तः, एष दुरात्मा कंसः वज्रेण = कुलिशेन प्रभग्नम् = चूर्णीकृतं शिखरं यस्य तादृशः, अद्रिः = पर्वतो यथा पतितः = धराशायी संजातः । उपमाऽलंकारः । वसन्ततिलकं वृत्तम ॥ ११ ॥

इसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और यह मरा पडा है ।

सङ्कर्षण—मैंने भी (इस मुष्टिक को) मार गिराया ।

दामोदर—मैं कंसासुर को यमलोक पहुँचा रहा हूँ ॥ १० ॥

(प्रासाद पर चढ़ कर कंस को सिर पकड़ कर नीचे गिरा कर) यह, पापी कंस, जिसके चेहरे पर रक्त बह कर फैला हुआ है, आँखें फिर गयी हैं, कन्धे, कण्ठ, कमर, जानु, भुजाएं ऊरु और जाँघें टूट फूट गयी हैं, हार टूट गया है, केयूर और लम्बी माला भूमि पर गिर गयी है, वज्र से चूर हुए शिखर वाले पर्वत के समान धराशायी हो गया ॥ ११ ॥

(नेपथ्ये)

हा हा महाराजः ।

(पुनर्नेपथ्ये)

भो भो वृष्णियोधाः ! अनावृष्टिशिवकहृदिकपृथुकसोमदत्ताक्रूर-प्रमुखाः ! अयं खलु भर्तृपिण्डनिष्क्रयस्य कालः । शीघ्रमागच्छन्तु भवन्तः ।

दामोदरः—आर्य ! संवार्यतां सैन्यम् ।

सङ्कर्षणः—अयमहं वारयामि ।

द्रुततुरगरथेभभ्रान्तयोधोग्रनादं
विलसदमलखड्गप्रासशक्त्यृष्टिकुन्तम् ।
पवनबलविकीर्णं फेनजालोर्मिमालं
जलनिधिमिव दोर्भ्यां क्षोभयाम्येष सैन्यम् ॥ १२ ॥

सङ्कर्षणः सैन्यं वारयितुमुद्यतः सन् प्राह— द्रुततुरगेति । द्रुताः = आशुगामिनः तुरगाः = अश्वाः, रथाः = स्यन्दनानि, इभाः = हस्तिनः, भ्रान्ताः = संभ्रमयुक्ताः ये योधाः = सैनिकाश्च तैः उग्रः = दारुणः, नादः = शब्दो यस्मिन् तत्, विलसत् = दीप्यमानम्, अमलम् = स्वच्छम्, खड्गः, प्रासः, शक्तिरस्त्रविशेषः ऋष्टिरस्त्रविशेषः कुन्तश्च तेषां समाहारो यस्मिंस्तत्, पवनस्य = वायोः बलेन =

(नेपथ्य में)

हा हा महाराज !

(पुनः नेपथ्य में)

हे हे वृष्णिकुल के योद्धाओ ! अनावृष्टि, शिवक, हृदिक, पृथुक, सोमदत्त और अक्रूर आदि ! स्वामी द्वारा दिये गये भोजन का बदला चुकाने का यही समय है । तुम सब शीघ्र आ जाओ ।

दामोदर – आर्य ! आप सेना को अवरुद्ध कीजिए ।

सङ्कर्षण— यह अवरुद्ध कर रहा हूँ ।

आशुगामी घोड़ों, रथों, गजों तथा घबड़ाये योद्धाओं का भयंकर कोलाहल जिसमें हो रहा है, जिसमें खड्ग, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, कुन्त चमचमा

(ततः प्रविशति वसुदेवः)

वसुदेवः - भो भो मथुरावासिनः ! अलमलं साहसेन ।

ज्येष्ठोऽयं मम तनयस्तु रौहिणेयो
देवक्यास्तनयमिमं च किं न वित्थ ।
सन्नाहं त्यजत किमायुधैश्च कार्यं
कंसार्थं स्वयमिह विष्णुराजगाम ॥ १३ ॥

सङ्कर्षणः—(विलोक्य) अये तातः । तात ! सङ्कर्षणोऽहमभिवादये ।

वेगेन विकीर्णम् = प्रसृतम्, फेनजालोर्मिमालम्—फेनजालः = फेनसमूहः, ऊर्मिमाला=तरंगावलिश्च यस्मिस्तम्, जलनिधिम् = समुद्रमिव सैन्यम् = सेनाम् एषः = अहं संकर्षणः, दोर्भ्याम् = बाहुभ्याम्, क्षोभयामि = मथ्नामि । मालिनीवृत्तम् । उपमाऽलङ्कारः ॥ १२ ॥

सेना विनिवारयन् वसुदेवो सङ्कर्षणस्य दामोदरस्य च परिचयं ददाति—ज्येष्ठोऽयमिति । अयं तु रौहिणेयः—रोहिण्या अपत्य पुमान् ('स्त्रीभ्योढक्' इति ढक्) मम = वसुदेवस्य ज्येष्ठः तनयः = पुत्रः । इमम् = दामोदरम् देवक्याः तनयम् = पुत्रम्, किं न वित्थ = किं न जानीथ ? सन्नाहम् = युद्धोद्योगं त्यज्यत युद्धाद्विरतो भवतेत्यर्थः । आयुधैः = अस्त्रशस्त्रैः, किं कार्यम् = किं प्रयोजनम् ? कंसार्थम् = कंसं हन्तुम्, स्वयम् = साक्षात्, विष्णुः = परमात्मा, इह = मर्त्यलोके, आजगाम = अवतीर्णः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ १३ ॥

रहे हैं, फेनों तथा तरंगमाला से युक्त एवं वायुवेग से उमड़े हुए समुद्रतुल्य सेना को यह मैं अपनी भुजाओं से क्षुब्ध किये देता हूँ ॥ १२ ।

(तदनन्तर वसुदेव प्रवेश करता है)

वसुदेव—अरे, हे मथुरा वासियों ! साहस मत करो ।

यह तो मेरा ज्येष्ठ पुत्र रोहिणी-कुमार (बलराम) है । इस देवकी के के पुत्र (कृष्ण) को क्या तुम लोग नहीं जानते हो ? युद्ध की तैयारी बन्द करो और शस्त्रों से क्या प्रयोजन है ? कंस (के वध) के लिए स्वयं विष्णु भगवान् इस लोक में अवतीर्ण हुए हैं ॥ १३ ॥

सङ्कर्षण—(देख कर) अरे, पिता जी ! पिता जी, मैं सङ्कर्षण अभिवादन करता हूँ ।

दामोदरः—तात ! दामोदरोऽहमभिवादये ।

वसुदेवः—अक्षयविजयिनौ भवेतां भवन्तौ । सत्पुत्रजन्मफलमद्य प्राप्तवानस्मि ।

उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।

वसुदेवः—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

वसुदेवः—अपविध्यन्तां कलेवराणि ।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः ।

गोपालकाः सर्वे—ही ही गोआलआणं रज्जं संवुत्तं । [ही ही गोपालकानां राज्यं संवृत्तम् ।]

वसुदेवः—कोऽत्र ।

भटः—जयत्वार्यपुत्रः ।

वसुदेवः—गच्छ, शीघ्रं दामोदरस्यादेशादनावृष्टिमाज्ञापय-महाराज-

दामोदर—पिता जी ! मैं दामोदर अभिवादन करता हूँ ।

वसुदेव—तुम दोनों अक्षय विजय वाले होओ । आज मैं सत्पुत्रों के पैदा होने का फल पा गया ।

दोनों—हम अनुगृहीत हुए ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ?

(प्रवेश कर)

भट – आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव - (इन) लाशों को (यहाँ से) हटाओ ।

भट—आर्यपुत्र की जो आज्ञा !

सब गोपाल लोग—ही, ही, गोपालों का राज्य हो गया ।

वसुदेव—यहाँ कौन है ?

भट—आर्यपुत्र की जय हो ।

वसुदेव—जाओ, शीघ्र दामोदर के आदेश से अनावृष्टि को कहो कि

मुग्रसेनमपनीय निगलान्निर्वृत्ताभिषेकं कृत्वा प्रवेशयेति।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः। (निष्क्रान्तः।)

वसुदेवः—अये,

नदन्ति सुरतूर्याणि वृष्टिः पतति कौसुमी।
कंसान्तकस्य पूजार्थं प्रायो देवाः समागताः॥ १४॥

(नेपथ्ये)

श्रीमानिमां कनकचित्रितहर्म्यमालां
विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टाम्।

आकाशे तूर्यनादं श्रुत्वा वसुदेवः प्रसन्नो भूत्वाऽऽह—नदन्तीति। सुराणाम् = देवानां तूर्याणि = वाद्यविशेषाः, नदन्ति = नादं कुर्वन्ति। कौसुमी—कुसुमानां पुष्पाणामियं पुष्पमयीत्यर्थः, वृष्टिः = वर्षणम्, पतति (आकाशादिति भावः)। कंसस्य अन्तकः = संहारकः तस्य श्रीकृष्णस्येत्यर्थः, पूजार्थम् = अर्चनां कर्तुम्, प्रायः=वाहुल्येन, देवाः = सुराः, समागताः (आकाशे)। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १४॥

नेपथ्ये प्रार्थना क्रियते—श्रीमानिति। कनकचित्रितहर्म्यमालाम्—कनकेन = सुवर्णेन, चित्रिता = विनिर्मिता, हर्म्यमाला=प्रासादपङ्क्तिर्यस्यां ताम्, विस्तीर्णराजभवनापणगोपुराट्टाम्—विस्तीर्णम्=विस्तृतम्, राजभवनम् = नृपगृहम्, आपणः = निपद्या ('आपणस्तु निषद्यायाम्' इत्यमरः), गोपुरम् = वहिर्द्वारम् (बहिर्द्वारं तु गोपुरम्' इत्यमरः), अट्टः = क्षोमम्, ('स्यादट्टः क्षोममस्त्रियाम्' इत्यमरः) यस्यां ताम्, इमाम् मधु-

---

महाराज उग्रसेन को वन्धनमुक्त कर उनका अभिषेक करके यहाँ ले आवे।

भट—आर्यपुत्र की जो आज्ञा। (निकल गया)

वसुदेव—अरे,

देवताओं की दुन्दुभियाँ वज रही हैं, पुष्पों की वृष्टि हो रही है। कंस के संहर्ता (कृष्ण) की अर्चना के लिए देवता लोग आ गये हैं॥ १४॥

(नेपथ्य में)

सुवर्ण निर्मित प्रासादों, विस्तृत राजभवन, वाजार, वहिर्द्वार और

पायात् सदैव मधुरां कमलायताक्ष-
स्त्रैलोक्यजित् सुरवरस्त्रिदशेन्द्रनाथः ॥ १५ ॥

वसुदेवः—भो भो मथुरावासिनः ! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। अस्य खलु दैत्येन्द्रपुरार्गलोत्पाटनपटोः सर्वक्षत्रपराङ्मुखावलोकिनो वसुदेवसम्भवस्य वासुदेवस्य प्रसादात् पुनरधिगतराज्यस्योग्रसेनस्य शासनमिदानीमवघुष्यते।

सर्वे—प्रतिष्ठितमिदानीं वृष्णिराज्यम्।

वसुदेवः—प्रवेश्यतां महाराजः।

राम् = मथुराभिधानां नगरीम्, श्रीमान् = शोभासम्पन्नः, कमलायताक्षः—कमले इव आयते = विस्तृते अक्षिणी = नेत्रे यस्य सः, त्रैलोक्यजित् = लोकत्रयविजेता, सुरवरः = देवश्रेष्ठः, त्रिदशेन्द्रनाथः—त्रिदशाः = देवास्तेषामिन्द्रः = स्वामी तस्य नाथः, सदैव, पायात् = रक्षेत्। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

वसुदेव इति। दैत्येन्द्रपुरार्गलोत्पाटनपटोः—दैत्येन्द्रस्य = दैत्यराज्य यत् पुरम् = नगरम्, तस्य या अर्गला तस्याः उत्पाटने पटुः = दक्षः, तस्य। सर्वक्षत्रपराङ्मुखावलोकिनः—सर्वान् क्षत्रान् क्षत्रियान् पराङ् मुखान् = युद्धक्षेत्रात् पलायमानान् अवलोकितुं शीलमस्य तस्य, सकलक्षत्रियविजेतुरित्यर्थः। वसुदेवसम्भवस्य—वसुदेवात् सम्भवः = जन्म यस्य तस्य। प्रसादात् = अनुग्रहात् अधिगतराज्यस्य—अधिगतम् = प्राप्तम् राज्यं येन तस्य।

अटारियों से युक्त इस मथुरापुरी को, श्रीमान्, कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, त्रैलोक्य विजेता सुरश्रेष्ठ देवाधिपति इन्द्र के नाथ (श्रीकृष्ण) सदैव रक्षा करें ॥ १५ ॥

वसुदेव—हे हे मथुरावासियो ! सुनें, आप लोग सुनें। दैत्येन्द्र-नगर के बहिर्द्वार की अर्गला (ब्योंडा) को तोड़ने में दक्ष, सब क्षत्रियों को (युद्ध से) पराङ्मुख ही देखने वाले, वसुदेव से उत्पन्न इन वासुदेव के अनुग्रह से पुनः राज्य प्राप्त करने वाले उग्रसेन का शासन इस समय घोषित किया जा रहा है।

सब—अब वृष्णिकुल का राज्य प्रतिष्ठित हो गया।

वसुदेव—महाराज का प्रवेश हो।

भटः—यदाज्ञापयत्यार्यपुत्रः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्युग्रसेनः ।)

उग्रसेनः—

चिरोपरोधसम्प्राप्तः क्लेशो मे केशिसूदनात् ।
अपनीतः स्ववीर्येण यथा विष्णोः शतक्र (तु ? तो): ॥ १६ ॥
भगवत्प्रसादाद् व्यसनार्णवादुत्तारितोऽस्मि ।

(ततः प्रविशति नारदः ।)

नारदः—

कंसे प्रमथिते विष्णोः पूजार्थं देवशासनात् ।
सगन्धर्वाप्सरोभिश्च देवलोकादिहागतः ॥ १७ ॥

उग्रसेनः श्रीकृष्णं प्रति कृतज्ञतामभिव्यनक्ति—चिरोपरोधेति । चिरोपरोधसम्प्राप्तः—चिरोपरोधः—चिरात्प्रभृतिः यः उपरोधः = निगडबन्धनमित्यर्थः, तस्मात् सम्प्राप्तः = अधिगत., मे = मम उग्रसेनस्य क्लेशः = दुःखम्, केशिसूदनात्—केशी नाम असुरः तं सूदयति विनाशयतीति केशिसूदनः श्रीकृष्ण इत्यर्थं, तस्मात्, अपनीतः = अपगतः, यथा विष्णोः स्ववीर्येण = स्वपराक्रमेण शतक्रतोः = इन्द्रस्य, क्लेशः अपनीतः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १६ ॥

नारदो देवलोकादागत्य स्वागमनकारणमभिव्यनक्ति—कंस इति । कंसे = तन्नामके दुष्टनृपे, प्रमथिते = विनाशिते सति, देवशासनात्—देवः = स्वामी, इन्द्र इत्यर्थः, तस्य शासनात् = आदेशात्, विष्णोः = श्रीकृष्णस्य, पूजार्थम् = अर्चनां कर्तुम्, सगन्धर्वाप्सरोभिः—गन्धर्वैः सहिता इति सगन्धर्वा या अप्सरसः

भट—आर्यपुत्र की जो आज्ञा । (निकल गया)

(तदनन्तर उग्रसेन प्रवेश करता है)

उग्रसेन—चिरकाल से बन्दी बने रहने (उपरोध) के कारण मिलने वाला मेरा क्लेश केशी असुर के विनाशक (श्रीकृष्ण) ने दूर कर दिया जैसे विष्णु द्वारा अपने पराक्रम के द्वारा इन्द्र का क्लेश दूर किया गया था ॥ १६॥

भगवान् की कृपा से मैं दुःख के सागर से पार उतार दिया गया ।

(तदनन्तर नारद प्रवेश करते हैं)

नारद—कंस के मारे जाने पर स्वामी इन्द्र के आदेश से विष्णु (श्रीकृष्ण) की

दामोदरः—अये देवर्षिर्नारदः । देवर्षे ! स्वागतम् । इदमर्घ्यं पाद्यं च ।

नारदः—सर्वं गृह्णामि ! गन्धर्वाप्सरसो गायन्ति ।

नारायण ! नमस्तेस्तु प्रणमन्ति च देवताः ।
अनेनासुरनाशेन मही च परिरक्षिता ॥ १८ ॥

दामोदरः—देवर्षे ! परितुष्टोऽस्मि किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

नारदः—प्रहृष्टो यदि मे विष्णुः सफलो मे परिश्रमः ।
गमिष्ये विबुधावासं सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ १९ ॥

=सुराङ्गनाः, ताभिः (सह) अत्र सहादिशब्दाभावेऽपि तदर्थावगमात् तृतीया, 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेत्'—इति सूत्रे तथा निर्देशात् । देवलोकात् = सुरपुरात्, इह=मथुरायाम्, आगतः = समागतोऽस्मि । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १७ ॥

नारदः श्रीकृष्णं स्तौति—नारायणेति । हे नारायण = हे श्रीकृष्ण ! ते = तुभ्यम्, नमः=प्रणामः, अस्तु । देवताः = अमराश्च प्रणमन्ति = प्रणामं कुर्वन्ति । अनेन असुरनाशेन—असुराणाम् = दैत्यानां नाशेन = वधेन, मही = पृथ्वी । परिरक्षिता = सर्वथा त्राता । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १८ ॥

परितुष्टं श्रीकृष्णं प्रत्याह नारदः—प्रहृष्ट इति । यदि = चेत्, मे = मयि, विष्णुः = श्रीकृष्णः, प्रहृष्टः = प्रसन्नः, तर्हि मे = मम नारदस्य परिश्रमः = आयासः, अत्रागमनस्येति भावः । सफलः = सार्थकः । (अतः सम्प्रति) सर्वैः

पूजा के लिए मैं गन्धर्वों के सहित अप्सराओं के साथ देवलोक से यहाँ आया हूँ ॥ १७ ॥

दामोदर—अरे, देवर्षि नारद हैं ! हे देवर्षि ! (आपका) स्वागत है । यह अर्घ्य और पाद्य (समर्पित) है ।

नारद—सब ग्रहण करता हूँ । गन्धर्व और अप्सराएं गाती हैं ।

हे नारायण ! आपको नमस्कार है । देवता लोग आपको प्रणाम करते हैं । असुर के इस वध से पृथ्वी पूर्ण रूप से रक्षित हो गयी ॥ १८ ॥

दामोदर—हे देवर्षि ! मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ । मैं तुम्हारा और क्या प्रिय कार्य करूँ ।

नारद—

यदि आप विष्णु भगवान् मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा (यहाँ आने का)

दामोदरः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

नारद—यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः । (निष्क्रान्तः)

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २० ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः ।

अवसितं बालचरितम् ।

सुरोत्तमैः = देवश्रेष्ठैः सह, विबुधावासम्-विबुधानाम् = देवानाम् आवासम् = निवासस्थानम् स्वर्गमित्यर्थः, गमिष्ये = यास्यामि । गमिधातोरात्मनेपदप्रयोगोऽयमपाणिनीयः इत्यवधेयम् ॥ अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥

अथ भरतवाक्यं प्रस्तौति—इमामिति । नः = अस्माकम्, राजसिंहः = नृपश्रेष्ठः, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—हिमवान् = हिमालयो नाम गिरिः, विन्ध्यः = विन्ध्यो नाम गिरिश्च, तावेव कुण्डले = कर्णभूषणे यस्यास्ताम्, सागरपर्यन्ताम्—सागरः = समुद्रः, पर्यन्तः = सीमा यस्यास्ताम्, एकातपत्राङ्काम्—एकम् आतपत्रम् = छत्रम् एव अङ्कः = चिह्नं यस्यास्ताम् इमाम् महीम् = पृथ्वीम्, प्रशास्तु = शासितां करोतु । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २० ॥

इति 'कल्याणी' व्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः ।

परिश्रम सफल हो गया । (अब) सभी श्रेष्ठ देवताओं के साथ देवलोक को जाऊँगा ॥ १९ ॥

दामोदर—आप पुनः दर्शन देने के लिए जायें ।

नारद—भगवान् नारायण की जो आज्ञा । (चले गये)

(भरत वाक्य)

हमारे राजसिंह (नृप श्रेष्ठ) हिमालय और विन्ध्यपर्वत रूप कुण्डलों वाली एकच्छत्र चिह्नवाली समुद्र पर्यन्त इस पृथ्वी को प्रशासित करें ॥ २० ॥

(सब लोग निकल गये)

इति पञ्चम अंक ।

बालचरित समाप्त ।



परिशिष्ट

टिप्पणी : नोट्स

प्रथम अङ्क

पृष्ठ १—नान्द्यन्ते—नान्दी के समाप्त होने पर। नान्दी शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) नन्दन्ति देवा अस्याम्, अथवा नन्दयति देवद्विजनृपादीन् इति नान्दी। भरतमुनि ने नान्दी की परिभाषा की है—

'देवद्विजनृपादीनामाशीर्वचनपरायणा।
नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीतिकीर्तिता॥"

विश्वनाथ कविराज के अनुसार—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥"

अर्थात् मङ्गलाचरणरूप पद्य जो रूपक ग्रन्थ के आरम्भ में कवि द्वारा निबद्ध किया जाता है उसे 'नान्दी' कहते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी नान्दी सत्काव्यरूप होती है जिसका प्रयोग सूत्रधार अथवा उसका सहायक रंगमंच पर उपस्थित हुए बिना नहीं कर सकता है। यहाँ अभी कोई ऐसा व्यक्ति तो प्रविष्ट नहीं हुआ है अतः 'नान्द्यन्ते' में प्रयुक्त नान्दी शब्द आशीर्वचनसंयुक्त-देवादिस्तुतिरूपमङ्गलश्लोकपरक नहीं हो सकता है।

(२) नान्दी शब्द का दूसरा अर्थ है—भेरी या आनक (देशी भाषा में 'नगाड़ा')। यह शब्द अन्य वाद्यों का भी उपलक्षण है। इस नान्दी शब्द का सामान्यरूप से अर्थ होता है—'नाट्यप्रयोग के पहले, नटों के द्वारा किया गया माङ्गल्य गायनवादनादि।' यहाँ नान्दी शब्द का प्रयोग इसी द्वितीय अर्थ में हुआ है। भास के सभी नाटकों में प्रारम्भ में 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' वाक्य पाया जाता है। वहाँ सर्वत्र नान्दी शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त

हुआ समझना चाहिए। इसी नान्दी के समाप्त होने पर सूत्रधार रंगमंच पर आता है और तब कविरचित मङ्गलाचरणरूप पद्य (नान्दी) का पाठ करता है। (सूत्रधारः पठेन्नान्दीम् ।)

भास के नाटकों को छोड़ कर प्रायः सभी नाटकों में कविरचित नान्दी के बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' पाठ मिलता है। वहाँ नान्दी शब्द का अर्थ कवि द्वारा प्रारम्भ में निबद्ध मङ्गलाचरणरूप पद्य समझना चाहिए। यहाँ एक प्रश्न यह खड़ा होता है कि उस कविरचित नान्दी का पाठ कौन करता है। इसके उत्तर मे कतिपय विद्वानों का कथन है कि वहाँ कविनिबद्ध नान्दी का पाठ सूत्रधार नहीं, किन्तु कोई अन्य नट करता है, ऐसा मानने पर ही 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' वाक्य सङ्गत हो सकता है। भरत मुनि का मत है कि उस कविनिबद्ध नान्दी का पाठ सूत्रधार ही करता है। ('सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्' ।)

वास्तव में उस कविनिबद्ध नान्दी का पाठ सूत्रधार का कर्त्तव्य है। उस नान्दी के पूर्व सूत्रधार का निर्देश अमङ्गल से बचने के लिए ही किया जाता है, ग्रन्थ का आरम्भ मङ्गलपद्य से होना चाहिए।

ततः—'ततः' शब्द से यह सूचित होता है कि गायन, वादनादिरूप नान्दी के समाप्त होने पर तुरन्त अविलम्ब (उसके बाद ही) सूत्रधार प्रविष्ट होता है।

सूत्रधारः—सूत्रमभिनेयसूचनं धारयतीति सूत्रधारः। वह प्रधान नट जो सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर अभिनेय नाटक की सूचना तथा उसका संक्षिप्त परिचय सामाजिकों को देता है, सूत्रधार कहलाता है—

'वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ॥'

भरतमुनि के अनुसार--

'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥'

अर्थात् नाट्य के उपकरण आदि को सूत्र कहते हैं, उसे जो संभालता है वह सूत्रधार कहा जाता है (आधुनिक शब्दावली में 'स्टेजडाइरेक्टर)।

बालचरितम्---बालस्य = बालरूपस्य श्रीकृष्णस्येत्यर्थः। चरितानि = कृतकर्माणि इति बालचरितानि = बाल (श्रीकृष्ण) के चरित। बाल (श्रीकृष्ण) के चरितों का वर्णन होने के कारण अभेदोपचार से नाटक भी 'बालचरितम्' नाम से अभिहित किया गया। नाटक का विशेषण होने से नपुंसक है।

श्लोक १—नारायणः—नारा अयनं यस्य सः (बहुव्रीहि)। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र से नकार को णत्व। नारायण, विष्णु की उपाधि है। मनुस्मृति (१।१०) में इसकी व्युत्पत्ति दी गयी है—'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥' इति। त्रिपदार्पितत्रिभुवनः = तीन पगों से तीन लोकों को आक्रान्त करने वाले। विष्णुः = वामन भगवान्। बलि नामक दैत्य को विनम्र करने के लिए विष्णु ने वामन (बौना) का अवतार लिया था। यह इनका पाँचवा अवतार कहा जाता है। बलि प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र था। उससे तंग आकर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने कश्यप और अदिति के पुत्ररूप में वामन का अवतार लिया। उन्होंने बलि के पास जाकर उससे तीन पग भूमि माँगी! बलि के स्वीकार कर लेने पर वामन ने अपना विराट् रूप दिखलाया और तीन पगों में तीनों लोकों को माप लिया।

दामोदरः—दाम = रज्जुः, उदरे = कटिप्रदेशे यस्य सः। यह कृष्ण की उपाधि है। बालक कृष्ण के नटखटपन से तंग आकर एक बार यशोदा ने उन्हें एक ऊखल में बाँध दिया। उस रस्सी (दाम) को यशोदा ने ऊखल में बाँधने के बाद कृष्ण को कमर में कस कर बाँध दिया। यशोदा के घर के कामों में व्यस्त हो जाने पर श्रीकृष्ण ऊखल घसीटते हुए परस्पर सटे हुए दो अर्जुन वृक्षों के बीच में से निकल गये किन्तु उखल अटक गया। श्रीकृष्ण के जोर लगाने पर दोनों अर्जुन के पेड़ गिर गये। पेड़ों के गिरने का बड़ा भारी शब्द सुनकर नन्द जी घबड़ाये हुए दौड़ कर आये और उन्होंने श्रीकृष्ण की कमर से रस्सी खोली। अतः श्रीकृष्ण का 'दामोदर' भी एक नाम प्रसिद्ध हो गया।

विशेष----इस श्लोक का आशय है कि सत्युग में नारायण, त्रेता में

वामन द्वापर में राम और कलियुग में दामोदर (कृष्ण) सामाजिकों की रक्षा करें। यह आशय कदापि नहीं है कि राम का अवतार द्वापर में और कृष्ण का अवतार कलियुग में हुआ था।

पृष्ठ ३—आर्यमिश्रान्—सभ्य या सम्माननीय व्यक्ति। आर्याश्च ते मिश्राः= पूज्याः। आर्य का लक्षण है—'कर्त्तव्यमाचरन् कार्यमकर्त्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः॥' अङ्ग=सम्बोधनार्थक अव्यय शब्द है। 'सम्बोधनार्थकाः स्युः प्याट्पाडङ्ग हे हे भोः' (अमरकोष)।

श्लोक २—तूर्य=भेरी। वृष्णिकुले=वृष्णिके वंश में। वृष्णि कृष्ण के पूर्वजों में प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। प्रसूत=प्रादुर्भूत। तूर्णम्=शीघ्र नारदः—नारम्=ज्ञानम् ददातीति नारदः। नार+√दा+क। नारद नामक देवर्षि ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक हैं जो उनकी जंघा से उत्पन्न हुए, ये देवों के सन्देशवाहक के रूप में चित्रित मिलते हैं। ये देवों के सन्देश मानवों तक और मानवों के सन्देश देवों तक पहुँचाया करते थे। ये कलह के बीज बोने के कारण 'कलहप्रिय' भी कहे जाते हैं। वीणा का आविष्कार इन्होंने ही किया था ऐसा भी कहा जाता है। 'नारद स्मृति' आचारसंहिता के प्रणेता भी ये कहे जाते हैं।

श्लोक ४—तन्त्री=वीणा के तार। घट्टयामि=छेड़ा करता हूँ, संयोजना किया करता हूँ। घट्टधातु चुरादिगणीय है। √घट्ट+णिच् (स्वार्थे)+लट्।

श्लोक ५—पितामह=ब्रह्मा। भाषित=वचन। बहुमत=अत्यन्त मान्य। करज=नख। भीम=भीषण। कठिन=कठोर।

श्लोक ६—रथाङ्गपाणिम्—रथाङ्गं चक्रं पाणौ करे यस्य तम्। यहाँ 'व्यधिकरण बहुव्रीहि' है। 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' वार्तिक से सप्तम्यन्त 'पाणि' का परनिपात हुआ है। प्रशान्ता=चुपचाप।

श्लोक ७—त्रिलोककेतुः—तीनों लोकों में श्रेष्ठ। केतु का अर्थ होता है—पताका, झण्डा। किन्तु बहुधा समास के अन्त में इसका अर्थ हो जाता है—प्रधान, नेता, प्रमुख, विशिष्ट व्यक्ति। तुलना कीजिए—'मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।' (रघु० २।३३)

पृष्ठ ६—उद्भूत = उत्पन्न। महानिमित्त = शुभशकुन। नृशंसत्व = क्रूरता। सुष्ठु न प्रत्येमि = अच्छी तरह (पूरा) विश्वास नहीं करती हूँ। मन्दभागिनी-मन्द भाग्य वाली। मन्दो भागोऽस्त्यस्या इति मन्दभागिनी। मन्द और भाग शब्द का कर्मधारय समास होने पर समस्त पद 'मन्दभाग' से मतुवर्थक इनि प्रत्यय ('अत इनिठनौ' से इनि) होकर स्त्रीलिङ्ग में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् होने पर 'मन्दभागिनी' पद बनता है। मन्द और भाग शब्द का बहुव्रीहि समास कर देने पर भी उपर्युक्त अर्थ का बोध हो जाता है अतः उपर्युक्त प्रक्रिया जिसमें दो वृत्तियाँ करनी पड़ती हैं, ठीक नहीं है (न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः) फिर भी यहाँ देवकी में मन्दभाग का नित्य योग दिखाना अभीष्ट होने से नित्य योग में मन्दभाग समस्त पद से इनि प्रत्यय करने में कोई दोष नहीं।

श्लोक ९—विद्युत् = बिजली। नभसि = आकाश में। भ्रमति = (कभी इधर कभी उधर) कौंधती है। चण्ड = तीव्र, वात = वायु, अनुविद्ध = संसक्त। निनाद = मेघों का गर्जन। सप्रकम्पा = अत्यन्त कम्पनयुक्त। मेदिनी = पृथिवी। समिति = समूह। अवतीर्णः = अवतार लिया। अव + √तृ + क्त (कर्तरि)। नूनम् = निश्चय।

श्लोक १०—अगणितपरिखेदा—न गणितः = अपेक्षित इत्यर्थः, परिखेदः = परिश्रान्तिर्यया सा। थकावट की परवाह न करने वाली। अपचयगमनार्थम्-अपचय = विनाश, हानि। गमन = जाना, दूर होना। छः पुत्रों की हानि दूर हो जाय इसलिए। सप्तमम् = सातवाँ। श्रीकृष्ण जी यद्यपि आठवें पुत्र थे, उनके पूर्व के छः बालकों को कंस मार चुका था, सातवीं बार देवकी के गर्भ में संकर्षण जी थे, उन्हें योगमाया ने रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया था और वे कंस द्वारा मारे जाने से बच गये थे, अब कृष्ण सातवें पुत्र थे जिन्हें कंस मारने वाला था, इसी आशय से श्लोक में 'सप्तमं रक्षमाणा' कहा गया है। रक्षमाणा—√रक्ष् + लट् (शानच्)। यह प्रयोग अशुद्ध है क्योंकि लट् को शानच् आदेश तभी होता है जब धातु आत्मने पद हो। रक्षधातु परस्मैपदी है अतः 'शतृ' आदेश होगा और 'रक्षन्ती' प्रयोग शुद्ध होगा। निमित्त = शकुन।

पृष्ठ ११—अर्धरात्रः—रात्रेरर्धम्, 'अर्धं नपुंसकम्' से तत्पुरुष समास। प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्' से 'अर्ध' की उपसर्जन संज्ञा होने से 'उपसर्जनं पूर्वम्' से पूर्वनिपात। 'अहस्सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' सूत्र से अच् समासान्त, 'यस्येति च' सूत्र से इकार का लोप।

मथुरा—इस प्रदेश के राजा लवणासुर को राम के भाई शत्रुघ्न ने मार कर मथुरा नामक नगरी बसाई थी। यही कंस की राजधानी थी जिसे मथुरा कहते हैं।

पृष्ठ १२—सर्वं विधास्यति—नाश करेगा (अर्थात पहुँचादेगा)।

श्लोक ११—राहोः = राहु के। राहु एक राक्षस का नाम है जो विप्रचित्ति और सिंहिका का पुत्र था। समुद्रमन्थन के फलस्वरूप निकला हुआ अमृत जब देवताओं में वितरित किया जा रहा था तब राहु वेश बदल कर स्वयं भी अमृत पीने की इच्छा से उनकी पंक्ति में बैठ गया। सूर्य और चन्द्र ने विष्णु से राहु की इस चाल को बता दिया और विष्णु ने चक्र से उसका सिर काट डाला किन्तु थोड़ा-सा अमृत पी चुका था अतः उसका सिर और धड़ दोनों अमर हो गया। कहते हैं कि पूर्णिमा और अमावस्या को क्रमशः ये दोनों चन्द्र और सूर्य को सताते रहते हैं। ज्योतिष में राहु भी केतु की भाँति समझा जाता है, यह आठवाँ ग्रह है।

श्लोक १३—द्विधाभूतेव—देवकी घर के भीतर जा अवश्य रही हैं किन्तु उनका हृदय बालक में ही लगा हुआ है अतः मानो वे दो भागों में विभक्त हो गयी हैं। ये दो भाग हैं हृदय और शरीर। हृदय बालक के साथ जा रहा है और शरीर घर के अन्दर। जैसे चन्द्रमा की कला प्रतिबिम्ब के कारण आकाश और जल में दो भागों में विभक्त की गयी-सी दीख पड़ती है।

श्लोक १४—मन्यु = शोक। त्वरिततरम् = बहुत जल्दी-जल्दी। उद्वहन्—उद् + √वह् + शतृ। उठाये हुए।

श्लोक १६—सुनिविष्ट—अच्छी तरह स्थित। नि + √विश् + क्त (कर्तरि)। रूपविपर्ययः—स्वरूप का विपर्यास, उलट-पुलट जाना। वि + परि + √इ + अच् = विपर्ययः।

पृष्ठ १६—दीपिकालोकः—दीपिकानामालोकः। मशालों का प्रकाश। दीपिकाभिः परिवृतः—मशालों से अर्थात् मशालधारियों से घिरा हुआ। ग्रहीतुम् = पकड़ने, बन्दी बनाने के लिए। भवतु = अच्छा।

दर्पप्रशमनम्—दर्पस्य प्रशमनम्,—गर्व का विनाश। उत्कोशयति—म्यान से निकालता है। निवृत्य = पीछे की ओर लौट कर। आः = यह विस्मयादि-बोधक अव्यय है। अपक्रमणहेतोः—अपक्रमणस्य हेतोः (ष० त०) 'षष्ठी-हेतु प्रयोगे' इति षष्ठी। दृष्टम् = समझ गया। √दृश् + क्त (नपुंसके भावे)।

श्लोक १८—ग्राह = मकर। भुजङ्ग = व्याल (पानी में रहने वाला सर्प) सङ्कुल = व्याप्त। उर्मि = तरंग। मनसापि दुस्तराम् = मन से भी दुस्तर अर्थात् मन भी जिसे पार करने का साहस नहीं कर सकता है। प्लव = नौका। आशु = शीघ्र। गतार्थविक्लवः—गतः = नष्टः अर्थः = प्रयोजनं यस्य सः। गतार्थश्चासौ विक्लवश्च—नष्ट अभिप्राय वाला और विह्वल। ये दोनों (गतार्थ और विक्लव) पद वसुदेव के विशेषण हैं और इनका कर्मधारय समास हुआ है। इनसे वसुदेव की दुरवस्थिति का बोध होता है।

पृष्ठ १८—द्विधा छिन्नम् = दो भागों में बँट गया। छिन्नम्—√छिद् + क्त (कर्मणि)। व्यक्तम् = साफ जाहिर है। घोष = गोपों की बस्ती। वयस्यः = सखा। निगलितः—(ल और ड में भेद न होने से निगडितः भी) बेड़ी से जकड़ा हुआ। कशा = कोड़ा। न्यग्रोधपादपः = बरगद का पेड़। रजन्याः = रात को। प्रतिपालयामि = प्रतीक्षा करता हूँ। प्रति + √पाल + णिच् (स्वार्थे) + लट् (उ० पु०, ए० व०)। दारिका = पुत्री। रन्त्वा—√रमु (क्रीडायाम्) + क्त्वा। रमणकर, सुख का उपभोग कर। उज्झित्वा = त्याग कर, √उज्झ + क्त्वा। संपात = समूह, सम् + √पत् + घञ्।

श्लोक १९—दुर्दिन = मेघाच्छन्न दिवस। ज्योत्स्ना = चाँदनी। निमीलित = ढका हुआ। संप्रवृत्त = ढकी हुई। सम् + प्र + आ + वृ + क्त (कर्मणि)। निवसन = वस्त्र। गोपी = गोपस्य स्त्री, गोप की स्त्री, 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति ङीप्। अर्धरात्रे = आधीरात में। कुटुम्बिनी = पत्नी। प्रसूता = जन्म दी गयी, प्र + √सू + क्त (कर्मणि)। तपस्विनी = बेचारी। अपगतप्राणा = मृत। संवृत्ता = हो गयी। सम् + √वृत् + क्त + टाप्। श्वः = आने वाला कल।

इन्द्रयज्ञ = इन्द्र के सम्मान में किया जाने वाला उत्सवविशेष। निगलगुरुचरणेन--यह नन्दगोप का विशेषण है। यह भास कवि की कल्पना की उपज है। उन्होंने यह दिखाया है कि नन्द के पाँव में बेड़ी कंस ने डलवा दी थी ताकि वह आजादी से चल फिर न सके। उसे कारागार में बन्द न रख कर घर रहने की अनुमति दे दी गयी थी। भास ने ऐसा नाटक के नायक बालकृष्ण का उत्कर्ष दिखाने के लिए किया है। यहाँ नन्द बेडी के कारण बोझिल पैर से (धीरे-धीरे) आया है। आगे भास दिखाते हैं कि नन्द जब बालकृष्ण को लेकर अपने घर को चला तब उसके दोनों पैर के बन्धन अपने आप शिथिल होकर गिर गये और वसुदेव ने इसे बालक का प्रभाव बताया—"नन्दगोप:—आश्चर्यम्। इमे बन्धने पतिते। वसुदेव:—सर्वमेतत् कुमारस्य प्रभाव:।" (प्रथम अङ्क, श्लोक २८ के बाद।)

पृष्ठ २१—तपस्विनी = बेचारी। तपोऽस्त्यस्या इति, 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' सूत्र से विनि (विन्) प्रत्यय, स्त्रियां ङीप् (ऋन्नेभ्यो ङीप्)। मोहम्—√मुह् + घञ् = मोहः, तम्। मूर्च्छा को। गता = प्राप्त हुई। √ गम् + क्त + टाप् (स्त्रियाम्)। परिदेवयति = विलाप कर रहा है। परिदेवनम् परिदेवः (परि + √देव् + घञ्) तं करोति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच् ततो लट्। अस्मत्सब्रह्मचारी = हमारे समान। सब्रह्मचारी—समानं ब्रह्म = वेदग्रहणकालीनं व्रतं, चरति (णिनिः समानस्य सः) सहपाठी अर्थात् समान। शब्दयति—शब्दं करोति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इस गणसूत्र से णिच् होकर लट्। शब्द करता है, पुकारता है। प्रतिभय = भीषण। अम्भो = आश्चर्यसूचक अव्यय। स्वरयोगेन = आवाज से। आम् = हाँ स्वीकृतिबोधक अव्यय। परिजन = परिवार। प्रच्छाद्यते = छिपाया जा रहा है (कर्मणि लट्)। मम प्राणैः शापितः = मेरे प्राणों की तुम्हें कसम। णिजन्त शप् धातु से कर्म में क्त, √शप् + णिच् + क्त। अधिष्ठान = नियन्ता अर्थात् स्वामी। काल या यमराज से कोई बचता नहीं है अतः वह सर्वोपरि शक्ति है, इसलिए उसे अधिष्ठान (नियन्ता, स्वामी) कहा गया है, जहाँ अन्त में सबको पहुँचना होता है। कृतान्त = काल, यमराज। न्यासः=धरोहर, नि + √अस् (क्षेपणे) + घञ्। विपन्नम् = नष्ट, वि + √पद् + क्त (कर्तरि)। नृशंस—घातुक, क्रूर।

पृष्ठ २७—अशौचितः—अपवित्र, अशुद्ध। मृत बालिका के स्पर्श से नन्दगोप अपवित्र हो चुका था, अतः कृष्ण को ग्रहण करने से पूर्व उसका शुद्ध होना आवश्यक था।

पृष्ठ २८—शुचि = पवित्र। पांसु = धूल, मिट्टी। मार्गयतः = खोजते हुए। भित्त्वा = फोड़कर, √भिद् + क्त्वा।

युगप्रमाणा—युग कहते हैं जुआ को, जो बैलों के कन्धों पर रक्खा जाता है। उसके समान मोटी।

प्रभाव—माहात्म्य। सन्दारयमाणे = खोदते हुए। वृषभ = बैल। मोचयामि = छुड़ाता हूँ, अन्यत्र हटा देता हूँ। भाण्डशकट = बर्तनों से लदी गाड़ी आवट्टयामि = निकालता हूँ।

श्लोक २१—रथो ध्वजश्च–गरुड विष्णु का रथ और ध्वज भी कहा जाता है अतः विष्णु को गरुडरथ अथवा गरुडध्वज कहते हैं। वह्यामि = धारण कर चुका हूँ।

गरुडः—यह 'विनता' नाम की पत्नी से उत्पन्न कश्यप का पुत्र है। इसे 'पक्षियों' का राजा कहा जाता है। इसे विष्णु की सवारी के रूप में चित्रित किया गया है। इसका चेहरा श्वेत, नाक तोते जैसी परन्तु लाल और शरीर सुनहरा है। सुन्दर पंखों के कारण इसे सुपर्ण भी कहते हैं।

श्लोक २५—शङ्खः—पाञ्चजन्य नामक शङ्ख समुद्र-मन्थन के समय समुद्र से निकला कहा जाता है। विष्णु के आयुधों में इसकी भी गणना की जाती है पाञ्चजन्यं हृषीकेश···गीता)

श्लोक २६—नन्दक—विष्णु के कृपाण का नाम 'नन्दक' है। प्रभविष्णु—प्र + √भू + इष्णुच्। यह विष्णु की उपाधि है। अर्थ होता है— शक्तिशाली। परिषदाः—परिषदि (सभायां) साधुः 'परिषदः' ते। सप्तम्यन्त परिषद् शब्द से 'साधु' अर्थ में। 'परिषदोण्यः' (४।४।१०१) में 'परिषदः' ऐसा योग विभाग करने से 'ण' प्रत्यय हुआ। परिषद का अर्थ यहाँ 'अनुचर' अर्थात् 'सेवक' है।

श्लोक २८—लघुत्वयोगात्—लघुत्व = हलका होना। चक्र ने बाल कृष्ण से नन्द के लिए हलका बन जाने की प्रार्थना की जिससे नन्द आसानी से उन्हें वहन कर सकें। प्रसाद = अनुग्रह।

श्लोक २६—वत्सलम् = वात्सल्य भाव से युक्त। अर्थ्यते=चाहा जा रहा है। रूढभावः—वृद्धि को प्राप्त, बढ़ा हुआ। दग्धभूयिष्ठशेषम् = अत्यन्त जले हुओं में जो बच गया है अर्थात् विनष्ट होने से बचा हुआ। न्यस्तम् = धरोहर रूप में रक्खा गया। बीजम् = मूल कारण।

पृष्ठ ३६—ज्येष्ठाश्रितम्-ज्येष्ठा = लक्ष्मी की बड़ी बहन निर्ऋति अर्थात् अलक्ष्मी, उससे युक्त। श्रियारूढम् = लक्ष्मी या शोभा से सम्पन्न।

द्वितीय अङ्क

श्लोक १—मेदिनी = पृथिवी। हर्म्यं = प्रासाद। सन्तारनौः—सन्तरन्ति अनेनेति सन्तारः = नदीतटम् (करणे घञ्) तत्र नौः = तरीः। नदी के तट पर स्थित नौका। भाव यह है कि जैसे तट पर लगी नौका उत्ताल तरंगों के थपेड़ों से डगमगा उठती है, उसी तरह शकुनों से धरती डगमगा उठी और प्रासादों के शिखर धराशायी हो गये। सेव्यः = अवश्य भोक्तव्य। प्रधानगुण-कर्मफलैः = मुख्य गुणों और कर्मों के फलस्वरूप होने वाले। निमित्तैः = शकुनों के द्वारा। मनुष्य को अपने गुणों और कर्मों के फल जो आगे भोगने हैं, शकुन उसकी सूचना देते हैं। अतः कंस उन शकुनों को देखकर सोचता है कि ये शकुन विपद् के सूचक हैं या अभ्युदय के।

श्लोक २—रक्षिपुरुषाः = पहरेदार। प्रमदाः = स्त्रियाँ (दासियाँ)। श्वपाकी = चाण्डाल युवती।

श्लोक ३—हुतवहः = अग्नि। मा=माम् (मुझे), 'त्वामौ द्वितीयायाः' सूत्र से 'माम्' के स्थान पर 'मा' आदेश। अपवादवचनैः = निन्दासूचक वचनों से परिधर्षयन्ति = परि + √धृष् + णिच् (स्वार्थे) + लट् (झि = अन्ति)। तिरस्कार करती हैं

पृष्ठ ३६—आ अपध्वंसः—'आ' यह खेदसूचक अव्यय है, ('आस्' या 'आः' भी लिखा जाता है)। अपध्वंसः = अधःपतन। कंस खेद प्रकट करता है कि मेरा ऐसा अधःपतन कि चाण्डाल युवतियाँ भी तिरस्कार कर रही हैं। नष्टाः = अन्तर्हित, अदृष्ट। अभ्यन्तरम् = (घर के) अन्दर।

श्लोक ४—विनिष्पतति = निकला आ रहा है। गर्भगृहम् = गृह के भीतरी भाग को। विगाह्य = वि + √गाह + ल्यप्। व्याप्त कर। उल्काम्—

जलती हुई लकड़ी। मशाल। प्रगृह्य=लेकर। अञ्जन=कज्जल। महेश्वरः= शंकर भगवान्। गाम्=भूमि को। प्रपन्नः=प्राप्त हुआ।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में 'विगाह्य उल्काम्' में गुणसन्धि होनी चाहिए क्यों कि श्लोकार्ध में संहिता नित्य होती है।

श्लोक ५—श्मशान=मरघट। विरूप=विकृत रूप वाला, कुत्सित। चण्ड=उग्र, उद्धत। प्रवेष्टुम्—प्र+√विश्+तुमुन्। प्रवेश करने के लिए।

श्लोक ६—सौवर्ण=सुवर्णमय। कान्ततर=अत्यन्त रमणीय। कन्दर= खोह, गुफा। कूट=शिखर। कुञ्ज=लतागृह। वायस=काक। पक्षवातः= पंख ही हवा। मकर=मगर, घड़ियाल। ऊर्मि=तरङ्ग। पातुम्=पीना,√ पा (पाने)+तुमुन्।

श्लोक ७—अवधूय—अव√धू (कम्पने)+ल्यप्, तिरस्कृत करके। अधिजुष्टम्–अधि+√जुष्+क्त (कर्मणि), संसेवित, अधिष्ठित।

श्लोक ८—चिरसंवासात्=अधिक दिनों से रहने के कारण। संवासः– सम्√+वस्+घञ्। त्यक्तुम्–√त्यज्+तुमुन्। पार्थिवम्–पृथिव्या ईश्वरः तम्, पृथिवी+अण् (तस्येश्वरः)। दृढं तपति=अत्यन्त कष्ट देता है।

श्लोक ९—गाढम्=दृढ़ता पूर्वक। परिष्वजामि=आलिङ्गन करता हूँ। यह अपाणिनीय प्रयोग है। ष्वञ्ज धातु आत्मनेपदी है अतः 'परिष्वजे' प्रयोग समीचीन होगा

पृष्ठ ४६–मातङ्गीजन=चाण्डालिनियाँ। सांवत्सरिक=ज्योतिषी, (संवत्सर+ठञ्)।

श्लोक १०—भूतम्=प्राणी, तत्त्व, सच्चिदानन्द ब्रह्म से तात्पर्य है। कार्यान्तरेण–अन्यत्कार्यं कार्यान्तरं तेन, अन्य (विशेष) कार्य से। प्रपन्नम्— प्र+√पद्+क्त। प्राप्त हुआ। दुन्दुभि=नगाड़ा, भेरी। रव=शब्द।

श्लोक ११–वसुन्धरा=पृथिवी।

श्लोक १२—समुपेत्य—सम्+उप+√इ+ल्यप्, तुक् का आगम (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्) वहन्—√वह्+शतृ, धारण करता हुआ। आहूयमानः—आ+√ह्वे+लट् (कर्मणि) लट् को शानच् आदेश। बुलाया जाता हुआ। भृत्यः=सेवक।

पृष्ठ ५०—एवंविधा लोकवृत्तिः = ऐसी ही लोक की गति है। शौरसेनी-मातः—शौरसेनी माता यस्य तत्सम्बुद्धौ। पाणिनीय-व्याकरण के अनुसार यहाँ 'नद्यृतश्च' सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय अनिवार्य रूप से होना चाहिए। अथवा समासान्त विधि के अनित्य होने से कप् का अभाव माना जा सकता है। इसी प्रकार 'यादवीमातः' में भी समझना चाहिए। भास के नाटकों में इस प्रकार के प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

पृष्ठ ५२—अनुक्रोशः—अनु + √क्रुश् + घञ्। दया, करुणा, दयालुता। तपस्विन्याः—तपस्विनी = बेचारी, अनुकम्पनीया (देवकी) के।

श्लोक १५—समयः = इकरार, समझौता, शर्त। गर्भान् = बच्चों को।

पृष्ठ ५४—साहसमनुष्ठास्यामि—साहस का अर्थ यहाँ 'अत्यन्त क्रूर कर्म' है। कंस की पूर्वोक्ति 'मयापि नाम स्त्रीवधः कर्तव्यो भवति' से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह बालिकावध को मन में जघन्य अपराध और महापातक समझता था अतः ऐसे कार्यको उसने 'साहस' कहा है।

श्लोक २२—कार्तिकेयः—कृत्तिकानामपत्यं पुमान्, कृत्तिका + ढक् (स्त्रीभ्योढक्)। पार्वती के साथ सहवास का सुखोपभोग करते समय शिवजी के पास अग्नि के पहुँचने पर उन्होंने अपना वीर्य अग्नि में फेंक दिया। उसे अग्नि ने गंगा में फेंक दिया। गंगा ने उसे स्नानार्थ गयी हुई छः कृत्तिकाओं में संक्रान्त कर दिया। उससे गर्भवती हो जाने से प्रत्येक ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया परन्तु बाद में सबों को रहस्यमय ढंग से जोड़ कर एक कर दिया गया। इसीलिए उसे कार्त्तिकेय और षडानन कहते हैं।

श्लोक २३—क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः—शिवजी से कार्तिकेय शस्त्र-शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनकी परीक्षा शिव जी ने लेनी चाही। उस समय उन्होंने शक्ति नामक अस्त्रविशेष से क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण कर दिया। इसी से उन्हें 'क्रौञ्चदारण' भी कहते हैं।

श्लोक २४—नलानां निलयम्—नल = एक प्रकार का नरकुल। निलय = समूह, राशि।

तृतीय अंक

पृष्ठ ६१—प्रकालयत = (तुम सब) हांको। प्रकामम् = इच्छा भर। आयतु = आवे, आ + √अय् (गतौ) + लोट्।

श्लोक ३—रक्तैः = रंगीन। वेसुकडिण्डिमैः—'वेणुकडिण्डिमैः' ऐसा पाठ अधिक समीचीन लगता है। आज भी अहीर लोगों में नगाड़े के साथ वेणुवादन की प्रथा देखी जाती है। जागरिमा—जागरितृ + 'इमनिच्' 'तुरिष्ठेमेयः सु' सूत्र से तृच् का लोप। कोई यहाँ 'जागरिता' पाठ मानते हैं।

श्लोक १६—सुजूष्यन्ते – सु + √जूष् (हिंसायाम्) + लट् (कर्मणि)

चतुर्थ अङ्क

श्लोक १—मत्त = मदाविष्ट। चकोर शाव=चकोर के बच्चे। प्रोद्भिन्न= प्रस्फुटित। कम्र = सुन्दर, मनोहर। त्रासाकुल व्याहृताः—भय के कारण जिनके वचन आकुल (लड़खड़ाते) हैं।

श्लोक ७—लोकालोकमहीधरेण—लोकालोकः—एक काल्पनिक पर्वत जो इस पृथ्वी को घेरे हुए है और निर्मल जल के उस समुद्र से परे स्थित है जिसने सात महाद्वीपों में से अन्तिम द्वीप को घेर रक्खा है। इस लोकालोक से परे घोर अन्धकार है और इस ओर प्रकाश है। 'प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः—रघु०, १।६८।

श्लोक ६—धूमायति—धूमो भवतीति धूमायति। धूम शब्द से 'भवति' के अर्थ में 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' पाणिनीय सूत्र से क्यष् प्रत्यय होने पर 'वा क्यषः' सूत्र से विकल्प से परस्मैपद होकर 'धूमायति' पद निष्पन्न होता है। भट्टोजिदीक्षित के मत से 'क्यङ्' प्रत्यय ही होकर' धूमायते'ऐसा होना चाहिये।

श्लोक १०—सप्तकुलपर्वताम्—उन सात मुख्य पर्वतों को कुलपर्वत कहा जाता है जो इस महाद्वीप के प्रत्येक खण्ड में विद्यमान माने जाते हैं। 'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥'

श्लोक ११—गोवर्धनोद्धरणम्—श्रीकृष्ण के आदेश से गोपों ने इन्द्र की पूजा बन्द कर गोवर्धन पर्वत की पूजा की। इससे क्रुद्ध इन्द्र ने व्रज को डुबा देने के लिए घोर जल-वृष्टि की। श्रीकृष्ण ने व्रज की रक्षा के लिए गोवर्द्धन पर्वत को अपने वायें हाथ की कनिष्ठिका अँगुली पर धारण किया था।

श्लोक १३—लम्बसूत्रम् = नाभिपर्यन्त लम्बी सुवर्णमाला। कुछ लोग इसका तात्पर्य यज्ञोपवीत से मानते हैं।

पञ्चम अङ्क

श्लोक १—कार्मुकम्—कर्मणे प्रभवतीति कार्मुकः तम्। चतुर्थ्यन्त कर्मन् शब्द से 'कर्मण उकञ्' सूत्र से उकञ् प्रत्यय होने पर 'कार्मुक' पद निष्पन्न होता है। नपुंसकलिङ्ग में प्रयुक्त होकर यह धनुष का वाचक होता है। यहाँ इसका संकेतबोधक विशेषण 'तम्' प्रयुक्त हुआ है अतः यह कृष्ण का विशेषण है। इसका अर्थ है—भलीभांति और पूर्णतः कर्म करने वाला अर्थात् कर्मवीर।

पृष्ठ ९८—गन्धहस्ती = गन्धगजः। सर्वोत्तम हाथी को गन्धहस्ती कहते हैं। क्योंकि इसकी गन्ध पाते ही भय से अन्य हाथी भाग जाते हैं।

श्लोक १२—प्रास = भाला। शक्ति = एक प्रकार का अस्त्र। ऋष्टि = दुधारी तलवार अथवा बर्छी। कुन्त = भाला, बर्छी अथवा पंखदार बाण।

श्लोक १३—रौहिणेयः—रोहिणीपुत्र बलराम। रोहिणी शब्द से अपत्यार्थ में 'स्त्रीभ्यो ढक्' से ढक् प्रत्यय। 'किति च' सूत्र से आदि अच् 'ओ' को वृद्धि 'औ'। ढकार को 'एय्' आदेश। 'यस्येति च' सूत्र से ईकार का लोप। सन्नाहम्—युद्ध के लिए तैयारी।

श्लोक १५—आपण = बाजार। गोपुर = नगर का बाहरी मुख्य द्वार। अट्ट = घर की छत पर बना कमरा, चौबारा।

पृष्ठ ११३—अर्गला—दरवाजे को बन्द करके रोकने के लिए लकड़ी या लोहे का बना यन्त्र, ब्योंड़ा, सिटकिनी, आगल।

सर्वक्षत्रपराङ्मुखावलोकिनः—सब क्षत्रियों को पराङ्मुख देखनेवाला। भाव है कि युद्ध में जिसके सामने सब क्षत्रिय मुंह फेर कर भाग जाते हैं।

श्लोक १६—चिरोपरोधसम्प्राप्तः—कंस ने उग्रसेन को बन्दी बना रक्खा था। चिरकाल से अवरुद्ध रहने के कारण उन्हें बड़ा क्लेश था। कंसादि को मारकर श्रीकृष्ण ने उनके दुःख को दूर किया।

श्लोक १९—गमिष्ये—यहाँ गम् धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किया गया है जो पाणिनि सम्मत नहीं है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार गम् धातु परस्मैपदी है अतएव 'गमिष्यामि' ऐसा प्रयोग होना चाहिए।

श्लोक २०—राजसिंहः—'राजा सिंह इव' इस विग्रह में 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' सूत्र से उपमित समास।

ग्रन्थप्रयुक्तछन्दःसूची

अनुष्टुप् (श्लोक)—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

अंक प्रथम—३, ११, १२, १३, १५–१७, २०, २५–२७ । अंक द्वितीय—८, ९, ११, १३–१९, २५ । अंक तृतीय—७–१०, १२, १३, १६ । अंक चतुर्थ—१०, १२ । अंक पञ्चम—१४, १६–२० ।

इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

अंक चतुर्थ—५, ९ ।

उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ (इत्यनयोरुपजातिः ।)

प्रथम अङ्क—२, ४, ७, २१, २२, २४, २८ । द्वितीय अङ्क—५, १२, २०, २३, २४ । तृतीय अङ्क—४, ६ । चतुर्थ अङ्क—४ । पञ्चम अङ्क—२, ७ ।

शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

प्रथम अङ्क—२९ ।

पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

प्रथम अङ्क—१४ । पञ्चम अङ्क—९ ।

वंशस्थविल—वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ।

प्रथम अङ्क—१८ ।

प्रहर्षिणी—म्नाशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

प्रथम अङ्क—६ । पञ्चम अङ्क—१३ ।

वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

प्रथम अङ्क—५, ८, २३ । द्वितीय अङ्क—१–४, ६, ७, १०, २१, २२ । तृतीय अङ्क—२, ५, १४ । चतुर्थ अङ्क—६, ८, ११, १३ । पञ्चम अङ्क—१, ३, ६, ८, १०, ११, १५ ।

मालिनी—न न मयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

प्रथम अङ्क—९, १० । तृतीय अङ्क—११, १५ । चतुर्थ अङ्क—३ । पञ्चम अङ्क—१२ ।

शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजो सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
प्रथम अंक—१ । तृतीय अंक—३ । चतुर्थ अंक—१, ७ ।

स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
चतुर्थ अंक—२ ।

आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥
प्रथम अंक—१९ । तृतीय अंक—१ । पञ्चम अंक—४ ।

उपगीति—
आर्योत्तरार्धतुल्यं प्रथमार्धमपि प्रयुक्तं चेत् ।
कामिनि तामुपगीतिं प्रतिभाषन्ते महाकवयः ।
पञ्चम अंक—५ ।



ग्रन्थप्रयुक्तालङ्कार-सूची

उपमा—साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।
प्रथम अंक—६, १३, १४, १५, १९ । द्वितीय अंक—१, २, ७, १२, १९, २३, २४, । तृतीय अंक—२, १४, १५ । चतुर्थ अंक—५, ७, १३ ।
पञ्चम अंक—४, ५, ७, ९, ११, १२ ।

उत्प्रेक्षा—भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।
प्रथम अंक—१३, १५, १६, । द्वितीय अंक—४ ।

काव्यलिङ्ग—हेतो र्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते ।
प्रथम अंक—१४, १८ ।

अतिशयोक्ति—सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते ।
प्रथम अंक—११ ।

निदर्शना—सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित् ।
यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ॥
द्वितीय अंक—६ ।

हेतु—अभेदेनाभिधा हेतुर्हेतोर्हेतुमता सह ।
प्रथम अंक—१० ।



अपाणिनीय-प्रयोग-सूची

१—अपचयगमनार्थं सततं रक्षमाणा ।—(१।१०)

रक्ष् धातु परस्मैपदी है। यहाँ आत्मनेपद मानकर शानच् आदेश हुआ, जो अशास्त्रीय है। 'रक्षन्ती' प्रयोग शुद्ध होगा।

२—गर्भगृहं विगाह्य उल्कां प्रगृह्य—(२।४)

प्रथम चरण के अन्त में स्थित 'विगाह्य' है और द्वितीय चरण के आदि में स्थित 'उल्काम्' है। श्लोकार्ध में दोनों की स्थिति होने से 'विगाह्य + उल्काम्' में सन्धि अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।

३—परिष्वजामि गाढं त्वाम्—(२।९)

यहाँ आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का प्रयोग हुआ है। 'परिष्वजे' प्रयोग शुद्ध होगा।

४—घोषे जागरिमा.......(३।३)

'जागरिमा' पद में जागर शब्द से इमनिच् प्रत्यय का प्रयोग अशास्त्रीय है।

५—वृन्दावने सललितं प्रतिगर्जमानम् (३।५)

गर्ज धातु परस्मैपदी है। उसे आत्मनेपद मानकर लट् को शानच् आदेश हुआ है। 'प्रतिगर्जन्तम्' प्रयोग शुद्ध होगा।

इसी प्रकार 'किं गर्जसे भुजगतो...(३।१४) में भी 'गर्जसे' प्रयोग अपाणिनीय है। 'गर्जसि' प्रयोग शुद्ध होगा।

६—मा खु मा खु भट्टा! एदं जलासअं पविसिदुं। एसो खु...(अंक४)।

यहाँ मा शब्द के योग में 'तुमुन्' प्रत्यय का इसी प्रकार 'क्त्वा' प्रत्यय का भी) प्रयोग अशास्त्रीय है। यही बात 'मा खु मा खु पाहवं कलिअ पविसिदुं।' में भी समझनी चाहिए।

७—रोषेण धूमायति यस्य देहः (४।९)

यहाँ (धूमो भवतीति धूमायति) लोहितादि गण में धूम शब्द का पाठ होने से धूम शब्द से 'लोहितादि डाज्भ्यः क्यष्' सूत्र से क्यष् होकर 'वा क्यषः' सूत्र से वैकल्पिक परस्मैपद का विधान हुआ है। किन्तु भट्टोजि-

दीक्षित के मत से क्यष् न होकर क्यङ् ही होगा, तब आत्मनेपद ही होगा—'अत्र (लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इति सूत्रे) अच्वेः इत्यनुवृत्त्या अभूततद्भाव-विषयत्वं लब्धम्। तच्च लोहितशब्दस्यैव विशेषणम्। न तु डाचोऽसंभवात्। नाप्यादिशब्दग्राह्याणाम् (श्यामादिशब्दानाम्), तस्य प्रत्याख्यानात्। तथा च वार्तिकम्—'लोहितडाज्भ्यः क्यष् वचनम्, भृशादिष्वितराणि' (वा १७२९, ३०) इति। (सिद्धान्तकौमुदी। एवं च श्यामादिशब्दान्तर्गताद्धूम शब्दादपि क्यङि आत्मनेपदमेवेति फलितम्।

८—गमिष्ये विबुधावासम्—(५।१९)

गम् धातु का आत्मनेपद के रूप में प्रयोग अपाणिनीय है। 'गमिष्यामि' समीचीन प्रयोग है।

बालचरितगतसुभाषित

१—उक्तज्ञाः खलु नृशंसाः।

२—स्मरतापि भयं राजा भयं न स्मरतापि वा।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥—२।१३।

३—दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति।—अंक २।



श्लोकानुक्रमणिका

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
६२

****

भासनाटकचक्रे

अविमारकम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-

डॉ० बालगोविन्द झा

एम. ए., पी-एच. डी.

प्रो० स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ, रोहतास (बिहार)

भूमिका-लेखकः-

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.

प्रो० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८४

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४१

मूल्य रू० : १०-००

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
62



AVIMĀRAKAM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited with

'Kamaleshwaree' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Dr. BALGOVIND JHA
M. A., Ph. D.
Prof. S. V. Patel College, Bhabhua, Rohatas (Bihar)

Foreword by

Dr. Mahaprabhulal Goswami
M. A., Ph. D., D. Litt.
Prof. Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi



KRISHNADAS Academy
VARANASI-221001
1984

© KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
POST BOX No. 1118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition
1984
Price Rs. 10-00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

समर्पणम्

पूज्य पितृचरण

पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

दो शब्द

महाकवि भासप्रणीत 'अविमारकम्' की यह "कमलेश्वरी" संस्कृत हिन्दी टीका सहृदय एवं विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। संस्कृत टीका विशुद्ध रूप से प्रचलित टीका है। पद्यों पर पूरी टीका की गई है एवं गद्यभाग में केवल व्याख्येय शब्दों की ही व्याख्या की गई है। अनुवादक्रम में शब्दार्थ की अपेक्षा तात्पर्यार्थ को जब अधिक प्रधानता दी जाती है तभी वह मूल की भाँति स्वाभाविक और रुचिकर बन पाता है। प्रस्तुत टीका में इस तथ्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। भूमिका एवं परिशिष्ट भागों में ग्रन्थ से सम्बद्ध विविध सामग्री दे दी गई हैं जो पाठकों के लिये उपयोगिता की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

संस्कृत ग्रन्थों पर टीका लिखने के लिये मेरे पूज्य अग्रज श्री शंकर झा प्रधानाध्यापक, उच्चविद्यालय उरलाहा, पूर्णियाँ ने मुझे विशेष रूप से प्रेरित किया है। पूज्य गुरुवर डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी, आचार्य एवं अध्यक्ष, तुलनात्मक दर्शन विभाग : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने भूमिका लिखकर मेरे श्रम की उपयोगिता में चार चाँद लगा दिये हैं। इन गुरुजनों की मुझ पर जो अहैतुकी कृपा है उसके लिये मैं इनका चिरऋणी रहूँगा। इस सन्दर्भ में आचार्य श्री सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ी विशेष स्मरणीय हैं, जिनके सत्सम्पादन से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। अतः इनका मैं हृदय से आभारी हूँ। अन्त में "कृष्णदास अकादमी" वाराणसी के संचालक महोदय के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित कर मेरा उत्साहवर्द्धन किया है। प्रस्तुत टीका में प्रमादवश जो भी अशुद्धियाँ हो गई हों उनके लिये मैं सहृदय पाठकों के समक्ष क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं कह नहीं सकता कि मेरा यह तुच्छ प्रयास कहाँ तक उत्कृष्ट बन पड़ा है, पर मेरा यह कार्य यदि आंशिक रूप से भी विज्ञ विद्वज्जनों एवं छात्रों के काम आ सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझ कर कृतकृत्य हो जाऊँगा।

विनीतः—
बालगोविन्द झा

दीपावली
वि. सं. २०४१

भूमिका

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

भास और उनकी कृतियों की कविकुल प्रशस्ति

कविता-कामिनी के हास भास की नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा-प्रसूत रूपक आज भी अतुलनीय प्रतिक्षण अपनी काव्य-कला की नवीनता से चकाचौंध कर रहा है। रूपकों में प्रसन्न विशद प्रवाहित सुरधुनी की नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है। महाकवि ने नाटकीय पात्रों को निष्पक्ष रूप में देखा और मानवीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रणय-कला को त्याग की कसौटी पर खरी पाया। अपने चिरसङ्गी के कल्याण के लिए सर्वस्व विसर्जन के साथ सपत्नी को भी अङ्गीकार करने में अम्लान है। आह्लाद आमोद के साथ पति की इनके रूपक की नायिका कल्याण-कामना में शान्त शाश्वत संसार के आकलन में सचेष्ट है। उसके सरस जीवन प्रतिक्षण प्रव्रज्या की प्रखर प्रभा से परिव्याप्त है, जो नारी जीवन के लिए अनुकरणीय है। भवभूति का भद्र प्रेम सुख-दुःख में अद्वैतता, विकारशून्यता, सभी अवस्थाओं में सामरस्य, जराकृत विश्रान्ति राहित्य, प्रतिक्षण वर्द्धमानता, एवं कालकला जिस प्रेम के अनवच्छिन्न प्रवाह के अवरोध में असमर्थ है, उसी प्रेम की स्निग्ध धारा से सिञ्चित भास की काव्य-कला तूलिका-चित्रित 'स्वप्न वासवदत्तम्' एवं अन्य नाटक हैं।

सम्भवतः महाकवि ने अनुभव किया कि ऐसी नायिका जाग्रत् जगत् की कामिनी कैसे हो सकती है? अतः इसे स्वप्नवासवदत्ता मानने के लिए बाध्य हुआ, और इतिवृत्त को अपनी कल्पना के अनुरूप चित्रित किया, जिसकी पुनरावृत्ति काव्य-जगत् में सम्भव न हो सकी।

महाकवि कालिदास को लीलापाङ्गलोचन से प्रणयमधुर को अवलोकनकर नन्दन-कानन-निवासी पात्रों के त्यागमय जीवन को चिन्मय भूमि में अवतारणा से पूर्व भूमिका में व्याजस्तुति के रूप में भास के उद्भास को लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा ।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

महाकवि की इस वाणी ने भास को चिरप्रतिष्ठित पद पर आसीन करने में सङ्कोच नहीं किया। इतना ही नहीं मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट शब्दों से महाकवि ने कहा—"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रथम उल्लास में *साम्बशिव एवं व्यास आदि को प्रणामाञ्जलि अर्पित कर भास की प्रशस्ति को* उपस्थापित किया—

सूत्रधार के द्वारा प्रारब्ध, अनेक भूमिकाओं से युक्त पताका आदि प्रासङ्गिक कथाओं से विभूषित नाटकों की रचना कर देवकुल के समान यश के भागी हुए ।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

श्रीगणपति शास्त्री ने भास-नाटक-चक्र के रूप मे भास की कृतियों को मनीषियों के सम्मुख रखकर उनको प्रथित यशोराशि से उद्भासित किया और बाणभट्ट की लेखनी के द्वारा लिखित 'नाटकैः' इस बहुवचन प्रयोग को समर्थित किया, अतः उनकी कृतियों के विषय मे-समस्या का उद्भावन अन्वेषण की दृष्टि से उचित होते हुए भी तथ्य की दृष्टि से विप्रतिपत्तिशून्य है ।

आठवी शताब्दी 'गउडवहो' महाकाव्य के प्रणेता वासवदत्ता के अग्नि-दाह-की कल्पना से इतने प्रभावित थे कि भास को ज्वलनमित्र नाम से ही अभिहित किया—अग्निमित्र की यशोराशि सर्वत्र भासमान है। "भासम्मि जलणमित्तेकन्ती देवे अ जस्स रहु आरे"।

आठवीं शती के काव्यालंकारसूत्र—(गउडवहो ८००) वृत्ति के रचयिता वामन ने स्वप्नवासवदत्तम् के पद्य को उद्धृत कर इनकी रचना की दिग्दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति को भासित किया है।

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम्॥ (स्व० ४।८ का० सू० ४।३।२५)

सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरी' कथा की भूमिका में भास को अभिनन्दित किया है।

अशरीर होते नाटकों के द्वारा भास आज भी स्थित हैं। क्योंकि मुख आदि के सुलक्षण से शरीर का स्पष्ट बोध होता है।

सुविभक्तमुखाद्यंकैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासश्शरीरैरिव नाटकैः॥ (अ० सु० क० ११)

जयदेवजी भास की कृतियों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने कविता-कामिनी के हास के रूप में भास का निर्देश किया है—

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। (प्र० रा० ११२२)

बौद्धाचार्य दिङ्नाग ने कुन्दमाला में दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख किया है। जब कि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में ऐसा प्रसङ्ग निर्दिष्ट नहीं किया है। अतः भास का प्रतिमानाटक सुख्यात नहीं, कवियों के लिए अनुकरणीय था।

इन प्रशस्तियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि भास अपनी रचनाओं से महा-कवियों के मध्य विशिष्ट स्थान प्राप्त करता रहा है—इसमें सन्देह का अवसर नहीं है। दो तीन महाकवियों की गणना में यह भी गण्य है, अतः बहुमान-सम्पन्न ऐसे कवि का परिचय एवं काव्यकला स्वभावतः जिज्ञास्य है। उसी जिज्ञासा के उपशमन की दृष्टि से कुछ लिखने की बाध्यता का अनुभव कर रहा हूँ।

भास का आविर्भाव

भारतीय मनीषी महाकवियों ने देशकाल के परिच्छेद से मुक्त अखण्ड भारतीय दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए अपने को काल, कुल की सूचना से विमुक्त

रखा है। भारती भाषा भारतीय होने से भारतवासी होने की सूचना के लिये पर्याप्त है, अतः इससे अधिक लिखना किसी सम्प्रदाय एवं किसी प्रान्त से आबद्ध करना है, जो इन मनीषियों को अभीष्ट नहीं था।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने भास का समय ६०० वर्षों में दोलायमान रखा है।

१—मिड़े, दीक्षित, गणपतिशास्त्री, हरप्रसादशास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके ने ई० पूर्व छठी से चतुर्थ शताब्दी के मध्य में माना है।

२—जागीरदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधरी, ध्रुव और जायसवाल ने ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में माना है।

३—कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौलो और वेलर ने द्वितीय शताब्दी में माना है।

४—बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली और कीथ ने भास का समय ईसा की तृतीय शताब्दी में माना है।

५—लेस्ली और विण्टरनित्ज ने ईसा की चतुर्थ शताब्दी इनका समय माना है।

६—शङ्कर ने ईसा का पञ्चम एवं षष्ठ शतक माना है। इनके अतिरिक्त आचार्यों ने भी इनके समय के लिये अपना मन्तव्य व्यक्त किया है किन्तु कालिदास आदि ने भास का नाम निर्दिष्ट किया है, अतः चतुर्थ शताब्दी से आगे इनको ले जाना सम्भव नहीं है।

डॉ० पुंसालकर ने भास के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका समय ईसा से पूर्व चतुर्थ एवं पञ्चम शतक माना है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक और स्वप्नवासवदत्तम् में प्राचीन राज्यों का उल्लेख मिलता है, वे राज्य चतुर्थ शतक में वर्तमान थे।

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा॥
(प्रति० यौ० २।८)

स्वप्नवासवदत्तम् में उज्जैन के राजा प्रद्योत, कौशाम्बी के राजा उदयन और मगध के राजा दर्शक का उल्लेख मिलता है। ईसा से पूर्व छठी शती तक ही इनका राजत्व समाप्त हो चुका था। भास ने दर्शक की राजधानी राजगृह कही है, किन्तु अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी, अतः मौर्यकाल से पूर्व इनका समय मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर डॉ० पुसालकर ने भास का समय महापद्मनन्द का राजत्व बताया है। इसके शासन काल में समस्त उत्तर भारत इसके अधीन था। भास की निर्दिष्ट राज्य-सीमा महापद्मनन्द के राज्य से साम्य रखती है।

ए० एस० पी० अय्यर ने भी इसका समर्थन किया है। अय्यर का अनुमान भास को कौटिल्य का सामयिक बताता है। क्योंकि, कौटिल्य अर्थशास्त्र के १० वें अधिकरण के तृतीय अध्याय में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अधोलिखित पद्य का उद्धरण दिया है —

नवं शरावं सलिलैः सपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

(प्रति० ४।२)

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तृतीय अंक में ही "चन्दं गिलदिलाहू। मुंच मुंच चन्दं। यदिण मुंचेशि, मुहं दे पाडिअ मुंचावइस्सं एशे एशे दुट्ठअस्शे परिब्भटे आ अच्छेदि" इस गद्य में चन्दशब्द चन्द्रगुप्त मौर्य का और राहु राक्षस का प्रतीक है। इस प्रतीक के आधार पर भास को ई० पू० चतुर्थ शती का माना है।

भास के नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह पद आया है और मौर्य राजा राजसिंह कहे जाते थे। अशोक ने सारनाथ के स्तम्भ में तीन सिंहों को प्रतीक रूप में अङ्कित किया है। तीन सिंहों का प्रतिनिधित्व चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक करते हैं। इन तीनों मौर्य्यवंशी राजाओ के प्रताप की सूचना सिंहों से होती है। अय्यर की दृष्टि में चन्द्रगुप्त ही राजसिंह है। चाणक्य की प्रतिज्ञा के समान यौगन्धरायण की प्रतीज्ञा होने से ये दोनों समसामयिक हैं। जीवसिद्धि के साहाय्य से चाणक्य ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया, यौगन्धरायण ने

श्रमणक के सहयोग से उज्जयिनीनरेश प्रद्योत को अधीनस्थ किया। चन्द्रगुप्त का विवाह नन्दवंश की कुमारी दुर्धर से कराया है, यह विवाह पद्मावती की ओर संकेत करता है। नीलगिरि हाथी की प्रतीकात्मकता पौरुष के प्रसिद्ध हाथी की समकक्षता को उपस्थित करता है। भारत में शत्रु की सेना के शान्त होने की चर्चा सेल्युकश की सेना के दमन करने की ओर निर्देश करती है। इस प्रकार भास के साथ कौटिल्य के सिद्धान्तों का समन्वय होने से ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी इनका समय अय्यर ने माना है।

अय्यर ने अपने भास के उक्त काल के समर्थन में यह भी कहा है कि हिमालय से विन्ध्यपर्वत पर्यन्त और आसमुद्र पृथ्वी पर चन्द्रगुप्त का राज्य था, इसी को राजसिंह कहा गया है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'महाकवि भास' में अय्यर के इन सिद्धान्तों की अवतारणा कर भास और चाणक्य के द्वारा प्रस्तुत चित्रण के आधार पर भास को चाणक्य से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है।

इसी प्रकार पुसालकर ने राजसिंह को नन्दवंश के लिए प्रयुक्त माना। स्टेनकोनों ने राजसिंह को क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम से समन्वय किया है। ध्रुव ने, शुंगवंशीय पुष्यमित्र से समन्वय किया है, जायसवाल ने कण्वनारायण और भिडे ने इसको उदायी माना है।

नाटक के भरत-वाक्य के आधार पर विन्ध्य और हिमाचल से संवेष्टित समस्त उत्तरी भारत किसी एक राजा के अधीन था यह स्थिति पूर्व चतुर्थ शताब्दी की है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य प्रथम सम्राट् के समय की है। अतः, हरप्रसाद शास्त्री ने राजसिंह के रूप में नन्दवंश के किसी राजा से की है, अतः भास का ई० पू० चतुर्थ शताब्दी होना चाहिए।[1]

सामाजिक और राजनीतिक विभिन्न स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ० शास्त्री ने भास को ४–३ ईसा पूर्व माना[2] है।

---

१. महाकवि भास पृ० ३१।

2. A. C. Pushalkar. Bhasa–A study. P. 70-79।

डॉ० विण्टरनित्स ने कालिदास की भाषा और शैली के सान्निध्य के कारण अश्वघोष का समय ईस्वी की द्वितीय शती और भास को तृतीय शती का माना है।

डॉ० कीथ ने कालिदास के उल्लेख के आधार पर भास को अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती माना है। कालिदास को चतुर्थ शतक का मानने पर भास को ३५० वर्ष से पूर्व मानना पड़ेगा।

स्टेनकोनों ने विण्टरनित्स के विरुद्ध भासको ईसा की द्वितीय शती का माना है।

डॉ० दासगुप्त ने गणपतिशास्त्री एवं अन्य विदेशीय मनीषियों के विचार की आलोचना करते हुए भाषा और शैली के आधार पर भास अश्वघोष तथा कालिदास का मध्यवर्ती माना है[1]। क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने के कारण श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में ये अधिक सफल रहे हैं। स्टेनकोनों ने क्षत्रपों का समय ईसा का द्वितीय शतक है, अतः इसी समय नाटककार भास की स्थिति होनी चाहिए, प्रथम रुद्रसिंह के समय में ही भास का जन्म माना है।

डॉ० ए० पी० बनर्जी ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० के मध्य में माना है, अर्थात् दूसरी शती के बाद और तीसरी शती से पूर्व इनका समय माना है, क्योंकि ये ब्राह्मण धर्म और विष्णु के उपासक थे।[3]

प्रदर्शित सूक्तियों के आधार पर भास का समय कालिदास से पूर्व निर्विवाद सिद्ध है। अनेक मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भास का समय ईसा पूर्व ३२७ के लगभग माना है। इसकी पुष्टि वर्णित

1. S. N. Dasa Gupta, History of Sanskrit Literature p. 172।

2. Stenkonow :—India Drama P. 5।

३. दि जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी भाग—१, मार्च १९२३।

समाज-व्यवस्था के आधार पर भी होती है। अर्थात् ई० पू० चतुर्थ शती में अधिक आग्रह है[1]।

डॉ० सूर्यकान्त ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० माना है।

डॉ० कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग ने ई० पू० ५०० इनका जन्म-काल माना है। यह सत्य है कि भास के समय तक पाणिनि का वर्चस्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की भी चर्चा नहीं है, महेश्वर प्रणीत योगशास्त्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु, पातञ्जल योगशास्त्र की अवगति इनको नहीं थी। मानवीय धर्मशास्त्र सम्भवतः गौतम लिखित मानव धर्मशास्त्र का बोधक हो सकता है। प्रतिमानाटक की पंक्ति में इन शास्त्रों की चर्चा उपलब्ध है। "भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, महेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।"

इन प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर भास को ईसा पूर्व तृतीय शतक से चतुर्थ शतक में मानना अनुचित नहीं है।

टी० कृष्णमाचारी ने अपना विशेष निर्णय प्रस्तुत किये विना ही गणपति-शास्त्री का मत प्रदर्शन करते हुए उपसंहार किया है।

भास का जीवनवृत्त

प्राचीन कवियों के समान ही भास ने अपने नाटकों मे अपने नाम तक की चर्चा नहीं की है। किम्वदन्तियों के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, किन्तु, वे किम्वदन्तियाँ सर्वथा निराधार-सी प्रतीत होती हैं। धावक के नाम से भास की प्रसिद्धि मानी गई है, किन्तु, श्रीहर्ष और भास के समय में इतना अन्तराल है कि इनको समकालीन माना ही नहीं जा सकता है।

एक परम्परा के अनुसार व्यास और भास की प्रतिष्ठा के लिए मतभेद की चर्चा की गई है। दोनों अपने को विशिष्ट प्रतिभाशाली मानते थे। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में अर्पित किया गया, किन्तु भास का

१. महाकवि भास पृ० ४२।

स्वप्नवासवदत्तम् अग्नि में दग्ध नहीं हो सका और अन्य नाटक अग्नि में दग्ध हो गये। इसकी पुष्टि राजशेखर की इस उक्ति से मानी जाती है—

> भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
> स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

इस उक्ति से यह तो सर्वथा सुनिश्चित है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' एक श्रेष्ठ नाटक है, जो आज भी मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। डॉ० राजा ने अपने लेख के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है[1]।

प्रस्तुत श्लोक की भिन्न व्याख्या भी डॉ० राजा ने प्रस्तुत की है। उनके कथन का सारांश है कि भास के नाटकों में दैहिक दृश्यों का बाहुल्य है, अतः उन दृश्यों के दहन के साथ वे सब भस्मावशेष रह गये, किन्तु, 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जल सका। इस व्याजस्तुति के द्वारा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के सम्मुख सौमिल्ल आदि के नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से स्थिर न रह सके। स्वप्नवासवदत्तम् काव्यकला-कसौटी पर खरा उतरता है। यह एक ऐसा नाटक है जहाँ जीवनाधायक तत्त्व समुपलब्ध हैं। भारतीय नारी और आमात्य की कर्तव्य-संवेदन-शीलता सुलभ है।

भास-व्यास-कलह में भी अनेक कृतियों के लेखक एवं वैदुष्य तथा कवित्व शक्ति का वैभवतादात्म्य प्रदर्शित कर दृश्य काव्य की रचना के द्वारा भास का वर्चस्व व्यक्त किया गया है।

प्रो० ध्रुव ने गोत्र के आधार पर प्रसिद्धि मानकर अगस्त्य गोत्र के हेमोदक शाखा के 'भाप' गोत्र में महाकवि का जन्म होने से उसी के अपभ्रंश के रूप में

---

1. It is interesting to see how Dr. Raja Comes to the meaning. Bhasa's dramas contained Conflagrati on Scenes. These fires burnt all other dramas. But Svapana alone remained safe. So according to this interpretation the Svapna was a rival to Bhasa's works.

Journal of oriental Research, Madras, I, P. 227.

'भास' है। ये ब्राह्मण जाति के तथा प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे। कर्णभार के प्रथम के २२-२३ पद्यों के द्वारा यज्ञानुष्ठान, गो, ब्राह्मण का महत्त्व प्रदर्शित हो रहा है, अतः इनको ब्राह्मण मानना समीचीन प्रतीत होता है।

भास, पिता, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव, सद्गृहस्थ की मर्यादा से पूर्ण परिचित ही नहीं, वैदिक संस्कृति के प्रति इनकी अपार श्रद्धा भी थी। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों का समन्वय इनके जीवन में था, इसीलिए—

"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः" (स्व० १।४) भाग्यपंक्ति पहिए के आर की भाँति निम्नोन्नत होती रहती है।

"सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥"

(प्र० यौ० १।१२)

भास का जन्मस्थान

काल और वंश के समान ही इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कवि के भौगोलिक एवं स्थानविशेष के प्राकृतिक चित्रण के परिप्रेक्ष्य में उसके लिए किसी स्थान-विशेष का निर्णय करना भ्रान्तिविजृम्भित ही मानना होगा। क्योंकि, क्रान्तद्रष्टा अपनी प्रतिभा के प्रबोध में सम्पूर्ण विश्व का साक्षात्कार करता है। असत्त्व के आपादक आवरण को कवि अपनी शब्दधारा से हटाकर निरावृत्त विश्व का ज्ञान रखता है। अभानापादक आवरण की निवृत्ति के लिए रसादि की आवश्यकता रहती है। अतः नाटक में वर्णित उज्जयिनी, मगध और बदरीनाथ इन स्थानों में से किसी एक को उन्होंने अपने जन्म से अलंकृत किया है—यह इसके लिए कोई बहुत बड़ा आधार नहीं है। कृष्णचरित्र, रामचरित्र और उदयनचरित्र का वर्णन अयोध्या, मथुरा, मगध, उज्जयिनी को छोड़कर कैसे सम्भव है?

किन्तु उपक्रम और उपसंहार वाक्य के आधार पर उसका स्थान-विशेष के प्रति आग्रह अभिव्यक्त होता है।

मेरे राजसिंह महाराज उदयन समुद्र तक विस्तृत हिमाचल और विन्ध्या-

चल रूपी दो कर्णकुण्डलों से युक्त एक श्वेतपत्र से चिह्नित सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करें (स्वप्नवा० ६।१९।) ।

आरम्भ में बलराम का स्मरण एवं द्वितीय पद के द्वारा मगधराज का स्मरण इन तीनों स्थानों पर केन्द्रित होने की बाध्यता उपस्थित करता है। पुनः मगध के अनेक स्थानों का तपोवन एवं प्रशस्ति की दृष्टि से अभ्यास मगध के प्रति कुछ सोचने को बाध्य करता है। साथ ही आगत आपत्तियों के उद्धार में एकमात्र सहायक मगध का महत्त्व प्रतिक्षण वर्द्धमान है प्रथम अङ्क की समाप्ति में वासवदत्ता का कञ्चुकी के साथ गमन के समय उसी मगध का वर्णन सुलभ है।

द्वितीय अङ्क में भी मगध की पद्मावती का ही वर्णन है। आश्चर्य की बात है 'स्वप्नवासवदत्तम्' की रचना और आरम्भ में उसमें पद्मावती का चरित्र परिव्याप्त है। वासवदत्ता के विवाह की चर्चा भी कवि मञ्च पर प्रदर्शित नहीं करता है। वासवदत्ता के चरित्र में यदि पद्मावती का हस्तावलम्बन एवं न्यास परिरक्षण तथा कर्तव्य-परायणता परिव्याप्त न हो तो 'स्वप्नवासवदत्तम्' का स्वरूप ही नहीं रहेगा। अतः कवि का मगध एवं मागध के प्रति पक्षपात सुस्पष्ट है। मगध के प्रति कवि को इतना अधिक आदर है कि वह वासवदत्ता से उत्तराकुरु की अनुभूति मगध में करा देता है। विवाह के कारण विजयप्राप्ति मगध की राजनीति का संकेत देता है। नक्षत्र, मुहूर्त आदि का भास के नाटकों में महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। यह प्राचीन परम्परा होती हुई मगध से सम्बद्ध है। मगध का वर्चस्व एवं अतिशय आदर भावना इनको मागध होने का संकेत देती है।

उज्जयिनी—ईसा से पूर्व उज्जयिनी की प्रसिद्धि हो चुकी थी, मौर्यकाल में यह समृद्ध नगरी थी। महासेन प्रद्योत वहाँ का राजा बुद्ध के समय वहाँ वर्तमान था। उज्जयिनी के प्रति ममता का आधिक्य एवं वहाँ साधारण स्थानों की अवगति उनको वहाँ का होना सिद्ध करती है, किन्तु, यह सत्य है कि मगध की कृपा के बिना उज्जयिनी का वर्चस्व सुरक्षित नहीं रह सका और पद्मावती

विस्तारहीन तथा सरस पद्धति, चरित्रचित्रण की निपुणता एवं अप्रतिम कवित्व आदि विविध नाट्कीय गुणों के कारण पाठकों, श्रोताओं एवं दर्शकों के स्तुत्य हो गये हैं। भास के नाट्यवैशिष्ट्य के सम्बन्ध में आगे और अधिक विचार किया जायगा।

भास का नाट्य-कौशल

महाकवि भास संस्कृत नाट्य-साहित्य के प्रवीण पुरोहित हैं। भास के नाटकों में जो विशेषतायें उपलब्ध होती हैं उनका अनुशीलन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि एक सफल नाटककार के लिए अपेक्षित सारे गुण-समवेत रूप से उनमें विद्यमान हैं। कथावस्तु का सम्यक् समायोजन, पात्रों का सजीव चित्रण, रसानुकूल अलङ्कारों का निबन्धन, अभिनय का सौकर्य, कथोपकथन की अत्यन्त सरल शैली, भावों की स्फुट अभिव्यक्ति आदि विविध मान-दण्डों के आधार पर भास संस्कृत नाटककारों की पंक्ति में अन्यतम स्थान पर सुप्रतिष्ठित हैं।

भास के नाटकों के पात्र जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं। स्वप्नवासवदत्त का उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के लिए उत्कृष्ट त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। पद्मावती यदि आदर्श की प्रतीमा है तो मंत्री यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता का देदीप्यमान मूर्ति है। विदूषक तो पाठकों को हास्य की वह मीठी बुकनी परोसता रहता है जिस पर गम्भीर से गम्भीर लोगों की भी सारी गम्भीरता हजार जान से निछावर हो जाती है। तो यह है भास की उत्कृष्ट चरित्रचित्रण-निपुणता का भव्य निदर्शन।

भास अत्यन्त भावुक कवि हैं। किसी कवि की भावुकता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिये कि कवि अपनी कृति मे मार्मिक स्थलों को कहाँ तक पहचान सका है। भास इस क्षेत्र में पूर्ण सिद्धहस्त हैं। विरह-व्याकुल उदयन की मनोव्यथा के वर्णन में कवि ने अपनी मर्मज्ञता का जो परिचय दिया है वह नितान्त हृदयावर्जक है--

"नैवेदानीं ताहशाश्चक्रवाकाः, नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा च दग्धाऽप्यदग्धा ॥"
(स्वप्न० १।३।१)

उपर्युक्त पद्य के "नैवेदानी ताहशाश्चक्रवाकाः" इस पंक्ति में उदयन की जिस दशा का वर्णन किया गया है वह निश्चय ही किसी भी सहृदय के हृदय में करुणा का सञ्चार करने के लिए पर्याप्त है । इसी प्रकार षष्ठ अङ्क के प्रारंभ मे घोषवती वीणा को उपालम्भ देते हुए उदयन द्वारा कहे गये निम्न पद्य भी मार्मिक भावो की अभिव्यञ्जना मे नितान्त सफल रहे है—

'श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ (६।१)
श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मा च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥"
(६।२)

तथा,

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ (६।३)

तृतीय पद्य के "तां तु देवीं न पश्यामि" से जो विकलता टपक रही हैं उसे यदि मार्मिकता की पराकाष्ठा कहें तो प्रायः अत्युक्ति नहीं होगी ।

भास के नाटक

भास के तेरह नाटक प्रसिद्ध हैं । डॉ० पुसाल्कर ने शैली, संवाद आदि के आधार पर कृतियों का अधोलिखित क्रम प्रस्तुत किया है ।

१. दूतवाक्य । २. कर्णभार, ३. दूतघटोत्कच, ४. उरुभंग, ५. मध्यमव्यायोग, ६. पञ्चरात्र, ७. अभिषेक, ८. बालचरित, ९. अविमारक, १०. प्रतिमा, ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२. स्वप्नवासवदत्तम् और १३. चारुदत्त ।

विषय, शैली एवं निरूपण पद्धति आदि के आधार पर भास की रचनाओं का अय्यर ने इस प्रकार क्रम निर्द्धारण किया है—

१ दूतघटोत्कच, २. कर्णभार, ३. मध्यमव्यायोग, ४. उरुभंग, ५. दूतवाक्य, ६. पञ्चरात्र, ७. बालचरित, ८. अभिषेक, ९. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १०. अविमारक, ११. प्रतिमानाटक, १२. स्वप्नवासदत्तम्, १३. चारुदत्त।

दूतघटोत्कच—यह नाटक महाभारत की कथा पर आधृत है। कथानक को लेकर अपनी प्रतिभा-प्रसूत घटनाओं का मिश्रण कर रोचक रूप में उपस्थित किया है। हिडम्बापुत्र घटोत्कच कृष्ण का दूत बनकर कौरव-सभा में आता है। दौत्यप्रधान होने से इसका दूतघटोत्कच नाम दिया गया है। इसकी कथानक कविकल्पना-प्रसूत है। घटोत्कच का कृष्णदूतरूप में आना महाभारत में उपलब्ध नहीं है इसकी प्रधानता के आधार पर इसका यह नाम दिया गया है।

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद दूत घटोत्कच धृतराष्ट्र के सम्मुख उपस्थित होता है और युद्ध का भयंकर फल सूचित करता है, दुर्योधन व्यंग्य करता है, घटोत्कच भी वैसा ही उत्तर देता है। दोनों अशान्त हो जाते हैं, घटोत्कच युद्ध के लिए ललकारता है। धृतराष्ट्र किसी प्रकार शान्त करते हैं। अभिमन्यु का बदला अर्जुन लेगा इस सूचना के साथ घटोत्कच चला जाता है।

कर्णभार—महाभारत के आधार पर इस रूपक की रचना हुई है। महाभारत की कथा के अनुसार कर्ण का यह नियम था कि वह मध्याह्न में जल के मध्य खड़ा होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर ब्राह्मणों को दान देता था। इस अवसर पर उसके लिए अदेय कुछ भी नहीं था। इन्द्र ने इसी अवसर पर ब्राह्मण रूप में उपस्थित होकर भिक्षा के रूप में कवच की याचना की।

कविवर भास ने इस कथा को अपनी कल्पना के रूपक के अनुरूप सङ्कलित किया है। वह जल में उपस्थित नहीं वरन् रथ पर आरूढ़ अर्जुन के साथ युद्ध के लिए तत्पर हो अर्जुन के सम्मुख रथ ले जाने के लिए आदेश देता है। शल्य और परस्पर वार्तालाप के प्रसङ्ग में कर्ण अपने शाप के विषय की सूचना देता है। शल्य को दुःखी देखकर कर्ण युद्ध के गुणों का वर्णन करता है और यह कहता है कि युद्ध में मरने पर स्वर्ग और विजयी होने पर यश और राज्य की प्राप्ति होती है।

महाभारत की कथा में कर्ण स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है, किन्तु भास का कर्ण उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित है, अतः, वह स्वयं प्रतिदान की इच्छा व्यक्त नहीं करता है, देवदूत ब्राह्मण के वचन के पालन के लिए शक्ति को ग्रहण करने के लिए कहता है, और कर्ण इस अनुरोध को ठुकरा नहीं पाता है। आश्चर्य की घटना है कि विप्रवेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है।

डॉ० भट्ट के अनुसार महाकवि भास ने कर्ण की कथा मे नवीन कल्पना-प्रसूत विषयों का सन्निवेश कर कर्ण का स्वरूप प्रदर्शित किया है इसका अङ्गीकृत रस करुण है।

मध्यमव्यायोग—इस नाटक की रचना कुन्ती के मध्यम पुत्र भीम को आधृत कर एकांकी रूपक मे की गई है। इस कथावस्तु का मूल स्रोत प्रथम अध्याय के १५०-१५५ सर्ग में है। महाकवि भास ने महाभारत की कथा को विशिष्ट प्रभावपूर्ण शैली मे निबद्ध कर अतिशय मनोहर बना दिया है। घटोत्कच का अपने अज्ञात पिता से युद्ध और हिडिम्बा सम्मेलन कवि कल्पना-प्रसूत है। भीम और घटोत्कच के चरित्र को व्यक्त करते हुए ब्राह्मण परिवार को माध्यम चुना तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रभाव से मध्यम को समर्पित करने की दृष्टि प्राप्त की। घटना-प्रधान इस नाटक में कवि की प्रतिभा कथावस्तु के संयोजन से रस-प्रवाह में सक्षम है।

भास ने घटोत्कच और हिडिम्बा में मानव-स्वभाव का समावेश किया है। इस नाटक मे भीम से मिलन के लिए ही यह षड्यन्त्र किया गया है। महाभारत मे इतस्ततः विकीर्ण कथाओं को एक माला का रूप ही नही दिया वरन् अति हृदयावर्जक रूप दिया है। ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को लेकर घटोत्कच माता हिडिम्बा के पास जा रहा है, पानी पीने गये हुए मध्यम को वह बुलाता है और मध्यम पुत्र भीम उपस्थित होता है और युद्ध के बाद हिडिम्बा के सम्मुख जाते ही वह पहिचान लेती है। भीम की उदारता आत्म-समर्पण की भावना के प्रदर्शन में कवि ने अपनी कुशल काव्य-प्रतिभा का अपूर्व सन्निवेश किया है। जिससे द्रष्टा सर्वथा एकतानहृदय से आनन्द की अनुभूति करता है

जो कुशल शिल्पी ने ही प्रस्तर को काँट-छाँटकर अपूर्व लावण्य की अभिव्यक्ति की है।

उरुभंग—नाटक की कथा का मूल आधार महाभारत है भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध का वर्णन मिलता है। भीम दुर्योधन की गदा के प्रहार से मूच्छित हो जाता है किन्तु, सहसा उठकर भीम उस पर आक्रमण करता है बलराम के क्रोध करने पर वह कहता है—मेरी उपस्थिति में मेरी उपेक्षा कर भीम ने मर्यादा के विरुद्ध दुर्योधन की जाँघ पर गदा का प्रहार कर उसे गिरा दिया है, मैं इस अनीति को सहन नहीं करूँगा भीम का वक्षस्थल विदीर्ण कर इसे इसका फल दूँगा। इस प्रसङ्ग में दुर्योधन कहता है—भगवन्! भीम ने युद्ध मर्यादा का ध्यान न देकर जंघा पर गदा का प्रहार कर गिरा दिया है। मेरा शरीर अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है। आप प्रसन्न हों भूमि पर पतित मेरे इस मस्तक का प्रणाम स्वीकार करें, क्रोध शमन कर कुरुकुल में जलाञ्जलि के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दें, वैर की अब आवश्यकता नहीं है। हम लोग अब समाप्त हो चुके।

बलराम ने कहा—तुम क्षणभर के लिए जीवन धारण करो मैं पाण्डवों का संहार कर तुम्हारी स्वर्ग-यात्रा में सहायक बन सकूँ।

गुरुदेव! भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी, मेरे सभी भाई मारे गये, मैं अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में हूँ, अब युद्ध से क्या लाभ है। बलराम ने कहा कि मेरे सम्मुख भीम ने छल से तुम्हें मारा इसका मुझे दुःख है। यदि आपको यह विश्वास है कि मैं छल से मारा गया हूँ तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। मुझे तो क्षीरसागरशायी, पारिजात-हरणकर्ता लोकप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट काल का ग्रास बनाया है।

धृतराष्ट्र और गान्धारी का आगमन होता है, प्रलाप के साथ दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन वीरोचित सान्त्वना देता हुआ, पत्नियों को अपना महत्त्व स्थापन करता हुआ साहस प्रदान करता है। पुत्र दुर्जय को उपदेश देते हुए कहता है—प्रशंसितश्री अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता है यह सोचकर तुम दुःख त्याग करो। अश्वत्थामा का आगमन होता है और उसकी उत्तेजना-

पूर्ण बातों को सुनकर वह उनको विनय-पूर्वक समझाता है। अश्वत्थामा यह कहता है कि आज रात्रि में रण रचना कर पाण्डवों को समाप्त कर दूँगा। महाप्रयाण की यात्रा का आरम्भ एवं विचलित मुनिजन तपोवन में धृतराष्ट्र का प्रस्थान होता है।

दूतवाक्य—इसकी कथा महाभारत से ली गई है। उत्तरा और अभिमन्यु का परिणय हो चुका है। पाण्डवों का प्राप्तव्य दिलाने के लिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से दौत्य कार्य सम्पन्न किया है। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन पर राजसी स्वागत की तैयारी की, किन्तु कृष्ण कुन्ती के पास गये, दुर्योधन से मिले, उसके द्वारा प्रीति-भोज को अस्वीकार कर विदुर के घर रात्रि व्यतीत की। विदुर के साथ राजसभा में उपस्थित हुए। दाय-भाग देने का प्रस्ताव किया, किन्तु, दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया। गान्धारी ने भी बात मानने के लिए कहा, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा को धृतराष्ट्र ने रोका।

महाभारत की कथा को अपनी प्रतिभा से मिश्रित कर उपस्थित किया है। धृतराष्ट्र के स्थान पर दुर्योधन राजा है, कृष्ण को बन्दी बनाने के लिए सक्रिय चेष्टा उपलब्ध है। माता गान्धारी की बात की उपेक्षा कर सभा का परित्याग कर देता है। रंगमंच पर शरीरधारी शस्त्रों की अवतारणा महाकवि की प्रातिभ उद्भावना है। इस नाटक का कथोपकथन सरस और ग्राह्य है। सात्यकी के द्वारा अपने बन्दी बनाने की बात जानकर अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं। जिसको देखकर दुर्योधन मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रसङ्ग में नाटकीय स्वरूप अपूर्व है। भास राजसिंह के एकछत्र राज्य की कामना इसके भरत-वाक्य से करता है। इसमें पुरुष-पात्र का बाहुल्य है। यह रूपक के भेद व्यायोग के अन्तर्गत है। श्रीगणपति शास्त्री ने इसका प्रधान रस धर्मवीर माना है और श्रीकृष्ण को नायक माना है। फलप्राप्ति दुर्योधन को होने से इस रूपक का नायक दुर्योधन को माना है तथा वीर रस माना गया है।

पञ्चरात्र—'पञ्चानां रात्रीणां समाहारः, अथवा पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेनास्य'—इस विग्रह के अनुसार पाँच रात की घटनाओं के वर्णन से प्रस्तुत यह

नाटक है। कुरुराज दुर्योधन एक बृहत् यज्ञ का आयोजन करता है। यज्ञ की समाप्ति पर आचार्य द्रोण से दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है। द्रोण पाण्डवों के लिए आधे राज्य को देना ही अपनी दक्षिणा के रूप में मानता है। अस्वीकृति की मुद्रा से द्रोण क्रुद्ध हो जाते हैं। शकुनि से विचार के पाँच रात्रि के अन्दर पाण्डवों का पता लगने पर राज्य का अर्ध देने की स्वीकृति देता है। यह रूपक तीन अङ्क का है।

इस रूपक की कथा महाभारत विराट् पर्व से ली गई है। कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान होने पर भीम ने कीचक का वध किया था। कौरवों ने रुष्ट होकर विराट पर आक्रमण किया और उसके गोधन को हरण किया।

महाकवि ने इसी कथा को नाटकीय शैली के द्वारा रोचक एवं परिपुष्ट कर प्रस्तुत किया है। सूई के अग्रभाग को भी न देने वाला नाटककार का दुर्योधन गुरु की आज्ञा से आधा राज्य देने को तत्पर है।

इस नाटक में महाकवि ने अपनी प्रतिभा के आधार पर निम्नलिखित परिवर्तन के द्वारा इसकी प्रेषणीयता में मणिकाञ्चन-संयोग प्रस्तुत कर दिया है—

(१) महाभारत में दुर्योधन के यज्ञ की चर्चा नहीं है, महाकवि की यज्ञ की कथा ने अपूर्व चमत्कार सम्पन्न कर दिया है।

(२) यज्ञ का प्रधान आचार्य द्रोण को बनाया है तथा यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन द्रोणाचार्य को दक्षिणा के लिए आग्रह करता है और आचार्य पाण्डवों को अर्द्धराज्य दिलाने के रूप में आग्रह-पूर्वक दक्षिणा स्वीकार करते हैं। आचार्य अपने आचार्यत्व का इस दिशा में प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग ने नाटक में एक अपूर्व समन्वय प्रदर्शित किया है।

(३) शकुनि द्रोणाचार्य की दक्षिणा को प्रवञ्चना कहता है। उसका विरोध करता है, अन्त में पाँच दिनों में पाण्डवों की प्राप्ति के साथ राज्य का अर्द्धभाग देने की स्वीकृति देता है।

(४) अभिमन्यु विराटनगर में अत्यधिक पराक्रम प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार इस रूपक में अतिशय मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कवि ने कथावस्तु को अपूर्व सरसता से मनोग्राह्य कर दिया है।

बालचरित—इस रूपक में भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का समायोजन किया गया है—इसीलिए इसका नाम बालचरित रखा गया है। इस रूपक में शृंगार की घटनाओं का सर्वथा अभाव है। 'शृंगार के बिना बाललीला' यह भास की प्रतिभा से ही संयोजित हुआ है। राधा का भी प्रवेश इसमें नहीं हुआ है। यह रूपक पाँच अङ्कों मे सम्पन्न होता है।

इस नाटक की कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत एवं महाभारत के हरिवंश एवं पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण-कथा है। कथावस्तु को नाटकीय स्वरूप प्रदान करके अपनी काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिक उद्भावना के साथ अतिशय रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। भास ने गोप की पुत्री को मृत दिखाकर एक अपूर्व वैशिष्ट्य समाहित किया है। मृतपुत्री को परित्याग करने वाला पुत्री के स्थान पर दैवगति से पुत्र को प्राप्त कर ले, इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी। श्वासगति के अवरोध से मृत घोषित की गई यदि श्वास-सञ्चार से पुनः जीवित हो गयी तो योगमाया के लिए क्या आश्चर्य है। वासुदेव और नन्दबाबा की वार्ता भी नाटक में एक विशिष्ट स्थान रखती है। नाटककार की दृष्टि में कृष्ण सातवाँ पुत्र है, आठवाँ नहीं। नाटक की दृष्टि से कथा में क्रम-भेद भी किया गया है, श्रीकृष्ण को नन्द को समर्पण के समय रात्रि का पर्यवासन है। मथुरा मे आगमन के समय सभी निद्रानिमग्न हैं। गोपकुमारियों को श्रीकृष्ण के पराक्रम के विश्लेषण के प्रसंग में अपनी कल्पना को अतिशय चमत्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ रूपक एक अनूठा और अतिशय चमत्कृति-सम्पन्न है।

अभिषेक—इस रूपक में सुग्रीव और अभिषेक का वर्णन किया गया है, अतः, इसका नाम अभिषेक किया गया है। रामायण की कथा कतिपय प्रातिभ परिवर्तनों के साथ लोक के सम्मुख राम के उदात्त चरित्र की अवतारणा की गई गई है।

इसकी कथा का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर

लङ्काकाण्ड के उत्तरार्द्ध की कथा है। कथा बहुचर्चित एवं सकलजन-विदित है। रामायण की मूल कथा में परिवर्तन भी किया गया है। सुग्रीव और बालि का द्वन्द्व युद्ध एक ही बार प्रदर्शित किया गया है। प्रचलित कथा के अनुसार नल नील के द्वारा समुद्र बन्धन हुआ है किन्तु महाकवि ने भयभीत वरुण देव के द्वारा समुद्र के जल को सुखाकर बीच से मार्ग दिया है। भास के अनुसार जटायु से समाचार जानकर हनुमान ने समुद्र पार किया था, राम से सुग्रीव के मिलने से पूर्व भेंट नहीं होती है। तारा उसे मरते हुए नहीं देखती है। इस नाटक में छ अङ्क हैं। सीताहरण के बाद की कथा इसमें ली गई है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का पूरक है अतः इसका विशिष्ट परिचय प्रदान करना उचित प्रतीत होता है। यह एक सफल रूपक है। इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसकी शैली हृदयाकर्षक है। कथा के विन्यास में किसी प्रकार का गतिभङ्ग नहीं है। सूच्य भागों का सन्निवेश अतिशय लावण्याधान से अंकित किया गया है। मनोवैज्ञानिक ढङ्ग पर कर्तव्य की कसौटी पर विशुद्ध चरित्र इसमें दिये गये हैं, जिनका आद्यन्त निर्वाह करने में महाकवि सर्वथा सफल है। आत्मविश्वास का सम्बल नीति के प्रसार में आरोह अवरोह क्रम से सन्निविष्ट है। इस नाटक का नाम इसकी विशेष घटनाओं के आधार पर दिया गया है। प्रद्योत ने वत्सराज को बन्दी बना लिया है, इसकी अवगति होते ही अमात्य यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है—यदि वत्सराज को मैं नहीं छुड़ा लेता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इस प्रतिज्ञा के सफल होने से पूर्व ही नवीन घटना प्रस्तुत होती है—उदयन बन्दीगृह से वासवदत्ता को लेकर ही भागना चाहता है। इस वृत्तान्त को जानकर पुनः प्रतिज्ञा करता है—जिस प्रकार अर्जुन सुभद्रा का हरण किया था, उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण नहीं कराया तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन प्रतिज्ञाओं से अतिरिक्त वह प्रतिज्ञा करता है कि घोषवती वीणा, भद्रवती हस्तिनी एवं वासवदत्ता का हरण नहीं करा देता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण इसका नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण है।

रूपक की कथावस्तु का मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा की, उदयन और

वासवदत्ता की प्रेम कथा है। कथा-सरित्सागर में रुमण्वान् और यौगन्धरायण मन्त्रियों के नाम हैं, जो यहाँ भी गृहीत हैं। राजा वासुकि द्वारा दी गई घोषवती वीणा के मधुर स्वरों से मदोन्मत्त हाथियों को अपने अधीन करता था। किसी उच्च कुल की कन्या के साथ इसका विवाह सम्पन्न करना चाहता था। वासवदत्ता गुणसम्पन्न एवं उच्च कुल-प्रसूता कन्या थी। महासेन प्रद्योत विरोधी होने से उदयन से वासवदत्ता का विवाह सम्भव नहीं था। उदयन वनों में हाथियों को अधीन करने के लिए विचरण करता रहता था। प्रद्योत ने सोचा कि उदयन को पकड़ कर ले जाने के बाद वासवदत्ता का शिक्षक बनाकर उसके साथ प्रेम हो जाने पर उसको अपना अधिकृत जामाता बना लूँगा। एक नीलहस्ती के समान कृत्रिम हाथी का निर्माण कराकर योद्धाओं को उसमें छिपाकर विन्ध्याचल के अरण्य में रखवा दिया। नीलगिरिहस्ती की सूचना प्राप्त कर उसको पकड़ने के लिए जाता है और वह बन्दी बना लिया जाता है और वह संगीत शिक्षक के रूप में रहने को बाध्य होता है। दोनों का प्रेम प्रगतिशील होता है। यौगन्धरायण रुमण्वान् आदि मन्त्रियों पर राज्य-रक्षा का भार समर्पित कर वसन्तक के साथ वत्सराज को मुक्त कराने के लिए चल पड़ता है। और उदयन को वासवदत्ता के साथ ले आता है।

महाकवि भास के नाटक में अनेक परिवर्तनों के साथ अतिशय रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया गया है। पूर्वप्रदर्शित प्रतिज्ञाएँ कवि की प्रातिभ कल्पना-प्रसूत है। उदयन के उदात्त चरित्र की रक्षा के लिए प्रद्योत की सेना के साथ उदयन युद्ध करता है। उदयन का घोड़ा एक पैर पर खड़ा हुआ थककर गिर जाता है और सैनिकों से बन्दी बना लिया जाता है। महाकवि की यह कल्पना नाटक की दृष्टि से अतिशय महत्त्वाधायक है। महाकवि की कल्पना के अनुसार हंसक उदयन के साथ जाता है और लौटकर बन्दी बनाने की सूचना देता है। कवि की कल्पना के अनुसार उदयन को शक्तिशाली और सेना को शक्तिहीन सिद्ध किया है, यौगन्धरायण जादूगर के रूप में अपना वेश परिवर्तन नहीं करता है, अपितु द्वैपायन व्यास से प्रदत्त चमत्कारी वस्त्र के आधार पर वेश परिवर्तन होता है। नाटककार ने रुमण्वान् और

वसन्तक को भी सहायक के रूप में भेजा है। और उदयन के साथ वासवदत्ता के प्रेम को भी अभिव्यक्त किया है जिससे कथा में जीवनी शक्ति का सञ्चार होता है।

यह एक सफल तथा उन्नत कोटि का नाटक है। इस नाटक की रचना में महाकवि की कवित्वशक्ति निखार पर व्यक्त होती है और महाकवि को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करती है।

अविमारक—सौवीर-राजपुत्र अविमारक का चरित्र इस रूपक में वर्णित किया गया है। विष्णुसेन नामक होने पर अविरूपधारी असुर को मारने से यह अविमारक नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकरण रूपक में छ अङ्क हैं। इसकी कथा कवि कल्पना-प्रसूत है।

राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रेमलीला का वर्णन इसमें उपलब्ध है। अविमारक काशीराज की पत्नी सुदर्शना से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना ने इसे सौवीरराज की पत्नी अपनी बहन सुलोचना को दे दिया था, अतिशय क्रोधी भार्गव के शाप से चाण्डालत्व प्राप्त सौवीरराज अपने परिवार के साथ प्रच्छन्न रूप में कुन्तिभोज की नगरी में निवास करता था।

कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी उद्यान में घूमने गई थी वहीं उन्मत्त हाथी से अविमारक ने इसकी रक्षा की थी, इस पराक्रम प्रदर्शन से कुरंगी और अविमारक में प्रेम हो जाता है। काशीराज का दूत कन्या माँगने आता है। सौवीरराज और काशीराज दोनों ही कुन्तिभोज के बहनोई थे, वह दुविधा मे पड़ जाता है, काशीराज के दूत का वह प्रत्याख्यान नहीं करता है। कुरंगी और अविमारक की स्थिति परस्पर प्रेम के कारण दयनीय होती जा रही है। उसकी सखी नलिनिका धायी के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है और अविमारक को अन्तःपुर में आने का आमन्त्रण दे आई। अपने पराक्रम पर विश्वास करता हुआ उसने इसे स्वीकार कर लिया।

अविमारक अन्तःपुर में छिपकर प्रविष्ट होता है। कुरंगी सो रही है। अविमारक उसी के पास बैठा है, अविमारक उसका आलिङ्गन करता है, चरित्र-पतन के भय से कांप जाती है, शान्त कर उसे शयनागार में ले जाता है।

इस प्रकार एक वर्ष प्रेमपूर्वक व्यतीत होता है, राजा सूचना से अवगत होता है। पकड़ाने के भय से निकल भागता है। वियोग से व्यथित वह आत्मघात के विषय में सोचता है। आत्महत्या के प्रसङ्ग में सस्त्रीक विद्याधर से भेंट होती है, सभी बातें ज्ञातकर एक अंगूठी देता है, जिसे बायें हाथ में धारण करने पर वह अदृश्य और दायें हाथ में धारण करने पर दृश्य हो सकता है। इस अंगूठी के बल पर पुनः प्रविष्ट होने का निश्चय किया।

अविमारक-वियोग-सन्तप्ता कुरंगी नलिनिका के साथ राजप्रासाद में बैठी है। अविमारक विदूषक के साथ वहाँ पहुँचता है, अविमारक अत्यधिक प्रसन्न है कुरंगी के दर्शन से। नलिनिका के जाने पर कुरंगी गले में फन्दा लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। मेघ-गर्जन से भयभीत कुरंगी का अविमारक आलिङ्गन करता है।

पात्रों से ज्ञात होता है कि काशीराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरंगी से विवाह करने के लिए कुन्तिभोज के यहाँ आते हैं। सौवीर-राज के उन्हीं के राज्य में निवास करने की सूचना भी प्राप्त होती है। सौवीर-राज मिलता है किन्तु उसका पुत्र नहीं मिलता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होते हैं और अन्तःपुर में कुरंगी के साथ गान्धर्व-विवाह पूर्वक निवास की सूचना देते हैं। कुन्तिभोज देवर्षि के निर्देशानुसार जयवर्मा के साथ कुरंगी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ विवाह से चिन्ता-मुक्त होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से इसमें न्यूनता होने पर भी यह प्रकरण रोचक है।

प्रतिमा—इस नाटक की कथावस्तु इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण की घटना से ली गई है। दशरथ की प्रतिमा को देखने से ही उनकी मृत्यु का परिज्ञान हो जाता है। सभी घटनाएं इसी पर आधृत हैं। राम के वनवास का बोध भी भरत को इसी घटना से होता है। इस नाटक में सात अङ्क हैं। राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने से आरम्भ कर चौदह वर्षों का वनवास व्यतीत करने के बाद अयोध्या में लौटने तक की घटना इसमें सन्निविष्ट है। राम के राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त होता है। इस नाटक की कथा रामायण से गृहीत है। नाटकीयता और रस आदि की दृष्टि से

इसमें परिवर्तन किया गया है। इसमें कवि की प्रातिभ कल्पना इस प्रकार है—

(१) वल्कल परिधान कवि की कल्पना है। राम के मधुर गार्हस्थ्य जीवन के परिपोष की दृष्टि से यह प्रसङ्ग चारुतर हो गया है।

(२) राज्याभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न अयोध्या में ही उपस्थित है।

(३) नाटक के द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दशरथ के सम्मुख उनके पूर्वजों की उपस्थिति प्रदर्शित की गई है।

(४) प्रतिमागृह की चर्चा कवि की कल्पना की देन है। भवभूति के उत्तररामचरित में चित्र-कल्पना पर इसका प्रभाव माना जा सकता है।

(५) मायामृग की कल्पना न कर नाटक की सजीवता की दृष्टि से काञ्चन-पार्श्व मृग की कल्पना की गई है और दशरथ के श्राद्ध के प्रसङ्ग में इस मृग के अन्वेषण के लिए राम को सीता से दूर हटाया गया है। रावण ने उपस्थित होकर अपने को श्राद्धकल्प चेतस् कहा है। श्राद्ध में सर्वोत्कृष्ट वस्तु की सूचना के प्रसङ्ग में काञ्चनपार्श्व मृग के द्वारा विहित श्राद्ध को सर्वोत्कृष्ट बताया है। रावण के सङ्केतानुसार मृग को पकड़ने के लिए जाना सीताहरण के लिए समीचीन अवसर की प्राप्ति है।

(६) सुमन्त्र का दण्डकारण्य-गमन और सीताहरण की सूचना—यह कवि की प्रातिभ कल्पना है। दुःखित भरत के द्वारा माता कैकेयी को उपालम्भ देने पर 'चौदह दिनों के बदले चौदह वर्ष का वनवास भ्रमवश कहा गया था। रावण के युद्ध में भरत की सेना की यात्रा भी कवि की कल्पना है। राम का राज्याभिषेक जन-स्थान में होता है। रावण-विजय के लिए सैन्य के साथ भरत भी वहीं उपस्थित होते हैं और रावण-विजय के समाचार से प्रसन्नता एवं कैकेयी की अनुमति से रामराज्य ग्रहण करने के लिए तैयार होते हैं और राज्याभिषेक होता है।

इस नाटक में करुण तथा वीर रस का सम्मिश्रण है, करुण की प्रधानता है। दशरथ की प्रतिमा-दर्शन से ही भरत मूर्च्छित होता है और राम के सम्मुख

भरत के द्वारा अपने लिए निर्घृण शब्द का प्रयोग अतिशय चित्तवृत्ति का सम्पादक है।

स्वप्नवासवदत्त—पुरुवंश में उत्पन्न उदयन वत्सदेश का राजा था। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। उदयन वीणा-वादन-कला में निपुण था। उसके पास घोषवती नाम की एक वीणा थी जिसकी सहायता से वह मदमत्त हाथियों को भी वश में कर लेता था। वत्सराज्य की सीमा से ही सटा हुआ अवन्तिराज्य था जहाँ का राजा प्रद्योत था। प्रद्योत अपने प्रकृष्ट सैन्यबल के कारण महासेन भी कहा जाता था। एक बार प्रद्योत के सचिव शालङ्कायन ने छलपूर्वक राजा उदयन को हर कर बन्दी बना लिया तथा उसे कारागार में डाल दिया। प्रद्योत की एक पुत्री थी जिसका नाम वासवदत्ता था। वासवदत्ता परम-सुन्दरी, सुशील और गुणवती थी। उदयन के कला-कौशल से प्रभावित राजा प्रद्योत चाहता था कि उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो जाय। इसी अभिप्राय से उसने उदयन को वासवदत्ता के वीणा-शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। वीणा-शिक्षण क्रम में ही वासवदत्ता एवं उदयन एक दूसरे के प्रति आसक्त हो गये। उदयन अवसर पाकर अपने चतुर मंत्री यौगन्धरायण के सहयोग से वासवदत्ता को अपहृत कर कौशाम्बी ले आया। कौशाम्बी आकर उदयन वासवदत्ता मे इतना खोया रहता कि उसे राज-कार्य की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए उसके एक शत्रु आरुणि ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उदयन से उसका राज्य छीन लिया। आरुणि से अपने राज्य को वापस लेने के लिए उदयन के मंत्री यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् किसी शक्तिशाली राजा की सहायता के अन्वेषण में थे। तभी ज्यौतिषियों से उन्हें ज्ञात हुआ कि मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह होगा। राजा उद-यन वासवदत्ता को इतना अधिक चाहते थे कि वासवदत्ता के जीवित रहते किसी अन्य स्त्री के प्रति उनका आकृष्ट होना असंभव था। इस जटिलता का अनुभव कर यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् ने एक योजना बनाई। मगधराज की सीमा के पास एक गाँव था लावाणक। यौगन्धरायण उदयन को वासवदत्ता के साथ आखेट के लिए वहाँ ले गया। एक दिन जब आखेट के लिए राजा

उदयन बाहर गया था तो शिविर में आग लगा दी गई और उदयन के लौटने पर उसे बता दिया गया कि वासवदत्ता उसी आग में जल मरी तथा उसे बचाने के प्रयास में यौगन्धरायण भी जल मरा। उदयन इस समाचार से बहुत शोकाकुल हुआ। रुमण्वान् आदि मंत्रियों ने उसे सम्भाला और वापस कौशाम्बी ले आये।

उधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती के पास गया और उसके पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रख छोड़ा। उदयन वासवदत्ता की याद में अतिशय विह्वल हुआ किन्तु अन्ततोगत्वा पद्मावती से विवाह करने के लिए वह तैय्यार हो गया। विवाह के बाद दोनों राज्यों की सेनाओं ने मिलकर आरुणि को परास्त कर दिया तथा शत्रु द्वारा अपहृत वत्सराज्य पुनः उदयन को प्राप्त हो गया। अन्त में बड़े ही नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट हुए। यौगन्धरायण ने अपने दुस्साहस के लिए उदयन से क्षमा-याचना की पर उदयन ने यौगन्धरायण द्वारा किये गये हितकारक कार्यों के प्रति बहुत आभार व्यक्त किया।

प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु का जो भाग वर्णित है उससे सम्पूर्ण कथा-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है। महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन यद्यपि नाटक में नहीं किया गया है किन्तु स्थान-स्थान पर उनका समुचित निर्देश दे दिया गया है जिससे सारी कथा-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः यह नाटक घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान ही है इसीलिए कथा-वस्तु के महत्त्वपूर्ण अंशों की भी अपने नाटकीय स्वरूप की रक्षा के लिए उपेक्षा की गई है।

उपर्युक्त रूपकों में साम्य

उपर्युक्त तेरह रूपकों में परस्पर कुछ समानताएँ हैं। इन समानताओं के आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि इन सभी रचनाओं का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति होगा। ये समानताएँ मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं—

१. संस्कृत रूपकों का प्रारम्भ प्रायः नान्दी पद्य से होता है किन्तु इन

सभी रूपकों का समारम्भ "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" वाक्य से होता है। इसके बाद ही आशीर्वादात्मक या मंगल श्लोक हैं।

२. प्रायः सभी रूपकों में 'प्रस्तावना' के स्थान में 'स्थापना' का प्रयोग किया गया है।

३. प्रायः प्रस्तावना में लेखक तथा रचना का नाम और लेखक की प्रशंसा या परिचय में एक दो शब्द होते हैं पर इन सभी रूपकों की स्थापनाओं मे रचना या रचनाकार का नाम, परिचय आदि नही है।

४. इन सभी रूपकों के भरत वाक्य प्रायः समान है।

५. भाषा, शैली एवं भाव के अतिरिक्त अनेक वाक्य और पद्यांश तक विभिन्न रूपकों में समान पाये जाते हैं।

६. भरत निर्देशित नाट्य-नियमों का उल्लंघन प्रायः सभी रूपकों में किया गया है।

७. सभी रूपकों में नाट्य-निर्देशों का अभाव समान रूप से पाया जाता है।

८. साधारण पात्रों में नाम-साम्य तथा अपाणिनीय प्रयोगों की प्रचुरता सभी रूपकों में उपलब्ध होती है।

९ इन सभी रूपकों के नाम ग्रन्थान्त में ही उपलब्ध होते हैं; अन्यत्र कहीं नही।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि सभी रूपकों का प्रणेता कोई एक ही व्यक्ति है तथा कालिदास, वाण, भट्टादि के प्रमाणों द्वारा यह निश्चित है कि भास ही इनके प्रणेता थे। इस विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये आचार्य रामचन्द्र मिश्र द्वारा विरचित "संस्कृतसाहित्येतिहासः" तथा हसराज अग्रवालकृत—"संस्कृत साहित्य का इतिहास"—नामक पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिये।

अविमारक की कथावस्तु

प्रथम अङ्क—नान्दी पाठ के अनन्तर सूत्रधार भगवान् नारायण के ६ अवतारों का वर्णन करता है। सूत्रधार-नटी के पारस्परिक वार्त्तालाप के

बाद सपरिवार राजा का प्रवेश होता है। राजा कुन्तिभोज केतुमति नामक दासी द्वारा महारानी को बुलवाते हैं। महारानी के मुख को अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न देखकर महाराज उनसे इसका कारण पूछते हैं जिसके उत्तर में महारानी कहती है कि—"कुरङ्गी के लिये दूत आया है और शीघ्र ही मैं दामाद को देख सकूँगी।" महाराज विवाह जैसे कार्य के लिये काफी सोचने-समझने के औचित्य का समर्थन कर ही रहे थे कि तभी दूर से गम्भीर शब्द सुनाई पड़ने लगता है और उसी समय प्रतिहारी मंत्री कौञ्जायन के आने की सूचना देता है। कौञ्जायन प्रवेश कर महाराज से निवेदन करता है कि—"आपकी आज्ञा के अनुसार मैं राजकुमारी के साथ उद्यान में गया था किन्तु जब राजकुमारी यथेच्छ विहार करके लौट रही थी तभी एक मतवाला हाथी रास्ते में आकर उत्पात मचाने लगा जिसके डर से साधारण लोग भाग खड़े हुए, औरतें हाहाकार करने लगी, कुछ लोग मरे भी और अचानक वह हाथी राजकुमारी की सवारी पर भी टूट पड़ा। किन्तु तभी एक अनुपम सौन्दर्यशाली, पराक्रमी, साहसी, वीर एवं नम्र युवक वहाँ अकस्मात् आ गया और भयत्रस्त राजकुमारी को अभय-प्रदान करता हुआ निर्भीक-भाव से तुरन्त उस मतवाले हाथी के पास जा पहुँचा।" राजा उस अपरिचित युवक की वीरता एवं दयालुता से काफी प्रभावित हुए। थोड़ी देर बाद जब भूतिक ने आकर पुनः सूचना दी कि पूर्वोक्त युवक ने किस बहादुरी के साथ हाथी को परास्त कर दिया तो राजा उस युवक के वंशादि का पता लगाने के लिये उत्सुक हो उठे। वे भूतिक को उक्त अज्ञात युवक के कुलशील का सविस्तर पता लगाने का आदेश देते हैं और भूतिक से पूछते हैं कि काशिराज ने अपने पुत्र के लिये जो दूत भेजा है उसका क्या किया जाय ? भूतिक कहता है कि विवाह जैसे कार्य में जल्दीबाजी से काम नहीं लेना चाहिये। कौञ्जायन परामर्श देता है कि चूँकि सौवीरराज ने अपने पुत्र के लिये पहले ही दूत भेजा है अतः उन्हें ही प्राथमिकता देनी चाहिये। राजा जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते हैं; इस पर भूतिक सूचना देता है कि वे पुत्रसहित आजकल दिखाई नहीं देते, सारे कार्य मन्त्री लोग चला रहे हैं; पता नहीं क्या कारण है। राजा वस्तुस्थिति का शीघ्र पता लगाने का आदेश देते हैं और

पूछते हैं कि सम्प्रति काशिराज के दूत का क्या किया जाय। कौञ्जायन कहता है कि अभी काशिराज के दूत का प्रत्याख्यान नहीं किया जाय।

द्वितीय अङ्क—प्रारम्भ में विदूषक प्रवेश करता है। वह कुरङ्गी पर आसक्त अपने मित्र अविमारक की मनोदशा का वर्णन प्रस्तुत करता है। इसी बीच चेटी प्रवेश करती है एवं दोनों में कुछ देर तक विनोदपूर्ण बातें होती हैं। चेटी के जाने के बाद अविमारक प्रवेश करता है और वह कुरङ्गी के प्रति अपने हृदय के प्रेम-पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति बहुत ही विकलता पूर्वक करता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिये वह बहुत अधिक विह्वल हो जाता है। उसका चेहरा पीला एवं शरीर दुबला-पतला हो गया है। उसे दिन में शोक एवं रात में मोह घेरे रहते हैं। वह बार-बार कुरङ्गी के रूप, यौवन एवं सौकुमार्य के चिन्तन में ही घुला जा रहा है। इधर कुरङ्गी की भी वही स्थिति है। हस्तिसंभ्रम के दिन से ही वह भी अविमारक पर बुरी तरह आसक्त हो उठी है और उसकी याद में वह भी रात-दिन बेचैन रहा करती है। उसे फूल की माला भी अच्छी नहीं लगती, लोगों से मिलना-जुलना भी नहीं सुहाता, लम्बी साँसें लिया करती है, बेसिर पैर की बका करती है, एकान्त में रोती है, रोग का बहाना करती है, दुबली होती जा रही है तथा पीली पड़ गई है। कुरङ्गी की उपर्युक्त वियोगावस्था का वर्णन धात्री प्रस्तुत करती है। धात्री तथा नलिनिका आपस में कुरङ्गी तथा अविमारक के गुप्त-मिलन की योजना तैयार करती है और तदनुसार अविमारक के पास पहुँच कर उसे कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण दे आती है। इस आमन्त्रण को पाकर अविमारक बहुत प्रसन्न होता है तथा उन दोनों को साधुवाद देता है। अविमारक चूंकि अपने पराक्रम के प्रति आश्वस्त है अतः वह इस आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। धात्री तथा नलिनिका के जाने के बाद वह आधी रात को कन्यापुर में प्रवेश करने के लिये अपने मित्र विदूषक से मंत्रणा करता है तथा अकेले ही प्रवेश करने का निश्चय करता है।

तृतीय अङ्क—धात्री तथा नलिनिका अविमारक के कन्यापुर-प्रवेश के लिये सारी व्यवस्था कर देती है। अविमारक अर्धरात्रि के समय राजकीय

रक्षापुरुषों के कड़े पहरे के बावजूद काफी साहस और सावधानी के साथ कन्यापुर में प्रवेश करता है। नलिनिका की सहायता से वह अपनी प्रियतमा कुरङ्गी का सान्निध्य सहज ही प्राप्त कर लेता है। कुरङ्गी भी प्रियतम को अचानक अपने पास पाकर खिल उठती है। दोनों सानन्द समय बिताने लगते हैं।

चतुर्थ अङ्क—एक वर्ष तक कुरङ्गी एवं अविमारक सुखोपभोग करते रहते हैं किन्तु यह जानकर कि महाराज कुन्तिभोज को यह समाचार मिल गया है, कुरङ्गी लाज, काम तथा भय से पीड़ित होकर सन्ताप से बेहोश हो जाती है। अविमारक भी पकड़े जाने के भय से वहाँ से निकल भागता है किन्तु प्रियतमा के वियोग में वह इतना खिन्न हो जाता है कि अन्ततः उसे आत्महत्या का निर्णय लेना पड़ता है। सर्वप्रथम वह पानी में डूबकर मरना चाहता है किन्तु इस मृत्यु को अधर्मपूर्ण जानकर वह दावानल द्वारा आत्मघात करने के विचार से अग्नि में प्रवेश करता है किन्तु इससे उसकी मृत्यु नहीं होती अपितु अग्नि की ज्वाला उसे चन्दन के लेप की तरह शीतल प्रतीत होने लगती है। अन्ततोगत्वा वह पर्वत-शिखर से गिरकर प्राण त्याग करने की इच्छा से पर्वत पर चढ़ जाता है किन्तु तभी सपत्नीक विद्याधर वहाँ पहुँच जाता है। बात-चीत के क्रम में विद्याधर उसकी मनोव्यथा से परिचित हो उसे एक दिव्य अंगुरीयक प्रदान करता है जिसे दायें हाथ की अंगुली में पहनने पर अदृश्य एवं बायें हाथ की अंगुली में धारण करने पर पुनः प्रकृतिस्थ हुआ जा सकता है। उस विचित्र अंगुरीयक को प्राप्त कर तथा विद्याधर की सलाह पर वह अंगूठी की ही सहायता से पुनः अपनी प्रियतमा के पास पहुँचने का निर्णय लेता है।

पञ्चम अङ्क—प्रियतम के पुनर्वियोग में कुरङ्गी की अवस्था बहुत बिगड़ जाती है। वह चन्दन का लेप लगाना छोड़ देती है, अपने सारे आभूषण उसने उतार दिये हैं और सारे विलासों का त्याग कर दिया है। अपनी सखियों की आँख बचाकर वह आत्मघात करने की इच्छा से गले में फाँसी का फन्दा डालकर मरना ही चाहती है कि उसी समय अंगूठी की सहायता से

वहाँ अविमारक पहुँच जाता है और दोनों आपस में मिलकर काफी प्रसन्न होते हैं। इस बार अविमारक विदूषक को भी अपने साथ ले लेता है।

षष्ठ अङ्क—सौवीरराज के पुत्र विष्णुसेन का कुछ पता नहीं चल रहा था अतः बाध्य होकर राजा कुन्तिभोज ने काशिराज के पुत्र जयवर्मा के साथ कुरङ्गी के विवाह का निश्चय कर लिया। तदनुसार समाचार भेजने पर जय वर्मा अपनी माँ सुदर्शना के साथ वहाँ पहुँच गया। निश्चित समय पर विवाह की तैयारी प्रारम्भ हो गई। सौवीरराज भी उपस्थित हुए। वे पुत्र-वियोग के कारण काफी खिन्न प्रतीत हो रहे थे। उनकी खिन्नता के बारे में जब राजा कुन्तिभोज ने जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने अपने सुन्दर, शूर-वीर एवं पराक्रमी पुत्र अविमारक के खो जाने एवं बहुत दिनों से उसका कहीं भी पता नहीं चलने के बारे में कुन्तिभोज को अवगत कराया। इसी प्रसङ्ग में सौवीरराज ने यह भी बताया कि चण्डभार्गव नामक क्रोधी ऋषि के शाप से वे किस प्रकार अपनी पत्नी एवं पुत्र सहित एक वर्ष तक चाण्डालत्व को प्राप्त हो चुके थे तथा यह भी कि उनके पुत्र विष्णुसेन ने किस बहादुरी के साथ अविरूपधारी दुर्दान्त राक्षस का संहार किया था। सौवीरराज से ही उनके पुत्र अविमारक की वीरता की बात जब राजा कुन्तिभोज को मालूम हुई तो उन्हें विश्वास हो गया कि पगले हाथी से कुरङ्गी की रक्षा करनेवाला युवक कोई अन्य नहीं; अविमारक ही रहा होगा। उन्होंने मंत्रियों को अविमारक का पता लगाने का आदेश दिया किन्तु कहीं भी अविमारक का पता नहीं चल सका।

कुरङ्गी का विवाह जयवर्मा के साथ होने ही वाला था कि तभी वहाँ देवर्षि नारद पहुँच गये और उन्होंने ही सारा रहस्योद्घाटन किया। नारद ने सूचना दी कि अविमारक कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरङ्गी के साथ रह रहा है तथा उन दोनों ने गान्धर्व रीति से विवाह भी कर लिया है। नारद ने बहुत से अन्य भेद भी प्रकट किये। उन्होंने कहा कि अविमारक अग्निदेव से सुदर्शना में उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना की बहन सुचेतना सौवीरराज की पत्नी थी। प्रसवकाल में ही सुचेतना के पुत्र के मर जाने से उसे कष्ट में जानकर

सुदर्शना ने अपना पुत्र सुचेतना को दे दिया। इस प्रकार अविमारक सौवीर-राज का पुत्र कहलाया। सारी बातें मालूम होने पर सभी प्रसन्न हो गये। कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ काशिराज के पुत्र जयवर्मा का विवाह हो गया और इस प्रकार सभी प्रसन्न हो गये।

अविमारक का काव्यगत सौन्दर्य

अविमारक काल्पनिक कथा पर आधारित एक प्रकरण है। इसका कथानक घटना-प्रधान न होते हुए भी वस्तुतः चरित्र-प्रधान है। नाटकीय विशेषताओं से परिपूर्ण यह प्रकरण भास की उत्कृष्ट काव्यात्मक प्रतिभा का ज्वलन्त दाहरण है। पात्रों का सजीव चित्रण, घटना क्रम का सुव्यवस्थित संयोजन एवं कथोपकथन के स्वाभाविक वर्णन में प्रकरणकार ने पग-पग पर अपने नाट्यकौशल के उत्कर्ष का परिचय दिया है।

प्रथम अङ्क में "कन्यापितुर्हि सततं बहुचिन्तनीयम्" (श्लोक ३) के द्वारा युवावस्था को प्राप्त कुआँरी कन्या के विवाह के लिये चिन्तित पिता की मनोदशा का वर्णन भास के परिपक्व सांसारिक अनुभवों को द्योतित करता है। इसी अङ्क में मंत्री कौञ्जायन की —"प्रसिद्धो कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिव-बलम्" (श्लोक ५) इस उक्ति से राजा के चंगुल में फँसे हुए मंत्रियों की विवशता का जो चित्र सामने आता है वह भास की राजनीति मर्मज्ञता का संकेत देता है। इसी प्रकार निमन्त्रण लोभी ब्राह्मण के रूप में विदूषक का चित्रण या चतुर, सयानी, वाक्पटु एवं व्यवहार निपुणा दूती एवं परिचारिका के रूप में धात्री, मागधिका, नलिनिका आदि साधारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी भास ने कुछ उठा नहीं रखा है।

अविमारक प्रस्तुत प्रकरण का नायक एवं कुरङ्गी नायिका है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं पर मिल नहीं पाते। "अद्यापि हस्तिशीकरशीतलाङ्गी०" (श्लो० २।१), "प्रतिविद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते" (श्लो० २।४) आदि पद्यों के द्वारा कुरङ्गी के प्रेम में व्याकुल अविमारक की मनोव्यथा का वर्णन तथा "रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा" (श्लो० ५।१), "सव्ये करे समुपवेश्य

मुखं सुदीनम्'' (श्लो : ५।२) आदि पद्यों के द्वारा प्रियतम-वियोग-विधुरा कुरङ्गी की दुरवस्था का चित्रण जितना ही मार्मिक है उतना ही मनोज्ञ भी और प्रतीत होता है कि वैसे स्थलों पर भास के हृदय की भावुकता मानो टपक रही हो। अविमारक एवं कुरङ्गी के उदात्त, आदर्श एवं मार्यादित प्रेम का जैसा चित्रण इस प्रकरण में किया गया है वह प्रत्येक युग में आदर्श समाज के लिये भास द्वारा प्रदत्त प्रेरक एवं बहुमूल्य अवदान के रूप में सदैव प्रयुक्त होता रहेगा।

प्रकृति-वर्णन के क्षेत्र में भी भास की काव्य-निपुणता पराकाष्ठा को छू रही है। सूर्यास्तकालीन आकाश तथा प्रदोषकालिक मनुष्य-लोक का चित्रण क्रमशः निम्न पद्यों में किया गया है—

१. पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता,
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशाम्।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं,
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ २।१२ ॥

२. व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो,
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो,
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥ २।१३ ॥

प्रथम पद्य के अनुसार आकाश में अर्धनारीश्वर रूप की कल्पना अपने आप में कितना अनूठापन लिये हुए हैं एवं द्वितीय पद्य के अनुसार मनुष्य-लोक के वेष-परिवर्त्तन की कल्पना कितनी सजीव एवं स्वाभाविक है; यह स्वतः सहृदय-संवेद्य है।

अर्धरात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार का वर्णन भी नितान्त चित्ताकर्षक बन पड़ा है—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः, पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः, प्लवतरणीयः इवायमन्धकारः ।। ३।१ ।।

मार्ग की नदी, अन्धकार को उसमें प्रवाहित होने वाला जल तथा भवनों को नदीतट का रूपक प्रदान करने वाला यह वर्णन पाठकों के हृदय को बरबस ही खींच लेता है।

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में "अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही" (४।४) एवं "लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णः" (४।५) ये दोनों पद्य तथा इसी अङ्क में आकाश से पृथ्वी पर उतरते हुए सपत्नीक विद्याधर द्वारा पृथ्वी के वर्णन में कहा गया—"जलदगहनमुज्झतीव" (४।१२) यह पद्य, प्राकृतिक सुषमा के नितान्त स्वाभाविक, हृदयावर्जक एवं अतिरमणीय वर्णन के भव्य निदर्शन हैं।

काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत यश, अर्थ एवं सद्यः परनिर्वृत्ति के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान, शिवेतरक्षति तथा कान्तासम्मितोपदेश भी आते हैं। जैसा कि मम्मट ने कहा है—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे ।। काव्यप्रकाश ।।

तो इस दृष्टि से भी भास की यह कृति पूर्ण सफल सिद्ध हुई है। अविमारक के अन्तर्गत आये हुए अनेकानेक सुभाषितों से उक्त प्रयोजनों की सिद्धि स्वतः हो जाती है। "जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा०" (१।३), "छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्०" (१।६), "विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्या भवन्ति", "न भृत्यदूषणीया राजानः", "सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्", "को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम्" आदि अनेक सुभाषित श्लोक, श्लोकांश तथा गद्यांश हैं जिनसे व्यावहारिक ज्ञान, शिवेतरक्षति तथा कान्तासम्मितोपदेशरूप प्रयोजनों की पूर्ति स्वतः हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि

भास का 'अविमारक' अभिनय एवं काव्य-दोनों ही कलाओं की कसौटी पर एक साथ खरा उतरने वाला एक सफल प्रकरण है।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

अविमारक—अविमारक प्रस्तुत प्रकरण का नायक है। यह धीरोदात्त प्रकृति का है। प्रकरण के अन्त में देवर्षि नारद द्वारा किये गये रहस्योद्घाटन से ज्ञात होता है कि यह अग्निदेव से सुदर्शना में उत्पन्न हुआ था तथा घटना विशेष के कारण सौवीरराज पुत्र के रूप में जाना जाता था। इसका नाम विष्णुसेन है। अविरूपधारी किसी राक्षस को मारने के कारण यह अविमारक के ही नाम से लोक में प्रख्यात हो गया था।

अविमारक या विष्णुसेन में नायक के लिये अपेक्षित सारे गुण समवेतरूप से विद्यमान हैं। प्रथम अङ्क में कौञ्जायन की—"दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् ...." इस उक्ति से जहाँ इसके सौम्यरूप, निरहङ्कारता, नम्रता एवं सौकुमार्य का संकेत मिलता है वहीं भूतिक के—"स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रकीड्य ...." इस कथन से इसके श्लाघनीय साहस तथा अतुलनीय पराक्रम का भी परिचय प्राप्त हो जाता है। देवता के समान रूप, ब्राह्मण के समान वाणी, क्षत्रिय के समान बल, तेज तथा सौकुमार्य इसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देते हैं—(दैवं रूपं० श्लो० १।७)। इसके इसी आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर स्वयं विद्याधर को भी इसके मानुषत्व पर विश्वास नहीं होता। चतुर्थ अङ्क में विद्याधर की—"आः ज्ञातम्। विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः। कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम्।" इस उक्ति से इसके अनुपम दिव्य सौन्दर्य का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अविमारक सच्चा एवं आदर्श प्रेमी है। प्रेम की रक्षा के लिये यह जान की भी बाजी लगा बैठता है। कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी से यह अन्तिम सीमा तक प्रेम करता है। पहली बार अर्धरात्रि के समय, निविड अन्धकार में राजकीय रक्षापुरुषों के कड़े पहरे के बावजूद यह अपने साहस, पराक्रम

एवं बुद्धि कौशल से अपनी प्रियतमा कुरङ्गी तक पहुँचने में अन्ततः सफल हो जाता है किन्तु पश्चात् प्रियतमा के वियोग में यह आत्महत्या तक करने के लिये तत्पर हो जाता है जो इसके प्रगाढ एवं उदात्त प्रेम का परिचायक है।

यह स्वयं परोपकारी है। पगले हाथी से कुरङ्गी की रक्षा करना या अग्निरूपधारी दुर्दान्त राक्षस का संहार करना इसकी परोपकारिता एवं लोक-कल्याण की भावना को उजागर करता है। साथ ही दूसरों द्वारा अपने प्रति किये गये उपकार के प्रति भी यह कम कृतज्ञ नहीं है। द्वितीय अङ्क में कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण देने के लिये आई हुई धात्री तथा नलिनिका को यह—"भवति ! पुनर्दत्ता इव प्राणाः।" कहकर प्रकारान्तर से उनका आभार ही व्यक्त करता है। इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में विद्याधर से अंगूठी प्राप्त करने के बाद इसकी—"विद्यावशानां तु भवद्विधानां०" (४।१७) इस उक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृतज्ञता की भावना से इसका हृदय ओत-प्रोत है।

इस प्रकार, अनुपम सौन्दर्य, अतुलित पराक्रम, अतिमानवीय शौर्य-वीर्य, नम्रता, परोपकारिता, कृतज्ञता, निरहङ्कारता आदि विविध उदात्त गुणों से समन्वित इसका चरित्र एक आदर्श नायक के स्वरूप की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम है।

कुरङ्गी—कुरङ्गी प्रस्तुत प्रकरण की नायिका है। यह वैरन्त्य नगर के स्वामी राजा कुन्तिभोज की पुत्री है। हस्ति संभ्रम के दिन अविमारक के पराक्रम पर मुग्ध होकर यह उससे मन ही मन प्रेम कर बैठती है और उसे चाहने लगती है। यह सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति है। इसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए द्वितीय अङ्क में स्वयं अविमारक कहता है—"प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्तु०" (२।३)। अविमारक पुनः आगे कहता है—"उसका वक्षस्थल स्तन-भार से अलस है, शरीर जघन-भार से खिन्न है, मुख नेत्रों की सुन्दरता से परिपूर्ण है, अधर स्वाभाविक लालिमा से भरा है; भय के समय भी जब उसकी आकृति इतना आकर्षण उत्पन्न करती है तो सुरतकाल में विलासों से पूर्ण उसका चेहरा कितना सुन्दर होगा" (२।६)। इन्द्र

उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका सौन्दर्य अलोकसामान्य है जो किसी भी युवक के हृदय में उथल-पुथल मचा देने के लिये पर्याप्त है।

अविमारक से यह प्रेम करती है। अपने प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये यह इतनी विह्वल हो जाती है कि इसकी दशा नलिनिका एवं मागधिका आदि सखियों के लिये चिन्ता का विषय बन जाती है। प्रियतम के वियोग में यह पागल-सी होती जा रही है। इसे पुष्पमाल्य भी अच्छा नहीं लगता, लोगों से मिलना-जुलना बिल्कुल नहीं सुहाता और बार-बार यह मूर्च्छित हो जाती है। प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव इसके चरित्र की अन्यतम विशेषता है। प्रेम की वेदी पर अपने प्राणों तक की आहुति डालने के लिये यह तैयार हो जाती है। प्रियतम से प्रथम मिलन के बाद जब पुनः वियोग हो जाता है तो यह उसे सहन नहीं कर पाती है और गले में फाँसी का फन्दा डालकर मरने के लिये तैयार हो जाती है। इन घटनाओं से यह पता चलता है कि इसके हृदय में अपने प्रियतम के प्रति कैसा अथाह प्रेम है। प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पित प्रेमिका के रूप में यद्यपि इसकी भूमिका दृष्टिगोचर होती है किन्तु यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इसका प्रेम कहीं भी और कभी भी मर्यादा की परिधि का उल्लङ्घन नहीं करता है। इसका प्रेम उत्कट अवश्य है किन्तु उच्छृंखल नहीं। तृतीय अङ्क में अविमारक को नलिनिका समझ कर यह उससे गाढ आलिङ्गन कर बैठती है किन्तु नलिनिका द्वारा वास्तविकता का पता लगने पर यह अकस्मात् बहुत घबड़ा जाती है— "हा हीनं चारित्रम्। भीतास्मि (तृतीय अङ्क)। इसी एक घटना से इसके चारित्रिक उत्कर्ष का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रस्तुत प्रकरण में प्रेम-समर्पिता नायिका के रूप में इसका चरित्र आदर्श मानवीय गुणों से पूर्ण सम्पन्न है।

विदूषक—यह हास्य नेता है। इसका नाम सन्तुष्ट है तथा यह जाति से ब्राह्मण है। यह अविमारक का अनन्य मित्र तथा विपत्ति में उसका परम सहायक है। इसका प्रमुख कार्य लोगों को हँसाना ही है। सर्व प्रथम द्वितीय

अङ्क में इसका अवतरण होता है। चेटी के साथ वार्त्तालाप करते हुए यह बार-बार निमंत्रण की ही चर्चा करता है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह प्रथम श्रेणी का भोजन-भट्ट है। रामायण महाकाव्य को नाट्य शास्त्र बतलाना ("अस्ति रामायणं नाम नाट्यशास्त्रम्" द्वितीय अङ्क) इसका यह कहना कि—"रामायण के केवल श्लोक ही नहीं बल्कि उनका अर्थ भी मैंने पढ़ लिया है। मेरी विशेषता है कि अक्षर भी जाने और अर्थ भी तथा चेटी द्वारा अंगूठी पर अंकित अक्षर को पढ़ने का प्रस्ताव रखे जाने पर इसका यह कथन— "एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति" (द्वितीय अङ्क) (यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है)—इसकी हास्य-प्रियता के कतिपय उदाहरणों में से हैं।

केवल हास्य उत्पन्न करना ही इसका कार्य नहीं है। विषम परिस्थिति में यह गम्भीर भी हो जाता है। अविमारक के अचानक गायब हो जाने पर यह मित्र-वियोग में काफी शोकाकुल हो जाता है। चतुर्थ अङ्क में अविमारक को खोजने के क्रम में इसका यह कथन—"अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्या यदि न प्रेक्षे, तत्र भवतः परमसहायो भवामि"। इसके हृदय के प्रगाढ मैत्री-स्नेह एवं कोमल भावनाओं का परिचायक है। इसी अङ्क में अविमारक द्वारा इसके सम्बन्ध में कहे गये—

"गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः, शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥"

इस श्लोक से ही इसके चरित्र की सारी विशेषतायें उभर कर पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाती हैं।

धात्री एवं नलिनिका—ये कुरङ्गी की अन्तरङ्ग सहेलियाँ हैं। साधारण पात्र होते हुए भी प्रस्तुत प्रकरण में अभिनय एवं घटना-क्रम की दृष्टि से इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। द्वितीय अङ्क में इन दोनों का प्रवेश होता है जब कि ये दोनों अविमारक को कुरङ्गी से मिलने का आमन्त्रण देने गई हैं। अविमारक के साथ वार्त्तालाप करने के समय अपने २ वाक्चातुर्य का परिचय दोनों ने ही दिया है। प्रियतम को प्रियतमा से मिलाने की कला से दोनों ही

सिद्धहस्त हैं। कुरङ्गी की प्रसन्नता से प्रसन्न रहना एवं उसकी खिन्नता में खिन्न हो जाना दोनों के ही स्वभाव में सम्मिलित है। कुरङ्गी की वियोगावस्था में ये दोनों उसके कल्याण के लिये कुछ भी उठा नहीं रखती हैं। तृतीय अङ्क में कुरङ्गी एवं अविमारक को परस्पर आलिङ्गनबद्ध करा देने में नलिनिका ने जिस चतुराई से काम लिया है वह शृङ्गारिक दृष्टि से नितान्त श्लाघनीय है।

"अविमारक" के आधार पर धात्री तथा नलिनिका का चरित्र चतुर एवं वाक्पटु दूती, विश्वसनीय सहेली तथा भावुक-हृदया परिचारिका के रूप में पूर्ण सफल रहा है।

दीपावली
वि. सं. २०४१

—महाप्रभुलाल गोस्वामी

विषय-सूची

पात्र-परिचयः

पुरुषाः—

सूत्रधारः—	प्रधाननटः, रङ्गमञ्चाध्यक्षः ।
राजा—	कुरङ्ग्याः पिता कुन्तिभोजः ।
कौञ्जायनः— भूतिकः—	कुन्तिभोजस्यामात्यौ ।
भटः—	कुन्तिभोजस्य प्रतिहारो जयसेननामा ।
अविमारकः—	सौवीरराजपुत्रः ।
विदूषकः—	अविमारकस्य सखा सन्तुष्टनामा ।
सौवीरराजः—	अविमारकस्य पिता ।
नारदः—	देवर्षिः ।
विद्याधरः—	अविमारकाय अंगरीयकप्रदाता ।

स्त्रियः—

नटी—	सूत्रधार-स्त्री, प्रधानसहायिका ।
देवी—	कुन्तिभोजस्य महिषी ।
कुरङ्गी—	कुन्तिभोजस्य पुत्री ।
सुदर्शना—	अविमारकस्य जननी काशिराजस्य महिषी ।
प्रतीहारी—	कुन्तिभोजस्य द्वारपालिका ।
चेटी—	कुरङ्ग्याः किङ्करी चन्द्रिकाख्या ।
धात्री—	कुरङ्ग्या उपमाता जयदा नाम ।
नलिनिका—	कुरङ्ग्याः परिजनः ।
मागधिका—	,,
विलासिनी—	,,
वसुमित्रा— हरिणिका—	देव्याश्चेट्यौ ।
सौदामिनी—	विद्याधरस्य प्रियतमा ।



भासनाटकचक्रे

अविमारकम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।

नान्द्यन्ते इति । देवद्विजनृपादीनां स्तुत्याशीरन्यतरपरं वचः नान्दी भवति । तथा चोक्तं मुनिना भरतेन—"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।" इति । सा च द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैर्युक्ता भवति । भासनाटकचक्रस्य परम्परायान्तु नान्द्यनन्तरमेव स्तुतिकरणव्यवहारः दृष्टिपथमवतरति ।

सूत्रधार इति । सूत्रधारः=प्रधाननटः । "नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ।।" इति लक्षणात् । "सूत्रधारः पठेन्नान्दीम्" इति नियमात्, वक्तीत्यादि योग्यक्रियाध्याहारो विधेयः ।

उत्क्षिप्तामिति । अन्वयः—सलिलनिधिजलात्,सानुकम्पम्, उत्क्षिप्ताम्, एक-

---

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है)

सूत्रधार—जिस भगवान् ने जिस पृथ्वी को दयापूर्वक समुद्र के जल से ऊपर निकाला, अपने एक दाँत के अग्रभाग पर जिसे संलग्न किया, युद्ध में

सम्भुक्तां प्रीतिपूर्वं स्वभुजवशगतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान् नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम्॥१॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये! इतस्तावत् ।

ंष्ट्राग्ररूढाम्, आजिमध्ये, आक्रान्ताम्, निहतदितिसुताम्, एकपादावधूताम्, प्रीतिपूर्वं, संभुक्ताम्, स्वभुजवशगताम्, एकचक्राभिगुप्ताम्, उच्छ्रितैकातपत्राम्, वसुधाम्, श्रीमान्, नारायणः, ते, प्रदिशतु ।

सलिलस्य = जलस्य निधिः = भण्डारः इति सलिलनिधिः समुद्रः, तस्य जलात् । सानुकम्पम् = अनुकम्पया सहितं यथा स्यात्तथा, कृपापूर्वमिति भावः । उत्क्षिप्तां = उपर्युत्थापितां । (उत्+क्षिप्+टाप् द्वितीयैकवचने रूपम्)। एकदंष्ट्राग्ररूढाम् = एकस्य दंष्ट्रस्य = दन्तस्य अग्रे = अग्रभागे रूढाम् = संलग्नाम् । (रुह्+क्त+टाप्+अम् इति रूढाम्)। आजिमध्ये = आजिः = समरः तस्य मध्ये अर्थात् समरे । आक्रान्ताम् = आक्रमणेन पराभूतीकृताम् । निहतदितिसुताम् = निःशेषेण हताः इति निहताः, दितेः सुताः इति दितिसुताः = राक्षसाः, निहताः दितिसुताः यस्याम् तादृशाम् अर्थात् राक्षसविहीनां । एकपादावधूताम् = एकेन पादेन = चरणेन अवधूताम् = परिमापिताम् । प्रीतिपूर्वम् = सस्नेह । संभुक्ताम् = सम्यक् प्रकारेण भुक्ताम् = पालिताम् । स्वभुजवशगताम् = निजबाहुबलेन वशमानीताम् = स्वाधीनीकृताम् । एकचक्राभिगुप्ताम् = एकेन चक्रेण = चक्राभिधेनास्त्रेण पालिताम् । उच्छ्रितैकातपत्राम् = व्यवर्तकछत्राम् । वसुधाम् = पृथिवीम् । श्रीमान् = श्रीः = लक्ष्मीः अस्ति अस्य इति श्रीमान् अर्थात् लक्ष्म्या सहितो नारायणः । ते = तुभ्यम् । प्रदिशतु = प्रददातु । पद्येऽस्मिन् भगवतो नारायणस्य मत्स्य-शूकर-नृसिंह-वामन-रामावताराणां संकेतः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ १ ॥

नेपथ्येति । नेपथ्यं = वेशपरिग्रहस्थानम्, 'अन्तर्जवनिकामाहुर्नेपथ्यम्'। केचित्तु

राक्षसों का संहार कर जिसकी रक्षा की, जिसे एक पांव से नापा, जिसे प्रेमपूर्वक पाला, अपने चक्रायुध से जिसका पालन किया वही लक्ष्मी सहित भगवान् नारायण तुम्हें वह एकछत्र पृथ्वी प्रदान करे ॥ १ ॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये ! इधर आओ ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअम्हि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! तव वदनजनितकौतूहलेन स्मितेन निवेदित इवान्तर्गतो भावः । ननु किञ्चिद् वक्तुकामासि ।

नटी—को एत्थ विम्हओ अय्यो भावण्णो त्ति । [कोऽत्र विस्मय आर्यो भावज्ञ इति ।]

सूत्रधारः—तेन हि स्वैरमभिधीयताम् ।

नटी—इच्छेमि अय्येण सह उय्याणं गन्तुं । अत्थि मे तहिं इत्थिआकरणीअं णिअमकय्यं । [इच्छाम्यार्येण सहोद्यानं गन्तुम् । अस्ति मे तत्र स्त्रीकरणीयं नियमकार्यम् ।]

(नेपथ्ये)

मेदिनीकारानुरोधेन नेपथ्यं रङ्ग इत्यर्थमाहुः ।

तव वदनजनितेति । तव मुखे कौतुकोत्पादकेन ईषद्धास्येन सूचित इव तव मनोगतो भावः । त्वम् किमपि वक्तुमिच्छसीति तव सस्मितं मुखमवलोक्यैव मयानुमितमिति तात्पर्यम् । स्वैरम्=स्वेच्छानुसारम् । अभिधीयताम्=उच्यताम् । स्त्रीकरणीयम्=नारीजनसम्पादनीयम् । नियमकार्यम्=आवश्यककृत्यम् । एतेन हि पुष्पवाटिकागमनस्यौचित्यं परिपुष्यते ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य, यह हूँ ।

सूत्रधार—तुम्हारे मुखमण्डल पर कुतूहल उत्पन्न करनेवाली मुस्कुराहट ने ही तुम्हारे मनोगत भावों को सूचित कर दिया है । तुम कुछ कहना चाहती हो ?

नटी—इसमें आश्चर्य ही क्या है; आर्य तो भावों के ज्ञाता हैं ही ।

सूत्रधार—तो अपनी इच्छा के अनुसार कह डालो ।

नटी—आर्य के साथ पुष्पवाटिका जाना चाहती हूँ । वहाँ मुझे स्त्रियों के लिए सम्पादनीय कुछ आवश्यक कृत्य करने हैं ।

(नेपथ्य में)

भूतिक ! त्वमप्युद्यानं गच्छ कुरङ्गीरक्षणार्थम् । मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः ।

सूत्रधारः—आर्ये ! ननु भवत्या श्रुतम्-उद्यानं गता राजपुत्रीति । तस्मात् सम्प्रति सर्वतः परिगुप्तानि भवन्त्युद्यानानि । प्रतिनिवृत्तायां राजसुतायां स्वैरं गमिष्यावः ।

नटी—जं अय्यो आणवेदि । [यदार्य आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः)

राजा—

इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः ।

मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः = अञ्जनाभिधः पर्वतः सम्प्रति उत्फुल्लपुष्पादि-कामोत्तेजकपदार्थैः मादकतामुपेतो वर्तते अतः कामयमानावस्थायां वर्तमानाया-स्तत्र गतायाः कुरङ्ग्याः विपदुपनिपातः सम्भवति, अतः तस्याः रक्षार्थम् भूतिकस्य पुष्पवाटिकायामुपस्थितिरावश्यकीति भावः ।

भवत्या श्रुतम् = त्वया आकर्णितम् । सर्वतः परिगुप्तानि = सर्वप्रकारेण अभिरक्षितानि । प्रतिनिवृत्तायाम् = उद्यानाद् राजभवनं गतायाम् ।

इष्टा मखा इति । अन्वयः—मखाः, इष्टाः, द्विजवराश्च, मयि, प्रसन्नाः, समदाः, नरेन्द्राः, भयरसम्, प्रज्ञापिता, एवंविधस्य, च, मे, मनःप्रहर्षः, नास्ति ।

भूतिक, तुम भी कुरङ्गी की रक्षा के लिए उद्यान जाओ । अंजनगिरि सम्प्रति मादक-भाव को उत्पन्न करने की अवस्था में है ।

सूत्रधार—आर्ये ! तुमने सुन लिया न कि राजकुमारी उद्यान में गई है। इसलिए उद्यान में इस समय कड़ा पहरा होगा । राजकुमारी के लौट जाने पर हम दोनों वहाँ चलेंगे ।

नटी—आर्य की जैसी आज्ञा । (दोनों जाते हैं)

(स्थापना)

(उसके बाद राजा सपरिवार प्रवेश करता है)

राजा—मैंने यज्ञ किये हैं, ब्राह्मण भी मुझ पर प्रसन्न हैं, गर्वशाली

एवंविधस्य च न मेऽस्ति मनःप्रहर्षः
कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ॥ २ ॥

केतुमति ! गच्छ देवीमानय ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति सपरिवारा देवी)

देवी—जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

राजा—देवि ! नित्यप्रसन्नमति ते मुखमद्यातिप्रसन्नमिव ।

हि, कन्यापितुः, सततम्, बहु, चिन्तनीयम् ।

मखाः = यज्ञाः । इष्टाः = सम्पादिताः । द्विजवराश्च = विप्राश्च । मयि = ममोपरि । प्रसन्नाः = सन्तुष्टाः । समदाः = सगर्वाः । नरेन्द्राः = राजानः । भयरसं = भयाख्यं रसम् । प्रज्ञापिताः = वेदिताः । एवंविधस्य = एवंस्वरूपस्य । च = पुनः । मे = मम । मनःप्रहर्षः = हार्दिकः प्रमोदः । नास्ति = नैव वर्तते । हि = यतः । कन्यापितुः = कुमारिकाजनकस्य । सततम् = सर्वदा । बहु = भृशम् । चिन्तनीयम् = शोचनीयम् । वर्तते इति शेषः ॥ २ ॥

अयं भावः—राजा कुन्तिभोजः स्वकीयं मानसं खेदं व्यञ्जयन् वक्ति यद् विपुलैश्वर्यशालितासाहाय्येन मया विविधाः यज्ञाः सम्पादिताः, प्रभूतदानदाक्षिण्यादिसाहाय्येन विप्राः अपि सन्तोषिताः, स्वीयशौर्यवीर्यातिशयसाहाय्येन गर्वशालिनो राजान अपि भीतिं प्रापिताः किन्तु एवंविधस्य ऐश्वर्यशालिनः दानशीलस्य वीरस्य च मे मनसि प्रमोदो नैवोत्पद्यते यतो हि अपरिणीतकन्यायाः पितुः अत्यधिकम् चिन्तनीयम् वर्तते ।

देवीम् = प्रधानराजमहिषीम् । जयतु = विजयताम् । नित्यप्रसन्नम् =

राजाओं को मैंने भयास्वादन करवाया है, किन्तु इतना सब-कुछ होने पर भी मेरे मन में प्रसन्नता नहीं है, क्योंकि कन्या के पिता को सदैव बहुत अधिक चिन्ता रहा करती है ॥ २ ॥

केतुमति ! जा, महारानी को बुला ला ।

प्रतिहारी—जैसी महाराज की आज्ञा । (जाती है)

(सपरिवार महारानी का प्रवेश)

देवी—महाराज की जय हो ।

राजा—देवि ! नित्य प्रसन्न रहनेवाला तुम्हारा मुखमंडल आज

किङ्कृतोऽयं प्रहर्षः।

देवी—णं महाराएण कहिदं–कुरङ्गीणिमित्तं ददो आअदत्ति। ता अइरेण जामादुअं पेक्खामि त्ति। [ननु महाराजेन कथितं—कुरङ्गीनिमित्तं दूत आगत इति। तदचिरेण जामातरं प्रेक्ष इति।]

राजा—तादृशमप्यस्ति। न तु तावत् क्रियते निश्चयः। एह्युपविश।

देवी—जं महाराओ आणवेदि। [यद् महाराज आज्ञापयति।]

(उपविशति।)

राजा–देवि ! विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति। कुतः,

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ ३ ॥

सततं मोदमापन्नमत एव सुन्दरम्। प्रहर्षः=हर्षातिरेकः। किङ्कृतः=कस्मात् कारणात् सञ्जातः। कथितम्=उक्तम्। दूतः=सन्देशवाहकः। अचिरेण=अतिशीघ्रम्। जामातरम्=कुरङ्ग्याः भाविनं पतिम्। प्रेक्षे=अवलोकयिष्यामि। अहमिति योजनीयम्।

विवाहाः=परिणयाः। बहुशः परीक्ष्य=सर्वतोभावेन निरीक्ष्य।

जामात्रिति। अन्वयः—जामातृसम्पत्तिम्, अचिन्तयित्वा,पित्रा, तु, स्वमनोभिलाषात्, दत्ता,नारी, क्षुब्धजला, नदी, इव, कूलद्वयं, मदेन, कुलद्वयम्, हन्ति।

जामातृसम्पत्तिम् = जामातुः=वरस्य, सम्पत्तिम्=धनम्। अचिन्त-

अत्यधिक प्रसन्न दिखाई दे रहा है। यह हर्षातिरेक आखिर किस कारण है ?

देवी—महाराज ने ही तो कहा है कि कुरङ्गी के लिए दूत आया है। अतः शीघ्र ही दामाद को देख सकूँगी।

राजा—वैसा तो है, पर अभी इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। आओ, बैठो।

देवी—महाराज की जो आज्ञा। (बैठती है)

राजा—देवि ! विवाह बहुत सोच-विचार कर ही किये जाते हैं, क्योंकि जामाता की सम्पत्ति को बिना विचारे अपनी इच्छा के अनुसार पिता यदि अपनी कन्या को जिस-किसी को सौंप दे तो वह कन्या पितृवंश एवं श्वसुरवंश

अये शब्द इव । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् । अयं हि,

बहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि समीप इव वर्तते ।
सत्सु हेतुसहस्रेषु कुरङ्ग्यां शङ्कते मतिः ॥ ४ ॥

देवी—हं उय्याणं गआ मे दुहिआ [हम्, उद्यानं गता मे दुहिता ।]

यित्वा = अविमृश्य । पित्रा = जनकेन । स्वमनोभिलाषात् = स्वेच्छानुसारेण । दत्ता = परस्मै अर्पिता । नारी = कन्या । क्षुब्धजला = प्रवाहशालिपानीया । नदीव = सरिदिव । मदेन = यौवनोन्मादेन । कूलद्वयम् = तटयुगलमिव । कुलद्वयम् = पितृवंशम्, श्वसुरवंशञ्चेति । हन्ति = विनाशयति । कन्यासम्प्रदानसमये वरस्य धनैश्वर्यादिकविचारेऽनवधानता न वर्त्तनीयेति भावः । उपजाति वृत्तम् ॥ ३ ॥

शब्द इव = ध्वनिरिव श्रूयते इति शेषः । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् = श्रूयमाणशब्दस्य बहूनि कारणानि संभवन्तीति भावः ।

बहुत्वादिति । अन्वयः – दूरसंस्थः, अपि, बहुत्वात्, समीप, इव, वर्त्तते । हेतुसहस्रेषु, सत्सु, मतिः, कुरङ्ग्याम्, शङ्कते ।

दूरसंस्थः अपि = दूरवर्ती अपि एष शब्दः । समीपं इव = निकटस्थ इव । वर्तते = भवति । हेतुसहस्रेषु = सहस्रकारणेषु । सत्सु = वर्त्तमानेषु । मतिः = मम बुद्धिः । कुरङ्ग्याम् = एतन्नामधेयायाम् स्वीयात्मजायाम् । शङ्कते = सन्दिह्यते । उच्चैरुच्चार्यमाणस्यास्य शब्दस्य यद्यपि सन्ति बहूनि कारणानि तथापि मे मनः स्वीयात्मजां कुरङ्गीम्प्रति अनिष्टाशंकया मोहयुतम् सञ्जायते इति भावः॥४॥

हम् = एवम्, स्वीकारोक्तिसूचकमव्ययम् ।

को नष्ट कर डालती है, अर्थात् बदनाम कर देती है, जिस प्रकार बाढ़ आने पर नदी अपने दोनों तटों को तोड़ डालती है ॥ ३ ॥

अरे, कुछ आवाज-सी सुनाई पड़ती है । इसके बहुत-से कारण हो सकते हैं । यह—

गम्भीर होने के कारण यह शब्द दूरस्थ होते हुए भी निकटस्थ ही प्रतीत हो रहा है । हजारों कारणों के होने पर भी कुरङ्गी के प्रति मेरा मन शङ्काशील हो रहा है ॥ ४ ॥

देवी—हाँ, मेरी पुत्री उद्यान गई है ।

राजा—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । एष आर्यकौञ्जायनो निवेदयितुमागतः ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(ततः प्रविशति कौञ्जायनः ।)

कौञ्जायनः—(सनिर्वेदम्) भोः ! कष्टममात्यत्वं नाम । कुतः,

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।

निवेदयितुम् = किमपि विज्ञापयितुम् । प्रवेश्यताम् = सम्मुखीक्रियताम् । सनिर्वेदम् = सखेदम् । कष्टम् = कष्टकरम् । अमात्यत्वम् = मन्त्रित्वम् । मन्त्रिणा विधेयं कर्म क्लेशावहमिति भावः ।

प्रसिद्धाविति । अन्वयः—कार्याणां, प्रसिद्धौ, जनः, पार्थिवबलं, प्रवदति, विपत्तौ, विस्पष्टं, सचिवमतिदोषं, जनयति । नृपतिभिः, श्रुतिसुखम्, उदारम्, समात्या, इत्युक्ताः, मतिबलविदग्धाः, कुपुरुषाः, सुसूक्ष्मं, दण्ड्यन्ते ।

कार्याणाम् = राज्यसञ्चालनकर्मणाम् । प्रसिद्धौ = निष्पत्तौ । जनः = प्रजाजनः । पार्थिवबलं = राज्ञः शक्तिम् । प्रवदति = प्रशंसति । विपत्तौ = कार्यस्य विघटने जाते सति । सचिवमतिदोषम् = मन्त्रिणो बुद्धिदोषम् । जनयति = उद्घाटयति । नृपतिभिः = राजभिः । श्रुतिसुखम् = श्रवणसुखदम् । उदारञ्च ।

राजा—कोई है ?

(प्रवेश करके)

भट—महाराज की जय हो। ये आर्य कौञ्जायन कुछ निवेदन करने आये हैं।

राजा—शीघ्र बुला लाओ।

भट—महाराज की जो आज्ञा। (जाता है)

(कौञ्जायन प्रवेश करता है)

कौञ्जायन—(खेद के साथ) ओह, मन्त्री का पद बहुत कष्टप्रद होता है। क्योंकि—कार्य सम्पन्न हो जाने पर लोग राजा के बल की प्रशंसा करते हैं और कार्य के सिद्ध न होने पर मन्त्रियों की बुद्धि का दोष बतलाते हैं। राजा

अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्डयन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥ ५ ॥

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि—उपस्थानगृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः (परिक्रम्य ससम्भ्रमम्) प्रसीदतु स्वामी ।

राजा—अलमलं सम्भ्रमेण । स्वैरमुपविश्य कथ्यतां वृत्तान्तः ।

कौञ्जायनः—शृणोतु स्वामी । ननु स्वामिनाहमुक्तः—स्वामिदारिकया सह गच्छोद्यानम् इति ।

अमात्याः = मन्त्रिणः । इत्युक्ताः = इत्यभिहिताः । मतिबलविदग्धाः = बुद्धिवैभवविहीनाः । कुपुरुषाः = कुत्सिताः, निन्दिताः पुरुषाः । सुसूक्ष्मम् = निभृतं यथा स्यात्तथा । दण्ड्यन्ते = दण्डिताः क्रियन्ते । कार्यं यदि सिद्धम् स्यात्तर्हि राज्ञो बलं प्रशस्यते, कार्यनाशे सति मन्त्रिणो बुद्धिदोषस्तत्र कारणत्वेनोद्घाट्यते, एवं प्रकारेणोभयथापि मन्त्रिणः प्रशंसार्हाः नैव भवन्ति । कर्णसुखार्थमुच्चार्यमाणेन मन्त्रिशब्देन मन्त्रिणो नैव गौरवेणातिरिच्यन्ते, अपि तु सूक्ष्मरूपेण दण्ड्यन्त एव । पद्येऽस्मिन् "रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलाः गः शिखरिणी"ति लक्षणात् शिखरिणी वृत्तम् ॥ ५ ॥

उपस्थानगृहे = साक्षात्कारगृहे । इयं भूमिः = इदं स्थानम् । अशङ्कनीया = न शङ्कार्हा । प्रसीदतु = हृष्यतु । स्वामी = महाराजः । सम्भ्रमेण = उद्वेगेन । अलमलम् = वारणार्थमव्ययमिदम् । स्वैरम् = स्वेच्छानुसारम् । वृत्तान्तः = समाचारः । स्वामिनाहमुक्तः = भवताहमादिष्टः । स्वामिदारिकया = राजकन्यकया कुरङ्गया ।

लोग मन्त्रियों को अमात्य शब्द से सम्बोधित कर उन्हें सूक्ष्मरूप से दण्ड ही दिया करते हैं ॥ ५ ॥

जयसेन ! महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा ? उपस्थान गृह में हैं । खैर, वहाँ जाने में शंका की कोई बात नहीं है । (घूमकर घबराहट के साथ) महाराज प्रसन्न रहें ।

राजा—घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं । यथेच्छ बैठकर समाचार सुनाइये ।

कौञ्जायन—महाराज सुनें । महाराज ने मुझसे कहा था कि राजकुमारी के साथ तुम उद्यान जाओ ।

राजा—एवमुक्तम्। पुनः किम्।

कौञ्जायनः—ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीडय निवर्तमानायां राजसुतायां दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दिनाननो निहतपतितसादिपुरुषः क्षितिरजोवगुण्ठिताव्यक्तभीममूर्तिमूर्तिमानिव पवनो दृष्टादृष्टलघुप्रचारः स्वामिसचिवानां वक्तव्यं जनयितुकाम इवैकपुरुषविशेषं प्रकाशयितुमिच्छन्निव मदान्धस्तं देशमभ्युपगतो हस्ती।

आक्रीड्य=विहरणं कृत्वा। निवर्त्तमानायाम्=गृहं प्रति प्रतिवर्त्तमानायाम्। दासीति—दासीनाम्=अनुचरीणाम्, दासानाम्=भृत्यानाञ्च, हासस्य=पारस्परिकहासपरिहासात्मकवार्त्तालापस्य, श्रवणेन, बृंहितेन=वर्द्धितेन, मदेन=उन्मादेन, स्रवता=च्यवमानेन, मदजलेन=दानवारिणा, आर्द्रम्=सिक्तम्, अत एव दुर्दिनम्=क्लेदावहम्, आननम्=मुखम् यस्य तादृशः। दासीनां दासानाञ्च पारस्परिकं सहासपरिहासकं वार्त्तालापं श्रुत्वा अत्यधिकं मत्तो भूत्वा मदजलप्रस्रवणेनार्द्राननं इति यावत्। निहताः=पतिताः सादिनः=पुरुषाः येन तादृशः। क्षितिरजोभिः=भूमिधूलिकणैः, अवगुण्ठिताः=आवृताः, अत एव अव्यक्ता=अस्फुटा, भीमा=भीषणा मूर्तिर्यस्य तादृशः। मूर्तिमान्=शरीरी, पवनः=वायुः, अतिद्रुतगामित्वात् मूर्तवायुत्वेनोत्प्रेक्षा। दृष्टः क्वचिद् दृश्यमानः, अदृष्टः=क्वचिददृश्यमानश्च, लघुः प्रचारो यस्य तादृशः। स्वामिसचिवानाम्=राजमन्त्रिणाम्, वक्तव्यं=निन्दाम्, जनयितुकामः=बोधयितुमिच्छुरिव। प्रकाशयितुम्=प्रकटयितुम्। इच्छन्निव=कामायमान इव। मदान्धः=मदमत्तः। अभ्युपगतः=उपागतः। हस्ती=गजः।

राजा—हाँ, ऐसा ही कहा था। फिर क्या?

कौञ्जायन—इसके बाद उद्यान जाकर वहाँ सुखपूर्वक घूम-फिर लेने के बाद जब राजकुमारी लौट रही थी, उसी समय दासी-दासों के हँसने-बोलने की आवाज को सुनकर अत्यधिक उन्माद के कारण चूते हुए मदजल से गीले मुखवाला एक मतवाला हाथी महावत को मारकर पृथ्वी की धूल से धूसरित भयानक मूर्ति के समान तथा अत्यधिक वेग से चलने के कारण शरीरधारी वायु के सदृश तथा राजमन्त्रियों की शिकायत को प्रकट करने की इच्छा रखनेवाले के समान वहाँ पहुँच गया।

राजा—तिष्ठतु विस्तरः। ननु कुशलिनी कुरङ्गी।

कौञ्जायनः—कथमकुशलिनी भवति विद्यमानेषु स्वामिभाग्येषु।

राजा—दिष्ट्या। यथेष्टमिदानीं ब्रूहि।

कौञ्जायनः—ततः प्रद्रुतेषु प्राकृतजनेषु हाहाकारमात्रप्रतीकारासु स्त्रीषु समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु उद्यानगतानां सर्वोपकरणानां परीक्षणाय मुहूर्तव्याक्षिप्ते मयि च नीतिगुप्ते सहसैव स्वामिदारिकाया यानमेव प्राप्तः स हस्ती।

तिष्ठतु = विरम्यताम्। विस्तरः = विस्तारेण कथनम्। कुशलिनी = कुशलम् अस्ति अस्याः इति कुशलिनी, निरापदेति भावः। विद्यमानेषु = वर्त्तमानेषु। स्वामिभाग्येषु = महाराजस्य भागधेयेषु, महाराजस्य भाग्यमेव एवं प्रबलम् वर्तते यस्माद्धि कुरङ्गयाः विपद्ग्रस्ततायाः शङ्कैव नैव कर्त्तुं शक्यते इति भावः। दिष्ट्या = भाग्येन, भाग्यवशादेव कुरङ्गी इदानीम् पर्यन्तम् संरक्षितेत्यर्थः। यथेष्टम् = यथारुचि। ब्रूहि = उच्यताम्।

ततः = तदनन्तरम्। प्रद्रुतेषु = पलायितेषु। प्राकृतजनेषु = सामान्यपुरुषेषु। हाहाकारमात्रप्रतीकारासु = अन्यम् प्रतीकारम् अनालोक्य हाहाकारं कुर्वतीषु। समाश्रितनिहतेषु = समाश्रिताः = प्राप्ताः, निहताः = व्यापादिताश्च, तेषु। सुपुरुषेषु = सेवकजनेषु। उद्यानगतानाम् = पुष्पवाटिकायाम् विद्यमानानाम्। सर्वोपकरणानाम् = निखिलवस्तूनाम्। परीक्षणाय = निरीक्षणाय। मुहूर्त्तव्याक्षिप्ते = मुहूर्त्तं यावत् आकुले सति। मयि = कौञ्जायने। सहसैव = अकस्मादेव। स हस्ती = गजः। स्वामिदारिकायाः = राजकन्यायाः। यानमेव = मनुष्यवाह्यम्

राजा—विस्तार छोड़ो। कुरङ्गी तो सकुशल है न?

कौञ्जायन—जब आपका भाग्य प्रबल है तो भला कुरङ्गी सकुशल क्यों न रहेगी?

राजा—अहोभाग्य! अब तुम जो कहना चाहते हो कहो।

कौञ्जायन—इसके बाद साधारण लोगों के भाग जाने पर, तथा अन्य कोई भी उपाय नहीं देखने से स्त्रियों के हाहाकार करने पर एवं कुछ लोगों के मारे जाने पर, उद्यानगत सामग्री को देखने के लिए जब मैं उधर गया तो वह हाथी राजकुमारी की सवारी पर टूट पड़ा।

देवी—हं इदो वरं किण्णु खु भविस्सदि। [हम्, इतः परं किन्तु खलु भविष्यति।]

राजा—अथ केन सनाथीकृता कुरङ्गी।

कौञ्जायनः—अथ कश्चिद् दर्शनी—(इत्यर्धोक्ते तिष्ठति)

राजा—यथेष्टमिदानीं ब्रूहि। निष्परिहारा व्यापदः।

कौञ्जायनः—अथ कश्चिद् दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् स्वामिदारिकायां हस्तिनाभिभूयमानायां तत्कालदुर्लभमभयं प्रदाय निर्विशङ्कः समासादितवांस्तं द्विपवरम्।

राजा—अनृणः स कारुण्यस्य। ततस्ततः।

शिबिकारूपम् यानम्। प्राप्तः = आसादितः।

केन सनाथीकृता = केन पुरुषेण संरक्षिता। कश्चित् = अज्ञातनामधेयः। व्यापदः = आपत्तयः। निष्परिहाराः = अनभ्युपायाः।

दर्शनीयः = अवलोकनीयः, सुन्दर इति भावः। अविस्मितः = अचकितः। तरुणोऽपि = युवा भूत्वापि। अनहङ्कारः = गर्वरहितः। शूरोऽपि = पराक्रमी भवन्नपि। दाक्षिण्यवान् = शीलसम्पन्नः। अभिभूयमानायाम् = परिपीड्यमानायाम्। तत्कालदुर्लभम् = तस्मिन् समये दुष्प्रापम्। अभयम् = अभयदानम्। निर्विशङ्कः = शङ्कारहितहृदय सन्। तम् = पूर्वोक्तम्। द्विपवरम् = गजश्रेष्ठम्।

देवी—हाय, इसके बाद क्या हुआ ?

राजा—फिर कुरङ्गी की रक्षा किसने की ?

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर (आधा कहकर रुक जाता है)।

राजा—कहते जाओ। विपत्ति के समय इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर होते हुए भी अचकित, युवक होते हुए भी गर्वरहित, पराक्रमी होते हुए भी सुशील तथा सुकोमल होते हुए भी शक्तिशाली युवक हाथी के द्वारा पीड़ित हो रही राजकुमारी को अभयप्रदान करता हुआ बिल्कुल निःशङ्क होकर हाथी के पास पहुँच गया।

राजा-उस युवकने दयालुता का ऋण चुका दिया। उसके बाद क्या हुआ?

कौञ्जायनः—ततस्तेन सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः सहसैव स्वामिदारिकां विहाय तमेव हन्तुकामः प्रतिनिवृत्तः स व्यालः।

देवी—कुसलो होदु। [कुशलं भवतु।]

राजा—ततस्ततः।

कौञ्जायनः—अथ तदनन्तरमभ्यागतेन भूतिकेन मया च पुनर्यानमारोप्य द्रुतमानीय कन्यान्तःपुरमेव प्रवेशिता स्वामिदारिका।

राजा—अहो महानयं प्रमादः। अथ भूतिकः किमर्थं नाभ्यागतः।

कौञ्जायनः—उक्तोऽहं भूतिकेन—गत्वेमं वृत्तान्तं स्वामिने कथय।

समासादितवान्=प्राप्तवान्। अनृणः=ऋणमुक्तः। कारुण्यस्य=दयालुतायाः।

सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः = सललितम् = लीलापूर्वकम्, सरभसम्=निर्विकारञ्च करतलेन यत् ताडनम्=प्रहारः, तेन प्ररुष्टः=क्रुद्धः। सः=पूर्वोक्तः। व्यालः=गजः। स्वामिदारिकाम्=राजकन्यकाम्। विहाय= परित्यज्य। तमेव=युवकमेव। हन्तुकामः=व्यापादयितुमिच्छुः। प्रतिनिवृत्तः= परावर्त्योद्यतोऽभूत्। कुशलम्=कल्याणम्। भवतु=जायताम्। स्वामिदारिका= राजदुहिता। अभ्यागतेन=अकस्मादागतेन। भूतिकेन=एतन्नामकेन राजसेवकेन। मया च=कौञ्जायनेन। पुनः यानमारोप्य=याने आरूढां विधाय। द्रुतमानीय=शीघ्रमानीय। कन्यान्तःपुरम्=राजकुमार्याः प्रासादम्। प्रवेशिता= सम्प्रापिता।

महानयं प्रमादः=महनीयं विपदागतासीत्। भूतिकेनोक्तः=तेन परामृष्टः।

कौञ्जायन—उसके बाद उस युवक ने खिलवाड़ के साथ एवं बिल्कुल निडर होकर अपने करतल से हाथी को पीटा जिससे वह हाथी रुष्ट होकर राजकुमारी को छोड़ युवक को ही मारने के लिए पलट पड़ा।

देवी—कल्याण हो उसका।

राजा—उसके बाद ?

कौञ्जायन—इसके बाद अचानक भूतिक के आ जाने पर मैंने एवं भूतिक ने पुनः राजकुमारी को सवारी पर बैठाकर तथा शीघ्र ले आकर कन्यान्तःपुर में पहुँचा दिया।

राजा-ओह, बहुत बड़ी भूल हो गई थी। अच्छा, भूतिक क्यों नहीं आये ?

कौञ्जायन—भूतिक ने मुझसे यह कहा कि जाकर यह समाचार महाराजः

अहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञात्वा शीघ्रमागमिष्यामीति ।

राजा—तेन हि सर्वं परीक्ष्यागमिष्यति भूतिकः कौञ्जायन ! कतरकुलसमुद्भूतः परव्यसनसहायः ।

कौञ्जायनः—स्वामिन् इह विसंवादयत्यात्मानमन्त्यजोऽहमिति ।

देवी—महाराअ ! अकुलीणो कहं एव्वं साणुक्कोसो भवे । [महाराज ! अकुलीनः कथमेवं सानुक्रोशो भवेत् ।]

राजा—किन्नु खलु भवेदेतत् ।

(ततः प्रविशति भूतिकः ।)

भूतिकः—(सविस्मयम्) अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः । अस्य

स्वामिने = महाराजाय । तस्य पुरुषस्य = पूर्वोक्तस्य युवकस्य । प्रवृत्तिम् = समाचारम् । अन्वयश्च = वंशञ्च । सर्वम् परीक्ष्य = युवकस्य कुलादिविषये सर्वम् परिज्ञाय । परव्यसनसहायः = परस्य = अन्यस्य, व्यसने = विपत्तौ, सहायः = साहाय्यं कर्त्तुम् प्रवृत्तः । कतरकुलसमुद्भूतः = कस्मिन् वंशे समुत्पन्नः । इह = कुलादिविषये । अन्त्यजः = नीचवर्णोद्भवः । इति = एवम् । आत्मानम् = निजरूपम् । विसंवादयति = गोपयति । अकुलीनः = असद्वंशोद्भवः । कथमेवम् = एतादृशः । सानुक्रोशः = दयाशीलः । भवेत् = स्यात् । किन्नु खलु भवेदेतत् = कथमेवं स्यादित्यर्थः ।

प्रच्छन्नरत्नता = प्रच्छन्नानि = गुप्तानि, रत्नानि = मणिकाञ्चनादीनि रत्नानि

से कहो । मैं उस युवक का समाचार तथा वंशादि का पता लगाकर शीघ्र आ जाऊँगा ।

राजा—तब तो भूतिक सब-कुछ पता लगाकर आयेगा । कौञ्जायन ! विपत्ति में दूसरों की सहायता करनेवाला वह युवक किस कुल में उत्पन्न हुआ है ?

कौञ्जायन—महाराज, वह अपने को अन्त्यज कहकर अपने असली वंश को छुपाना चाहता है ।

देवी—महाराज ! अकुलीन व्यक्ति इतना दयावान् कैसे हो सकता है ?

राजा—यह कैसे हो सकता है ।

(भूतिक का प्रवेश)

भूतिक—(आश्चर्य से) अह ! पृथ्वी में बहुत से रत्न छिपे पड़े हैं । इस पुरुष

तावत् पुरुषस्य निर्व्याजेन विक्रमेण मन्दीभूता इव मनस्विनां विक्रम-बुद्धयः। एकस्तु मे संशयः, किमर्थमात्मानमन्वयं चाच्छादयति । अथवा कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् । इह हि,

छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

यस्याम् तस्याः भावः । निर्व्याजेन = निष्कपटेन । विक्रमेण = पराक्रमेण । मनस्विनाम् = शूराणाम् । मन्दीभूताः = शिथिलीजाताः । किमर्थम् = कस्माद्धेतोः । आत्मानमन्वयम् = स्वम् स्वकीयम् नामकुलादिकञ्च । आच्छादयति = गोपयति, नैव प्रकटयितुमिच्छतीत्यर्थः । अथवा = सत्यमेतत् । सूर्यम् = भानुम् । हस्तेन = करेण। आच्छादयितुम् = आवृतं कर्त्तुम्। कः = कतमः । शक्तः = समर्थः । यथा हस्तेन सूर्यस्य पिधानमशक्यम् तथैव पराक्रमिणो जनस्य नामगोत्रादिगोपनमपि दुष्करमिति भावः ।

छन्ना भवन्तीति । अन्वयः—कथञ्चित्, स्वैः, कारणैः, गुरुजनैश्च, नियम्यमानाः, सत्पुरुषाः, भुवि, छन्नाः, भवन्ति, भूयः, परव्यसनम्, एत्य, विमोक्तुकामाः, पूर्वनियमम्, विस्मृत्य, विवृताः, भवन्ति ।

कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण । स्वैः कारणैः = आत्मानुभूतिमात्रविषयैः हेतुभिः । गुरुजनैश्च = पित्रादिभिः । नियम्यमानाः = निरुध्यमानाः । सत्पुरुषाः सज्जनाः । छन्नाः = गुप्ताः । भवन्ति = सन्तिष्ठन्ते । भूयः = पुनः । परव्यसनम् = अन्यस्य विपत्तिम् । एत्य = प्राप्य । विमोक्तुकामाः = विमोचयितुमिच्छवः। पूर्वनियमम् = प्राक्तनं नियमम् । विस्मृत्य । विवृताः = प्रकटिताः । भवन्ति ।

के निष्कपट पराक्रम से वीरों का बुद्धि-विक्रम मन्द पड़ गया है । मुझे एक ही सन्देह हो रहा है कि आखिर यह अपने को तथा अपने वंश को छिपा क्यों रहा है । अथवा सूर्य को हाथ से कौन ढँक सकता है ?

सज्जन लोग विशेष कारणों एवं गुरुजनों के नियन्त्रण से अपने को छिपाये रखते हैं किन्तु दूसरों को विपत्ति में देख उन्हें मुक्त करने के लिए अपने पूर्वनियम का परित्याग कर स्वतः प्रकट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी। किं ब्रवीषि--उपस्थानगृह इति। अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये अयं महाराजो देव्या सहास्ते। (उपगम्य) जयतु महाराजः।

राजा—देवि ! त्वमभ्यन्तरं प्रविश्याश्वासय कुरङ्गीम्। अहमप्यनुपदमागमिष्यामि।

देवी—जं महाराओ आणवेदि। [यन्महाराज आज्ञापयति।]

(निष्क्रान्ता)

राजा—को वृत्तान्तस्तस्य परार्थमनवेक्षितशरीरस्य।

भूतिकः–शृणोतु स्वामी। स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रक्रीडच निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैर्विमोह्य

सत्पुरुषाः जनाः पित्रादिगुरुजननियन्त्रणादिकेन च कियन्तं कालं यावत् कारणविरोधैरात्मानं गोपयन्तः तिष्ठन्ति किन्तु परान् विपदवस्थायामवलोक्य तेषामुद्धारार्थम् स्वत एव प्रकटिताः भवन्तीति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

देव्या सह = महाराज्ञ्या सह। उपगम्य = समीपं गत्वा।

अभ्यन्तरम् = अन्तःपुरम्। आश्वासय = सान्त्वय। कुरङ्गीम् = दुहिताम्। अनुपदम् = शीघ्रमेव। परार्थम् = अन्येषाम् कल्याणार्थम्। अनवेक्षितशरीरस्य = उपेक्षितदेहस्य। अन्येषामुपकाराय यः स्वीयशरीरमुपेक्षते तादृशस्येति भावः। सः = युवकः। मुहूर्तम् = कियत्कालं यावत्। तेन = मदमत्तेन। हस्तिना = गजेन।

जयसेन, महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा, उपस्थानगृह में हैं ? तब तो वहाँ जाने में शङ्का की कोई बात नहीं है। प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके) यहीं तो महाराज महारानी के साथ विराजमान हैं। (निकट जाकर) महाराज की जय हो।

राजा—देवि ! तुम अन्दर जाकर कुरङ्गी को सान्त्वना दो। मैं भी शीघ्र ही आ रहा हूँ।

देवी—जैसी महाराज की आज्ञा। (जाती है।)

राजा—दूसरों के लिए अपने शरीर की उपेक्षा करने वाले उस युवक का क्या समाचार है ?

भूतिक—महाराज सुनें। उस युवक ने कुछ देर तक उपेक्षा के साथ उस

लज्जित इव तेन कर्मणा महाजनप्रशंसामसहमानः समवनतशिरस्कः स्वैरं स्वमेवावासं गतः ।

राजा—भोः ! प्रीतोऽस्मि । अयं हि मे द्वितीयो लाभः ।

भूतिकः—अथ तदनन्तरमुपलभ्य हस्तिनीभिस्तं गजवरं सङ्ग्राह्येमां गजशालां प्रवेश्याहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञातुमन्यापदेशेन गतवानस्मि ।

राजा—अथ किं कृतो निश्चयः । श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति ।

प्रियवयस्येनेव = हृद्यसुहृदेव । प्रक्रीड्य = क्रीडां विधाय । निवर्त्तानुवर्त्तगतिविशेषैः = पश्चाद्गमनमनुवर्त्तनम् साक्षाद्गमनञ्च, तथाभूतैर्गतिविशेषैः । विमोह्य = मोहमापाद्य । तेन कर्मणा = गजपराभवरूपकार्येण । महाजनप्रशंसाम् = श्रेष्ठपुरुषकृतस्तुतिम् । समवनतशिरस्कः = नम्रीकृतमस्तकः ।

प्रीतोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि । द्वितीयो लाभः = अपरोपलब्धिः । दुहितुः सकुशलं गृहगमनं प्रथमो लाभः, तस्याः रक्षकस्य युवकस्य च सकुशलं गृहगमनं द्वितीयो लाभ इत्यर्थः ।

हस्तिनीभिः करिणीभिः । तम् = पूर्वोक्तम् । गजवरम् = हस्तिश्रेष्ठम् । संग्राह्य = वश्यं कृत्वा । इमां गजशालाम् = गजावासस्थलम् । प्रवेश्य = प्रापय्य । प्रवृतिम् = समाचारम् । अन्वयञ्च = कुलञ्च । ज्ञातुम् वेत्तुम् । अन्यापदेशेन = अन्यकार्यच्छलेन । किं कृतो निश्चयः = को निर्णयो विहितः ।

हाथी के साथ खेल किया, मानो अपने प्रिय मित्र के साथ खेल रहा हो। फिर आगे-पीछे हटकर उसने हाथी को लज्जित-सा कर दिया। इसके बाद लोगों द्वारा की गई प्रशंसा उसे अच्छी नहीं लगी और सिर झुकाये वह अपने घर को चला गया।

राजा—मुझे बहुत प्रसन्नता हुई, यह मेरे लिए दूसरा लाभ हुआ।

भूतिक—उसके बाद उस हाथी को हथिनियों की सहायता से पकड़वाकर गजशाला में भिजवा दिया और मैं उस पुरुष के वंश-वृत्त का पता लगाने चल पड़ा।

राजा—फिर तुमने क्या निर्णय लिया। हमने सुना है कि वह अन्त्यज है ?

भूतिकः—शान्तं शान्तं पापम् । नायं तादृशः केनापि कारणेनात्मा-नमन्वयं चाच्छादयति ।

राजा—अथ किं भवता परीक्षितम् ?

भूतिकः—किमत्र परीक्षितव्यम् ।

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च ।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ॥ ७ ॥

शान्तम् पापम् = नैवम् वक्तव्यमित्यर्थः । नायं तादृशः = सः युवकः कदापि अन्त्यजो भवितुं नैव शक्यः । केनापि कारणेन = कस्मादपि हेतुविशेषात् । आत्मानम् = स्वम् । अन्वयञ्च = वंशञ्च । अच्छादयति = गोपयति ।

अथ किं भवता परीक्षितम् = त्वया सर्वम् सम्यक् निरीक्षितम् किम् ? परीक्षितव्यम् = अन्वेष्टव्यम् ।

दैवं रूपमिति । अन्वयः—तस्य, दैवं, रूपम्, ब्रह्मजं वाक्यम्, क्षात्रं तेजः, सौकुमार्यम् बलम्, च, एवम्, सति, यदि, अस्य, अन्त्यजत्वम्, स्यात्, शास्त्र-मार्गेषु, अस्माकम्, खेदः, व्यर्थः ।

तस्य = युवकस्य । दैवम् = देवोपमम् । रूपम् = शारीरिकी छविः । ब्रह्मजम् = विप्रोपयुक्तम् । वाक्यम् = वचनम् । क्षात्रम् = क्षत्रियोचितम् । तेजः = शौर्यम् । सौकुमार्यम् = कोमलताम् । बलञ्च = शक्तिञ्च । एवं सति = अस्या-मपि स्थितौ । यद्यस्य = युवकस्य । अन्त्यजत्वम् = नीचवंशोद्भवत्वं सत्यं स्यात्तर्हि अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु = शास्त्राध्ययनविषये । कृतः खेदः = श्रमः ।

भूतिक—राम राम ! ऐसा न कहें । वह वैसा नहीं है । किसी विशेष कारण से वह अपने को एवं अपने वंश को छिपा रहा है ।

राजा—तुमने इसकी परीक्षा कर ली है क्या ?

भूतिक—इसमें परीक्षा की क्या बात है ?

उसके देवतुल्य रूप, ब्राह्मणों जैसी वाणी, क्षत्रियों जैसा तेज, कोमलता एवं शक्ति को देखकर भी यदि उसे अन्त्यज कहा जाय तो शास्त्राध्ययन में किया गया हमारा सारा परिश्रम बेकार ही है ॥ ७ ॥

राजा—किमस्त्यस्य कलत्रम् ?

भूतिकः—सर्वमस्ति । कलत्रं त्वयमभिनिविष्टः ।

राजा—यद्यपि स्त्रीदर्शनं परिहृतं, किमर्थं तस्य पिता न परीक्षितः ?

भूतिकः—दृष्टस्तत्रभवान् सत्पुत्रसम्पन्नः स हि,

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसो
ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः ।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो
मेघान्तर्गतरविवत् प्रमानुमेयः ॥ ८ ॥

व्यर्थः = वृथा भवेदिति । शास्त्रदृष्ट्या एतावद्गुणयुक्तो नरः कदापि अन्त्यजो भवितुन्नार्हतीति भावः । पद्येऽस्मिन् 'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः" इति लक्षणात् शालिनीछन्दः ॥ ७ ॥

कलत्रम् = पत्नी । अभिनिविष्टः = अत्यधिकः समादरशीलः । यद्यपि स्त्रीदर्शनम् परिहृतम् = यद्यपि परपत्न्या सह साक्षात्कारः शास्त्रवर्जितः । परीक्षितः = साक्षात्कृतः । तस्य पित्रा सह साक्षात्कारं विधाय तन्नामगोत्रादिकं कथन्न विज्ञातमिति भावः । दृष्टः = साक्षात्कृतः । स हि = तस्य युवकस्य पिता ।

व्यायामेति । अन्वयः—व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः, ज्याघातप्रचितकिणोल्बणप्रकोष्ठः, प्रच्छन्नः, अपि, अनुकृतिलक्ष्यराजभावः, मेघान्तर्गतरविवत्, प्रभानुमेयः ।

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः = व्यायामेन = नियतपरिश्रमेण, स्थिरः = दृढः, विपुलः = विस्तृतः, उच्छ्रितः = उन्नतः, आयतः = विशालः, अंसः = स्कन्ध-

---

राजा—क्या उसकी पत्नी भी है ?

भूतिक—सब है । पत्नी को तो वह बहुत चाहता है ।

राजा—यद्यपि परपत्नी के साथ मिलना वर्जित है, फिर भी उसके पिता से मिलकर तुमने सारी बातों का पता क्यों नहीं लगा लिया ?

भूतिक—उस सुपुत्र सम्पन्न पिता के दर्शन हुए थे । वह—

व्यायाम के कारण उनके कन्धे उन्नत, विशाल एवं दृढ़ हैं, मौर्वीकर्षण के कारण उनके हाथों में घावों के अनेक चिह्न हैं । वह यद्यपि अपने को छिपा रहे हैं किन्तु मेघमण्डल द्वारा आच्छादित सूर्य की तरह ही कान्तिमात्र से ही उनके राजभाव का पता चल जाता है ॥ ८ ॥

राजा—अलमेतावता प्रसङ्गेन । पुनरप्येषा परीक्षा क्रियताम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—अथेदानीं काशिराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम् ।

भूतिकः—स्वामिन् ! दूतशतान्यागतान्यागमिष्यन्ति च ।

न तत्र कर्तव्यमिहास्ति लोके
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् ।
सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥ ९ ॥

प्रदेशो यस्य तथाभूतः । ज्याघातप्रचितकिणोल्वणप्रकोष्ठः=ज्यायाः=मौर्व्याः, आघातेन=नियतकर्षणेन, प्रचितैः=समुद्भूतैः, किणैः क्षुण्णव्रणचिह्नैः, उल्वणः=भीषणः, प्रकोष्ठः=भुजप्रदेशो यस्य तथाभूतः । प्रच्छन्नोऽपि=नाम-वंशादिगोपनेन तिरोहितस्वरूपोऽपि । अनुकृतिलक्ष्यराजभावः=अनुकृत्या=आच-रणेन, लक्ष्यः=ज्ञेयः, राजभावः=नृपत्वम्, यस्य तादृशः । मेघान्तर्गतरविवत्=मेघमण्डलाच्छादितभानुवत् । प्रभानुमेयः=कान्त्या ज्ञेयः । तस्य स्कन्धेन, भुज-प्रदेशेन, प्रत्येकाचरणेन च तस्य राजभावः सूच्यते इति भावः । "त्र्याशाभिर्मन-जरगाः प्रहर्षिणीयम्" इति लक्षणात् पद्येऽस्मिन् प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ ८ ॥

एतावता प्रसङ्गेन=इयता परिकरेण । एषा परीक्षा=तदीयपरिचय-जिज्ञासा । काशिराजदूतं प्रति किं कर्त्तव्यम्=समागतस्य काशिराजसंदेशवाहकस्य कृते किं संदेष्टव्यम् ? दूतशतानि=बहवो दूताः । शतशब्दस्य बहुत्वेऽभिप्रायः ।

न त्रेतति । अन्वयः—इह लोके, तत्र, कर्त्तव्यम्, न,अस्ति । कन्यापितृत्वम्, बहुवन्दनीयम्, मल्लाः, पताकामिव, सर्वे, नरेन्द्राः, नरेन्द्रकन्याम्, तर्कयन्ति ।

इह लोके=अस्मिन् विषये । तत्र कर्त्तव्यम् नास्ति=न किमपि विधेयमस्ति ।

राजा—इतने विस्तार की आवश्यकता नहीं । फिर से इसका पता लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—अब काशिराज के दूत का क्या किया जाय ?

भूतिक—महाराज ! सैकड़ों दूत आये और आते ही रहेंगे ।

इस विषय में कुछ भी करना नहीं है, कन्या का पिता होना सौभाग्य की बात होती है । सभी राजकुमारी को उसी प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार वीर पुरुष विजय-ध्वज को चाहते हैं ॥ ९ ॥

राजा—कोऽभिप्रायः

भूतिकः—सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् । गुणबाहुल्यं तदात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः ।

राजा—युक्तमभिहितं भूतिकेन । कौञ्जायन ! किमर्थं तूष्णीं भूतः ।

कौञ्जायनः—स्वामिन् ! बहुष्वपि क्षत्रियेषु पूर्वसम्बन्धविशेषौ सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ अस्मत्सम्बन्धयोग्याविति स्वामिना चिन्तितौ । तत्र पूर्वमेव सौवीरराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः । स चास्माभिरतिबाला कन्येत्यपदेशमुक्त्वा सुपूजितो विसर्जितः । इदानीं तु काशिराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः । तत्र बलाबलचिन्तायां स्वामी प्रमाणम् ।

कन्यापितृत्वम् बहुवन्दनीयम् = भृशम् श्लाघनीयम् । यतो हि कन्यावतां पुरतः सर्वे राजानः याचकरूपेणोपस्थिताः भवन्ति अतः कन्यापितृत्वं प्रशंसनीयम् मल्लाः = योद्धारः । पताकामिव = विजयध्वजमिव । सर्वे नरेन्द्राः = राजानः । नरेन्द्रकन्याम् = राजकुमारीम् । तर्कयन्ति = स्वप्राप्याम् मन्यन्ते ।। ९ ।।

दाक्षिण्यम् = औदार्यम् । गुणबाहुल्यम् = नानागुणसमन्वितत्वम् । तदात्वम् = तात्कालिकीं स्थितिम् । आयतिम् = भविष्यम् । त्वरताम् = शीघ्रकारित्वम् ।

राजा—इसका क्या तात्पर्य ?

भूतिक—हर जगह उदारता नहीं बरतनी चाहिये । गुण की अधिकता, तात्कालिक स्थिति तथा भविष्य देखकर, जल्दीबाजी तथा दीर्घसूत्रता को छोड़कर देशकाल के अनुसार कार्य करना चाहिये ।

राजा—भूतिक ने ठीक कहा । कौञ्जायन ! तुम चुप क्यों हो ?

कौञ्जायन—महाराज ! बहुत से क्षत्रियों के रहने पर भी पुराने सम्बन्धी सौवीरराज एवं काशिराज आपके बहनोई होते हैं, अतः आपने सोचा था कि ये हमारे सम्बन्ध के योग्य हैं । सौवीरराज ने पहले ही अपने पुत्र के निमित्त दूत भेजा था । हम लोगों ने उसे आदर के साथ यह कहकर लौटा दिया कि कन्या अभी निरी बच्ची है । अब काशिराज ने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है । अब आप ही विचार करें कि सम्बन्ध कहाँ किया जाय ।

राजा—सम्यगुक्तं कौञ्जायनेन । भूतिक ! सर्वराजमण्डलमपोह्य द्वयोः स्थापितयोः कं प्रति विशेषः ।

भूतिकः—न भृत्यदूषणीया राजानः; स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम् ।

राजा—अलमुपचारेण । ब्रूहि को निश्चयः ।

भूतिकः—इदानीं तु न प्रत्याख्यातव्यम् । स्वामिन् ! सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ । अथ देव्या भ्रातेति सौवीरेन्द्रो गुणाधिकः ।

राजा—न खलु भवानस्मत्सङ्कल्पानभिवादकः ।

भूतिकः—उभयथानुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—भोः ! किन्नु खलु सौवीरेन्द्रेण पुनर्न दूतसम्पातः क्रियते ।

दीर्घसूत्रताम् = विलम्बेन कार्यकारित्वम् । देशकालाविरोधेन = देशकालानुसारेण । अतिबाला = अत्यल्पवयस्का । अपदेशमुक्त्वा = छलं कृत्वा । बलाबलचिन्तायाम् = केन सह सम्बन्धो विधेय इति तारतम्यभावविचारे । स्वामीप्रमाणम् = भवानन्तिमनिर्णायकः ।

अपोह्य = अपास्य, अगणयित्वा । द्वयोः = सौवीरराजकाशिराजयोः । भृत्यदूषणीयाः = भृत्यैर्निन्दनीयाः । उपचारेण = शिष्टाचारप्रयुक्तव्यवहारेण । असमत्सङ्क-

---

राजा—कौञ्जायन ने ठीक कहा है । भूतिक ! समस्त राजमण्डल को छोड़कर चुने गये इन दोनों में कौन-सा अच्छा रहेगा ?

भूतिक—भृत्यों को राजा की निन्दा नहीं करनी चाहिये, राजाओं का मन्त्रियों पर स्वामित्व होता है ।

राजा—शिष्टाचार की बातें छोड़ो । बोलो, क्या निश्चय है ?

भूतिक—अब तो प्रत्याख्यान नहीं करना है । महाराज ! सौवीरराज एवं काशीराज आपके समान रूप से बहनोई हैं परन्तु महारानी के भाई होने के नाते सौवीरराज गुणाधिक सिद्ध होते हैं ।

राजा—तुम कभी भी हमारे निश्चय का विरोध नहीं करते हो ।

भूतिक—दोनों प्रकार से अनुगृहीत हुआ ।

राजा—अजी, सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते हैं ?

भूतिकः—तत्रास्ति मे कश्चित् सन्देहः सुष्ठु परीक्ष्य वक्ष्यामीति नोक्तवानस्मि ।

राजा—ननु कुशली तत्रभवान् ।

भूतिकः—वदन्ति चारपुरुषाः—

न दृश्यते तत्रभवान् सपुत्रः
कार्याण्यमात्याः किल वर्तयन्ति ।
न विद्यते कारणमत्र किञ्चि-
न्न लभ्यते राजकुलप्रवेशः ॥ १० ॥

राजा—भोः ! किन्नु खलु भवेदेतत् ।

कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतो

स्यानभिवादकः = मदीयनिश्चयसमर्थकः । सुष्ठु = सम्यक्तया ।

न दृश्यते इति । अन्वयः—सपुत्रः, तत्रभवान्, न, दृश्यते, अमात्याः, किल, कार्याणि, वर्तयन्ति, अत्र, किञ्चित्, कारणम, न, विद्यते, न, लभ्यते, राजकुल-प्रवेशः ।

सपुत्रः = पुत्रेण युक्तः । तत्रभवान् = सौवीरराजः । न दृश्यते = नावलोक्यते । अमात्याः = मन्त्रिणः । कार्याणि = राजकर्माणि । वर्तयन्ति = सम्पादयन्ति । अत्र = राज्ञः सपुत्रस्यादर्शने । किञ्चित् = किमपि । कारणम् = हेतुः । न विद्यते = न वर्तते । न लभ्यते = न प्राप्यते राजकुलप्रवेश इति ॥ १० ॥

कामाहत इति । अन्वयः—कामाहतः, कुमतिभिः, सचिवैः, गृहीतः, रोगातुरः,

---

भूतिक—यहाँ मुझे कुछ सन्देह है । भलीभाँति पता लगाकर कहूँगा, इसीलिए महाराज से अब तक नहीं कहा था ।

राजा—सौवीरराज कुशलपूर्वक तो हैं न ?

भूतिक—गुप्तचरों का कहना है कि—

आजकल पुत्रसहित सौवीरराज दिखाई नहीं देते हैं, सभी कार्यों का सम्पादन मंत्री लोग ही करते हैं, कुछ कारण समझ में नहीं आता, किसी को भी राजकुल में प्रवेश करने नहीं दिया जाता है ॥ १० ॥

राजा—अजी, इसमें क्या हो सकता है ?

कामासक्त हैं या मंत्रियों ने उन्हें बन्दी बना लिया है ? रुग्ण हैं, या

रोगातुरः स्वजनरागमवेक्षते वा ।
शप्तो द्विजैर्व्रतमुपेत्य करोति शान्तिं
को वा भवेन्नरपतेर्गृहरोधहेतुः ॥ ११ ॥

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—कौञ्जायन ! किमिदानीं काशिराजदूतं प्रति कर्तव्यम् ।

कौञ्जायनः—एवं गते काशिराजदूतः पूजयितव्यः । बहुमुखा विवाहा यथेष्टं साध्यन्ते ।

राजा—अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।

(नेपथ्ये)

वा, स्वजनरागम् अवेक्षते । वा, द्विजैः, शप्तः, व्रतम्, उपेत्य, शान्तिम्, करोति, नरपतेः गृहरोधहेतुः, कः, वा, भवेत् ।

कामाहतः = मदनासक्तः । कुमतिभिः = दुर्बुद्धिभिः । सचिवैः = मन्त्रिभिः । गृहीतः = रहसि निरुद्धः । रोगातुरः = रुग्णः । वा स्वजनरागम् = आत्मीयजनानां प्रेम । अवेक्षते = परीक्षते । द्विजैः = विप्रैः । शप्तः = निग्रहवचसा कदर्थितः सन् । व्रतमुपेत्य = व्रतं विधाय । शान्तिं करोति = शापनिवर्तनार्थम् विधानमा-

---

आत्मीयजनों के प्रेम की परीक्षा ले रहे हैं या ब्राह्मणों द्वारा अभिशप्त होकर उसकी शान्ति का उपाय कर रहे हैं, आखिर उनके छिपने का क्या कारण हो सकता है ? ॥ ११ ॥

इसका पता शीघ्र लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—कौञ्जायन ! इस समय काशिराज के दूत का क्या किया जाय ?

कौञ्जायन—ऐसी स्थिति में काशिराज के दूत का आदर हो । विवाह में बहुत में से एक को चुनना पड़ता है ।

राजा—हाँ, मन्त्रियों की बुद्धि केवल कार्य की अपेक्षा रखती है, स्नेह की नहीं ।

(नेपथ्य में)

जयतु स्वामी, जयतु महाराजः। दश नालिकाः पूर्णाः।

भूतिकः—स्वामिन्! शेषमभ्यन्तरे चिन्तयिष्यामः। अतिक्र स्नानवेला। स्वामिदारिका चाश्वासयितव्या। महादेवी च चिरं प्रतीक्षते। महाजनोऽप्यस्मिन्नुपद्रवे स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति।

राजा—अहो महद्भारो राज्यं नाम। कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

प्रथमोऽङ्कः।

चरति। नरपतेः = राज्ञः। गृहरोषहेतुः = गृहे प्रच्छन्नरूपेणावस्थितो। को वा भवेत् = किं कारणं स्यात् ॥ ११ ॥

धर्मः प्रागेवेति। अन्वयः—धर्मः, प्रागेव, चिन्त्यः, स्वबुद्ध्या, सचिवमतिगतिः, प्रेक्षितव्या, रागद्वेषौ, प्रच्छाद्यौ, कालयोगेन, मृदुपुरुषगुणौ, कार्यौ लोकानुवृत्तम्, ज्ञेयम्, परचरनयनैः, मण्डलम्, प्रेक्षितव्यम्, इह, यत्नात्, आत्मा, रक्ष्यः, पुनः, रणशिरसि, सोऽपि, न, अवेक्षितव्यः।

महाराज की जय हो, महाराज की जय हो, दस बज गये।

भूतिक—महाराज! अन्य बातों पर बाद में विचार किया जायगा। स्नान का समय बीत रहा है। राजकुमारी को सान्त्वना भी देनी है। महारानी देर से प्रतीक्षा कर रही है। अन्य लोग भी महाराज के दर्शनार्थ इच्छुक हैं।

राजा—ओह, राज्य भी एक बहुत भारी बोझ होता है, क्योंकि—

पहले धर्म देखना होता है, अपनी बुद्धि से मन्त्रियों की गतिविधि देखनी पड़ती है, राग एवं द्वेष को छिपाना पड़ता है, कोमलता एवं कठोरता का व्यवहार समयानुसार करना पड़ता है। गुप्तचर रखना पड़ता है, प्रजाजन की रक्षा करनी पड़ती है, अपनी रक्षा करनी पड़ती है तथा युद्ध में अपनी भी उपेक्षा करनी होती है ॥ १२ ॥

(सबका प्रस्थान)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः भो ! ण जाणन्ति अवत्थाविसेसं इस्सरपुत्ता णाम। अदो तत्तभवं अविमारओ इसिसावेण कुलपरिब्भंसं अन्तअकुलप्पवासं अत्तणो

धर्मः = कर्त्तव्यं कर्म । प्रागेव = पूर्वमेव । चिन्त्यः = सम्यग्विचारणीयः । स्वबुद्ध्या = निजमत्यनुसारम् । सचिवमतिगतिः = मन्त्रिबुद्धिधारा । प्रेक्षितव्या = निरीक्षणीया । रागद्वेषौ = प्रेमकलहौ । प्रच्छाद्यौ = बलान्निग्रहीतव्यौ । कालयोगेन = समयानुसारेण । मृदुपरुषगुणौ = कुत्रचित्कोमलता कुत्रचित्कठोरता च । कार्यौ = विधेयौ । लोकानुवृत्तम् = लोकवृत्तम् । ज्ञेयम् = बोद्धव्यम् । परचरनयनैः = उत्तमगुप्तचरनेत्रैः । मण्डलम् = प्रजामण्डलम् । प्रेक्षितव्यम् = ध्येयम् । इह = लोके । यत्नात् = प्रयत्नपूर्वकं यथा स्यात्तथा । आत्मा = प्राणाः । रक्ष्यः = रक्षणीयः । पुनः = भूयः । रणशिरसि = युद्धे । सोऽपि = आत्मापि । न = नहि । अवेक्षितव्यः = चिन्तनीयः ॥ १२ ॥

इति कमलेश्वरी-टीकायां प्रथमोऽङ्कः

भोरिति । अवस्थाविशेषम् = स्वीयदशापरिवर्तनम् । ईश्वरपुत्राः = राजकुमाराः । अत्रेश्वरशब्दः स्वामिपर्याय । तथाहि—"स्वामी

विदूषक—अरे ! ये राजकुमार अवस्था-परिवर्तन को समझते ही नहीं। इसीलिए यह अविमारक—कुलभ्रंश, अन्त्यजकुल-प्रवास, अपना ज्ञान एवं

विण्णाणं गुरुजणं च अचिन्तअन्तो जदा हत्थिसम्भमदिअसे कुन्तिभोअदुहिआ कुरङ्गी दिट्ठा, तदप्पहुदि, अण्णादिसो विअ संवुत्तो । ही ही किं वहुणा, मए वि सह गोट्ठि णेच्छदि, सव्वआलं चिन्तअन्तो अहिरमदि । सच्चो खु लोअप्पवादो 'सङ्घआरिणो अणत्थ' त्ति । को-एत्थ सम्बन्धो । सा राअदारिआ सअं अन्तअ त्ति । अहं पि दाव बम्हणपरिवादं परिहरन्तो बम्हणकुलेसु परिब्भमिअ पच्छण्णो तत्तहोदो आवासं एव्व गच्छामि । [भोः ! न जानन्त्यवस्थाविशेषमीश्वरपुत्रा नाम । अतस्तत्रभवान् अविमारकः ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञानं गुरुजनं चाचिन्तयन् यदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरङ्गी दृष्टा, तदाप्रभृत्यन्यादृश इव संवृत्तः । ही ही किं बहुना, मयापि सह गोष्ठीं नेच्छति, सर्वकालं चिन्तयन्नभिरमते । सत्यः खलु लोकप्रवादः 'सङ्घचारिणोऽनर्था' इति । कोऽत्र सम्बन्धः । सा राजदारिका, स्वयमन्त्यज इति । अहमपि तावद् ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् ब्राह्मणकुलेषु परिभ्रम्य प्रच्छन्नस्तत्रभवत आवासमेव गच्छामि ।]

स्वीश्वरः पतिरीशिता" इत्यमरः । ऋषिशापेन = कस्यापि ऋषेर्निग्रहवचसा । हस्तिसंभ्रमदिवसे = यस्मिन् दिवसे मत्तो हस्ती कन्योद्यानं प्रविश्य तत्रस्थान् जनान् पीडयितुम् प्रवृत्तस्तस्मिन् दिवसे । अन्यादृशः = पूर्वापेक्षया विलक्षणः । संवृत्तः = संजातः । सह गोष्ठीं नेच्छति = जनैः सार्द्धम् नैव संसर्गमिच्छति । सर्वकालम् = सर्वदा । चिन्तयन्नभिरमते = चिन्तायुक्तमानसस्तिष्ठति । संघचारिणोऽनर्था. = विपत्तयः खलु संघचारिण्यः अर्थात् कश्चिदप्यनर्थो नैव कदापि एकाकी समापतति अपि तु संघे एव समापतति इति भावः । कोऽत्र सम्बन्धः = नैव कश्चन सम्बन्ध यस्मात्तु अनुरागोत्कर्षः समर्थ्येत । ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् = अयं ब्राह्मणः इति मन्तव्यमपाकुर्वन् ।

गुरुजन—सब कुछ भूलकर जभी से उस हस्तिसंभ्रम के दिन कुन्तिभोजपुत्री कुरङ्गी दीख गई, तभी से कुछ अन्य प्रकार का ही हो गया है । हः हः और क्या, मेरे साथ भी नहीं बैठना चाहता । हमेशा चिन्तित रहा करता है । लोगों का यह कहना ठीक ही है कि अनर्थ हमेशा समुदाय में ही आता है । इसमें क्या सम्बन्ध ? वह राजकुमारी है और आप स्वयं अन्त्यज हैं । मैं भी तब तक ब्राह्मण की शिकायत को बचाता हुआ ब्राह्मणों के घर का चक्कर लगाकर छिपकर उसी के आवास को जाता हूँ ।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—एदस्सिं अवत्थापरिब्भट्ठे राअउले अबहुकय्यदाए णअरं पेक्खिदुं णिग्गदम्हि । (परिक्रम्यावलोक्य) अयि एसो अय्यसन्तुट्ठो गच्छइ । होदु, एदेण सह हसन्ती मुहुत्तअं णिव्वेदं विणोदेमि । (उपसृत्योर्ध्वमवलोक्य) हला कोमुदिए । किं लेद्धो वम्हणो । किं भणासि-ण लभामि त्ति । [एतस्मिन्नवस्थापरिभ्रष्टे राजकुलेऽबहुकार्यतया नगरं प्रेक्षितुं निर्गतास्मि । अयि एष आर्यसन्तुष्टो गच्छति । भवतु, एतेन सह हसन्ती मुहूर्तकं निर्वेदं विनोदयामि । हला ! कौमुदिके ! किं लब्धो ब्राह्मणः । किं भणसि—न लभ इति ।]

विदूषकः—चन्दिए । किं एदं ! [चन्द्रिके ! किमेतत् ।]

चेटी—अय्य ! कञ्चि वम्हणं अण्णेसामि । [आर्य ! कञ्चिद् ब्राह्मणमन्विष्यामि ।]

विदूषकः—वम्हणेण किं कय्यं ! [ब्राह्मणेन किं कार्यम् ।]

चेटी—किमण्णं, भोअणत्थं णिमन्तेदुं । [किमन्यद्, भोजनार्थं निमन्त्रयितुम् ।]

अवस्थापरिभ्रष्टे=स्वदशायाः विमुक्ते । अबहुकार्यतया=कार्याधिक्यस्याभावेन । निर्वेदम्=मनःखेदम् । विनोदयामि=विनोदे परिवर्त्तयामि । भणसि=कथयसि ।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—इस अवस्थाच्युत राजकुल में कार्य की बहुलता के न रहने से नगर को देखने के लिए मैं निकल पड़ी हूँ । (चलकर तथा देखकर) अरे ! ये आर्य सन्तुष्ट जा रहे हैं । अच्छा, इनके साथ हँसकर कुछ देर के लिए मन की खिन्नता को विनोद में बदल लूँ । (नजदीक जाकर तथा ऊपर देखकर) सखी कौमुदिके ! क्या ब्राह्मण मिल गये ? क्या कहा ? नहीं मिले ?

विदूषक—चन्द्रिके ! यह क्या ?

चेटी—आर्य ! किसी ब्राह्मण को खोज रही हूँ ।

विदूषक—ब्राह्मण से क्या काम है ?

चेटी—और क्या ? भोजन के लिए निमन्त्रण देना है ।

विदूषकः--भोदि ! अहं को, समणओ। [भवति ! अहं कः, श्रमणकः।]

चेटी—तुवं किल अवेदिओ। [त्वं किलावैदिकः।]

विदूषकः--किस्स अहं अवेदिओ। सुणाहि दाव। अत्थि रामाअणं णाम णट्टसत्थं। तस्सि पञ्च सुलोआ असम्पुण्णे संवच्छरे मए पठिदा। [कस्मादहमवैदिकः। शृणु तावत्। अस्ति रामायणं नाम नाट्यशास्त्रम्। तस्मिन् पञ्च श्लोका असम्पूर्ण-संवत्सरे मया पठिताः।]

चेटी–जाणामि जाणामि। अय्यस्स कुलोइदो ईदिसो मेधाविभावो। [जनामि जानामि। आर्यस्य कुलोचित ईदृशो मेधाविभावः]

विदूषकः–णं केवलं सुलोआ एव, तेसं अत्थो वि मुणिओ। अण्णं च। अवरो विसेसो, बम्हणो दुल्लहो अक्खरञ्ञो अत्थञ्ञो अ। [न केवलं श्लोका एव, तेषामर्थोऽपि ज्ञातः। अन्यच्च। अपरो विशेषः, ब्राह्मणो दुर्लभोऽक्षरज्ञोऽर्थज्ञश्च।]

श्रमणकः = बौद्धभिक्षुः। अब्राह्मण इत्यभिप्रायः। अवैदिकः = वेदज्ञानहीनः। रामायणेति = रामायणे नाट्यशास्त्रत्वारोपात्साहित्याऽनभिज्ञता सूच्यते। तस्मिन् = रामायणे। असम्पूर्णे = असमाप्ते। संवत्सरे = वर्षे। "संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः" इत्यमरः। यावत्संवत्सरोऽपि न समाप्तस्तावदेव मया पञ्चश्लोकाः अधीता इत्यनेन मम बुद्धेः तीक्ष्णता अनुमेयेति भावः। मेधाविभावः = बुद्धिवैभवम्।

विदूषक अरी ! मैं क्या बौद्ध भिक्षु हूँ।

चेटी--तुम अवैदिक हो।

विदूषक—कैसे मैं अवैदिक हूँ ? तो सुनो-रामायण नामक नाट्यशास्त्र है। वर्ष पूरा भी नहीं हो पाया और उसके पाँच श्लोक मैंने पढ़ लिये।

चेटी--जानती हूँ, जानती हूँ। आपकी बुद्धि की यह तीक्ष्णता आपके खानदान में उचित ही है।

विदूषक--केवल श्लोक ही नहीं, उनका अर्थ भी मैंने पढ़ा है और मुझमें यह विशेषता है, अर्थ भी जाने और अक्षर भी, ऐसा ब्राह्मण बड़ी मुश्किल से मिल पाता है।

चेटी—तेण हि भणाहि किं णाम एदं अक्खरं। (नाममुद्रिकां दर्शयति) [तेन हि भण किं नामैतदक्षरम्।]

विदूषकः--(आत्मगतम्) अजाणमाणो किं भणिस्सं। (विचार्य) भोदु दिट्ठं। एवं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) भोदि! इदं अक्खरं मम पुत्थए णत्थि। [अजानानः किं भणिष्यामि। भवतु दृष्टम्। एवं तावद् भणिष्यामि। भवति! एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति।]

चेटी—जदि ण जाणासि, अदक्खिणं भुञ्जेहि। [यदि न जानासि, अदक्षिणं भुङ्क्ष्व।]

विदूषकः--भोदु भोदु। [भवतु भवतु।]

चेटी—पेक्खामि दाव अय्यस्स अङ्गलीअअं। [पश्यामि तावदार्यस्याङ्गुलीयकम्।]

विदूषकः—पेक्ख पेक्ख ममकेरअं दंसणीअं। [पश्य पश्य मदीयं दर्शनीयम्।]

चेटी—(गृहीत्वा) एसो भट्टिदारओ इदो एव्व आअच्छदि। [एष भर्तृदारक इत एवागच्छति।]

विदूषकः—(परावृत्यावलोक्य) कहिं कहि तत्तभवं। [कुत्र कुत्र तत्रभवान्।]

नाममुद्रिकाम् = नामाङ्किताङ्गुरीकम्। अजानानः = अनभिज्ञः। अदक्षिणं भुङ्क्ष्व = दक्षिणां विनैव भोजनं कुरु। भर्तृदारकः = राजकुमारः।

चेटी—अच्छा तो बोलो यह कौन-सा अक्षर है? (अँगूठी दिखलाती है)

विदूषक—(स्वगत) मैं अनजान क्या बताऊँ? (सोचकर) समझ गया, यही कह दूँ। (प्रकट) यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है।

चेटी— अगर नहीं जानते तो विना दक्षिणा के भोजन करो।

विदूषक—अच्छा, अच्छा।

चेटी—जरा आपकी अँगूठी देखूँ।

विदूषक—देखो-देखो, मेरी अँगूठी देखने योग्य है।

चेटी— (लेकर) यह राजकुमार इधर ही आ रहे हैं।

विदूषक—(मुड़कर देखकर) कहाँ? कहाँ है राजकुमार?

चेटी—विलोभिदो मुद्धवम्हणो। इमं जणसमूहं पविसिअ चउप्पहमग्गे वञ्चिअ गमिस्सं। (निष्क्रान्ता) [विलोभितो मुग्धब्राह्मणः। इमं जनसमूहं प्रविश्य चतुष्पथमार्गे वञ्चयित्वा गमिष्यामि।]

विदूषकः—(सर्वतो विलोक्य चन्दिए! चन्दि! कहिं कहिं चन्दिआ हा वञ्चिदो म्हि। गण्डभेददासीए सीलं आणन्तो वि अत्तणो भोअणविस्सम्भेण छालिदो म्हि (परिक्रम्य) भोअणं वि अलिअं चिन्तेमि। (अग्रतो विलोक्य) हन्त एसा धावइ। चिट्ठ चिट्ठ अधम्मिट्ठदासि! चिट्ठ। किं धावइ एव। जाव अहं वि धावामि। (धावति) मम पादा सिविणे हत्थिणा आसादिअमाणस्स विअ तहिं तहिं एव्व पडन्ति। हन्त कुम्भदासीए वुत्तन्तं तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [चन्द्रिके! चन्द्रिके! कुत्र कुत्र चन्द्रिका। हा वञ्चितोऽस्मि। गण्डभेददास्याः शीलं जानन्नप्यात्मनो भोजनविस्रम्भेण च्छलितोऽस्मि। भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि। हन्तैषा धावति। तिष्ठ तिष्ठ अधर्मिष्ठदासि! तिष्ठ। किं धावत्येव। यावदहमपि धावामि। मम पादौ स्वप्ने हस्तिनासाद्यमानस्येव तत्र तत्रैव पततः। हन्त कुम्भदास्या वृत्तान्तं तत्रभवते निवेदयिष्यामि।] (निष्क्रान्तः)

विलोभितः=छलितः। मुग्ध-ब्राह्मणः=सरलबुद्धिविप्रः।

गण्डभेददास्याः = गर्हितचरितायाः दास्याः। भोजनविस्रम्भेण = भोजनोपलब्धेर्विश्वासेन। छलितः=प्रतारितः। भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि= अनया दास्या प्रदत्तं भोजनस्य निमन्त्रणमपि मिथ्यैव संभवतीति भावः। अधर्मिष्ठदासि=पापिनि दासि। हस्तिना साद्यमानस्य=गजेन गृह्यमाणस्य।

चेटी—ठग लिया इस मूर्ख ब्राह्मण को। लोगों की इस भीड़ में मिलकर चौराहे पर निकल जाऊँगी। (जाती है)

विदूषक—(चारों ओर देखकर) चन्द्रिके, चन्द्रिके। कहाँ, कहाँ है चन्द्रिका। हाय, ठगा गया। इस दुश्चरित्र दासी का स्वभाव जानते हुए भी भोजन मिलने के विश्वास में ठगा गया। (चलकर) भोजन का निमन्त्रण भी शायद झूठा ही था। (आगे देखकर) हाय यही तो दौड़ी जा रही है। ठहर, ठहर री पापिनि दासी, ठहर। क्यों भागती जा रही है। मैं भी दौड़ता हूँ। (दौड़ता है) मेरे पाँव जहाँ के तहाँ ही पड़ रहे हैं मानो सपने में हाथी ने पकड़ लिया हो! हाय, इस अभागी दासी की सारी बातें मैं महाराज से कह दूँगा। (जाता है।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टोऽविमारकः ।)

अविमारकः—

अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गी
बालां भयाकुलविलोलविषादनेत्राम् ।
स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विबोधे
जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ।। १ ।।

तत्र तत्रैव पतितः = एकस्मिन्नेव स्थाने निपततः, नाग्रे सरतः ।

प्रवेशकः समाप्तः

अद्यापीति । अन्वयः -अद्यापि, हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम्, भयाकुलविलोल-विषादनेत्राम्, बालाम्, नित्यम्, स्वप्नेषु, उपलभ्य, पुनः, विबोधे । जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ।

अद्यापि = प्रभूतकालयापितेऽपि । हस्तिनः = गजस्य, करस्य = शुण्डादण्डस्य, शीकरैः = जलकणैः, "शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इत्यमरः । शीतलानि = शीतानि अङ्गानि यस्यास्ताम् = तथोक्ताम् । भयाकुलेति = भयेन = भीत्या, आकुले = व्याकुले, विलोलविषादे = विषादयुक्ते च नेत्रे = नयने यस्यास्ताम् । बालाम् = कन्याम् । नित्यम् = नियतरूपेण यथास्यात्तथा । स्वप्नेषु = शयनेषु । उपलभ्य = प्राप्य । पुनः = भूयः, बारम्बारमिति यावत् । विबोधे = जाग्रदवस्था-याम् । जातिस्मरः = पूर्वजन्मस्मरणशक्तिशाली । प्रथमजातिमिव = पूर्वजन्मेव । स्मरामि = चिन्तयामि । यथा जातिस्मरः पूर्वजन्म केवलं स्मरति न चोपलभते तथैवाहं हस्तिशुण्डादण्डाम्बुकणार्द्राम्, सर्वाङ्गशीतलाम्, भयाकुलविषादनेत्राम्, तां बालां शयनेषु साक्षात्कृत्य जाते जागरे ध्याने भावयामीति भावः उपमा-लङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥१॥

(प्रवेशक समाप्त)

(बैठे हुए अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—हाथी के शुण्डादण्ड से निकले हुए जलकण से सिक्त सर्व-गात्री, भयाकुल नयना, उस बाला को स्वप्न में प्राप्त करता हूँ, फिर जागने पर उसी प्रकार उसका ध्यान करता हूँ जिस प्रकार जातिस्मर लोग पूर्वजन्म को स्मरण करते हैं ॥१॥

अहो बलमनङ्गस्य । कुतः,

दृष्टिस्तदाप्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्
बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च स्मरन्ती ।
पाण्डुत्वमेति वदनं तनुतां शरीरं
शोकं व्रजामि दिवसेषु निशासु मोहम् ॥ २ ॥

अथवा अयुक्तमधृतित्वं पुरुषाणाम् । सङ्कल्प्यमानो हि विजृम्भते मदनः । तस्मादहमिदानीं न सङ्कल्पयामि । (स्मृत्वा) अहो तस्या रूप-

---

अहो बलमनङ्गस्य = आश्चर्यजनकः कामदेवस्य प्रभावः । तदेवोपपादयति—कुत इति ।

दृष्टिरिति । अन्वयः— तदाप्रभृति, दृष्टिः, अन्यद्, रूपम्, नेच्छति । स्मरन्ती, बुद्धिः, प्रहृष्यति, विषीदति, च । वदनम्, पाण्डुत्वम्, शरीरम्, च, तनुताम्, एति । दिवसेषु, शोकम्, निशासु, मोहम्, व्रजामि ।

तदाप्रभृति = ततःकालात् । यदा सा युवतिर्दृष्टेति भावः । दृष्टिः अन्यद्रूपम् = दृष्टयुवतिव्यतिरिक्तायाः कस्याश्चिदन्यस्याः रूपम् । नेच्छति = नैव कामयते । स्मरन्ती = प्रेमिकायाः ध्याने संलग्ना बुद्धिः । प्रहृष्यति = लाभाशया मोदमाप्नोति । विषीदति च = विघ्नाशंकया विषादयुक्ता च भवति । वदनम् = मुखम् । पाण्डुत्वम् = पीतवर्णत्वम् । शरीरम् = गात्रम् । च = पुनः । तनुताम् = कृशताम् । एति = प्राप्नोति । दिवसेषु = दिनेषु । शोकम् = अभीष्टानुपलब्धिजन्यं दुःखम् । निशासु = रात्रिषु च । मोहम् = मूर्च्छाम् । व्रजामि = प्राप्नोमि । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥२॥

अयुक्तम् = अनुपयुक्तम् । अधृतित्वम् = अधैर्यशालित्वम् । सङ्कल्प्यमानः = निश्चयीकृतः । मदनः = कामः । विजृम्भते = समेधते । रूपसम्पद् = सौन्दर्य-

---

अहो ! कामदेव कितना प्रबल है । क्योंकि—उस समय से मेरी दृष्टि दूसरे रूप को नहीं देखना चाहती है । मेरी बुद्धि उसके स्मरण से हर्ष तथा विषाद, दोनों प्राप्त करती है । चेहरा पीला तथा शरीर दुबला होता जा रहा है । दिन में शोक तथा रात्रि में मोह घेरे रहते हैं ॥२॥

अथवा–पुरुषों का अधैर्य ठीक नहीं है । संकल्प करने से ही काम में वृद्धि होती है, अतः मैं अभी संकल्प ही नहीं करूँगा । (स्मरण करके) अहा,

सम्पद्, रूपानुरूपं यौवनं, यौवनसदृशं सौकुमार्यम्। अत्र हि,

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः।
विहाय श्रीः कृष्णं जलशयनसुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति ॥ ३ ॥

कथमहं पुनरारब्धश्चिन्तयितुम्। किमिदानीं करिष्ये। मनश्च तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते। इह हि,

---

वैभवम्। रूपानुरूपं यौवनम् = यादृशं रूपं तादृशमेव यौवनम्। यौवनसदृशं सौकुमार्यम् = यादृशं यौवनं सौकुमार्यम्।

प्रतिच्छन्दमिति०। अन्वयः—धात्रा, युवतिवपुषाम्, प्रतिच्छन्दम्, किन्नु, रचितम्? वा, ताराधिपरुचिः, कथमपि, स्त्रीरूपम्, गता? वा, जलशयनसुप्तम्, कृष्णम्, विहाय, कृतभया, श्रीः, धृतान्यस्त्रीरूपम्, क्षितिपतिगृहे, निवसति?

धात्रा = परमेष्ठिना। युवतिवपुषाम् = कामिनिशरीराणाम्। प्रतिच्छन्दम् = प्रशस्यरूपम्। किन्नु रचितम् = विनिर्मितम्? वा = अथवा। ताराधिपरुचिः = ताराणामधिपः ताराधिपः = चन्द्रः, तस्य रुचिः = कान्तिः। कथमपि = केनापि प्रकारेण। स्त्रीरूपम् = योषित्स्वरूपताम् प्राप्ता? वा = अथवा। जलशयनसुप्तम् = समुद्रशय्यायाम् शयानम्। कृष्णम् = भगवन्तम् विष्णुम्। विहाय = त्यक्त्वा। कृतभया = भयमापन्ना। श्रीः = लक्ष्मीः। धृतान्यस्त्रीरूपम् = अन्यस्याः स्त्रियः रूपम् धृत्वा। क्षितिपतिगृहे = राज्ञः कुन्तिभोजस्य प्रासादे। निवसति = तदात्मरूपेण वासं करोति। उत्प्रेक्षालङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ ३ ॥

कैसा था उसका रूप! जैसा ही रूप वैसा ही यौवन, यौवन के अनुरूप ही सुकुमारता भी।

यहाँ—क्या उसे ब्रह्मा ने युवतियों के रूप का नमूना बनाया है? अथवा किसी तरह चन्द्रमा की कान्ति ने ही स्त्री का रूप धारण कर लिया है! या लक्ष्मी समुद्र में सोते हुए भगवान् विष्णु को छोड़कर भय से अन्य स्त्री का रूप धारण कर राजा के घर में निवास कर रही है ॥ ३ ॥

पुनः किस प्रकार मैंने सोचना प्रारम्भ कर दिया! अब क्या करूँगा? मन तो हमारी इच्छा से नहीं चलेगा। यहाँ पर,

प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते ।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

अथवा न शक्यं मनो जेतुम् । चिन्तयिष्याम्येनाम् । अहो सर्वेषां स्त्रीगुणानामेकत्र समवायः । (चिन्ताभिभूत उपविशति)

(ततः प्रविशति धात्री नलिनिका च)

धात्री—(सवितर्कम्) अहो सङ्कडदा कय्यस्स । जइ एवं करीअदि, राअउलं दूसिअं होइ । जदि ण करीअदि, अवस्सं सा विवज्जइ । मए अणेएहिं उवाएहिं विआरिदं च । मम वि सा अज्ज वि पच्छादेदि । अहव किं ताए पच्छादिदं । सा तदप्पहुदि सुमणावण्णअं णच्छदि,

---

प्रतिसिद्धमिति० । अन्वयः—प्रयत्नेन, प्रतिषिद्धम्, क्षणमात्रम्, न, वीक्षते । यथा, दुर्गुणितम्, शास्त्रम्, चिरम्, अभ्यस्तपथम्, याति ।

प्रयत्नेन = आयासेन । प्रतिषिद्धम् = वारितम् । मे मनः क्षणमात्रम् = अल्पकालं यावदपि । न वीक्षते = नावलोकयति । यथा = येन प्रकारेण । दुर्गुणितम् = सम्यक्तया नाधीतं शास्त्रम् । चिरम् = सदैव । अभ्यस्तपथम् = अशोभनमार्गम् । याति = गच्छति । यथा न सम्यगभ्यस्तं शास्त्रं कदापि अशोभनमार्गं परित्यज्य समीचीनमार्गमधिरोहति तथैव कुरङ्गीं प्रति आसक्तम्मे मनः प्रभूतायासेनापि न मुहूर्त्तमपि स्वमार्गमवलोकयति अर्थात् स्वाभाविकदशायाम् सन्तिष्ठते ॥ ४ ॥

स्त्रीगुणानाम् = स्त्रियः कृते ये ये गुणाः अपेक्ष्यन्ते तेषां तेषां गुणानाम् । समवायः = समूहत्वेनोपस्थितिः ।

प्रयत्नपूर्वक रोकने पर भी यह (मन) क्षण भर के लिए नहीं मानता है । यह बार-बार उसी को याद किया करता है जिस प्रकार अनभ्यस्त शास्त्र बराबर गलत रास्ते पर ही चला करता है ॥ ४ ॥

अथवा – मन को जीता नहीं जा सकता । उसके बारे में मैं सोचूँगा ही । अहा स्त्रियों के लिए अपेक्षित सारे के सारे गुण उसमें मौजूद हैं । (चिन्ताकुल होकर बैठा रहता है)

(धात्री तथा नलिनिका का प्रवेश)

धात्री—(कुछ सोचती हुई) ओह ! बड़ा कठिन कार्य है । यदि ऐसा करती हूँ

आहारं णाभिलसदि, ण रमदि गोट्ठीजणेण, दिग्घं णिस्ससदि, असम्बद्धं कहेदि, कहिदं ण जाणादि गूढं हसदि, विवित्ते रोदिदि, रोअं अवदिसदि, तणुआ होदि, पण्डभावं गच्छदि। एक्कं पि तहिं अच्छरिअं। एवं विधेहि अवत्थाविसेसेहि अत्तणो लज्जाए भएण कुलमाणेण बालभावेण अ एकस्सा वि किञ्चि ण मन्तेदि। [अहो सङ्कटता कार्यस्य। यद्येवं क्रियते, राजकुलं दूषितं भवति। यदि न क्रियतेऽवश्यं सा विपद्यते। मयानेकैरुपायैर्विचारितं च। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति। अथवा किं तया प्रच्छादितम्। सा तदाप्रभृति सुमनोवर्णकं नेच्छति, आहारं नाभिलषति, न रमते गोष्ठीजनेन, दीर्घं निःश्वसिति, असम्बद्धं कथयति, कथितं न जानाति, गूढं हसति, विविक्ते रोदिति, रोगमपदिशति, तन्वीभवति, पाण्डुभावं गच्छति। एकमपि तत्राश्चर्यम्। एवंविधैरवस्थाविशेषैरात्मनो लज्जया भयेन कुलमानेन बालभावेन च एकस्या अपि किञ्चिन्न मन्त्रयते।]

विपद्यते = विपन्ना भविष्यति। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति इदानीमपि सा मम समीपे स्वकीयमभिप्रायं सुस्पष्टतया न व्यनक्ति। प्रच्छादितम् = निगूहितम्। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। न रमते = नाह्लादमाप्नोति। असम्बद्धम् = अप्रस्तुतम्। विविक्ते = रहसि। रोगमपदिशति = रोगव्याजं करोति। पाण्डुभावम् = पीतवर्णत्वम्। लज्जया = ह्रिया। भयेन = भीत्या। कुलमानेन = कुलगौरवेण। बालभावेन च = बाल्यावस्थाजन्यमुग्धतया च। एकस्याः अपि = कस्याः अपि सख्याः समीपे। किञ्चित् = आत्मगतां वेदनाम्। न मन्त्रयते = शब्दैर्नैव प्रकटीकरोति।

तो राजकुल कलङ्कित होता है और यदि ऐसा नहीं करती हूँ तो निश्चय ही वह मर जायेगी। मैंने अनेक प्रकार से सोचकर देख लिया है। वह आज भी मुझसे छिपाती है अथवा उसने छिपाया क्या? उसे उसी दिन से फूलकी माला अच्छी नहीं लगती, खाना अच्छा नहीं लगता, सखी का साथ नहीं सुहाता, लम्बी साँस लेती है, बे-सिर पैर की बका करती है, कहा हुआ नहीं समझ पाती है, छिपाकर हँसती है, एकान्त में रोती है, रोग का बहाना बनाती है, दुबली होती जा रही है और पीली पड़ गई है। इतना होने पर भी आश्चर्य की एक बात है—इस अवस्था में भी वह भय, लज्जा, कुल-गौरव तथा बाल्य के चलते किसी से कुछ नहीं कहती है।

नलिनिका—किस्स ण मन्तेदि। मम सव्वं कहेदि। [कस्मान्न मन्त्रयते। मम सर्वं कथयति।]

धात्री—हला! जाणामि दे अभिप्पाअं, अवत्थं जाणिअ सव्वहा इमं एदेण जोजेहि त्ति। [हला! जानामि तेऽभिप्रायम्, अवस्थां ज्ञात्वा सर्वथेमामेतेन योजयेति।]

नलिनिका—किकु खु ईदिसो तादिसेहि गुणविसेसेहि अकुलीणो भवे। [किन्तु खल्वीदृशस्तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत्।]

धात्री—तहि च सन्देहो। सुदं च मए भट्टिणीए समीवे अमच्चेहि कं। भणिदं—ण सो तादिसो दुक्खुलजो त्ति। अत्ताणं केणवि कारणेण पच्छादेदि त्ति। [तत्र च सन्देहः। श्रुतं च मया भट्टिन्याः समीपेऽमात्यैः किल भणितं—न स तादृशः दुष्कुलज इति। आत्मानं केनापि कारणेन प्रच्छादयतीति।]

नलिनिका—को णु खु भवे। [को नु खलु भवेत्।]

धात्री—जदि सो सन्देहो णत्थि, को अण्णो अदिरित्तगुणो जामादुओ भवे। [यदि स सन्देहो नास्ति, कोऽन्योऽतिरिक्तगुणो जामाता भवेत्।]

कस्मान्न मन्त्रयते = नूनमेव आत्मगतं भावं विज्ञापयतीति भावः। अवस्थाम् = स्थितिम्। ज्ञात्वा = समीक्ष्य। इमाम् = राजकन्याम्। एतेन = राजकुमारेण। योजय = मेलय। भट्टिन्याः = राज्याः। भणितम् = कथितम्। दुष्कुलजः = नीच-

---

नलिनिका—क्यों नहीं कहती है! मुझसे तो सब कुछ कहती है।

धात्री—हाँ री, मैं तुम्हारा मतलब समझती हूँ। अवस्था देखकर उसे उस पुरुष से मिला दो।

नलिनिका—क्या ऐसा व्यक्ति इस प्रकार के गुणों से युक्त होता हुआ भी भला अकुलीन हो सकता है?

धात्री—उसमें सन्देह है, मैंने महारानी के पास मंत्रियों से सुन रखा है कि वह उतने नीच कुल का नहीं है। अपने को वह किसी कारण छिपा रहा है।

नलिनिका—वह कौन हो सकता है?

धात्री—यदि यह सन्देह नहीं है तो कौन इससे अधिक गुणवान जामाता मिल सकता है।

(नेपथ्ये)

यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ।
ध्रुवमिह कुलमस्य श्रोष्यसि प्राप्तकाले
त्यज कुलगतशङ्कां साध्यतां स्वन्तमेतत् ॥ ५ ॥

धात्री—हला ! केण खु भणिदं [हला ! केन खलु भणितम् ।]

नलिनिका—एत्थ को वि ण दिस्सदि । [अत्र कोऽपि न दृश्यते ।]

धात्री—पहिट्ठरोमकूवं मे सरीरं । असंसअं दव्वेण भणिदं । अहं पुण जाणामि ण एसो केवलो माणुसत्ति । [प्रहृष्टरोमकूपं मे शरीरम् ।

वंशोत्पन्नः । सः सन्देहः = चाण्डालत्वशङ्का । अतिरिक्तगुणः = इतोऽधिकगुणवान् ।

यदि चेति० । अन्वयः—यदि, कुलविकलानाम्, विभवरूपज्ञानसत्वादयः स्युः, च, वृत्तिशुद्धिः, न, वर्त्तते (तर्हि) इह, प्राप्तकाले, ध्रुवम्, अस्य, कुलम्, श्रोष्यसि, (अतः) कुलगतशङ्काम्, त्यज, स्वन्तम्, साध्यताम् ।

कुलविकलानाम् = नीचवंशोद्भवानाम् । विभवरूपज्ञानसत्वादयः = समृद्धि-सौन्दर्यशास्त्रज्ञानशक्त्यादयो गुणाः । यदि स्युः = भवेयुः । किन्तु वृत्तिशुद्धिः = निर्मलचरित्रता । न = न वर्तते । तर्हि इह = एतद्विषये । प्राप्तकाले = समये समागते सति । ध्रुवम् = निश्चयेन । अस्य = कुमारस्य । कुलम् = सद्वंश-प्रसूतत्वम् । श्रोष्यसि = आकर्णयिष्यसि । अतः कुलगतशङ्काम् = कस्मिन् कुलेऽय-मुत्पन्न इति विवेकतारतम्यम् । त्यज = परिहर । स्वन्तम् साध्यताम् = तथा प्रयतनीयम् यथाऽनयोः सङ्गमः सुखावसानो भवेदिति । मालिनीवृत्तम् ॥५॥

प्रहृष्टरोमकूपम् = सञ्जातपुलकम् । मे = मम । शरीरम् = गात्रम् । असंशयम् =

(नेपथ्य में)

यदि सम्पत्ति, रूप, ज्ञान, बल आदि हो भी जाय, फिर भी अकुलीनों का चरित्र निर्मल नहीं हुआ करता है । निश्चय ही आप इसके कुल के विषय में समय आने पर सुन लेंगे । इस कार्य का अन्त भला होगा । यह कार्य अवश्य करो ॥ ५ ॥

धात्री—अरी, यह किसने कहा ?

नलिनिका—यहाँ तो कोई भी नहीं दिखाई दे रहा है ।

धात्री—मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये है । निश्चय ही दैव ने कहा है । मैं

असंशयं देवेन भणितम् ! अहं पुनर्जानामि नैष केवलो मानुष इति ।]

नलिनिका—गदो तस्स कुलसन्देहो । अम्हाणं वअणं करेदि ण करेदि त्ति चिंतेमि । (विचिन्त्य) धण्णो खु सो जणो इमं एवं उम्मादेदि । किं बहुणा, सअं कामदेवो वि भट्टिदारिआए रूवं पेक्खिअ किलिस्सिदि । तेण सो वि किलिस्सिदि त्ति तक्केमि । [गतस्तस्य कुलसन्देहः । अस्माकं वचनं करोति न करोतीति चिन्तयामि । धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति । किं बहुना, स्वयं कामदेवोऽपि भर्तृदारिकाया रूपं प्रेक्ष्य क्लिश्यते । तेन सोऽपि क्लिश्यत इति तर्कयामि ।]

धात्री—हला ! एसो तस्स आवासो, जं तदा हत्थिसम्भमदिअसे कोदूहलेण आअदम्ह । [हला ! एष तस्यावासः, यं तदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कौतूहलेनागते स्वः ।]

नलिनिका—हला ! अहो दस्सणीअं किदोवहारं च दुवारमुहं हला ! एहि पविसामो । [हला ! अहो दर्शनीयं कृतोपहारं च द्वारमुखम् । हला ! एहि प्रविशावः ।]

धात्री—हला ! कहिं भट्टिदारओ किं भणासि-चउस्साले वत्तदि त्ति । [परिक्रम्यावलोक्य] अअं अम्हाणंभट्टिदारओ । एको एव किं वि चिन्तअन्तो चिठ्ठई । [हला ! कुत्र भर्तृदारकः । किं भणसि--चतुःशाले वर्तत इति ।

निस्सन्देहम् । भर्तृदारिकायाः = कुरङ्ग्याः । प्रेक्ष्य = अवलोक्य । क्लिश्यते = दुःख्यति । कृतोपहारम् = सुसज्जितम् । चतुःशाले = सज्जवने । (बहिर्गृहे) ।

जानती हूँ यह निरा मनुष्य ही नहीं है ।

नलिनिका—इसके कुल के विषय में जो सन्देह था वह तो दूर हो गया । देखें हमारी बात मानता है या नहीं । धन्य है वह जिसके लिए यह पागल की तरह कर रहा है । और क्या, स्वयं कामदेव भी राजकुमारी के रूप को देखकर दुःखी हो जाय । इसीलिए यह भी दुःखी हो रहा है ऐसा मैं सोचती हूँ ।

धात्री—अरी, यही उसका निवास स्थान है, जहाँ हाथी के उपद्रव वाले दिन हम आई थीं ।

नलिनिका—इसका दरवाजा कितना सुन्दर और सुसज्जित है ! आओ, प्रवेश करें ।

धात्री—अरी, राजकुमार कहाँ हैं ? क्या कहा—चतुःशाल में हैं ? यहीं

अयमस्माकं भर्तृदारक एक एव किमपि चिन्तयंस्तिष्ठति ।]

नलिनिका—हला ! णं पिविसामो । [हला ननु प्रविशावः ।]

धात्री -एवं करेम्ह । (प्रविश्य) सुहं अय्यस्स । [एवं कुर्वः । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—अहो तस्या रूपसम्पत् ।

धात्री—(साकुलम्) किण्णु हु भवे । सुहं अय्यस्स ! [किन्नु खलु भवेत् । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः

धात्री—अम्मो पिप्पलवदि । [अम्मो विप्रलपति ।]

अविमारकः—

मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् ।

रूपसम्पत् = सौन्दर्यवैभवम् ।

उर इति० । अन्वयः—उरः, स्तनतटालसम्, तनुः, जघनभारखिन्ना, मुखम्, नयनवल्लभम्, प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्, भयेऽपि, यदि, तादृशम्, नयनपात्रपेयम्, वपुः, कथन्नु, तद्, सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम्, भवेत् ।

यस्याः उरः = वक्षः प्रदेशः । स्तनतटालसम् = कुचभारभराक्रान्तम् । तनुः = शरीरम् । जघनभारखिन्ना = नितम्बभारपीडिता । मुखम् = आननम् । नयन-

---

तो हमारे राजकुमार कुछ सोचते हुए बैठे हैं ।

नलिनिका—अरी, चलो, चलें ।

धात्री—ऐसा करें (प्रवेश करके) आर्य आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—अहा, कैसा विलक्षण था उसका रूप !

धात्री—(आकुलता के साथ) जाने क्या होता है । आप आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—छाती स्तन के भार से अलस है, शरीर जंघाओं के भार से खिन्न है ।

धात्री—अरे यह तो विप्रलाप कर रहा है ।

अविमारक—मुख नेत्र को शोभा से परिपूर्ण है, अधर स्वाभाविक रक्तिमा से भरा है ।

धात्री—धण्णो खु सो जणो इमं एवं उन्मादेदि। [धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति।]

अविमारकः—

भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः

धात्री—सुत्थिदं कय्यं [सुस्थितं कार्यम्।]

अविमारकः—

कथन्नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत् ॥ ६ ॥

धात्री—सा एव इमं उम्मादेदि। [सैवेममुन्मादयति।]

नलिनिका—सुट्ठु भणिदं–एसो वि किलिस्सदि त्ति। [सुष्ठु भणितम्–एषोऽपि क्लिश्यत इति।]

धात्री—सुट्ठु विञ्ञादं तुए। सुहं अय्यस्स। [सुष्ठु विज्ञातं त्वया। सुखमार्यस्य।]

वल्लभम् = नेत्राभिरामम्। प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् = स्वाभाविकरक्तवर्णेन बिम्बोपमेन चाधरेण युक्तम्। भयेऽपि = भयोत्पादकाऽवसरेऽपि। यदि तादृशम् = तथाभूतम्। नयनपात्रपेयम् = नेत्ररूपपात्रेणास्वाद्यमानम्। वपुः = शरीरम्। तद् = वपुः। सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् = सुरतान्तरे = रतिक्रीडासमये, प्रचुरविभ्रमं = प्रभूतविलासोपेतम्। कथन्नु = कीदृशन्नु। भवेत् = स्यात्। भयावसरेऽपि यद् वपुः तादृशं रमणीयकं, तद् वपुः सुरतसमये नानाविलाससंवलितत्वे कीदृशं रमणीयं भवेदिति मनोमात्रकल्पनीयमिति भावः। पृथ्वीछन्दः ॥ ६ ॥

धात्री—धन्य है वह, जिसके लिए यह पागल हो रहा है।

अविमारक—भय के समय भी नयनरूपी पात्र से पेय उसका शरीर ऐसा है तो—

धात्री—काम बन गया।

अविमारक—रतिक्रीडा के समय नानाविलासों से युक्त उसका मुखमण्डल कितना सुन्दर होगा? ॥ ६ ॥

धात्री—वही इसे पागल बना रही है।

नलिनिका—ठीक कहती हो, यह भी दुःख में है।

धात्री—तुमने ठीक समझा। आर्य आनन्द से तो हैं?

अविमारकः—(विलोक्य सव्रीडम्) स्वागतम् भवतीभ्याम् ।

उभे—अवि सुहं । [अपि सुखम् ।]

अविमारकः—भविष्यति वां दर्शनेन ।

धात्री—अय्य ! किं चिन्तीअदि । [आर्य ! किं चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति । शास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—किं णाम एदं रमणीअं सत्थं विवित्थे चिन्तीअदि । [किं नामैतद् रमणीयं शास्त्रं विविक्ते चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति ! योगशास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—(सस्मितम्) पडिग्गहिदं मङ्गलवअणं । जोअसत्थं एव्व होदु । [प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनम् । योगशास्त्रमेव भवतु ।]

अविमारकः—(आत्मगतम्) को नु खलु वाक्यार्थः । अन्यदप्यभिलाषवशादन्यथा सङ्कल्पयामि (प्रकाशम्) किमभिप्रेतं भवत्याः ।

उन्मादयति = प्रमत्त इवाचरति । सव्रीडम् = सलज्जम् । प्रतिगृहीतम् = स्वीकृतम् । निष्ठितम् = सिद्धम् । विविक्ते = एकान्ते । कोऽपि जन इति राजकुमार्या तात्पर्यम् ।

अविमारक—(देखकर लज्जापूर्वक) आप लोगों का स्वागत है ।

दोनों—आप सुखपूर्वक तो हैं ?

अविमारक—आपके दर्शन से मैं भी सानन्द हो जाऊँगा ।

धात्री—आर्य ! आप क्या सोच रहे हैं ?

अविमारक—देवि ! मैं शास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ ।

धात्री—कौन-सा वह रमणीय शास्त्र है जिसकी चिन्ता आप एकान्त में कर रहे हैं ?

अविमारक—देवि ! मैं योगशास्त्र की चिन्ता-कर रहा हूँ ?

धात्री—(मुस्कुराहट के साथ) इस मंगलवचन को मैं मानती हूँ । योगशास्त्र ही हो ।

अविमारक—(स्वगत) इसका क्या मतलब ? दूसरी वस्तु को भी मैं अभिलाषावश दूसरे ढंग से सोचने लगता हूँ । (प्रकट) आपका क्या अभिप्राय है ?

धात्री—जोअं इच्छन्तीओ आअदम्ह। अणुमदो अय्येण जोओ त्ति णं णिट्ठिदं कय्यं अम्हाअं राअउले विवित्ते अवआसे। तहिं पि को वि जणो अहिअदरं जाअं चिन्तअन्तो अच्छदि। तेण सह तहिं एव अय्येण सुट्ठु जोअविहाणं चिन्तीअदु त्ति। [योगमिच्छन्त्यावागते स्वः। अनुमत आर्येण योग इति ननु निष्ठितं कार्यमस्माकं राजकुले विविक्त अवकाशे। तत्रापि कोऽपि जनोऽधिकतरं योगं चिन्तयन्नस्ति। तेन सहे तत्रैवार्येण सुष्ठु योगविधानं चिन्त्यतामिति।

अविमारकः—कथमद्यापि सावशेषाणि मे भाग्यानि। (आसनादुत्थाय) भवति! पुनर्दत्ता इव मे प्राणाः। कुतः,

तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं मनोज्ञं
सौम्यप्रकारमतितीक्ष्णमवेक्ष्य वक्त्रम्।
उन्मादमभ्युपगतोऽस्मि चिरं भवत्यो-
र्वाक्यामृतेन पुनरद्य कृतः ससंज्ञः॥ ७॥

तस्या० इति। अन्वयः—भयाकुलितदृष्टिविषम्, सौम्यप्रकारम्, अतितीक्ष्णम्, तस्याः, वक्त्रम्, अवेक्ष्य, चिरम्, उन्मादम्, अभ्युपगतः, अस्मि। अद्य, पुनः, भवत्योः, वाक्यामृतेन, ससंज्ञः, कृतः।

भयाकुलितदृष्टिविषम् = भयेन = हस्तिसंभ्रमसमये समुद्भूतया भिया, आकुलिता = वैकल्यमापन्ना, दृष्टिरेव विषम् = हालाहलम्, प्राणापकर्षकम् यत्र तादृशम्। सौम्यप्रकारम् = अतिशयहृद्यरूपम्। अतितीक्ष्णम् = उत्कृष्टभ्रूनासिकागण्डकपोलादिभिर्युक्तमतिरमणीयम्। तस्याः = राजकुमार्याः। वक्त्रम = आननम्।

धात्री—हम दोनों योग की ही इच्छा लेकर आई थीं। आपने भी योग की अनुमति दे दी है। इससे हमारा कार्य बन गया, वह एकान्त राजकुल में सम्पन्न होगा। वहाँ भी कोई उत्कटरूप में योग-चिन्तन कर रहा है। उसके साथ वहीं पर आप भी अच्छी तरह योग-चिन्तन करें।

अविमारक—क्या मेरे भाग्य अभी भी बच रहे हैं? (आसन से उठकर) आपने मानो मेरे प्राण फिर से मुझे दे दिये हैं। क्योंकि—

उसके भयाकुल नेत्रों से सुन्दर, सौम्य और अतितीक्ष्ण मुख को देखकर मैं पागल हो रहा था। अभी आप लोगों के अमृतोपम वाक्य ने मुझे मेरी चेतना वापस ला दी है॥ ७॥

धात्री—दिट्ठआ अय्येण परिपालिदो अअं जणो। अलमदिप्पसङ्गेण। अज्ज एव पविसिदव्वं कण्णाउरं अमच्चो अय्यभूदिओ कण्णाउररक्खओ कासिराअदूदेण सह अम्हाअं महाराएण पूइदो पत्थिदो अ।
[दिष्ट्यार्येण परिपालितोऽयं जनः। अलमतिप्रसङ्गेन। अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरम्। अमात्य आर्यभूतिकः कन्यापुररक्षकः काशिराजदूतेन सहास्माकं महाराजेन पूजितः प्रस्थितश्च।]

अविमारकः—बाढम्। प्रथमः कल्पः। भवति ! कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः।

धात्री—पवेसमत्तं एव्व दुल्लहं। सक्कं अब्भन्तरे चिरं वसिदु।
[प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम्। शक्यमभ्यन्तरे चिरं वस्तुम्।]

अविमारकः—प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः। क्रियतामनर्गलविशाला प्रासादमाला।

अवेक्ष्य = अवलोक्य। चिरम् = प्रभूतकालपर्यन्तम्। उन्मादम् = चित्तविक्षोभम्। अभ्युपगतोऽस्मि = सम्प्राप्तोऽस्मि। अद्य = अधुना। भवत्योः = धात्रीनलिनिकयोः। वाक्यामृतेन = अमृतवत् प्राणप्रदेन वाक्येन। पुनः = भूयः। अहम्। ससंज्ञः = चैतन्ययुक्तः। कृतोऽस्मि = विहितोऽस्मि। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ७॥

दिष्ट्या = दैवेन। परिपालितः = संरक्षितः। बाढम् = स्वीकृतिसूचकमव्ययम्। प्रथमः कल्पः = प्राथम्येन सम्पादनीयमिति भावः। औषधम् = भेषजम्। उपलभ्य = प्राप्य। मन्दीभवत्यातुरः = नैव कश्चन रुग्णो जनः भेषजं प्राप्य

धात्री—भाग्य से आपने मुझे बचा लिया। देर करने की आवश्यकता नहीं है। आज ही कन्यापुर में प्रवेश करना चाहिये। कन्यापुर के रक्षक अमात्य आर्य भूतिक काशिराजदूत के साथ गये हैं।

अविमारक—ठीक है। कौन ऐसा रोगी होगा जो दवा मिलने पर भी विलम्ब करेगा ?

धात्री—प्रवेश करना ही कठिन है। अन्दर में बहुत समय तक रहा जा सकता है।

अविमारक—आप लोग यही समझें कि मैं प्रविष्ट हो गया। केवल आप महल के किवाड़ को खुला छोड़ दें।

धात्री—एवं करेम्ह। सव्वं अब्भन्तरकरणीअं संपादेम्ह। अप्पमत्तो एव पविसदु अय्यो। [एवं कुर्वः। सर्वमभ्यन्तरकरणीयं संपादयावः। अप्रमत्त एव प्रविशत्वार्यः।]

अविमारकः—भवति! सकृदभिधीयतां राजकुलस्य विधानम्।

धात्री—एवं विअ। [एवमिव।]

अविमारकः—हन्त भोः!

श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं
प्रविष्टमात्मानमवैति बुद्धिः।
न पौरुषं वै परदूषणीयं
न चेद् विसंवादमुपैति दैवम् ॥ ८ ॥

तत्पानार्थम् शैथिल्यमाचरतीति तात्पर्यम्। वस्तुम्=स्थातुम्। अनर्गलविशाला=अर्गलाविरहितविस्तीर्णा। प्रासादमाला=राजभवनपरम्परा। अप्रमत्त इव=सतर्क इव। सकृत्=एकवारम् यावत्। अभिधीयताम्=कथ्यताम्।

श्रुत्वेति। अन्वयः—राज्ञः, गृहसंविधानम्, श्रुत्वा, बुद्धिः, आत्मानम्, प्रविष्टम्, अवैति। पौरुषम्, परदूषणीयम्, वै, न, चेत्, दैवम्, विसंवादम्, न, उपैति।

राज्ञः=भूपतेः। गृहसंविधानम्=अन्तःपुरसमाचरणीयम् नियमम्। श्रुत्वा=आकर्ण्य। बुद्धिः=मम मतिः। आत्मानम्=स्वम्। प्रविष्टम्=प्रवेशमापन्नम्। अवैति=प्राप्नोति। अतिसौलभ्येनैव मयाऽन्तःपुरम् प्रविष्टमित्यनुभूयते। पौरुषम्=मम पुरुषोचितः पराक्रमः। परदूषणीयम्=अन्येन गर्हणीयम्। वै=निश्चयेन। न=नास्ति। चेत्=यदि। दैवम्=भाग्यम्।

धात्री—हम ऐसा ही करती हैं। अन्दर का सारा कार्य हम कर लेंगी। आप सावधानी से प्रवेश करें।

अविमारक—देवि! आप एक बार यह तो बता दें कि राजकुल का नियम क्या है?

धात्री—(कान में) ऐसे ही।

अविमारक—अहा! राजा के घर का व्यवहार सुनकर मेरी बुद्धि ऐसा ही समझ रही है मानो मैं राजकुल में प्रविष्ट हो गया हूँ। मेरा पराक्रम दूसरों के द्वारा दूषित करने योग्य नहीं है; यदि भाग्य प्रतिकूल न हो तो ॥ ८ ॥

(विचिन्त्य) भवति ! कोऽस्माकमस्मिन् कार्ये प्रत्ययः ।

उभे--अअं पच्चओ । जेदु भट्टिदारओ । [अयं प्रत्ययः । जयतु भर्तृदारकः ।]

अविमारकः—हन्त गम्यतां सम्प्रति । प्रतीक्ष्यतामर्धरात्रम् ।

उभे--जं भट्टिदारओ आणवेदि (निष्क्रान्ते) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अहो णअरस्स सोहा संपदि । अत्थं आसादिदो भअवं सुय्यो दीसइ दहिपिण्डपण्डरेसु पासादेसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसङ्गदो विअ । गणिआजणो णाअरिअजणो अ अण्णोण्णविसेसमण्डिदा अत्ताणं दंसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भमं सञ्चरन्ति । अहं तु तादिसाणि पेक्खिअ उन्मादिअमाणस्य तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि । सो वि दाव अम्हाअं अधण्णदाए केण वि अणत्थसञ्चिन्तणेण अण्णादिसो विअ संवुत्तो । एदं तत्तहोदो आवासगिहं । अज्ज णअरापणालिन्दे सुणामि तत्तहोदो गिहादो णिग्गदा राअदारिआए धत्ती सही अ त्ति । किं णु खु एत्थ कय्यं । अहव हत्थिहत्थचञ्चलाणि पुरुसभग्गाणि होन्ति । अहव गच्छदु अणत्थो अम्हाअं । अवत्थासदिसं राअउलं पविसामि । (प्रविश्य) ही ही एसो अत्तभवं कामुअजणवण्णएण अणुलित्तो विअ पण्डुभावेण इदो एव आअच्छदि । अहव सव्वं अलङ्कारो होदि सुरूवाणं (उपेत्य)

विसंवादम् = प्रतिकूलताम् । न उपैति = न प्राप्नोति । यदि भाग्यं नैव प्रतिकूलम् तर्हि मम पुरुषोचितः पराक्रमः केनाप्यन्येन नैव तिरस्कार्य इति भावः ॥ ८ ॥

प्रत्ययः = विश्वासः । अर्धरात्रम् = मध्यरात्री ।

(सोचकर) भद्रे ! मुझे इस कार्य में विश्वास कैसे हो ?

दोनों—ऐसे विश्वास होगा । जय हो राजकुमार की ।

अविमारक—अच्छा, तो आप भी जायें । आधी रात के समय प्रतीक्षा करें ।

दोनों—राजकुमार की जो आज्ञा (प्रस्थान) ।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, नगर की शोभा इस समय कितनी न्यारी है ? अस्ताचल

जेदु भवं। [अहो नगरस्य शोभा सम्प्रति। अस्तमासादितो भगवान् सूर्यो दृश्यते दधिपिण्डपाण्डरेषु प्रासादेष्वग्रापणालिन्देषु प्रसारितगुडमधुरसङ्गत इव। गणिकाजनो नागरिकजनश्चान्योन्यविशेषमण्डितावात्मानं दर्शयितुकामौ तेषु तेषु प्रासादेषु सविभ्रमं संचरतः। अहं तु तादृशानि प्रेक्ष्योन्माद्यतस्तत्रभवतो राज्ञिसहायो भवामीति नगरान्निर्गतोऽस्मि। सोऽपि तावदस्माकमधन्यतया केनाप्यनर्थसंचिन्तनेनान्यादृश इव संवृत्तः। एतत् तत्रभवत आवासगृहम्। अद्य नगरापणालिन्दे शृणोमि तत्रभवतो गृहान्निर्गता राजदारिकाया धात्री सखी चेति। किं नु खल्वत्र कार्यम्। अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति। अथवा गच्छत्वनर्थोऽस्माकम्। अवस्थासदृशं राजकुलं प्रविशामि। ही ही एषोऽत्रभवान् कामुकजनवर्णकेनानुलित इव पाण्डुभावेनेत एवागच्छति। अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्। जयतु भवान्।]

अस्तमासादितः = अस्तंगतः। दधिपिण्डपाण्डरेषु = दध्नः पिण्डमिव श्वेतवर्णेषु। पाण्डरशब्दः श्वेतवर्णवाचकः तद्यथा—"शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्वेत-पाण्डराः" इत्याद्यमरः। प्रासादेषु = राजभवनेषु। अग्रापणालिन्देषु = आपणाग्रस्थितबहिर्द्वारप्रकोष्ठेषु। प्रसारितगुडमधुरसङ्गतः = प्रसारितस्य गुडस्य मधुनश्च रसम्प्राप्त इव। गणिकाजनः = वेश्या। अन्योन्यविशेषमण्डितौ =

को प्राप्त सूर्यदेव दधिपिण्ड के समान श्वेत राजभवनों तथा बाह्य प्रकोष्ठों पर फैले हुए गुड-मधु के समान प्रतीत हो रहे हैं। वेश्यायें तथा नागरिक जन खूब सज-धज कर इस विलास से विचर रहे हैं मानो आत्म-प्रदर्शन कर रहे हों। मैं तो इसीलिए निकल पड़ा हूँ कि इन वस्तुओं को देखकर पागल की तरह आचरण करने वाले राजकुमार की सहायता कर सकूँ। आजकल किसी अनिष्ट की आशंका से कुछ दूसरी तरह के ही हो रहे हैं। यही तो उनका निवास है। मैंने बाजार में सुना है कि उनके घर से राजकुमारी की सखी तथा धात्री निकली हैं। उनका यहाँ क्या काम हो सकता है? अथवा हाथी की सूँड़ के समान ही चञ्चल पुरुषों का भाग्य हुआ करता है। हा, हा, यही तो कामुक व्यक्ति के समान पाण्डुता से युक्त राजकुमार हैं, जो इधर ही आ रहे हैं अथवा सुन्दर व्यक्ति के लिए सब कुछ आभूषण ही होता है। जय हो आप की।

अविमारकः—वयस्य ! अतिविलम्बितमिव भवता नगरे।

विदूषकः—तुमं दाव आमन्तणविप्पलद्धो विअ बम्हणो अहोरत्तं चिन्तेसि। अहं पि दाव दिअसे णअरं परिब्भमिअ अलद्धभोआ पाअडगणिआ विअ रत्तिं पस्सदो सइदुं आअच्छामि। [त्वं तावदामन्त्रणविप्रलब्ध इव ब्राह्मणोऽहोरात्रं चिन्तयसि। अहमपि तावद् दिवसे नगरं परिभ्रम्यालब्धभोगा प्राकृतगणिकेव रात्रौ पार्श्वतः शयितुमागच्छामि।

अविमारकः—सखे ! प्रियं ते कथयिष्यामि।

विदूषकः—किं समत्तो अम्हाअं इसिसावो। [किं समाप्तोऽस्माकमृषिशापः।]

अविमारकः—मूर्ख ! अवश्यं भवितव्येऽर्थे कः प्रहर्षः।

पारस्परिकस्पर्धयेव विशेषरूपेणालङ्कृतशरीरौ। सविभ्रमम् = सविलासम्। संचरतः = विचरणं कुरुतः। प्रेक्ष्य = अवलोक्य। उन्माद्यतः = उन्मादयुक्तस्य। तत्र भवतः = राजकुमारस्य। रात्रिसहायः = रात्रौ सहायताकरः। अधन्यतया = दुर्भाग्यवशात्। हस्तिहस्तसञ्चलनानि = गजशुण्डादण्ड इव चपलानि। अवस्थासदृशम् = अवस्थानुकूलम्। कामुकजनवर्णकेन = कामिपुरुषोचितेन वर्णेन। अनुलिप्तेन = युक्तेन। पाण्डुभावेन = पीतवर्णमापन्नेन। सुरूपाणाम् = सौन्दर्यशालिनाम्।

अतिविलम्बितम् = प्रभूतो विलम्बः कृतः। आमन्त्रणविप्रलब्धः = निमन्त्रणलोलुपः। अलब्धभोगा = अप्राप्तभोगसाधना। प्राकृतगणिकेव = सामान्यवेश्येव।

अविमारक—मित्र, आपने नगर में बहुत देर कर दी।

विदूषक—तुम तो निमन्त्रण के लालची ब्राह्मण की तरह दिन-रात चिन्ता ही करते रहते हो। मैं भी दिनभर नगर में घूमकर उपलब्ध-भोग वेश्या की तरह रात में बगल में सोने आ जाता हूँ।

अविमारक—मित्र, मैं तुम्हें एक शुभ समाचार सुनाऊँगा।

विदूषक—क्या ऋषि द्वारा दिये गये शाप का हमारा समय समाप्त हो गया ?

अविमारक—मूर्ख, जो अवश्यंभावी है उसके लिए कैसी प्रसन्नता ?

विदूषकः—किं पुण अण्णं। [किं पुनरन्यत्।]

अविमारकः—किं न दृष्टा कुरङ्ग्या धात्री नलिनिका च।

विदूषकः—आम भो! दिट्ठाओ तत्तहोदीओ! किं आणीदं। [आम भोः दृष्टे तत्रभवत्यौ। किमानीतम्।]

अविमारकः—अस्मच्छोकौषधमानीतम्।

विदूषकः—पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्।]

अविमारकः—काले द्रक्ष्यसि। अद्य तावत् श्रूयताम्।

विदूषकः—भणादु भणादु भवं [भणतु भणतु भवान्।]

अविमारकः—किं बहुना। तत्र भवती ब्रवीति अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरमिति।

विदूषकः—(विहस्य) केण खु उवाएण अब्भन्तरं पविसिअ जीवग्गहणं पत्तुकामोऽसि। अमच्चा णाम विसमसीला कुन्तिभोअस्स। [केन खलूपायेनाभ्यन्तरं प्रविश्य जीवग्रहणं प्राप्तुकामोऽसि। अमात्या नाम विषमशीलाः कुन्तिभोजस्य।]

प्रियम् = सुसमाचारम्। अस्मच्छोकौषधम् = मदीयक्लेशं निवारयितुं यद् भेषजं तदेव। जीवग्रहणं प्राप्तुकामः = जीवनं धारयितुमिच्छुः। अमात्याः = मन्त्रिणः। विषमशीलाः = दुष्टप्रकृतयः।

विदूषक—तो फिर और क्या है ?

अविमारक—क्या तुमने कुरङ्गी की धात्री और नलिनिका को नहीं देखा ?

विदूषक—हाँ, उन दोनों को तो देखा है। क्या लाई थी ?

अविमारक—वे दोनों हमारे शोक की दवा ले आई थी।

विदूषक—देखूँ तो !

अविमारक—समय आने पर देख लेना, अभी सुनो।

विदूषक—कहिये, कहिये आप।

अविमारक—अधिक क्या, उसने कहा है आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना है।

विदूषक—(हँसकर) किस उपाय से अन्तःपुर में प्रवेश करके जीवित रह सकोगे ? कुन्तिभोज के मन्त्री लोग बड़े ही दुष्ट स्वभाव के हैं।

अविमारकः—कथं भवतापि शङ्कनीयम् । पश्य,

भग्ना मयैकेन पराः ससैन्या
अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते ।
किं मानुषैः सोऽप्यसुरेश्वरो मे
हतो भुजाभ्यामविरूपधारी ॥ ९ ॥

विदूषकः—जाणामि जाणामि भवदो अमाणुसाणि कम्माणि। सव्वहा सङ्कणीओ रत्तिच्छण्णो परगिहप्पवेसो । [जानामि जानामि भवतोऽमानुषाणि कर्माणि । सर्वथा शङ्कनीयो रात्रिच्छन्नः परगृहप्रवेशः ।]

भग्नेति० । अन्वयः—मया, एकेन, पराः, ससैन्याः, भग्नाः । अद्यापि, गन्धेन, न, संश्रयन्ते । किम्, मानुषैः, अविरूपधारी, सः, असुरेश्वरः, अपि, मया, हतः ।

मया एकेन = मया एकाकिनैव । कस्याप्यन्यसहायकस्य साहाय्यं न गृहीतमितिभावः । पराः = अरयः । ससैन्याः = सैन्यसहिताः । भग्नाः = पराजिताः । अद्यापि = अधुनापि । गन्धेन = गर्वेण । न = नहि । संश्रयन्ते = युज्यन्ते । गर्वयुक्ता नैव भवितुमर्हन्तीति भावः । अत्र गन्धशब्दः गर्वपर्यायः, तद्यथा—"गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयो" रिति विश्वः । किं मानुषैः = का गणना मानुषाणाम् ? अविरूपधारी = मेषरूपधारी । सः = विश्रुतपराक्रमः । असुरेश्वरोऽपि = असुरराजोऽपि । मे = मम । भुजाभ्याम् = कराभ्याम् । हतः = व्यापादितः । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् । तल्लक्षणं हि—"उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ" । इति ॥ ९ ॥

अमानुषाणि = मानवैरसाध्यानि । रात्रिच्छन्नः = रात्रौ प्रच्छन्नरूपेण

अविमारक—तुम्हें भी क्यों शङ्का होती है ? देखो,—

मैंने अकेले ही सैन्यसहित शत्रुओं को ऐसा पराजित किया कि वे आज भी गर्व से सर नहीं उठा पा रहे हैं । मनुष्यों की क्या गिनती ? वह मेषरूपधारी असुरराज भी मेरे हाथों मारा जा चुका है ॥ ९ ॥

विदूषक—जानता हूँ, जानता हूँ मैं तुम्हारे अमानवीय कार्यों को। फिर भी रात में दूसरे के घर में छिपकर प्रवेश करना सर्वथा शङ्कनीय है ।

अविमारकः—एष समासः। सर्वथा प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। तदनुगन्तुमर्हति महाब्राह्मणः।

विदूषकः—कहं मं उज्झिअ गच्छसि। अहं भवन्तं सव्वकालं ण मुञ्चामि। अक्कोसन्तो वि एक्को इच्छिदव्वो। [कथं मामुज्झित्वा गच्छसि। अहं भवन्तं सर्वकालं न मुञ्चामि। आक्रोशन्नप्येक एष्टव्यः]

अविमारकः—न जानाति भवान् शास्त्रमार्गम्।

एकः परगृहं गच्छेद् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ॥ १० ॥

तस्मादेकेनैव मया प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। न ते वयं शङ्कनीयाः। पश्यतु भवान्,

---

सम्पाद्यमानः। समासः = सारांशः। उज्झित्वा = त्यक्त्वा। मुञ्चामि = त्यजामि। आक्रोशन् = चीत्कारादिशब्दान् कुर्वन्। एष्टव्यः = वाञ्छनीयः। शास्त्रमार्गम् = शास्त्रनिर्देशम्।

एक इति। अन्वयः—एकः, एव, परगृहम्, गच्छेत्, द्वितीयेन, तु, मन्त्रयेत्, बहुभिः, समरम्, कुर्यात्, इति, अयम्, शास्त्रनिर्णयः।

एकः = एकाकी। सहायकान्तररहित एव। परगृहम् = अन्यस्य गेहम्। गच्छेत् = प्रविशेत्। द्वितीयेन तु मन्त्रयेत् = स्वातिरिक्तेन केनचित् द्वितीयेनैव सह मन्त्रणां कुर्यात्। मन्त्रणायाम् द्वितीयातिरिक्तानाम् जनानामपेक्षा नैव कार्येति भावः। बहुभिः = अधिकसंख्यकैर्जनैः सह। समरम् = युद्धम्। कुर्यात् = विधीयेत। इत्ययम् = इत्येष एव। शास्त्रनिर्णयः = शास्त्रनिर्देशः ॥ १० ॥

अविमारक—सारांश यही है कि किसी भी प्रकार कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना है। तुम महाब्राह्मण हो, अनुमति दो।

विदूषक—मुझे छोड़कर क्यों जाते हो! मैं तुम्हें कभी भी नहीं छोड़ूँगा। चीखने-चिल्लाने वाला व्यक्ति भी तो चाहिये।

अविमारक—आप शास्त्र की बातें नहीं जानते।

दूसरे के घर में अकेला ही प्रवेश करना चाहिये, अपने अलावे किसी दूसरे एक ही व्यक्ति से मंत्रणा करनी चाहिये तथा बहुत व्यक्तियों के साथ युद्ध करना चाहिये, यही शास्त्र का निर्णय है ॥ १० ॥

इसलिए मुझे अकेले ही कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करना चाहिये। मेरे बारे में तुम लोग चिन्ता मत करो। देखो—

मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यं
नृपभवनं विभवैः सुखं प्रवेष्टुम् ।
वयमपि च भुजायुधप्रधानाः
किमिह सखे ! भवतापि शङ्कनीयाः ॥ ११ ॥

विदूषकः—जइ एवं किदो णिच्चओ, संपदि णअरं पविसामो । तहिं मम अत्थि मित्तो । तस्स आवासे कालं पडिवालम्ह । [यद्येवं कृतो निश्चयः, संप्रति नगरं प्रविशावः । तत्र ममास्ति मित्रम् । तस्यावासे कालं प्रतिपालयावः ।]

अविमारकः—सम्यग् भवानाह । साम्प्रतमभ्यतरं प्रविश्य कृताह्निको महाराजेनाभ्यनुज्ञातो वासगृहे शयनसंविधानं प्रविश्याज्ञातो नगरं प्रविश्य भवतो मित्रगृहे कालं प्रतिपालयामि ।

मितगुणमिहेति । अन्वयः—इह, कुन्तिभोजसैन्यम्, मितगुणम्, विभवैः, नृपभवनम्, सुखम्, प्रवेष्टुम् । भुजायुधप्रधानाः, वयमपि, किम्, सखे, भवता, शङ्कनीयाः ?

इह = अत्र कुन्तिभोजस्य कन्यान्तःपुरे । कुन्तिभोजसैन्यम् = राज्ञः सेना । मितगुणम् = अल्पबलम् । विभवैः नृपभवनम् = वैभवशालिनं राजप्रासादम् । सुखं प्रवेष्टुम् = कष्टमन्तरा प्रवेशार्हम् । भुजायुधप्रधाना = बाहुरूपाणि अस्त्राण्येव प्राधान्येन येषाम् तादृशाः । वयमपि किं शङ्कनीयाः = मद्विषये शङ्का नैव कार्येति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ११ ॥

प्रतिपालयावः = प्रतीक्षावहे ।

कुन्तिभोज की सेना साधारण है, वैभवशाली राजकुल में प्रवेश करना आसान है । मेरे हाथ में अस्त्र के रहने पर भी क्या तुम्हें मेरे विषय में शङ्का करनी चाहिये ? ॥ ११ ॥

विदूषक—यदि ऐसा ही निश्चय कर लिया है तो चलो नगर में प्रवेश करें । वहाँ मेरा एक मित्र है, उसी के यहाँ बैठकर समय की प्रतीक्षा करें ।

अविमारक—आपने ठीक कहा, अब भीतर जाकर आह्निक कृत्य समाप्त कर महाराज की अनुमति से वासगृह में प्रवेश कर छिपे-छिपे आपके मित्र के घर में समय की प्रतीक्षा करें ।

(प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिदारओ। आवुत्त ह्लाणोदअं। [जयतु भर्तृदारकः। आवृत्तं स्नानोदकम्।]

अविमारकः—अयमयमागच्छामि। गच्छाग्रतः।

चेटी—ज भट्टिदारओ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।]

अविमारकः—वयस्य! अस्तमितो भगवान् दिवाकरः। सम्प्रति हि—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ १२ ॥

पूर्वेति। अन्वयः—पूर्वा, तु, काष्ठा, तिमिरानुलिप्ता, पश्चिमाशा, च, सन्ध्यारुणा, भाति। अन्तरिक्षम्, द्विधा, विभक्तान्तरम्, सत्, अर्धनारीश्वर-रूपशोभाम्, याति।

पूर्वा काष्ठा = प्राची दिशा। "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः" इत्यमरः। तिमिरानुलिप्ता = अन्धकारेण व्याप्ता। पश्चिमाशा = प्रतीची दिशा। सन्ध्यारुणा = सान्ध्यरक्तिमया रक्ता। भाति = शोभते। अन्तरिक्षम् = गगनम्। द्विधा = द्वेधा। विभक्तान्तरम् = विभज्यमानम् सत्। अर्धनारीश्वररूपशोभाम् = अर्धाङ्गाश्रितदारस्य शङ्करस्य सादृश्यम् धारयति ॥ १२ ॥

(प्रवेश करके)

चेटी—जय हो राजकुमार की। नहाने का जल तैयार है।

अविमारक—यह आया, तुम आगे चलो।

चेटी—राजकुमार की जो आज्ञा। (जाती है)

अविमारक—मित्र! भगवान् सूर्य अस्त हो गये। अभी—

पूर्व दिशा अन्धकार से पूर्ण एवं पश्चिम दिशा सान्ध्य लालिमा से युक्त हो रही है। दो रूपों में विभक्त यह अन्तरिक्ष अर्धनारीश्वर की शोभा को धारण कर रहा है ॥ १२ ॥

विदूषकः—सुट्ठु, भवं भणादि। अदिक्कन्दो दिअसो। आरूढो पओसो। [सुष्ठु भवान् भणति। अतिक्रान्तो दिवसः। आरूढः प्रदोषः।]

अविमारक.—अहो विचित्रस्वभावता जगतः। कुतः।

व्यामृष्टसूर्यतिलको वितताेडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः॥ १३॥

(निष्क्रान्तौ)

द्वितीयोऽङ्कः।

अतिक्रान्तः = व्यतीतः। आरूढः = समारब्धः। विचित्रस्वभावता = विस्मयोत्पादकप्रकृतिता।

व्यामृष्टेति। अन्वयः—व्यामृष्टसूर्यतिलकः, वितताेडुमालः, नष्टातपः, मृदुमनोहरशीतवातः। संलीनकामुकजनः, प्रविकीर्णशूरः, मनुष्यलोकः, वेषान्तरम्, रचयतीव।

व्यामृष्टसूर्यतिलकः = प्रोञ्छितरविचन्दनः। वितताेडुमालः = विस्तृतनक्षत्रमालः। नष्टातपः = शमितसूर्यकिरणातपः। मृदुमनोहरशीतवातः = कोमलमनोज्ञशीतवायुः, संलीनकामुकजनः = गृहान्तर्गतकामिपुरुषः। प्रविकीर्णशूरः = इतस्ततो भ्रमन्तः शूरपुरुषा इव। अयं मनुष्यलोकः = मर्त्यलोकः। वेषान्तरम् = रूपान्तरम्। रचयति = विधत्ते। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १३॥

इति कमलेश्वरीटीकायां द्वितीयोऽङ्कः।

विदूषक—आप ठीक कहते हैं। दिन बीत गया। प्रदोष प्रारम्भ हो गया।

अविमारक—अहा, जगत् का स्वभाव भी विचित्र है। क्योंकि—

सूर्यरूपी चन्दन पुंछ गया है, तारों की माला फैल गई है, धूप समाप्त हो गई, कोमल एवं मनोहर ठंढी हवा चल रही है, कामुक व्यक्ति घरों में छिप गये हैं, वीर पुरुष इधर-उधर घूम रहे हैं, इस प्रकार यह मनुष्य-लोक मानों अपनी वेष-भूषा बदल रहा है॥ १३॥

(दोनों का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी चेटयौ च)

कुरङ्गी—हला ! किं तेण भणिअं [हला ! किं तेन भणितम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! केण । [भर्तृदारिके ! केन ।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हं भिन्दामि खु मन्दभाआ । (प्रकाशम्) कण्णेउरचेडेण । [हं भिनद्मि खलु मन्दभागा । कन्यापुरचेटेन ।]

मागधिका—दिट्ठो मए कण्णेउरचेडो । भणिदं च । ण किञ्चि आह । [दृष्टो मया कन्यापुरचेटः । भणितं च । न किञ्चिदाह ।]

कुरङ्गी—हन्त भट्टिणीए णिवेदेमि—कण्णेउरचेडो मम सुअपञ्जरं ण करेदि त्ति । [हन्त भट्टिन्यै निवेदयामि—कन्यापुरचेटो मम शुकपञ्जरं न करोतीति ।]

मागधिका—णं णिट्ठिदो सुअपञ्जरो भट्टिदारिए । [ननु निष्ठितः शुकपञ्जरो भर्तृदारिकायाः ।]

भिनद्मि = तिरस्कारक्षोभेन विपीडामि । मन्दभागा = भाग्यहीना । कन्या-पुरचेटेन = कन्यापुरभृत्येन । भट्टिन्यै = महाराज्ञ्यै । निष्ठितः = निर्मितः ।

(दो चेटियों के साथ कुरङ्गी का प्रवेश)

कुरङ्गी—सखी, उसने क्या कहा ?

चेटी—राजकुमारी, किसने ?

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं अभागी तिरस्कार-दुःख से मरी जाती हूँ । (प्रकट) कन्यापुर के भृत्य ने ।

मागधिका—मैंने कन्यापुर के भृत्य को देखा है । कहा भी था, उसने कुछ भी नहीं कहा ।

कुरङ्गी—अच्छा, महारानी से कहूँगी । कन्यापुर का भृत्य मेरा शुक-पञ्जर नहीं बना दे रहा है ।

मागधिका—राजकुमारी का शुकपञ्जर तो बनकर आ चुका है ।

कुरङ्गी—वाचाडे ! किं अण्णो वि अत्थि। [वाचाटे ! किमन्योऽप्यस्ति।]

मागधिका—भोदव्वं [भवितव्यम्।]

कुरङ्गी—हला ! का वेला। [हला ! का वेला।]

मागधिका—ओगाहो पओसो। [अवगाढः प्रदोषः।]

कुरङ्गी—तेण ही पासादं आलुहामो। [तेन हि प्रासादमारोहामः।]

मागधिका—विलासिणि ! अग्गदो जाहि। विरएहि सअणासणाणि। [विलासिनि ! अग्रतो याहि। विरचय शयनासनानि।]

विलासिनी—सुत्ता खु तुवं ! को कालो विरइदाणि सअणासणाणि। [सुप्ता खलु त्वम्। कः कालो विरचितानि शयनासनानि।]

मागधिका—हला ! जाणामि दे अलसत्तणं। दिवसरइदाणि भणासि रइदाणि त्ति। [हला ! जानामि तेऽलसत्वम्। दिवसरचितानि भणसि रचितानीति।]

विलासिनी—हला ! मा एव्वं भणाहि। भट्टिदारिअं अन्तदेण अण्णादिसाणि होन्ति। [हला ! मैवं भण। भर्तृदारिकामन्तरेणान्यादृशानि भवन्ति।]

वाचाटे=बहुभाषिणि। "स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्" इत्यमरः। अवगाढः=सघनः। विरचय=परिष्कुरु।

कुरङ्गी—अरी वाचाल, क्या दूसरी भी है ?

मागधिका—होना चाहिये।

कुरङ्गी—सखी, क्या समय है ?

मागधिका—प्रदोष गाढा हो रहा है।

कुरङ्गी—तो हमलोग छत पर चलें।

मागधिका—विलासिनि ! तू आगे चल, विछावन ठीक कर।

विलासिनी—तू क्या सो रही थी ? मैंने तो कब का विछावन ठीक कर दिया है।

मागधिका—अरी, मैं तेरे आलस्य को जानती हूँ। दिन में किये गये विछावन को ही अभी का ठीक किया गया बता रही है।

विलासिनी—अरी, ऐसा मत कह। राजकुमारी क्या समझेगी।

मागधिका—हला ! गदुअ जाणामि । [हला ! गत्वा जानामि ।]

(सर्वाः परिक्रामन्ति ।)

मागधिका—एसो पासादो । [एष प्रासादः ।]

कुरङ्गी—अग्गदो जाहि ! [अग्रतो याहि ।] (आरोहणं नाटयति ।)

मागधिका—साहु विलासिणि ! साहु ! अत्तणो णामसदिसं किदं एदस्सिं सिलादले रइदं सअणं । [साधु विलासिनि ! साधु ! आत्मनो नामसदृशं कृतम् । एतस्मिन् शिलातले रचितं शयनम् ।]

विलासिनी—अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं । मागधिए ! पेक्ख पेक्ख मे अलसत्तणं । [अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम् । मागधिके ! पश्य पश्य मेऽलसत्वम् ।]

मागधिका—अदिपण्डिदा खु संवुत्ता । एवं पण्डितच्चेडवुत्तं भत्तारं लभेहि । [अतिपण्डिता खलु संवृत्ता । एवं पण्डितचेटवृत्तं भर्तारं लभस्व ।]

कुरङ्गी—हला ! इमस्सिं सिलादले मुहुत्तअं उवविसामि । [हला ! अस्मिन् शिलातले मुहूर्तकमुपविशामि ।]

मागधिका—जं भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

अतिपण्डिता = अतिनिपुणा । पण्डितचेटवृत्तम् = चेटेषु पण्डितत्वेन प्रसिद्धम् । भर्त्तारम् = पतिम् । लभस्व = प्राप्नुहि ।

मागधिका—सखी, जाकर पता लगाती हूँ ।

(सभी जाती हैं ।)

मागधिका—यही तो प्रासाद है ।

कुरङ्गी—आगे चल । (चढ़ने का अभिनय करती है)

मागधिका—शावाश विलासिनि, शावाश ! तूने अपने नाम के अनुसार ही काम किया है । इस शिलातल पर बिछावन लगा रखा है ।

विलासिनी—मैंने भीतर के मण्डप पर बिछावन लगा दिया । मागधिके! देख, देख मेरा आलस्य ।

मागधिका—तुम बहुत पण्डित हो रही हो । अपने समान ही पण्डित पति को प्राप्त करो ।

कुरङ्गी—सखी, इस शिलातल पर कुछ देर बैठ लेती हूँ ।

मागधिका—राजकुमारी को जो अच्छा लगे । अस्तु ।

वर्गा उपविशन्ति)

मागधिका—भट्टिदारिए। कहेमि वक्खाणं। [भर्तृदारिके! कथयामि व्याख्यानम्।]

कुरङ्गी—हला! जाणामि दे असम्बद्धप्पलावं। [हला! जानामि तेऽसंबद्धप्रलापम्।]

मागधिका—भट्टिदारिए! अभिणवा खु कहा। [भर्तृदारिके! अभिनवा खलु कथा।]

कुरङ्गी—याचेमि, मा णिब्बन्धिअ, मुहूत्तअं सआमि। [याचे, मा निर्बन्धय, मुहूर्त्तकं शये।]

विलासिनी—सुहं सइदु भट्टिदारिआ। मे कहेहि। [सुखं शेतां भर्तृदारिका। मम कथय।]

कुरङ्गी- (आत्मगतम्) किणु खु भवे। [किं नु खलु भवेत्।

मागधिका—हला! सुणाहि भट्टिदारिअं अन्तरेण...। [हला! शृणु भर्तृदारिकामन्तरेण।]

कुरङ्गी—हं विदिदं रहस्सं। परिब्भट्ठम्हि। [हं विदितं रहस्यम्। परिभ्रष्टास्मि।]

व्याख्यानम् = विशिष्टमाख्यानम्, कथाविशेषमिति भावः। असंबद्धप्रलापः = अप्रस्तुतविषयको वार्त्तालापः। मा निर्बन्धय = हठं न कुरु। विदितम् = अभि-

---

(सभी बैठती हैं)

मागधिका—राजकुमारी, मैं कहानी कहती हूँ।

कुरङ्गी - सखी, मैं जानती हूँ कि तुम किस तरह ऊटपटांग बातें करती हो।

मागधिका—राजकुमारी, यह कहानी बिल्कुल नई है।

कुरङ्गी—मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, जिद मत करो, थोड़ा सो लेती हूँ।

विलासिनी—राजकुमारी आराम से सोवें, मुझे सुनाओ।

कुरङ्गी—(स्वगत) न जाने क्या बात है.........।

मागधिका—सखी, सुनो, राजकुमारी के बिना.........।

कुरङ्गी—हाय, मेरा रहस्य उसे मालूम है। मैं भ्रष्ट हो गई।

विलासिनी—हला ! कहिं तुए सुदं । [हला ! कुत्र त्वया श्रुतम् ।]

मागधिका—भट्टिणीपरिचारिआए वसुमित्ताए कहिदं । [भट्टिनीपरिचारिकया वसुमित्रया कथितम् ।]

विलासिनी—सअं णाम भट्टिणीए कहिदं होदि । [स्वयं नाम भट्टिन्या कथितं भवति ।]

मागधिका—अत्थि कासिराअपुत्तो जअवम्मा णाम । तस्स दिण्णा भट्टिदारिआ । तस्स अ दूदो आअदो महाराएण पूइदो । पडिग्गहिदं च वण्णिआरं । [अस्ति काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम । तस्मै दत्ता भर्तृदारिका । तस्य च दूत आगतो महाराजेन पूजितः । प्रतिगृहीतं च वर्णिकारम् ।]

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) एदं अलिअं । अहं अत्तणो पभवामि । [एतदलीकम् । अहमात्मनः प्रभवामि ।]

मागधिका—तहिं किल भट्टिणीए भणिदं—बाला खु मे दुहिआ, ण सक्कुणोमि एक्कंपि दिअसं अपेक्खन्ती जीविउं । जदि मे महाराओ पसण्णो, एत्थ एव्व जामादुओ आणीदव्वो त्ति । [तत्र किल भट्टिन्या भणितं—बाला खलु मे दुहिता, न शक्नोम्येकमपि दिवसमपश्यन्ती जीवितुम् । यदि मे महाराजः प्रसन्नः, अत्रैव जामातानेतव्य इति ।]

ज्ञातम् । परिभ्रष्टास्मि = च्युतास्मि । दूतः = सन्देशवाहकः । पूजितः = सत्कृतः । प्रतिगृहीतम् = स्वीकृतम् । वर्णिकारम् = वरणसामग्री । अलीकम् = मिथ्या ।

विलासिनी—अरी, तुमने कहाँ सुना ?

मागधिका—महारानी की परिचारिका वसुमित्रा ने कहा है ।

विलासिनी—तब तो स्वयं महारानी ने ही कहा है ।

मागधिका—काशिराज का एक पुत्र जयवर्मा नाम का है । राजकुमारी उसे ही दी गई है । उसका दूत भी आया था । महाराज ने उसका सत्कार किया । वरण सामग्री भी ले ली ।

कुरङ्गी—(स्वगत) यह झूठ है, मैं स्वयं अपनी मालिक हूँ ।

मागधिका—इस पर महारानी ने कहा—मेरी पुत्री अभी छोटी है । उसे देखे बिना मैं एक दिन भी नहीं जी सकती हूँ । यदि महाराज मुझ पर प्रसन्न हैं तो दामाद को यहीं बुला लें ।

विलासिनी—तदो तदो । [ततस्ततः ।]

मागधिका—तदो तं पि किल अणुमदं महाराएण । अज्ज णक्खत्तं सोभणं त्ति तेण अ दूदेण अमच्चो अय्यभूदिओ पत्थिदो । [ततस्तदपि किलानुमतं महाराजेन । अद्य नक्षत्रं शोभनमिति तेन च दूतेनामात्य आर्यभूतिकः प्रस्थितः ।]

कुरङ्गी–(स्वगतम्) हन्त कालन्तरिदं कय्यं । (हन्त कालान्तरितं कार्यम् ।)

विलासिनी—पिअं भट्टिदारिआए रूवजोव्वणं सफलं संवुत्तं त्ति । (प्रियं भर्तृदारिकाया रूपयौवनं सफलं संवृत्तमिति ।)

(प्रविश्य)

नलिनिका—भणिदं हि मम मादाए–गच्छ एदं वुत्तन्तं भट्टिदारिआए कहेहि । पिअणिवेदिअमाणाणि पिआणि पिअदराणि होन्ति । अह अ सा वि मं पेक्खन्ती सव्वं विस्सत्थं ण भणादि । अहं पि काले पस्सदो पभवामि त्ति । जा भट्टिदारिआये पिअं णिवेदेमि । (परिक्रामति) (भणितं हि मम मात्रा–गच्छैतं वृत्तान्तं भर्तृदारिकायै कथय । प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति । अथ च सापि मां पश्यन्ती सर्वं विश्वस्तं न भवति । अहमपि काले पार्श्वतः प्रभवामीति यावद् भर्तृदारिकायै प्रियं निवेदयामि ।)

कालान्तरितम् = विलम्बेन सम्पादनीयम् । भणितम् = कथितम् । वृत्तान्तम् = समाचारम् । प्रियम् = श्रवणसुखदम्, हृद्यम् ।

विलासिनी—फिर क्या हुआ ?

मागधिका—तब महाराज ने इसे भी मान लिया । आज शुभ मुहूर्त था इसलिए दूत के साथ अमात्य आर्यभूतिक भी गये हैं ।

कुरङ्गी—(स्वगत) अच्छा, यह कार्य अब कालान्तरित हुआ ।

विलासिनी—बड़ी खुशी की बात, राजकुमारी का रूप,यौवन सफल हुआ ।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—मेरी माँ ने कहा है कि जाओ यह समाचार राजकुमारी को सुना दो । प्रियजन द्वारा निवेदित प्रियवस्तु प्रियतर होती है । वह भी मुझे देखकर सारी बातें खुलकर नहीं कहती है । मैं भी समय पर नजदीक आ जाऊँगी । जब तक मैं राजकुमारी को यह खुश-खबरी सुना दूँ ।

कुरङ्गी—कोणु खु अभूदपुव्वो रोओ चिन्तिअमाणो मं उम्मादेदि। सुमणावण्णअं णेच्छदि। ण तुस्सदि गोट्ठीए। इदं एत्थ दारुणं मणोहरं च। (निःश्वस्य) णलिणिए! किं एदं। [को नु खल्वभूतपूर्वो रोगश्चिन्त्यमानो मामुन्मादयति। सुमनोवर्णकं नेच्छति। न तुष्यति गोष्ठ्या। इदमत्र दारुणं मनोहरं च। नलिनिके! किमेतत्।]

मागधिका—भट्टिदारिए! माअधिआ खु अहं। [भर्तृदारिके! मागधिका खल्वहम्।]

विलासिनी—भट्टिदारिए! विलासिणी खु अहं। [भर्तृदारिके! विलासिनी खल्वहम्।]

नलिनिका—(उपगम्य) भट्टिदारिए! अहं णलिणिआ। सोवाणसद्देण खु भट्टिदारिआए विञ्ञादं। भट्टिदारिए! भट्टिणी भणादि। (भर्तृदारिके! अहं नलिनिका। सोपानशब्देन खलु भर्तृदारिकया विज्ञातम्। भर्तृदारिके! भट्टिनी भणति।)

कुरङ्गी - किं त्ति। (किमिति।)

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। (एवमिव।)

अभूतपूर्वः = सर्वथाऽभिनवः। चिन्त्यमानः = विभाव्यमानः। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमाल्यम्। गोष्ठ्या = जनसङ्गमेन। दारुणम् = कष्टकरम्। सोपानशब्देन = आरोहणार्थम् विनिर्मितम् विशिष्टमार्गम् सोपानम्, तत्र पादविक्षेपेनोत्पन्नेन

कुरङ्गी—यह कौन-सा अपूर्व रोग है जो मुझे पागल बनाये जा रहा है। मुझे फूल की माला अच्छी नहीं लगती, लोगों से मिलना-जुलना नहीं सुहाता, यह तो नितान्त कष्टकर होते हुए भी मनोहर है। (साँस छोड़कर) नलिनिके! यह क्या बात है?

मागधिका—राजकुमारी, मैं मागधिका हूँ।

विलासिनी—राजकुमारी, मैं विलासिनी हूँ।

नलिनिका—(समीप जाकर) राजकुमारी, मैं नलिनिका हूँ। सीढ़ी की आवाज से राजकुमारी ने जान लिया। राजकुमारी, महारानी ने कहा है···।

कुरङ्गी—क्या कहा है?

नलिनिका—(कान में) यही कहा है।

कुरङ्गी—हं हीणं चारित्तं। [हं हीनं चारित्रम्।]

नलिनिका—णं सम्भावणीओ एसो। णं सो एव सो। [ननु संभावनीयं एषः। ननु स एव सः।]

कुरङ्गी—णलिणिए! संवाहेहि मं। [नलिनिके! संवाहय माम्।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। [यद् भर्तृदारिका ज्ञापयति।]

विलासिनी—णलिणिए! विवाहो कदा भविस्सदि। [नलिनिके! विवाहः कदा भविष्यति।]

(नेपथ्ये)

अद्य

नलिनिका—चिरं जीव।

(नेपथ्ये)

राजपुरुषाः! अमात्यः प्रस्थित इति कश्चिदमात्यभृत्यः कन्यापुररक्षणार्थं नाभ्यागतः। तद् यथेष्टं भवतु। तावदहं श्वो राज्ञो निवेदयिष्यामि।

शब्देन। हीनम् = पतितम्। संभावनीयम् = सम्यक् विचारणीयम्। संवाहय =

कुरङ्गी—हाय, चरित्र-पतन हो गया।

नलिनिका—ऐसा मत सोचें। निश्चय ही वह वही है।

कुरङ्गी—नलिनिके! पकड़ ले मुझे।

नलिनिका—राजकुमारी की जो आज्ञा।

विलासिनी—नलिनिके! विवाह कब होगा?

(नेपथ्य में)

आज।

नलिनिका—चिरकाल तक जीती रहो।

(नेपथ्य में)

राजपुरुषो! अमात्य चले गये हैं, इसलिए कन्यान्तःपुर की रक्षा करने के लिए अमात्य का कोई भृत्य नहीं आया है। जो होता है हो। कल मैं महाराज से निवेदन करूँगा।

विलासिनी—हला णलिणिए ! किं भणिदं । [हला नलिनिके ! किं भणितम् ।]

नलिनिका—जदा सो भट्टिदारओ पविसदि, तदा होदि विवाहो । [यदा स भर्तृदारकः प्रविशति, तदा भवति विवाहः ।]

विलासिनी—अविग्घेण पविसदु । [अविघ्नेन प्रविशतु ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु]

मागधिका—हला ! एहि चउस्साले उपविसामो । [हला ! एहि चतुःशाले उपविशामः ।]

विलासिनी—एवं होदु । गदप्पाओ पओसो । आरूढा जोह्णा । [एवं भवतु । गतप्रायः प्रदोषः । आरूढा ज्योत्स्ना ।]

नलिनिका—हला ! मम वि अत्थरं अत्थरेहि । [हला ! ममाप्यास्तरमास्तृणु ।]

मागधिका—अत्थि अवआसो । सेवेहि भट्टिदारिअं, जाव णिद्दं लभदि । [अस्त्यवकाशः । सेवस्व भर्तृदारिकां, यावन्निद्रां लभते ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

धारय । अविघ्नेन = निर्बाधम् । गतप्रायः = समाप्तकल्पः । आरूढा ज्योत्स्ना =

विलासिनी—सखी नलिनिके ! क्या कहा ?

नलिनिका—जभी वह राजकुमार प्रवेश करेंगे तभी विवाह होगा ।

विलासिनी—विना किसी विघ्न के प्रवेश करें ।

नलिनिका—ऐसा ही हो ।

मागधिका—सखी, चलो, चतुःशाल में कुछ देर बैठें ।

विलासिनी—ऐसा ही हो । प्रदोष बीत गया । चन्द्र-किरण फैल रही हैं ।

नलिनिका—सखी, मेरा भी विछावन लगा दे ।

मागधिका—अभी तो समय है, राजकुमारी की सेवा कर, जब तक वह सो रही है ।

नलिनिका—ऐसा ही हो ।

(दोनों का प्रस्थान)

(ततः प्रविशति खड्गहस्तश्चौरवेषेण रज्जुहस्तोऽविमारकः)

अविमारकः—(सविमर्शम्) भोः ! कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः,

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

कथमात्माधीनेष्वर्थेषु मन्दीभवामि । इह हि,

व्याप्ता चन्द्रिका । आस्तरमास्तृणु = शय्याम् विरचय । कष्टं तारुण्यं नाम = यौवनम् खलु अतिकष्टप्रदम् ।

रागमिति । अन्वयः—रागम्, विजृम्भयति, प्रमादम्, संश्रयते, दोषान्, न, चिन्तयति, साहसम्, अभ्युपैति । स्वच्छन्दतः, व्रजति, नीतिमार्गम्, न, इच्छति, सुविदुषाम्, शुभाम्, बुद्धिम्, अवशीकरोति ।

इदं हि तारुण्यं रागम् = आसक्तिम् । विजृम्भयति = वर्द्धयति । प्रमादम् = अनवधानताम् । संश्रयते = अवलम्बयति । दोषान् = अनिष्टानि । न चिन्तयति = न विचारयति । साहसम् = हठप्रवृत्तिम् । अभ्युपैति = स्वीकरोति । स्वच्छन्दतः = स्वातन्त्र्येण । व्रजति = गच्छति । किं कार्यम् किमकार्यमिति नैव परामृशति । नीतिमार्गम् = शास्त्रनिर्दिष्टं नयवर्त्म । न इच्छति = न समीहते । सुविदुषाम् = सुपण्डितानाम् । अपि शुभाम् = निर्मलाम् । बुद्धिम् = मतिम् । अवशीकरोति = कुण्ठितां विधत्ते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

आत्माधीनेषु = स्वाधीनेषु । अर्थेषु = विषयेषु । मन्दीभवामि = शिथिलोत्साहो भवामि ।

(इसके बाद हाथ में तलवार तथा रस्सी लिये हुए चोर वेष में अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(सोचकर) ओह, यौवन भी बड़ा कष्टदायक होता है । क्योंकि—

यह राग बढ़ाता है, अनवधानता को बढ़ावा देता है, दोषों की चिन्ता नहीं करता तथा साहस को प्राप्त कराता है । यह यौवन स्वच्छन्द विचरण करता है, नीतिमार्ग को नहीं चाहता एवं विद्वानों की अच्छी बुद्धि को भी विवश कर देता है ॥ १ ॥

जो मेरे द्वारा साध्य हैं उन कार्यों में भी शिथिलता क्यों बरतूं ? यहां पर—

नगरपरिचितोऽहं रक्षिणो ज्ञातसारा-
स्तिमिरगहनभीमं वर्तते चार्धरात्रम् ।
असिरपि सुसहायो निश्चितश्चान्तरात्मा
किमिह बहुविचारैः को मया दुष्करोऽर्थः ॥२॥

अहो अर्धरात्रस्य प्रतिभयता । सम्प्रति हि,

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजनाः ध्यानं प्रविष्टा इव ।

नगरेति । अन्वयः—अहम्, नगरपरिचितः, रक्षिणः, ज्ञातसाराः, अर्धरात्रम्, च, तिमिरगहनभीमम्, वर्तते । असिः, अपि, सुसहायः, अन्तरात्मा, च, निश्चितः, इह, बहुविचारैः, किमः, मया, कः, अर्थः, दुष्करः ।

अहम् = अविमारकः । नगरपरिचितः = नगरस्य स्थितिभिः सुविदितः । रक्षिणः = रक्षापुरुषाः । ज्ञातसाराः = विदितसत्वाः । अर्धरात्रम् च = मध्यरात्रिश्च । तिमिरगहनभीमम्—तिमिरेण = अन्धकारेण, गहनम् = नितान्तम्, भीमम् = भयङ्करम् । वर्तते । असिरपि = खड्गोऽपि । सुसहायः = अतिसहायकः । अन्तरात्मा च निश्चयः = कृतसङ्कल्पः । इह = एतस्मिन् काले । बहुविचारैः = नानाविधविचारैः । किम् = किं प्रयोजनम् ? मया = अविमारकेण । कः अर्थः = किं कार्यम् । दुष्करः = दुःसाध्यः । सर्वेषु साधनेषु सत्सु कार्ये शैथिल्यस्य नैव वर्तते क्वाप्यवसर इति भावः । मालिनिवृत्तम् ॥२॥

प्रतिभयता = भयानकता ।

गर्भस्येति । अन्वयः—सर्वाः, प्रजाः, गर्भस्थाः, इव, निद्रया, मोहम्, अभ्युपगताः । सुखसुप्तनीरवजनाः, प्रासादाः, ध्यानम्, प्रविष्टाः, इव । सञ्चितेन,

---

मैं नगर से परिचित हूँ ही, रक्षकों का बल मुझे ज्ञात ही है, यह आधी रात का समय घने अन्धकार से काफी भयंकर हो रहा है । खड्ग भी मेरा सहायक है, अन्तरात्मा भी कृतसंकल्प है ही, तो फिर बहुत अधिक विचार करने की क्या आवश्यकता है ? कौन वैसा कार्य है जो मेरे लिए दुरूह हो सकता है ? ॥ २ ॥

अहो, अर्द्धरात्रि की यह भयानकता ! अभी—

सारी प्रजा गर्भस्थ शिशु की भाँति निद्रा से मुग्ध पड़ी है । सुखपूर्वक एवं निःशब्द सो रहे लोगों से युक्त ये महल मानो ध्यान-मग्न है । प्रगाढ

प्रग्रस्ता इव सञ्चितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ॥३॥

अद्यैव खलु वर्तते कालरात्रिः ।

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥४॥

तमसा, प्रग्रस्ताः, इव, नगाः । सकलम्, जगत्, अन्तर्धानमिव, प्रच्छन्नरूपम्, उपयाति ।

सर्वाः प्रजाः = सर्वे जनाः । गर्भस्था इव = मातृकुक्षिस्थिता इव । निद्रया मोहमभ्युपगताः = चैतन्यविरहिताः सञ्जाताः । सुखसुप्तनीरवजनाः = सुखेन सुप्ताः अत एव नीरवाः = निःशब्दाः जनाः यत्र तादृशाः । प्रासादाः = राजभवनानि । ध्यानम् प्रविष्टा इव = चिन्तनशीला इव मौनमाश्रित्य स्थिताः । सञ्चितेन = राशीभूतेन । तमसा = अन्धकारेण । प्रग्रस्ताः = निगीर्णा इव । नगाः = वृक्षाः । सकलं जगत् = सम्पूर्णम् विश्वम् । अन्तर्धानमिव = तिरोधानमिव । प्रच्छन्नरूपम् = अदृष्टिगोचरताम् । उपयाति = प्राप्नोति । शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम् ॥३॥

तिमिरमिवेति । अन्वयः—मार्गनद्यः, तिमिरमिव, वहन्ति, हर्म्यमालाः, पुलिननिभाः, प्रतिभान्ति । दश, दिशः, तमसि, निमग्नरूपाः, अयम्, अन्धकारः, प्लवतरणीयः, इव (जातः) ।

अन्धकार से ग्रस्त वृक्ष दिखाई नहीं दे रहे हैं अपितु स्पर्शमात्र से ही उनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है और सम्पूर्ण जगत् इस प्रकार छिप गया है मानो अन्तर्धान को प्राप्त हो रहा हो ॥३॥

आज ही कालीरात है ।

मार्गरूपी नदियों में मानो अन्धकाररूपी जल प्रवाहित हो रहा है, भवन नदी-तट के समान प्रतीत हो रहे हैं, दशों दिशायें अन्धकार में डूब गई हैं और अन्धकार इतना घना है कि मानो इसे नाव से ही पार किया जा सकता है ॥ ४ ॥

(परिक्रम्य कर्णं दत्वा) अये गान्धर्वध्वनिरिव श्रूयते। को नु खल्वयं सर्वकालसुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्वमनुभवति व्यक्तं स्वयं वीणां वादयति। कुतः,

उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जाला-
स्तन्त्रीनादः श्रूयते सानुनादम्।
बाह्यस्थानं व्यक्तमेवं प्रयोक्तुं
किं सामर्थ्यं स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् ॥५॥

मार्गनद्यः = वर्त्मरूपिण्यः सरितः। तिमिरमिव = अन्धकारमिव। वहन्ति = प्रवहमानाः सन्ति। हर्म्यमालाः = धनवताम् वासगृहसमूहाः। पुलिननिभाः = तटसदृशाः। प्रतिभान्ति = प्रतीयन्ते। दश दिशः = पूर्वपश्चिमादि दश दिशाः। तमसि = अन्धकारे। निमग्नाः = संलीना जाताः। अयमन्धकारः = एतादृशो घनान्धकारः। प्लवतरणीय इव = नौकया तार्य इव। प्रतिभातीति शेषः। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥४॥

गान्धर्वध्वनिः—संगीतध्वनिः। सर्वकालसुखी = सततमानन्दवान्। गान्धर्वमनुभवति = गीतवाद्यादिभिः समुत्पन्नेनानन्देनात्मानम्प्रसादयति। व्यक्तम् = स्फुटम्।

उच्चं हर्म्यमिति। अन्वयः—हर्म्यम्, उच्चम्, जालाश्च, सन्निरुद्धाः, तन्त्रीनादः सानुनादम्, श्रूयते। बाह्यस्थानम्, व्यक्तम्। एवम्, प्रयोक्तुम्, स्त्री-कराग्राङ्गुलीनाम्, किम्, सामर्थ्यम् ?

हर्म्यम् = भवनम्। उच्चम् = उन्नतम्। जालाश्च = गवाक्षाश्च। सन्निरुद्धाः = पिहिताः। तंत्रीनादः = वीणानिनादः। सानुनादम् = प्रतिध्वनियुक्तम्। श्रवणस्पष्टं यथा स्यात् तथा श्रूयते = कर्णगोचरीभवति। वाह्यस्थानम् =

(चलकर, कान देकर) अहा, गीत की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। कौन यह सर्वकाल-सुखी पुरुष है जो कान्ता के साथ गीतादि का आनन्द ले रहा है। स्पष्ट है कि वह स्वयं वीणा बजा रहा है। क्योंकि—

भवन ऊँचा है, खिड़कियाँ बन्द हैं, वीणा का शब्द प्रतिध्वनि के साथ सुनाई पड़ रहा है, वीणा का वाह्य स्थान (तार आदि) बिल्कुल स्पष्ट हैं। वीणा को इस प्रकार बजाने में स्त्री के हाथ की अंगुलियों में सामर्थ्य कहाँ से आ सकती है ॥ ५ ॥

गीतं तु पुनः स्त्रियाः। इह हि,

तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो
जातश्च नादो मुखनासिकेन।
स्थूलोऽपि हेतुः करतालनादः
सञ्जायते सद्वलयस्वनेन ॥ ६ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) हहह, अयमपरः कः क्रुद्धां कान्तां प्रसादयति! महान् खल्वस्यापराधः, येनेयमस्यां वेलायामपि न प्रसीदति। अथवा प्रसन्ना खल्वियं व्यपदेशमिच्छति। कुतः,

---

स्वरगततारत्वमान्द्रत्वादिकम्। व्यक्तम् = स्फुटम्। प्रतीयते इति शेषः। एवं प्रयोक्तुम् = इत्थं वीणां वादयितुम्। स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् = नारीकरस्थाङ्गुलीनाम्। किं सामर्थ्यम् = कुतः क्षमत्वम्? अर्थात् वीणाशब्देन ज्ञायते यत् केनचित्पुरुषेणैव भाव्यमिति। शालिनीछन्दः ॥५॥

तानस्त्विति। अन्वयः—विशदप्रवृत्तः, तानस्तु, मन्दः। नादश्च, मुखनासिकेन, जातः। स्थूलोऽपि, करतलनादः, सद्वलयस्वनेन, हेतुः, सञ्जायते।

गानम् काचित्स्त्री करोति, तत्र हेतुत्वमुपपादयति—तानस्त्विति। विशदप्रवृत्तः = स्फुटमारब्धः। तानः = लयनिस्सारणविधिः। मन्दः = अनतिस्थूलः। नादश्च मुखनासिकेन जातः = अनुनासिकस्वरयुक्तो ध्वनिः सञ्जायते। स्थूलोऽपि = दीर्घीभूतोऽपि। करतलनादः = करतलध्वनिः। लोके 'ताली' इति प्रसिद्धम्। सद्वलयस्वनेन = करस्थकङ्कणनिनादेन। हेतुः = कारणम्। सञ्जायते = प्रतीयते। वलयध्वनिना निश्चीयते यद् गायनं काचित्स्त्र्येव करोतीति भावः॥ ॥

क्रुद्धाम् = रुष्टाम्। कान्ताम् = प्रेयसीम्। प्रसादयति = अनुकूलयति।

गीत स्त्री का ही है। इसमें—

तान मन्द किन्तु स्फुट है, अनुनासिक स्वर में आवाज निकल रही है, स्थूल करताल वलय शब्द के साथ हो रहा है, इसी से यह सिद्ध हो रहा है कि गीत किसी स्त्री के द्वारा गाया जा रहा है॥ ६॥

(चलकर तथा देखकर) हः हः हः! यह दूसरा कौन है जो अपनी रुष्ट प्रिया को मना रहा है। इसका अपराध निश्चय ही बड़ा है। इसीसे यह (नायिका) इस समय भी नहीं मान रही है। या यह प्रसन्न है किन्तु यह कोई बहाना ढूंढ़ रही है। क्योंकि—

बाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठं
काऽहं तवेत्यसकलं प्रणयाद् वदन्ती ।
सद्भावतः प्रियवशं समुपागतापि
स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ॥ ७ ॥

को नु खल्वयं पक्षी भैरवस्वरः । आ उलूकः खल्वयम् । कथं हसितमनेन । उलूकस्वरश्रवणभीतया कान्तया परिष्वक्तः खल्वयं तपस्वी । सदृशं वयसः । किं परव्यापारवीक्षणम् । साधयामस्तावत् । (परिक्रम्य) को नु खल्वयमस्मिन् नगरापणालिन्दे सशङ्कितमतिस्निग्धां च सम्भाषते । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

वेलायाम् = समये । व्यपदेशम् = व्याजम् ।

बाष्पोपरुद्धेति । अन्वयः—बाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठम्, का, अहम्, तव, इति, असकलम्, प्रणयात्, प्रवदन्ती, सद्भावतः, प्रियवशम्, समुपागता, अपि, स्त्रीभावतः, प्रतिकूलमेव, प्रवदति ।

बाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठम्—बाष्पेण = अश्रुणा, उपरुद्धः = आकीर्णः, जडः, गद्गदः = श्लथवाक्प्रवृत्तिः, जिह्मः = कुटिलश्च कण्ठो यत्र तत्तथा । 'तवका अहम्' इत्यसकलम् = समस्तवर्णमनुच्चार्य । प्रणयात् = प्रेमहेतोः । वदन्ती = व्याहरन्ती । सद्भावतः = सौजन्यवशात् । प्रियवशं समुपागतापि = प्रियतममुपलभ्यापि । प्रतिकूलमेव = विपरीतमेव । प्रवदति = भणति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ७ ॥

भैरवस्वरः = भयानकशब्दकर्ता । परिष्वक्तः = आलिङ्गितः । सदृशं वयसः = अवस्थानुकूलम् । परव्यापारवीक्षणम् = अन्यदीयरहस्यावलोकनम् । साधयामः =

बाष्प के कारण उपरुद्ध, जड एवं गद्गद कण्ठ से वह "मैं तुम्हारी कौन लगती हूँ" ऐसा कह रही है । सद्भावनावश वह अपने प्रियतम के समीप होकर भी स्त्री-स्वभाव के कारण प्रतिकूल ही बोल रही है ॥ ७ ॥

यह भयानक शब्द करने वाला कौन पक्षी है ! ओह, यह तो उल्लू है । यह हँस क्यों रहा है ? उल्लू की आवाज को सुनकर डरी हुई यह नायिका अपने प्रेमी का आलिङ्गन कर रही है । ओह, दूसरों के गुप्त कार्यों को नहीं देखना चाहिये । आगे चलें । (चलकर) यह कौन नगरापण के बहिर्भाग में सभय एवं स्निग्ध भाषण कर रहा है ? यह तपस्वी तो हमारे जैसा ही है ।

सम्पीडय्यते परिजनेन शनैर्वदेति
संविग्नवद् भवति भूषणनिस्वनेन ।
सङ्गं वदत्यसुखदं मदनाभिभूतः
सङ्केतमिच्छति च नेच्छति चाभिगन्तुम् ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य) अये, ज्योत्स्ना । नैषा ज्योत्स्ना, उभयपङ्क्तिगतानां प्रासादानां गवाक्षान्तरगता दीपप्रभैषा । इह खलु प्रयत्नादात्मा रक्षितव्यः । अये अयं तु तस्करः । एष हि,

---

गच्छामः । नगरापणालिन्दे = नगरापणस्य बाह्यभागे । सशङ्कितम् = सभयम् । अतिस्निग्धञ्च = अतिस्नेहयुक्तम् । अस्मत्सब्रह्मचारी = अस्मत्सदृशः ।

सम्पीडयत इति । अन्वयः = परिजनेन, शनैः, वदेति, सम्पीडयते, भूषणनिस्वनेन, संविग्नवद्, भवति । सङ्गम्, असुखदम्, वदति । मदनाभिभूतः, सङ्केतम्, इच्छति, च, अभिगन्तुम्, न, इच्छति ।

परिजनेन = आत्मीयजनेन । शनैर्वदेति = उच्चैःस्वरेण यथा न स्यात्तथा ब्रूहीति । सम्पीडयते = बाध्यते । भूषणनिस्वनेन = कामिनिशरीरस्थालङ्कारशब्देन । संविग्नवत् = उद्विग्न इव । भवति = जायते । सङ्गम् = प्रियासङ्गम् असुखदम् = अकल्याणकारकम् । वदति = अभिधत्ते । मदनाभिभूतः = कामाविष्टः । सङ्केतम् = प्रियासङ्गमायेप्सितम् स्थानविशेषम् । इच्छति = कामयते । किन्तु अभिगन्तुम् = तत्र सङ्केतस्थलं गन्तुम् । नेच्छति = नोत्सहते । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ८ ॥

ज्योत्स्ना = चन्द्रिका । दीपप्रभैषा = अयम् दीपकालोकः । तस्करः = चोरः ।

परिजन इसे धीरे-धीरे बोलने को बाध्य कर रहे हैं । यह आभूषणों की झङ्कृति को सुनकर उद्विग्न हो जाता है । यह सङ्गम को सुखप्रद नहीं बताता फिर भी कामाविष्ट होने पर यह मिलन-स्थल की इच्छा रखता है किन्तु वहाँ तक जाना नहीं चाह रहा है ॥ ८ ॥

(चलकर) अरे, यह चाँदनी है । नहीं, नहीं, यह चाँदनी नहीं है । यह तो दोनों पंक्तियों में वर्तमान महलों की खिड़कियों से छनकर आ रही दीप-प्रभा है । यहाँ प्रयत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये । अरे, यह तो चोर है । क्यों कि यह—

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः
परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः ।
द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी
भवति च पादनिपातनादभीरुः ॥ ९ ॥

हन्त, परिहरिष्याम्येनम् । (एकान्ते स्थितः) गतो नृशंसः । वयमपि तावत् प्रतिष्ठामहे । (परिक्रम्य) अये, रक्षिणः खल्वेते । किन्तु खल्विदानीं करिष्ये । भवतु दृष्टम् । इमां शृङ्गाटकस्थां विटसभां प्रविशामि । (विलङ्घ्य स्थित्वा)

दृढपरिकरेति । अन्वयः—दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः, परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः, द्रुतगतिः, अपि, दीपिकावलोकी, पादनिपातनादभीरुः, च भवति ।

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः=दृढपरिकरस्य बन्धनेन हृष्टम्=प्रसन्नं, चित्तम्=हृदयम् यस्य तादृशः । परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः परकीयगृहवार्तालापे संलग्ना दृष्टिश्चेष्टा च यस्य तादृशः । अन्यस्य गृहे का वार्ता भवति इति द्रष्टुं यः सततं चेष्टते स इति भावः । द्रुतगतिरपि=शीघ्रगामी अपि । दीपिकावलोकी=प्रकाशद्रष्टा । पादनिपातनात्=चरणन्यासात् । अभीरुः=निर्भयः । भवति=जायते । एभिर्लक्षणैः प्रतीयते यदनेन नूनमेव चौरेण भाव्यमिति तात्पर्यम् ॥ ९ ॥

परिहरिष्यामि=त्यक्ष्यामि । नृशंसः=क्रूरवृत्तिः । प्रतिष्ठामहे=प्रस्थानं कुर्मः । शृङ्गाटकस्थाम् विटसभाम्=चतुष्पथस्थितम् विटोपवेशनस्थलम् ।

मजबूत पगड़ी बाँध लेने से इसका चित्त प्रसन्न लग रहा है । दूसरों के घर की बात सुनने-देखने में इसकी दृष्टि लगी रहती है । शीघ्र चलता है, फिर भी दीपक देखकर भी भय-रहित होकर पाँव बढ़ाये जा रहा है ॥ ९ ॥

अच्छा, इसे छोड़ दूँगा । (एकान्त में खड़ा हो जाता है) चला गया दुष्ट । मैं भी अब जाता हूँ । (चलकर) अरे, ये तो रक्षक लोग हैं । अब क्या करूँ ? खैर, देख लिया । इसी चौराहे की विटसभा में प्रवेश करता हूँ । (लाँघकर, खड़ा होकर)

आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां
मामभ्युपेत्य हसतीव ममैष खड्गः।
नैते तु रक्षिपुरुषा मम भारभूता
मत्कार्यसाधनपरोऽहमिह प्रविष्टः ॥ १० ॥

गता रक्षिणः। के रक्षन्ति रक्षितात्मानम्।

अबहुपुरुषपक्षमेत्य शौर्यं
निशि विचरन्ति सरागलोभमोहाः।
इह तु पुरुषकारसारसाक्षी
बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः ॥ ११ ॥

आरक्षिणामिति। अन्वयः—मितविक्रमाणाम्, आरक्षिणाम्, विमुखम्, माम्, अभ्युपेत्य, एष, मम, खड्गः, हसति, इव। तु, एते, रक्षिपुरुषाः, मम, भारभूताः न, अहम्, इह मत्कार्यसाधनपरः, प्रविष्टः।

मितविक्रमाणाम्=परिमितबलशालिनाम्। आरक्षिणाम्=रक्षापुरुषाणाम्। विमुखम्=पराङ्मुखम्। माम्=अविमारकम्। अभ्युपेत्य=ज्ञात्वा। एष मम खड्गः=मत्करस्थोऽयमसिः। हसति इव=ममोपहासं करोति इव। तु=किन्तु। एते रक्षिपुरुषाः=आरक्षकाः। मम भारभूताः=मम मार्गे विघ्नस्वरूपाः, न। अहमिह=अहमत्र। मत्कार्यसाधनपरः=स्वाभिलषितं पूरयितुं सयत्नः सन्। प्रविष्टः=समायातः। रक्षापुरुषैः सह विरोधस्य नैव प्रसरति कश्चनावसरः। अतो निर्विघ्नमेव स्वकर्म्यम् साधनीयमिति भावः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ १०॥

रक्षितात्मानम्=आत्मरक्षणक्षमम्।

अबहुपुरुष इति। अन्वयः—अबहुपुरुषपक्षम्, शौर्यम्, एत्य, सरागमोहलोभाः, निशि, विचरन्ति। इह, तु, पुरुषकारसारसाक्षी, रात्रिचारः, बहुविषमः, सुखश्च।

साधारण पराक्रम वाले रक्षकों से विमुख पाकर मेरा यह खड्ग मुझ पर हँस रहा है, किन्तु ये रक्षक मेरे मार्ग के विघ्न तो नहीं हैं और मैं तो अपना कार्य सिद्ध करने के लिए यहाँ आया हूँ॥ १०॥

रक्षक चले गये। जो स्वयं अपनी रक्षा करते हैं उनकी रक्षा कौन करेगा?

थोड़े व्यक्तियों द्वारा प्राप्य पराक्रम को पाकर राग, लोभ एवं मोह से

एतद् राजकुलम् । अहो स्थिरत्वमुच्छ्रितत्वं प्राकारस्य । इह खलु प्रयुज्यते पुरुषाणां कक्ष्यावन्धः । अथवा प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः, यदि स्थिराः-कपिशीर्पकाः । इह स्थित्वा रज्जुं प्रक्षिपामि । नमः प्रजापतये । नमः सर्वसिद्धेभ्यः । प्रसीदन्तु वलिशम्बरमहाकालाः । विजृम्भतां रात्रिः । वर्धतां निद्रा । अनुमन्यतां पन्था । लयं गताः सर्वविघ्ना भवन्तु । हताः परिपन्थिका भवन्तु । जयतु भगवती कात्यायनी । (रज्जुं क्षिप्त्वा) हन्त, वद्धः कर्कटकरज्ज्वा कपिशीर्पकः । अहो भवित-

---

अवहुपुरुषपक्षम् = स्वल्पजनप्राप्यम् । शौर्यम् = पराक्रमम् । एत्य = उपलभ्य । सरागलोभमोहाः = रागेण, लोभेन, मोहेन च समन्विताः । जनाः । निशि = रात्रौ । विचरन्ति = भ्रमन्ति । इह = राजभवने तु । पुरुषकारसारसाक्षी = पौरुपस्य प्रमाणयिता । रात्रिचारः = रात्रिभ्रमणम् । वहुविपमः = अतिकठिनः । सुखश्च = सुगमश्च, मस्तीति शेपः ॥ ११ ॥

उच्छ्रितत्वम् = उत्तुङ्गत्वम् । प्राकारस्य = सालस्य । अभितः रक्षणार्थं यष्टिमाकण्टकादिरचितवेष्टनं प्राकारः । तथा हि—'प्राकारो वरणः सालः' इत्यमरः । कक्ष्यवन्धः = परिकरवन्धनम् । कपिशीर्पकाः = कपिमस्तकतुल्यम् निर्मितमुच्चस्थानम् । विजृम्भिताम् = दीर्घीभवतु । अनुमन्यताम् = अनुज्ञायताम् । परिपन्थिकाः = अरयः । 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विपद्द्वेषणदुर्हृदः । द्विड्विपक्षाऽ-

---

युक्त व्यक्ति रात्रि में विचरण करते रहते हैं, किन्तु राजमहल में विचरण करना निःसन्देह वहुत ही कष्टसाध्य, सुखकर एवं असाधारण पुरुषार्थ को प्रकट करने वाला होता है ॥ ११ ॥

यह राजमहल है । अरे, इस प्राकार की स्थिरता और ऊँचाई तो देखो ! यहीं पुरुषों को परिकर वाँधना पड़ता है । अथवा मैं तो प्रविष्ट हो ही गया हूँ । यदि ये कंगूरे मजवूत हैं तो इन्हीं पर रस्सी फेंकता हूँ । प्रजापति को प्रणाम है । सभी सिद्धों को नमस्कार । वलिशम्वर तथा महाकाल मुझ पर प्रसन्न हों । रात वढ़ जाय, नींद गाढ़ी हो जाय । भगवती कात्यायनी की जय हो । (रस्सी फेंककर) वाह, इस केकड़े के समान रस्सी से कंगूरा वँध गया । अहा, भवितव्यता का ही क्या प्रभाव है । एक ही वार फेंकने से रस्सी

व्यस्य प्रभावः । एकेनैव क्षेपेण सुसंसक्तां रज्जुं कार्यसिद्धिमिव पश्यामि । अहो बलवान् हि भगवान् प्रजापतिः । कुतः,

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥ १२ ॥

भवतु रज्जुमवलम्ब्यारोहामि । (आरुह्य दृष्ट्वा) अहो राजकुलस्य श्रीः ।

हिताऽमित्रदस्युशात्रवशत्रवः । अभिघातिपराऽराति प्रत्यर्थि परिपन्थिनः' चामरः ।

यत्ने कृते इति । अन्वयः—यत्ने, कृते, यदि, न सिद्धयति, कः, अत्र, दोषः? कः, वा, न सिद्धयति, मम, इति, कार्यम्, करोति । इह, शुभैः, यत्नैः, नृणाम्, पुरुषता, भवति । कार्यसिद्धिः, दैवम्, विधानम्, अनुगच्छति ।

यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः = सामर्थ्यानुसारं प्रयासे कृतेऽपि यदि साफल्यन्नैव प्राप्तम् तर्हि प्रयत्नकर्त्तुस्तत्स्खलनन्नैवावगन्तव्यमिति भावः । को वा = एतादृशः कः । न सिद्धयति ममेति = मम कार्यं फलं न स्यादिति मत्वा । करोति कार्यम् = प्रयत्नं विधत्ते । सर्वे जनाः साफल्याशयैव यत्नमाचरन्तीत्याशयः । इह = अस्मिन् संसारे । शुभैः यत्नैः = अनुकूलप्रयासैरेव । नृणाम् = पुरुषाणाम् । पुरुषता = पौरुषम् । भवति = सिद्धयति । कार्यसिद्धिः = कार्यसाफल्यम् । दैवम् विधानमनुगच्छति = भाग्याधीनतामनुसरति ॥ १२ ॥

श्रीः = लक्ष्मीः

फँस गई । इससे लगता है कि कार्य में सफलता जरूर मिलेगी । अहा, भगवान् प्रजापति बलवान् हैं । क्योंकि—

यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो इसमें किसका दोष है? कौन नहीं चाहता कि मेरा कार्य सिद्ध हो । शुभ प्रयत्नों से ही पुरुषों का पौरुष सधता है । काम की सफलता तो भाग्य पर निर्भर रहती है ॥ १२ ॥

अच्छा, रस्सी पकड़कर चढ़ता हूँ । (चढ़कर, देखकर) अहा, राजकुल की कैसी शोभा है !

विपुलमपि मितोपमं विभागा-
न्निविडमिवाभ्युदितं क्रमोच्छ्रयेण ।
नृपभवनमिदं सहर्म्यमालं
जिगमिषतीव नभो वसुन्धरायाः ॥ १३ ॥

इह तु न स्थातव्यम् । अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्ना भवन्ति । भवतु, अनयैव रज्ज्वावतरिष्यामि । (अवतीर्य) क्व नु खल्विदानीं रज्जुं प्रच्छादयामि (विचिन्त्य) भवतु दृष्टम् । अस्यां हस्तिशालायां पाशं क्षिप्त्वा क्षिपामि । (प्रक्षिपति । परिक्रम्य)

विपुलमपीति । अन्वयः—विपुलमपि, विभागात्, मितोपमम्, क्रमोच्छ्रयेण, निविडमिव, अभ्युदितम् । इदम्, सहर्म्यमालम्, नृपभवनम्, वसुन्धरायाः, नभः, जिगमिषति, इव ।

विपुलमपि = विशालमपि । विभागात् = तत्तद्विभागवशात् । मितोपमम् = परिमितमिव । क्रमोच्छ्रयेण = क्रमिकोन्नयनवशात् । निविडमिव = सघनमिव । अभ्युदितम् = प्रतीयते इति भावः । इदं सहर्म्यमालम् = एतत् सप्रासादपरम्परम् । नृपभवनम् = राजप्रासादः । वसुन्धरायाः = पृथिव्याः । नभः = अन्तरिक्षम् । जिगमिषतीव = गन्तुमिच्छति इव । तादृशमुन्नतं राजभवनं यदवलोकनेन प्रतीयते यत्पृथ्वीं त्यक्त्वाऽन्तरिक्षं गन्तुमुत्सहते एतदिति भावः ॥ १३ ॥

अट्टालम् = गृहस्योपरितनो भागः । प्रतोली = रथ्या । 'रथ्याप्रतोली विशिखे' इत्यमरः । इन्द्रपथः = मुख्यमार्गम् । प्रच्छादयामि = निगूहयामि ।

विशाल होने पर भी विभक्त होने के कारण यह राजकुल नपा-तुला-सा लग रहा है । क्रमशः ऊँचे उठे रहने के कारण घना-सा लग रहा है । प्रासाद परम्परा से युक्त यह नृप-भवन मानो पृथ्वी से उठकर आकाश की ओर जा रहा हो, ऐसा ही लगता है ॥ १३ ॥

यहाँ नहीं ठहरना चाहिये । अटारी, गली तथा चौराहे से ही सभी विघ्न आते हैं । अच्छा, इसी रस्सी से नीचे उतरूँगा । (उतरकर) अब इस रस्सी को कहाँ छिपाऊँ ? (सोचकर) खैर, देख लिया । इस हस्तिशाला में गाँठ खोलकर रख देता हूँ । (फेंकता है । चलकर)

अये तन्त्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः

अन्यतो यास्यामि ।

अये गन्धामोदो गजवरमदोद्बोधितपटुः ।

मुहूर्तं स्थित्वा यास्यामि ।

प्रभैषा दीपानामिह तु वितता रक्षिपुरुषाः

का गतिः ।

चिराद् रात्रौ शान्तं सह कमलषण्डैर्नृपगृहम् ॥ १४ ॥

यास्यामि । एष तयोक्तो मार्गः । अयं मन्दाकिनी । असौ दारुपर्वतकः । इयमुपस्थानसभा । अये अयं कन्यापुरप्रासादः । एष तु

अये तन्त्रीति । अन्वयः—अये, युवतिकलगीतध्वनियुतः, तन्त्रीनादः, अयम्, गजवरमदोद्बोधितपटुः, गन्धामोदः, एषा, दीपानाम्, प्रभा, इह, तु, रक्षिपुरुषाः, वितताः, रात्रौ, चिरात्, नृपगृहम्, कमलषण्डैः, सह, शान्तम् ।

अये = आश्चर्यम् । युवतिकलगीतध्वनियुक्तः = कामिनिकण्ठनिर्गतमधुरगीतध्वनिसमन्वितः । तन्त्रीनादः = वीणाशब्दः । श्रूयते इति शेषः । गजवरमदोद्बोधितपटुः—गजवरस्य = हस्तिश्रेष्ठस्य, मदेन = दानवारिणा, उद्बोधितः पटुश्च । गन्धामोदः = सुगन्धः । व्याप्नोतीति शेषः । एषा दीपानाम् प्रभा = प्रकाशः । इह तु = अत्र हि । रक्षिपुरुषाः = रक्षकाः । वितताः = चतुर्षु दिक्षु इतस्ततः प्रसृता इति भावः । रात्रौ = निशायाम् । चिरात् = बहुकालानन्तरम् । नृपगृहम् = राजभवनम् । कमलषण्डैः सह = कुमुदवनैः सह । शान्तम् = निहंतम् । जातमिति शेषः ॥ १४ ॥

मन्दाकिनी = कृत्रिमा नदी । दारुपर्वतकः = कृत्रिमगिरिः । उपस्थानसभा =

अरे ! यह युवतिकण्ठ-गीत से युक्त वीणा की आवाज है, दूसरी ओर जाऊँगा । हाथियों के मदजल से उत्पन्न यह सुरभि फैल रही है । थोड़ा रुककर जाऊँगा । यह दीपकों का प्रकाश है, यहाँ रक्षक लोग फैले हुए हैं । बहुत रात गये यह राजकुल कमलवनों के साथ ही शान्त हो पाता है ॥१४॥

जाऊँगा । यही तो उसका बताया हुआ मार्ग है । यही मन्दाकिनी है । यही दारुपर्वत है । यही उपस्थान सभा है । ओहो, यही कन्यान्तःपुर का

काष्ठकर्मबहुलतया समासन्नजालत्वाच्च सुखमारोढुम् । अथवा दुरारोहश्चेत्,

कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषा-
द्धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का ।
संसक्तनालगतकण्टकभीतचेता-
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणी जहाति ॥ १५ ॥

भवत्वारोहामि । (आरुह्य) इदं तयोक्तं जालयन्त्रम् । (विघाट्य प्रविश्यावलोक्य च) साधु कुन्तिभोज ! साधु । उत्प्रहसित इव भवनेनानेन स्वर्गः । तथाहि,

---

यत्र प्रजाः राज्ञा सह साक्षात्कुर्वन्ति तद् गृहम् । काष्ठकर्मबहुलतया = नानाविधकाष्ठनिर्मितगवाक्षादियुक्ततया । समासन्नजालत्वात् = समीपस्थगवाक्षत्वात् । दुरारोहः = कष्टेनारोहणम् ।

कान्तासमीपमिति । अन्वयः—मनोऽभिलाषात्, कान्तासमीपम्, उपगम्य, हर्म्याधिरोहणमतेः, मम, का, विशङ्का ? संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः, कः, तृषार्दितः, इह, पुष्करिणीम्, जहाति ।

मनोभिलाषात् = प्रेमपूर्णमनोरथात् । कान्तासमीपम् = प्रियतमायाः निकटम् । उपगम्य = समागत्य । हर्म्याधिरोहणमतेः = प्रासादारोहणात् । मम का विशङ्का = को वितर्कः ? संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः = नालगतेन कण्टकेन, भीतम् = भयम् प्रापितम्, चेतः = हृदयम् यस्य तादृशः कः । तृष्णार्दितः =

प्रासाद है । इसमें लकड़ी का अधिक काम किया गया है और खिड़की भी समीप होने के कारण इस पर आसानी से चढ़ा जा सकता है । अथवा यदि चढ़ना कठिन भी होगा, तो भी—

स्नेहाधिक्यवश प्रियतमा के पास आकर प्रासाद पर चढ़ने में मुझे कैसी आशङ्का ? नाल में पड़े हुए कण्टक के डर से कौन व्यक्ति कमलिनी को छोड़ देता है ॥ १५ ॥

अच्छा, चढ़ता हूँ (चढ़कर) यही उसके द्वारा बताया गया जालयन्त्र है । (खोलकर, प्रवेशकर एवं देखकर) वाह, कुन्तिभोज, वाह ! तुम्हारे इस महल ने तो स्वर्ग को भी नीचा दिखा दिया है । जैसे—

हंसाः स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु
वैदूर्यमौक्तिककृताः सिकताप्रतानाः ।
स्तम्भाः प्रवालविहिताः किमिह प्रलापै-
र्मन्दीभवन्ति मणिदीपहताः प्रदीपाः ॥ १६ ॥

अलं रौद्रवेषेण । (चोरवेषमपनीय कक्ष्यावन्धं विमुञ्चति)

नलिनिका—को णु खु वुत्तन्तो भट्टिदारअस्स । भट्टिदारिआ वि अवत्थादुल्लहं णिद्दं लभदि अज्ज उ मम पिओ आअच्छदि त्ति सुदमत्तेण एव । [को नु खलु वृत्तान्तो भर्तृदारकस्य । भर्तृदारिकाप्यवस्थादुर्लभां निद्रां लभते अद्य तु मम प्रिय आगच्छतीति श्रुतमात्रेणैव ।]

तृष्णाकुलः । पुष्करिणीम् = कमलिनीम् । जहाति = मुञ्चति । यथा नालगतकण्टकभयेन पुष्करिण्यास्त्यागो नोचितस्तथैव प्रियासमीपमागत्य तस्याः परिहारोऽपि सर्वथाऽनुचित एवेति भावः ॥ १५ ॥

उत्प्रहसितः = न्यूनीकृतः ।

हंसा इति । अन्वयः—मणिरत्नशिलातलेषु, हंसाः, स्वपन्ति, सिकताप्रतानाः, वैदूर्यमौक्तिककृताः, स्तम्भाः, प्रवालविहिताः, किम् ? मणिदीपहताः प्रदीपाः मन्दीभवन्ति ।

मणिरत्नशिलातलेषु = मणिरत्नमयप्रस्तरखण्डेषु । हंसाः = हंसाभिधाः पक्षिणः । स्वपन्ति = निद्रासुखमालभन्ते । सिकताप्रतानाः = वालुकाराशयः । वैदूर्यमौक्तिककृताः = वैदूर्याभिधैर्मणिभिः मौक्तिकैश्च निर्मिताः । सन्तीति शेषः । स्तम्भाः, प्रवालविहिताः = प्रवालनिर्मिताः । इह = अत्र । प्रलापैः = निरर्थकजल्पनैः । किम् = किम् फलम् ? प्रदीपाः मन्दीभवन्ति = हतप्रकाशाः जायन्ते ॥ १६ ॥

मणिरत्नमय शिलाखण्डों पर हंस शयन कर रहे हैं, वालुकाराशि वैदूर्य तथा मोती से बनी है, खंभे मूँगे के बने हैं, अधिक क्या, प्रदीप भी मणिदीप से पराजित होकर मन्द पड़ रहे हैं ॥ १६ ॥

यह भयानक वेश अब बेकार है । (चोर-वेष छोड़कर परिकर-बन्धन खोलता है)

नलिनिका—राजकुमार का क्या समाचार है ? राजकुमारी भी वियोगावस्था में दुर्लभ गाढ़ी नींद में 'मेरे प्रिय आरहे हैं' यह सुनकर ही सो रही हैं ।

अविमारकः—(श्रुत्वा सहसोपसृत्य) भवति ! अयं मे वृत्तान्तः ।

नलिनिका—(विलोक्य सहर्षम्) साअदं भट्टिदारअस्स । [स्वागतं भर्तृदारकस्य ।]

अविमारकः—(दृष्ट्वा सानन्दम्) इयमियं सा । यत्र मम

दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव साङ्गं
बुद्धिस्त्वरां व्रजति बोधयतीव सुप्तान् ।
रागोऽभिचोदयति सादयतीव चाङ्गं
हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा ।। १७ ।।

भर्तृदारकस्य = राजकुमारस्याविमारकस्य । भर्तृदारिका = कुरङ्गी । अवस्थादुर्लभाम् = वियोगावस्थायाम् दुष्प्रापाम् , निद्रामिति तात्पर्यम् । श्रुतमात्रेणैव = श्रवणमात्रेणैव ।

दृष्टिर्नेति । अन्वयः—दृष्टिः, न तृप्यति, सा, अङ्गम्, परिष्वजति, इव, बुद्धिः, त्वराम्, व्रजति, सुप्ताम्, बोधयति, इव, रागः, अभिचोदयति, अङ्गम्, च सादयति, इव, अन्तरात्मा, च, हर्षात्, प्रसीदति, विमुह्यति च ।

दृष्टिः = मम नयनम् । न तृप्यति = न तुष्यति । सा = दृष्टिः । अङ्गम् = कान्ताशरीरावयवम् । परिष्वजति = आलिङ्गति इव । बुद्धिः त्वरां व्रजति = मतिः शीघ्रकारितां समासादयति । सुप्ताम् = निद्रामग्नाम् प्रियाम् । बोधयति = जागरयति इव । रागः = आसक्तिः । अभिचोदयति = प्रेरयति । अङ्गम् = मदीयशरीरावयवम् । सादयति = क्लेशयति । अन्तरात्मा च हर्षात् प्रसीदति = प्रसन्नो भवति । विमुह्यति च = मोहमाप्नोति च ।। १७ ।।

अविमारक—(सुनकर सहसा नजदीक जाकर) देवि ! यही मेरा समाचार है ।

नलिनिका—(देखकर) राजकुमार का स्वागत है ।

अविमारक—(देखकर आनन्द पूर्वक) यही तो वह है जिसमें—

मेरी नजर तृप्त नहीं हो पा रही है, अङ्गों का आलिङ्गन-सा कर रही है, बुद्धि जल्दीबाजी कर रही है और सोती हुई प्रिया को जगा-सी रही है, उत्कण्ठा प्रेरित कर रही है, अङ्ग सन्न हो रहे हैं, अन्तरात्मा हर्ष के कारण प्रसन्न भी हो रहा है और मुग्ध भी ।। १७ ।।

नलिनिका—(आत्मगतम्) एसो खु भअवं कामदेवो ओघो विअ उभअपक्खं पीडेइ । (प्रकाशम्) भट्टिदारअ ! अलङ्करीअदु सअणअलं। [एष खलु भगवान् कामदेव ओघ इवोभयपक्षं पीडयति । भर्तृदारक ! अलंक्रियतां शयनतलम् ।]

अविमारकः—बाढम् । (उपविशति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! किं ओबोधेमि भट्टिदारिअं [भर्तृदारक ! किमवबोधयामि भर्तृदारिकम् ।]

अविमारकः—भद्रे ! अलमलं बालचापलेन । पश्य,

अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो
मतिश्च मूढा सुचिराभिलाषात् ।
कामार्णवस्याद्य तु दृष्टिपारं
चेक्रीडयतां मे सुखमक्षियुग्मम् ।। १८ ।।

ओघ इव = जलमिव । उभयपक्षम् = तटयुगम् । अवबोधयामि = जागरयामि । बालचापलेन = बालोचितचाञ्चल्येन ।

अहमिति । अन्वयः—अहम्, द्विनेत्रः, सहस्रनेत्रः, न, सुचिराभिलाषात्, मतिः, मूढा, अद्य, कामार्णवस्य, तु, दृष्टिपारम्, मे, अक्षियुग्मम्, सुखम्, चेक्रीड्यताम् ।

अहम् = अविमारकः । द्विनेत्रः = द्विनयनवान् । सहस्रनेत्रः न = सहस्रनेत्रयुक्तो न । सुचिराभिलाषात् = चिरप्रतीक्षितमनोरथवशात् । मतिः = मम बुद्धिः ।

नलिनिका—(स्वगत) यह भगवान् कामदेव जलराशि की भाँति दोनों ही तटों (पक्षों) को पीड़ित कर रहे हैं। राजकुमार, इस शयन-तल को सुशोभित करें।

अविमारक—ठीक है । (बैठता है)

नलिनिका—राजकुमार ! क्या मैं राजकुमारी को जगा दूँ ?

अविमारक—भद्रे ! लड़कपन मत करो । देखो—

मेरे पास दो ही आँखें है, हजार आँखों वाला मैं नहीं हूँ। चिरकाल की अभिलाषा के कारण मेरी बुद्धि मूढ हो रही है। काम-समुद्र को पारकर आज मेरी आँखें सुखपूर्वक जितनी चाहे क्रीडा कर लें ।। १८ ।।

नलिनिका—जाणामि जाणामि भट्टिदारिअं अन्तरेण भट्टिदारअस्स परिस्समं। [जानामि जानामि भर्तृदारिकामन्तरेण भर्तृदारकस्य परिश्रमम्।]

अविमारकः—अद्य सफलो मे परिश्रमः।

कुरङ्गी—(बुद्ध्वा) हला ! किं णिरणुकोसेण भणिअं [हला ! किं निरनुक्रोशेन भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! भणिदं खु मए पुढमं। [भर्तृदारिके ! भणितं खलु मया प्रथमम्]

अविमारकः—प्राप्तं खलु मया जीवितस्य फलं,येनेयमीदृशं मोहं गता।

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) हं परिब्भट्ठम्हि। (प्रकाशम्) हला ! किं मए भणिदं। [हं परिभ्रष्टास्मि ! किं मया भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! किञ्चि ण मन्तिदं [भर्तृदारिके ! किञ्चिन्न मन्त्रितम्।]

अविमारकः—अयमस्या मोहविस्तरेण द्वितीयो मे मोहः।

मूढा = कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य-विवेचनाक्षमा। अद्य = इदानीम्। कामार्णवस्य = कामसागरस्य। दृष्टिपारम् = अन्तं प्राप्तवन्। मे = मम। अक्षियुग्मम् = नयनद्वयम्। सुखम् चेक्रीड्यताम् = निर्विघ्नं क्रीडां करोतु॥ १८॥

निरनुक्रोशेन = निष्ठुरेण। परिष्वजस्व = आलिङ्ग्य।

नलिनिका—जानती हूँ, जानती हूँ, राजकुमार के बिना आपको कैसा परिश्रम हो रहा है।

अविमारक—आज मेरा परिश्रम सफल हुआ।

कुरङ्गी—(जागकर) अरे, उस निर्दयी ने क्या कहा ?

नलिनिका—राजकुमारी ! वही तो मैंने पहले ही कह दिया था।

अविमारक—मैं जीवन के फल को पा गया जब कि मेरे लिए यह मूर्च्छित हो रही है।

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं भटक गई थी ! (प्रकट) सखि ! मैंने क्या कहा था ?

नलिनिका—राजकुमारी, आपने कुछ भी तो नहीं कहा था।

अविमारक—इसके मोह के विचार से मुझे दूसरा मोह हो रहा है।

कुरङ्गी—णलिणिए ! चिरं खु उवविट्ठा । का वेला । [नलिनिके ! चिरं खलूपविष्टा । का वेला ।]

नलिनिका—संवुत्तं अद्धरत्तं । [संवृत्तोऽर्धरात्रः ।]

कुरङ्गी—तेण हि परिस्सन्तासि । एहि परिस्सजेहि मं । [तेन हि परिश्रान्तासि । एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—(अपवार्य) अहं संवाहेमि । भट्टिदारअ ! परिस्सजेहि भट्टिदारिअं । [अहं संवाहयामि । भर्तृदारक ! परिष्वजस्व भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—(सहर्षम्) बाढम् । एवमेव त्वमपि प्रियशतानि शृणु ।

कुरङ्गी—अलं अदिसिणेहेण । एहि दाव । [अलमतिस्नेहेन । एहि तावत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि । [भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

कुरङ्गी—(बलादाकृष्याविमारकमालिङ्गति) हं को दाणिं मं संवाहेदि । [हं क इदानीं मां संवाहयति ।]

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ । [एवमिव ।]

कुरङ्गी—(ससम्भ्रमम्) हा हीण चारित्तं । भीदम्हि । [हा हीनं चारित्रम् । भीतास्मि ।]

कुरङ्गी—नलिनिके, मैं बहुत देर से बैठी हूँ । क्या समय हुआ है ।

नलिनिका—आधी रात हो रही है ।

कुरङ्गी—इसीलिए थक गई हूँ । आ, मुझसे लिपट जा ।

नलिनिका—(छिपकर) मैं पाँव दबाती हूँ ! राजकुमार ! आप राजकुमारी को आलिङ्गित करें ।

अविमारक—(सहर्ष) अच्छी बात है । इसी प्रकार तुम भी प्रिय कथायें सुनती रहो ।

कुरङ्गी—अधिक स्नेह की आवश्यकता नहीं । शीघ्र आओ ।

नलिनिका—राजकुमारी, यहीं तो हूँ ।

कुरङ्गी—(बलपूर्वक अविमारक का आलिङ्गन करती है) अरे, इस समय मेरे पाँव को कौन दबा रहा है ?

नलिनिका—(कान में) यह बात है ।

कुरङ्गी—(घबड़ाकर) हाय, मेरा चरित्र भ्रष्ट हो गया । मैं डरती हूँ ।

अविमारकः—

न त्वं प्रिये ! मम नवासि मनोभियोगात्
किं कम्पसे पवनवेगहता लतेव।
भद्रे ! भयं त्यज कुरुष्व मयि प्रसादं
किं वा प्रलप्य वहुधा शरणागतोऽस्मि ॥ १९ ॥

(कुरङ्गी सलज्जं नलिनिकां विलोकयति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि। भट्टिदारिआ भणादि। उट्ठेहि किल। [भर्तृदारक ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। भर्तृदारिका भणति। उत्तिष्ठ किल।]

अविमारकः—बाढम्। (उत्तिष्ठति)

(प्रविश्य)

न त्वं प्रिये इति। अन्वयः—प्रिये ! त्वम्, मनोभियोगात्, मम, न, वा, न, असि। पवनवेगहता, लता, इव, किम्, कम्पसे ? भद्रे ! भयम्, त्यज, मयि, प्रसादम्, कुरुष्व, किं वा, वहुधा, प्रलप्य, शरणागतः, अस्मि।

प्रिये = हे प्रियतमे ! त्वम् मनोभियोगात् = चिरसंकल्पितप्रणयवशात्। मम न वा नासि = मद्धेतोरज्ञाता न वर्तसे। पवनवेगहता = वायुवेगप्रताडिता। लतेव = लतिकेव तन्वी त्वम्। किम् कम्पसे = कथम् वेपसे ? अयि भद्रे ! भयम् = भीतिम्। त्यज = मुञ्च। मयि प्रसादं कुरुष्व = ममोपरि प्रसन्ना भव। किं वा वहुधा प्रलप्य = निरर्थकजल्पनेन किं फलम् ? शरणागतोऽस्मि = अहं तवाश्रयणे स्वयमागतोऽस्मि। अतो भयं त्यक्त्वा प्रहर्षमाप्नुहीति भावः ॥ १९ ॥

अविमारक—प्रिये ! चिरप्रेम के कारण तुम मेरे लिए नई नहीं हो। तुम व्यर्थ ही पवन चालित लता के समान काँप रही हो। भद्रे ! भय को छोड़ो और मुझ पर प्रसन्न होओ। अधिक क्या कहूँ, मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूँ ॥१९॥

(कुरङ्गी लज्जापूर्वक नलिनिका को देखती है)

नलिनिका—राजकुमार ! उठो, उठो। राजकुमारी कहती हैं कि उठिये।

अविमारक—ठीक है। (उठता है)

(प्रवेश करके)

धात्री—जेदु भट्टिदारओ। [जयतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—कथं भवती।

धात्री—णलिणिए! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। भट्टिदारिअं भट्टिदारअं च तहिं एव पवेसेहि। [नलिनिके! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। भर्तृदारिकां भर्तृदारकं च तत्रैव प्रवेशय।]

नलिनिका—तह। [तथा।]

(निष्क्रान्ता धात्री)

नलिनिका—भट्टिदारिअ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं तहि एव पविसदु भट्टिदारिआए सह। [भर्तृदारक! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। तत्रैव प्रविशतु भर्तृदारिकया सह।]

अविमारकः—त्वमप्येवं प्रियशतानि शृणु।

(हस्तेन तस्या हस्तं गृहीत्वोत्तिष्ठति।)

नलिनिका—एदु एदु भट्टिदारओ। [एत्वेतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—अयमहमागच्छामि। (उभौ परिक्रामतः)

अविमारकः—(सहर्षम्) अनृणोऽस्मि यौवनस्य। कुतः,

अनृणोऽस्मि = ऋणमुक्तोऽस्मि।

धात्री—राजकुमार की जय हो।

अविमारक—आप क्यों आई हैं?

धात्री—नलिनिके! भीतर मण्डप में बिछावन लगा दिया है। राजकुमारी एवं राजकुमार को वहीं पहुँचा दो।

नलिनिका अच्छा। (धात्री का प्रस्थान)

नलिनिका—राजकुमार! भीतर में बिछावन लगा हुआ है। आप राजकुमारी को लेकर वहीं चलें।

अविमारक—तुझे भी इसी प्रकार प्रियकथायें सुनने को मिलें।

(हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उठता है)

नलिनिका—आइये, आइये, राजकुमार।

अविमारक—यह आ रहा हूँ। (दोनों जाते हैं)

अविमारक—(हर्ष के साथ) आज मैं यौवन के ऋण से मुक्त हूँ। क्योंकि—

नेत्रे बाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ
श्रोणी चाधिकभारिका न विशदौ पादौ ह्रिया स्यन्दिनौ।
एतत् सप्तपदप्रमाणमिह भोः! सम्पाद्यते योजना
यद्येषा क्षणदा भवेद् युगशतं धन्यो मदन्यः कुतः ॥२०॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः



नेत्रे बाष्पेति । अन्वयः –नेत्रे, बाष्पपरिप्लुते, करधृतौ, स्तनौ, व्यावल्गमानौ, श्रोणी, च, अधिकभारिका, ह्रिया, स्यन्दिनौ, पादौ, न, विशदौ, इह, भोः, एतत्, सप्तपदप्रमाणम्, योजना, सम्पाद्यते, यदि एषा, क्षणदा, युगशतम्, भवेत्, मदन्यः, धन्यः, कुतः ।

नेत्रे = प्रियतमायाः नयने । बाष्पपरिप्लुते = प्रेमाश्रुपरिपूरिते । करधृतौ स्तनौ = करगृहीतम् कुचद्वयम् । व्यावल्गमानौ = चलन्तौ । श्रोणी = जघनप्रदेशः । अधिकभारिका = अधिक भारवती । ह्रिया = लज्जया । स्यन्दिनौ पादौ = स्वेदबिन्दुयुक्तौ चरणौ । न विशदौ = न स्पष्टौ । इह भोः = अत्र हि । एतत् सप्तपदप्रमाणम् = इदमेव सप्तपदीभ्रमणम् । योजना = मानसः कार्यक्रमः । सम्पाद्यते = क्रियते । यदि एषा क्षणदा = यदि इयम् अल्पकालवती रात्रिः । युगशतम् इव भवेत् तर्हि मदन्यः = मदतिरिक्तः । धन्यः = भाग्यशाली । कुतः । मत्सदृशो भाग्यवान् नैव कश्चिद् भवेदिति भावः ॥ २० ॥

मेरी प्रियतमा के नेत्र हर्षाश्रु से पूरित हैं, हाथ से धरे हुए स्तन काँप रहे हैं, जघन प्रदेश भारी हो रहा है, लज्जा के कारण पसीने से तर पाँव ठीक ढंग से नहीं पड़ रहे हैं। यही हमलोगों की सप्तपदी है। योजना पूरी हो रही है। यदि आज की रात सैकड़ों युगों की तरह लम्बी हो जाय तो मुझ-सा धन्य कौन होगा ? ॥ २० ॥ (सभी जाते हैं) ।

तृतीय अङ्क समाप्त



चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाङ्गेरिकाहस्ता मागधिका)

मागधिका—अहो परिजणस्स पमादो । आसुय्योदअं पि ण किदा पासादरअणा । ण सुणीअदि गोट्ठीजणकोलाहलो । किं णु खु भवे । आ, रत्तिजागरदाए पभादप्पसुत्ता भवे । जाव भट्टिदारिअं ओबोधेमि । (परिक्रामति) [अहो परिजनस्य प्रमादः । आसूर्योदयमपि न कृता प्रासादरचना । न श्रूयते गोष्ठीजनकोलाहलः । किं नु खलु भवेत् । आ, रात्रिजागरतया प्रभातप्रसुप्ता भवेत् । यावद् भर्तृदारिकामवबोधयामि ।]

(ततः प्रविशति विलासिनी वीजनेन)

विलासिनी—मागधिए ! चिट्ठ चिट्ठ । [मागधिके ! तिष्ठ तिष्ठ !]

मागधिका—हला ! मा वारेहि । भट्टिदारिआए सुमणावण्णअं मए आणीअदि । [हला ! मा वारय । भर्तृदारिकायै सुमनोवर्णकं मया नीयते ।]

ततः प्रविशतीति । चाङ्गेरिका = वंशनिर्मितम् पात्रविशेषम् । प्रमादः = अनवधानता । आसूर्योदयमपि = सूर्योदयपर्यन्तमपि । प्रासादरचना = भवनसज्जा ।

(हाथ मे चङ्गेरी लिये मागधिका का प्रवेश)

मागधिका—हाय रे, परिचारकों का प्रमाद ! सूर्योदय हो जाने पर भी प्रासाद को सजाया न गया । गोष्ठी-जनों का शोर-गुल भी नहीं सुनाई दे रहा है । क्या बात है ? आह, रात्रि-जागरण के कारण सुबह में सो रहे हो । तब तक मैं राजकुमारी को जगाती हूँ ।

(पंखा लिये विलासिनी का प्रवेश)

विलासिनी—मागधिके ! ठहरो, ठहरो ।

मागधिका—सखी, मत रोको, राजकुमारी के लिए मैं पुष्पमाल्य लाई हूँ ।

विलासिनी—किं भट्टिदारिआए सुमणावण्णएण वा अलङ्कारेण वा। [किं भर्तृदारिकायाः सुमनोवर्णकेन वालङ्कारेण वा।]

मागधिका—अविणीदे ! मा अमङ्गलं भणाहि । सददालङ्किदा भट्टिदारिआ होदु । [अविनीते ! मा अमङ्गलं भण । सततालङ्कृता भर्तृदारिका भवतु ।]

विलासिनी—ण खु । आइदी एव भट्टि दारिआए अलङ्कारो त्ति भणामि । [न खलु । आकृतिरेव भर्तृदारिकाया अलङ्कार इति भणामि ।]

मागधिका—उम्मत्तिए ! णणु पुप्फं वि वासीअदि । [उन्मत्तिके ! ननु पुष्पमपि वास्यते ।]

विलासिनी—सदिसं एदं । सभावरमणीआणि मण्डिदाणि अदिरमणीआणि होन्ति । [सदृशमेतत् । स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति !]

मागधिका—हला ! सुजोजिदो खु भट्टिदारिआए रूवाणुरूवो भत्ता । [हला ! सुयोजितः खलु भर्तृदारिकाया रूपानुरूपो भर्ता ।]

वारय = अवरोधय । सुमनोवर्णकेन = पुष्पमाल्येन । अविनीते = अभद्रव्यवहारिणि । अमङ्गलम् = अशुभसूचकम् । सततालंकृता = सदाभूषिता । वास्यते = सुरभितं क्रियते । स्वभावरमणीयानि = निसर्गमनोरमाणि । मण्डितानि =

विलासिनी—राजकुमारी को पुष्पमाल्य या अलङ्कार से क्या प्रयोजन है ?

मागधिका—अरी अविनीते, ऐसा अशुभ मत बोल । राजकुमारी हमेशा अलंकृत रहे ।

विलासिनी—नहीं, नहीं, राजकुमारी की आकृति ही अलङ्कार है; मेरा यह तात्पर्य था ।

मागधिका—पगली, फूल भी तो सुवासित किया जाता है ।

विलासिनी—ठीक कहती हो । जो स्वतः सुन्दर है वह अलंकृत होने पर और अधिक रमणीय हो जाता है ।

मागधिका—सखी, राजकुमारी को अपने सौन्दर्य के अनुकूल पति मिल गये हैं ।

विलासिनी—अलं पक्खवादेण भट्टिदारअस्स समीवे भट्टिदारिआ पदुमिणिआ विअ दिस्सदि। [अलं पक्षपातेन। भर्तृदारकस्य समीपे भर्तृदारिका पद्मिनीव दृश्यते।]

मागधिका—सुट्ठु भणादि। अहं वि चिन्तेमि—ससरीरो भअवं कामदेवो ईदिसो भवेत्ति। [सुष्ठु भणति। अहमपि चिन्तयामि—सशरीरो भगवान् कामदेवो ईदृशो भवेदिति।]

विलासिनी—तह एव भट्टिदारिआ भट्टिदारअं विणा खणमत्तं वि ण रमदि। [तथैव भर्तृदारिका भर्तृदारकं विना क्षणमात्रमपि न रमते।]

(ततः प्रविशति सास्रा नलिनिका)

नलिनिका—(सशोकम्) सच्चो खु लोअप्पवादो बहुविग्घाणि सुहाणि त्ति। एसो खु संवच्छरो अदिक्कन्दो भट्टिदारिआए अविच्छिण्णसुहसम्भोएण रदिं करिअ। अम्हाअं पुण गोट्ठीजणस्स उत्तरकुरुवासो संवुत्तो। अज्ज उअमहाराएण विदिदो एसो खु वुत्तन्तो त्ति सुणिअ सीददि विअ सरीरं। भट्टिदारिआ च लज्जाभअमअणेहि अभितालिअमाणा सन्दावेण मुद्धा अवअदचेदणा विअ संवुत्ता। एसो खु पासादो णिव्वाविददीवो विअ मे पडिभादि। तेण भट्टिदारएण विरहिदाए मम एक्कं पि हिअअप्पीदिकरं ण जादं। भट्टिदारओ अविग्घेण णिग्गदो त्ति सुणिअ अज्ज

अलंकृतानि वस्तूनि। अतिरमणीयानि = पूर्वापेक्षया निरतिशयहृद्यानि। रूपानुरूपः = रूपस्य योग्यः। सास्रा = साश्रुनेत्रा।

विलासिनी—पक्षपात मत करो, राजकुमार के आगे राजकुमारी कमलिनी जैसी दीखती हैं।

मागधिका—ठीक कहती हो। मैं भी सोचती हूँ, यदि कामदेव शरीर धारण करले तो ऐसा ही लगे।

विलासिनी—इसीलिए तो राजकुमारी राजकुमार के विना क्षण-भर भी प्रसन्न नहीं रहती है।

(रोती हुई नलिनिका का प्रवेश)

नलिनिका—(शोक के साथ) लोगों का कहना ठीक ही है कि सुख में बहुत विघ्न हुआ करते हैं। एक वर्ष बीत गया जब कि राजकुमारी निरन्तर

पल्लादिदं विअ मे हिअअं । सम्पदि सुरुद्धं कण्णाउरं । (परिक्रम्य) अम्मो सहीओ । हला म अधिए ! किं एदं । [सत्यः खलु लोकप्रवादः—वहुविघ्नानि सुखानीति । एष खलु संवत्सरोऽतिक्रान्तो भर्तृदारिकाया अविच्छिन्नसुखसम्भोगेन रतिं कृत्वा । अस्माकं पुनर्गोष्ठीजनस्योत्तरकुरुवासः संवृत्तः । अद्य पुनर्महाराजेन विदित एष खलु वृत्तान्त इति श्रुत्वा सीदतीव शरीरम् । भर्तृदारिका च लज्जा-भयमदनैरभिताड्यमाना सन्तापेन मुग्धापगतचेतनेव संवृत्ता । एष खलु प्रासादो निर्वापितदीप इव मे प्रतिभाति । तेन भर्तृदारकेण विरहिताया ममैकमपि हृदय-प्रीतिकरं न जातम् । भर्तृदारकोऽविघ्नेन निर्गत इति श्रुत्वाद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । सम्प्रति सुरुद्धं कन्यापुरम् । अम्मो सख्यौ । हला मागधिके ! किमेतत् ।]

मागधिका—हला ! किं पुच्छसि । णं मण्डणवेला भट्टिदारिआए । [हला ! किं पृच्छसि । ननु मण्डनवेला भर्तृदारिकायाः]

नलिनिका—अदिक्कन्दो उच्छवो । (रोदिति) [अतिक्रान्त उत्सवः ।]

वहुविघ्नानि = अनेकावरोधयुक्तानि । संवत्सरः = वर्षम् । अतिक्रान्तः = व्यतीतः । अविच्छिन्नसुखसंभोगेन = अविहतसुखोपभोगेन । उत्तरकुरुवासः = स्थानान्तरवासः । सीदतीव = क्लिश्यतीव । अपगतचेतनेव = संज्ञाशून्येव । विरहितायाः = वियुक्तायाः । प्रह्लादितम् = प्रहृष्टम् । सुरुद्धम् = अवरोधयुक्तम् ।

सुखोपभोग करती रही । हमलोगों का प्रवास हो गया था । आज महाराज को सब पता चल गया । यह सुनकर शरीर शिथिल हो रहा है । राजकुमारी तो लाज, भय और काम के कारण दुःख से चेतनाहीन हो रही है । मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस महल का दीप ही बुझ गया हो । राजकुमार से वियुक्त होकर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। राजकुमार निर्विघ्न निकल गये, यह सुनकर आज हृदय प्रसन्न हुआ । अभी कन्यापुर में कड़ा पहरा चल रहा है । अरी सखियो ! अरी मागधिके ! यह क्या है ?

मागधिका—सखी, क्या पूछती हो ? राजकुमारी के शृङ्गार का यही समय है ।

नलिनिका—उत्सव तो समाप्त हो गया । (रोती है)

उभे—सिविणं विअ किं एदं। भणाहि समाणा भवामो। [स्वप्न इव किमेतत्। भण समाना भवामः।]

नलिनिका—सव्वहा गओ भट्टिदारओ। [सर्वथा गतो भर्तृदारकः।]

उभे—हं।

नलिनिका—अहं पि भट्टिदारिआए दुक्खं पेक्खिदुं असहन्ती इह आअदम्हि। [अहमपि भर्तृदारिकाया दुःखं प्रेक्षितुमसहमानेहागतास्मि।]

मागधिका—ण सक्कं खु भट्टिदारिआए अवत्थादंसणं। तह वि भट्टिदारिअं अस्सासइस्सामो। [न शक्यं खलु भर्तृदारिकाया अवस्थादर्शनम्। तथापि भर्तृदारिकामाश्वासयिष्यामः।]

उभे—एवं करेम्ह [एवं कुर्मः।]

(सर्वा निष्क्रान्ताः)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्यविमारकः)

मण्डनवेला=शृङ्गारसमयः।

प्रेक्षितुम्=विलोकयितुम्। असहमाना=असमर्था। अवस्थादर्शनम्=विरहजन्यक्लेशावलोकनम्। आश्वासयिष्यामः=सान्त्वनां दास्यामः।

दोनों—यह क्या स्वप्न जैसा हो गया! कहो, हमलोग एक समान ही हो जायँ।

नलिनिका—राजकुमार तो चले गये।

दोनों—हाँ।

नलिनिका—मैं भी राजकुमारी के दुःख को नहीं देख सकी, इसलिए यहाँ चली आयी हूँ।

मागधिका—राजकुमारी की अवस्था देखने योग्य है भी नहीं फिर भी राजकुमारी को सान्त्वना तो दूँगी ही।

दोनो—हाँ, हम ऐसा ही करेंगी।

(सभी जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

(अविमारक का प्रवेश)

अविमारकः—(सशोकम्)

कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे
भाग्यावशेषमवलम्ब्य शरीरमात्रम् ।
अद्यापि तन्मम मनो न तु मामुपैति
नावेक्षते मयि तथा प्रिययावरुद्धम् ॥ १ ॥

का नु खलु भवेदवस्था कुरङ्ग्याः ।

ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्भीता च राज्ञा दृढसन्निरुद्धा ।
वाष्पाविला मामनवेक्षमाणा मोहं व्रजेद् रात्रिषु किं करिष्ये ॥ २ ॥

कन्यापुरादिति । अन्वयः—भाग्यावशेषम्, अवलम्ब्य, इह, मे, शरीरमात्रम् कथमपि, कन्यापुरात्, विनिर्गतम्, तु, अद्यापि, मम, मनः, माम्, न उपैति, तथा प्रियया, अवरुद्धम्, न अवेक्षते ।

भाग्यावशेषम् = अवशिष्यमाणं जीवनादृष्टम् । अवलम्ब्य = आश्रित्य । इह = इदानीम् । मे शरीरमात्रम् = केवलं मदीयं वपुः । कथमपि = केनापि प्रकारेण । कन्यापुरात् = कुरङ्गीनिवासस्थानात् । विनिर्गतम् = बहिर्निसृतम् । तु = किन्तु । अद्यापि = अधुनापि । मम मनः = मदीयचित्तम् । माम् न उपैति = मत्समीपे स्थातुन्नेच्छति । तथा = किञ्च । प्रियया = कुरङ्ग्या । अवरुद्धम् = वशीकृतम् मनः । न अवेक्षते = ममोपरि कदापि दृष्टिमपि नैव निक्षिपति । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

ह्रीतेति । अन्वयः—प्रेष्यजनप्रवादैः, ह्रीता, राज्ञा, दृढसन्निरुद्धा, भीता, च, भवेत् । माम्, अनवेक्षमाणा, वाष्पाविला, रात्रिषु, मोहम्, व्रजेत्, किम्, करिष्ये ?

अविमारक—(शोक के साथ) भाग्य थोड़ा अवशिष्ट था इसीसे किसी प्रकार मेरा शरीर कन्यापुर से बाहर निकल आया किन्तु मेरा मन अभी भी वहीं है । मेरी प्रिया ने मेरे मन को इस प्रकार रोक लिया है कि वह मेरी ओर देखता तक नहीं ॥ १ ॥

कुरङ्गी की क्या हालत हुई होगी ?

वह परिजनों के द्वारा फैलाये गये अफवाहों से लज्जित तथा राजा द्वारा कड़ी निगरानी में रखी जाने के कारण भयभीत होगी, मुझे न देखकर वह रोती होगी, रात में वह बेहोश हो जाया करेगी । समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ ॥ २ ॥

हन्तः दृष्टः प्रतीकारः । तथापि तावदस्मदपेक्षया नापेक्षित आत्मा । तस्मादहमपि तावत् तदर्थे प्राणान् परित्यजामि । (परिक्रम्य) कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि । अद्य तु मानसं शारीरं च दुःखमसह्यमिव मे प्रतिभाति । इह हि,

निर्व्याजं परिचयवर्धमानरागां
रूपाढ्यामभिनवयौवनां मनोज्ञाम् ।
त्यक्त्वा तां क्षणमपि वञ्चितोऽस्मि जीवन्
कष्टोऽन्यः क इह भवेत् कृतघ्नभावः ॥ ३ ॥

प्रेष्यजनप्रवादैः = परिजनानां मिथ्याप्रचारैः । ह्रीता = लज्जिता । राज्ञा = कुन्तिभोजेन । दृढसन्निरुद्धा = अतिकठोरतया निरुध्यमाना । भीता च = भयं प्रापिता च । भवेत् = स्यात् । मानवेक्षमाणा = माम् न विलोकयन्ती । बाष्पाविला = शोकाश्रुपूर्णनयना । निशासु = रात्रिषु । मोहं व्रजेत् = मूर्च्छां प्राप्नुयात् । किं करिष्ये = कथमाचरिष्यामि ? प्रियायाः कष्टनिवारणार्थम् कः प्रयत्नो विधेयः इत्येव खलु सम्प्रति चिन्तनीयमिति भावः ॥ २ ॥

प्रतीकारः = उपायः । अस्मदपेक्षया = मदर्थम् । नापेक्षित आत्मा = स्वप्राणानाम् चिन्ता न कृता । कतिपयदिवसप्रोषितः = कियद्भिर्दिवसैर्विरहितः ।

निर्व्याजमिति । अन्वयः—निर्व्याजम्, परिचयवर्धमानरागाम्, रूपाढ्याम्, अभिनवयौवनाम्, मनोज्ञाम्, ताम्, त्यक्त्वा, क्षणमपि, जीवन्, वञ्चितोऽस्मि, इह, कष्टः, अन्यः, कः कृतघ्नभावः भवेत् ।

निर्व्याजम् = निष्कपटभावेन । परिचयवर्धमानरागाम्—परिचयेन = अन्योन्यपरिज्ञानेन, वर्धमानः = समेधितः, रागः = पारस्परिकः प्रणयः यस्यास्ताम् = तथाभूताम् । रूपाढ्याम् = अतिशयरूपवतीम् । अभिनवयौवनाम् = नवीनयौवन-

---

अहा, उपाय सूझ गया । उसने मेरे लिए जान की परवाह नहीं की थी, इसलिए मैं भी उसके लिए प्राणों का परित्याग करूँगा । (चलकर) कुछ दिनों से मैं वियुक्त हूँ । आज मानसिक तथा शारीरिक कष्ट मुझे असह्य-सा प्रतीत हो रहा है । यहाँ—

निष्कपट परिचय में प्रेम बढ़ाने वाली, अत्यन्त सुन्दरी नवयौवना तथा मनोहारिणी प्रिया से वियुक्त होकर यदि मैं क्षण भर जीवित हूँ तो इससे बढ़कर मेरी कृतघ्नता और क्या हो सकती है ? ॥ ३ ॥

सम्प्रति हि मदनेनान्तर्दह्यमानस्य क्षारीभवितुमारब्धो भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः (सर्वतो विलोक्य) अहो प्रतिभयता निदाघस्य । सम्प्रति हि,

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात् ।
विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥ ४ ॥

सम्पन्नाम् । मनोज्ञाम् = मनोहारिणीम् । ताम् = कुरङ्गीम् । त्यक्त्वा = विहाय । क्षणमपि = मुहूर्त्तमपि यावत् । जीवन् = प्राणान् धारयन् । वञ्चितोऽस्मि । इह = अस्यां स्थितौ । कष्टः = कष्टप्रदः । अन्यः कः = इतरः कः । कृतघ्नभावः = कृतघ्नता भवेत् ? प्रियां विना इदानीमपि जीवन्नस्मीति महतीयम्मे कृतघ्नतेति भावः ॥ ३ ॥

मदनेन = कामेन । अन्तर्दह्यमानस्य = मनसि पीड्यमानस्य । क्षारीभवितुम् = पीडादायकतामुपेतुम् । प्रतिभयता = भयङ्करता । निदाघस्य = ग्रीष्मकालस्य ।

अत्युष्णेति । अन्वयः—भास्करकरैः,आपीतसाराः, अत्युष्णा, मही, ज्वरिता, दावाग्न्याश्रयात्, प्रमुषितच्छाया, पादपाः, यक्ष्मार्त्ता, इव उच्छ्रितगुहा, व्यात्ताननाः, पर्वताः, अवशात्, विक्रोशन्ति, इव, रविपाकनष्टहृदयः, अयम्, लोकः मूर्च्छाम्, इव, संयाति ।

भास्करकरैः = रविकिरणैः । आपीतसाराः = आ समन्तात् पीतम् शोषितम्, सारः = जलम् यस्याः सा । अत एव अत्युष्णा = अतितप्ता । मही = पृथ्वी । ज्वरिताः ज्वरयुक्ता इव । प्रतीयते इति शेषः । दावाग्न्याश्रयात् = वडवानलदग्ध-

---

अभी काम से जल रहे मेरे शरीर पर भगवान् सूर्य नमक छिड़कने का काम कर रहे हैं । (चारोंओर देखकर) अहा, गर्मी का समय कितना भयंकर हो रहा है । इस समय—

सूर्यकिरणों ने जिसका रस शोष लिया है, ऐसी यह पृथ्वी ज्वरिता की तरह तप रही है, वडवानल-विदिग्ध वृक्षों की छाया समाप्त हो गई है और वे यक्ष्मा-पीडित से लग रहे हैं । विशाल गुहारूप मुँह फैलाये पर्वत विवश होकर चिल्ला रहे हैं, यह संसार सूर्यकिरणों से दग्ध-हृदय होकर मूर्छित-सा हो रहा है ॥ ४ ॥

किमिदानीं करिष्ये । न चास्म्यहं गन्तुं समर्थः । कुतः,

लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः
संस्वेदयन्ति च नगाः परुषैः पलाशैः ।
दावैर्द्रवीकृततनुः स्रवतीव भास्वा-
नादित्यपाकचलितः फलतीव लोकः ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! देहि मे प्रतिवचनम् । (मूर्च्छां नाटयति । पुनर्निःश्वस्य । ऊर्ध्वमवलोक्य) रुद्धः खलु भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः । अथवा,

---

त्वात् । प्रमुषितच्छाया = विनष्टपत्रादिच्छायाः । पादपाः = वृक्षाः । यक्ष्मार्त्ताः = यक्ष्माख्येन रोगेण पीडिताः इव । उच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः—उच्छ्रिताः = दीर्घाः, गुहाः = कन्दराः, एव व्यात्तानि = विवृतानि, आननानि = मुखानि येषाम् तादृशाः । पर्वताः = गिरयः । अवशात् = पराधीनवृत्ततया । विक्रोशन्ति = विलपन्ति इव । रविपाकनष्टहृदयः = सूर्यकिरणतापशोषितहृदयः । अयं लोकः = एष संसारः । मूर्च्छाम् = चैतन्यविरहितावस्थाम् = संयाति = प्राप्नोति । निदाघसमयस्य क्लेशजनकताऽतीवभीषणा संवृत्तेति पद्यभावः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ४ ॥

लिम्पन्तिरूक्षेति । अन्वयः—रूक्षपवनाः, सिकताग्निचूर्णैः, लिम्पन्ति, नागाः परुषैः, पलाशैः, च, संस्वेदयन्ति, दावैः, द्रवीकृततनुः, भास्वान्, स्रवति इव, आदित्यपावकचलितः, लोकः, फलति, इव ।

रूक्षपवनाः = अत्युल्वणाः वायवः । सिकताग्निचूर्णैः = अग्निचूर्णसदृशैः वालुकाकणैः । लिम्पन्ति = पृथ्वीं व्याप्नुवन्ति इव । नागाः = वृक्षाः । परुषैः पलाशैः = कठोरपत्रैः । संस्वेदयन्ति = घर्मबिन्दून् उत्पादयन्ति । दावैः = वडवा-

---

अब मैं क्या करूँ ? मैं चल भी नहीं सकता । क्योंकि—

यह रूखी हवा वालुका रूपी अग्निचूर्ण से संसार को व्याप्त कर रही है । वृक्ष अपने कठोर पत्रों से लोगों को स्वेदित कर रहे हैं, दावाग्नि से पिघलकर सूर्य मानो चू रहा है और सूर्य के पाक से संसार पक रहा है ॥५॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! मुझे जवाब दो । (बेहोशी का अभिनय करता है, फिर साँस लेकर) (ऊपर की ओर देखकर) भगवान् सूर्य छिप गये । अथवा,

किमत्र चित्रं विततः पयोदा
रुन्धन्ति सूर्यं ननु वातनीताः ।
अन्तः स्थितं मे यदि वारयन्ति
कामं भवेद् विस्मयनीयमेतत् ॥ ६ ॥

किमनेन जीवन्मरणेन । विसर्जयिष्याम्यात्मानम् । (उत्थाय परिक्रामति) किन्नु खलु करिष्ये । भवतु दृष्टम् । अस्मिन्नारण्यतटाके विसर्जयिष्याम्यात्मानम् । धिगधर्मः खलु मे मरणमार्गः । अभिमानमोहान्महापथो विस्मृतः । अन्यथा प्रयतिष्ये । (विलोक्य) भवतु

नलः । द्रवीकृततनुः = तरलायमानशरीरः । 'भास्वान् = सूर्यः । स्रवति इव = बिन्दुरूपेण स्खलति इव । आदित्यपाकचलितः = सूर्यतापतप्तः लोकः । फलतीव = पच्यत इव ॥ ५ ॥

प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम् ।

किमत्रेति । अन्वयः—वातनीताः, विततः, पयोदाः, सूर्यम्, रुन्धन्ति, ननु, अत्र, किम्, चित्रम्, यदि, मे, अन्तःस्थितम्, कामम्, वारयन्ति, (तदा) एतत्, विस्मयनीयम् भवेत् ।

वातनीताः = वायुनाऽऽहृताः । विततः = प्रसृताः । पयोदाः = मेघाः । सूर्यम् रविम् । रुन्धन्ति = आच्छादयन्ति । ननु अत्र कि चित्रम् = इह किमाश्चर्यम् ? यदि मे = मम । अन्तःस्थितम् = चित्तोद्भवम् । कामम् = मदनम् । वारयन्ति = अपसारयन्ति । (तदा) एतत् विस्मयनीयम् = आश्चर्यजनकम् । भवेत् = स्यात् । मेघाः यदि सूर्यमाच्छादयन्ति तर्हि नैव किमपि वैलक्षण्यम्, यदि मम मानसस्थितम् कामं ते छादयेयुः तर्हि तदैव आश्चर्यावसरः प्रसरेदिति भावः ॥६॥

जीवन्मरणेन = जीवमानोऽपि मृतकतुल्यः । विसर्जयिष्यामि = त्यक्ष्यामि ।

वायु द्वारा आहृत मेघ से यदि सूर्य छिपा दिये गये तो इसमें विचित्रता क्या है ? मेरे हृदय में वर्त्तमान काम को यदि यह मेघ छिपा दे तो यह विस्मयजनक हो सकता है ॥ ६ ॥

इस जीतेजी मरने से क्या फायदा ! मैं जान दे दूँगा (उठकर चलता है) क्या करूँ ? अच्छा, उपाय तो सूझ गया । इसी वन्य सरोवर में प्राणत्याग करूँगा । मेरे मरने का रास्ता अधर्मपूर्ण है । अभिमान-मोह से प्रशस्तमार्ग को मैंने भुला दिया है । या दूसरा उपाय करता हूँ । (देखकर) अच्छा,

दृष्टम् । अये अदूरे दृश्यते दावाग्निः । तस्मिन् प्राणाहुतिं करिष्यामि (उपगम्य प्रणम्य च) भगवन् ! अग्ने !

इष्टं चेदेकचित्तानां यद्यग्निः साधयिष्यति ।
परत्रापि च मे कान्ता सा भवेदेककीर्तनी ॥ ७ ॥

(अग्नि प्रविश्य सकुतूहलम्) किमिदं वर्तते ।

दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षा
ज्वालाश्च मे मलयचन्दनपङ्कशीताः ।
अग्निर्दयां हि कुरुते मदनातुरेऽपि
पुत्रं पितेव च परिष्वजति प्रहृष्टः ॥ ८ ॥

आरण्यतटाके = वन्यसरसि । अधर्मः = अधर्मपूर्णः । मरणमार्गः = मृत्युप्रकारः । अदूरे = समीपे ।

इष्टमिति । अन्वयः—यदि चेत् एकचित्तानाम्, इष्टम्, अग्निः, साधयिष्यति सा, मे, कान्ता, परत्राऽपि, एककीर्तनी, भवेत् ।

यदि चेत् एक चित्तानाम् = अनन्यासक्तहृदयानाम् । इष्टम् = वाञ्छितम् । अग्निः = अग्निदेवः । साधयिष्यति = पूरयिष्यति । तर्हि सा मे कान्ता = सा मम प्रियतमा कुरङ्गी । परत्राऽपि = अन्यजन्मन्यपि । एककीर्तनी = ममानुगामिनी । भवेत् = स्यात् ॥ ७ ॥

सकुतूहलम् = साहचर्यम् ।

दग्धा इति । अन्वयः—स्फुलिङ्गनिकरैः, दग्धाः, वृक्षाः, निपतन्ति, च, मे, ज्वालाश्च, मलयचन्दनपङ्कशीताः, मदनातुरेऽपि, अग्निः, दयाम्, कुरुते, प्रहृष्टः, पुत्रम्, पितेव, परिष्वजति ।

स्फुलिङ्गनिकरैः = अग्निकणसमूहैः । दग्धाः = ज्वलिताः । वृक्षाः = तरवः ।

देख लिया, समीप में ही दावाग्नि दिखाई दे रही है । उसी से प्राणों की आहुति दूँगा । (समीप जाकर एवं प्रणाम कर) भगवन् ! अग्ने !

यदि हृदय से प्रेम करने वालों का हितसाधन आप करते हैं तो ऐसा अवश्य करेंगे ताकि मेरी प्रिया दूसरे जन्म में भी मेरी ही होकर रहे ॥ ७ ॥

(अग्नि में प्रवेश कर आश्चर्यपूर्वक) यह क्या ? आग की चिनगारियों से दग्ध होकर पेड़ गिर रहे हैं, पर मेरे लिए अग्नि ज्वाला मलयज चन्दन की तरह ठण्ढी हो रही है । ये अग्निदेव मुझ कामातुर पर ठीक उसी प्रकार दया

भोः किमतः परं विस्मयनीयम्! अग्निः खलु मां न दहति। अथवा एतदप्यस्ति कारणम्। अन्यथा प्रयतिष्ये (परिक्रम्य) एष खलु महान् पर्वतः,

असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो
गगनचरकुलानां विश्रमस्थानभूतः।
सुकविमतिविचित्रो मित्रसंयोगहृद्यो
नरपतिरिव नीचो दृश्यते निष्फलाढ्यः॥ ९॥

निपतन्ति = धराशायिनो भवन्ति। च मे = मम कृते। ज्वालाश्च = वह्निशिखाः। मलयचन्दनपङ्कशीताः = मलयजावलेपवच्छीतलाः। मदनातुरेऽपि = कामार्त्तेऽपि मयि। अग्निः = अग्निदेवः। दयां कुरुते = कृपां विधत्ते। प्रहृष्टः = प्रसन्नः। पुत्रम् = सुतम्। पितेव = जनक इव। परिष्वजति = समालिङ्गति। यथा प्रसन्नः पिता पुत्रमालिङ्गति तथैव अग्निप्रविष्टम् माम् अग्निदेवो मद्धेतोः स्वकीयां दाहकतां विहाय सुखकरः शीतलश्च सञ्जात इति भावः॥ ८॥

असितजलदेति। अन्वयः—असितजलदवृन्दैः, मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः, गगनचरकुलानाम्, विश्रमस्थानभूतः, सुकविमतिविचित्रः, मित्रसंयोगहृद्यः, निष्फलाढ्यः, नीचः, नरपतिः, इव दृश्यते।

असितजलदवृन्दैः = कृष्णवर्णपयोदनिकरैः। मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः—मिश्राणि = मिलितानि, सन्दिग्धानि = संशययुक्तानि च शृंगाणि = शिखराणि यस्य तथाभूतः पर्वतः। गगनचरकुलानाम् = खेचरनिकराणाम्। विश्रमस्थानभूतः = विश्रामभूमिः। सुकविमतिविचित्रः = सुकवेः, मतिः = बुद्धिः इव विचित्रः = विलक्षणः।

कर रहे हैं जिस प्रकार पिता प्रसन्न होकर पुत्र का आलिंगन करता है॥ ८॥

अरे! इससे बड़ा और क्या आश्चर्य होगा! आग मुझे नहीं जला रही है। या इसका भी कारण है। दूसरा प्रयास करूँगा। (चलकर) यह विशाल पर्वत है—

काले बादल इस पर्वत के ऊपर इस प्रकार फैल रहे हैं मानो इसके शृङ्ग हों। यह पर्वत आकाशचारियों के लिए विश्रामस्थल है। अच्छे कवि की बुद्धि के समान यह विलक्षण है, मित्र के सम्पर्क से यह प्रसन्न होता है, अनुपयुक्त धन रखने वाले क्षुद्र राजा के समान यह भी दिखाई देता है॥ ९॥

भवतु तावदस्मिञ्छैले प्राणान् परित्यजामि। मरुत्प्रपातो हि सर्वार्थसाधकः। यावदारोहामि। (आरुह्यावलोक्य) एतत् पानीयं गोत्रस्थं स्नात्वोपस्पृश्य मन्त्रं जपामि। (तथा कृत्वा जपति)

(ततः प्रविशति विद्याधरः सह प्रियया)

विद्याधरः—

प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान्॥ १०॥

मित्रसंयोगहृद्यः = सुहृत्सम्पर्कमनोहरः। निष्फलाढ्यः = निरर्थकवित्तः। नीचः = नीचप्रकृतिः। नरपतिरिव = राजेव। दृश्यते = अवलोक्यते॥ ९॥

शैले = पर्वते। मरुत्प्रपातः = पर्वतशिखरात् पतनम्। सर्वार्थसाधकः = सर्वप्रयोजनपूरकः। गोत्रस्थम् = पर्वतस्थम्। उपस्पृश्य = आचम्य।

विद्याधरः = देवयोनिविशेषः। "विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ": भूतोऽमी देवयोनयः" इत्यमरः।

प्राक्सन्ध्येति। अन्वयः—उत्तरेषु, कुरुषु, प्राक्सन्ध्या, गमिता, पुनः, मानसे, स्नातम्, भूयः, मन्दरकन्दरान्तरतटेषु, यौवनम्, आमोदितम्, क्रीडार्थम्, हिमवद्गुहासु, चरिता, दृष्टिः, संलोभिता, मध्याह्ननिद्रासुखान्, मलयस्य, चन्दननगान् यास्यावः।

उत्तरेषु कुरुषु = एतन्नामकप्रदेशेषु। प्राक्सन्ध्या = प्रातःकालः, गमिता =

अच्छा, इसी पहाड़ पर प्राण-त्याग करता हूँ। पहाड़ की चोटी से गिरकर मरना सर्वार्थ-साधक है। चढ़ता हूँ। (चढ़कर, देखकर) यह, पर्वत पर जल है, इसमें स्नान एवं आचमन कर मन्त्र जप लेता हूँ (वैसा करके जप करता है)

(प्रिया के साथ विद्याधर का प्रवेश)

विद्याधर—प्रातःकाल तो उत्तरकुरु प्रदेश में बीता, फिर मानसरोवर में स्नान किया, मन्दराचल की गुफाओं में यौवन के सुखों को लूटा, मनोविनोद के लिए क्षुब्ध आँखें हिमालय पर विचरती रहीं, अब मध्याह्नकालिक निद्रासुख के लिए हम दोनों मलयपर्वत के चन्दन-वन में जायेंगे॥ १०॥

(आकाशयानं निरूप्य) सौदामिनि ! पश्य पश्य भगवत्या वसुन्धराया दूरस्थां दर्शनीयामाकृतिम् । इह हि,

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च बिन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥ ११ ॥

यापिता । पुनः, मानसे = मानससरोवरे । स्नातम् = अवगाहनं कृतम् । भूयः = पुनश्च । मन्दरकन्दरान्तरतटेषु = मन्दराचलगुहासु । यौवनमामोदितम् = यौवनसुखं प्राप्तम् । क्रीडार्थम् = मनोरञ्जनार्थम् । हिमवद्गुहासु = हिमाचल-कन्दरासु । चलिता = प्रचलिता । दृष्टिः = नयनम् । संलोभिता = लोभमापन्ना । मध्याह्ननिद्रासुखान् = मध्याह्नकालिकनिद्रायाः आनन्दम् प्राप्तुम् । मलयस्य चन्दननगान् = मलयाख्यपर्वतस्य चन्दनतरून् प्रति । यास्यावः = प्रस्थानं करिष्यावहे ॥ १० ॥

वसुन्धरायाः—पृथिव्याः । दूरस्थाम्—दूरवर्तिनीम् । दर्शनीयाम्—रमणीयाम् ।

शैलेन्द्रा इति । अन्वयः—शैलेन्द्राः, कलभोपमाः, जलधयः, क्रीडातटाकोपमाः, वृक्षाः, शैवलसन्निभाः, क्षितितलम्, प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्, निम्नगाः, सीमन्ताः, इव, सुविपुलाः, सौधाश्च, बिन्दूपमाः, दृष्टम्, संक्षिप्तरूपम्, जगत्, वक्रमिव, अभिभाति ।

शैलेन्द्राः = उन्नतगिरयः । कलभोपमाः = गजशावका इव । जलधयः = सागराः । क्रीडातटाकोपमाः = जलविहारार्थं निर्मिताल्पजलाशयसमानाः ।

(आकाश को देखकर) सौदामनि ! देखो, देखो, पृथ्वी की दूरवर्तिनी आकृति कैसी मनोरम लग रही है ।

यहाँ पर,

पर्वत हाथी के बच्चों के समान, सागर जलविहार के लिए निर्मित तालाब के समान, वृक्ष सेवाल के समान दिखाई दे रहे हैं । पृथ्वी के निम्न भाग छिप रहे हैं, नदियाँ माँग-रेखा के समान लग रही हैं, बड़े-बड़े महल बूँदों के समान दीख रहे हैं । यह सम्पूर्ण संसार संक्षिप्त रूप तथा टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई दे रहा है ॥ ११ ॥

भद्रे ! अवहिता भव । शीतचन्दननिलयं मलयं प्रयास्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(उभावाकाशयानं निरूपयतः)

सौदामनी—अय्य ! ण पारेमि अविस्सन्ता गन्तुं । [आर्य ! न पारयाम्यविश्रान्ता गन्तुम् ।]

विद्याधरः—तेन हि कस्मिश्चित् पर्वते मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यावः

सौदामनी—अय्य ! पिअं मे । [आर्य ! प्रियं मे ।]

(उभाववतरतः)

विद्याधरः—सौदामनि ! पश्य पश्य ।

वृक्षाः = तरवः । शैवलसन्निभाः = जम्बालसदृशाः । क्षितितलम् = पृथ्वीतलम् । प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् = अन्तर्हितनिम्नभूमिकम् । निम्नगाः = सरितः । सीमन्ताः = केशान्तररेखेव । सुविपुला = सुविशाला । सौधाः = प्रासादाः । बिन्दूपमाः = बिन्दुसदृशाः । दृष्टम् संक्षिप्तरूपम् = लघुकलेवरम् । जगत् = विश्वम् । वक्रमिव = कुटिलमिव । अभिभाति = प्रतिभाति ॥ ११ ॥

अवहिता = सावधाना । शीतचन्दननिलयम् = शीतलचन्दनोद्भवस्थानम् । मलयम् = मलयाख्यो गिरिः ।

पारयामि = शक्नोमि । अविश्रान्ता = विश्रामं विना । मुहूर्तम् = कियत्कालं यावत् ।

भद्रे ! सावधान हो जाओ ! हम शीतल चन्दनवाले मलय-पर्वत पर अब जायेंगे ।

सौदामनी—बहुत अच्छा ।

(दोनों आकाशगमन देखते हैं)

सौदामनी—आर्य ! विना विश्राम किये मैं नहीं जा सकूंगी ।

विद्याधर—तो किसी पर्वत पर थोड़ा विश्राम करके चलें ।

सौदामनी—आर्य ! यह तो मुझे बहुत ही अच्छा लगेगा ।

(दोनों उतरते है)

विद्याधर—सौदामनि ! देखो, देखो ।

जलदगहनमुज्झतीव वेगा-
दभिपततीव मही समुद्रमुद्रा ।
जलदसमयतोयदा इवामी
भृशमभिभान्ति नगा विजृम्भमाणाः ॥ १२ ॥

भवति ! अयं पर्वतः समर्थ इवास्माकं मुहूर्तमातिथ्यं कर्तुम् । तस्माद् विश्रान्तौ गमिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! एवं करेम्ह । [आर्य ! एवं कुर्वः ।]

विद्याधरः—सौदामनि ! पुष्पितानां नगानां षड्भागग्रहणमस्माकं धर्मः । तस्मादनृणान् वृक्षान् करिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा]

(पुष्पावचयं नाटयतः)

जलदगहनेति । अन्वयः—वेगात्, समुद्रमुद्रा, मही, जलदगहनम्, उज्झतीव अभिपतति, अमी, विजृम्भमाणाः, नगाः, जलदसमयतोयदाः, भृशं, अभिभान्ति ।

वेगात्=वेगवशात् । समुद्रमुद्रा=समुद्रपरिवेष्टिता । मही=पृथ्वी । जलदगहनम्=मेघसमूहम् । उज्झतीव=परित्यजन्तीव । अभिपतति=समक्षमायाति । अमी=एते । विजृम्भमाणाः=वर्द्धमानाः । नगाः=तरवः । जलदसमयतोयदाः=पावसकालिकमेघा इव । भृशम्=अतिशयेन । अभिभान्ति=शोभन्ते ॥ १२ ॥

पुष्पितानाम् नगानाम्=कुसुमितवृक्षाणाम् । षड्भागग्रहणम्=षष्ठभागा-

---

समुद्रवेष्टित पृथ्वी मेघसमूह से निकलकर वेगपूर्वक नजदीक आती जा रही है और प्रकट होते हुए ये वृक्ष वर्षाऋतु के बादलों के समान सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२ ।

भद्रे ! यह पर्वत कुछ क्षणों तक हमारा आतिथ्य करने में समर्थ है, अतः विश्राम करके चलेंगे ।

सौदामनी—आर्य, ऐसा ही करेंगे ।

विद्याधर—सौदामनि ! इन फूले हुए वृक्षों से छठा भाग लेना हमारा धर्म है, इसलिए इन्हें भी उऋण कर देंगे ।

सौदामनी—अच्छी बात है ।

(दोनों फूल चुनते हैं)

विद्याधरः—(अविमारकं विलोक्य) अये, को नु खल्वयम् । आ ज्ञातम् । विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः । कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम्। दिष्टया यदयं दृष्टः । भवत्वहमपि विस्मृतं पृच्छामि ।

अविमारकः—भवतु कृतं देवकार्यम् । प्रपतामि । (पार्श्वतो विलोक्य, विद्याधरं दृष्ट्वा) भोः ! को नु खल्वयम् । अथवा, स्वप्नोऽयं भवेत् । न ह्ययं सुप्तः । आ अन्तकाले मनुष्याः किमपि पश्यन्ति, तदेतत् स्यात् । तदपि संमूढानां खलु । अहं तु सर्वं जानामि । भवतु, पृच्छाम्येनम् । भोः ! कतरकुलान्वयो भवतालंक्रियते ।

विद्याधरः—श्रूयताम्— अहं मेघनादो नाम विद्याधरः । इयं तावदस्मत्कुटुम्बिनी सौदामनी नाम । अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सवः प्रारब्धः । तत्र वयमपि सङ्केतिताः । इह मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्याव इत्यवतीर्णाः । एषोऽस्माकं वृत्तान्तः । अथ

ङ्गीकरणम् । अनृणान्=ऋणमुक्तान् ।

प्रपतामिः=पतित्वाऽऽत्मानं घातयामि । अन्तकाले=मृत्युसमये । संमूढानाम्=मूर्खाणाम् । कतरकुलान्वयः=को वंशः ?

विद्याधर—(विद्याधर को देखकर) यह कौन है ? आह, समझ गया । कोई मन्त्र-भ्रष्ट विद्याधर ही होगा, क्योंकि ऐसारूप भला दूसरों का कहाँ से होगा ! भाग्य से ही यह दिखाई पड़ गया । मैं भी सविस्तार इससे पूछता हूँ ।

अविमारक—अच्छा, देवकार्य तो कर लिया, अब गिरता हूँ । (बगल की ओर देखकर, विद्याधर को देखकर) अरे ! यह कौन है ? अथवा यह स्वप्न है ? पर मैं सोया तो हूँ नहीं । आह, मृत्यु के समय लोग कुछ न कुछ देखते ही हैं । वही होगा, वह भी मूर्खों के लिए होगा । मैं तो सब जानता हूँ । अच्छा, इससे पूछता हूँ । आप किस वंश को अलंकृत करते हैं ?

विद्याधर—सुनिये-मैं मेघनाद नामक विद्याधर हूँ । सौदामनी नाम की यह मेरी पत्नी है । आज भगवान् अगस्त्य की आराधना के लिए विद्याधरों ने मलयपर्वत पर एक उत्सव प्रारम्भ किया है, जिसमें हमें भी बुलाया गया है । यहां कुछ देर विश्राम कर फिर चलेंगे, इसीलिए उतर गये हैं । यही

किमर्थमिदानीं भवान् क्षितितलं देवलोकीकरोति ।

अविमारकः---(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्तव्यम् । वर्तमाने ममान्त-कालेऽनृतं न वक्तव्यम् । (प्रकाशम्) भोः! सौवीरराजपुत्रोऽविमारको नाम्नास्मि ।

विद्याधरः—(आत्मगतम्) एतदनृतम् । नेयमाकृतिर्मानुषी (प्रकाशम्) अथ किमर्थमेकाकी भवानिहागतः ।

अविमारकम्—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्ष्यामि । (अधोमुखस्तिष्ठति)

विद्याधरः—(आत्मगतम्) भवत्वहमेव ज्ञास्यामि । (विद्यामावर्तयति) भोः! कष्टम् । अयं खलु भगवतोऽग्नेः पुत्र आत्मानं न जानाति, कुन्ति-भोजदुहितरं कुरंगीमभिलषमाणो रममाणश्च तत्र विदिते सति निर्गतः, पुनः प्रवेशोपायमलभमानः प्राणपरित्यागाभिलाषी मरुत्प्रपातं कर्तुमि-

---

कुटुम्बिनी = पत्नी । संकेतिताः = आहूताः । क्षितितलम् = पृथ्वीतलम् । देवलोकीकरोति = देवलोके परिणमयति । अनृतम् = मिथ्या । मानुषी = मानवीया । विद्यामावर्त्तयति = यया विद्यया परकीयो वृत्तान्तो ज्ञातुं शक्यते तां स्मरतीत्यर्थः । अभिलषमाणः = समीहमानः । रममाणः = उपभुञ्जानः ।

हमारी कहानी है । अब आप बताइए कि आप इस पृथ्वीतल को क्यों देवलोक बना रहें हैं ?

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँ ? अपनी मृत्यु के समय झूठ नहीं कहूँगा । (प्रकट) अजी ! मैं सौवीरराज का पुत्र अविमारक हूँ ।

विद्याधर—(स्वगत) यह झूठ है । यह आकृति मनुष्य की नहीं हो सकती । (प्रकट) आप अकेले यहाँ क्यों आये हैं ?

अविमारक—(स्वगत) अब क्या कहूँ ? (मुँह नीचा कर लेता है)

विद्याधर—(स्वगत) अच्छा, मैं स्वयं ही जान लेता हूँ । (विद्या की आवृत्ति करता है) आह, बहुत कष्ट है । यह व्यक्ति नहीं जानता कि यह अग्निदेव का पुत्र है । इसे कुन्तिभोज-पुत्री कुरङ्गी से प्रेम हो गया है, उसके साथ यह विहार करता रहा, और भेद खुल जाने पर वहाँ से निकल भागा । फिर वहाँ प्रवेश करने के उपाय को न पाकर प्राण-त्याग की इच्छा से पर्वत

हारूढः । सापि च तत्र जीवन्मरणमनुभवति । अहमस्यास्मिन् कार्ये सहायो भविष्यामि । (प्रकाशम्) भो अविमारक ! अच्छलं मित्रत्वं नाम । न शक्नोषि मया विदितमर्थं प्रच्छादयितुम् ।

अविमारकः—उच्यताम् ।

विद्याधरः—अद्यप्रभृत्यावयोः सख्यमस्तु । सकला च भवतोऽस्माभिरवस्था विदिता । प्राणपरित्यागार्थमिहारूढो भवान् ननु ।

अविमारकः—वयस्य ! एवमेतत् ।

विद्याधरः—भोः ! प्रीतोऽस्म्यनेन विस्रम्भेण यदि तत्राज्ञातमेवप्रवेष्टुं स्यादुपायः, किं करिष्यति भवान् ।

अविमारकः—(सहर्षम्) किमन्यत् । अनुप्रवेक्ष्यामि । तदर्थो हि व्याक्षेपः ।

विद्याधरः—तेन हि सखे ! दृश्यतामंगुलीयम् । (इत्यङ्गुलीयकं दर्शयति)

अच्छलत्वम् = छलरहितत्वम् । प्रच्छादयितुम् = गोपयितुम् । सख्यम् = मैत्री । प्रतोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि । विस्रम्भेण = विश्वस्तभावेन । व्याक्षेपः = उत्कण्ठा ।

पर चढ़ा था । वह (कुरङ्गी) भी वहाँ जीते जी मृत्यु का अनुभव कर रही है । मैं इसके इस कार्य में सहायक होऊँगा । (प्रकट) अजी अविमारक ! मित्रता में छल नहीं किया जाता । मैं जिस बात को जानता हूँ उसे तुम छिपा नहीं सकते ।

अविमारक—कहिये ।

विद्याधर—आज से हमारे-तुम्हारे बीच मैत्री हो गई । तुम्हारी सारी बातें मालूम हो गई हैं । तुम आत्महत्या करने के लिए ही पर्वत पर चढ़े हो ।

अविमारक—मित्र ! बात तो यही है ।

विद्याधर—अजी ! मैं तुम्हारे इस विश्वस्तभाव से प्रसन्न हूँ । यदि चोरी-छिपे वहाँ प्रवेश करने का कोई उपाय हो जाय तो तुम क्या करोगे ?

अविमारक—(खुशी से) और क्या, वहाँ जाऊँगा । उसी के लिए तो यह दुर्दशा है ।

विद्याधर—तो मित्र, इस अँगूठी को देखो । (अँगूठी दिखलाता है)

अविमारकः—वयस्य ! किमनेन प्रयोजनम् ।

विद्याधरः—एतदङ्गुलीयकं दक्षिणांगुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थः ।

अविमारकः—वयस्य ! एतदप्यस्ति ।

विद्याधरः—अयं ते प्रत्ययं करिष्यामि । वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—एवम् ।

विद्याधरः—अवहितो भव ।

अविमारकः—अवहितोऽस्मि ।

विद्याधरः—(दक्षिणांगुल्यां प्रक्षिप्य) वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—वयस्य ! छायापि न दृश्यते, किं पुनः शरीरम् । एते खलु लोके सुखिनो नाम ।

तिशयः । अदृश्यः = अन्येन द्रष्टुमशक्यः । प्रकृतिस्थः = स्वाभाविकदशायाम् स्थितः ।

अविमारक—मित्र, इससे क्या होगा ?

विद्याधर—इस अँगूठी को दायें हाथ की अंगुली में पहन लेने से व्यक्ति अदृश्य हो जाता है और बायें हाथ की अंगुली में पहनने से पुनः प्रकृतिस्थ हो जाता है ।

अविमारक—मित्र ऐसा भी है ?

विद्याधर—अभी तुझे विश्वास दिलाता हूँ । मित्र, क्या तुम मुझे देख रहे हो ?

अविमारक—हाँ ।

विद्याधर—सावधान हो जाओ ।

अविमारक—मैं सावधान हूँ ।

विद्याधर—(अंगूठी दायें हाथ में पहनकर) मित्र ! क्या तुम मुझे देख रहे हो ?

अविमारक—मित्र, छाया भी नहीं दिखाई पड़ रही है, शरीर की क्या बात ? संसार में ये ही तो सुखी हैं—

ये सञ्चरन्ति गगने वनितासहायाः
क्रीडन्ति पर्वततटेषु कृतोपदेशाः ।
सर्वं विदन्त्यपि च मन्त्रकृतैः प्रभावै-
रन्तर्हिताश्च विवृताश्च सुखं भ्रमन्ति ॥ १३ ॥

भवतु, प्रविष्ट एवास्म्यनेन ।

विद्याधरः—(वामांगुल्यां प्रक्षिप्य) तेन हि गृह्यतामंगुलीयकम् ।

अविमारकः—(प्रतिगृह्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

विद्याधरः—न न, अहमेवानुगृहीतः । कुतः,

न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकाङ्क्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ॥ १४ ॥

ये सञ्चरन्तीति । अन्वयः—ये, वनितासहायाः, गगने, सञ्चरन्ति, कृतोपदेशाः, पर्वततटेषु, क्रीडन्ति, मन्त्रकृतैः, प्रभावैः, सर्वम्, विदन्ति, सुखम्, अन्तर्हिताः, विवृताः, च, भ्रमन्ति ।

ये = विद्याधरादयः । वनितासहायाः = सपत्नीकाः । गगने = नभसि । सञ्चरन्ति = विचरन्ति । कृतोपदेशाः = कृतमन्त्रोपदेशाः । पर्वततटेषु = गिरिप्रदेशेषु । क्रीडन्ति = विहरन्ति । मन्त्रकृतैः प्रभावैः = मन्त्रजन्यशक्त्या । सर्वम् विदन्ति = सर्वम् वेदितव्यम् जानन्ति । सुखम् = यथेच्छम् । अन्तर्हिताः = अदृश्यमानाः । विवृताश्च = प्रकटितस्वरूपाश्च । भवन्ति = जायन्ते ॥ १३ ॥

अनुगृहीतोऽस्मि = कृतार्थोऽस्मि

न तथेति । अन्वयः—सुजनः, रत्नम्, आसाद्य, न, तथा, परितुष्यति, यथा, गताकांक्षे, पात्रे, तत्, दत्त्वा, प्रहृष्यति ।

ये अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आकाश में विचरण करते हैं, मन्त्रोपदिष्ट होकर ये पर्वतों पर विहार करते हैं, मन्त्र के प्रभाव से सब कुछ जान लेते हैं तथा इच्छानुसार जब चाहें गायब तथा प्रकट हो जाते हैं ॥ १३ ॥

अच्छा, इस अंगूठी की सहायता से प्रविष्ट तो हो ही गया हूँ।

विद्याधर—(अंगूठी बायें हाथ में लेकर) अच्छा तो यह अँगूठी लीजिए।

अविमारक—(लेकर) बड़ी कृपा हुई ।

विद्याधर—नहीं, नहीं, मैं ही अनुगृहीत हुआ । क्योंकि—

सज्जन व्यक्ति रत्न पाकर उतने प्रसन्न नहीं होते जितने कि उस रत्न

अविमारकः—एकस्तु मे संशयः। मम शरीरे परीक्षितुमिति वक्तुमसदृशमिव।

विद्याधरः—तेन हि प्रक्षिप दक्षिणांगुल्याम्।

अविमारकः—बाढम्। (तथा करोति)

विद्याधरः—वयस्य ! गृह्यतामसिः।

अविमारकः—बाढम्। (खड्गं गृहीत्वा सविस्मयम्) अहो खड्गस्य प्रभावः।

प्रच्छन्नरूपस्त्वशनिः कथञ्चित्
खड्गीकृतः स्यात्तु तडित्कलापः।
निर्भर्त्सयन् सूर्यकृतां प्रदीप्तिं
वनं दवाग्निः सहसाभ्युपैति ॥ १५ ॥

सुजनः=सत्पुरुषः। रत्नम्=मूल्यवद्वस्तुजातम्। आसाद्य=सम्प्राप्य न तथा=न तावत्। परितुष्यति=तृप्यति। यथा=यावत्। गताकांक्षे=निर्लोभे। पात्रे=जने। तत्=रत्नम्। दत्त्वा=समर्प्य। प्रहृष्यति=प्रसीदति ॥ १४ ॥

प्रच्छन्नरूप इति। अन्वयः—प्रच्छन्नरूपः, अशनिः, कथञ्चित्, खड्गीकृतः, तडित्कलापः, स्यात्। सूर्यकृताम्, प्रदीप्तिम्, निर्भर्त्सयन्, दवाग्निः, सहसा, वनम् अभ्युपैति।

को किसी निर्लोभ पात्र के हाथ सौंप कर होते हैं ॥ १४ ॥

अविमारक—मुझे एक सन्देह है। इसकी परीक्षा मेरे शरीर पर भी की जाती तो अच्छा होता।

विद्याधर—तो इसे दायें हाथ की अँगुली में पहन लो।

अविमारक—ठीक है। (वैसा करता है)

विद्याधर—मित्र यह तलवार लो।

अविमारक—अच्छी बात है। (तलवार लेकर आश्चर्यपूर्वक) अहा, खड्ग का कैसा अद्भुत प्रभाव है—

यह (खड्ग) छिपा हुआ वज्र है, या बिजली ही किसी प्रकार खड्ग में बदल गई है, या सूर्य-प्रभा को मन्द करती हुई दावाग्नि वन में फैल रही है ॥ १५ ॥

विद्याधरः—अहो वीर्यमग्निपुत्रस्य। अस्य खड्गस्य प्रभावं विद्याधरेष्वपि कतिचित् सहन्ते। अग्निः खलु भगवानिमं रक्षति।

अविमारकः—(खड्गं दृष्ट्वा) अहो भगवतीनां विद्यानां प्रभावः।

दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि
स एव नामास्मि गुणैर्विशिष्टः।
इदं यदा निर्गुणमर्त्यवृन्दै
र्न ज्ञायते चास्ति च मे शरीरम् ॥ १६ ॥

प्रच्छन्नरूपः = अदृश्यमानशरीरः। अशनिः = वज्रं स्यात्। कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण। खड्गीकृतः = असिभावं प्रापितः। तडित्कलापः = विद्युत्समूहः। स्यात् = भवेत्। सूर्यकृतां प्रदीप्तिम् = सूर्योद्भूताम् तीव्रप्रभाम्। निर्भर्त्सयन् = विनिन्दयन्। दवाग्निः = वनाग्निः। सहसा = हठात्। वनम् = अरण्यम्। अभ्युपैति = व्याप्नोति ॥ १५ ॥

वीर्यम् = पराक्रमः।

दिव्यं स्वभावमिति। अन्वयः—दिव्यम्, स्वभावम्, समुपागतः, अस्मि, स, एव, नाम, गुणैः, विशिष्टः, अस्मि, यदा, इदम्, मे, शरीरम्, निर्गुणमर्त्यवृन्दैः, न ज्ञायते, अस्ति, च।

दिव्यम् = देवोचितम्। स्वभावम् = प्रकृतिम्। समुपागतोऽस्मि = सम्प्राप्तोऽस्मि। स एव नाम गुणैः = अदृष्टिगोचरतोत्पादकैः प्रभावविशेषैः। विशिष्टः = युक्तः अस्मि नाम। यदा इदं मे शरीरम् = मम वपुः। निर्गुणमर्त्यवृन्दैः = सामान्यमनुष्यैः। न ज्ञायते। अस्ति च = किन्तु वर्त्तते। शरीरम् विद्यते किन्तु साधारणजनैः नैव दृश्यते इति भावः ॥ १६ ॥

विद्याधर—अहो, अग्निपुत्र का कैसा पराक्रम है! इस खड्ग के प्रभाव को विद्याधरों में भी कुछ ही लोग सह सकते हैं। अग्निदेव ही इसकी रक्षा करते हैं।

अविमारक—(खड्ग देखकर) विद्याओं का भी क्या अद्भुत प्रभाव है?

मैं दिव्य स्वभाव को प्राप्त हो चुका हूँ, मैं हूँ वही पर विशिष्ट गुणों से युक्त हो चुका हूँ। मेरा शरीर यद्यपि है, पर साधारण व्यक्ति इसे देख नहीं सकते ॥ १६ ॥

वयस्य ! कृतमस्मत्कार्यम् । गृह्यतामसिः ।

विद्याधरः—यदिष्टं भवतः । वयस्य ! अन्तर्हितश्चान्तर्हितस्पृष्टश्च तत्स्पृष्टश्चान्तर्हिता भवन्तीति निश्चयः ।

अविमारकः—सखे ! प्रीतोऽस्मि । अयमभ्युदयादभ्युदयः । सखे ! अस्मदपेक्षया विलम्बितमिति तर्कयामि । मा भूदिदानीं वेलातिक्रमः ।

विद्याधरः—प्रविष्टोऽस्मि, यथापृष्टो भवान् ।

अविमारकः—किं बहुना भाषितेन ।

विद्यावशानां तु भवद्विधानां
कोऽस्मद्विधः स्यात् प्रतिकर्तुकामः ।
क्रीतोऽस्म्यहं जीवितसम्प्रदानात्
प्रशाधि मां किं करवाणि भृत्यः ॥ १७ ॥

वेलातिक्रमः = कालातिपातः । आपृष्टः = गमनानुमतिं याचितः ।

विद्यावशानामिति । अन्वयः—विद्यावशानाम्, भवद्विधानाम्, कः, अस्मद्विधः, प्रतिकर्तुकामः, स्यात् । अहम्, जीवितसम्प्रदानात्, क्रीतः, अस्मि, अहम्, भृत्यः, किम्, करवाणि, प्रशाधि ।

विद्यावशानाम् = सिद्धविद्यानाम् । भवद्विधानाम् = भवत्सदृशानाम् । कः अस्मद् विधः = मत्सदृशः । प्रतिकर्तुकामः = प्रत्युपकारं कर्त्तुमिच्छुः । न कोऽपी-

---

मित्र ! हमारा कार्य आपने कर दिया । यह अपना खड्ग लीजिये ।

विद्याधर—तुम्हारी जो इच्छा । मित्र, अंगूठी पहनने पर तुम स्वयं अदृश्य हो जाओगे । तुम जिसे छूते रहोगे वह भी अदृश्य होगा । वह जिसे छूता रहेगा वह भी अदृश्य होगा ।

अविमारक—मित्र मैं प्रसन्न हूँ । अभ्युदय पर अभ्युदय होता जा रहा है । मित्र, मेरे कारण आपको बहुत विलम्ब होगा, ऐसा मैं सोचता हूँ । अब अधिक समय नष्ट न करें ।

विद्याधर—आपने जब पूछ लिया तो अब हमें पहुँचा हुआ भी समझें ।

अविमारक—अधिक कहने से क्या—

आपको विद्या सिद्ध है, आप-जैसे लोगों का प्रत्युपकार मेरे-जैसा व्यक्ति भला क्या करेगा ? आपने जीवनदान द्वारा मुझे खरीद लिया है । मैं दास हूँ । आप आज्ञा करें कि मैं क्या करूँ ॥ १७ ॥

विद्याधरः—जानाम्यहं भवतोऽच्छलां बुद्धिम्। यदि च भवानस्मद्वचनमनुवर्तते,

सख्यै मम प्रतिनिवेदय मामिमां च
त्वं मामनुस्मर सखे ! गतिरीक्ष्यतां मे।
क्रीडारसैः प्रतिविलोभय राजपुत्रीं
कार्यान्तरेषु पुनरप्यहमस्मि पार्श्वे ॥ १८ ॥

त्यर्थः। मादृशो विद्याविहीनो जनः भवादृशाम् विविधविद्यायुक्तानाम् प्रत्युपकाराय न समर्थ इति भावः। अहम्=अविमारकः। (भवता) जीवितप्रदानात्=जीवनदानात्। क्रीतः=स्वाधीनोकृतः। अस्मि। अहम् भृत्यः=दासः। किम् करवाणि=मया किं विधेयमिति। प्रशाधि=आज्ञापय। त्वमिति शेषः ॥ १७ ॥

अच्छलाम्=निष्कपटाम्।

सख्यै ममेति। अन्वयः—माम्, इमाम्, च, मम, सख्यै, प्रतिनिवेदय। सखे ! त्वम्, माम्, अनुस्मर, मे, गतिः, ईक्ष्यताम्, क्रीडारसैः, राजपुत्रीम्, प्रतिविलोभय, कार्यान्तरेषु, पुनः, अपि, अहम्, पार्श्वे, अस्मि।

माम्=विद्याधरम्। इमां च=मम पत्नीं सौदामनीम्। मम सख्यै=कुरङ्ग्यै। प्रतिनिवेदय=कथय। आवयोर्विषये स्वप्रियाम् विज्ञापयेति भावः। त्वम्=अविमारकः। माम् अनुस्मर=सततं मम स्मरणं कुरु। मे गतिः=मम साम्प्रतिकी नभोयात्रा। ईक्ष्यताम्=विलोक्यताम्। क्रीडारसैः=प्रणयलीलोत्पन्नैरानन्दैः। राजपुत्रीम्=कुरङ्गीम्। प्रतिविलोभय=मुग्धां कुरु। कार्यान्तरेषु=अन्यविधेषु कार्येषु समुपस्थितेषु। पुनरपि=भूयोऽपि। अहम्=विद्याधरः। पार्श्वेऽस्मि = तव सविधे एवोपस्थितोऽस्मीत्येवमेव त्वयाऽनुभवितव्यमित्याशयः ॥ १८ ॥

विद्याधर—मैं आपकी निष्कपट बुद्धि को जानता हूँ। यदि आप मेरी बात मानें तो—

आप अपनी प्रेयसी से मेरी तथा मेरी पत्नी सौदामनी की चर्चा करें, स्वयं मुझे स्मरण करते रहें, मेरी गति देखें, अपनी क्रीडाओं से राजकुमारी को मुग्ध करें एवं अन्य कार्यों के समय मुझे अपने पास ही उपस्थित जानें ॥ १८ ॥

अहो पुरुषसारो हि नाम नेच्छति विसर्जयितुं मे मनः वयस्य! । गच्छामस्तावत् ।

अविमारकः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

विद्याधरः—बाढम् ।

(उत्थितो विद्याधरः सह प्रियया)

अविमारकः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष हि तत्रभवान् मेघनादो गगनार्णवमवगाढः । य एषः,

वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः
सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः ।
वातोद्धूतोत्तरीयो मुकुटमणिगणैस्तारकाः सम्प्रमृद्नन् ।
श्रीमान् विद्याधरोऽसावुपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति ॥१९॥

पुरुषसारः = पुरुषश्रेष्ठः । विसर्जयितुम् = पृथक् भवितुम् । गगनार्णवम् = आकाशसमुद्रम् ।

वातोद्धूताग्रेति । अन्वयः—वातोद्धूताग्रकेशः, सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः, सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः, प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः, वातोद्धूतोत्तरीयः, मुकुटमणिगणैः, तारकाः, सम्प्रमृद्नन्, श्रीमान्, असौ, विद्याधरः, उपरिगतिजवैः, क्षीयमाणः, प्रयाति ।

वातोद्धूताग्रकेशः—वातेन = पवनेन, उद्धूताः = कम्पिताः, अग्रकेशाः =

ओह, इस पुरुष-श्रेष्ठ को छोड़ने को जी नहीं चाहता । मित्र, अब चलते हैं ।

अविमारक—अच्छा, जाइये, फिर दर्शन दीजियेगा ।

विद्याधर—अच्छी बात । (विद्याधर अपनी प्रिया के साथ उठता है)

अविमारक—(ऊपर देखकर) यह मेघनाद आकाश-सागर में पैठ गये । ये,

इनके बाल हवा में लहरा रहे हैं, मेघ की कन्दरा में इनका शरीर कभी छिप जाता है एवं कभी दिखाई पड़ने लगता है, कमर में खड्ग अच्छी तरह बँधा हुआ है, प्रियतमा की भुजाओं से मध्यभाग आवेष्टित है, चादर हवा में उड़ रही है, मुकुट-मणियाँ तारों से घिस रही हैं, इस प्रकार यह शोभायुक्त विद्याधर ऊपर जाने के वेग से प्रतिक्षण क्षीणदर्शन होता जा रहा है ॥ १९ ॥

इयमपि विद्याबलेन प्रियमनुवर्तते। यैषा,

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी
स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या।
वियति दयितदत्तपूर्वकाया
तडिदिव तोयधरेषु दृष्टनष्टा ॥ २० ॥

केशाग्रभागाः यस्य स तथोक्तः। सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः—सलिलधरः= पयोधरः, तस्य दरीभिः=कन्दराभिः, मृष्टः=विलुप्तः, दृष्टश्च=दृष्टिगोचरश्च, अङ्गरागः=कालवर्णो यस्य तादृशः। सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः=यस्य असिकक्ष्या =खड्गपरिकरः सम्यक्तया बद्धा, तथाभूतः। प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः =प्रियतमाभुजालिङ्गितमध्यभागः। वातोद्धूतोत्तरीयः=वायुप्रकम्पिताधोवस्त्रः। मुकुटमणिगणैः=मुकुटरत्नसमूहैः। तारकाः=नक्षत्राणि। सम्प्रमृद्नन् सङ्कर्षयन्। श्रीमान्=अतिशोभायुक्तः। असौ विद्याधरः=एष देवयोनिविशेषः। उपरिगतिजवैः=ऊर्ध्वगमनवेगैः। क्षीयमाणः=क्षीणदर्शनः। प्रयाति=गच्छति। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १९ ॥

जवशिथिलेति। अन्वयः—जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी, स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या, वियति, दयितदत्तपूर्वकाया, तोयधरेषु, तडिदिव, दृष्टनष्टा।

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी—जवेन=वेगेन, शिथिलाः=श्लथबन्धनाः, विमुक्ताः=लम्बमानाश्च पार्श्वकेशाः यस्याः सा तथाभूता। स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या=कुचतटचलनश्रान्तशून्यमध्यभागा। वियति=नभसि। दयितदत्तपूर्वकाया—दयिताय=स्वामिने, दत्तः=दयितोपरि न्यस्तः, पूर्वकायः= शरीरस्य पूर्वभागो यया सा तथोक्ता। एवं तथा सति तोयधरेषु=मेघेषु।

यह सौदामनी भी विद्या के बल से प्रियतम का अनुगमन कर रही है। यह, वेग के कारण इसके पार्श्व-केश बिखर गये हैं, स्तनतट के कांपते रहने से इसका मध्यभाग श्रान्त एवं शून्य हो गया है, आकाश में जाकर इसने अपने शरीर का पूर्वभाग प्रियतम की गोद में डाल दिया है, इस प्रकार वह मेघ के बीच बिजली-सी लग रही है जो क्षण भर में दीखती है और तुरन्त ही विलीन-सी हो जाती है ॥ २० ॥

गतस्तत्रभवान् मेघनादः। अहमप्यद्यैव नागराभिमुखो भविष्यामि। यावदवतरामि। (अवतीर्य) परिश्रान्त इवास्मि। भवतु, एतस्मिन् शिलातले मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यामि। (उपविशति।)

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अहो तत्तहोदो सुगहीदणामहेअस्स सोवीररास्स अधण्णदा, जाए चिरं अपुत्तो भविअ अत्तणो णिअमविसेसेण देव्वप्पसादेण अ माणुसलोअदुल्लभं सुपुत्तं लभिअ पुणो वि तादिसो एव संवुत्तो। सव्वहा मम अ समत्तजीविददाए बन्धुजणस्स अधण्णदाए परिब्भट्ठो कुमारो। (परिक्रम्य) अज्ज खु तत्तहोदीए भणिदं—खेमेण गदो कुमारो त्ति। अह्व को एत्थ जाणादि अदिसुउमारो राअउमारो एआई वम्महेण अमितालिअमाणो परिब्भट्ठो कुसलो होदि त्ति। अहं वि कुमारं वा कुमारस्स सरीरं वा पेक्खिस्सामि दाव सव्वलोअं परिब्भमिअ। जदि ण पेक्खामि, तत्तहोदो परत्त सहाओ होमि। परिस्सन्तो खु अहं। भोदु, एदस्सिं पादपिच्छाआअं मुहुत्तअं विस्समिअ गमिस्सं। (स्वपिति) [अहो तत्रभवतः सुगृहीतनामधेयस्य सौवीरराजस्याधन्यता, यया चिरमपुत्रो भूत्वात्मनो नियमविशेषेण दैवप्रसादेन च मानुषलोकदुर्लभं सुपुत्रं लब्ध्वा पुनरपि तादृश एव संवृत्तः। सर्वथा मम च समाप्तजीवितया बन्धुजन-

---

तडिदिव = विद्युल्लतेव। दृष्टनष्टा = तत्काल एव दृष्टा सत्यनुपदमेव नष्टा = विलीना विभाति ॥ २० ॥

तत्रभवतः = वन्दनीयस्य। सुगृहीतनामधेयस्य = प्रसिद्धनाम्नः। अधन्यता = भाग्यहीनता। नियमविशेषेण = तपश्चर्याविशेषेण। दैवप्रसादेन = सौभाग्येन।

पूज्य मेघनाद चले गये। मैं भी आज ही नगर की ओर चलता हूँ। उतरता हूँ (उतरकर) थक गया हूँ। अच्छा, इसी चट्टान पर थोड़ी देर विश्राम कर आगे चलूँगा। (बैठता है)

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—हमारे ख्यातनामा सौवीरराज का यह दुर्भाग्य ही है कि बहुत दिनों तक पुत्रहीन रहकर नियमविशेषों एवं दैवकृपा से अतिमानव सुपुत्र को पाकर पुनः पुत्रहीन ही हो गये। मेरा जीवन समाप्त हो जाने से एवं

स्याद्यन्यतया परिभ्रष्टः कुमारः। अद्य खलु तत्रभवत्या भणितं—क्षेमेण गतः कुमार इति। अथवा कोऽत्र जानाति अतिसुकुमारं राजकुमार एकाकी मन्मथेनाभिताड्यमानः परिभ्रष्टः कुशलो भवतीति। अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्य। यदि न प्रेक्षे, तत्रभवतः परत्र सहायो भवामि। परिश्रान्तः खल्वहम्। भवतु, एतस्यां पादपच्छायायां मुहूर्तकं विश्रम्य गमिष्यामि।]

अविमारकः—का नु खलु सन्तुष्टस्यावस्था। सुष्ठु भवेद् यदि मे निर्गमनं तेन श्रुतं, न श्रुतं चेद् विपत्स्यते स ब्राह्मणः। अथवा किं मम सर्वारम्भैस्तेन विना। स हि,

गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु।

क्षेमेण गतः = सकुशलं प्रस्थितः। मन्मथेनाभिताड्यमानः = कामदेवेन पीड्यमानः। पादपच्छायायाम् = वृक्षच्छायायाम्। विपत्स्यते = विपत्तिग्रस्तो भविष्यति। सर्वारम्भैः = सकलैरपि कार्यैः।

गोष्ठीषु हास्य इति। अन्वयः—गोष्ठीषु, हास्यः, समरेषु, योधः, शोके, गुरुः, परेषु, साहसिकः, मे, हृदि, महोत्सवः, प्रलापैः, किम्, मे, शरीरम्, खलु, द्विधा, विभक्तम्।

बंधुओं के अभाग्य से कुमार खो गये हैं। आज महारानी ने कहा है कि कुमार सकुशल गये हैं। अथवा कौन जानता है कि अति सुकोमल राजकुमार असहायावस्था में कामपीडित होकर भी सकुशल ही होंगे। मैं भी निकल पड़ा हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमकर कुमार को या कुमार के शरीर को देखकर ही रहूँगा। यदि न देख सका तो परलोक में कुमार का सहायक बनूँगा। थक गया हूँ। अच्छा इसी पेड़ की छाया में थोड़ा विश्राम करके जाऊँगा।
(सोता है)

अविमारक—सन्तुष्ट की क्या अवस्था है? अच्छा होता, यदि मेरे निकल आने का समाचार उसे ज्ञात हो जाता। यदि नहीं ज्ञात हुआ होगा तो वह ब्राह्मण मुसीबत में पड़ जायगा। फिर उसके बिना मेरे इन प्रयासों का क्या फल? वह—

समाज में हास्यकर, युद्ध में योद्धा, शोककाल में गुरु, शत्रुओं के समक्ष

महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापै-
द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥ २१ ॥

(सर्वतो विलोक्य) अये, को नु खलु च्छायायामध्वगः प्रसुप्तः। (उपेत्य) अभ्युदयो मे हृदयस्य यदृच्छया गतः। त्वरते मे मनः परिष्वङ्क्तुमेनम्।

विदूषकः—(बुद्ध्वा) चिरं खु सुत्तम्हि। जाव गच्छामि। को विस्समो णाम विब्भट्ठमणोरहाणं। (परिक्रम्याविमारकं विलोक्य) कहं तत्तभवं अविमारओ। [चिरं खलु सुप्तोऽस्मि। यावद् गच्छामि। को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम्। कथं तत्रभवान् अविमारकः।]

अविमारकः—अये वयस्यः सन्तुष्टः।

(उभौ परिष्वजेते)

विदूषकः—(उच्चैर्विहस्य) भो वअस्स! कहेहि कहेहि एत्तिअं कालं किं तुए किदं। [भो वयस्य! कथय कथयैतावन्तं कालं किं त्वया कृतम्।]

गोष्ठीषु=जनसम्पर्केषु। हास्यः=हास्यकरः। समरेषु=युद्धेषु। योधः=योद्धा। शोके=खेदसमये। गुरुः=सान्त्वनादायकः। परेषु=अरिषु, प्राप्तेषु। साहसिकः=साहसोत्पादकः। मे=मम। हृदि=हृदये। महोत्सवः=महान् प्रहर्षः। किं प्रलापैः=अनावश्यकभाषणैः किं फलम्। स हि मम सखा विदूषकः द्विधा विभक्तं मे शरीरम्=मम द्वितीयम् शरीरमिव वर्तते इति भावः॥ २१॥

अध्वगः=पथिकः। प्रसुप्तः=निद्रामग्नः। परिष्वङ्क्तुम्=आलिङ्गितुम्। विभ्रष्टमनोरथानाम्=नष्टाभिलाषाणाम्।

साहसी और मेरे हृदय का महोत्सवरूप है। अधिक क्या, वह तो दो भागों में विभक्त मेरा शरीर ही है ॥ २१ ॥

(चारों ओर देखकर) अरे, इस छाया में कौन पथिक सोया हुआ है? (समीप जाकर) मेरे हृदय का आनन्द तो स्वयं ही आ गया है। इसे गले से लगाने के लिए मेरा मन उतावला हो रहा है।

विदूषक—(जगकर) बहुत देर तक सोता रहा, अब जाता हूँ। विफल मनोरथ व्यक्तियों के लिए क्या विश्राम? (चलकर अविमारक को देखकर) क्यों, यह मेरे अविमारक हैं?

अविमारक—अरे, यह तो मेरा मित्र सन्तुष्ट है। (दोनों गले लगते हैं)

विदूषक—(हँसकर)अरे मित्र,यह कहो,इतने समय तक तुम क्या करते रहे?

अविमारकः—वयस्य ! एतत् कृतम् । (अंगुलीयकं दक्षिणांगुल्यां प्रक्षिप्य तिरस्कृतः ।)

विदूषकः—हा हा कहिं कहिं तत्तभवं । कहं ण दिस्सदि । आ तस्सि गदाए चिन्ताए तं विअ पेक्खामि । अहव फुडीकरिस्सं । भो वअस्स ! सावेण साविदो सि, जदि अत्ताणं छादेसि । [हा हा, क्व क्व तत्रभवान् । कथं न दृश्यते । आ तस्मिन् गतया चिन्तया तमिव पश्यामि । अथवा स्फुटीकरिष्यामि । भो वयस्य ! शापेन शापितोऽसि, यद्यात्मानं छादयसि ।]

अविमारकः—वयस्य ! अयमस्मि ।

विदूषकः—कहिं कहिं सि । [क्व क्वासि ।]

अविमारकः—(वामांगुल्यामंगुलीयकं प्रक्षिप्य) वयस्य ! अयमस्मि ।

विदूषकः—पुढमं सुद्धो अविमारओ, दाणिं माआविमारओ संवुत्तो । एवं माआवित्तअ ! किस्स तुवं कण्याउरे पच्छण्णरूवो ण चरसि । [प्रथमं शुद्धोऽविमारकः इदानीं मायाविमारकः संवृत्तः । एवं मायावित्तक ! कस्मात् त्वं कन्यापुरे प्रच्छन्नरूपो न चरसि !]

अविमारकः—वयस्य ! इदानीं खल्वेतदुपलब्धम् ।

मायावित्तक = मायाकुशल ।

अविमारक—मित्र, यही किया है (अँगूठी को दायें हाथ में डालकर गायब हो जाता है)

विदूषक—हा, हा, अरे कहाँ गया मेरा मित्र ? वह दीखता क्यों नहीं । उसी की चिन्ता करते रहने के कारण हर जगह उसी की छाया दीखती है । अथवा सफाई कर लूँगा । अरे मित्र, मैं शाप दे दूँगा यदि तुम छिपे रहे ।

अविमारक—मित्र, यहीं तो हूँ ।

विदूषक—कहाँ, कहाँ हो ?

अविमारक—(अँगूठी को बायें हाथ में डालकर) मित्र, यहीं तो हूँ ।

विदूषक—पहले तो शुद्ध अविमारक ही थे, अब मायावी अविमारक हो गये हो । अरे माया-प्रवीण ! अब तुम कन्यापुर में छिपकर क्यों नहीं विचरण किया करते हो ?

अविमारक—मित्र, अभी तो यह मिला है ।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं । कुदो दाणिं एदस्स आगमो । [आश्चर्यमाश्चर्यम् । कुत इदानीमेतस्यागमः]

अविमारकः—सर्वमन्तःपुरे कथयिष्यामि ।

विदूषकः—सम्पदि बुभुक्खिदो सि । [संप्रति बुभुक्षितोऽसि ।]

अविमारकः—वैधेय ! शीघ्रमागच्छ प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय । नैवायं हस्तो मोचयितव्यः ।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं । अहं पि दाव अदिस्सो । मम सरीरं अत्थि वा णत्थि वा । उच्छिट्ठं करिस्सं । थु थु । [आश्चर्यमाश्चर्यम् । अहमपि तावददृश्यः । मम शरीरमस्ति वा नास्ति वा । उच्छिष्टं करिष्यामि । थु थु ।]

अविमारकः—मूर्ख ! अलमलं विलम्बितेन । त्वरते मे मनः कान्तादर्शनाय । (आकर्षति)

विदूषकः—ण मे सद्धा । [न मे श्रद्धा ।]

अविमारकः—हन्त: भोजनवेलां प्रतिपालयामि ।

वैधेय = मूर्ख ! प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय = मायाबलेन गुप्तरूपत्वप्राप्तये । मोचयितव्यः = त्यक्तव्यः । उच्छिष्टं करिष्यामि = थूत्कारं करिष्यामि । त्वरते = शीघ्रतां करोति । कान्तादर्शनाय = प्रियावलोकनाय । प्रतिपालयामि = प्रतीक्षे ।

विदूषक—आश्चर्य है, आश्चर्य ! अभी यह कहाँ से मिला ?

अविमारक—सारी बातें अन्तःपुर में बताऊँगा ।

विदूषक—अभी क्या भूखे हो ?

अविमारक—मूर्ख ! जल्दी आओ, अदृश्य होने के लिए । मेरा हाथ मत छोड़ना ।

विदूषक—आश्चर्य है, आश्चर्य ! मैं भी अदृश्य हो गया । मेरा शरीर है या नहीं । थूकूँगा ।

अविमारक—मूर्ख ! देर मत करो । प्रियतमा से मिलने के लिए मेरा मन उतावला हो रहा है ।

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं हो रही है ।

अविमारक—हाय, भोजन के समय भी प्रतीक्षा करता हूँ ।

विदूषकः—कञ्चि कालं विस्समिअ गमिस्सामो। [कंचित् कालं विश्रम्य गमिष्यावः।]

अविमारकः—किं न स्मरति मां कुरंगी।

विदूषकः—किण्णु खु जीवदि णग्गन्धस्समणिआ। [किं नु खलु जीवति नग्नान्धश्रमणिका।]

अविमारकः—वयस्य! याचे भवन्तं, शीघ्रमागम्यताम्।

विदूषकः—किस्स तुवं किदसमावुत्तो वडुओ विअ तुवरसि। [कस्मात् त्वं कृतसमावर्तो वटुक इव त्वरसे।]

अविमारकः—मूर्ख! इतस्तावत्।

विदूषकः—मा कड्ढेहि, अअं अणुधावामि। [मा कर्ष, अयमनुधावामि।]

अविमारकः—[परिक्रम्य] एतन्नगरम्।

विदूषकः—पेक्खामि दाव णअरस्स सोहं। [पश्यामि तावन्नगरस्य शोभाम्।]

नग्नान्धश्रमणिका = संन्यासिनी नग्ना अन्धा च यथा स्यात्तथा। कृतसमावर्तः = सम्पादितसमावर्तनसंस्कारः। वटुक इव = माणवक इव। त्वरसे = शीघ्रतां कुरुषे।

विदूषक—कुछ देर विश्राम करके चलूँगा।

अविमारक—क्या कुरङ्गी मुझे याद नहीं करती है?

विदूषक—क्या वह नग्ना संन्यासिनी जीवित भी है?

अविमारक—मित्र, प्रार्थना करता हूँ, जल्दी आओ।

विदूषक—क्यों तुम समावर्तन किये गये वटुक की तरह जल्दीबाजी कर रहे हो।

अविमारक—मूर्ख, इधर चलो।

विदूषक—अरे खींचो मत। चल तो रहा हूँ।

अविमारक—(चलकर) यही नगर है।

विदूषक तब तक नगर की शोभा देखता हूँ।

अविमारकः—इदं राजकुलं ।

एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को
यत् साहसं समुपलभ्य तथा प्रविष्टः ।
भूयस्तदेव दिवसे सुसहायमायो
वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ॥ २२ ॥

(परिक्रम्य) इदानीं प्रासादे स्नातयाभ्यन्तरस्थया कुरंग्या भवितव्यम् ।

विदूषकः—जहि वा तहि वा पविसामो । अदिक्कमदि भिक्खवेला । (यत्र वा तत्र वा प्रविशावः । अतिक्रामति भिक्षावेला ।)

अविमारकः—एहि तावदभ्यन्तरमेव प्रविशावः (प्रविश्य) इह हि,

एतन्नरेन्द्रेति । अन्वयः—एतत्, नरेन्द्रभवनम्, यत्, निशि, जातशङ्कः, तथा, साहसम्, समुपलभ्य, प्रविष्टः, भूयः, तदेव, दिवसे, सुसहायमायः, अशङ्कः, सताम्, वृन्दम्, पटुः, इव, प्रविशामि ।

एतत् = इदम् । नरेन्द्रभवनम् = राजप्रासादः । यत् = यत्राहम् । निशि = रात्रौ । जातशङ्कः = शङ्कमानः । तथा = तादृशम् । साहसम्, समुपलभ्य = कृत्वा । प्रविष्टः = प्रवेशं कृतवान् । भूयः = पुनः । तदेव = तदेवेदम् राजकुलम् यत्रेदानीम् । दिवसे = दिवाप्रकाशे । सुसहायमायः = मायायाः साहाय्यमवाप्य । अशङ्कः = निर्भयो भूत्वा । सतां वृन्दम् = सज्जनसमूहम् । पटु इव = चतुरो जन इव प्रविशामि । यथा चतुरो जनः सज्जनमण्डलं निःशङ्कभावेन प्रविशति तथैवाहं दिवस एव मायाबलेन राजकुलम् प्रविशामीति भावः ॥ २२ ॥

अविमारक—यहीं राजकुल है,

यही वह राजभवन है जहाँ पहले मैंने रात में भयभीत होकर प्रवेश किया था । आज उसी राजभवन में माया की सहायता से मैं दिन-दहाड़े बिलकुल निडर होकर उसी प्रकार प्रवेश कर रहा हूँ, जिस प्रकार सज्जन मण्डली में निपुण व्यक्ति प्रवेश करता है ॥ २२ ॥

(चलकर) अभी कुरङ्गी छत पर नहाकर बैठी होगी ।

विदूषक—जहाँ-तहाँ पैठ चलो । भिक्षा का समय बीत रहा है ।

अविमारक—चलो भीतर ही चलें (प्रवेशकर) यहाँ—

पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितै-
र्मनस्विभिर्दुर्लभचिन्तयाऽऽगतैः ।
पुनः कृतार्थैर्मुदितान्तरात्मभिः
सुखं प्रवेष्टुं सविशेषकर्मभिः ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

चतुर्थोऽङ्कः ।



पुरे गृहे वेति । अन्वयः—पुरे, गृहे, वा, अपि, सुखोषितैः, दुर्लभचिन्तयाऽऽगतैः, मनस्विभिः, पुनः, कृतार्थैः, मुदितान्तरात्मभिः, सविशेषकर्मभिः, सुखम् प्रवेष्टुम् ।

पुरे = नगरे । गृहे = राजभवने वापि । पुरा = पूर्वम् । सुखोषितैः = सुख पूर्वं कृतवासैः । दुर्लभचिन्तयाऽऽगतैः = अप्राप्यवस्तुनः प्राप्तेरिच्छया समायातैः । मनस्विभिः = दृढनिश्चयैः पुनः । कृतार्थैः = सफलमनोरथैः । मुदितान्तरात्मभिः = प्रसन्नचित्तैः । सविशेषकर्मभिः = विशेषकार्यवशात् समागतैः जनैः । सुखं प्रवेष्टुम् = प्रवेशं कर्त्तुम् सुखकरम् ॥ २३ ॥

इति कमलेश्वरी टीकायां चतुर्थोऽङ्कः ।



नगर में या घर में सुखपूर्वक वास करने वाले, दुर्लभ वस्तु की इच्छा से दृढ़निश्चयी, सफल मनोरथ एवं प्रसन्न व्यक्ति आसानी से प्रवेश कर पाते हैं ॥ २२ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

॥ चतुर्थ अङ्क समाप्त ॥



पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी नलिनिका च)

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं सन्दावेण । कण्णाउरप्पासादं आलुहिअ दिट्ठिविलोभणं करिस्सामो । [भर्तृदारिके ! अलं सन्तापेन । कन्यापुरप्रासादमारुह्य दृष्टिविलोभनं करिष्यावः ।]

कुरङ्गी—हला ! किं तुए मम हिअअं परिण्णादं । एत्थ हि अजाणन्तेण परिजणेण मम परितोसणिमित्तं बउलसरलसज्जज्जुणकदम्बणीवणिउलप्पहुदीणि मेहकालवल्लहाणि परमसुरहीणि आणीअमाणाणि मं उम्मादअन्ति । अह अ इमे मोरा अम्हाअराअउलमाणसे अदिपीठमद्दभावं करन्ति । अम्हेहिं सददलालिदा वि अदेसकालण्णदाए अत्तणा अहिकण्णभाव दंसेदि । सुअसारिआ वि वक्खाणं एवं कहेदुं आरद्धा । मम णिव्वेदभावं अजाणन्ती भूदिअसारिआ वि सव्वलोअवुत्तन्तं कहइस्सामि त्ति आअदा । मम रोआवत्थं पुच्छिदुं आअदा परिजणा मं णिव्वन्धिअ णिवेदेदि । ता इच्छामि मुहुत्तअं पासादे अच्छिदुं । [हला ! किं त्वया मम हृदयं परिज्ञातम् । अत्र ह्यजानता परिजनेन मम परितोषनिमित्तं बकुलसरलसर्जार्जुनकदम्बनीपनिचुलप्रभृतीनि मेघकालवल्लभानि परमसुरभीण्या-

---

ततः प्रविशतीति । दृष्टिविलोभनम्=नयनानन्दजनकवस्तुदर्शनेन मनोविनोदम् । अजानता = मम व्यथामिरपरिचितेन । परितोषनिमित्तम् = सान्त्वनार्थम् । बकुलम् = केसरम् । सरलः = देवद्रुमः । अर्जुनः = पार्थः । निचुलः = वेतसः । नीपः =

(कुरङ्गी तथा नलिनिका का प्रवेश)

नलिनिका—राजकुमारी ! सन्ताप न करें । चलिये, कन्यापुर-प्रासाद पर चलकर आँखों को आनन्दित करें ।

कुरङ्गी—सखी, तुमने मेरे हृदय को क्या समझ रखा है ? मेरी अन्तर्दशा से अपरिचित परिजन मेरे सन्तोषार्थ, बकुल, सरल, सर्ज, अर्जुन,

नीयमानानि मामुन्मादयन्ति । अथ चेमे मयूरा अस्माकं राजकुलमानसे अतिपीठ-मर्दभावं कुर्वन्ति । अस्माभिः सततलालिता अप्यदेशकालज्ञतयात्मनोऽधिकज्ञभावं दर्शयति । शुकसारिकापि व्याख्यानमेव कथयितुमारब्धा । मम निर्वेदभावम-जानन्ती भूतकसारिकापि सर्वलोकवृत्तान्तं कथयिष्यामीत्यागता । मम रोगावस्थां प्रष्टुमागतः परिजनो मां निर्बध्य निवेदयति । तदिच्छामि मुहूर्तकं प्रासादे आसितुम् ।]

नलिनिका—ज भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

(उभे आरोहतः)

कुरङ्गी—हला एत्थ वि महन्ता अणत्थो उट्ठिदो विज्जुप्पदीवं धारिअ कालमेहो । [हला ! अत्रापि महाननर्थ उत्थितः विद्युत्प्रदीपं धृत्वा । कालमेघः ।]

कदम्बः । मेघकालवल्लभानि = वर्षाकालमनोहराणि । परमसुरभीणि = अति-सुगन्धितानि । मामुन्मादयति = मम वैक्लव्यं वर्द्धयन्ति । सततलालिता = निर-न्तरपालिता । अदेशकालज्ञतया = देशकालयोर्ज्ञानं यद्यपि नास्ति तथापि । अधिकज्ञभावम् = बहुज्ञताम् । निर्वेदभावम् = खेदम् । निर्बध्य = हठात् । आसि-तुम् = उपवेष्टुम् ।

कदम्ब आदि अत्यन्त सुगन्धित एवं वर्षाकाल में मनोहर लगने वाले फूल लाकर मुझे और अधिक बेचैन कर देते हैं । ये मयूर हमारे कन्यापुर में पीठ-मर्द का काम करते हैं । मैंने इन्हें हमेशा पाला है । देश-काल के ज्ञान से शून्य होने पर भी ये अपनी अधिकज्ञता प्रकट करते हैं । यह सारिका व्याख्यान प्रारम्भ कर देती है । मेरे खेद को न जानती हुई यह भूतिक सारिका भी मानो सम्पूर्ण संसार का वृत्तान्त सुनाने आ गई है । मेरी रोगावस्था को जानने जो भी दासी आती है वह मुझे बाध्य करके कुछ कह जाती है । इसलिए मैं कुछ देर प्रासाद पर बैठना चाहती हूँ ।

नलिनिका—राजकुमारी को जो अच्छा लगे वही हो ।

(दोनों प्रासाद पर चढ़ती हैं)

कुरङ्गी—सखी, यहाँ तो महान् अनर्थ उठ खड़ा हुआ है, यह बिजली का दीपक लेकर कालमेघ उपस्थित है ।

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं उक्कण्ठिदेण पेक्ख पेक्ख णवसलिलधररुद्धसुय्यं पविरलजलणिवाददस्सणीअ गअणअलं । [भर्तृदारिके अलमुत्कण्ठितेन । पश्य पश्य नवसलिलधररुद्धसूर्यं प्रविरलजलनिपातदर्शनीयं गगनतलम् ।]

कुरङ्गी—पेक्खामि अ रमणीअं आआसं । [पश्यामि च रमणीयमाकाशम् ।]

(ततः प्रविशत्यविमारको विदूषकश्च)

अविमारकः—वयस्य ! दृष्टा सा कुरङ्गी । यैषा,

रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा
विमुक्तभूषा गतहावभावा ।
विभाति निर्व्याजमनोहराङ्गी
वेदश्रुतिर्हेतुविवर्जितेव ॥ १ ॥

कालमेघः = कृष्णवर्णो मेघः । नवसलिलधररुद्धसूर्यम् = नवजलधरतिरोहितभानुम् । प्रविरलजलनिपातदर्शनीयम् = अल्पवृष्टिरमणीयम् ।

रोगादिति । अन्वयः—रोगात्, अकालागुरुचन्दनार्द्रा, विमुक्तभूषा, गतहावभावा, निर्व्याजमनोहराङ्गी, हेतुविवर्जिता, श्रुतिः, इव, विभाति ।

रोगात् = मनःक्लेशात् । अकालगुरुचन्दनार्द्रा = कालागुरुचन्दनलेपेन या आर्द्रता तद्रहिता । विमुक्तभूषा = परित्यक्ताखिललङ्करणा । गतहावभावा = दूरीकृतसमस्तविलासा । निर्व्याजमनोहराङ्गी = अव्याजरमणीयशरीरा । हेतुविवर्जिता = तर्कविद्याविहीना । श्रुतिरिव = वेदा इव । विभाति = शोभते ॥१॥

नलिनिका—राजकुमारी, उत्कण्ठित न हो देखो, नवीन मेघों ने सूर्य को छिपा दिया । झीनी-झीनी वर्षा पड़ रही है । आकाश कितना अच्छा लग रहा है ।

कुरङ्गी—रमणीय आकाश को मैं देख रही हूँ ।

(अविमारक तथा विदूषक का प्रवेश)

अविमारक—मित्र ! कुरङ्गी को देखा जो,

रोगवश जिसने चंदन का लेप नहीं किया है, आभूषणों को उतार फेंका है, सारे हाव-भाव छोड़ दिये है, फिर भी इसका शरीर निश्छल सुन्दर है, जिस प्रकार तर्कविद्या से रहित वेदशास्त्र अच्छा लगता है ॥ १ ॥

विदूषकः—भो ! तुट्ठो-म्हि । तुवं खु सव्वलोए अहं सुरूवो त्ति अत्ताणं आअरसि । जिदो दाणि तत्तहोदीए सहावरमणीएण रूवेण । चिन्तेमि भवदो विओएण इअ तणुआ जादा । एवं पि एसा बालचन्दलेहा विअ दिट्ठिं तोसेदि । [भोः ! तुष्टोऽस्मि ! त्वं खलु सर्वलोकेऽहं सुरूप इत्यात्मानमावरसि । जित इदानी तत्रभवत्याः स्वभावरमणीयेन रूपेण । चिन्तयामि भवतो वियोगेनेयं तनुका जाता । एवमप्येषा बालचन्द्रलेखेव दृष्टिं तोषयति ।]

अविमारकः—सखे ! अतिपण्डित इव किमेतत् ।

विदूषकः—भो ! णिच्चपरिच्चएण मं परिहससि । अपुव्वो जणो मम बुद्धिं अजाणन्तो अहिअदरं पसंसेदि । अहं पि तं जाणिअ एदस्सिं णअरे केण वि विस्सम्भं ण करेमि । [भोः ! नित्यपरिचयेन मां परिहससि । अपूर्वो जनो मम बुद्धिमजानन्नधिकतरं प्रशंसति । अहमपि तद् ज्ञात्वैतस्मिन्नगरे केनापि विस्रम्भं न करोमि ।]

अविमारकः—अलमौदासीन्येन । बहुजनपरिवारतया न लब्धः क्षणः कान्तां प्रबोधयितुम् । तदिदानीं प्रासादगतामपि तत्रैव तां

तनुका = तन्वी । तोषयति = आह्लादयति । अतिपण्डित इव = आत्मानं महापण्डितं मन्यमानः । विस्रम्भम् = विश्वासम् । बहुजनपरिवारतया = बहुजनपरिवृतत्वेन । प्रबोधयितुम् = कथयितुम् ।

विदूषक—अजी, मैं प्रसन्न हूँ । तुम अपने को समस्त संसार का सुन्दरतम पुरुष समझते थे, पर उसके रमणीय रूप से तुम पराजित हो गये हो । मैं सोचता हूँ कि यह तुम्हारे विरह में दुबली हो गई है, फिर भी बालचन्द्र की किरण के समान यह आँखों को सुख पहुँचाती है ।

अविमारक—अरे महापण्डित, यह क्या है ?

विदूषक—अजी, अतिपरिचय के कारण तुम मेरा उपहास करते रहते हो । अपरिचित व्यक्ति मेरी बुद्धि को नहीं जानता है, इसलिए मेरी भूरी-भूरी प्रशंसा करता रहता है । मैं भी इस भेद को समझ गया हूँ और इसीसे किसी के साथ परिचय नहीं बढ़ाता हूँ ।

अविमारक—उदास होने की बात नहीं । बहुत व्यक्तियों से घिरे रहने के कारण प्रियतमा को समझाने का अवसर ही नहीं मिला । अभी यह

बोधयिष्यावः ।

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणादि । पासादं आलुहामो । [सुष्ठु भवान् भणति । प्रासादमारोहावः ।]

अविमारकः—सखे ! प्रयत्नादारोढव्यं यथा तथा न प्रवर्तते प्रासादशब्दः ।

विदूषकः—भो ! ण सक्कं एदं । को सकदि उच्छिट्ठं णकरन्तो भुञ्जिदुं । अहं एत्थ चिट्ठामि । तुवं एव आलुह । [भोः ! न शक्यमेतत् । कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । अहमत्र तिष्ठामि । त्वमेवारोह ।]

अविमारकः—यदि विमुञ्चे, दृश्यते भवान् ।

विदूषकः—भो ! विस्मरिदं खु मए एदं । पुणो पुणो कहेहि । [भोः ! विस्मृतं खलु मयैतत् । पुनः पुनः कथय ।]

अविमारकः—इतस्तावत् । (आरुह्यावलोक्य) सखे ! इयमस्मत्कान्ता शिलातले नलिनिकया सहास्ते । यैषा,

सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं
कालं मनोभवसहायममृष्यमाणा ।

आस्ते = उपविष्टा वर्तते ।

सव्ये करे इति । अन्वयः—सुदीनम्, मुखम्, सव्ये, करे, समुपवेश्य, मनोभवसहायम्, कालम्, अमृष्यमाणा, अलोलदृष्टिः, बाष्पम्, निवारयितुम्, ऊर्ध्वम्, अवेक्षमाणा, व्यग्रा, किञ्चित्, विचिन्तयति ।

प्रासाद पर गयी है, वहीं उसे तुम्हारे विषय में समझा दूँगा ।

विदूषक—आप ठीक कहते हैं । हमलोग प्रासाद पर चलें ।

अविमारक—मित्र, ऐसे प्रयास से चढ़ो कि सीढ़ी पर आवाज न हो ।

विदूषक—अजी, यह सम्भव नहीं है । बिना जूठा किए कौन खा सकता है ? मैं यहीं रहता हूँ, तुम ही चढ़ो ।

अविमारक—यदि मैं छोड़ दूँगा तो तुम दीखने लगोगे ।

विदूषक—अरे यह तो मैं भूल ही गया था । फिर कहो क्या करूँ ?

अविमारक—इधर आओ, (चढ़कर तथा देखकर) मित्र, यह मेरी प्रियतमा नलिनिका के साथ चट्टान पर बैठी है ।

उदास मुँह को बायें हाथ पर रखकर, कामदेव के सहायक स्वरूप इस

व्यग्रा विचिन्तयति किञ्चिदलोलदृष्टि·
वाष्पं निवारयितुमूर्ध्वमवेक्षमाणा ।। २ ।।

कुरङ्गी—(स्वगतम्) किं एदेण जीवन्मरणेण । (प्रकाशम्) णलि·णिए ! गच्छ मा अधिअं आणेहि उवण्हाणेण । [किमेतेन जीवन्मरणेन । नलिनिके ! गच्छ मागधिकामानयोपस्नानेन ।]

नलिनिका—एआइणि भट्टदारिअं उज्झिअ कहं गमिस्सं । ण हु एत्थ को वि जणो । [एकाकिनीं भर्तृदारिकामुज्झित्वा कथं गमिष्यामि । न खल्वत्र कोऽपि जनः ।]

(प्रविश्य)

हरिणिका—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! भट्टिणी भणादि—सम्पदि कीदिसी सीसवेदणत्ति । एदं वि ओसधं लिम्पेहि किल । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति—सम्प्रति कीदृशी शीर्ष·वेदनेति । एतदप्यौषधं लिम्प किल ।]

सुदीनम् मुखम् = दुःखातिशयेनोदासीनमाननम् । सव्ये करे = वामहस्ते । समुपवेश्य = धारयित्वा । मनोभवसहायम् = कामदेवसुहृदम् । कालम् = वर्षा-कालम् । अमृष्यमाणा = असहन्ती । अलोलदृष्टिः = अचंचलनेत्रा । वाष्पं निवार·यितुम् = अश्रुप्रवाहं रोद्धुम् । ऊर्ध्वम् = उपरि । अवेक्षमाणा = अवलोकयन्ती । व्यग्राः = व्याकुलचित्ता । किञ्चित् विचिन्तयति = शोचति । वसन्ततिलकं वृत्तम्।।२।।

उपस्नानेन = स्नानप्रसाधनेन सहेति भावः । उज्झित्वा = त्यक्त्वा । शीर्ष-

---

वर्षाकाल को सहन करने में अक्षम, व्यग्रता के साथ एवं स्थिर दृष्टि से कुछ सोच रही है । आँसुओं को रोकने के लिए ही यह ऊपर की ओर देख रही है ।। २ ।।

कुरङ्गी—(स्वगत) इस जीवन्मरण से क्या ? (प्रकट) नलिनिके ! जाओ, स्नानोपकरण के साथ मागधिका को बुला लाओ ।

नलिनिका—अकेली राजकुमारी को छोड़कर कैसे जाऊँगी ? यहां कोई है भी नहीं ?

(प्रवेश करके)

हरिणिका—जय हो राजकुमारी की । राजकुमारी जी ! महारानी ने पूछा है कि अब सिरदर्द कैसा है ? यह औषधि भी लगा लेने को कहा है ।

कुरङ्गी—णलिणिए ! गच्छ दाणि तुवं । तक्केमि देवो वरिसिदुं आरद्धो । अहं इच्छामि अहिणवेण आआसतोएण ण्हादुं । ता तुवारेहि उवण्हाणं । [नलिनिके ! गच्छेदानीं त्वम् । तर्कयामि देवो वर्षितुमारब्धः । अहमिच्छाम्यभिनवेनाकाशतोयेन स्नातुम् । तत् त्वरयोपस्नानम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

कुरङ्गी—हला ! एहि दाव ! [हला एहि तावत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि । [भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

कुरङ्गी-हला ! णं सीदलं दे सरीरं । [हला ! ननु शीतलं ते शरीरम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! ण जाणामि । [भर्तृदारिके ! न जानामि ।]

कुरङ्गी-हला ! एहि परिस्सजेहि मं । [हला ! एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! तह । (परिष्वजते) [भर्तृदारिके ! तथा ।]

कुरङ्गी—हला ! अदिसीदलं मणोहरं च दे सरीरं । [हला ! अतिशीतलं मनोहरं च ते शरीरम् ।]

वेदना = शिरःपीडा । लिम्प = लेपं कुरु । देवो वर्षितुमारब्धः = वृष्टिः प्रारब्धा । आकाशतोयेन = वृष्टिवारिणा । त्वरय = शीघ्रमानय । व्यवसितम् = कर्त्तुमिच्छितम् ।

कुरङ्गी—नलिनिके, अब तुम जाओ । लगता है, मेघ बरसने लगा । मैं वर्षा की बूंदों से ही नहाना चाहती हूँ । इसलिए स्नानोपकरण जल्दी ले आओ ।

नलिनिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा ।

अविमारक—यह क्या करना चाहती है ।

कुरङ्गी—सखी, इधर आओ तो ।

नलिनिका—राजकुमारी, यहीं तो हूँ ।

कुरङ्गी—सखी, तुम्हारा शरीर ठण्डा है ।

नलिनिका—राजकुमारी, मैं नहीं जानती हूँ ।

कुरङ्गी—सखी, आओ, मुझसे लिपट जाओ ।

नलिनिका—राजकुमारी, अच्छी बात । (आलिङ्गन करती है ।)

कुरङ्गी—सखी, तुम्हारा शरीर बहुत ही शीतल और मनोहर है ।

नलिनिका—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतास्मि ।]

कुरङ्गी—हला ! सम्पदि णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । (स्वगतम्) हन्त किदो सहिप्पणओ । समत्तो अ अज्ज एदोए सरीरसंसग्गो । (प्रकाशम्) गच्छ दाणि तुवं । [हला ! सम्प्रति नश्यतीव मे शरीरदाहः । हन्त कृतः सखीप्रणयः । समाप्तश्चाद्यैतस्याः शरीरसंसर्गः गच्छेदानीं त्वम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

हरिणिका—भट्टिदारिए । भट्टिणीए किं णिवेदेमि । [भर्तृदारिके ! भट्टिन्यै किं निवेदयामि ।]

कुरङ्गी—अज्ज विअदरोआ सोत्था होदि त्ति । [अद्य विगतरोगा स्वस्था भवतीति ।]

हरिणिका—कहं तुए विञ्ञादं त्ति पुच्छिदा किं विण्णवेमि । [कथं त्वया विज्ञातमिति पृष्टा किं विज्ञापयामि ।]

कुरङ्गी—सुट्ठु तुए विञ्ञादं । एदेण ओसधविसेसेण त्ति भणेहि । [सुष्ठु त्वया विज्ञातम् । एतेनौषधविशेषेणेति भण ।]

हरिणिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

नलिनिका—मैं अनुगृहीत हुई ।

कुरङ्गी—सखी, अब मेरे शरीर का ताप दूर हुआ (स्वगत) हाय, सखी के प्रति स्नेह तो कर लिया, अब इसके शरीर का संसर्ग नहीं प्राप्त हो सकेगा (प्रकट) अब तुम जाओ ।

नलिनिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा । (निकल जाती है)

हरिणिका—राजकुमारी ! महारानी से क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—कह देना कि आज स्वस्थ एवं नीरोग हो गई ।

हरिणिका—यदि पूछें कि तुमने कैसे जाना, तो क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—तुमने ठीक समझा । कहना कि इसी दवा से ठीक हो गई ।

हरिणिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा ।(जाती है ।)

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी सर्वतः प्रेक्षते मुहुः ।
नेत्राभ्यां बाष्पपूर्णाभ्यां किन्नु कर्तुं व्यवस्थिता ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—होदु, उत्तरीअवासेण अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइस्सं । (उत्थाय तथा कुर्वती मेघस्तनितं श्रुत्वा) हं परित्ताआहि परित्ताआहि मं । [भवतु, उत्तरीयवाससात्मानमुद्बध्य व्यापादयिष्यामि । हं परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

अविमारकः—सखे ! न शक्यमतः परमुपेक्षितुम् । (अंगुलीयकं वामांगुल्यां प्रक्षिप्य) कान्ते ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । (इति कुरङ्गीमुत्थापयति)

कुरङ्गी—(सहर्षम्) किण्णु खु सच्चं एदं । मूढा विअ जादा । [किन्नु खलु सत्यमेतत् । मूढेव जाता ।]

उष्णं श्वसितीति । अन्वयः—तन्वङ्गी, उष्णम्, श्वसिति, मुहुः, बाष्पपूर्णनेत्राभ्याम्, सर्वतः, प्रेक्षते, किन्नु, कर्तुम्, व्यवस्थिता ।

तन्वङ्गी = इयं कृशाङ्गी कुरङ्गी । उष्णं श्वसिति = वेदनावस्थायां यथा श्वासो गृह्यते तथैव श्वासं गृह्णाति । मुहुः = वारं वारम् । बाष्पपूर्णनेत्राभ्याम् = अश्रुपूर्णनयनाभ्याम् । सर्वतः = चतुर्षु दिक्षु । प्रेक्षते = पश्यति । किन्नु कर्तुम् व्यवस्थिता = अनयावस्थया न ज्ञायते यदियं किञ्चिकीर्षतीति भावः ॥ ३ ॥

उत्तरीयवाससा = ऊर्ध्ववस्त्रेण । उद्बध्य = गलं बध्वा । व्यापादयिष्यामि = आत्मानं घातयिष्यामि, मेघस्तनितम् = मेघगर्जनम् ।

अविमारक—यह क्या करना चाहती है—

यह कृशाङ्गी गरम-गरम साँस ले रही है, आँसू से भरे नेत्रों से बार-बार चारों ओर देख रही है, न जाने यह क्या करना चाह रही है ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—अच्छा, इसी उत्तरीय से फन्दा लगाकर मर जाती हूँ । (उठकर फन्दा लगाती है । मेघ-गर्जन सुनकर) हाय, बचाओ, मुझे बचाओ ।

अविमारक—सखे, अब और अधिक उपेक्षा नहीं की जा सकती । (अँगूठी को बायें हाथ में डालकर) प्रिये ! मत डरो, मत डरो । (कुरङ्गी को उठाता है)

कुरङ्गी—(सहर्ष) क्या यह सच है ! मैं तो मूर्च्छित-सी हो रही हूँ ।

अविमारकः—कान्ते ! व्यपनीयतां शङ्का । (परिष्वजते)

कुरङ्गी—अच्छरीअं । एकक्खणेण णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । [आश्चर्यम् । एकक्षणेन नश्यतीव मे शरीरदाहः]

अविमारकः—अयं खल्वस्याः परिष्वङ्गः,

सततपरिचितो मनोभियोगा-
दधिकरसः प्रथमात् समागमात् ।
रणशिरसि नृपेण साहसाद्यो
विजय इवाद्य मयानुभूयते ॥ ४ ॥

विदूषकः—कहं रोदिदुं आरद्धा । अलं अदिमत्तं सन्दावेण । अहव अहं वि रोदामि । एक्कं पि तहि दुल्लहं मम णअणादो बप्फं ण

व्यपनीयताम् शङ्का = दूरीक्रियताम् भयम् । परिष्वङ्गः = आलिङ्गनम् ।

सततपरिचित इति । अन्वयः—मनोभियोगात्, सततपरिचितः, प्रथमात्, समागमात्, अधिकरसः, यः, अद्य, नृपेण, रणशिरसि, साहसात्, विजय, इव, मया, अनुभूयते ।

मनोभियोगात् = पारस्परिकमनोमेलनात् । सततपरिचितः = सर्वदानुभूतपूर्वः । प्रथमात्समागमादपि = पूर्वकृताऽऽलिङ्गनादपि । अस्याः कुरङ्ग्याः स्पर्शः । अधिकरसः = अधिकानन्ददायकः । सञ्जायते इति शेषः । यः = स्पर्शः । अद्य = इदानीम् । नृपेण = केनचित् राज्ञा । रणशिरसि = संग्रामभूमौ । साहसात् विजय इव मयानुभूयते = यथा कश्चित् राजा साहसपूर्वकं विजयमवाप्य हृष्यति तथैवाहम् कुरङ्ग्याः आलिङ्गनमासाद्य इदानीम् पूर्वापेक्षया समधिकमाह्लादमनुभवामीत्याशयः ॥ ४ ॥

अविमारक—प्रिये ! शङ्का दूर करें । (आलिङ्गन करता है)

कुरङ्गी—आश्चर्य ! एक ही क्षण में मेरे शरीर की जलन समाप्त हो गई ।

अविमारक—इसका यह आलिङ्गन,

सदा का परिचित होकर मनोयोग होने के कारण पूर्व के आलिङ्गनों की अपेक्षा अधिक आनन्ददायक प्रतीत हो रहा है जैसे रणक्षेत्र में किसी राजा को साहस द्वारा प्राप्त विजय अधिक आनन्ददायक लगती है ॥ ४ ॥

विदूषक—यह रोने क्यों लगी ? सन्ताप करना बेकार है । अथवा मैं

णिग्गच्छइ। जदा मे पिदा उवरदो, तदा वि महन्तेण आरम्भेण रोदिदुं आरद्धो। वप्फं ण णिग्गच्छइ किं पुण अण्णसन्दावस्स। तह वि अणुस्सुओ रोदामि। [कथं रोदितुमारब्धा। असमतिमात्रं सन्तापेन। अथवा अहमपि रोदिमि। एकमपि तत्र दुर्लभं मम नयनाद् बाष्पं न निर्गच्छति। यदा मे पितोपरतस्तदापि महतारम्भेण रोदितुमारब्धः। बाष्पं न निर्गच्छति। किं पुनरन्यसन्तापस्य। तथाप्यनुत्सुको रोदिमि।]

अविमारकः—अलमुत्प्रहसितेन। अच्छलो हि स्नेहो नाम।

न ते न बुद्धिर्मम दूषणीया
येन प्रकामं भविताऽस्मि हास्यः।
प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः॥ ५॥

उपरतः = स्वर्गं गतः। महतारम्भेण = उच्चैः स्वरेण। अनुत्सुकः = औत्सुक्यविरहितः। उत्प्रहसितेन = विशिष्टहास्येन। अच्छलः = व्याजरहितः।

न ते इति। अन्वयः—न, ते, न, मम, बुद्धिः, दूषणीया, येन, प्रकामम्, हास्यः, भविता, अस्मि। कार्ययोगे, प्राज्ञस्य, मूर्खस्य, च, तनुः, समत्वम्, अभ्येति, न बुद्धिः।

न ते = न तव। न मम बुद्धिः = नापि मदीया मतिः। दूषणीया = निन्दनीया। येन = यस्मात्कारणात्। प्रकामम् हास्यः भविताऽस्मि = उपहासपात्रो भवेयम्। कार्ययोगे = कर्मसिद्धौ। प्राज्ञस्य = बुद्धिमतः। मूर्खस्य = अज्ञस्य। च तनुः = शरीरम्। समत्वम् = समभावम्। अभ्येति = प्राप्नोति। न तु बुद्धिः॥ ५॥

भी रोता हूँ। मुश्किल तो यह है कि मेरी आँखों में आँसू आते ही नहीं। जब मेरे पिताजी मरे थे तब मैंने जोरों से रोना प्रारम्भ किया था पर तब भी आँसू नहीं निकले दूसरे सन्तापों की क्या बात? फिर भी शान्त भाव से रोता हूँ।

अविमारक—हँसने की आवश्यकता नहीं है। मैत्री में छल नहीं किया जाता।

तुम मेरी बुद्धि को दोषी नहीं ठहरा सकते जिससे मैं उपहासास्पद होता। बुद्धिमान् और मूर्ख को, कार्यसिद्धि में शरीर का समान योग होता है, बुद्धि समान नहीं होती॥ ५॥

(प्रविश्य)

नलिनिका—हरिणिए ! हरिणिए !। कहं दुवारं रुद्धं। हद्धि दुवारणिरोहेण अवअदसन्दावं अत्ताणं करिस्सदि त्ति तक्केमि। हरिणिए ! हरिणिए !। हद्धि तं एव संवुत्तं। [हरिणिके ! हरिणिके !। कथं द्वारं रुद्धम्। हा धिग् द्वारनिरोधेनापगतसन्तापमात्मानं करिष्यतीति तर्कयामि। हरिणिके ! हरिणिके ! हा धिग् तदेव संवृत्तम्।]

अविमारकः—नलिनिकाया इव स्वरः। वयस्य ! विघाटयतां द्वारम्।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (विघाट्य) एदु एदु भोदी। [यद् भवानाज्ञापयति। एत्वेतु भवती।]

नलिनिका—हं की दाणिं एसो पुरिसो। [हं क इदानीमेष पुरुषः]

विदूषकः—सुट्ठु विञ्ञादं तुए। अहो राअउलस्स विसेसो। को अण्णो जणो मं पेक्खिअ पुरिसो त्ति भणादि। इत्थिआ खु अहं। [सुष्ठु विज्ञातं त्वया। अहो राजकुलस्य विशेषः। कोऽन्यो जनो मां प्रेक्ष्य पुरुष इति भणति। स्त्री खल्वहम्।]

अविमारकः—नलिनिके ! प्रविशेदानीम्।

द्वारनिरोधेन = कपाटपिधानेन। अपगतसन्तापम् = विगतदुःखम्। तदेव संवृत्तम् = तदेव अभूत्।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—हरिणिके ! हरिणिके ! अरे, दरवाजा तो बन्द है। हाय, दरवाजा बन्द करके तू अपने को गत-सन्ताप करना चाहती है। हाय, आखिर वही हुआ !

अविमारक—यह तो नलिनिका की आवाज मालूम पड़ रही है। मित्र, दरवाजा खोलो।

विदूषक—जो तुम्हारी आज्ञा। (दरवाजा खोलकर) आइये, आइये।

नलिनिका—अरे, यहाँ यह कौन पुरुष है ?

विदूषक—आपने ठीक पहचाना। राजकुल की यही विशेषता है। दूसरा कौन व्यक्ति मुझे देखकर पुरुष कह सकता है; मैं तो औरत हूँ।

अविमारक—नलिनिके ! आओ।

नलिनिका—कहं भट्टिदारिओ । भट्टिदारअ ! वन्दामि । भट्टिदारअ ! को एसो पुरिसो । [कथं भर्तृदारकः ! भर्तृदारक ! वन्दे । भर्तृदारक ! क एष पुरुषः ।]

विदूषकः—अहं पुक्खरिणी णाम चेडी । [अहं पुष्करिणी नाम चेटी ।]

अविमारकः—योऽस्माभिः सदा कथ्यते सन्तुष्ट इति,सोऽयं ब्राह्मणः ।

नलिनिका—आ दिट्ठपुरुवो णअरापणालिन्दे अअं बम्हणो । [आ दृष्टपूर्वो नगरापणालिन्देऽयं ब्राह्मणः]

विदूषकः—आम भोदि । जण्णोपवीदेण बह्मणो, चीवरेण रत्तपडो । जदि वत्थं अवणेमि, समणओ होमि । भोदि ! किं एदं । [आम भवति ! यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, चीवरेण रक्तपटः यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि । भवति ! किमेतत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिआए उवण्हाणं [भर्तृदारिकाया उपस्नानम्]

विदूषकः—किं एदिणा बुभुक्खिदाए रोदन्तीए अत्तहोदीए उवण्हाणेण कय्यं । गच्छ सिग्घं भोअणं आणेहि । अहं अग्गासणीओ होमि । [किमेतेन बुभुक्षिताया रुदन्त्या अत्रभवत्या उपस्नानेन कार्यम् । गच्छ शीघ्रं भोजनमानय । अहमग्राशनीयो भवामि ।]

नगरापणालिन्दे = नगरस्य कुत्रचित् बाह्यभागे । चीवरेण = वस्त्रखण्डेन । श्रमणकः = बौद्धभिक्षुः । अग्राशनीयः = भोजनात् पूर्वं गृहस्थेन यदन्नं

नलिनिका—कौन राजकुमार ! राजकुमार को नमस्कार है । राजकुमार यह कौन पुरुष है ?

विदूषक—मैं पुष्करिणी नाम की दासी हूँ ।

अविमारक—जिस सन्तुष्ट की चर्चा हम बराबर किया करते थे, वही ब्राह्मण यह है ।

नलिनिका—इस ब्राह्मण को तो नगर के आपण में मैंने पहले भी देखा था ।

विदूषक—हाँजी, यज्ञोपवीत से ब्राह्मण हूँ, कपड़े से रक्त पटधारी योगी हूँ। यदि कपड़ा उतार दूँ तो बौद्ध-भिक्षु बन सकता हूँ। यह क्या बात है जी ?

नलिनिका—यही है, राजकुमारी का स्नानोपकरण ।

विदूषक— भूख से रोती हुई यह राजकुमारी इस स्नानोपकरण को लेकर क्या करेगी? जाओ,जल्दी से भोजन लाओ । मैं उसमें से पहले थोड़ा पा लूँगा ।

नलिनिका—दुब्बम्हण ! एदं पि भोअणं चिन्तेसि । सव्वं दाव चिट्ठदु । कहं दिअसे अणेअपुरुससम्पादे राअमग्गे भट्टिदारओ पविट्ठो । [दुर्ब्राह्मण ! एतदपि भोजनं चिन्तयसि । सर्वं तावत् तिष्ठतु । कथं दिवसेऽनेकपुरुषसम्पाते राजमार्गे भर्तृदारकः प्रविष्टः]

अविमारकः—सर्वं भवत्यै सन्तुष्टः कथयिष्यति ।

नलिनिका—विसज्जिदम्हि इमिणा बहुमाणवअणेण । भोदु, इमं गह्णिअ चउस्सालं पविसिअ गोट्ठीजणेण सह वुत्तन्तं सुणामि । एहि बम्हण ! (इत्याकर्षति ।) [विसर्जितास्म्यनेन बहुमानवचनेन । भवतु, इमं गृहीत्वा चतुःशालं प्रविश्य गोष्ठीजनेन सह वृत्तान्तं शृणोमि । एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—अव्बम्हणं अव्बम्हणं । [अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् ।]

कुरङ्गी—हस्सो खु अअं बम्हणो । [हास्यः खल्वयं ब्राह्मणः ।]

अविमारकः—वयस्य ! हास्यः खलु भवान् ।

विदूषकः—को एत्थ मम अस्सद्धअं भणादि । अहं ण हस्सो, तत्तहोदी एव हस्सा । जा अत्तणा अवत्थं जाणिअ किं पि कत्तुं ववसिअ मेहसद्दं सुणिअ सव्वं विसुमरिअ पडिदा । [कोऽत्र ममाश्रद्धेयं भणति ।

ब्राह्मणादिभ्यो दातुं पृथक् क्रियते तद्भोक्ता । अनेकपुरुषसम्पाते = बहुजनसंकुले । विसर्जिता = अनुज्ञां प्राप्ता । बहुमानवचनेन = सम्मानवचसा । अश्रद्धेयम् =

नलिनिका—अभागा ब्राह्मण, यहाँ भी भोजन की ही सोचता है । छोड़ो इन सारी बातों को । दिन में जब राजमार्ग पर बहुत से लोग वर्त्तमान थे, राजकुमार ने किस प्रकार यहाँ प्रवेश किया ?

अविमारक—प्रसन्न होने पर यह सन्तुष्ट तुम्हें सारी बातें बतला देगा ।

नलिनिका—इन सम्मानयुक्त वचनों से यह मुझे यहाँ से टरका देना चाहते हैं । अस्तु ! इसे लेकर चतुःशाल में जाती हूँ और वहाँ बैठकर सखियों के साथ सारी बातें सुनूँगी । आओ ब्राह्मण-देवता ।

विदूषक—अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया ।

कुरङ्गी—यह ब्राह्मण बड़ा हँसोड़ है ।

अविमारक—मित्र, क्या तुम हँसोड़ हो ?

विदूषक—कौन मेरे बारे में ऐसा कह सकता है ? मैं नहीं, यह कुरङ्गी

अहं न हास्यः, तत्रभवत्येव हास्या । यात्मनोऽवस्थां ज्ञात्वा किमपि कर्तुं व्यवस्य मेघशब्दं श्रुत्वा सर्वं विस्मृत्य पतिता ।]

कुरङ्गी—ह एदं पि इमेहि दिट्ठं । [हम् एतदप्याभ्यां दृष्टम् ।]

नलिनिका—याचेमि अहं । इदो एहि बम्हण ! [याचेऽहम् । इत एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—जइ भोअणं देसि, तदो गच्छामि अहं । इट्ठं आअन्तुअ-स्स भोअणदाणं । [यदि भोजनं ददासि, ततो गच्छाम्यहम् । इष्टमागन्तुकस्य भोजनदानम् ।]

नलिनिका—एहि मे सव्वाभरणं देमि । [एहि मे सर्वाभरणं ददामि ।]

विदूषकः—णहि घिदवअणेण पित्तं णस्सदि । मम हत्थगदं करेहि । [नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । मम हस्तगतं कुरु ।]

नलिनिका—एवं होदु । (आभरणान्यवमुच्य ददाति) [एवं भवतु ।]

विदूषकः—सुणादि होदी । [शृणोतु भवती ।]

नलिनिका—मूढ ! बह्मण ! चउस्साले उवविसिअ गोट्ठीजणेण सह सुणामि । [मूढ ! ब्राह्मण ! चतुःशाल उपविश्य गोष्ठीजनेन सह शृणोमि ।]

अविश्वसनीयम् । याचे = प्रार्थये । घृतवचनेन = घृतशब्दोच्चारणमात्रेण ।

ही हँसोड़ है । कहाँ तो वह अपनी वियोगावस्था में ऊबकर कुछ करने जा रही थी पर मेघ का शब्द सुनते ही सब कुछ भूलकर गिर पड़ी ।

कुरङ्गी—क्या यह भी इन लोगों ने देख लिया ?

नलिनिका—मैं प्रार्थना करती हूँ ब्राह्मण-देवता, आप इधर चलिए ।

विदूषक—यदि भोजन दो तो चलूँगा । आगन्तुक को भोजन अवश्य देना चाहिए ।

नलिनिका—आइये, मैं अपने सारे आभूषण देती हूँ ।

विदूषक—घी का नाम ले लेने से पित्त शान्त नहीं होता । मेरे हाथ में दे ।

नलिनिका—यही हो । (गहने उतार कर देती है)

विदूषक—सुनिये ।

नलिनिका—मूर्खब्राह्मण ! चतुःशाल में बैठकर सखियों के साथ सुनूँगी ।

मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपाला गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिलभैक्षहारा रवीन्द्वर्गला देवयन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः॥६॥

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! दस्सणीआ दाणिं संवुत्ता । [आर्यपुत्र ! दर्शनीया इदानीं संवृत्ताः ।]

अविमारकः—अहो विपुलता विरलता धाराणाम् । तथाहि,

क्षुपाः, मदनशरनिशानशैलाः, प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः, गिरिस्नापनाम्भोघटाः, उदधिसलिलभैक्षहारा, रवीन्द्वर्गलाः, देवयन्त्रप्रपाः, नीलाम्बुदाः, भान्ति ।

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजम्भकाः—जलदसमयस्य = वर्षाकालस्य, घोषणायाः = सूचनायाः, यः डम्बरः = आडम्बरः, तत्र या अनेकरूपाः क्रियाः = नानाविधानि कर्माणि, तासाम् जम्भकाः = प्रवर्तयितारः । वज्रभृद्गृष्टयः = इन्द्रस्य गावः, भगणयवनिकाः = नक्षत्राणामावरणकराः । तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूताः—तडित् = विद्युत् एव पन्नगी = सर्पिणी, तस्याः वासे = निवासे, वल्मीकभूताः = वामलूरक्षेत्रसमाः । नभोमार्गरूढक्षुपाः—नभोमार्गे = आकाशवर्त्मनि, रूढाः = उत्पन्नाः, क्षुपाः = क्षुद्रवृक्षाः। मदनशरनिशानशैलाः—मदनशराणाम् = कामदेवबाणानाम्, निशाने = तीक्ष्णीकरणे, शैलाः = शिलाराशिभूताः । प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः—प्ररुष्टानाम् = क्रुद्धानाम्, अङ्गनानाम् = रमणीनाम्, सन्धिपालाः = प्रियैः सह सन्धिविधायिनः । गिरिस्नापनाम्भोघटाः — गिरीणाम् = पर्वतानाम्, स्नापने = सेचने, अम्भोघटाः = जल-कलशाः । उदधिसलिलभैक्षहाराः = समुद्रजलभिक्षाग्राहिणः, रवीन्द्वर्गलाः = सूर्यचन्द्रमसोः पिधानसाधनभूताः । देवयन्त्रप्रपाः = देवैः प्रवर्तिताः यन्त्रचालिताः जलशालाः । अमी नीलाम्बुदाः = श्याममेघाः । भान्ति = शोभन्ते । दण्डकभेदो वृत्तम् ॥ ६ ॥

विपुलता विरलता = क्षणेऽधिकता, क्षणे न्यूनता चेत्यर्थः ।

वाले क्षुद्रवृक्ष हों, काम के बाणों को तीखा करने वाले पत्थर हों, क्रुद्ध वनिताओं का पतियों के साथ सन्धि कराने वाले हों, पर्वत-सेचन के लिए जल-कलश हों, समुद्र से जल की भिक्षा मांगने वाले हों, सूर्य तथा चन्द्रमा को छिपाने वाले कपाट हों, या देवों द्वारा प्रवर्तित यन्त्र-चालित जलशालायें हों ॥ ६ ॥

कुरङ्गी—आर्यपुत्र, अब ये बादल दर्शनीय लग रहे हैं ।

अविमारक—अहा, कभी कम, कभी अधिक पड़ती हुई यह वर्षा कितनी भली लग रही है ।

व्योमार्णवोर्मिसदृशा निनदन्ति मेघा
मेघप्ररोहसदृशाः प्रपतन्ति धाराः ।
रक्षोङ्गनाभृकुटिवत् तडितः स्फुरन्ति
प्राप्तोऽग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः ॥ ७ ॥

कुरङ्गी--अय्यउत्त ! आरद्धो सम्पदि वरिसिदुं देवो [आर्यपुत्र ! आरब्धः सम्प्रति वर्षितुं देवः ।]

अविमारकः—प्रिये ! एहि अभ्यन्तरमेव प्रविशावः ।

कुरङ्गी—(सहर्षम्) जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

पञ्चमोऽङ्कः ।

व्योमेति । अन्वयः—मेघाः, व्योमार्णवोर्मिसदृशाः, निनदन्ति, मेघप्ररोहसदृशाः, धाराः, प्रपतन्ति, तडितः, रक्षोङ्गनाभृकुटिवत्, स्फुरन्ति, अग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः, प्राप्तः ।

मेघाः = पयोदाः । व्योमार्णवोर्मिसदृशाः = गगनाब्धितरङ्गा इव । निनदन्ति = शब्दायन्ते । मेघप्ररोहसदृशाः = मेघाख्यस्य वृक्षस्य प्ररोहा इव । धाराः वर्षासाराः । प्रपतन्ति = निपतन्ति । तडितः = विद्युतः । रक्षोङ्गनाभृकुटिवत् = दैत्यस्त्रीणाम् भ्रू विलासवत् । स्फुरन्ति = चलन्ति । अग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः —अग्रयौवनस्य = प्रारम्भिकयौवनस्य, घनः = निविडः, स्तनमर्दः = कुचोपगूहनम्, तस्य कालः = समयः । प्राप्तः = समायातः । कामसुखोपभोगोपयुक्तोऽवसरः उपस्थित इति भावः ॥ ७ ॥

आकाशरूप समुद्र की तरङ्गों के समान ये मेघ गरज रहे हैं, मेघ-प्ररोह के समान ये जलधारायें गिर रही हैं, राक्षसाङ्गनाओं की भृकुटि के समान विजली चमक रही है, प्रौढ़ यौवन के स्तनमर्दन का समय आ गया है ॥७॥

कुरङ्गी—आर्यपुत्र, अब मेघ बरसने लगे ।

अविमारक—प्रिये, आओ अन्दर चलें !

कुरङ्गी—(सहर्ष) आर्यपुत्र की जो आज्ञा ।

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति धात्री ।)

धात्री—अहो अणवत्था किदन्तस्स, जं राअदारिआ पढमं महाराएण सोवीरराएण तं विह्णुसेणं उद्दिसिअ वरिदा। अज्ज अविदिअसम्भवेण माणुसलो अदुल्लभाकिदिगुणविसेसेण केण वि संओओ जादो। अह्अ दाणि कासिराअपुत्तो जअवम्मा णाम भट्टिणीए सुदस्सणाए सह अमच्चेण भूदिएण आणीदो सम्पदि राअउलं पविट्ठो। सअं किल कासिराओ जण्णवावारेण ण आअदो। किंणु खु एदं भविस्सदि। [अहो अनवस्था कृतान्तस्य, यद् राजदारिका प्रथमं महाराजेन सौवीरराजेन तं विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता। अद्याविदितसम्भवेन मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण केनापि संयोगो जातः। अथ चेदानीं काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम भट्टिन्या सुदर्शनया सहामात्येन भूतिकेनानीतः संप्रति राजकुलं प्रविष्टः। स्वयं किल काशिराजो यज्ञव्यापारेण नागतः। किन्नु खल्वेतद् भविष्यति।]

(ततः प्रविशति वसुमित्रा ।)

ततः प्रविशतीति। अनवस्था = चपलत्वम्। कृतान्तस्य = भाग्यस्य। अविदितसम्भवेन = अज्ञातकुलशीलतया। यज्ञव्यापारेण = यज्ञकर्मणि व्यस्ततया।

(धात्री का प्रवेश)

धात्री—ओह ! भाग्य कितना चञ्चल होता है। राजकुमारी का विवाह पहले महाराज ने सौवीरराज-पुत्र विष्णुसेन के साथ स्थिर किया था। आज अज्ञात कुलशील एवं अतिमानुष गुण वाले किसी युवक के साथ संयोग हुआ। अब महामात्य भूतिक अपने साथ काशिराज-पुत्र जयवर्मा को उनकी माता के साथ ले आये हैं। स्वयं काशिराज यज्ञ में व्यस्त रहने के कारण नहीं आ सके। क्या होगा, कहा नहीं जा सकता।

(वसुमित्रा का प्रवेश)

सौवीरराजपुत्रमजानन्नद्य किलाधिकसन्तापो जातः ।]

(प्रविश्य)

नलिनिका—अज्ज किदसङ्केदा विअ अम्हाअं सव्वसङ्कडा ।(परिक्रम्यावलोक्य) किण्णु हु एसा मम मादा वसुमित्ताए सह किं विचिन्तेदि । इमं उपसप्पिअ असुहवुत्तन्तं सुणामि । [अद्य कृतसंकेतानीवास्माकं सर्वसंकटानि । किं नु खल्वेषा मम माता वसुमित्रया सह किमपि चिन्तयति । इमामुपसर्प्यासुखवृत्तान्तं शृणोमि ?

वसुमित्रा—हला णलिणिए । एहि दाव । तुमं कञ्चुइसहवासेण राअउलवुत्तन्तं जाणासि । [हला नलिनिके ! एहि तावत् । त्वं कञ्चुकिसहवासेन राजकुलवृत्तान्तं जानासि ।]

नलिनिका—अभिणवो वुत्तन्तो । णं तं णिवेदिउं आअदम्हि । [अभिनवो वृत्तान्तः । ननु तं निवेदयितुमागतास्मि ।]

वसुमित्रा—भणाहि जादे ! । [भण जाते ! ।]

नलिनिका—पेसिदो खु सोवीरराअस्स अमच्चेहिं दूदो—अम्हाअं सामी तुम्हाणं णअरे सपुत्तकलत्तो पच्छण्णो पडिवसदि त्ति अम्हाअं गूढपुरुसेहि वुत्तन्तो जाणिअदु सामिणेत्ति । [प्रेषितः खलु सौवीरराजस्या-

=कार्यमहत्त्वम् । अधिकसन्तापः = अतिदुःखितः । कृतसंकेतानि = आगमनार्थं प्रवृत्तानि । सर्वसङ्कटानि = सर्वापदः । असुखवृत्तान्तम् = कष्टकारकं समाचारम् ।

का जब पता न चला तो वे अधिक दुःखी हो गये हैं ।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—आज हमारे सारे सङ्कट आ रहे हैं । (चलकर देखकर) क्यों यह मेरी माता वसुमित्रा के साथ कुछ सोच रही है । उसके निकट जाकर कुछ दुःखद समाचार सुनूँ ।

वसुमित्रा—आओ नलिनिके ! कञ्चुकी के साथ रहने से तुम राजकुमार के बारे में जानती होगी ।

नलिनिका—नया समाचार है, उसे ही सुनाने तो आई हूँ ।

वसुमित्रा—बताओ बेटी ।

नलिनिका—सौवीरराज के मन्त्रियों ने महाराज के पास दूत भेजा है, कह-

आर्यदूतः—अस्माकं स्वामी युष्माकं नगरे सपुत्र-कलत्रः प्रच्छन्नः प्रतिवसती-त्यस्माकं गूढपुरुषैर्वृत्तान्तो ज्ञायतां स्वामिनेति ।]

उभे—कहं पच्छण्णवेसो वत्तदित्ति । तदो तदो । [कथं प्रच्छन्नवेषो वर्तत इति । ततस्ततः ।]

नलिनिका—तदो एवं सव्वं सुणिअ तस्स लेहस्स अवसाणं पेक्खिअ अय्यभूदिएण सह गओ किल महाराओ तं अण्णेसिदुं । [तत् एतत् सर्वं श्रुत्वा तस्य लेखस्यावसानं प्रेक्ष्यार्यभूतिकेन सह गतः किल महाराजस्त-मन्वेषितुम् ।]

धात्री—किण्णु खु भवे । [किन्नु खलु भवेत् ।]

वसुमित्रा—णलिणिए ! । तुवं दाव अब्भन्तरं पविस । [नलिनिके ! त्वं तावदभ्यंतरं प्रविश ।]

नलिनिका—जं अय्या भणादि । (निष्क्रान्ता) [यदार्या भणति ।]

वसुमित्रा—एहि दाव वअं भट्टिणीं पेक्खामो । [एहि तावत् । आवां भट्टिनीं पश्यावः ।]

धात्री—एवं करेम्ह । [एवं कुर्वः ।] (निष्क्रान्ते ।)

प्रवेशकः

प्रच्छन्नः = आत्मानं गोपयन् । गूढपुरुषैः = गुप्तचरैः । प्रच्छन्नवेषः = गुप्तरूपः । तस्य लेखस्यावसानम् = अमात्यलिखितपत्रस्यान्तिमो भागः ।

लाया है कि हमारे स्वामी स्त्री-पुत्र के साथ छिपकर आपके नगर में रहते हैं । हमारे गुप्तचरों ने पता लगाया है । आप भी जान लें ।

दोनों—क्यों गुप्तरूप से रहते हैं ? इसके बाद ?

नलिनिका—इसके बाद सारी बातें सुनकर तथा पत्र का अन्तिम अंश देखकर महाराज भूतिक के साथ उन्हें ढूंढ़ने गये हैं ।

धात्री—देखें, क्या बात है ।

वसुमित्रा—नलिनिका, तुम अन्दर चलो ।

नलिनिका—आपकी जो आज्ञा । (जाती है)

वसुमित्रा—चलो हमलोग महारानी के पास चलें ।

धात्री—हां, ऐसा ही करती हैं । (प्रस्थान)

प्रवेशक समाप्त

(ततः प्रविशति कुन्तिभोजः सौवीरराजभूतिकाभ्याम्) ।

कुन्तिभोजः—वयस्य !

किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो
गाढं परिष्वज सखे ! स्मर बालभावम् ।
प्रीत्या भवन्तमनिमेषमवेक्षितुं मे
स्नेहान्नवीकृत इवाद्य वयस्यभावः ॥ १ ॥

सौवीरराजः—यदिष्टं भवतः ।

(उभौ परिष्वजेते)

किं प्रेक्षस इति । अन्वयः—सखे ! चिरकालदृष्टः, मम, मुखम्, किम्, प्रेक्षसे, गाढम्, परिष्वज, बालभावम्, स्मर, अनिमेषम्, प्रीत्या, भवन्तम्, अवेक्षितुम्, मे, वयस्यभावः, स्नेहात्, अद्य, नवीकृत इव ।

सखे = हे मित्र । चिरकालदृष्टः = बहुकालमतीत्य इदानीम् त्वम् मया सह साक्षात्कृतः । मम = मे । मुखम् = आननम् । किं प्रेक्षसे = कथमवलोकयसि । गाढम् = दृढम् । परिष्वज = आलिङ्ग । बालभावम् = बाल्यावस्थाम् । स्मर = ध्याने आनय । अनिमेषम् = निर्निमेषं यथा स्यात्तथा । प्रीत्या = स्नेहेन । भवन्तम् = त्वाम् । अवेक्षितुम् = द्रष्टुम् । मे = मम । वयस्यभावः = मित्रत्वम् । स्नेहात् = प्रेमावेशात् । अद्य = इदानीम् । नवीकृत इव = नूतन इव सञ्जातः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

यदिष्टम् भवतः = यथा त्वमिच्छसि तथैव भवत्वित्यर्थः ।

परिष्वजेते = परस्परमालिङ्गनं कुरुतः ।

(कुन्तिभोज, भूतिक तथा सौवीरराज का प्रवेश)

कुन्तिभोज—मित्र ! बहुत दिनों पर दर्शन हुए हैं । मेरा मुंह क्या देख रहे हो? आओ, मुझसे लिपट जाओ, बचपन की याद करो, स्नेह से तुम्हें निर्निमेष देखने के लिए मेरी मित्रता आज नवीनता को प्राप्त कर-सी रही है ॥१॥

सौवीरराज—जैसा आप चाहें ।

(दोनों परस्पर आलिङ्गन करते हैं)

कुन्तिभोजः—

चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धि-
वाक्यं च बाष्पाहतगद्गदं च ।
नेत्रे सबाष्पे मुखमप्रसन्नं
किं हर्षकाले क्रियते विकारः ॥ २ ॥

सौवीरराजः—न खल्वहमप्रहृष्टो भवत्सङ्गमेन । किन्तु बलवान् पुत्रस्नेहो नाम ।

यो मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते ।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां बाष्परूपेण निर्गतः ॥ ३ ॥

चिन्ताकुलत्वमिति । अन्वयः — बुद्धिः, चिन्ताकुलत्वम्, व्रजति, इव, वाक्यम्, च, बाष्पाहतगद्गदम्, नेत्रे, सबाष्पे, मुखम्, अप्रसन्नम्, हर्षकाले, विकारः, किम्, क्रियते ।

बुद्धिः = तव बुद्धिः । चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव = चिन्तया व्यग्रेव प्रतीयते । वाक्यम् च = वचनम् । बाष्पाहतगद्गदम् = अश्रुपूर्णतया रुद्धकण्ठतया च अस्पष्टाक्षरम् । नेत्रे = नयने । सबाष्पे = अश्रुपूर्णे । मुखम् = आननम् । अप्रसन्नम् = खिन्नम् ! हर्षकाले = मित्रमिलनरूपप्रसन्नतावसरे उपस्थिते सति । विकारः = खेदः । किम् = कथम् । क्रियते = विधीयते ॥ २ ॥

अप्रहृष्टः = अप्रसन्नः ।

यो मे पुत्रगत इति । अन्वयः—यः, मे, पुत्रगतः, हृदयस्थः, शोकः, विजृम्भते, सः, अद्य, त्वाम्, सहायम्, लब्ध्वा, बाष्परूपेण, निर्गतः ।

यो मे पुत्रगतः = पुत्रविषयकः । हृदयस्थः = मानसिकः । शोकः = वियोग-

---

कुन्तिभोज—तुम्हारी बुद्धि चिन्ताकुल प्रतीत हो रही है, वचन आसुओं से गद्गद् हो रहे हैं, आँखों में आँसू भरे हैं, मुख उदास लग रहा है, हर्ष के समय ये विकार क्यों उत्पन्न हो रहे हैं ॥ २ ॥

सौवीरराज—आप से मिलकर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ किन्तु पुत्र-स्नेह बड़ा बलवान् होता है ।

जो मेरा पुत्रशोक हृदय में बढ़ता रहा है, वह आज आप-जैसे मित्र को पाकर आँसू के रूप में उमड़ पड़ा है ॥ ३ ॥

कुन्तिभोजः—कथं पुत्रगतः शोक इति ।

भूतिकः—विदितमस्तु स्वामिना । न दृश्यते किलास्मिन् संवत्सरे कुमारः ।

सौवीरराजः—बलवान् पुत्रस्नेहो नाम । पश्यतु भवान्—

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं
सुतमविमारकमद्य चिन्तयामि ।
तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशो
यदि स भवेदिह को नु मद्विशिष्टः ॥ ४ ॥

भूतिकः—(आत्मगतम्) महान् खल्वयं सन्तापो वर्धत एव हि

दुःखम् । विजृम्भते = अनुक्षणम् वर्धते । स मे पुत्रशोकः । अद्य = इदानीम् । त्वाम् = भवन्तम् । सहायम् = मित्रम् । लब्ध्वा = प्राप्य । बाष्परूपेण = अश्रुभावेन । निर्गतः = निःसृतः ॥ ३ ॥

अनुपमबलवीर्येति । अन्वयः— अनुपमबलवीर्यवन्तम्, अविमारकम्, सुतम्, अद्य, चिन्तयामि, यदि, सः, तव, चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः, भवेत्, इह, को नु, मद्विशिष्टः ।

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम् = अप्रतिमशक्तिपराक्रमसौन्दर्यशालिनम् । अविमारकम् = एतन्नामधेयम् । सुतम् = पुत्रम् । अद्य = एषु दिनेषु । चिन्तयामि= शोचामि । यदि सः = मम पुत्रोऽविमारकः । तव = भवतः । चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः = पदधूलिकणैः पूजितः अग्रकेशो यस्य तथाभूतः । तदा । इह = अत्र लोके । को नु मद्विशिष्टः = मदपेक्षयाऽधिकः उत्कृष्टः । कोऽपि नेति भावः ॥४॥

कुन्तिभोज—क्यों ? पुत्रशोक कैसा ?

भूतिक—महाराज को ज्ञात हो कि एक वर्ष से कुमार लापता है ।

सौवीरराज—पुत्रस्नेह बड़ा बलवान् होता है । आप देखिए—

आज मैं अनुपम बल, वीर्य एवं सौन्दर्य से युक्त पुत्र अविमारक के लिए चिन्तित हूँ । यदि वह आज आपकी चरणधूलि से अपने केश को धूसरित करता तो मुझसे बड़ा भाग्यवान् भला कौन होता ॥ ४ ॥

भूतिक—(स्वगत) कुमार के बिना इनका यह पुत्रशोकजन्य सन्ताप

कुमारमन्तरेण। विलोपयाम्येनम्। (प्रकाशम्) कथं स्वामिनोऽभ्यागता व्यापत्।

कुन्तिभोजः—अहमप्यनेन व्याक्षेपेण विस्मृतवानेतत् प्रष्टुम्।

सौवीरराजः—श्रूयताम्। अथवा भूतिकस्तु विजानाति। अप्यस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति।

कुन्तिभोजः—वयमवहिताः स्मः।

सौवीरराजः—अपि ज्ञायते चण्डभार्गवो नामात्यन्तरोषी ब्रह्मर्षिः।

कुन्तिभोजः - श्रूयते तत्रभवांस्तपोनिधिः।

सौवीरराजः—सोऽस्मद्विषयमभ्यागतः। कान्तारे तस्य शिष्यो व्याघ्रेणाभिभूय मारितः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि तस्मिन् काले मृगयावशात् यदृच्छयैव तं देशमभ्युपगतः।

व्याक्षेपेण = सन्तापेन। तपोनिधिः = तपोराशिः। कान्तारे = अरण्ये। अभिभूय = आक्रम्य। मृगयावशात् = आखेटहेतोः। यदृच्छयैव = अकस्मादेव।

बढ़ता ही जाता है। बात को दूसरी ओर मोड़ता हूँ। (प्रकट) महाराज पर यह विपत्ति आई कैसे?

कुन्तिभोज—मैं भी इसी दुःख के कारण यह पूछना भूल गया था।

सौवीरराज—सुनिये, अथवा भूतिक सब जानता है। क्या आप मेरे मुँह से ही सुनना चाहते हैं?

कुन्तिभोज—हमलोग सावधान हैं।

सौवीरराज—क्या आप चण्डभार्गव नामक अति क्रोधी ब्रह्मर्षि को जानते हैं?

कुन्तिभोज—जी हाँ, उस तपस्वी का नाम मैंने सुना है।

सौवीरराज—वे हमारे देश में आये। जंगल में बाघ ने उनके शिष्य को मार दिया था।

कुन्तिभोज—उसके बाद?

सौवीरराज—उसके बाद मैं भी आखेट करता हुआ वहीं जा पहुँचा।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः ।

सौवीरराजः—अथ मां दृष्ट्वा विजृम्भमाणरोषभ्रुकुटीपुटविषमीकृतवदनः प्रलम्बजटाभारः शिष्ये स न्यस्तकरः क्रुद्धो दहन्निव क्रोधाग्निना मद्वचनमश्रोतुकामः संरम्भस्खलितवचनो मां बहुधा क्षेप्तुमारब्धः ।

कुंतिभोजः—ततस्ततः

सौवीरराजः—ततोऽहमपि भवितव्यस्यार्थस्य प्राबल्येनाधृतिः 'वृत्तान्तं न ब्रवीषि, निष्कारणं क्षिपसि' इति संक्रुद्धवानस्मि ।

न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं
निष्कारणं प्रक्षिपसि प्रकामम् ।

विजृम्भमाणरोषभृकुटीपुटविषमीकृतवदनः—विजृम्भमाणः = वर्द्धमानः, रोषः = क्रोधः, यस्मिन् तादृशेन भृकुटीपुटेन = भृकुट्या विषमीकृतम्, वदनम् = आननम् यस्य तथाभूतः । प्रलम्बजटाभारः = लम्बमानसटः । शिष्ये न्यस्तकरः = शिष्योपरि धृतकरः । संरम्भस्खलितवचनः—संरम्भेण = क्रोधेन, स्खलितवचनः = त्रुटयद्वचनः । क्षेप्तुम् = आक्रोष्टुम् । अधृतिः = धैर्यहीनः सन् ।

न भाषसे इति । अन्वयः—वृत्तम्, न, भाषसे, रोषम्, उपैषि, निष्कारणम्, प्रकामम्, प्रक्षिपसि, प्रकोपात्, त्वम्, तपसाम्, अभाजनम्, भवान्, ब्रह्मर्षिरूपेण, श्वपाकः ।

कुन्तिभोज—फिर ?

सौवीरराज—मुझे देखकर उनका क्रोध बढ़ गया, भवें तन गईं, मुँह विषम हो गया, जटायें फैल गईं, शिष्य के शरीर पर हाथ रखकर क्रोधाग्नि से वे मुझे दग्ध करने लगे । क्रोधवश उनकी वाणी लटपटा रही थी और फिर उन्होंने मुझे डाँटना प्रारम्भ कर दिया ।

कुन्तिभोज—उसके बाद ?

सौवीरराज—उसके बाद मैं भी, भावी प्रबल होने के कारण अधीर हो उठा और बोला—कि आप कुछ बताते नहीं और अकारण ही डाँट रहे हैं ।

आप बात कुछ बताते हैं नहीं, केवल क्रोध करते चले जा रहे हैं, अकारण

अभाजनं त्वं तपसां प्रकोपाद्

ब्रह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाकः ॥ ५ ॥

कुन्तिभोजः—असदृशमुक्तं भवता ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छ्रुत्वैवाज्यधारावसिक्तो भगवान् हुताशन इव प्रज्वलितनेत्रो बहुशः शिरः कम्पयन् 'कथं कथम्' इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान् ।

यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं श्वपाक इति भाषितः ।

तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि ॥ ६ ॥ इति ।

वृत्तम् = वृत्तान्तम् । न भाषसे = नैव कथयसि । केवलन्तु रोषमुपैषि = क्रोधं कुरुषे । निष्कारणम् = कारणं विनैव । प्रकामम् = समधिकम् । प्रक्षिपसि = आक्रोशसि । प्रकोपात् = अतिक्रोधात् । त्वम् = चण्डभार्गवः । तपसाम् । अभाजनम् = अपात्रम् । तपः साधयितुम् त्वयि पात्रता नैव वर्तते इति भावः । भवान् = त्वम् । ब्रह्मर्षिरूपेण । श्वपाकः = चाण्डालः । असीति शेषः ॥ ५ ॥

असदृशम् = अनुपयुक्तम् । आज्यधारावसिक्तः = घृतधाराप्रोक्षितः । हुताशनः = अग्निदेवः । प्रज्वलितनेत्रः = कोपारक्तनयनः ।

यस्मादिति । अन्वयः—यस्मात्, ब्रह्मर्षिमुख्यः, अहम्, श्वपाकः, इति, भाषित , तस्मात्, सपुत्रदारः, त्वम्, श्वपाकत्वम्, आवाप्स्यसि ।

यस्मात् = यस्माद्धेतोः । ब्रह्मर्षिमुख्यः = ब्रह्मर्षिप्रधानः । अहम् = चण्डभार्गवः । श्वपाकः = चाण्डालः । इति भाषितः = त्वयैवं कथितः । तस्मात् = तस्मादेव कारणात् । सपुत्रदारः = पत्नी-सुतसहितः । त्वम् = सौवीरराजः । श्वपाकत्वम् = चाण्डालत्वम् । अवाप्स्यसि = प्राप्स्यसि ॥ ६ ॥

हो बहुत अधिक डाँट रहे हैं । आप अतिरोष के कारण तपस्या के पात्र नहीं हैं, आप ब्रह्मर्षि के रूप में चाण्डाल हैं ॥ ५ ॥

कुन्तिभोज—आपने ठीक नहीं कहा ।

सौवीरराज—यह सुनते ही वे घृत-प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से धधक उठे । उनकी आँखें क्रोध से जलने लगीं, बार-बार सिर को हिलाते हुए "क्यों, क्या कहा" यह कहकर शाप देना प्रारम्भ कर दिया ।

तुमने मुझ ब्रह्मर्षि को श्वपाक कह दिया, अतः अपनी पत्नी एवं पुत्र के साथ तुम भी चाण्डाल हो जाओ ॥ ६ ॥

कुन्तिभोजः—अहो अल्पमूलत्वं महतां चानर्थस्य ।

भूतिकः—सभाग्यं सौवीरराजकुलम् । कुतः,

ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन श्वपाकत्वं तदा कृतम् ।
तस्मात् तेनैव रूपेण न सर्वं भस्मसात् कृतम् ॥ ७ ॥

कुन्तिभोजः—युक्तमभिहितं भवता । ततस्ततः ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा मया सुचिरमनुनीयमानः शनैः शनैः प्रकृतिस्थो भूत्वानुग्रहं कृतवान्—

तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरं व्रजेः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

अल्पमूलत्वम् = सामान्यकारणोद्भूतत्वम् ॥

ब्रह्मर्षिणेति । अन्वयः—तदा, प्ररुष्टेन, ब्रह्मर्षिणा, श्वपाकत्वम्, कृतम्, तस्मात्, तेनैव, रूपेण, सर्वम्, न भस्मसात्कृतम् ।

तदा = तस्मिन् काले । प्ररुष्टेन = क्रुद्धेन । ब्रह्मर्षिणा = चण्डभार्गवेण । श्वपाकत्वम् = चाण्डालत्वम् । कृतम् = अभिशप्य निवृत्तम् । तस्मात् = अत एव । तेनैव रूपेण । सर्वम् = सौवीरराजवंशम् । न भस्मसात्कृतम् = सर्वथा न विनष्टम् ॥ ७ ॥

युक्तमभिहितम् = समीचीनमुच्यते भवतेति भावः । तच्छापप्रक्षुब्धमनसा = तदीयशापेन निग्रहवचसा, प्रकर्षेण क्षुब्धम् मानसम् यस्य तेन । अनुनीयमानः = प्रार्थ्यमानः । प्रकृतिस्थः = प्राप्तात्मस्वरूपः ।

तावदिति । अन्वयः—तावत्, प्रच्छन्नरूपेण, यावत्, संवत्सरम्, व्रजेः,

---

कुन्तिभोज—इस महान् अनर्थ का मूल बहुत ही थोड़ा है ।

भूतिक—सौवीरराज का वंश बहुत ही भाग्यवान् है, क्योंकि—

जिस क्रोध के वशीभूत होकर ब्रह्मर्षि ने चाण्डाल होने का शाप दिया उसी क्रोध के कारण सम्पूर्ण वंश को भस्म नहीं कर दिया ॥ ७ ॥

कुन्तिभोज—आप ठीक कहते हैं । उसके बाद ?

सौवीरराज—उसके बाद मैं उसके शाप को सुनकर क्षुब्ध हो उठा । मैंने जब उनकी काफी प्रार्थना की तब वे पुनः प्रकृतिस्थ हुए और कृपा करते हुए उन्होंने कहा—

एक वर्ष तक चाण्डाल के रूप में छिपकर समय बिताओ । एक वर्ष पूरा

इति। एवमुक्त्वा प्रसन्नचित्तेन एहि भोः काश्यप ! इत्याह्वयत, स तमनुगतो व्याघ्रेण मारितो वटुः, चरितं च मया संवत्सरं श्वपाकव्रतम्। अद्यास्मि शापान्मुक्तः।

कुन्तिभोजः–अहो व्यापदः प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च। दिष्टया भवान् वर्धते।

भूतिकः—जयतु स्वामी।

कुन्तिभोजः—ननु विष्णुसेनमाता सपरिवारमन्तःपुरं प्रविष्टा।

भूतिकः—तत्रभवती प्रविश्याभ्यन्तरं चिरकालप्रसुप्तं प्रणयमुद्बोधयति।

कुन्तिभोजः—अथेदानीं विष्णुसेनः कथमविमारको जातः।

भूतिकः—शृणोतु स्वामी—अस्ति धूमकेतुर्नामासुरः। सर्वलोकमारणाय परिभ्रमन् स कदाचित् सौवीरराष्ट्रमुत्सादयितुं प्रवृत्तः।

संवत्सरे, पूर्णे, मुक्तशापः, भविष्यसि।

तावत् प्रच्छन्नरूपेण=गुप्तरूपेण। यावत् संवत्सरम्=वर्षम्। व्रजेः= यापयेः। वर्षपर्यन्तम् यावत् कालं यापयेति भावः। तदनन्तरम् संवत्सरे= वर्षे। पूर्णे=व्यतीते सति। मुक्तशापः=शापप्रभावनिवृत्तः। भविष्यसि॥ ८॥

व्यापदः = विपत्तेः। उत्सादयितुम्=ध्वंसयितुम्।

हो जाने पर तुम शाप से मुक्त हो जाओगे॥ ८॥

मुझे ऐसा कहकर उन्होंने बाघ द्वारा मारे गये उस विद्यार्थी को प्रसन्न हृदय से पुकारते हुए कहा—"आओ काश्यप !" और वह लड़का उनके पीछे चल पड़ा। मैंने वर्ष पूरा कर लिया है, आज मैं शापमुक्त हूँ।

कुन्तिभोज—आप पर विपत्ति आई और गई। आप बड़े भाग्यवान् हैं।

भूतिक—महाराज की जय हो।

कुन्तिभोज—क्या विष्णुसेन की माता सपरिवार अन्तःपुर चली गई ?

भूतिक—वह अन्तःपुर जाकर चिरप्रसुप्त प्रणय को जगा रही है।

कुन्तिभोज—अच्छा, यह तो बताइये कि विष्णुसेन अविमारक कैसे बन गया ?

भूतिक—सुनिये महाराज ! धूमकेतु नाम का एक असुर था। सब लोगों को मारने के लिए घूमता हुआ वह एक बार सौवीरराष्ट्र को ध्वंस करने लगा।

कुन्तिभोजः—अपूर्वा खलु कथा । ततस्ततः ।

भूतिकः—ततः स्वदेशे सर्वप्रजानामार्ति दृष्ट्वा तस्य राक्षसस्य च प्रतिक्रियामनवेक्षमाणः स्वामी क्लेशमुपगतः ।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः ।

भूतिकः—ततस्तत् सर्वं बुद्ध्वा कुमारो विष्णुसेनः क्षितिरेणुपरुषगात्रः प्रलम्बमानकाकपक्षः शिशुभिस्तुल्यवयोभिः प्रक्रीडमानो दैवयोगात् प्रमत्तेषु रक्षिपुरुषेषु सहसैव तं देशमभ्युपगतो यत्रासौ राक्षसः ।

कुन्तिभोजः—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम् । ततस्ततः ।

भूतिकः—ततः स राक्षसः प्रीत्या सुसम्पन्नमिवाहारं कुमारमभिसमीक्ष्य स्वकर्म कर्तुमारब्धः ।

कुन्तिभोजः—अहो नृशंसता राक्षसस्य । ततस्ततः ।

भूतिकः—अथ कुमारेण किञ्चित् प्रहस्य,

आर्त्तिम् = कष्टम् । अनवेक्षमाणः = अपश्यन् । क्षितिरेणुपरुषगात्रः = धूलिधूसरितशरीरः । प्रलम्बमानकाकपक्षः = लम्बसटः । सुसम्पन्नम् = स्वतः प्रस्तुतम् । स्वकर्म = व्यापादनात्मकव्यापारः ।

कुन्तिभोज—बड़ी अनोखी कहानी है । फिर क्या हुआ ?

भूतिक—उसके बाद अपने देश की प्रजा के कष्ट को देखकर उस राक्षस की प्रतिक्रिया के लिए कोई उपाय न देखकर सौवीरराज दुःखी रहने लगे ।

कुन्तिभोज—तब-तब ?

भूतिक—सारी बातें समझकर कुमार विष्णुसेन रक्षा-पुरुषों की आँखें बचाकर वहाँ पहुँच गये जहाँ वह राक्षस था । उसकी देह में धूल लगी थी, उसके बाल लटक रहे थे, और उसके साथ उसीके हम-उम्र कुछ लड़के थे ।

कुन्तिभोज—आश्चर्य ! फिर क्या हुआ ?

भूतिक—विष्णुसेन के आने पर उस राक्षस ने प्रस्तुत आहार जानकर अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया ।

कुन्तिभोज—राक्षस की क्रूरता भी आश्चर्यजनक है । तब क्या हुआ ?

भूतिक—उसके बाद कुमार ने थोड़ा हँसकर—

प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रो
दवदहनेन यथा वनप्रदेशः।
युधि ललितमनायुधेन तेन
क्षितिपसुतेन तदा हतः स नीचः ॥ ९

कुन्तिभोजः—प्रथममेव हस्तिसम्भ्रमे मयोक्तं—दैवादुत्पादितोऽयं केवलो मानुषो न भवतीति।

सौवीरराजः—भवान् सहस्रनेत्रश्चरैः कथं चिन्तयत्यविमारकं प्रति।

भूतिकः—स्वामिन् !

गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे
न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः।

प्रपतेति। अन्वयः—प्रपतदशनिना, यथा, गिरीन्द्रः, दवदहनेन, यथा, वनप्रदेशः, तथा, तदा, तेन, अनायुधेन, क्षितिपसुतेन, सः, नीचः, हतः।

प्रपतदशनिना=पतता वज्रेण। यथा गिरीन्द्रः=पर्वतः हन्यते इति तात्पर्यम्। दवदहनेन=दावानलेन। यथावनप्रदेशः=अरण्यम् (भस्मसात्क्रियते) तथैव तदा तेन। अनायुधेन=निःशस्त्रेण। क्षितिपसुतेन=राजकुमारेण सः। नीचः=क्रूरः राक्षसः। हतः=मारितः ॥ ९ ॥

दैवादुत्पादितः=भाग्यवशाल्लब्धजन्मा।

गम्यास्तु देशा इति। अन्वयः—गम्याः, देशाः, सुपरीक्षिताः, क्वापि, कुमारः,

---

जैसे वज्र के गिरने से पर्वत एवं दावानल से जंगल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार बिना किसी शस्त्र के ही खेलते ही खेलते राजकुमार ने उस नीच राक्षस का संहार कर दिया ॥ ९ ॥

कुन्तिभोज—पहले ही हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन मैंने कहा था कि यह युवक साधारण मनुष्य नहीं है।

सौवीरराज—आप गुप्तचरों के द्वारा हजार आँखों वाले हैं। आप अविमारक के बारे में क्या सोचते हैं ?

भूतिक—जहाँ तक जाया जा सकता है वहाँ तक मैंने अच्छी तरह खोज करवा ली है, कहीं भी गुप्तचरों ने कुमार को नहीं पाया। उन्हें अब मन ही

परीक्षितुं तं मनसोऽस्ति शक्ति-
नूनं हि मायामनुगच्छतीति ॥ १० ॥
(ततः प्रविशति नारदः)

नारदः—
वेदैः पितामहमहं परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुद्‌गतरोमहर्षम् ।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैरुपायै-
स्तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके ॥ ११ ॥

चरैः, न, दृश्यते, नूनम्, तम्, परीक्षितुम्, मनसः, शक्तिः, अस्ति, हि, मायाम्, अनुगच्छति, इति ।

गम्याः देशाः = गन्तव्याः स्थानविशेषाः । सुपरीक्षिताः = मया सम्यगन्वेषिताः । क्वापि = तेषु गम्यदेशेषु कुत्रापि । कुमारः = अविमारकः । चरैः = प्रेषितगुप्तचरैः । न दृश्यते = नावलोकितः । नूनम् = निश्चयेन । तम् = कुमारम् । परीक्षितुम् = अन्वेष्टुम् । मनसः शक्तिरस्ति = मनसैव तस्यान्वेषणम् विधाय तत्प्राप्तिर्भविष्यति नान्यथेति भावः । हि = यतः । सः मायामनुगच्छति = मायामवलम्बते ॥ १० ॥

वेदैरिति । अन्वयः—अहम्, वेदैः, पितामहम्, परितोषयामि, गीतैः, हरिम्, उद्‌गतरोमहर्षम्, करोमि, अहरहः, विविधैः, उपायैः, तन्त्रीषु, स्वरगणान्, लोके, कलहान्, च, उत्पादयामि ।

अहम् = नारदः । वेदैः = वेदाभ्यासैः । पितामहम् = स्वपितरम् ब्रह्माणम् । परितोषयामि = प्रसादयामि । गीतैः = गायनैः । हरिम् = विष्णुम् । उद्‌गतरोमहर्षम् = हर्षेण पुलकितगात्रम् करोमि । अहरहः = प्रत्यहम् । विविधैरुपायैः = नानायत्नैः । तन्त्रीषु = वीणातन्त्रेषु । स्वरगणान् = निषादादिस्वरभेदान् । लोके = संसारे । कलहान् = विवादांश्च । उत्पादयामि ॥ ११ ॥

खोज सकता है । निश्चय ही वे आजकल माया का आश्रय ले रहे हैं ॥ १० ॥

(नारद का प्रवेश)

नारद—मैं वेदाभ्यास द्वारा अपने पिता ब्रह्मा को प्रसन्न तथा गीतों के द्वारा भगवान् विष्णु को रोमाञ्चित करता हूँ । प्रतिदिन विविध उपायों से वीणा से स्वर तथा लोक में झगड़े उत्पन्न करता रहता हूँ ॥ ११ ॥

भोः ! कुन्तिभोजस्य पित्रा दुर्योधनेन वयं सुचिरमाराधिताः ! तस्मिन् मानुषस्वभावमुपगते कुन्तिभोजश्चास्मासु भृत्यत्वमाचरति । अद्य कुन्तिभोजस्य सौवीरराजस्य च महानविमारकादर्शनेन कार्यसंकटो वर्तते । तदिदानीमहमविमारकप्रदर्शनेन तयोर्व्याक्षेपं समाक्षिपामीत्यवतीर्णोऽस्मि भूम्याम् (इति कुन्तिभोजसौवीरराजयोः पुरतः स्थितः ।)

कुन्तिभोजः—अये, भगवान् देवर्षिर्नारदः । भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—स्वस्ति भवते ।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सौवीरराजः—भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—शान्तिरस्तु ते ।

सौवीरराजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—(कर्णे) भूतिक ! एवं क्रियताम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इदमर्घ्यं पाद्यं च ।

सुचिरम् = दीर्घकालं यावत् । आराधिताः = सम्मानिताः । मानुषस्वभावम् = मृत्युम् । व्याक्षेपम् = विपदम् । समाक्षिपामि = समापयामि ।

कुन्तिभोज के पिता दुर्योधन ने बहुत समय तक मेरी आराधना की थी । उसके मर जाने पर कुन्तिभोज हमारे सेवक बने हुए हैं । आजकल अविमारक के गायब हो जाने से कुन्तिभोज तथा सौवीरराज पर बड़ा सङ्कट आ गया है । अतः मैं अविमारक का प्रत्यक्ष कराकर कुन्तिभोज तथा सौवीरराज के दुःख को दूर करूँ, इसीलिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ हूँ ।

(कुन्तिभोज तथा सौवीरराज के सम्मुख उपस्थित होते हैं)

कुन्तिभोज—अहा, देवर्षि नारद आये हैं । भगवन्, अभिवादन करता हूँ ।

नारद—आपका कल्याण हो ।

कुन्तिभोज—मैं अनुगृहीत हुआ ।

सौवीरराज—भगवन् ! प्रणाम ।

नारद—आपको शान्ति प्राप्त हो ।

सौवीरराज—आपका अनुग्रह है ।

कुन्तिभोज—(कान में) भूतिक ! ऐसा किया जाय ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर लौटकर) यह

कुन्तिभोजः—भगवन् ! क्रियतामनुग्रहः ।

नारदः—एवमस्तु ।

कुन्तिभोजः—(अभ्यर्च्य) भगवन् ! अस्मद्गृहं परिपूतं भवदवतरणेन ।

सौवीरराजः—इदानीं मुक्तशापोऽस्मि देवर्षिदर्शनेन ।

नारदः—नाहं साम्प्रतं युष्मद्दर्शनार्थमेवागतोऽत्र । अविमारकादर्शनेन सम्भूतं दुःखं भवतोर्ज्ञात्वावतीर्णोऽस्मि ।

उभौ—यद्येवं, विमुक्तसन्तापौ स्वः ।

नारदः—भूतिक ! सुदर्शनामानय ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् (निष्क्रम्य सुदर्शनया सार्धं प्रविष्टः)

सुदर्शना—अब्भाअदो देवरिसी । [अभ्यागतो देवर्षिः] ।

भूतिकः—एवम् ।

सुदर्शना—सणाहो दाणि मे पुत्तअस्स विवाहो संवुत्तो (उपगम्य). भअवं वन्दामि । [सनाथ इदानीं मे पुत्रकस्य विवाहः संवृत्तः । भगवन् ! वन्दे ।]

परिपूतम् = पावनीकृतम् । विमुक्तसन्तापौ = विगतकष्टौ ।

अर्घ्य तथा पाद्य उपस्थित है ।

कुन्तिभोज—भगवन् ! अनुग्रह किया जाय ।

नारद—एवमस्तु ।

कुन्तिभोज—देवर्षि के दर्शन से मैं अब शापमुक्त हो गया हूँ ।

नारद—मैं अभी केवल आपलोगों के दर्शनार्थ ही नहीं आया हूँ । अविमारक को नहीं देखने से उत्पन्न आप के कष्ट को जानकर ही आया हूँ ।

दोनो—यदि ऐसा है तो हमारे सन्ताप दूर हो गये ।

नारद—भूतिक ! सुदर्शना को बुला लाओ ।

भूतिक—भगवान् की जो आज्ञा । (जाकर पुनः सुदर्शना के साथ प्रवेश)

सुदर्शना—देवर्षि नारद पधारे हैं ?

भूतिक—हाँ ।

सुदर्शना—अब हमारे पुत्र का विवाह सनाथ हो गया । (निकट जाकर) भगवन् ! प्रणाम ।

नारदः—

एवमेव महाभागे ! नित्यं प्रीतिमवाप्नुहि ।
कुन्तिभोजश्च भूपालो नित्यं स्यात् प्रीतिपीडितः ॥ १२॥

सुदर्शना—अणुग्गहीदम्हि ! [अनुगृहीतोऽस्मि ।]

नारदः—इदानीं पृच्छतां भवन्तौ प्रष्टव्यम् ।

उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! किं जीवति सौवीरराजपुत्रः ।

नारदः—बाढम् ।

सौवीरराजः—केन कारणेन न दृश्यते ।

नारदः—विवाहव्याक्षेपात् ।

सौवीरराजः—कथं निर्विष्टः कुमारः ? ।

कुन्तीभोजः—क्व ।

एवमेवेति । अन्वयः—महाभागे ! एवमेव, नित्यम्, प्रीतिम्, अवाप्नुहि, भूपालः, कुन्तिभोजश्च, नित्यम्, प्रीतिपीडितः, स्यात् ।

महाभागे = हे अतिशयसौभाग्यशालिनि ! एवमेव = इत्थमेव । नित्यम् = सर्वदा । प्रीतिम् = प्रसन्नताम् । अवाप्नुहि = प्राप्नुहि । भूपालः = राजा । कुन्तिभोजश्च = एतन्नामधेयश्च । नित्यम् = सततम् । प्रीतिपीडितः = प्रसाद-युक्तः । स्यात् = भवेत् ॥ १२ ॥

विवाहव्याक्षेपात् = विवाहे संलग्नत्वात् । निर्विष्टः = गार्हस्थ्ये प्रविष्टः ।

नारद—हे अतिसौभाग्यशालिनि ! इसी तरह सदा तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ती रहे और राजा कुन्तिभोज भी सदा प्रसन्नता से युक्त रहें ॥ १२ ॥

सुदर्शना—यह आपका अनुग्रह है ।

नारद—अब आप लोगों को जो पूछना हो पूछें ।

दोनों—हम लोगों पर आपका अनुग्रह है ।

कुन्तिभोज—भगवन् ! क्या सौवीरराज का पुत्र अविमारक जीवित है ?

नारद—अवश्य !

सौवीरराज—किस कारण से वह दिखाई नहीं देता ?

नारद—विवाह में आसक्त है ।

सौवीरराज—क्यों ? कुमार ने विवाह कर लिया ?

कुन्तिभोज—कहां विवाह किया ।

नारदः—नगरे वैरन्त्ये ।

कुन्तिभोजः—वैरन्त्यं नाम नगरमप्यस्तीति । भवतु, कस्य जामातृत्वमुपगतः ।

नारदः—कुन्तिभोजस्य ।

कुन्तिभोजः—कः सः ।

नारदः—

पिता कुरङ्ग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वरः ।
दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजो भवान् न तु ॥ १३ ॥

कुन्तिभोजः—किं बहुभिः प्रश्नैः मत्सुतायां कुरङ्ग्यां निर्विष्ट इत्युच्यते भगवता ।

नारदः—एवमेतत् ।

कुन्तिभोजः—लज्जित इवास्मि । केन दत्ता, कथं वा, कथं चायं प्रविष्टः कन्यापुरम् ।

वैरन्त्ये = एतन्नामके नगरे ।

पिता कुरङ्ग्या इति । अन्वयः—कुरङ्ग्याः, पिता, भूपालः, वैरन्त्यनगरेश्वरः, दुर्योधनस्य तनयः, भवान्, कुन्तिभोजः, न, तु ।

कुरङ्ग्याः = राजकुमार्याः । पिता = जनकः । भूपालः = राजा । वैरन्त्य-

---

नारद—वैरन्त्यनगर में ।

कुन्तिभोज—वैरन्त्य नाम का भी कोई नगर है ? अच्छा तो वह किसका जामाता बना है ?

नारद—कुन्तिभोज का ।

कुन्तिभोज—वह कौन है ?

नारद—कुरङ्गी के पिता, वैरन्त्यनगर के स्वामी, दुर्योधन के पुत्र, आप ही वह कुन्तिभोज हैं, दूसरा कोई नहीं ॥१३॥

कुन्तिभोज—अधिक प्रश्न क्या करें । आपके कहने का तात्पर्य यह है कि अविमारक का सम्बन्ध मेरी पुत्री कुरङ्गी से हो गया है ?

नारद—हाँ ऐसा ही है ।

कुन्तिभोज—मैं लज्जित हो रहा हूँ । किसने दिया, कैसे दिया, या फिर कैसे वह कन्यापुर में प्रवेश कर सका ?

नारदः—

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे।
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ॥ १४ ॥

कुन्तिभोजः—भवत्वेवं तावन्निष्प्रतिवचनमृषिवचनम्। भगवन्! इदानीं किं प्राप्तकालं कुमारस्य कुरङ्ग्याश्च। विवाहः पूर्वमारब्धव्यः?

नारदः—निष्ठितो विवाहो ननु गान्धर्वः स्वसमय एव इदानीम्।

कुन्तिभोजः—अग्निसाक्षिकमिच्छामि।

नारदः—नित्यमग्निः साक्ष्येव। तथापि स्वजनपरितोषणार्थमभ्य-

नगरेश्वरः=वैरन्त्यनाम्नो नगरस्याधिपतिः। दुर्योधनस्य=एतन्नामधेयस्य। तनयः=पुत्रः। भवान्=कुन्तिभोजः। न तु=न त्वन्यः इत्यर्थः ॥ १३ ॥

दत्ता सेति। अन्वयः—सा, पूर्वम्, विधिना, दत्ता, सा, गजसंभ्रमे, दृष्टा, पूर्वम्, पौरुषम्, आश्रित्य, प्रविष्टः, पुनः मायया।

सा=कुरङ्गी। पूर्वम्=प्रथमम्। विधिना=ब्रह्मणा। दत्ता=अविमारकाय समर्पिता। पुनः=भूयः। सा=कुरङ्गी। गजसंभ्रमे=गजकृतोपद्रवदिवसे। दृष्टा=अविमारकेणावलोकिता। पूर्वम्=प्रथमवारम्। पौरुषमाश्रित्य=स्वपराक्रमेण। प्रविष्टः=कन्यापुरम् प्राप्तः। पुनः=अनन्तरञ्च। मायया=विद्याधरप्रदत्तांगुलीयकप्रभावसाहाय्येन। कन्यापुरं प्रविष्टः इति शेषः ॥ १४ ॥

निष्प्रतिवचनम्=अनुत्तरणीयम्। प्राप्तकालम्=कर्त्तुमुचितम्। निष्ठितः=सम्पन्नः। अग्निसाक्षिकम्=अग्निं साक्षिणं विधाय क्रियमाणम्। अभ्यन्तरसमय-

---

नारद—ब्रह्मा ने पहले ही कुरङ्गी का दान अविमारक को दिया था, हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन अविमारक ने उसे स्वयं देखा। पहली बार तो पराक्रम से उसने कन्यापुर में प्रवेश किया था, इस बार माया के बल से उसने प्रवेश किया है ॥ १४ ॥

कुन्तिभोज—इस प्रकार यह ऋषिवचन अनुत्तरणीय है। भगवन्, इस समय कुमार और कुरङ्गी को क्या करना उचित है? क्या विवाह कराया जाय?

नारद—गान्धर्वरीति से विवाह तो अपने समय में पहले ही हो चुका है।

कुन्तिभोज—मैं अग्निसाक्षिक विवाह चाहता हूँ।

नारद—अग्नि सदैव साक्षी रहा है, फिर भी आप अपने कुटुम्ब के

न्तरसमयमात्रमुपाध्यायेन कारयित्वा शीघ्रमानीयतामिह कुमारः सह भार्यया ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! एष गच्छामि ।

नारदः—तिष्ठतु भवान् । भूतिक ! गच्छ त्वम् ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् । (निष्क्रान्तः ।)

कुन्तिभोजः—भगवन् ! विज्ञाप्यमस्ति ।

नारदः—इतस्तावत् । स्वैरमभिधीयताम् ।

कुन्तिभोजः—भगवन्, सुदर्शनायाः पुत्राय जयवर्मणे कुरङ्गीं दास्यामीति मयानीता सा पूर्वं सनाथा । किं कर्त्तव्यमिदानीम्, अभिधीयताम् ।

नारदः—एवं करोमि । मुहूर्तमेकान्ते तिष्ठ ।

कुन्तिभोजः—तथास्तु । (तथा करोति ।)

नारदः—सुदर्शने ! इतस्तावत् ।

सुदर्शना—भअवं ! इअम्हि । (भगवन्, इयमस्मि ।)

नारदः—ननु श्रुतमस्मद्वचनम् ।

मात्रम् = अन्तःपुरसम्पादनीयमाचारमात्रम् । उपाध्यायेन = पुरोहितेन ।

तोषार्थ पुरोहित द्वारा रीति-व्यवहार कराकर कुमार को शीघ्र यहाँ मँगवाइये ।

कुन्तिभोज—भगवन् ! अभी जा रहा हूँ ।

नारद—आप ठहरिये ! भूतिक ! तुम जाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा । (जाता है)

कुन्तिभोज—भगवन् ! कुछ निवेदन करना है ।

नारद—स्वतन्त्र होकर कहें ।

कुन्तिभोज—महाराज, सुदर्शना के पुत्र जयवर्मा के साथ कुरङ्गी का विवाह होगा, इस अभिप्राय से मैंने पुत्र सहित सुदर्शना को बुलवा लिया था । अब उसका क्या होगा ? कृपया आदेश दें ।

नारद—ऐसा करूँगा । आप कुछ देर के लिए एकान्त में बैठें ।

कुन्तिभोज—जो आज्ञा । (बैठता है)

नारद—सुदर्शने ! इधर आओ ।

सुदर्शना—भगवन् ! यहीं तो हूँ ।

नारद—तुमने हमारी बातें सुनीं ?

सुदर्शना—सुदं सौवीरराअउत्तस्स गुणसङ्कीत्तणं। [श्रुतं सौवीरराजपुत्रस्य गुणसङ्कीर्तनम्।]

नारदः—मा मैवम्। भवत्या विस्मृतोऽग्निदेवादुत्पन्नोऽग्रजस्ते पुत्रः।

सुदर्शना—हं, एदं पि भअवं जाणादि। [हम्, एतदपि भगवान् जानाति।]

नारदः—ममैवमाज्ञां कुरुष्व तावत्।

सुदर्शना—एवं करोमि। भअवं भणादु। [एवं करोमि। भगवान् भणतु।]

नारदः—तवायं पुत्रोऽग्नेरुत्पन्नः। त्वद्भगिन्याः सुचेतनायाः प्रसवसमकाल एव तत्सुतः स्वर्ग गतः। तवायं पुत्रस्त्वद्भगिन्यै त्वया दत्तः। सौवीरराजश्चासावत्यन्तसन्तुष्टः प्रीतिसदृशीः क्रियाः कृत्वा विष्णुसेन इति संज्ञामकरोत्। अमानुषस्वरूपबलवीर्यपराक्रमेणानेन वर्धमानेन यस्मादविरूपधारी मारितोऽसुरः, तस्मादविमारक इति विष्णुसेनं लोको ब्रवीति। ततः सोऽपि ब्रह्मशापपरिभ्रष्टो हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुरङ्गीं दृष्ट्वा समुत्पन्नाभिलाषः परेण पौरुषेण सङ्गम्य कुरङ्ग्या

प्रसवकाले = पुत्रजन्मसमये। अविरूपधारी = मेषरूपधारी। सङ्गम्य =

सुदर्शना—मैंने सौवीरराज के पुत्र का समस्त गुणगान सुना है।

नारद—ऐसा मत कहो। तुम अग्निदेव से उत्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र को भूल गई हो क्या ?

सुदर्शना—हूँ, आप यह भी जानते हैं।

नारद—मेरी आज्ञा मानो।

सुदर्शना—ऐसा ही करूँगी। आप आदेश दें।

नारद—तुम्हारा यह पुत्र अग्निदेव से उत्पन्न है। तुम्हारी बहन सुचेतना का पुत्र प्रसवकाल में ही स्वर्गीय हो गया था। तुमने अपना पुत्र उसे दे दिया। सौवीरराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेमपूर्वक सारे संस्कार कराये और उसका नाम विष्णुसेन रखा। अतिमानवरूप बलवीर्यशाली उस बालक ने अविरूपधारी असुर को मारा, अतः विष्णुसेन को लोग अविमारक कहा करते हैं। बाद में ब्रह्मर्षि के शाप से चाण्डालत्व को प्राप्त वह बालक हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के दिन कुरङ्गी को देखकर उसके प्रति साभिलाष

दर्शनशङ्कितैः कन्यापुररक्षिभिः परीक्ष्यमाणोऽग्निना भगवता प्रच्छादितो निर्गतः तेन निर्वेदेनाग्निं प्रविष्टः पित्रा भगवताग्निना प्रीत्या परिष्वज्यमानो न दहत्यग्निरिति मरुत्प्रपातार्थं कश्चित् पर्वतमारूढः।

सुदर्शना—अहो अच्चाहिदं। [अहो अत्याहितम्]

नारदः—तत्र केनापि विद्याधरेण तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन प्रीत्यान्तर्धानकार्यमात्रमङ्गुलीयकं दत्तं, यद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थश्च।

सुदर्शना—अच्छरीअं अच्छरीअं। [आश्चर्यमाश्चर्यम्।]

नारदः—ततस्तद् दक्षिणाङ्गुल्यां धारयन् सन्तुष्टनामधेयेन ब्राह्मणेन सह कुन्तिभोजस्य कन्यापुरं स्वगृहवत् प्रविश्य कुरङ्ग्या यथेष्टमभिरममाणः सुखमास्ते। एष वृत्तान्तः। किमिदानीं कर्तव्यम्।

कुरङ्ग्याः सङ्गं विधाय। निर्वेदेन=खेदेन। मरुत्प्रपातार्थम्=गिरिशिखरात्पतित्वा प्राणान् घातयितुम्। अत्याहितम्=महद्भयमुपस्थितम्। तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन=तत्सौन्दर्यावलोकनात्प्रमुदितचित्तेन। यथेष्टमभिरममाणः=सुखं

हो गया। बड़े पराक्रम से उसने उससे साक्षात्कार किया। कन्यापुर के रक्षक उसके दर्शन से आतङ्कित हुए। अग्निदेव की सुरक्षा में वह कन्यापुर से निकल सका। कुरङ्गी के वियोग में उसने आग में जलकर मरने का निश्चय किया परन्तु अग्निदेव ने पुत्रप्रेम के कारण उसे बचा लिया। तब उसने पहाड़ की चोटी से गिरकर प्राणत्याग करना चाहा।

सुदर्शना—यह तो बड़ा अनर्थ हुआ।

नारद—उस समय किसी विद्याधर ने उसका रूप देख प्रसन्न होकर उसे एक अँगूठी दी, जिसे दायें हाथ में रखने पर वह अदृश्य एवं बायें हाथ में रखने पर दृश्य हो जाया करता था।

सुदर्शना—आश्चर्य ! आश्चर्य !

नारद—उसी अँगूठी को दायें हाथ में लेकर सन्तुष्ट नामक ब्राह्मण के साथ वह कुन्तिभोज के कन्यापुर में अपने घर की तरह प्रविष्ट हो गया। इस समय वह कुरङ्गी के साथ आनन्दपूर्वक रह रहा है। यही वृत्तान्त है। अब क्या करना चाहिए ?

सुदर्शना—मणन्तरं अय्याए वञ्चिदाए चलदी विअ मे हिअअं, कोदूहलेण तुस्सदि। भअवं ! एसु दिअसेसु कुरङ्गी जअवम्मणो भय्यत्ति पुच्छदि। अज्जप्पहुदि तस्स वन्दणीआ संवृत्ता। [अनन्तरमार्यया वञ्चितया चलतीव मे हृदयं, कौतूहलेन तुष्यति। भगवन्, एषु दिवसेषु कुरङ्गी जयवर्मणो भार्येति पृच्छ्यते। अद्य प्रभृति तस्य वन्दनीया संवृत्ता।]

नारदः—अभिजनयुक्तमेवाभिहितं भवत्या। कथमिदानीं ज्येष्ठपत्नी कनीयसे दीयते। सुदर्शने, अभिधीयतां काशिराजाय जयवर्मणः कुरङ्गी वयसाधिकेति। नन्वस्ति कुरङ्ग्याः कनीयसी सुमित्रा नाम। सा जयवर्मणो भार्या भविष्यति।

सुदर्शना—पडिग्गहिदं इसिवअणं। [प्रतिगृहीतमृषिवचनम्।]

नारदः—गच्छ कुन्तिभोजमनुवर्तस्व।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि। [यद् भगवानाज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति वरवेषेणाविमारकः कुरङ्गी भूतिकश्च)

अविमारकः—भोः ! लज्जित इवास्म्यनेन वृत्तान्तेन।

विहरन्। अभिजनयुक्तम्=सद्वंशोचितम्। वयसाधिका=ज्येष्ठा। अनुवर्त्तस्व =तदनुसारमाचर।

सुदर्शना—इस बीच मैंने अपनी बड़ी बहन को वञ्चित किया, अतः मेरा हृदय कांप रहा है। भगवन् ! कुरङ्गी जयवर्मा की पत्नी मानी जाने लगी थी। अब वह उसकी प्रणम्य हो गयी।

नारद—यह तो तुमने कुलानुकूल बात कही। बड़े की स्त्री छोटे को कैसे दी जायगी। काशिराज से कह देना कि कुरङ्गी जयवर्मा से बड़ी थी। कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा अब जयवर्मा की पत्नी होगी।

सुदर्शना—यह ऋषि वचन स्वीकृत है।

नारद—जाओ, कुन्तिभोज के कथनानुसार आचरण करो।

सुदर्शना—भगवान् की जो आज्ञा।

(वरवेष में अविमारक, भूतिक तथा कुरङ्गी का प्रवेश)

अविमारक—मैं इस वृत्तान्त से लज्जित हो रहा हूँ।

दृष्ट्वा तदानीं गजसम्भ्रमे मां
मद्विक्रमं ये परिकीर्तयन्ति।
ते किन्नु वृत्तान्तमिमं विदित्वा
चारित्रदोषं मयि पातयन्ति ॥ १५ ॥

(परिक्रम्य दृष्ट्वा) अये अयं खलु भगवान् नारदः य एषः,

शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धि-
र्वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः।
स्निग्धेषु वैराण्युपपाद्य यत्ना-
न्नष्टानि कार्याणि समीकरोति ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा तदानीमिति। अन्वयः—तदानीम्, गजसम्भ्रमे, ये, मद्विक्रमम्, दृष्ट्वा, परिकीर्त्तयन्ति, किम्, नु, ते, इमम्, वृत्तान्तम्, विदित्वा, मयि, चरित्र-दोषम्, पातयन्ति।

तदानीम् = तस्मिन्काले। गजसम्भ्रमे = गजकृतोपद्रवे। ये = जनाः। मद्वि-क्रमम् = मदीयपराक्रमम्। दृष्ट्वा = अवलोक्य। परिकीर्त्तयन्ति = स्तुवन्ति स्म। किम् ते = मम प्रशंसका इति यावत्। इमम् वृत्तान्तम् = कन्यापुरप्रवेशादि-वृत्तान्तम्। विदित्वा = अवगम्य। मयि। चारित्रदोषम् = दुश्चरित्रताम्। पातयन्ति = आरोपयन्ति। गजकृतोपद्रवदिवसे ये मम प्रशंसकाः आसन् ते सम्प्रति मम निन्दका स्युरित्येव लज्जास्पदमिति भावः ॥ १५ ॥

शापे प्रसादेष्विति। अन्वयः—शापे, प्रसादेषु, च, सक्तबुद्धिः, वेदेषु, गीतेषु, च, रक्तकण्ठः, स्निग्धेषु, यत्नात्, वैराणि, उपपाद्य, नष्टानि, कार्याणि, समीकरोति।

उस समय, हस्तिकृत उपद्रव को शान्त करने के कारण जिन लोगों ने मेरी प्रशंसा की थी वे ही जब इस वृत्तान्त को सुनेंगे तो मुझ पर चरित्र-दोष का आरोप करेंगे ॥१५॥

(चलकर देखकर) यही हैं भगवान् नारद। यह—

शाप एवं कृपा में समभाव से समर्थ हैं, वेद एवं गीत में इनका कण्ठ समान रूप से गाने का अभ्यस्त है। एक ओर जहाँ ये परस्पर प्रेमपूर्वक रहने वालों के बीच कलह उत्पन्न करते हैं वहीं दूसरी ओर ये बिगड़े हुए कार्यों को बना भी दिया करते हैं ॥ १६ ॥

कुन्तिभोजः—इत इतः कुमारः। अभिवादयस्वात्मकुलदैवतं देवर्षिम्।

अविमारकः—भगवन्! अभिवादये।

नारदः—स्वस्ति भवते सपत्नीकाय!

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि। मातुल अभिवादये।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स!

क्षमया जय विप्रेन्द्रान् दयया जय संश्रितान्।
तत्त्वबुद्ध्या जयात्मानं तेजसा जय पार्थिवान्॥ १७॥

योऽयं नारदः, शापे=परस्मै निग्रहवचःप्रदाने। प्रसादेषु=अनुकम्पासु च। सक्तबुद्धिः=समभावेन समर्थः। वेदेषु=वेदाभ्यासेषु। गीतेषु=गायनेषु च। रक्तकण्ठः=समानरूपेण उभयोरपि कृताभ्यासः। स्निग्धेषु=परस्परप्रेमशालिषु। यत्नात्=सप्रयासम्। वैराण्युपपाद्य=शत्रुभावं जनयित्वा। नष्टानि कार्याणि=विनाशगतानि कार्याणि। समीकरोति=सम्यक् सम्पादयति। नारदः खलु अनुकूलम् प्रतिकूलञ्च समभावेनैव सम्पादयतीति भावः॥ १६॥

अभिवादयस्व=प्रणम। सपत्नीकाय=सभार्याय।

क्षमया जयेति। अन्वयः—क्षमया, विप्रेन्द्रान्, जय, दयया, संश्रितान्, जय, तत्त्वबुद्ध्या, आत्मानम्, जय, तेजसा, पार्थिवान्, जय।

क्षमया=सहिष्णुतया। विप्रेन्द्रान्=ब्राह्मणश्रेष्ठान्। जय=स्ववशीभूतान् विधेहि। दयया=अनुग्रहेण। संश्रितान्=स्वाश्रितजनान्। जय=प्रसादय। तत्त्वबुद्ध्या=वस्तुतत्त्वज्ञानेन। आत्मानं जय=आत्मानं वशमानय। तेजसा=पराक्रमेण। पार्थिवान्=भूपतीन्। जय=वशवर्तिनः कुरु॥ १७॥

कुन्तिभोज—कुमार, इधर आओ। अपने कुल-पूज्य देवर्षि नारद को प्रणाम करो।

अविमारक—भगवन्, प्रणाम करता हूँ।

नारद—सपत्नीक आप का कल्याण हो।

अविमारक—अनुगृहीत हुआ। मामा जी प्रणाम।

कुन्तिभोज—आओ वत्स आओ।

क्षमा द्वारा ब्राह्मणों पर, दया द्वारा आश्रितजनों पर, तत्त्वज्ञान द्वारा अपने आप पर तथा पराक्रम द्वारा राजाओं पर विजय प्राप्त करो॥ १७॥

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—वत्स ! इत इतः पितरमभिवादयस्व ।

अविमारकः—भोस्तात ! अभिवादये ।

सौवीरराजः—एह्येहि वत्स !

विरचितवरवेषदर्शनीयो
गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः ।
वयमिव भव हर्षबाष्पनेत्र-
स्त्वमिह भवत्तनयं समीक्षमाणः ॥ १८ ॥

पुत्र ! अभिवादयस्व मातुलम् ।

अविमारकः—मातुल ! अभिवादये ।

विरचितेति । अन्वयः — विरचितवरवेषदर्शनीयः, गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः, वयमिव, इह, हर्षबाष्पनेत्रः, भवत्तनयम्, समीक्षमाणः, त्वम्, भव ।

विरचितवरवेषदर्शनीयः—विरचितेन = संरचितेन, वरवेषेण = जामातृरूपेण, दर्शनीयः = रमणीयः । गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः—गुरुजनानाम् = श्वशुरादीनाम्, वन्दने = नित्यनमने, मिश्रम् = संलग्नम्, शुभ्रम् = गौरवर्णम्, वक्त्रम् = मुखम् यस्य तादृशः त्वम् । वयमिव = अहमिव । हर्षबाष्पनेत्रः = सानन्दाश्रुः । भवत्तनयम् = तव पुत्रकम् । समीक्षमाणः = अवलोक्य । त्वम् भव = यथा वरवेषे तव पुत्रकं दृष्ट्वा अहम् प्रसन्नतामनुभवामि तथैव त्वमपि गुरुजनवन्दने निरतम् निजपुत्रम् विलोक्य प्रसन्नो भवेति भावः ॥ १८ ॥

अविमारक—अनुगृहीत हुआ ।

कुन्तिभोज—वत्स ! इधर आकर अपने पिता को प्रणाम करो ।

अविमारक—पिता जी ! प्रणाम ।

सौवीरराज—आओ बेटा, आओ ।

जिस प्रकार मैं तुम्हे इस वरवेष में देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी वरवेष में दर्शनीय तथा गुरुजनों की वन्दना में संलग्न अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता प्राप्त करो ॥ १८ ॥

बेटा, मामा जी को प्रणाम करो ।

अविमारक—मामा जी प्रणाम ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः
सत्यैर्दृढैर्दशरथप्रतिमो भव त्वम् ।
नित्यार्पितैः पितृसमो भव सम्प्रदानैः
स्वेनात्मना सुसदृशेन पराक्रमेण ॥ १९ ॥

सौवीरराजः—पुत्र ! सुदर्शनामभिवादयस्व ।

कुन्तिभोजः-अयुक्तमिव सुचेतनामनभिवाद्य सुदर्शनामभिवादयितुम्।

नारदः—अस्ति कारणम् । अभिवाद्यतां सुदर्शना ।

उभौ—एवं क्रियताम् ।

अविमारकः--भवति ! अभिवादये ।

यज्ञैः शुभैरिति । अन्वयः—त्वम्, नित्ययुक्तैः, शुभैः, यज्ञैः, हरिसमः, भव, दृढैः, सत्यैः, दशरथप्रतिमः, भव, नित्यार्पितैः, पितृसमः, भव सुसदृशेन, पराक्रमेण, स्वेनात्मना ।

त्वम् = अविमारकः । नित्ययुक्तैः = प्रत्यहं सम्पाद्यमानैः । शुभैः यज्ञैः = कल्याणप्रदैः यज्ञैः । हरिसमः = इन्द्रसदृशो भव । दृढैः = अचलैः । सत्यैः = सत्यवचोभिः । दशरथप्रतिमः = दशरथसदृशो भव । नित्यार्पितैः = सततदानैः । पितृसमो भव = पितृसदृशो भव । सुसदृशेन = आत्मानुकूलेन । पराक्रमेण = शौर्येण । स्वेनात्मना = स्वसदृश एव स्वयं भवेत्यर्थः ॥ १९ ॥

कुन्तिभोज--आओ वत्स, आओ ।

तुम नित्य शुभ यज्ञों से इन्द्र के समान, दृढ सत्य से दशरथ के समान, नित्य प्रवृत्त दान से पिता के समान एवं अपने पराक्रम से अपने ही समान अर्थात् अद्वितीय बनो ॥ १९ ॥

कुन्तिभोज—सुचेतना को छोड़कर सुदर्शना को प्रणाम करना ठीक नहीं होगा ।

नारद—इसका कारण है । सुदर्शना को प्रणाम करो ।

दोनों—ऐसा करो ।

अविमारक—श्रीमती जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

सुदर्शना—पुत्र ! चिरं जीव एदाए सह । (परिष्वज्य) चिरेण दिट्ठो सि । अज्ज मए अणुभूदो पुत्तसम्पत्तिरसो । [पुत्र ! चिरं जीवैतया सह । चिरेण दृष्टोऽसि । अद्य मयानुभूतः पुत्रसम्पत्तिरसः ।] (रोदिति)

कुन्तिभोजः—

इमां तु बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं
सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम् ।
अवेक्षितां मातरमप्रकाश्य
धात्रीत्वमेवैति सुचेतना मे ॥ २० ॥

नारदः—अलमतिस्नेहेन । प्रविशतु कन्यापुरं सुचेतना सुचेतना सुदर्शना सुदर्शना च सभार्येण पुत्रेण ।

पुत्रसम्पत्तिरसः = पुत्रोद्भवजन्यानन्दः ।

इमां त्विति । अन्वयः—बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम्, सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम्, इमाम्, अवेक्षिताम्, मातरम्, अप्रकाश्य, मे, सुचेतना, धात्रीत्वमेव, एति ।

बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम्—बाष्पार्द्रे = अश्रुपूर्णे, कुतूहले = सकौतुके च अक्षिणी = नेत्रे यस्यास्ताम् तथोक्ताम् । सम्प्रस्रवद्दुग्धपयोदयुग्माम् = क्षरत्स्तन्यं स्तनयुगलं यस्यास्तां तथाभूताम् । इमाम् = एनाम् । अवेक्षिताम् = दर्शनविषयीकृताम् । मातरम् = जननीम् । अप्रकाश्य = अप्रकटय्य । मे = मम । सुचेतना, धात्रीत्वमेव = धात्रीभावमेव । एति = प्राप्नोति । मातृसुलभस्नेहवात्सल्यादिलक्षणैः सुचेतना धात्र्याः एव भावं पूरयतीति भावः ॥ २० ॥

सुचेतना = सुबुद्धिः । सुदर्शना = सुन्दरी ।

सुदर्शना—बेटा ! इसके साथ तुम चिरंजीवी होओ । बहुत दिनों पर तुम्हें देख सकी । आज ही मैंने पुत्र-प्राप्ति के आनन्द का अनुभव किया है । (रोती है) ।

कुन्तिभोज—अश्रुपूर्ण तथा कुतूहल-भरे नेत्रोंवाली एवं दुग्धस्रवणयुक्त स्तनों वाली इस सुदर्शना को माता के रूप में अप्रकाशित करके सुचेतना वस्तुतः धात्री का ही कार्य करती रही है ॥ २० ॥

नारद—अधिक स्नेह अनावश्यक है । सुचेतना तथा सुदर्शना सस्त्रीक पुत्र के साथ अन्तःपुर में जायें ।

कुन्तिभोजः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति]

नारदः—अचिरेण सौवीरराजो विसृज्यतां स्वदेशगमनाय । जयवर्मणे सुमित्रा प्रदीयतां काशिराज्ञे ! त्वमपि सन्निहितो भव ।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

नारदः—कुन्तिभोज ! किमन्यत् ते प्रियमुपहरामि ।

कुन्तिभोजः—भगवान् यदि मे प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

गोब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यं
सर्वप्रजानां सुखमस्तु लोके ।

नारदः—सौवीरराज ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

सौवीरराजः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

इमामुदीर्णार्णवनीलवस्त्रां
नरेश्वरो नः पृथिवीं प्रशास्तु ॥ २१ ॥

सन्निहितः = विवाहमण्डपे समुपस्थितः ।

गोब्राह्मणानामिति । अन्वयः—गोब्राह्मणानाम्, नित्यम्, हितम्, अस्तु,

---

कुन्तिभोज—आपकी जैसी आज्ञा ।

सुदर्शना—आपकी जैसी आज्ञा ।

नारद—सौवीरराज को यथाशीघ्र अपने देश जाने की अनुमति दें, जयवर्मा को सुमित्रा प्रदान करें, तुम भी उसमें सम्मिलित होना ।

कुन्तिभोज—यह सब आपका अनुग्रह है ।

नारद—मैं आपका और क्या कल्याण करूँ ?

कुन्तिभोज—जब आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इससे बढ़कर मैं और क्या चाहूँगा ।

गौओं तथा ब्राह्मणों का कल्याण हो, प्रजाजन सुखी हों ।

नारद—सौवीरराज ! आप को क्या उपहार दूँ ?

सौवीरराज—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इसके अतिरिक्त मैं और क्या चाहूँगा !

इस सागर-वसना पृथ्वी का शासन हमारे नरेश करते रहें ॥ २१ ॥

(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः ।

लोके, सर्वप्रजानाम्, सुखम्, अस्तु, इमाम्, उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम्, पृथिवीम्, नः, नरेश्वरः, प्रशास्तु ।

गोब्राह्मणानाम् = गवां विप्राणाञ्च । नित्यम् = सदैव । हितम् = कल्याणम् । अस्तु = भवतु । सर्वप्रजानाम् = सर्वेषां प्रजाजनानाम् । सुखम् = कल्याणम् । अस्तु = भवतु । सर्वाः प्रजाः सुखेन कालं यापयन्तु इति भावः । इमाम् = एताम् । उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम्—उदीर्णः = विस्तृतः, अर्णवः = सागरः एव नीलं, वस्त्रम् = वसनम् यस्यास्ताम् । पृथिवीम् = महीम् । नः = अस्माकम् । नरेश्वरः = राजा कुन्तिभोज इति यावत् । प्रशास्तु = पालयतु ॥ २१ ॥

भवन्त्विति । अन्वयः—गावः, अरजसः, भवन्तु, परचक्रम्, प्रशाम्यतु, इमाम्, कृत्स्नाम्, महीम्, नः, राजसिंहः, प्रशास्तु ।

गावः = इन्द्रियाणि । अरजसः = सात्त्विकभावापन्नः । भवन्तु = सन्तु । परचक्रम् = शत्रुदलम् । प्रशाम्यतु = शक्तिहीनः भवतु । इमां, कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम् । महीम् = पृथ्वीम् । नः = अस्माकम् । राजसिंहः = सिंहसदृशो राजा कुन्तिभोजः । प्रशास्तु = पालयतु ॥ २२ ॥

इति 'कमलेश्वरी' संस्कृतटीकायां षष्ठोऽङ्कः ।

(भरत वाक्य)

हमारी इन्द्रियाँ सात्त्विक हों, शत्रुमण्डल निर्वीर्य हो, राजसिंह समस्त पृथ्वी का शासन करें ॥ २२ ॥

(सबका प्रस्थान)

षष्ठ अङ्क समाप्त

॥ ग्रन्थ समाप्त ॥



परिशिष्टम्

(नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लक्षण)

१. प्रकरण :—

> भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
> शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥

अर्थात् प्रकरण रूपक का वह भेद है जिसकी कथावस्तु लौकिक एवं कवि-कल्पित होती है । इसमें शृङ्गार रस मुख्य रस होता है तथा अन्य रसों का वर्णन गौणरूप में किया जाता है । प्रकरण का नायक कोई विप्र, अमात्य या वणिक् होता है ।

२. अङ्क :—

जो भावों तथा रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुटित करता है, जहाँ पर नाना प्रकार के विधान सम्पन्न होते हैं, जहाँ एक अर्थ का समापन तथा बीज का उपसंहार हो जाता है किन्तु बिन्दु का सम्बन्ध आंशिक रूप से बना रहता है उसे अङ्क कहते हैं । भरत मुनि ने इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है :—

> "अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
> नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्मात् भवेदङ्कः ॥
> यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
> किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥"

ना० शा० अ० २०।१४-१६ ॥

३. नान्दी :—

> (१) आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
> देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

सा० द० ६।२४ ॥

अर्थात् जिसके द्वारा देवताओं, ब्राह्मणों एवं राजाओं की आशीर्वादात्मक स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं।

(२) "आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः।

....नान्दीति कथ्यते ॥ आदि भरत ॥

अर्थात् आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक जिसमें काव्य के कथानक का भी सूक्ष्मरूपेण संकेत दिया गया हो; नान्दी कहलाता है। नान्दी में प्रयुक्त होने वाले पदों एवं नान्दी की विस्तार-सीमा के विषय में भी शास्त्रकारों ने निर्देश दे रखे हैं :—

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

४. प्रस्तावना :—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः :
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

सा० दर्पण ॥

अर्थात् जब सूत्रधार नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक के साथ अपने नाटकीय कथानक के निर्देश को बतलाने के लिए विचित्र वाक्यों के द्वारा वार्त्तालाप किया करता है तो उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं।

५. सूत्रधार :—

वस्तु, नेता तथा रस—ये तीन नाट्य के उपकरण अर्थात् साधन माने गये है। ये उपकरण ही नाट्य के सूत्र भी कहलाते है और जो उन्हें धारण करता है अर्थात् उनका सञ्चालन करता है उसे सूत्रधार कहते हैं :—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

६. नायक :—

नायक या नेता शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है 'ले चलना'। जो कथावस्तु को फल की ओर ले चलता है उसे नायक या नेता कहा जाता है। यही फल का प्राप्तिकर्त्ता अथवा भोक्ता होता है। नायक या नेता नाटक का प्रधान पात्र होता है। धनञ्जय ने इसका लक्षण देते हुए कहा है :—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा-कलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥
दशरूपक—२।१-२॥

नेता या नायक का विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न रखने वाला, पवित्र हृदय वाला, वाक्पटु, कुलीन वंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर युवक होना आवश्यक है। साथ ही, उसे बुद्धि, उत्साह, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त और शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रीय पद्धति से अपने कार्यों का सम्पादन करने वाला तथा धार्मिक भी होना चाहिये।

७. नायिका :—

शृङ्गार-प्रधान नाटकों में नायिका का भी उतना ही महत्त्व होता है जितना कि नायक का। 'अविमारकम्' चूँकि शृंगार-प्रधान नाटक (प्रकरण) है अतः नायिका का लक्षण यहाँ दे देना उचित है। विश्वनाथ के अनुसार नायिका का लक्षण इस प्रकार है :—

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता॥
सा० द० ३।५६॥

अर्थात् नायिका भी नायक के सामान्य गुणों से युक्त हुआ करती है। स्वकीया, परकीया तथा साधारण या सामान्य के भेद से वह तीन प्रकार की होती है। स्वकीया अपनी स्त्री, परकीया पराई स्त्री या कन्या तथा सामान्या किसी की स्त्री नहीं होती है।

८. विदूषक :—

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष-भूषा और बात-चीत के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है तथा अपने हास्य-कर्म को ठीक समझता है उसे विदूषक कहते हैं। उसके नाम कुसुम, वसन्त आदि भी होते हैं। विश्वनाथ के अनुसार इसका लक्षण है :—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

सा० द० ॥

९. विष्कम्भक :—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥

सा० दर्पण ६।५५–५६॥

भूत अथवा भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए विष्कम्भ या विष्कम्भक का प्रयोग किया जाता है। नाटक में संक्षेप की दृष्टि से ही इसका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अङ्क के प्रारम्भ में किया जाता है। जिस विष्कम्भक में एक अथवा दो मध्यम कोटि के पात्रों का प्रयोग किया जाता है उसे "शुद्ध विष्कम्भक" कहते हैं। यदि उसमें नीच तथा मध्यम दोनों ही प्रकार के पात्र आते हैं तो उसे "मिश्र विष्कम्भक" कहते हैं।

१०. प्रवेशक :—

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्रों का ही प्रयोग होता है। दो अङ्कों के बीच में इसकी स्थिति होती है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के समान ही होती हैं—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥

सा० द० ६।५७॥

११. नेपथ्य :—

अभिनेता लोग जिस स्थान पर वेश-भूषा धारण करते हैं उसे नेपथ्य कहा जाता है—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

१२. स्वगत :—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

सा० द० ६।१३७ ॥

जो बात सुनाने योग्य नहीं हुआ करती उसे स्वगत (मन में) कहते हैं। इसे ही आत्मगत भी कहा जाता है ।

१३. प्रकाश :—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् । सा० द० ६।१३८ ॥

जो बात, सभी को सुनाने योग्य, कही जाती है उसे प्रकाश (स्पष्ट) कहते हैं ।

१४. प्रयोगातिशय :—

यदि एक ही प्रयोग में प्रयोगान्तर प्रयुक्त हो और उससे यदि पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं :—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्र-प्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।

१५. वीज :—

प्रारम्भ में जिसका सूक्ष्मरूप में अभिधान किया जाता है किन्तु जैसे-जैसे व्यापक शृङ्खला आगे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही इसका विस्तार होता जाता है ।

१६. विन्दु :—

विच्छिन्न कथावस्तु को इसके द्वारा आगे बढ़ाया जाता है अर्थात् जो बात कारण बनकर बीच की कथावस्तु को आगे बढ़ाती है और मुख्य कथा को भी बनाये रखती है उसे ही विन्दु कहते हैं ।

छन्दः परिचय

रचना की दृष्टि से काव्य के तीन भेद होते हैं—गद्य, पद्य एवं मिश्र अर्थात् चम्पू। इनमें से पद्य का अनुशासन या नियमन जिस शास्त्र के द्वारा किया जाता है उसे छन्दःशास्त्र कहते हैं। पद्य का सम्बन्ध पद अर्थात् चरण से है। पद्य-रचना का एक माप होता है तथा उसीके अनुसार उसकी सृष्टि भी होती है। इसी माप या बन्धन को 'छन्द' कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मात्रा, वर्ण, यति, गति, ह्रस्व, दीर्घ आदि का विचार कर जो रचना की जाती है उसे छन्दोबद्ध रचना और जिस विधि की सहायता से ऐसी रचनायें की जाती हैं उस विधि को ही छन्द कहते हैं।

पद्य प्रायः चार चरणों या पादों में निबद्ध होता है। पाद या चरण 'वृत्त' और 'जाति' के भेद से दो प्रकार का होता है। अक्षर संख्यात चरण को 'वृत्त' और मात्रा संख्यात चरण को 'जाति' कहा जाता है। 'वृत्त' को 'वर्णवृत्त' अथवा वर्णिक छन्द भी कहते हैं चूँकि इसमें वर्णों की गणना की जाती है। इसी प्रकार मात्राओं की गणना करने से 'जाति' को "मात्रिक छन्द" भी कहते हैं। इन्द्रवज्रा, स्रग्धरा आदि 'वृत्त' एवं 'आर्या' आदि 'जाति' छन्द हैं।

वृत्त तीन प्रकार के होते हैं—समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त।

१. समवृत्त—इसमें चारों चरणों की संख्या समान होती है। अधिकांश वर्णवृत्त इसी श्रेणी में आते हैं। शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, पृथ्वी आदि इसके उदाहरण हैं।

. अर्धसमवृत्त—इस छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में वर्णसंख्या समान होती है। अपरवक्त्र, उपचित्र, पुष्पिताग्रा, वियोगिनी आदि इसके उदाहरण हैं।

३. विषमवृत्त—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है; इस छन्द के चरणों में समानता होती ही नहीं। एकमात्र उद्गता छन्द इसका उदाहरण है।

मात्राएँ तीन प्रकार की होती हैं—ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत। ह्रस्व को लघु कहते हैं और छन्दःशास्त्र में एक खड़ी रेखा (।) के द्वारा इसे चिह्नित किया गया है। इसे एक मात्रा गिना जाता है। दीर्घ को गुरु भी कहते हैं। इसका चिह्न (ऽ) है जिसे दो मात्रा गिना जाता है। प्लुत का प्रयोग संगीत में या किसी को पुकारने में होता है। इसमें तीन या उससे अधिक मात्राओं की गणना की जाती है। अ, इ, उ, ऋ एवं लृ—ये ह्रस्व या लघु स्वर हैं। इनमें एकमात्रा होती है। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ,—दीर्घ या गुरु स्वर कहलाते हैं। इनमे २–२ मात्राएँ होती हैं। पद्यरचना में कहीं-कहीं लघुस्वर भी गुरु हो जाते हैं—

"सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥" (छन्दोम०)

उक्त पद्य के आलोक मे निम्न प्रकार के वर्ण गुरु होते हैं—

१. अनुस्वारयुक्त वर्ण—जैसे—अंश, हंस आदि। इन शब्दों में क्रमशः अ एवं ह (अ) ह्रस्व हैं किन्तु अनुस्वारयुक्त होने से गुरु हो जाते हैं।

२. दीर्घस्वर—जैसे—आ, ई, ऊ आदि।

३. विसर्गयुक्त स्वर—जैसे—'दुःख' का दु (उ)।

४. संयुक्त व्यञ्जनों से पूर्व का ह्रस्व—जैसे 'मध्य' का म (अ)।

५. पादान्त (चरणान्त) में प्रयुक्त लघु स्वर कभी-कभी गुरु हो जाता है।

वर्णवृत्तों मे वर्णो की गणना के लिए 'गण' का उपयोग किया जाता है। तीन वर्णो के समुदाय को 'गण' कहा जाता है। इनकी संख्या आठ है। गणों की संख्या का निर्देश निम्न पद्य से मिलता है :—

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम्।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरु लाघवम् ॥

लघु-गुरु वर्णों के क्रमानुसार इन आठ गणो को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

(१) ऽऽऽ मगण—म—तीनों गुरुवर्ण।

(२) ।ऽऽ यगण—य—एक लघु तथा दो गुरु वर्ण।

(३) ऽ।ऽ रगण—र—एक गुरु, एक लघु फिर एक गुरुवर्ण ।

(४) ।।ऽ सगण—स—दो लघु फिर एक गुरु वर्ण ।

(५) ऽऽ। तगण—त—दो गुरु फिर एक लघु वर्ण ।

(६) ।ऽ। जगण—ज—एक लघु फिर एक गुरु फिर एक लघु वर्ण ।

(७) ऽ।। भगण—भ—एक गुरु एवं दो लघु वर्ण ।

(८) ।।। नगण—न—तीनों लघुवर्ण ।

लक्षणों में ल' का तात्पर्य लघु से एवं 'ग' का तात्पर्य गुरु से है ।

प्रत्येक छन्द में मात्राओं या वर्णों की नियमित संख्या होने से ही काम नहीं चलता है अपितु उसमें एक प्रकार का प्रवाह भी अपेक्षित है जिससे पढ़ने में कहीं व्यवधान-सा नहीं जान पड़े । इसी प्रवाह को गति कहते हैं । पद्य के एक चरण में लय या पढ़ने की दृष्टि से कुछ अक्षरों के बाद थोड़ा रुका जाता है । इसी रुकावट को छन्दःशास्त्रीय भाषा में यति, विराम या विश्राम कहते हैं ।

'अविमारक' के अन्तर्गत जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके लक्षणादि निम्नलिखित हैं :—

१. अनुष्टुप्—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

अनुष्टुप् के प्रत्येक चरण में ८-८ अक्षर होते हैं । इनमें पञ्चम अक्षर सदा लघु तथा षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है । सप्तम अक्षर प्रथम तथा तृतीय चरणों में गुरु और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में लघु होता है । अन्य अक्षरों में लघु या गुरु का कोई निर्देश नहीं है; वे कुछ भी हो सकते हैं । उदाहरण १।४

२. स्रग्धरा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥

स्रग्धरा के प्रत्येक चरण में २१ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण = २१ वर्ण । इसमें ७-७ वर्णों पर यति होती है । उदाहरण—१।१

३. उपजाति—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।
उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उपजाति के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा और किसी में उपेन्द्रवज्रा छन्द होता है। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु=११ वर्ण। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण; १ तगण, १ जगण, २ गुरु=११ वर्ण। उदाहरण—१।३

४. शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ॥

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं। १ यगण, १ मगण, १ नगण १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ६-११ पर यति होती है। उदा०—१।५

५. वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥

वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में १४-१४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु=१४ वर्ण। यह शक्वरी श्रेणी के अन्तर्गत है। पादान्त में यति होती है। उदा०—१।६

६. शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥

शालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण, २ गुरु=११ वर्ण। इसमें ४-७ पर यति होती है। यह त्रिष्टुभ श्रेणी के अन्तर्गत है। उदा०—१।७

७. प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १३-१३ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु=१३ वर्ण। इसमें ३-१० पर यति होती है। उदा०—१।८

८. मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥

इसके प्रत्येक चरण में १५-१५ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ मगण, २ यगण=१५ वर्ण। इसमें ८-७ पर यति होती है। उदा०—२।५

९. पृथ्वी--जसौ जसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ॥

इसके प्रत्येक चरण में १७-१७ वर्ण होते हैं--१ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण १ लघु १ गुरु=१७ वर्ण। इसमें ८-९ पर यति होती है। उदा०--२।६

१०. उपेन्द्रवज्रा--उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ॥

इसके प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु=११ वर्ण। यह त्रिष्टुभ श्रेणी के अन्तर्गत है। पादान्त में यति होती है। उदा०-२।८

११. पुष्पिताग्रा—यह अर्धसमवृत्त है। इसे औपछन्दसिक भी कहते हैं। इसके समपादों में १३ एवं विषमपादों में १२ वर्ण होते हैं--

अयुजि न युगरेफतो यकारो। युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥

इसके समपाद में--१ नगण, १ जगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु=१३ वर्ण तथा विषम पाद में—१ नगण, १ नगण, १ रगण, १ यगण=१२ वर्ण होते हैं। उदा० २।११

१२. शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

इसके प्रत्येक चरण में १९-१९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण १ गुरु=१९ वर्ण। इस छन्द में १२-७ पर यदि होती है। उदा०-४।५

१३ वंशस्थ—इसके प्रत्येक चरण में १२-१२ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण=१२ वर्ण। इसका लक्षण है :—

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ। उदा०—४।२३

१४. दण्डक-तदिह न युगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः। इस छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या समान होती है किन्तु प्रत्येक चरण में २६ से अधिक वर्ण होते हैं तथा प्रारम्भ में २ नगण होते हैं। उदा०—५।६



ग्रंथगत सुभाषित

(श्लोक, श्लोकांश एवं गद्यांश)

प्रथम अंक

१. कन्यापितुर्हि सततं बहुचिन्तनीयम् ॥ २ ॥

२. "विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्याः भवन्ति ।"

३. जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा,
पित्रा तु दत्ता स्वमनोऽभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ ३ ॥

४. प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं,
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः;
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥ ५ ॥

५. "निष्परिहारा व्यापदः ।"

६. "अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः ।"

७. "कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् ।"

८. छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्,
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा,
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

९. मेघान्तर्गतरविवत् प्रभाऽनुमेयः ।

१०. न तत्र कर्त्तव्यमिहास्ति लोके,
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् ।
सर्वे नरेन्द्राः हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥ ९ ॥

११. "सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम् । गुणबाहुल्यं तादात्वमायतिं चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थ. ।"

१२. "न भृत्यदूषणीया राजानः, स्वामिनो हि स्वाम्यमात्यानाम् ।"

१३. "अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।"

१४. "अहो महद्भारो राज्यं नाम ।" कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया,
प्रच्छाद्यौ रागद्वेषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं,
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

द्वितीय अंक

१५. चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

१६. यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ॥ ५ ॥

१७. "कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः ।"

१८. "सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम् ।"

१९. एकः परगृहं गच्छेत् द्वितीयेन तु मंत्रयेत् ।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ॥ १० ॥

तृतीय अंक

२०. "प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति ।"

२१. "भो कष्टं तारुण्यं नाम ।" कुतः,

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं,
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

२२. स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ॥ ७ ॥

२३. "के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् ।"

२४. यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः,
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥ १२ ॥

२५. "अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्नाः भवन्ति ।"

२६. तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति ॥ १५ ॥

चतुर्थ अंक

२७. "स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति ।"

२८. न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकांक्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ॥ १४ ॥

२९. "को विश्रमो नाम विस्रब्धमनोरथानाम् ।"

३०. वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ॥ २२ ॥

पञ्चम अंक

३१. "कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् ।"

३२. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ॥ ५ ॥

३३. "नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति ।"

षष्ठ अंक

३४. "अहो विषमशीला सांवत्सरिका नामात्मनो नक्षत्रविशेषमेव-
चिन्तयन्ति, कर्मगौरवं न जानन्ति ।"

३५. "बलवान् पुत्रस्नेहो नाम ।"

श्लोकानुक्रमणिका

★

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

७



महाकविभासविरचितं

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—

पण्डित वैद्यनाथ झा

काशीस्थ-मुमुक्षुभवन-वेदवेदाङ्गमहाविद्यालय-व्याकरणाध्यापकः

चौखम्बा सरस्वतीभवन, वाराणसी

१९८१

प्रकाशक : चौखम्बा सरस्वतीभवन, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३८

मूल्य : ५-००

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी-२२१००१ (भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES
7



PRATIJÑĀYAUGANDHARĀYAṆA

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

The 'Indukala' Sanskrit and Hindi Commentaries

By

Pt. VAIDYANATH JHA

Chowkhamba Saraswatibhawan
Varanasi–221001
1981

© Chowkhamba Saraswatibhawan
Oriental Publishers & Book-Sellers
K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi–221001
(India)

First Edition
1981
Price Rs. 5–00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi–221001 (India)
Phone : 63145

प्राक्कथन

महाकवि भास की यह कृति प्रतिज्ञायौगन्धरायण जो अपने चमत्कारपूर्ण शैली के माध्यम से सहृदयों को ब्रह्मानन्दस्वादसहोदर की अनुभूति कराने में समर्थ हैं, विद्वानों के समक्ष छात्रों के उपकार की दृष्टि से प्रकाशित हुआ है। आशा है यह नवीन संस्करण अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होगा। यद्यपि इस पुस्तक की अन्य भी टीकाएं उपलब्ध हैं परन्तु कुछ टीकाओं में पाण्डित्यप्रदर्शन प्रधान हो गया है और मूल का भावकथन गौण, तो कुछ टीकाएं भावबोध कराने में बिल्कुल ही असमर्थ हैं। अतः प्रकाशक महोदय के अनुरोध पर मैंने यह नवीन संस्करण प्रस्तुत किया है।

कुछ पुस्तकों की भूमिका में पात्रों के चरित्र-चित्रण करते समय लेखक महोदय तो ऐसे जान पड़ते हैं जैसे कि' 'स्वप्नवासवदत्तम्" के पात्रों का ही चरित्र-चित्रण लिखें हों। यद्यपि पात्र दोनों नाटकों के एक हैं फिर भी कथानक, काल, तथा परिस्थिति इन सबों में बड़ा अन्तर है। अतः मैंने पुस्तकानुरूप ही चरित्र-चित्रण करने का प्रयास किया है।

पूज्य गुरुचरण पं० श्री कीर्त्यानन्द झा जी (न्याय प्रवक्ता का० हि० वि० वि०) तथा पं० श्री रतिनाथ झा जी (दर्शन विभागाध्यक्ष का० हि० वि० वि०) का आभार व्यक्त मैं कर सकूं ऐसा कोई शब्द मेरे पास नहीं है फिर भी प्रथा का निर्वाह मात्र कर रहा हूं सच्ची कृतज्ञता तो हृदय से होती है। आशा है पूज्य गुरुचरणों का आशीर्वाद इसी प्रकार मिलता रहेगा और मैं इसी प्रकार सरस्वती की सेवा करता रहूंगा।

अन्त में प्रकाशक महोदय का भी आभारी हूँ जिनके सदुत्साहपूर्ण प्रेरणा के कारण ही मैं सरस्वती की इस उपासना में लगा हुआ हूँ।

मुद्रण की असावधानी या मेरे मतिभ्रम से यदि पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटि रह गयी हो तो सहृदय पाठकगण क्षमा करेंगे।

यत :—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

इति शम्

ग्राम० अलपुरा, पो० रतुपाड़ (ताजपुर)
अनु० झंझारपुर, जि० मधुबनी (बिहार)

प्रस्तावना

कविता कामिनी के हास महाकविभास संस्कृत नाटकों की विकासपरम्परा में देदीप्यमान वह मणि हैं जिनकी कीर्तिकौमुदी का अजस्र प्रकाश काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रहा और सुदूर दक्षिण से लेकर अनन्त उत्तर तक तथा पूरब से लेकर पश्चिम तक चमकता रहा। नाटक को पञ्चम वेद कहलाने का जो सम्मान प्राप्त हुआ और कालिदास ने जो "नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुध्याप्येकं समाराधनम्" कहा उसकी सम्यक् परिपुष्टि भासकृत नाटकों से होती है। नाटक में तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं तो भास का महत्व और भी बढ़ जाता है।

भास का वैशिष्ट्य

संस्कृतके नाटकों में काव्यत्व खास गुण है; और ह्रासोन्मुख काल में तो यह काव्यत्व इतना बढ़ गया कि नाटक अपने स्वत्व को भी खो बैठे। संस्कृत नाटकों का मुख्य लक्ष्य रसानुभूति उत्पन्न करना रहा है न कि चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व बताना। और यही कारण हैं कि संस्कृत नाटकों में काव्यत्व अधिक पाया जाता है।

आधुनिक जिन नाटककारों पर "इब्सन" अथवा "गाल्सवर्दी" का प्रभाव पड़ा है वे यथार्थ चित्रण के इतने पक्षपाती दिखाई पड़ते हैं कि उनकी पद्धति ही प्राचीन नाटकों की पद्धति से अलग हो गयी है। नाटककार अपनी कृति के माध्यम से सफल तभी माना जायगा जब कि वह "नाटक में काव्यत्व का समावेश करता हुआ भी नाटक के स्वाभाविक गुण, जैसे—निबध्य घटनाचक्र की प्रवाहमयता, नाटकीय कौतूहल, दृश्यों का प्राकृतिक विनियोग और दर्शक-गत प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखे। इस माने में कालिदास जैसे खरे उतरते हैं संस्कृत के अन्य कवि नहीं उतरते दीख पड़ते हैं। भवभूति केवल कविता के प्रवाह में बह जाते हैं।

भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बनकर आता है। भास की कविता में ऐसा नहीं जान पड़ता है कि कविने इसे बहुत खींच-तान कर जोड़ा हो। वह ऊपर से जुड़ी नहीं प्रतीत होती। भास के कवित्व पूर्ण पद्य घटनाचक्र को प्रवाहित करते जान पड़ते हैं। भास के नाटकों की प्रभावोत्पादकता उसके सरल भाषा से पूर्ण एवं असमाश्रित या अल्प समाश्रित पात्रों का संवाद और प्रसंगानुकूल भावों से पूर्ण पद्य से स्वभावत: ही अनूठी है।

भास का खास लक्ष्य नाटकीय योजना था। भास की शैली प्रसाद गुण युक्त है, किन्तु वीर रस के वर्णनों में वह ओज का भी प्रदर्शन करती है। इस प्रकार कवि की दृष्टि से अश्वघोष की अपेक्षा भास हल्के हैं। इनके नाटकों के अध्ययन के पश्चात् यह समझ में आता है कि रामचरित्र से सम्बद्ध नाटकों में (प्रतिमा) में न वह रसवत्ता ही पायी जाती है या न तो पात्रों का उतना प्रभाव पूर्ण- चरित्र चित्रण ही हो पाता है जो एक नाटककार के लिए अपेक्षित है। महाभारत से सम्बद्ध नाटकों को भी मध्यम श्रेणी का इस लिए माना जाता है क्योंकि उनमें वर्णित कथानकों में रचयिता की भावनाएं उदात्त दिखाई पड़ती है एवं घटना-विधान भी रसानुकूल नियोजित किया गया है। उदयन कथा से सम्बद्ध नाटकों को हम कवि की सर्वोत्कृष्ट रचनाएं कह सकते हैं क्योंकि इन नाटकों में वर्णित कथाओं में प्रदर्शित नाटकीय संविधान के द्वारा कवि पूर्ण रूपेण सफल दिखाई देता है। प्रणय जैसे विस्तृत विषय का अवलम्ब लेकर कवि ने इन नाटकों में मानव मन का बहुत ही सजीव सरस एवं सत्य चित्रण किया है। भास ने इन नाटकों में सामाजिक एवं पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह बड़े मनोरम ढंग से किया है।

नाट्यकला, जिस समय बाल्य अवस्था में पालने में झूल रही थी, भास ने अपनी रचना के माध्यम से उस शिशु को पृथ्वी पर चलाने का बहुत ही साहस एवं महत्व पूर्ण प्रयास किया। इस कारण ही उनके नाटकों में "द्रुत गति वाले नाटकीय निर्देश" (निष्क्रम्य प्रविशति) कथानक सूत्रों में यत्र-कुत्र अन्विति का ध्यान न देने जैसे दोष दिखाई पड़ते हैं।

इन बहुश: त्रुटियों के रहने पर भी भास की कला महान् हैं। उसमें अपेक्षित प्रौढता के न रहने पर भी भाव-गांभीर्य और रमणीयता है।

भास की शैली—

अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं से पूर्ण शैली के कारण भास की अभिव्यञ्जना बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इनके नाटकों में प्रसाद और ओज के साथ ही माधुर्य की संयोजना इतने सुन्दर ढंग से की गयी है जो सहृदयों को अनायासा ही मुग्ध कर देती है। इनकी शैली अलंकारों पर ही नहीं अपितु भावनाओं को स्पष्ट कर अपने को कृत-कृत्य मानती है। परिणाम स्वरूप कृत्रिमता का स्थान स्वाभाविकता ने ले लिया है। भास ने उन अलंकारों का प्रयोग किया है जो बहुत ही सरलता से समझ में आ जाते हैं, अतः वे स्वाभाविक से लगते हैं, और उनसे वस्तु चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भास को भावबोधन की एक अपूर्व सफलता मिली है। इसका कारण उनकी सरल शैली और अद्भुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही है। इनके नाटकों में दूरारूढ़ कल्पना का अभाव, समासाल्पता एवं प्रवाहमयता को देखकर कुछ विद्वानों ने उन पर रामायण का प्रभाव माना है जो उचित भी प्रतीत होता है। भास ने लोकोक्तियों के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है। जैसे—

"आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते (मध्यम व्यायोग)
दृष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने (,, ,,)
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः (स्वप्नवास०)
इत्यादि।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण का सारांश

कोई भी कलाकार अपनी रचना के प्रसार के लिए एक छोटा सा आधार पहले ग्रहण करता है। पश्चात् अपनी प्रतिभा, तर्क और कल्पना के द्वारा उसी का विस्तार करता है। प्रस्तुत नाटक में भी भास ने "अवन्ती देश में हरवृद्ध के होठों पर रहनेवाली उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कहानी को आधार माना है और उसी प्रेम कहानी को अपनी अद्भुत प्रतिभा से ऐसा रोचक रूप दिया जो नाटक बनकर मनोरञ्जन के साथ ही जनशिक्षा का भी एक सुगम उपाय हो गया।

जैसा कि पहले ही कह चुका हूँ इस नाटक में निबद्ध कथा-वस्तु लोककथा पर आश्रित है।

प्रथम अङ्क—इसमें मन्त्री यौगन्धरायण सालक के साथ वार्तालाप करते हुए रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है। वार्तालाप के प्रसंग में वह कहता है कि कल प्रातः वत्सराज उदयन वेणुवन के पास विद्यमान नागवन के लिए प्रस्थान करेंगे, और उन्हें वन्दी वनाने के लिए प्रद्योत प्रयास करेगा। अतः इसकी सूचना उनको देने के लिए सालक को पत्र एवं रक्षासूत्र के साथ उनके पास भेजना चाहता है। यौगन्धरायण राजमाता के पास से रक्षासूत्र माँगता है। उसी समय उदयन का अंगरक्षक हंसक वहाँ उपस्थित होता है और "उदयन वन्दी वना लिए गये" इस खवर को सुनाता है। वह कहता है कि स्वामी किसी को सूचना दिये विना ही नागवन को प्रस्थान किये।

रुमण्वान् ने यद्यपि उन्हें बहुत रोका पर उसे वे अपनी शपथ देकर चले गये। वहाँ जाने पर उन्होंने एक नीला हाथी देखा, और अपनी वीणा के साथ जव उसके पास पहुंचे तो उस लोहे के बने हाथी के भीतर से प्रद्योत की सेनाने निकल कर उन्हें घेर लिया। स्वामीने इस छल को समझकर अपनी सीमित सेना के साथ शत्रुओं का सामना सायंकाल तक किया। यद्यपि स्वामी ने बड़ी वीरतापूर्वक शत्रुओं का सामना किया और अनेक शत्रुओं को यमपथ का पथिक बनाया परन्तु सायंकाल प्रहार से जर्जर तथा थका हुआ स्वामी का घोड़ा वेहोश हो गया और स्वामी भी वेहोश हो गये। तव प्रद्योत का मन्त्री शालङ्कायन पालकी पर विठाकर उन्हें उज्जयिनी ले गया। ये सव वृत्तान्त कहकर हंसक चुप हो जाता हैं और कहता है कि "स्वामी ने मुझसे कहा कि मैं यौगन्धरायण से मिलना चाहता हूँ।" इस सारी कथा को सुनकर यौगन्धरायण आवेश में आ जाता है और प्रतिज्ञा करता है कि "यदि राहुग्रस्त चन्द्रमा की तरह शत्रुओं द्वारा पकड़े गये स्वामी उदयन को मैं मुक्त न करवा दूं तो मैं यौगन्धरायण नहीं। यौगन्धरायण की इसी प्रतिज्ञा के कारण इस नाटक का नाम भी "प्रतिज्ञायौगन्धरायण" कवि ने रखा।

द्वितीय अङ्क—इसमें महासेन प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी का वर्णन है। प्रद्योत की लड़की वासवदत्ता से विवाह करने के लिए मगध, काशी, वंग, मिथिला तथा सूरसेन देश के राजाओं के निमन्त्रण आ चुके हैं, पर कन्या किसे दी जाय यह निश्चय नहीं हो पा रहा है। इस विचार विनिमय के

अभिनय में प्रद्योत राजमहिषी और कांचुकीय दिखाई पड़ते हैं। बात-चीत चल ही रही थी कि सहसा कांचुकीय वत्सराज के बन्दी बना लिए जाने की सूचना देता है। पहले तो प्रद्योत विश्वास नहीं करता परन्तु कांचुकीय के विश्वास दिलाने पर वह मान जाता है। प्रद्योत उदयन को भीतर बुला लेता है। राजमहिषी उदयन को देखकर उसी को वासवदत्ता के अनुरूप करार देती हैं।

तृतीय अङ्क—इसमें प्रद्योत की राजधानी में वत्सराज का विदूषक परिवर्तित वेष में दिखाई पड़ता है। वत्सराजके चर तथा अमात्यगण भी वेषपरिवर्तन कर वहाँ आ गये हैं। यौगन्धरायण ने उन्मत्तक का तथा रुमण्वान् ने श्रमणक का वेष बनाया है। सांकेतिक भाषा में विदूषक तथा उन्मत्तक बातचीत करते हैं उसी समय श्रमणक वेष में रुमण्वान् भी वहाँ आ जाता है। बातचीत के दौरान सायंकाल हो जाता है तब वे लोग अग्निगृह में प्रवेश करते हैं। वहीं विदूषक कहता है कि मैं उदयन से मिला था हमलोगों ने तो उन्हें मुक्त करने का सारा प्रबन्ध कर लिया था परन्तु उन्हें तो वासवदत्ता मिल गयी है और वे उसे लेकर चलने को कहते हैं। रुमण्वान् भी वही बात कहता है। यौगन्धरायण राजा की इस कामुकता को असामयिक कहकर हास्यास्पद कहता है। फिर भी राजा की इच्छा का अनुकरण तो हम लोगों को करना ही है अतः यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि जिस तरह अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया था उसी तरह उदयन द्वारा यदि वासवदत्ता का अपहरण न करवाया तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। यदि घोषवती वीणा, नीलगिरि हाथी, वासवदत्ता तथा उदयन को कौशाम्बी न पहुँचा दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इसी समय दिन चढ़ आता है सब लोग तितर-बितर हो जाते हैं।

चतुर्थ अंक—इसमें गात्रसेवक को ढूँढते हुए भट प्रवेश करता है। गात्रसेवक भद्रवती हस्ती का संरक्षक हैं जो वास्तव में वत्सराज का चर हैं। भट हाथी का पता न पाकर, गात्रसेवक को ढूँढता है। गात्रसेवक झूठ मूठ का मद्यप (शराबी) होने का अभिनय करता है। वह भट को बताता है कि उसने शराब के लिए हाथी के अंकुश घण्टा आदि समस्त पदार्थों को शौण्डिक के यहाँ गिरवी रख छोड़ा है। इसी समय कोलाहल बढ़ता है और शोर में पता लगता

है कि वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग गया। वत्सराज के भाग जाने पर युद्ध प्रारम्भ होता है जिसमें यौगन्धरायण बन्दी बना लिया जाता है। यौगन्धरायण को अपने पकड़े जाने का तनिक भी खेद नहीं है, क्योंकि उसने अपनी दोनों प्रतिज्ञा पूरी कर ली है। बन्दी बनाकर यौगन्धरायण शस्त्रागार में रखा जाता है जहाँ पर उसकी भेंट भरतरोहक से होती है। भरतरोहक बहुत से आक्षेप करता है परन्तु उन सभी आक्षेपों का मुंहतोड़ उत्तर यौगन्धरायण दे देता है। भरतरोहक यौगन्धरायण को भृङ्गार नामक स्वर्ण पात्र देता है, पहले तो यौगन्धरायण उसे अपना अपमान समझकर नहीं लेता है, परन्तु पीछे जब उसे पता चलता है कि प्रद्योत ने वत्सराज द्वारा किये गये वासवदत्ता के अपहरण का अनुमोदन कर चित्रफलक में उन दोनों का विवाह कर दिया है और यह (भृङ्गार) उसी का उपहार है तो उसे सम्मान जानकर स्वीकार करता है। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण

यों तो प्रस्तुत नाटक में बहुत से पात्र हैं परन्तु सशक्त भूमिका चार की ही प्रतीत होती है। अतः उन चार पात्रों का ही चरित्र चित्रण नीचे किया जा रहा है। उन चारों में प्रथम उदयन है।

उदयन—उदयन वत्सदेश का राजा और कलाकारों का सरताज है। वह अपने रूप का शानी नहीं रखता; गुण तो उसके विश्वप्रसिद्ध ही हैं। उसका जन्म भी प्रख्यात भरतवंश में हुआ है। इस प्रकार जन्म, धन, रूप और गुणों का एकत्रीकरण उदयन में हैं तभी तो महासेन की स्त्री भी उसी को वासवदत्ता के योग्य कहती है। उसके वीणा बजाने में वह जादू है जो सहृदय मानव तो क्या उन्मत्त गज को भी वशीभूत कर लेता है। उसी गुण के ऊपर विश्वास करके ही तो वह प्रद्योत द्वारा छला जाता है। उसे विश्वास है कि मैं अकेला भी इस दिखाई पड़नेवाले नीले हाथी को वश में कर लूंगा, अतः वह रूमण्वान् को शपथ देकर रोक देता है और स्वयं अकेले जाता है और पकड़ा जाता है। उसके वीणा की प्रसिद्धि देश देशान्तर में है। जिसके कारण बन्दी अवस्था में भी प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता को वीणा सिखाने का भार उस पर पड़ता है।

उदयन धैर्य और पराक्रम में भी श्लाघनीय है। क्योंकि जब वह कृत्रिम गज को पकड़ने के प्रयास में प्रद्योत की सेना को देखता है तो जरा सा भी विचलित नहीं होता, यह है उसका धैर्य वह अपनी छोटी सी सेना लेकर युद्ध करता है न कि आत्मसमर्पण, यह है उसका पराक्रम। वह कोई साधारण योद्धा भी नहीं क्योंकि अकेले उसने अनेकों योद्धाओं को युद्ध में यमपुर भेजा है। इसप्रकार वह धैर्य और पराक्रम की इस परीक्षा में सफल होता है।

वह जहाँ भी जाता अपने रूप और गुण की धाक जमा ही लेता है। जिससे कि वह वन्दी होकर भी मन से वन्दी नहीं होता। वह पूरा राजसी ठाठ बाट से समय विताता है। यौगन्धरायण को भले ही उदयन की यह विलासिता असामयिक लगे परन्तु वह तो मन से स्वतन्त्र है। उसके रूप जाल में तो वह चिड़िया फंसी है जिसके कारण प्रद्योत तो क्या उसका सारा राज्य उसके वश में हो सकता है; फिर वह अपने को वन्दी क्यों माने ? अतएव विदूषक जब यौगन्धरायण के सारे प्रबन्ध जो कि उसके मुक्त करने के लिए किए गये हैं सुनाता है तो वह कहता है कि "मैं तो वासवदत्ता को लेकर ही जाऊंगा।" और अन्ततो गत्वा वह अपने आत्मविश्वास एवं यौगन्धरायण के बुद्धि-कौशल के कारण उसमें सफल भी हो जाता है।

यौगन्धरायण—यौगन्धरायण उदयन का अमात्य है। यह बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति तथा नीति-कौशल का मूर्तिमान रूप है। जिसकी बुद्धि के पराक्रम पर ही तो विश्वास करके उदयन वन्दी होकर भी विलासितापूर्वक दिवस व्यतीत करता है। उसे (राजा को) विश्वास है कि जब तक यौगन्धरायण है मेरा कोई बालबाँका नहीं कर सकता। और यौगन्धरायण तदनुरूप कार्य-कर्ता भी है। क्योंकि कलाकार और विलासी राजा का इस प्रकार संरक्षण कि पराधीन होने पर भी कोई उसका बालबाँका नहीं कर सकता उसकी सफलता का प्रतीक है। यद्यपि पहले तो वह असफल सा हो जाता है क्योंकि जबतक वह राजा को सावधान करे तब तक राजा वन्दी बना लिया जाता है, परन्तु लगन का इतना पक्का है कि इस अपमान का वह ऐसा बदला लेता है कि शत्रुओं के मन्त्रियों का शिर सदा के लिए नीचा हो जाता है। यौगन्धरायण आत्मविश्वास का अप्रतिम उदाहरण है—तभी तो वह प्रतिज्ञा करता है कि

"यदि मैं उदयन को मुक्त न किया तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं"। यह उसके महान आत्मविश्वास का अनोखा उदाहरण है। वासवदत्ता का अपहरण कोई साधारण काम नहीं, वह भी प्रद्योत के संरक्षण में जिनको लोग महासेन कहते हैं। फिर भी अपने आत्मविश्वास के कारण वह सफल हो जाता है। वह नीतिज्ञ इतना है कि अपने गुप्तचरों से सारे उज्जयिनी को भर कर प्रद्योत की सारी कार्यवाही का पता रखता है। स्वामिभक्त इतना है कि वह वत्सराज को मुक्त कराने में स्वयं को दाँव पर रख देता है। वह वेश बदलकर विपत्तियों का सामना करता है और स्वयं को विपत्ति में डाल देता है। उदयन को भागने का मौका मिले इसलिए वह अपना परिचय देकर युद्ध ठान देता है जिससे कि सेना का ध्यान यौगन्धरायण की ओर घूम जाता है और उधर उदयन भाग निकलता है। इस प्रकार बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति और नीति-कौशल का एकत्र समवाय यदि है तो प्रस्तुत नाटक में यौगन्धरायण है।

प्रद्योत—प्रद्योत उज्जयिनी के राजा हैं। इनके पराक्रम की सूचना इनकी उपाधि "महासेन" ही देती है। सर्वत्र इनका आधिपत्य है, इसमें यदि कोई बाधक हो तो पराक्रमी राजा के लिए चिढ़ होना स्वाभाविक है। एवञ्च उदयन प्रद्योत के आधिपत्य को नहीं मानते इसलिए उनसे इसको चिढ़ है। फिर भी प्रद्योत गुणग्राही ऐसा है कि जब रानी, "वासवदत्ता के अनुरूप उदयन ही है" ऐसा कहती है तो मन ही मन उसके गुण और रूप की प्रसंशा करता हुआ कहता है कि—"वर के सर्वथा उपयुक्त होने पर भी वत्सराज दर्प से भरा है।" उसके इस कथन में स्पष्ट रूप से उसकी गुणग्राहकता झलकती है।

प्रद्योत उदार इतने हैं कि वत्सराज के बन्दी बना लिये जाने पर भी वे आदेश देते हैं कि "वत्सराज के साथ राजकुमार जैसा ही व्यवहार किया जाय"। यहीं पर उनका वत्सराज के प्रति स्नेह झलक जाता है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि इनका यह सारा प्रपञ्च वासवदत्ता का सम्बन्ध उदयन के साथ हो जाए इसीलिए है। तभी तो वासवदत्ता को वीणा सीखने के लिए उदयन के पास भेजते हैं, जबकि वह जानते हैं कि इन दोनों की उम्र किशोर है। इनका एकान्त मिलन किसी दूसरी कथा को जन्म दे सकता है। फिर भी वह ऐसा करते हैं तभी तो आगे चलकर जब उदयन वासवदत्ता

को लेकर भाग जाता है उस समय भी सबका समाधान देकर इस सम्बन्ध का अनुमोदन कर चित्रफलक में उन दोनों का विवाह कर देता हैं।

रुमण्वान् तथा विदूषक—ये दोनों स्वामि-भक्त हैं। ये लोग भी दुःख और सुख में सदैव राजा का साथ देते हैं। विदूपक में धैर्य की मात्रा कम है क्योंकि अग्निगृह में मन्त्रणा करते समय "राजा वासवदत्ता का अपहरण करना चाहते हैं इस बात को सुनाकर वह उदास हो जाता है और वह वापस चले जाने का प्रस्ताव रखता है" उसका धैर्य डगमगा जाता है, परन्तु यौगन्धरायण उसे धैर्य दिलाता है। वैसे इन दोनों का चरित्र प्रस्तुत नाटक में उभर कर सामने नहीं आया है। क्योंकि यौगन्धरायण के चरित्र के सामने इन लोगों का चरित्र असफल-सा प्रतीत होता है।

प्रतिज्ञा यौगन्धरायरा का समालोचनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत नाटक भास के उस समय की रचना है जब कि उनकी काव्य-कला प्रौढ़ा हो चुकी थी। अतः प्रतिज्ञायौगन्धरायण महाकवि के सफल नाटकों में से एक है। इस नाटक में चाहे कथानक के विन्यास को लीजिए या पात्रों का चरित्राङ्कन; पात्रों का संवाद सुनिये या प्रभावान्विति देखिये सब कुछ उपर्युपरि है। कथावस्तु का विन्यास इस क्रम से हो रहा है कि जिससे एक घटना के बाद दूसरी घटना इस त्वरित गति से बढ़ती जाती है जैसे नृत्यकला में कुशल नर्तकी के कदम। कथा भाग को त्वरित गति से प्रदर्शित करने के लिए सूच्यांश की अधिकता इस नाटक में थोड़ा खटकती हैं। वैसे उदयन के बन्दी बनाये जाने का वृत्तान्त तथा वासवदत्ता-हरण के वृत्तान्त के प्रसंग में पात्रों के संवाद बड़े ही रोचक तथा महत्त्व पूर्ण भी है फिर भी वृत्तान्त के लम्बे होने के कारण दर्शकों को ऊबाने वाले से प्रतीत होते हैं।

भास की यह अपनी अलग विशेषता है कि प्रसङ्गानुकूल वह ऐसे संवादों को जड़ देता है जिससे कि दर्शकों के सामने एक नया वातावरण उपस्थित हो जाता है। भास की विशेपता का अनोखा उदाहरण तो यह है कि प्रस्तुत नाटक में उदयन को रंगमंच पर एक वार भी न दिखाकर उसे कथानक में पिरोये हुए हैं।

जब प्रद्योत अपनी रानी से वासवदत्ता के लिए अनेक देश के राजाओं का नाम बताकर पूछते हैं कि—वासवदत्ता को किसे दिया जाये? ठीक उसी समय बाहर से आकर काञ्चुकीय बीच में ही "वत्सराज" ऐसा कहता है। काञ्चुकीय का तात्पर्य भले ही "वत्सराज बन्दी बना लिए गये यह बताना हो" परन्तु उस समय दर्शकों को तो यही प्रतीत होता है कि काञ्चुकीय वत्सराज को उपयुक्त वर बता रहा है।

मानवीय मनोविकारों का भी बड़ा सजीव वर्णन इस नाटक में दीख पड़ता है। वत्सराज के बन्दी बना लिये जाने पर अपनी विफलता पर यौगन्धरायण जहाँ खीझता हुआ दिखाई पड़ता है वहीं अपने आत्म-विश्वास का परिचय अपनी प्रतिज्ञा द्वारा देता हुआ भी दिखाई देता है।

कन्यादान के सम्बन्ध में माताओं की मनःस्थिति का प्रद्योत द्वारा कथन मनोविकारों के चित्रण का अनूठा उदाहरण है। प्रद्योत कहता है—

"अदत्तेत्यागता चिन्ता दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः॥" २।७॥

तात्पर्य यह है कि "लड़की का विवाह यदि नहीं हुआ तो चिन्ता यदि हो गया तो (वियोग की सम्भावना से) मन दुखित होता है। इस प्रकार धर्म और स्नेह के बीच फँसी माताएं हमेशा दुःखी ही रहती हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी प्रस्तुत नाटक में महाकवि ने पात्रों के चरित्रों को बड़े ही आकर्षक ढंग से सजाया है। जहाँ उदयन कलाप्रेमी, रूपवान्, विलासी तथा शौर्य के प्रतीक हैं वहीं यौगन्धरायण नीतिज्ञ और कर्त्तव्यपरायण के रूप में सामने आता है।

काव्यकला की दृष्टि से भी यह नाटक बड़ा खरा शाबित हुआ है। इस नाटक में राजनीति और कूटनीति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है। इस नाटक का मेरुदण्ड परवञ्चना ही है।

इस नाटक का निम्नोक्त पद्य स्वामिभक्ति का मनोरम उदाहरण है।

नवंशरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥ ४।२॥

भास का समय

संस्कृत के अन्य प्राचीन महाकवियों की तरह "भास" ने अपनी रचनाओं में न तो अपने समय की चर्चा की या न अपनी स्थिति की। पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों का मत इनके विषय में वैसे ही परस्पर विरुद्ध हैं जैसे कवि कुल गुरु कालिदास के विषय में। उन मत मतान्तरों को तीन भाग में विभक्त कर उनकी यथार्थता पर विचार यदि किया जाय तो सुविधा रहेगी।

प्रथम मत—

महमहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री, दीक्षितार आदि के मतानुसार महा कवि भास पाणिनि और कौटिल्य से भी प्राचीन हैं। कौटिल्य ने युद्धभूमिमें सेनाओं के उत्साहवर्द्धन के लिए जिन जिन श्लोकों को प्रस्तुत किया है उनमें—

"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृतेन युध्येत्।"

यह श्लोक भास रचित "प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण" में भी मिलता है। भास विरचित "प्रतिमा-नाटक" में भी पण्डितमूर्धन्य रावण ने "बार्हस्पत्यस्यार्थम् अधीये" कहकर अपने को बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का ज्ञाता कहा है। भास का कौटिल्य से पूर्ववर्तित्व इससे भी सिद्ध होता है क्योंकि भास के समय में कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र न बना हो।

भास की रचनाओं में पाणिनि प्रोक्त व्याकरण नियम की अव्यवस्था बहुशः पायी जाती है। यदि भास के समय पाणिनि होते या उनसे पूर्व हो चुके होते तो भास जैसे महाकवि क्या उक्त व्याकरण के नियम का उल्लंघन कर सकते थे। अतः भास का समय पाणिनि से पूर्व मानना कोई अनुचित न होगा।

शूद्रक कृत "मृच्छकटिक" नाटक पर भास रचित "दरिद्र-चारुदत्त" का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है, एवं विन्सेन्ट स्मिथ के कथनानुसार शूद्रक का शासन १२० से १९७ ई० पू० तक था। अतः भास ने "दरिद्र-चारुदत्त" की रचना यथा संभव ई० पू० चौथी या पाँचवीं शताब्दी में की होगी।

यद्यपि डा० टी० गणपति शास्त्री ने भास को बुद्ध का पूर्ववर्ती माना है, परन्तु भास के नाटकों में जिन नागवन, वेणुवन, राजगृह और पाटलिपुत्र का वर्णन

मिलता है वे सब संभव हैं बुद्ध के समय ही प्रसिद्धि प्राप्त किये होंगे। अतः बुद्ध के पश्चात् ही भास का समय माना जा सकता है।

द्वितीय मत (२-३ ई० पू०)—मैंने पहले ही इस बात की चर्चा की है कि कालिदास ने अपने नाटक में भास की प्रशंसा की है। चूंकि कालिदास का समय डा० कीथ के अनुसार चौथी शताब्दी माना गया है, अतः भास का समय ३५० ई० तक माना जा सकता है। अथ च, अश्वघोष के नाटकों में भास की चर्चा बिल्कुल नहीं है अपितु "बुद्धचरित" के एक श्लोक का स्पष्ट प्रभाव इनके "प्रतिज्ञा यौगन्धरायण" में मिलता है। अतः भास को अश्वघोष (द्वितीय शताब्दी) के बाद एवं कालिदास (चतुर्थ या पंचम शताब्दी) के बाद मानना चाहिए।

तीसरा मत—

कुछ लोगोंने स्वप्न-वासवदत्तादि १३ नाटकों के कर्ता भास को न मानकर किसी केरल प्रदेशीय कवि को माना है और उसके मतानुसार उस कवि का समय सातवीं शताब्दी है।

इस प्रकार पाश्चात्य ऐतिहासिक गवेषकों के मतों के अध्ययन कर लेने के पश्चात् हम जिस-किसी भी प्रकार इसी निश्चय पर पहुँच पायेंगे कि "भास" मौर्य काल के पूर्व इस लिये विद्यमान थे कि इन्होंने भी तात्कालिक कवि की तरह अपने नाटकों में अपना नामोल्लेख नहीं किया है। एवञ्च इन्हें कौटिल्य (४ थीं शताब्दी ई० पू०) के पश्चात् नहीं माना जा सकता।

नाटक का नामकरण

जैसा कि पहले ही कह आया हूँ इस नाटक का नामकरण यौगन्धरायण द्वारा की गयी प्रतिज्ञाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रस्तुत नाटक में यौगन्धरायण दो बार प्रतिज्ञा करता है। प्रथम प्रतिज्ञा तो वह तब करता है जब वह अपने प्रयास में विफल होकर अपने आप पर खीज जाता है। क्योंकि जब तक प्रद्योत के छल प्रभाव की सूचना वह राजा को दे तब तक वह बन्दी बना लिया जाता है।

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः॥ १।१६ ॥

और दूसरी प्रतिज्ञा वह राजा की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए स्वामिभक्ति के आवेश में करता है—

सुभद्रामिव गाण्डिवी नागः पद्मलतामिव ।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ३।८ ॥
यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम् ।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥ ३।९ ॥

इन्हीं दोनों प्रतिज्ञाओं के आधार पर इसका नाम प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण रखा गया। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि नाम की यही विशेषता है जो अपने छोटे से कलेवर के द्वारा भीतर की सारी बातों का ज्ञान करा दें।

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रतिमा

इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें राम-वनवास से लेकर रावण-वध पर्यन्त कथा वर्णित हैं। भरत कृत नाट्यशास्त्र नियम के विरुद्ध दशरथ की मृत्यु प्रस्तुत नाटक में रंग मंचपर ही अभिनीत की गयी है। अयोध्या के मृत राजाओं की प्रतिमाएं देवकुल में स्थापित की जाती थी अतः उक्त नाटक का नाम "प्रतिमा" रखा गया।

(२) अभिषेक

छः अङ्कों के इस नाटक में किष्किन्धा, सुन्दर तथा युद्ध काण्ड की रामायण-कथा वर्णित है।

(३) अविमारक

इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी के प्रेम की कहानी है। अविमारक का संकेत कामसूत्र में मिलता है। इस नाटक में प्रेम का सुन्दर एवं सरस चित्रण है।

(४) बालचरित

इसमें श्रीकृष्ण जन्म से लेकर कंसवध तक की कथाएं वर्णित हैं। इसमें पाँच अङ्क हैं। कृष्ण के बालचरित का बहुत ही सजीव वर्णन प्रस्तुत नाटक में है।

(५) पञ्चरात्र

इस नाटक में कवि ने महाभारत की एक कथा का चित्रण बिल्कुल अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर नवीन ढंग से किया है। दुर्योधन यज्ञ के समय आचार्य द्रोण को दान देने की प्रतिज्ञा करता है। उस दान में द्रोण पाण्डवों को आधा राज्य दे दो ये दान माँग लेते हैं। शकुनि की सलाह से दुर्योधन स्वीकृति तो देता है परन्तु उसमें एक शर्त लगा देता है कि यदि पाँच रातों में इस बात की जानकारी पाण्डवों को लग जाए तव हम उन्हें आधा राज्य दे देंगे। जब कि पाण्डव लोग विराट नगर में थे। द्रोणाचार्य के प्रयास से पाण्डवों को इस बात का पता चल जाता है और दुर्योधन उन्हें आधा राज्य दे देता है। यही कथानक इस नाटक में बड़े ही मनोरम ढङ्ग से वर्णित किया गया है।

(६) मध्यमव्यायोग

इस नाटक में मध्यम पाण्डव (भीम) का मध्यम ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और हिडिम्बा से मिलन यह अन्त में वर्णित है। इसमें पुत्र का पिता को न पहचानते हुए धृष्टतापूर्वक माँ के सम्मुख लाकर उपस्थित करने का वर्णन बड़े ही सरस एवं कौतूहलपूर्ण ढङ्ग से वर्णित है।

(७) दूतवाक्य

इसमें महाभारत के युद्ध के पहले श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर कौरवों के पास जावे हैं यह कथा वर्णित है। कृष्ण और दुर्योधन के कथोपकथन में नाटकीयता का बड़ा ही महत्वपूर्ण दिग्दर्शन प्रस्तुत नाटक में किया गया है।

(८) दूतघटोत्कच

इसमें अभिमन्यु के मृत्यु से दुःखसंतप्त, क्रुद्ध अर्जुन की प्रतिज्ञा कर लेने के बाद घटोत्कच पाण्डवों के पक्ष से दूत बनकर दुर्योधन के पास उसके विनाश की सूचना देने जाता है। उद्धत घटोत्कच एवं दुर्योधन के वार्तालाप का चित्रण इसमें वहुत ही कौतूहल पूर्ण है।

(९) कर्णभार

इस एकांकी नाटक में खिन्न मना कर्ण प्रवेश करता हुआ शल्य से अपने अध्ययन काल की बातों को बताता है कि परशुराम से मैंने किस प्रकार छल

से शस्त्र विद्या सीखी, एवं 'यह क्षत्रिय है' ऐसा जानकर उन्होंने कैसे भीषण शाप मुझे दे डाला इत्यादि। अन्त में ब्राह्मण वेष में इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल की याचना करते हैं, शल्य के मना करने पर भी यश को स्थायी बताते हुए कर्ण उन्हें कवच-कुण्डल दे देता है। इसी कथा का अपने ढङ्ग से कवि वर्णन करता है।

(१०) स्वप्नवासवदत्तम्

यह कौशांबी के राजा उदयन की कथा पर आधारित है। इस नाटक में प्रिया में आसक्त राजा उदयन के राज-काज से बिल्कुल विमुख हो जानेपर शत्रुओं द्वारा अधिकृत राज्य भाग के अपहरण हो जाने पर उसका मन्त्री यौगन्धरायण (वासवदत्ता की अनुमति से) वासवदत्ता के लावणक वन में जल जाने की झूठी खबर प्रसारित करवा कर, वासवदत्ता को गुप्त वेश में मगधराज की लड़की पद्मावती के पास रख देता है। वासवदत्ता को पद्मावती के पास रखने का कारण था कि ज्योतिषियों ने बताया था कि उदयन का दूसरा विवाह पद्मावती से होगा। इस प्रकार यौगन्धरायण की चाल से मगध नरेश दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है। पद्मावती के समुद्र गृह में सोया हुआ उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है उसी समय वहाँ पर वासवदत्ता भी उपस्थित रहती है। वह स्वप्न आगे चलकर यथार्थ हो जाता है। अन्त में यौगन्धरायण सभी खोया हुआ राज्य मिल जाने पर भेद खोल देता है। इस नाटक में प्रेम का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है।

(११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण

इसमें भी उदयन की ही कथा वर्णित है। इसको हम स्वप्नवासवदत्तम् के पहले का नाटक कह सकते हैं। इसमें उदयन बनावटी लोहे के हाथी के छल से महासेन अवन्तिराज के द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। वहाँ पर इसी अवस्था में वह अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता को वीणा की शिक्षा देने लगता है एवं उसी क्रम में उदयन एवं वासवदत्ता का प्रेम हो जाता है, और वह प्रेम इस स्तर तक बढ़ जाता है कि उदयन, यौगन्धरायण की सहायता से वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है।

(१२) ऊरुभंग

इसमें भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध तथा दुर्योधन के ऊरुभंग की कथा वर्णित है।

(१३) चारुदत्त

इसमें उज्जयिनी के सार्थबाह चारुदत्त और गणिका वसन्त सेना के प्रेम की कथा निवन्धित है। चारुदत्त की कथा का आधार लोक कथा ही जान पड़ती हैं।

ऐसा जान पड़ता है कवि अपनी प्रतिभा से उन सभी क्षेत्र की कथाओं को नाटकीय रूव देना चाहता था जो उस समय लोक कथा के रूप में हो कि वा ऐतिहासिक। जैसे स्वप्नवासवदत्तम् कर्णभारकी कथा जहाँ एक तरफ से ऐतिहासिक आधार पर आधारित है वहीं चारुदत्त और अविमारक की कथा बूढ़ी दादी-नानियों के द्वारा बच्चों के मनोविनोद के लिए कहीं कथा की तरह प्रतीत होती हैं। यह कवि की अनुपम प्रतिभा का द्योतक ही तो है।



नाटक के प्रमुख पात्र

पुरुष पात्र—

यौगन्धरायण (उन्मत्तक) : वत्सराज का मुख्य मन्त्री।

रुमण्वान् (श्रमणक) : वत्सराज का द्वितीय मन्त्री।

विदूषक (वसन्तक) : वत्सराज का मित्र।

हंसक : वत्सराज के निरन्तर समीप में रहनेवाला सेवक।

सालक : यौगन्धरायण का अनुचर एवं सन्देशवाहक।

निर्मुण्डक : यौगन्धरायण का भृत्य।

ब्राह्मण : यौगन्धरायण का मित्र।

भट : महासेन का भृत्य।

गात्रसेवक : भद्रवती नामक हथिनी का, जिस पर वासवदत्ता सवारी करती थी, महावत और (यौगन्धरायण का एक गुप्तचर)।

प्रद्योत (महासेन) : उज्जयिनी का राजा।

भरतरोहक : महासेन का प्रधान मन्त्री।

बादरायण : प्रद्योत (महासेन) के राजमहल का एक विशिष्ट कर्मचारी।

साधारणी : महासेन के सामान्य अनुचर।

स्त्री-पात्र—

अङ्गारवती : महासेन की महिषी।

विजया : वत्सराज की प्रतिहारी।



.॥ श्रीः ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

स्वच्छामुदारमधुरां विलसत्प्रसादां
विश्रामधामपुलिनां विशदार्थधाराम् ।
हंसावगाहनरसां नितरामगाधा
माराधयामि कविभाससरस्वतीं ताम् ॥ १ ॥
श्रोतुर्विमुग्धमतिविभ्रममाहरन्ती-
चित्रां पटीमिव नटीमिव नाटकस्य ॥
वाचं निवेदयति यो विपुलार्थलक्ष्मीं
स्मेराननं तमनिशं गुरुमानतोऽस्मि ॥ २ ॥

तत्र भवान् कविताकामिन्याः हासो महाकविभासः सहृदयहृदयानुरञ्जनाय 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणं' नामकं रूपकं रूपयति नान्द्यन्ते तत इत्यादिना। रूपकस्यास्य नाम 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायणमिति वर्तते तस्य कोऽर्थ इति जिज्ञासायां प्रतिज्ञाभिः प्रतीतो यौगन्धरायणः यस्मिन् नाटके तत् (नाटकम्) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् ।

सूत्रधारः नान्द्यन्ते प्रविशति । तत्र 'नान्दी' इति किम् ? नन्दिः आनन्दः,

---

नान्द्यन्ते—(मङ्गल गान वाद्यरूप नान्दी के समाप्त हो जाने पर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है ।)

सूत्रधारः—

पातु वासवदत्तायो महासेनोऽतिवीर्यवान्।
वत्सराजस्तु नाम्ना सशक्तिर्यौगन्धरायणः ॥ १ ॥

तस्या इयम् "तस्येदम्' इत्यण् नान्दी[1] गीतवाद्यवादनादिरूपा क्रिया, तस्याः अन्ते अवसाने, नान्दीपाठाऽनन्तरमिति भावः। सूत्रधारः[2] अभिनेयपदार्थानुष्ठान-विधानादिक्रियापटुः, ततः तस्मात् (नेपथ्यात्) स्थलात्, प्रविशति प्रवेशङ्करोति रङ्गमञ्चमिति शेषः।

तत्रभवान् महाकविः स्वनिरूप्य रूपकस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिकामनया पदविन्यासचातुर्यपुरस्सरं सूत्रधारद्वारा पात्रोपक्षेपरूपं वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलमाचरति-पातु वासवदत्ताय इति।

अन्वयः—वासवदत्तायो, अतिवीर्यवान्, नाम्ना, वत्सराजः, सशक्तिः, यौगन्धरायणः, महासेनः पातु ॥ १ ॥

व्याख्या—वासवाय = इन्द्राय, दत्तः = प्रदत्तः, अयः = शुभावह विधिर्येन सः, अतिवीर्यवान् = अतिशयबलवान्, नाम्ना = अभिधेयेन, वत्सराजः = बालराजः, वेदे गणपतेरस्य ज्येष्ठभ्रातृत्वमुपपादितमतः कनिष्ठत्वात् बालराज (वत्सराज) इति महाकविनोक्तम्, सशक्तिः = शक्तिसहितः, शक्ति-नामकास्त्रसहित इति भावः, यौगन्धरायणः = युगन्धरस्य मिथुनरूपिणः भगवतः शिवस्य अपत्यं पुमान् 'नडादिभ्यःफक्' इति सूत्रेण फक्, तस्य स्थाने 'आयनेये-नेयी'—इत्यादिना आयनादेशे 'यौगन्धरायणः' = शिवपुत्रः महासेनः = कार्तिकेयः, (वः = नाटकप्रेक्षकान्) पातु = रक्षतु।

पदविन्यासचतुरेण कविनाऽत्र वासवदत्ता—महासेनवत्सराज—यौगन्धराय-णानां प्रधानपात्राणां सूचनया 'मुद्राऽलङ्कारः प्रदर्शितः। तल्लक्षणञ्च 'सूच्या-र्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः' इति। अत्र भावध्वनिः ॥ १ ॥

सूत्रधार—इन्द्र को जिन्होंने ऐश्वर्य दिया है ऐसेमहाबलशाली एवं 'शक्ति' नामक अस्त्र को धारण करने वाले भगवान शिव के पुत्र वत्सराज स्वामिकार्ति-केय आप सबकी (नाटक देखनेवालों की) रक्षा करे ॥ १ ॥

---

१. 'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ सा० द० ६।४

२. नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥ (सा० द०)

(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअह्मि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! गीयतां तावत् किञ्चिद् वस्तु । ततस्तव गीत-प्रसादिते रङ्गे वयमपि प्रकरणमारभामहे । आर्ये ! किमिदं चिन्त्यते । ननु गीयते ?

नटी—अज्ज मए सिविणे ञ्रादिकुलस्स असत्थं विअ दिट्ठं । ता

आर्ये इति नटीं प्रति सूत्रधारस्य समुदाचारः । इतः इह तावत् आगम्यता-मिति तु भावगम्यम् । आर्य ! इति तु सूत्रधारं प्रति नट्याः समुदाचारः । इयमस्मि = इहास्मि इति भावः ।

किञ्चित=स्वेच्छया यत्त्वत्ताभिरुचितम्, तत् वस्तु = गीतम्, गीयताम्=आल-प्यतामिति भावः । ततः = तव गानानन्तरम् गीतप्रसादिते = सङ्गीतसंतोषिते, रङ्गे = अभिनयमञ्चे, वयमपि = सूत्रधारोऽपि आत्मार्थे बहुवचनप्रयोगः । प्रकरणम् = कथासन्दर्भविशेषम् आरभामहे = प्रारम्भं करिष्याम इति भावः । स्वकथनमाकर्ण्यापि मौनां नटीं चिन्ताऽऽकुलितहृदयामिवालक्ष्य सूत्रधारः पुनः कथयति—आर्ये किमिदं चिन्त्यते अयि त्वया किं परिसोच्यते । 'ननु' शब्दः जिज्ञासार्थेगीयते ! किं त्वं गानं करिष्यसि वा न करिष्यसीति भावः ?

मया = नट्या । स्वप्ने = स्वप्नावस्थायाम् । ज्ञातिकुलस्य = पितृ कुलस्य बन्धुवर्गस्य च, अस्वास्थ्यम् = अमङ्गलम्, दृष्टम् = अवलोकितम् । तत् =

(घूमकर नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये ! यहाँ आओ ।

(प्रवेश कर)

नटी—आर्य ! यह मैं हूँ ।

सूत्रधार—आर्ये ! कुछ (जो तुम्हें अच्छा लगे) गाओ । तुम्हारे गाने के पश्चात् तुम्हारे संगीत से जब अभिनयस्थल प्रसन्न हो जायेगा तब हम भी अपना प्रकरण (नाटक का एक भेद) प्रारम्भ करेंगे । आर्ये ! यह क्या सोच रही हो ? क्यों गाओगी या नहीं गाओगी !

नटी—आज स्वप्न में मैंने जाति और कुल वालों को (अपने मायके के

इच्छामि अय्येण कुसलविण्णाणणिमित्तं कञ्चि पुरुसं पेसिदु। [अद्य मया स्वप्ने ज्ञातिकुलस्यास्वास्थ्यमिव दृष्टम्। तदिच्छाम्यार्येण कुशलविज्ञान-निमित्तं कञ्चित् पुरुषं प्रेषयितुम्।]

सूत्रधारः—बाढम्।

पुरुषं प्रेषयिष्यामि व्यक्तमात्महिते क्षमम्।

(नेपथ्ये) सालक ! सज्जस्त्वम् ?

सूत्रधारः—

पुरुषं प्रेषयत्येष यथा यौगन्धरायणः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तौ)

तस्मात्कारणात्। इच्छामि = वाञ्छामि। यत्, कुशलविज्ञाननिमित्तम् = कुशल-वार्ताज्ञातुम्। आर्येण = भवता, कञ्चित् पुरुषम् = कमपि दूतम्। प्रेषयितुम् = गमयितुमिति। बाढम्=स्वीकारेऽर्थे प्रयोगः।

आत्मनः हितम् आत्महितम्, तस्मिन्नात्महिते = स्वकल्याणकार्ये, क्षमम्= योग्यम्। व्यक्तम् = बुद्धिमन्तम्, एवम्भूतं पुरुषमितिशेषः प्रेषयिष्यामि = प्रेषणं करिष्यामि। सालक ! इति कञ्चिद्दूतं प्रति सम्बोधनम्। त्वं सज्जः=सन्नद्धो-भव मत्कार्यानुष्ठानायेति भावः।

यथा, एषः = अयम्, यौगन्धरायणः = उदयनामात्यः, पुरुषम् = दूतम्,

लोगों को) अस्वस्थ देखा है। इसलिए मेरी यह इच्छा है कि आप (उन लोगों का) कुशलवृत्तान्त जानने के लिए किसी आदमी को भेजें।

सूत्रधार—बहुत अच्छा। जो अपने कल्याणकारी कार्य में समर्थ हो, ऐसे किसी विज्ञ पुरुष को भेजूँगा।

(नेपथ्य में) सालक, क्या तुम तैयार हो ?

सूत्रधार—जैसे यौगन्धरायण इस पुरुष को भेज रहा है।

(दोनों चले जाते हैं)

स्थापना[1]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः सालकेन सह)

यौगन्धरायणः—सालक ! सज्जस्त्वम् ?

सालकः—अय्य ! अहइं । [आर्य ! अथ किम् ।]

यौगन्धरायणः—महान् खल्वध्वा गन्तव्यः ।

सालकः—महत्तरेण सिणेहेण अय्यं उवचिट्ठामि । [महत्तरेण स्नेहेनार्यमुपतिष्ठे ।]

प्रेषयति = गमयति, तथाऽहमपि प्रेषयिष्यामीति योज्यम् ॥ २ ॥

अथ किमिति स्वीकारे । महान् = दीर्घः, खल्विति निश्चये अध्वा = पन्थाः, गन्तव्यः = यातव्योऽस्ति तवेत्यर्थः । महत्तरेण = अत्यधिकेन । स्नेहेन = प्रेम्णा । आर्यम् = भवन्तम् । उपतिष्ठे = सेविष्ये । अर्थात् मार्गो यद्यपि

स्थापना

(उसके बाद सालक के साथ यौगन्धरायण प्रवेश करता है)

यौग०—सालक ! क्या तुम तैयार हो ?

सालक—और क्या (अर्थात् मैं तैयार हूँ) ।

यौग०—बहुत दूर जाना होगा ।

सालक—मैं आर्य की सेवा बड़े प्रेम से किया करता हूँ ।

नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापः यत्र कुर्वते ।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

यौगन्धरायणः—हन्त यास्यति बलवान्, यस्य सौहार्दम्। कुतः,

स्निग्धेष्वासज्यं कर्म यद् दुष्करं स्याद्
यो वा विज्ञाता सत्कृतानां गुणानाम्।
क्रीतं सामर्थ्यं यस्य तस्य क्रमेण।
दैवप्रामाण्याद् भ्रश्यते वर्धते वा ॥ ३ ॥

महांस्तथापि तद्गमनजन्यमहाश्रमापेक्षया महत्तरः त्वद्विषयः स्नेहः तथाविधं खेदमपनेष्यतीति विचिन्त्य एव मया कार्यं स्वीकृतमित्यर्थः ॥

अन्वयः—यत्, कर्म, दुष्करम्, तत् स्निग्धेषु, आसज्यम्, यः, सत्कृतानाम्, गुणानाम्, विज्ञाता, क्रमेण, क्रीतम्, यस्य, तस्य, सामर्थ्यम्, दैवप्रामाण्यात्, भ्रश्यते, वर्धते वा ॥ ३ ॥

व्याख्या—यत्, कर्म = कार्यम्, दुष्करम् = कठिनम्, श्रमसाध्यमिति भावः, तत् = कर्म, स्निग्धेषु = स्नेहवत्सु विश्वासपात्रेष्वित्यर्थः, आसज्यम् = निर्वाहयितुं योग्यम्। प्रेमीजन एव नियोक्तुः कार्यं परिश्रममविगणय्य करोति इति भावः। यः पुरुषः, सत्कृतानाम् = प्रशंसितानाम्, गुणानाम् = आसज्यमानकर्मप्रभावाणाम्, विज्ञाता = विशेषज्ञः, भवति, (तस्मिन् दुष्करं कर्म नियोज्यमिति योज्यम्)। क्रमेण = न्यायेन, क्रीतम् = नियोक्त्राधीनम्, यस्य तस्य = स्निग्धगुणज्ञजनयोः मध्ये यस्य कस्यापि, इति भावः, सामर्थ्यम् = कार्यकौशलम्, दैवप्रामाण्यात् = विधिवशात्, भ्रश्यते = फलाच्च्यवते, वर्धते फलेनोपयुज्यते वा ॥ ३ ॥

यौग०—अवश्य जिस बलवान् को प्रेम है वह जाएगा, क्योंकि—

जो कार्य दुष्कर हो उसे प्रेमीजन के ऊपर छोड़ देना चाहिए, अथवा जो अच्छे गुणों को जानने वाला हो उसी को ऐसा कार्य सौंप देना चाहिए। न्यायपूर्वक अपने अधीन किये हुए इन दोनों में से किसी का भी कार्यसामर्थ्य दैववश ही निष्फल होता है या सफल होता है ॥ ३ ॥

अथ वेणुवनाश्रितेषु गहनेषु नागवनं श्वः प्रयाता स्वामी प्रागेव सम्भावयितव्यः।

सालकः—अय्य ! लेहो खु मं ओयव्भइ, जहि आअत्तं कय्यसरीरं। [आर्य ! लेखः खलु मामपवहति, यस्मिन् आयत्तं कार्यशरीरम्।]

यौगन्धरायणः—विजये !

(प्रविश्य)

विजया—अय्य इअह्मि। [आर्य ! इयमस्मि।]

यौगन्धरायणः—विजये ! त्वर्यतां लेखः प्रतिसरा च।

वेणुवनाश्रितेषु = वेणुवनसमीपवर्तिषु, गहनेषु = गहनवनेषुमध्ये नागवनम् = एतन्नामकं गजबहुलं वनम्, श्वः = आगामिदिने, स्वामी = वत्सराजः, प्रयाता = गन्ता, इति, प्रागेव = नागवनप्रयाणात्पूर्वमेव, सम्भावयितव्य = द्रष्टव्यः।

यस्मिन् = लेखे, आयत्तम् = अधीनम्, कार्यशरीरम् = विज्ञाप्यस्वरूपम्, सः लेखः = पत्रम्, माम् = सालकम्, अपवहति = विलम्बयते।

विजये ! इति तु कस्याश्चित् सेविकायाः सम्बोधनम्। त्वर्यताम् = शीघ्रता विधीयताम्, लेखः = पत्रम्, प्रतिसरा = रक्षासूत्रम्। "प्रतिसरस्तु स्याद्धस्तसूत्रे

अब वेणुवन के समीप गहनवन के मध्य में स्थित "नागवन" को वत्सराज कल चले जायेंगे। इसलिए प्रस्थान से पूर्व ही तुझे उनसे मिल लेना चाहिए।

सालक—आर्य ! यह लेख जाने में विलम्ब कर रहा है, जिसके अधीन मेरा सारा कार्य है।

यौग०—विजये !

(प्रवेश कर)

विजया—आर्य यह मैं हूँ।

यौग०—विजये ! लेख (पत्र) और रक्षासूत्र लाने में शीघ्रता करो।

विजया—अय्य ! तह् । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता)

यौगन्धरायणः—अथ दृष्टपूर्वस्त्वयैष पन्थाः ।

सालकः—णहि, सुदपुरुवो । [नहि श्रुतपूर्वः ।]

यौगन्धरायणः—एतदपि मेधाविलक्षणम् । भोः ! वनगजप्रच्छादितशरीरं नीलहस्तिनमुपन्यस्य प्रद्योतः स्वामिनं छलयितुकाम इति प्रवृत्तिरुपगता नः । अपीदानीं स्वामिनो बुद्ध्यतिक्रमो न स्यात् । अहो नु खलु वत्सराजभीरुत्वं प्रद्योतस्य । व्यक्तीकृतमसामर्थ्यमक्षौहिण्याः ।

नृषण्डयोः·········। व्रणशुद्धौ च केचित्तु स्त्रियां प्रतिसरा विदुः" । इति केशवः ।

दृष्टपूर्वः = पूर्वमवलोकित इत्यर्थः । पन्थाः = मार्गः, श्रुतपूर्वः = पूर्वश्रुत इत्यर्थः । एतदपि = इदमपि, मेधाविलक्षणम् = चातुर्यचिह्नम् । वनगजप्रच्छादितशरीरम् = आरण्यकहस्तितिरोहितावयवम् । एवं भूतम्, नीलहस्तिनम् = नीलवर्णगजम् । उपन्यस्य = स्थाप्य । प्रद्योतः = अवन्तिनरेशः, महासेनः, स्वामिनम् = उदयनम् । छलयितुकामः = वञ्चनेच्छुकः इति । प्रवृत्तिः=सूचना । नः = अस्माकम् । उपगता = प्राप्ता । इदानीम् = अधुना । स्वामिनः = वत्सराजस्योदयनस्य । बुद्ध्यतिक्रमः = धीवैपरीत्यम्, न स्यात् = न भवेत् । अहो नु खलु = आश्चर्यमेतत्, वत्सराजभीरुत्वम् = उदयनकृतत्रासत्वम्, प्रद्योतस्य = महासेनस्य । तस्य अक्षौहिण्याः = अतुलसेनायाः, असामर्थ्यम् = निर्बलत्वम् । व्यक्तम् = स्पष्टम् ।

विजया—आर्य ! अच्छा । (निकल जाती है ।)

यौग०—क्या तुम इस मार्ग को देख चुके हो ?

सालक—नहीं, (देखा तो नहीं) सुना है ।

यौग०—यह भी मेधावियों का लक्षण है । चारों ओर से वनैले हाथियों द्वारा छिपाकर एक नीले हाथी की झूठी रचना करके प्रद्योत वत्सराज को ठगना चाहता है, ऐसी सूचना मुझे मिली है । ईश्वर करें स्वामी की बुद्धि विचलित न हो । आश्चर्य है, प्रद्योत वत्सराज से इतना डरता है ! उसकी अक्षौहिणी (सेना) की असमर्थता तो स्पष्ट हो चुकी ।

कुतः—

> व्यक्तं बलं बहु च तस्य न चैककार्य
> सङ्ख्यातवीरपुरुषं च न चानुरक्तम् ।
> व्याजं ततः समभिनन्दति युद्धकाले
> सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ॥ ४ ॥

(प्रविश्य)

विजया—लेहो खु अअ्‌अ । पडिसरा सव्ववहूजणहत्थादो तुवारी-अदित्ति भट्टिमादा आह । [लेखः खल्वयम् । प्रतिसरा सर्ववधूजनहस्तात् त्वर्यत इति भर्तृमाता आह ।]

अन्वयः—तस्य, बलम्, बहु च, एककार्यम्, न, संख्यातवीरपुरुषम्, च, अनुरक्तम्, च न, व्यक्तम् । ततः, युद्धकाले, व्याजम्, समभिनन्दति, हि, सर्वम्, सैन्यम्, ऋते, अनुरागम्, कलत्रम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—तस्य = प्रद्योतस्य, बलम् = सैन्यम्, बहु च = बहु वर्तते (परंतु) एककार्यम् = स्वामिकार्यातिरिक्तं कार्यं न इति न । संख्यातवीरपुरुषम् = परिमितवीरसैनिकम् । अनुरक्तम् = स्वामिनि स्नेहयुक्तम् । च न = नाऽस्ति इति व्यक्तम् = इति तु स्पष्टमेव । ततः युद्धकाले = रणवेलायाम् । व्याजम् = नीलगज-रचनाप्रपञ्चम् । समभिनन्दति = आद्रियते न तु संग्रामम् । यदि स बलशाली स्यात्तर्हि युद्धसमये युद्धमाद्रियेत, स तु कपटप्रयोगं करोतीति तस्य बलहीनता स्पष्टा । हि = यतः । सर्वम् = निखिलम्, कलत्रम् = स्त्रियमिव भवति, इत्यर्थः ।

सर्ववधूजनहस्तात् = सर्वेषां राजभवननिवासिनीनाम्, बधूजना-

क्योंकि उसकी सेना (यद्यपि) बहुत है, तथापि उसके पास काम भी एक ही नहीं है (अर्थात् केवल वत्सराज को पकड़ना ही कार्य नहीं है, अन्य कार्य भी हैं,) उसमें योद्धा भी परिमित हैं, परन्तु स्वामी में अनुरक्त नहीं है । वह युद्ध के समय कपट प्रयोग को पसन्द करता है । प्रेम के विना सभी सेनाएँ स्त्री के समान है ॥ ४ ॥

विजया—यह लेख है और प्रतिसरा सब बन्धुओं के हाथ से स्पर्श कराकर शीघ्र ही भेजा जा रहा है । यह स्वामी की माता ने कहा है ।

यौगन्धरायणः—विजये ! विज्ञाप्यतां तत्रभवत्यै—सर्ववधूजनहस्तयुक्ता वा एका वा प्रतिसरा दीयतामिति ।

विजया—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्ता)

(प्रविश्य)

निर्मुण्डकः—सुहं अय्यस्स । [सुखमार्यस्य]

यौगन्धरायण—कथं निर्मुण्डकः ?

निर्मुण्डकः—अय्य ! एसो भट्टिपादमूलादो ओवट्ठिइओ हंसओ आसदो । [आर्य ! एष भर्तृपादमूलादौपस्थितिको हंसकः आगतः ।]

यौगन्धरायणः—कथं हंसक एकः प्राप्त इति । सालक ! विश्रम्यतामिदानीं मुहूर्तम् । त्वरततरं वा यास्यति सविश्रमे वा ।

नाम् = कुलाङ्गनानाम् हस्तात् = करात् । त्वर्यते = शीघ्रं स्पर्शं कारयित्वा गृह्यते । इति भर्तृमाता=राजमाता । आह = उवाच । विज्ञाप्यताम् = संसूच्यताम् । सर्ववधूजनहस्तप्रयुक्ता = सकलान्तःपुरवासिनीकराभिमृष्टा वा । एका= अन्या, तेषां कराभिमर्शनरहिता वेत्यर्थः ।

भर्तृपादमूलादौपस्थिविकः = भर्तृपादमूलात् = स्वामिचरणप्रान्तात्, औपस्थितिकः = उपस्थितिम् = समीपसन्निधानम्, नित्यमर्हतीति औपस्थितिकः "तदर्हतीति ठञ्" नित्यं स्वामिचरणेऽन्तवासीत्यर्थः । आगतः प्राप्तः ॥

यौग०—विजये ! राजमाता से कहो कि सब वधुओं के हाथ से स्पर्श कराया गया अथवा कोई दूसरा ही रक्षासूत्र दें ।

विजया—आर्य अच्छा । (निकल जाती है)

(प्रवेश कर)

निर्मुण्डक—आर्य का मङ्गल हो ।

यौग०—निर्मुण्डक ! तू कैसे ?

निर्मुण्डक—आर्य ! स्वामी के चरण में (अर्थात सदा समीप में) रहने वाला हंसक वहीं से आया है ।

यौग०—हंसक अकेला क्यों आया ? सालक ! कुछ देर विश्राम करो । विश्राम करके शीघ्रता से चले जाना अथवा विश्राम करना ।

सालकः—अय्य ! तह [आर्य ! तथा] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—निर्मुण्डक ! प्रवेश्यतां हंसकः ।

निर्मु०—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—स्वामिना विरहितपूर्वो हंसक एकः प्राप्त इति साविग्नमिव मे मनः । कुतः—

यथा नरस्याकुलबान्धवस्य गत्वान्यदेशं गृहमागतस्य ।
तथा हि मे सम्प्रति बुद्धिशङ्का श्रोष्यामि किन्नु प्रियमप्रियं वा ॥ ५ ॥

स्वामिना पूर्वमविरहित इति स्वामिनाविरहितपूर्वः साविग्नम् उद्विग्नमित्यर्थः ।

अन्वयः—अन्यदेशम्, गत्वा, आगतस्य, आकुलबान्धवस्य, नरस्य यथा, बुद्धिशङ्का, तथा हि, सम्प्रति, मे प्रियम्, श्रोष्यामि, किन्तु वा, अप्रियम् ॥ ५ ॥

व्याख्या—अन्यदेशम् = देशान्तरम् । विदेशमिति यावत् । गत्वा = यात्वा । (पुनः गृहम्) आगतस्य = प्राप्तस्य । आकुलबान्धवस्य = व्यग्र सम्बन्धिजनस्य । नरस्य = मनुष्यस्य । यथा=यादृशम् । बुद्धिशङ्का = मनःशङ्का भवति, अयमभिप्रायः—यथा विदेशात् गृहागतस्य मनुष्यस्य बुद्धौ शङ्का वरीवर्ति यत् गृहे प्रियमस्ति अथवा अप्रियमिति । तथा = तेनैव प्रकारेण, हि = इति निश्चये । सम्प्रति = अधुना, मे=मम (मनस्यपि) प्रियम् = स्वामिनो मङ्गलम् । किन्तु

सालक—आर्य ! अच्छा (निकल जाता है ।)

यौगन्धरायण—निर्मुण्डक । हंसक का प्रवेश कराओ (अर्थात उसे बुलाओ ।)

निर्मुण्डक—आर्य ! अच्छा । (निकल जाता है ।)

यौगन्धरायण—हंसक को पहले तो स्वामी ने कभी भी स्वयं से अलग नहीं किया था, (फिर भी अभी) यह अकेला ही आया है इससे मेरा मन व्याकुल हो रहा है । क्योंकि—

दूरदेश जाकर—जिसके परिवार के लोग व्याकुल रहते हैं ऐसे पुरुष की

(ततः प्रविशति हंसको निर्मुण्डकश्च ।)

निर्मुण्डकः—एदु एदु अय्यो । [एत्वेत्वार्यः ।]

हंसकः—कहि कहि अय्यो । [कुत्र कुत्रार्यः ।]

निर्मुण्डकः—एसो अय्यो चिट्ठइ, उवसप्पदु णं । [एष आर्यस्तिष्ठति उपसर्पत्वेनम् ।] (निष्क्रान्तः)

हंसकः—(उपसृत्य) सुहं अय्यस्स । [सुखं आर्यस्य]

यौगन्धरायणः—हंसक ! न खलु गतः स्वामी नागवनम् ।

हंसकः—अय्य ! हिज्जो एव्व गदो भट्ठा ! [आर्य ! ह्य एव गतोभर्ता ।]

यौगन्धरायणः—हन्त निष्फलमनुप्रेषणम् । छलिताः स्मः । अथास्ति प्रत्याशा, अथवा अद्यैव प्राणा मोक्तव्याः ।

वा = अथवा । अप्रियम् = अमङ्गलम् । श्रोष्यामि = श्रवणङ्करिष्यामि, इति शङ्का वर्तते ॥ ५ ॥

निष्फलमनुप्रेषणम् = निरर्थकं पुनः दूतसम्प्रेषणमितिभावः धरते = प्राणान् धारयति, जीवतीत्यर्थः ।

अवस्था जो (पुनः) घर आने पर होती है वही अवस्था इस समय मेरी हो रही है कि स्वामी का मङ्गल सुनूंगा या अमङ्गल ॥ ५ ॥

(उसके बाद हंसक और निर्मुण्डक का प्रवेश)

निर्मु०—आर्य ! आइये, आइये ।

हंसक—कहाँ ? आर्य कहाँ हैं ?

निर्मुण्डक—आर्य यहाँ बैठे हैं । इनके समीप जाइये । (निकल जाता है)

हंसक—(समीप जाकर) आर्य का मङ्गल हो ।

यौग०—हंसक ! क्यों स्वामी नागवन चले तो नहीं गये ?

हंसक—आर्य ! स्वामी तो कल ही नागवन चले गये ।

यौग०—अब किसी को भेजना निरर्थक है । हम सब ठगे गये ।

हंसकः—धरदि खुदाव भट्टा। [धरते खलु तावद् भर्ता।]

यौगन्धरायणः—धरते तावदित्यनूर्जिता विपत्तिरभिहिता। गृहीतेन स्वामिना भवितव्यं ननु।

हंसकः—सुट्ठु अय्येण विञ्ञादं गहीदो भट्टा। [सुष्ठु आर्येण विज्ञातम्। गृहीतो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—कथं गृहीतः स्वामी। हन्त भोः। महान् खलु भारः प्रद्योतस्य भाग्यैर्निस्तीर्णः। अद्य प्रभृति वत्सराजसचिवानां प्रतिष्ठितमसामर्थ्यमयशश्च। इदानीमनुत्पन्नकार्यपण्डितो रुमण्वान् क्व गतः। इदानीमश्वारोहणीयं क्व गतम्। कुतः—

न ऊर्जिता = अनूर्जिता = अमहती, विपत्तिः = विपद्। विज्ञातम् = अवगतम्।

स्वामी = भर्ता, वत्सराजः। गृहीतः = निबद्धः। कथमित्याश्चर्यम्। महान् खलुभारः=वत्सराजस्वायत्तिकरणरूपदुष्करं कर्म, प्रद्योतस्य = महासेनस्य, भाग्यैः = सौभाग्यैः, निस्तीर्णः = संवृत्तः। अद्यप्रभृति = अस्माद्दिनात्प्रारभ्य। वत्सराजसचिवानाम्=उदयनमन्त्रिणाम्। असामर्थ्यम् = कर्मकौशलराहित्यम्। अयशः = अपकीर्तिश्च। प्रतिष्ठितम् = विख्यातम्। जनाः कथयिष्यन्ति यत् वत्सराजस्य मन्त्रिणः अकुशलाः विवेकहीनाश्चेति। इदानीम् = गृहीते स्वामिनि। अनुत्पन्नकार्यपण्डितः = अप्रत्युत्पन्नमतिः। रुमण्वान् = एतन्नामा मन्त्री। क्वगतः = कुत्र लुप्तः। अश्वारोहणीयम् = तुरगारोहणीयं बलं। क्व गतम् = कुत्र अगच्छत्।

क्या कुछ आशा है, अथवा (यदि नहीं तो) आज ही प्राण त्याग कर देना चाहिए।

हंसक—स्वामी अभी जीवित हैं।

यौग०—स्वामी जीवित हैं तब तो कोई बड़ी विपत्ति की बात नहीं। परन्तु स्वामी अवश्य पकड़ लिये गये होंगे।

हंसक—आर्य ने ठीक ही समझा। स्वामी पकड़े गये।

यौग०—स्वामी पकड़ कैसे लिये गये। ओहो! प्रद्योत के भाग्य से बहुत ही दुर्धर्ष कार्य (वत्सराज का पकड़ लिया जाना) निष्पन्न हो गया। आज से वत्सराजके मन्त्रियों की अकर्मण्यता और अयश प्रसिद्ध हो गया। उस

स्निग्धं च सौहृदहृतं च कुलोद्गतं च
व्यायामयोग्यपुरुषं च गुणार्जितं च।
क्रीतं परैर्गहनदुर्गतया प्रनष्टं
युद्धे समस्तमतिभारतया विपन्नम् ॥ ६ ॥

हंसकः—जइ समग्गजोहबलपरिवारो भवे भट्टा, ण एसो दोसो भवे। [यदि समग्रयोधबलपरिवारो भवेद् भर्ता नैष दोषो भवेत्।]

यौगन्धरायणः—कथमसमग्रयोधबलपरिवारो नाम स्वामी।

अन्वयः—स्निग्धं च, सौहृदहृत च, कुलोद्गतं च, व्यायामयोग्यपुरुषं च, गुणार्जितं च, परैः, क्रीतम्, गहनदुर्गतया, प्रनष्टम्, युद्धे, अतिभारतया, समस्तम्, विपन्नम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—सैन्यविषये आशङ्कयति—स्निग्धम् च = स्वामिन्यनुरक्तं च। सौहृदहृतं च = सौहृदेन = स्वामिस्नेहेन, हृतम् = वशीकृतं च। कुलोद्गतं च = प्रसस्तवंशोत्पन्नं च। व्यायामयोग्यपुरुषं च = व्यायामम् = शारीरिकश्रमविशेषम् तत्र योग्याः = सक्ताः, पुरुषाः = सादिनो यस्मिन् तत् तथा भूतम्। गुणार्जितं च = सद्गुणैः संगृहीतम्। (सैन्यम्) परैः = शत्रुभिः। क्रीतम् = उत्कोचादिभिः वशीकृतम्। अथवा गहनदुर्गतया = वनदुर्गमतया। प्रनष्टम् = विशीर्णम्। अथवा, युद्धे = रणे, अतिभारतया = शत्रुसैन्यैः योद्धुमक्षमतया,

---

समय समयानुकूल कार्य न करनेवाला रुमण्वान् कहाँ था? उस समय घुड़सवार कहाँ चले गये थे? क्योंकि—

स्नेह करने वाली, स्वामी के सद्व्यवहार से वशीभूत, अच्छे कुल में उत्पन्न, व्यायाम करने में समर्थ, अपने गुण के कारण संगृहीत की गयी (सम्पूर्ण सेना) शत्रुओं द्वारा (धन आदि घूस देकर) खरीद ली गयी क्या? अथवा वन के अत्यन्त गहन होने के कारण सब तितर-बितर हो गयी क्या? अथवा युद्ध में शत्रुओं की सेना का सामना न कर सकने के कारण सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गयी क्या? ॥ ६ ॥

हंसक—स्वामी के साथ यदि सब सेना होती तो यह अनर्थ नहीं हो पाता।

यौग०—स्वामी के साथ सम्पूर्ण सेना क्यों नहीं थी?

हंसकः—सुणादु अय्यो। [शृणोत्वार्यः।]

यौगन्धरायणः—अध्वश्रान्तो भवान्। आस्यताम्।

हंसकः—अय्य ! तह। (उपविश्य) सुणादु अय्यो। सावसेसपच्चूसाए रअणीए वाहणसुहाए वेलाए वालुआतित्थेण णइं णम्मदं तरिअ वेणुवणे कलत्तं आवासिअ छत्तमत्तपरिच्छदेण गजजूहविमद्दजोग्गेण बलेण मग्गमदअणीए वीहीए णाअवणं पआदो भट्टा। [आर्य ! तथा। शृणोत्वार्यः सावशेषप्रत्यूषायां रजन्यां वाहनसुखायां वेलायां वालुकातीर्थेन नदीं नर्मदां तीर्त्वा वेणुवने कलत्रमावास्य छत्रमात्रपरिच्छदेन गजयूथविमर्दयोग्येन बलेन मार्गमदन्या वीथ्या नागवनं प्रयातो भर्ता।]

समस्तम् = सर्वम् (सैन्यम्) विपन्नम् = विध्वस्तं किमितिशेषः। योधानां बलं = योधबलम् (ष० तत्०) समग्रं च तत् योधबलम् = समग्रयोधबलम् (कर्म०) समग्रयोधबलं परिवारो यस्य सः समग्रयोधबलपरिवारः (बहु०)। अध्वश्रान्तः = मार्गगमनपरिश्रान्तः।

व्याख्या—सावशेषप्रत्यूषायाम् = किञ्चिदवशिष्टउषःकालो यस्याम्, तथाभूतायाम्। रजन्याम् = रात्रौ। वाहनसुखायाम् गजाश्वादीनां सुखप्रदायिन्याम् वेलायाम् = समये। वालुकातीर्थेन = सिकतामयेन पुलिनेन। नर्मदाम् = एतन्नाम्नीम्। नदीम = सरितम्। तीर्त्वा = विलङ्घ्य। वेणुवने = एतन्नामकारण्ये, कलत्रमावास्य = स्त्रींसंस्थाप्य। छत्रमात्रपरिच्छदेन = आतपत्रमात्रोपकरणेन गजयूथविमर्दयोग्येन = हस्तिवृन्तमृगयासमर्थेन, बलेन = सैन्येन। मार्गमदन्या = मृगानां समूहः मार्गम्, समूहार्थेऽण्प्रत्ययः, तत् मदयति = आनन्दयति इति मार्गमदनी तया मृगसुखदायिन्येत्यर्थः। वीथ्या = मार्गेण।

हंसक—आर्य सुनें।

यौग०—आप मार्ग में चलने के कारण थक गये हैं। बैठ जाएँ।

हंसक—आर्य ! अच्छा, सुनिये। रात्रि के कुछ शेष रह जाने पर सवारियों के चलने के उपयुक्त सुन्दर समय में (प्रातः काल) वालुकामयघाट से नर्मदा नदी को पार कर वेणुवन में स्त्री को ठहराकर हाथियों का शिकार करने में समर्थ, जिसके पास केवल छत्रमात्र ही उपकरण था ऐसी (थोड़ी सी) सेना लेकर स्वामी मृग को आनन्दित करने वाले मार्ग से नागवन को गये।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ।

हंसकः—तदो इसुक्खेवमत्तोत्थिदे सुय्ये एत्तिअमत्ताणि विअ जोअणाणि गच्छिअ कोसमत्तेण विअ मदअंधीरपव्वदं अणासादिअ तडाअपङ्कुक्खित्तं अद्धणिम्मिदसिलाकम्मं विअ विसमदंसणं दिट्ठं णो णाअजूहं । [तत इषुक्षेपमात्रोत्थिते सूर्ये एतावन्मात्राणीव योजनानि गत्वा क्रोशमात्रेणेव मदगन्धीरपर्वतमनासाद्य तटाकपङ्कोत्क्षिप्तमर्धनिर्मितशिलाकर्मेव विषमदर्शनं दृष्टं नो नागयूथम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ।

हंसकः—तदो णिज्झाअन्तीसु सेणासु ससुप्पण्णसङ्कापिण्डिदे तस्सि

ततः = तदनन्तरम् । इषुक्षेपमात्रोत्थिते = प्रक्षिप्तः शरः यावदूर्ध्वंदूरं गच्छति तावन्मात्रोद्गते सूर्ये = भानौ । एतावन्मात्राणीव = अङ्गुल्या निर्दिश्य कथयति । योजनानि = क्रोशचतुष्टयमेकयोजनम्, तानि । गत्वा = यात्वा । क्रोशमात्रेणेव = एकक्रोशपरिमितेव ।' मंदगन्धीर' पर्वतमनासाद्य = एतन्नामकगिरिमप्राप्य ततो दूरमित्यर्थः । तटाकपङ्कोत्क्षिप्तम् = सरोवरकर्दमनिःसृतम । अर्धनिर्मितशिलाकर्मेव = अर्धरचितमनःशिलाशिल्पमिव, अत्र गजानां कृष्णशरीरे संलग्नश्वेतपङ्कानां मनःशिलाभिरुत्प्रेक्षा । विषमदर्शनम् = भयङ्करदर्शनम् । नागयूथम्=गजसमूहः । दृष्टम् = अवलोकितम ।

यौग०—तब, तब ?

हंसक—उसके बाद फेकनेपर बाण जितना ऊंचा जा सकता है उतने ऊंचे सूर्य के चढ़ जाने पर इतने (अंगुली से संकेत करके कहता है) योजन चलने पर जब मन्दगन्धीर पर्वत लगभग एककोश रह गया तब सरोवर के कीचड़ से निकला हुआ हाथियों का भयानक समूह जिसे देखने से प्रतीत होता था कि इनके शरीरों पर आधे भाग में मैंनशिल का लेप किया गया हो दिखाई पड़ा ।

यौग०—तब, तब ?

हंसक—जब सेना (जंगल की ओर) सावधानी से देख रही थी उसी समय हाथियों का झुण्ड भय से पिण्डीभूत (निष्क्रिय) हो गया । तभी

जूहे इमस्स अणत्थस्स उप्पादओ कोच्चि पदादी भट्टारं एव्व उवट्ठिदो।
[ततो निध्यायन्तीषु सेनासु समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते तस्मिन् यूथेऽस्यानर्थस्योत्पादकः कश्चित् पदातिः भर्तारमेवोपस्थितः।]

यौगन्धरायणः—तिष्ठ। इतः क्रोशमात्रे मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरो नखदन्तवर्जमेकनीलो हस्ती मया दृश्यत इत्युक्तवान् ननु।

हंसकः—कह परिण्णादं खु एदं अय्येण। जागत्ति खु समुप्पण्णो अअं दोसो। [कथं परिज्ञातं खल्वेतदार्येण। जाग्रति खलु समुत्पन्नोऽयं दोषः]

यौगन्धरायणः—हंसक ! जाग्रतोऽपि वलवत्तरः कृतान्तः। ततस्ततः।

हंसकः—तदो सुवण्णसदप्पदाणेण तं णिसंसं पडिपूजिअ भट्टिणा उत्तं—अत्थि एसो चक्कवट्ठी हत्थी णीलकुवलअतणूणाम हत्थिसिक्खाए पठिदो। ता अप्पमत्ता होह तुम्हे इमस्सिं जूहे। गअं तं अहं

निध्यायन्तीषु = निर्वर्णयन्तीषु, सावधानतया पश्यन्तीषु सेनासु। समुत्पन्नशङ्कापिण्डिते = सञ्जातभयेनपिण्डीभूतया स्तब्धयेत्यर्थः। अस्य अनर्थस्य = स्वामिग्रहणस्य। उत्पादकः = कर्ता।

मल्लिकासालप्रच्छादितशरीरः = मल्लिकानाम्न्या लतया, शालनामकवृक्षविशेषेण च प्रच्छादितम्=वेष्टितम्, शरीरं = देहो यस्य सः। नखदन्तवर्जम् = नखदशनविहीनम्। जाग्रति = सावधाने। कृतान्तः = विधिः।

इस (स्वामी का पकड़ना) अनर्थ को करने वाला कोई पैदल स्वामी के समीप आया।

यौग०—अच्छा बस करो। उसके बाद यहाँ से एक कोश की दूरी पर मल्लिका (लता विशेष) तथा साल (वृक्षविशेष) से ढका शरीरवाला दाँत और नख से रहित एक नीला हाथी दिखाई दिया। यही तुम कहोगे न !

हंसक—इस बात की जानकारी आपको कैसे हो गई ? आपके इस तरह सावधान रहने पर भी यह अनर्थ हो गया।

यौग०—सावधान मनुष्य से भी दैव बलवान है। तब क्या हुआ ?

हंसक—तत्पश्चात् सौ स्वर्णमुद्रा देकर उस नृशंस की पूजा करके (अर्थात् उसे प्रसन्न कर; स्वामी ने उससे कहा कि इस प्रकार के नीले रंग के

वीणादुदीओ आणेमि त्ति । [ततः सुवर्णशतप्रदानेन तं नृशंसं प्रतिपूज्य भर्त्रोक्तम्—अस्त्येष चक्रवर्ती हस्ती नीलकुवलयतनुर्नाम हस्तिशिक्षायां पठितः। तद् अप्रमत्ता भवत यूयमस्मिन् यूथे । गजं तमहं वीणाद्वितीय आनयामीति ।]

यौगन्धरायणः—अथ कथमुपेक्षितस्तदानीं स्वामी रुमण्वता ।

हंसक —णहि णहि । पसादिअ भट्टा अमच्चेण विण्णाविदो—णहु दे एलावणादीणं वि दिसागआणं गहणं ण सम्भावणीअं । अविदुरारक्खदाए पच्चन्तवासी जणो । ता पदादिमत्ताहिट्ठिदं इमं जूहं करिअ सव्व एव्व गच्छामो, ण इकाइणा सामिणा गन्तव्वं त्ति । [नहि नहि ।

ततः = पश्चात् । नृशंसं = क्रूरं दयारहितमित्यर्थः । सुवर्णशतप्रदानेन = सुवर्णानां शतं = सुवर्णशतम् = हेमशतम्, तस्य प्रदानेन = दानेन । प्रतिपूज्य = प्रसादयित्वा । भर्त्रा = स्वामिना । उक्तं = कथितम् । एष = इदृशः । चक्रवर्ती हस्ती = श्रेष्ठकरी । नीलकुवलयतनुः = नीलपद्मशरीरः । हस्तिशिक्षायाम् = गजलक्षणशास्त्रे । पठितः=अधीतः, तत्र वर्णित इत्यर्थः । तद् = तस्मात् यूयम् = एतेषां रक्षकाः । अस्मिन् यूथे = गजसमूहे । अप्रमत्ताः = सावधानाः भवत । गजम् = नीलहस्तिनम् । वीणाद्वितीयः = वीणाएव द्वितीया यस्य सः वीणाद्वितीयः = तन्त्रीसहायकः । तमानयामि = आनयिष्यामि । वीणावादनेनैव तमानयिष्यामीतिभावः । उपेक्षितः = तिरस्कृतः ।

श्रेष्ठ हाथी का वर्णन गजलक्षणशास्त्र में आया है अतः आप इस (नीले हाथी) समूह के लिए सावधान हो जायें । मैं केवल अपनी वीणा की ही सहायता से उस हाथी को ले आऊंगा ।

यौग०—स्वामी को ऐसा करते देखकर भी उस समय रुमण्वान ने इसकी उपेक्षा क्यों की !

हंसकः—नहीं, नहीं । अमात्य ने विनयपूर्वक स्वामी से कहा-आपके लिए ऐरावत ऐसे दिग्गजों को भी पकड़ना कोई कठिन कार्य नहीं है । परन्तु दूसरे देश में रक्षा बहुत ही कठिनाई से होने के कारण वे भयंकर होते हैं । उसमें भी अनार्य देश के रहने वाले लोग निर्लज्ज एवं दुष्ट हैं । अतः इस यूथ की देख-भाल के लिए केवल पैदल सेना को छोड़कर हम सब लोग (आपके साथ) चलेंगे । आपको अकेले नहीं जाना चाहिए ।

प्रसाद्य भर्तामात्येन विज्ञापितः—न खलु ते ऐरावणादीनामपि दिग्गजानां ग्रहणं न सम्भावनीयम्। अपि तु दुरारक्षतयासन्नदोषाणि विषयान्तराणि। तत्र निर्लज्जो निरभिजनः प्रत्यन्तवासी जनः। तत् पदातिमात्राधिष्ठितमिदं यूथं कृत्वा सर्वं एव गच्छामः, नैकाकिना स्वामिना गन्तव्यमिति।]

यौगन्धरायणः—अपि महाजनसमक्षमेवमुक्तः स्वामी रुमण्वता। एवमप्यवक्तव्यां स्वामिभक्तिमिच्छामि। ततस्ततः।

हंसकः—तदो अत्तजीविदणिद्दिट्ठेण सवहेण णिवारिअ अमच्चं णीलवलाहआदो हत्थिणो ओदरिअ सुन्दरपाडलं णाम अस्सं आरुहिअ अणद्धागए सुय्ये विंसदिमत्तेहि पदादिहि सह पआदो भट्टा। [तत आत्मजीवितनिर्दिष्टेन शपथेन निवार्यामात्यं नीलवलाहकाद् हस्तिनोऽवतीर्य सुन्दरपाटलं नामाश्वमारुह्यानर्धागते सूर्ये विंशतिमात्रैः पदातिभिः सह प्रयातो भर्ता।]

न खलु = निश्चयेन। ऐरावणादीनामपि = ऐरवतादीनामपि दिग्गजानाम् = दिशाहस्तिनाम्। ग्रहणम् = स्ववशकरणम्। न सम्भावनीयम् = असम्भवम्। सुलभमित्यर्थः। दुरारक्षतया = दुःखेनसंरक्षतया। आसन्नदोषाणि = समीपस्थानर्थकाणि। विषयान्तराणि = दूरदेशानि। प्रत्यन्तवासी = अनार्यदेशीयः। जनः = मनुष्यः। निरभिजनः = दुष्टः। सर्वे = गजाश्वरथिनः। महाजनसमक्षम् = परिजनसमूहसम्मुखम्। एवमपि = अनेनप्रकारेणापि। अव्यक्तव्याम् = उत्तमाम्। इच्छामि = स्वीकरोमि।

ततः आत्मजीवितनिर्दिष्टेन = स्वप्राणनिर्दिष्टेन, शपथेन = निवार्य=निषेधं विधाय। अनर्घागते = न अर्धः = अनर्धः तत्रागतः = अनर्धागतः

यौग०—परिजन समूह के समक्ष ही यदि यह बात रुमण्वान् स्वामी से कहा होता तो अच्छा होता। मैं तो इस प्रकार की स्वामिभक्ति को भी निन्दा रहित मानता हूँ। तब क्या हुआ।

हंसक—तब स्वामी ने अपने प्राणों का शपथ देकर मन्त्री (रुमण्वान्) को रोक दिया और (स्वयं) 'नीलवलाहक' नामक हाथी से उतर कर

यौगन्धरायणः—विजयाय। हा धिक् स्नेहात् पूर्ववृत्तान्तो नावेक्षितः। ततस्ततः।

हंसकः—तदो दिउणं विअ अद्धाणं गच्छिअ सालरुक्खच्छाआए सवण्णणट्ठणीलदाए परुब्भासिदेहिं असरीरविणिक्खित्तेहि विअ दन्तजुअलेहिं सूइदो धणुसदमत्तेण विअ दिट्ठो सो दिव्ववारणपडिच्छन्दो।

[ततो द्विगुणमिवाध्वानं गत्वा सालवृक्षच्छायायां सावर्ण्यनष्टनीलतया प्रोद्भासिताभ्यामशरीरविनिक्षिप्ताभ्यामिव दन्तयुगलाभ्यां सूचितो धनुःशतमात्रेणेव दृष्टः स दिव्यवारणप्रतिच्छन्दः।]

यौगन्धरायणः—हंस! अस्मत्परिताप इत्युच्यताम्। ततस्ततः

= अमध्यस्थः, तस्मिन् मध्यात्पूर्वं एवेत्यर्थः। सूर्ये = दिनकरे।
स्नेहात्=औत्सुक्यात्। पूर्ववृत्तान्तः = विगतवार्ता। नावेक्षितः=न स्मृतः।

सावर्ण्यम् = समानवर्णत्वम् (नीलत्वमित्यर्थः) तेन; नष्टः = तिरोहितः, नीलः = देहस्य वर्णो यस्य सः सावर्ण्यनष्टनीलः तस्य भावः तत्ता तया। प्रोद्भासिताभ्याम् = चाकचिक्ययुक्ताभ्याम्।

'सुन्दरपाटल' नामक घोड़े पर सवार होकर सूर्य के मध्याकाश में आने से पूर्व ही मात्र बीसही पैदल सेनाओं को अपने साथ लेकर चले गये।

यौगध०—विजय के लिये! हाय धिक्कार है, हाथी के पकड़ने की उत्सुकता में (स्वामी ने) पहले की बातों का स्मरण नहीं किया। तब, तब। (क्या हुआ ?)

हंसक—तब दुगुना मार्ग जाकर (अर्थात् तब तक चलने में जितना समय लगा उससे आधे समय मे ही वहां पहुँचकर) सालवृक्ष की छाया में, सौ धनुष की दूरी (पहले) से ही, सालवृक्ष को छाया के समान होने के कारण जिसके शरीर का नीलारंग (उस छाया में) छिप गया था और जिसका शरीर तो नहीं केवल चमकते हुए दाँत दिखाई पड़ते थे ऐसे हाथी का वह दिव्य रूप दिखाई पड़ा।

यौग०—हंसक! हमलोगों के सन्ताप का कारण कहो। फिर क्या हुआ।

हंसकः—तदो भट्टिणा ओदरिअ अस्सादो आअमिअ देवदाण पणामं करिअ गहीदा वीणा। तदो पिट्ठदो एक्ककिदणिच्चओ विअ महन्तो कण्ठीरवो समुप्पण्णो। [ततो भर्त्रावतीर्याश्वादागम्य देवतानां प्रणामं कृत्वा गृहीता वीणा। ततः पृष्ठत एककृतनिश्चय इव महान् कण्ठीरवः समुत्पन्नः।]

यौगन्धरायणः—कण्ठीरव इति। ततस्ततः।

हंसकः—तदो कण्ठीरवपरिण्णाणणिमित्तं परिवुत्ता अ वअं। महामत्तोत्तराउहीआहिट्ठिदो पच्चुग्गदो सो किदअहत्थी। [ततः कण्ठीरव-परिज्ञाननिमित्तं परिवृत्ताश्च वयम्। महामात्रोत्तरायुधीयाधिष्ठितः प्रत्युद्गतः स कृतकहस्ती।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—तदो णामगोत्तग्गहणेन समस्सासिह कुलवुत्तजणं सव्वहा पज्जोदप्पओओ एसो, अणुगच्छह मं, अहं दाणि परस्स उवण्णासं विस-

---

एककृतनिश्चयः = नीलगजेन विहितवुल्यः निश्चयः। कण्ठीरवः = सिंहः।

कण्ठीरवविज्ञाननिमित्तम् = सिंहज्ञानार्थम्। महामात्रोत्तरायुधीयाधिष्ठितः= हस्तिपकप्रमुखयोधासंयुक्तः। सकृतकहस्ती=सकपटगजः। प्रत्युद्गतः=विश्वस्तः।

हंसक—तब स्वामी ने घोड़े से उतरकर एवं देवताओं को प्रणाम कर पश्चात (हाथ में) वीणा ग्रहण किया। उसी समय एक बहुत बड़ा सिंह वहाँ आया, मानो उसका भी वही निश्चय (कार्य) था जो उस नीले हाथी का था।

यौग०—सिंह। तब, तब क्या हुआ।

हंसक—तब सिंह के विश्वास के लिए हमलोग लौटे (तब) जिनका प्रधान उस हाथी का महावत था ऐसे शस्त्रधारी योधा लोगों को उस हाथी के पेट से निकलते देखकर यह समझ में आया कि यह बनावटी हाथी है।

यौग०—तब। तब फिर क्या हुआ।

हंसक—तब राजा ने (उदयन ने) अच्छे वंश में उत्पन्न अपने अनुयायियों (सहायकों) को (क्रमशः) उनके नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके आश्वासन दिया—कि "यह सब प्रद्योत का कपट है, तुम लोग मेरे पीछे-पीछे

मारम्भं परक्कमेण समीकरोमि त्ति भणिअ भट्टा पविट्ठो एव्व तं परबलं।
[ततो नामगोत्रग्रहणेन समाश्वास्य कुलपुत्रजनं सर्वथा प्रद्योतप्रयोग एषः, अनुगच्छत माम्, अहमिदानीं विषमारम्भं परस्योपन्यासं पराक्रमेण समीकरोमीति भणित्वा भर्ता प्रविष्ट एव तत् परबलम् ।

यौगन्धरायणः—प्रविष्ट इति । अथवा ननु स्थाने,

व्रीलितो वञ्चनां प्राप्य मानी सत्त्वमुपाश्रितः ।
शूरश्चैकायनस्थश्च किमन्यत् प्रतिपद्यते ।। ७ ।।

नामगोत्रग्रहणेन = प्रत्येकाभिधेयवंशोच्चारणेन सम्बोधनेनेत्यर्थः । कुलपुत्रजनम् = वंशोद्भवपुरुषजनमात्मसहायकमित्यर्थः । समाश्वास्य = आश्वासनं दत्वा । प्रद्योतप्रयोगः = प्रद्योतोद्यमः, प्रद्योतच्छल इत्यर्थः । परस्य = शत्रोः । उपन्यासम् = छलकर्म । विषमारम्भम् = प्रतिकूलफलम् । समीकरोमि = अनुकूलं करोमि । परबलम् = शत्रुसैन्यम् ।।

अन्वयः—वञ्चनाम्, प्राप्य, व्रीलितः, मानी, सत्वमुपाश्रितः, एकायनस्थः, शूरश्च, अन्यत्, किम्, प्रतिपद्यते ।।७।।

व्याख्या—वञ्चनाम् प्राप्य = शत्रुभिश्छलितः, व्रीलितः = लज्जितः, मानी = स्वाभिमानी, सत्वमुपाश्रितः = बलवान्, एकायनस्थः = एकमार्गस्थः, अन्यत् = शत्रुसेनाप्रवेशातिरिक्तम्, किम् = कथमम्भूतं (कर्म) प्रतिपद्यते = क्रियते ।। ७ ।।

आओ । मैं इस समय जिसमें अनर्थ होने का भय है ऐसे शत्रु के कपट प्रयोग को अपने पराक्रम से शान्त किए दे रहा हूँ । यह कहकर स्वामी शत्रु की सेना में घुस गये ।

यौग०—घुस गये ? (अर्थात् उन्हें घुसना नहीं चाहिए था) अथवा उचित ही किया ।

शत्रु द्वारा ठगे जाने पर (अतः) लज्जित, स्वाभिमानी, बलशाली, वीर एक ही राह पर चलने वाला (अर्थात् शत्रु को पराजित करने में तत्पर) वह (राजा) दूसरा कौन सा कार्य ही कर सकता था ! ।। ७ ।।

ततस्ततः।

हंसक—तदो कीलाअमाणो विअ अत्तच्छन्दाणुवत्तिणा सुन्दरपाडलेण अस्सेण अत्ताभिप्पाआदो वि अहिअं पहरन्तो आदिबहुकदाए परबलस्स अदिप्पउज्जमाणवाआमो विसण्णणट्ठसव्वपरिजणो मए एक्काइणा, णहि णहि, भट्टिणा एव्व रक्खिअमाणो अणुबद्धदिवसजुद्धपरिस्सन्तो बहुप्पहारणिपडिअतुरओ तम्माअमाणसुय्यदारुणाए वेलाए मोहं गदो भट्टा। [ततः क्रीडन्निवात्मच्छन्दानुवर्तिना सुन्दरपाटलेनाश्वेनात्माभिप्रायादप्यधिकं प्रहरन् अतिबहुकतया परबलस्यातिप्रयुज्यमानव्यायामो विषण्णनष्टसर्वपरिजनो मयैकाकिना, नहि नहि, भर्त्रैव रक्ष्यमाणोऽनुबद्धदिवसयुद्धपरिश्रान्तो बहुप्रहारनिपतिततुरगस्ताम्यत्सूर्यदारुणायां वेलायां मोहं गतो भर्ता।]

आत्मच्छन्दानुवर्तिना = स्वेच्छयागतवता (अवस्थाविशेषे)। आत्माभिप्रायादपि = स्वलक्ष्यादपि। अधिकम् = बहु। (शत्रुसैन्यम्) प्रहरन् = शस्त्रं संपातयन्। अतिबहुकतया = अत्यन्ताधिक्येन। परबलस्य = शत्रुसैन्यस्य। अतिप्रयुज्यमानव्यापारो = कृताधिकपरिश्रमः। विषण्णनष्टपरिजनः = खिन्नध्वस्त सैनिकः। एकाकिना = असहायेन। भर्त्रैव = देवेनैव। रक्ष्यमाणः = सेवितः। अनुबद्धदिवसयुद्धपरिश्रान्तः = अनवरतयुद्धश्रान्तः। बहुप्रहारनिपतिततुरगः = अत्यन्तसंपातपतिताश्वः। ताम्यत्सूर्यदारुणायाम् = रक्तीभवद्दिनकरायामत एव भयङ्करायाम्। वेलायाम् = समये (सायङ्काले) मोहम् = मूर्च्छाम्। गतः = प्राप्तः भर्ता = स्वामी॥

तब क्या हुआ ?

हंसक—पश्चात् (समय विशेष में) अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले "सुन्दर पाटल" नामक घोड़े से खेलते हुए तथा अपने लक्ष्य से भी अधिक (शत्रु सेनाओं को) मारते हुए अत्यधिक परिश्रम करने के कारण एवं शत्रुओं की सेना के अधिक होने के कारण लगातार दिनभर युद्ध करने से थक कर एवं अत्यधिक चोट खा जाने से घोड़े के मर जाने पर अकेले मुझसे, नहीं-नहीं अपने भाग्य से रक्षित, सूर्य के लाल होने पर (सायंकाल) उस भयङ्कर समय में स्वामी मूर्च्छित हो गए।

यौगन्धरायणः—कथं मोहमुपगतः स्वामी। ततस्ततः

हंसकः—तदो जहासत्तिसण्णिहिदगहणुप्पाडिदाहि अविण्णा अमाण जादीहि कक्कसाहि लदाहि पाकिदो विअ सरीरअन्तणादो पहरिसिदो भट्टा। [ततो यथाशक्तिसन्निहितगहनोत्पाटिताभिरविज्ञायमानजातिभिः कर्कशाभिर्लताभिः प्राकृत इव शरीरयन्त्रणात् प्रधर्षितो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—कथं प्रधर्षितः स्वामी।

पीनांसस्य विकृष्टपर्वमहतो नागेन्द्रहस्ताकृते-
श्चापास्फालिकरस्य दूरहरणाद् बाणाधिकारोपिणः।
विप्राभ्यर्चयितुः श्रमेषु सुहृदां सत्कर्तुरालिङ्गनै-
र्न्यस्तं तस्य भुजद्वयस्य वलयस्थानान्तरे बन्धनम् ॥८॥

सन्निहितगहनोत्पाटिताभिः = समीपवनोत्खातिताभिः। कर्कशाभिः = परुषाभिः। अविज्ञायमानजातिभिः = अज्ञातजातिभिः। लताभिः = वल्लिभिः। प्राकृतइव = सामान्यजन इव। शरीरयन्त्रणात् = देहबन्धनात्। प्रधर्षितः = तिरस्कृतः। भर्ता = स्वामी।

अन्वयः—पीनांसस्य, विकृष्टपर्वमहतः, नागेन्द्रहस्ताकृतेः चापास्फालिकरस्य, दूरहरणात्, बाणाधिकारोपिणः, विप्राभ्यर्चयितुः, श्रमेषु, आलिङ्गनैः, सुहृदाम्, सत्कर्तुः, तस्य, वलयस्थानान्तरे, बन्धनम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—पीनांसस्य = पृथुलस्कन्धस्य। विकृष्टपर्वमहतः=व्यायामसंस्कृतेन अत उन्नतनाडीकस्य। नागेन्द्रहस्ताकृतेः = करिवरकराकारस्य। चापास्फालिकरस्य = धनुर्ज्यापारहस्तस्य। दूरहरणात् = अधिकसंधानात्। बाणाधिकारोपिणः = अधिकशरसंधानशीलस्य। विप्राभ्यर्चयितुः = ब्राह्मणपूजकस्य। श्रमेषु = परिश्रम-

---

यौग०—क्यों स्वामी मूर्च्छित हो गए ? तब क्या हुआ।

हंसक—तब (शत्रु के भटों के द्वारा) पास के वन से उखाड़ी गयी कठोर एवं जिसे पहचाना नहीं जा सकता था, ऐसी लता से स्वामी का शरीर बांधकर पीड़ित किया गया।

यौग०—स्वामी पीड़ित क्यों किये गये –

मांसल कंधे वाले, व्यायाम के कारण उठी हुई नसों वाले, हाथी के सूँड की तरह आकृतिवाले (लम्बे) तथा धनुष को चलाने में प्रवीण एवं अधिक

अथ कस्यां वेलायां प्रत्यागतप्राणः स्वामी ?

हंसकः—अय्य ! अवसिदावलेवेसु पावेसु । [आर्य ! अवसितावलेपेषु पापेषु ।]

यौगन्धरायणः—दिष्ट्या ! शरीरं धर्षितं न तेजः ततस्ततः ।

हंसकः—तदो पच्चाअदप्पाणं दाणि भट्टारं पेक्खिअ अणेण मम भादा हदो अणेण मम पिदा अणेण मम सुदो मम वअस्सो त्ति अव्वहा भट्टिणो परक्कमं वण्णअन्ता सव्वदो अभिद्दुदा दे पावा [ततः

साध्यकार्येषु । आलिङ्गनैः = परस्पराश्लेषैः । सत्कर्तुः = अभ्यर्चयितुः । तस्य = स्वामिनः उदयनस्य । भुजद्वयस्य = हस्तयुगलस्य । वलयस्थानान्तरे = केयूर-स्थानापन्ने (प्रकोष्ठे) । बन्धनम् = लताबन्धनम्, न्यस्तम् = प्रक्षिप्तम्, ॥ ८॥

प्रत्यागताः = पुनरावृताः, प्राणाः = असवो यस्य सः

अवसितः = सम्पन्नः अवलेपः = अविनयः येषां ते अवसिता वलेपाः तेषु । स्वामिनं प्रति कृतेषु अविनयेषु इति भावः ।

दिष्ट्या = भाग्येण । दिष्ट्येति हर्षवाचकमव्ययम् । धर्षितम् = तिरस्कृतम् । तेजः = शौर्यम् ।

खींचकर (प्रत्यञ्चा को) छोड़ने के कारण दूर तक वाण फेकने वाले, ब्राह्मणों के पूजक, परिश्रम से कार्य करने वालों को हृदय से लगानेवाले उस राजा के दोनों हाथों में कंकण के स्थान पर बन्धन डाल दिया गया ॥ ८ ॥

स्वामी की चेतना कब लौटी ?

हंसक—आर्य ! पापियों के द्वारा (स्वामी के सम्बन्ध में) इस अविनय पूर्ण व्यवहार के सम्पन्न हो जाने पर ।

यौग०—भाग्य से स्वामी की देह ही पीड़ित की गयी, उनका शौर्य नहीं ।

हंसक—तब स्वामी को होश में आया देखकर "इसने मेरे भाई को मारा है, इसने मेरे पिता को मारा है, इसने मेरे पुत्र का वध किया है, इसने मेरे मित्र का संहार किया है" इस प्रकार उन नृशंस पापी लोगों ने स्वामी के पराक्रम का दूसरे प्रकार से वर्णन करते हुए चारों तरफ से दौड़कर उनको घेर लिया ।

प्रत्यागतप्राणमिदानीं भर्तारं प्रेक्ष्यानेन मम भ्राता हतोऽनेन मम पितानेन मम सुतो मम वयस्य इति मन्यथा भर्तुः पराक्रमं वर्णयन्तः सर्वतोऽभिद्रुतास्ते पापाः]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—अण्णं च दाणि अच्चरिअं। अण्णोण्णाणुणएण तहिं एक्को ववसिदो अकय्यं कत्तुं। सो दक्खिणाहिमुहं परिवत्तिअ भट्टारं समरवाआमसंखोहिदाणि णिरुवआरं संखिविअ केसाणि पीडिअ करेण करवालं पहारवेगं उप्पादइदुकामो आधावन्तो। [अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम्। अन्योन्यानुनयेन तत्रैको व्यवसितोऽकार्यं कर्तुम्। स दक्षिणाभिमुखं परिवर्त्य भर्तारं समरव्यायामसंक्षोभितान् निरुपचारं संक्षिप्य केशान् पीडयित्वा करेण करवालं प्रहारवेगमुत्पादयितुकाम आधावन्]

यौगन्धरायणः—हंसक! वृत्तान्तं तावदाधारय, यावदहमुच्छ्वसामि।

प्रत्यागतप्राणम् = पुनः, प्राप्तचतन्यम्। प्रेक्ष्य = अवलोक्य। सुतः = पुत्रः। वयस्यः = मित्रम्। अभिद्रुता = सम्मुखमागताः।

अन्योन्यस्य = परस्परस्य, अनुनयेन = कथनेन। एकः = अन्यतमः। तत्र = तेषु पापेषु। अकार्यम् = घृणितङ्कार्यम्। कर्तुम् = विधातुम्। व्यवसितः = उद्यतः। दक्षिणाभिमुखम् = सव्याभिमुखम्। परिवर्त्य = परिभ्राम्य। केशान् = अलकान्। समरव्यायामसंक्षोभितान्=युद्धपरिश्रमविस्रस्तान्। करवालम् = खड्गम्। संक्षिप्य = एकत्रीकृत्य। प्रहारवेगमुत्पादयितुकामः = संहारेच्छुकः। आधारय = ईषद्विरम।

यौग०—तब, तब क्या हुआ?

हंसक—और भी अचम्भे की यह बात है। (कि) उन पापियों में से एक कोई परस्पर में कहने के कारण घृणित कार्य करने के लिए तैयार हुआ। उस पापी ने स्वामी के मुँह को दक्षिण की ओर घुमाकर और अनलंकृत एवं युद्ध में इधर उधर बिखरे हुए उनके केशों को समेट कर और हाथ में तलवार लेकर प्रहार करने की इच्छा से दौड़ता हुआ—

यौग०—हंसक! जब तक मैं साँस लेता हूँ, तब तक रुक जाओ।

हंसकः—तदो लुहिलपडलपिच्छिलाए भूमीए सो णिसंसंओ सएण वेएण ओघट्टिदचलणो पडिहदारम्भो हदो पडिदो। [ततो रुधिरपटलपिच्छिलायां भूमौ स नृशंसः स्ववेगेनावघट्टितचरणः प्रतिहतारम्भो हतः पतितः ।]

यौगन्धरायणः—पतितः पाप एषः । भोः !

परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता ।
भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति ॥ ९ ॥

हंसकः—तदो भट्टिणा पुढमं कुन्तप्पहारजणिदमोहो सालङ्कायणो

ततः = पश्चात् धावन्नेव काले इत्यर्थः । नृशंसः = क्रूरः । रुधिरपटलपिच्छिलायाम् = रुधिरस्य शोणितस्य, पटलम् = समूहम्, तेन पिच्छिलायाम् = स्निग्धायाम् पङ्किलायामित्यर्थः । भूमौ = पृथिव्याम् । अवघट्टितचरणः = स्खलितपादः, पतितः = ध्वस्तः । प्रतिहतारम्भः=निष्फलप्रयत्नः । हतः=निराशो-जात इत्यर्थः ।

अन्वयः—परचक्रैः, अनाक्रान्ता, धर्मसङ्करवर्जिता, रक्षिता, भूमिः आपन्नम्, भर्तारम्, परिरक्षति ॥ ९ ॥

व्याख्या—परचक्रैः = शत्रुसेनाभिः । अनाक्रान्ता = अनधिकृता । धर्मसङ्करवर्जिता = धर्माणाम् = वर्णाश्रमव्यवस्थानां सङ्करेण = व्यामोहेन वर्जिता= रहिता वर्णसङ्करशून्येत्यर्थः । रक्षिता = पालिता, भूमिः = पृथ्वी । आपन्नम् = आपद्ग्रस्तम् । भर्तारम् = स्वामिनम् । परिरक्षति = पालयति ॥ ९ ॥

हंसक—तब (दौड़ते समय) शोणित समूह से चिकनी (कीचड़ वाली) पृथ्वी पर अपने ही वेग से पैर के फिसल जाने से गिर पड़ा, उस प्रकार उसका सब प्रयत्न भी निष्फल हो गया एवं स्वामी को मारने की इच्छा भी उसकी समाप्त हो गयी ।

यौग०—पापी गिर पड़ा ।

शत्रुओं की सेना जिसे अपने अधीन नहीं कर सकी और जो धर्मसङ्कर से रहित है (अर्थात् जिस उदयन के राज्यकाल में सब अपने-अपने वर्णाश्रम की व्यवस्था के अनुकूल रहते थे ।) और जो राजा से रक्षित है वह पृथ्वी आज विपत्ति में फंसे अपने स्वामी (राजा) की रक्षा कर रही है ॥ ९ ॥

हंसक—तब भाले के प्रहार से जो पहले मूर्छित था वही प्रद्योत का

णाम पज्जोदस्स अमच्चो 'मा खु मा खु साहसं' त्ति भणिअ तं देसं उवट्ठिदो। [ततो भर्त्रा प्रथमं कुन्तप्रहारजनितमोहः शालङ्कायनो नाम प्रद्योतस्यामात्यो 'मा खलु मा खलु साहसमि'ति भणित्वा तं देशमुपस्थितः।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः।

हंसकः—तदो तक्कालदुल्लहं पणामं करिअ सरीरअन्तणादो तेण मोइदो भट्टा। [ततस्तत्कालदुर्लभं प्रणामं कृत्वा शरीरयन्त्रणात् तेन मोचितो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—विमुक्तः स्वामी। साधु भोः शालाङ्कायन! साधु। अवस्था खलु नाम शत्रुमपि सुहृत्त्वे कल्पयति। हंसक! व्यसनात् किञ्चिदुच्छ्वसितमेव मे मनः अथ किं प्रतिपन्नं तेन साधुना।

भर्त्रा = स्वामिनोदयनेन। कुन्तप्रहारजनितमोहः = भल्लप्रक्षेपेणमूर्च्छितः। अमात्यः = मन्त्री। मा = इतिनिषेधवाक्यम्। साहसम्=गर्हितं कर्म। उपस्थितः = तत्रागतः।

तत्कालदुर्लभम् = उपयुक्तपरिभवकालेदुष्प्राप्यम्। शरीरयन्त्रणात् = देहसंपीडनात्। मोचित := निर्मुक्तः कारितः।

अवस्था = स्थितिः। शत्रुमपि = रिपुमपि। सुहृत्त्वे = मित्रत्वे। कल्पयति = रचयति। किंप्रतिपन्नम् = किमनुष्ठितम्। साधुना = सज्जनेन।

"शालङ्कायन" नामक मन्त्री "ऐसा मत करो ऐसा मत करो" यह कहता हुआ वहाँ आ गया॥

यौग०—तब, तब क्या हुआ।

हंसक—तब उसने तत्काल दुर्लभ (अर्थात् जिस समय सब अपमान कर रहे थे ऐसे समय में।) प्रणाम करके देहबन्धन से स्वामी को छुड़ाया।

यौग०—स्वामी छोड़ दिये गये। धन्यवाद! शालङ्कायन! धन्य हो। अवस्था (दुरवस्था) शत्रुओं को भी मित्र बना लेती है। हंसक! मेरा मन दुःख से कुछ उबरा सा लग रहा है। तब उस सज्जन ने क्या किया?

हंसक—तदो तेण अय्येण अणेअं सोवआरं सन्तिवअणं भणिअ गाढबहुप्पहारदाए असमत्थो वाहणासणत्ति खन्धसअणं आरोविअ उज्जइणिं एव्व णीदो भट्टा। [ततस्तेनार्येणानेकं सोपचारं शान्तिवचनं भणित्वा गाढबहुप्रहारतयासमर्थो वाहनासन इति स्कन्धशयनमारोप्योज्जयिनीमेव नीतो भर्ता।]

यौगन्धरायणः—नीतः स्वामी। एष सोऽनर्थः,

एतत् तद्व्यङ्ग्यमस्माकमेष सोऽतिमनोरथः।
प्रद्योतस्य मनस्वित्वात् स्वामी दुःखेषु वर्तते ॥ १० ॥

आर्येण = शालङ्कायणेन। सोपचारम् = विधिपूर्वकं राजोचितमित्यर्थः। गाढबहुप्रहारतया = गहनाधिकाभिघाततयावाहनासने = अश्वाद्यारोहणे। असमर्थः = अशक्यः। स्कन्धशयनमारोप्य = स्कन्धवाह्यमुपवेश्य। उज्जयिनीम् = प्रद्योतराजधानीं विशालामित्यर्थः। नीतः=गमितः। भर्ता = राजा ॥

अन्वयः—एतत्, तत्, अस्माकम्, व्यङ्ग्यम्, एष, सः, प्रद्योतस्य, अतिमनोरथः, मनस्वित्वात्, स्वामी, दुःखेषु, वर्तते ॥ १० ॥

व्याख्या—एतत् = स्वाम्यपहरणम्। तत् = पूर्वविचारितम्। अस्माकम् = मन्त्रिणाम्। व्यङ्ग्यम् = उपहासः। एषः सः = पूर्वचिन्तितोऽनर्थः। अतिमनोरथः = चरमाभिष्टम्। प्रद्योतस्य = महासेनस्य। मनस्वित्वात् = धीरत्वात्। स्वामी = उदयनः। दुःखेषु = पराधीनेषु व्यसनेषु। वर्तते = अस्ति ॥१०॥

हंसक—तब वह सज्जन अनेक प्रकार से राजोचित शान्ति वचन कहकर (युद्ध में) गहरे एवं अधिक आघात के कारण अश्वपर बैठने में स्वामी के असमर्थ होने के कारण कन्धे से ढोई जानेवाली सवारी (पालकी) में बिठा कर उनको उज्जयिनी की ओर ले गया।

यौग०—स्वामी को ले गया ? यह अनर्थ हो गया।

यही तो (स्वामी को पकड़कर ले जाना ही) जो पहले से ही प्रद्योत ने सोचा था हम लोगों के लिए अपमान है और यही प्रद्योत का अत्यन्त अभीष्ट था। मनस्वी होने के कारण स्वामी दुःख में पड़े हुए हैं ॥१०॥

अथच,

कथमगणितपूर्वं द्रक्ष्यते तं नरेन्द्रः
कथमपुरुषवाक्यं श्रोष्यते सिद्धवाक्यः ।
कथमविषयवन्ध्यं धारयिष्यत्यमर्षं
प्रणिपतति निरुद्धः सत्कृतो धर्षितो वा ॥ ११ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! एसा पडिसरा । [आर्य ! एषा प्रतिसरा ।]

अन्वयः—नरेन्द्रः, अगणितपूर्वम्, तम्, कथम्, द्रक्ष्यते, सिद्धवाक्यः, अपुरुषवाक्यम्, कथम्, श्रोष्यते, अविषयवन्ध्यम्, अमर्षम्, कथम्, धारयिष्यति, निरुद्धः, सत्कृतः धर्षितः, वा, प्रणिपतति ॥ ११ ॥

व्याख्या—नरेन्द्र=राजोदयनः । अगणितपूर्वम् = अज्ञातपूर्वम्, अपरिचितमित्यर्थः । तम् = प्रद्योतम् । कथम् = केन प्रकारेण । द्रक्ष्यते = निरीक्षयिष्यते । सिद्धवाक्यः = मङ्गलवचनः । अपुरुषवाक्यम्=कुलपुरुषसाधारणकथनम् । कथम्= केन प्रकारेण । श्रोष्यते = श्रवणं करिष्यति । अविषयवन्ध्यम् = अविषयेण = अपूर्णाभिप्रायेण, वन्ध्यम् = निष्फलमनोरथम् । अमर्षम् = क्रोधम् । कथम् = केन प्रकारेण । धारयिष्यति = करिष्यति । निरुद्धः = बद्धः वन्दीकृतोजन इत्यर्थः । सत्कृत. = आहृतः धर्षितः = तिरस्कृतः । वा प्रणिपतति = लज्जितो भवति ॥११॥

राजा (उदयन) उस (प्रद्योत) को जिसे पहले कभी नहीं जाना है कैसे देखेगा । मङ्गलवचनों को सुनने वाला अपमानजनक वाक्यों को कैसे सुनेगा । विजय न मिलने के कारण निष्फल हो गया है मनोरथ जिसका ऐसा वह (उदयन) उत्पन्न क्रोध को किस प्रकार सहन करेगा । वन्दी बनाये गये पुरुष का चाहे सत्कार हो या निरादर वह सदा लज्जित ही रहता है ॥११॥

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—आर्य ! यह प्रतिसरा है ।

यौगन्धरायणः—

एतानि तान्यापतितानि काले भाग्यक्षयान्निष्फलमुद्यतानि ।
तुरङ्गमस्येव रणे निवृत्ते नीराजनाकौतुकमङ्गलानि ॥ १२ ॥

प्रतिहारी—अय्य ! इमा पडिसरा । [आर्य इयं ! प्रतिसरा ।]

यौगन्धरायणः—विजये ! स्थाप्यताम् ।

प्रतिहारी—किं त्ति भट्टिमादरं णिवेदेमि । [किमिति भर्तृमातरं निवेदयामि ।]

अन्वयः—रणे निवृत्ते, तुरङ्गमस्य, नीराजनकौतुकमङ्गलानि, उद्यतानि, एतानि, तानि, भाग्यक्षयात्, काले, निष्फलम्, (यथास्यात्तथा) आपतितानि ॥ १२ ॥

व्याख्या—तुरङ्गमस्य = अश्वस्य । रणे = संग्रामे । निवृत्ते = पूर्णे सति । नीराजनाकौतुकमङ्गलानि = नीराजना = आरातिका, लोके "आरती" इत्युच्यते तदाख्यं आरोग्याद्यर्थं कौतुकम् = उत्सवः, तस्य मङ्गलानि = उपयोगानि, इव = यथा । एतानि = सम्मुखमागतानि । तानि = पूर्वकथितानि वस्तूनि । प्रतिसरादीनि उद्यतानि = कार्याणि । भाग्यक्षयात् = दुर्भाग्यवशात् । काले = समये, गते सति निष्फलम् = निरर्थकत्वम् । आपतितानि = प्राप्त्यानि अर्थात् यथा समाप्ते युद्धे अश्वानामारोग्यबलप्राप्त्यर्थं आरातिकाख्यमुत्सवः निरर्थकोभवति तथा स्वामिनि निरुद्धे इमाः प्रतिसरादयोऽपि निरर्थका एव ॥१२॥

यौग०—जिस तरह युद्ध के समाप्त हो जाने पर अश्व की नीराजना विधि के लिये एकत्रित की गयी मङ्गल वस्तुएँ व्यर्थ हो जाती हैं वैसे ही भाग्य के क्षय होने के कारण (दुर्भाग्य से स्वामी के पकड़ जाने पर) इस समय इन सब वस्तुओं का (प्रतिसरा आदि का) मिलना भी व्यर्थ ही है ॥१२॥

(विशेष—पहले राजाओं के यहाँ यह नियम था कि युद्ध में जाने के पहले घोड़े की आरती इत्यादि के द्वारा एक प्रकार से विशेष पूजा की जाती थी जिसे "नीराजना" विधि कहते थे ।)

प्रतीहारी—आर्य ! यह प्रतिसरा है ।

यौग०—विजये ! रख दो ।

प्रतिहारी—स्वामी की माता से क्या कहूँ ?

यौगन्धरायणः—विजये ! एवमेतत् ।

प्रतिहारी—किं एदं । [किमेतत् ।]

यौगन्धरायणः—इदम् ।

प्रतीहारी—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्यो भणतु]

यौगन्धरायणः—अथवा नैतच्छक्यं परिहर्तुम् । निवेदयिष्याम्यत्रभवत्यै । विजये ! स्थिरीक्रियतामात्मा । (कर्णे) एवमिव ।

प्रतीहारी—हा ।

यौगन्धरायणः—विजया खल्वसि ।

प्रतीहारी—एसा गच्छामि मन्दभाआ । [एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

यौगन्धरायणः—विजये न खलु त्वयात्रभवत्यै गृहीतः स्वामीति सहसा निवेदयितव्यम् । स्नेहदुर्बलं मातृहृदयं रक्ष्यम् ।

निवेदयितव्यम् = संसूचनीयम् । स्नेहदुर्बलम्=स्नेहेन = प्रेम्णा दुर्बलम्= निर्बलम् । मातृहृदयम् = जननीहृदयम् ।

यौग०—विजये ! यह, इस प्रकार से ।

प्रतीहारी—यह क्या ?

यौग०—यह ।

प्रतिहारी—कहिये, कहिये आर्य ! कहिये ।

यौग०—अथवा इस बात को छुपा कर रखना उचित नहीं है । स्वामी की माता को यह कहूँगा । विजये ! हृदय को मजबूत करो (कान में) इस तरह ।

प्रतीहारी—हाय !

यौग०—विजया (तुम विजया हो) धैर्य धारण करो ।

प्रतिहारी—मैं मन्दभागिनी जाती हूँ ।

यौग०—विजये । तुम जाकर राजमाता से एकाएक ही मत कह देना कि स्वामी पकड़ लिये गये । पुत्रस्नेह के कारण दुर्बल माता के हृदय की रक्षा करनी चाहिए ।

प्रतीहारी—कहं दाणि णिवेदेमि। [कथमिदानीं निवेदयामि।]

यौगन्धरायणः—शृणु—

पूर्वं तावद् युद्धसम्बन्धदोषाः
प्रस्तोतव्या भावना संशयानाम्।
सन्दिग्धेऽर्थे चिन्त्यमानो विनाशे
रूढे शोके कार्यतत्त्वं निवेद्यम् ॥ १३ ॥

प्रतीहारी—घेत्तिस्सं। [ग्रहीष्यामि।] (निष्क्रान्ता।)

यौगन्धरायणः—हंसक ! त्वमिदानीं स्वामिना किं न गतः।

हंसकः—अय्य ! ववसिदो खु अहं अत्ताणं अणुग्गहिदुं सालङ्काअणेण णिउत्तो-गच्छ इमं वुत्तन्तं कोसम्बीए णिवेदेहि त्ति। [आर्य !

अन्वयः—पूर्वम्, संशयानाम्, भावनाः, युद्धसम्बन्धदोषाः प्रस्तोतव्याः, अर्थे, विनाशे, चिन्त्यमाने, शोके, रूढे कार्यतत्त्वम्, निवेद्यम् ॥ १३ ॥

व्याख्या—पूर्वम्=प्रथमम्। संशयानाम्=सन्देहानाम्। भावनाः=उत्पादकाः। युद्धसम्बन्धदोषाः=रणप्रयुक्ताऽनर्थाः। प्रस्तोतव्याः=वक्तव्याः। सन्दिग्धे=संशययुक्ते। अर्थे=परिणामे। विनाशे=संहारे। चिन्त्यमाने=विचार्यमाणे। शोके=दुःखे। रूढे=निमग्ने, सति। कार्यतत्त्वम्=कर्मस्वरूपम् 'स्वामिग्रहणम्' इत्यर्थः। निवेद्यम् ।१३।

प्रतीहारी—इस समय किस तरह निवेदन करूँ।

यौग०—सर्वप्रथम तो संदेह को उत्पन्न करने वाले युद्धसम्बन्धी दोषों को कहना फिर जब वह (राजमाता) सन्देह करती हुई विनाश की आशङ्का करने लगें (सोचने लगें) तब उनके शोकाभिभूत हो जाने पर मुख्य कार्य (स्वामी का पकड़ा जाना) को कहना ॥१३॥

प्रतीहारी—ऐसाही करूंगी।

यौग०—हंसक ! तुम उस समय (जब स्वामी को पकड़कर ले जा रहे थे) स्वामी के साथ क्यों नहीं गये।

हंसक—आर्य ! मैं स्वामी के साथ जाकर अपने को कृतार्थ करने को उद्यत हुआ परन्तु शालङ्कायन ने मुझे यह आदेश दिया कि तुम यह वृत्तान्त कौशाम्बी में जाकर कहो।

व्यवसित: खल्वहमात्मानमनुग्रहीतुं सालङ्कायनेन नियुक्तः—गच्छेमं वृतान्तं कौशाम्ब्यां निवेदयेति।]

यौगन्धरायण:—किन्नु खल्विदानीं निराशमनुसारं कर्तुकाम: उताहो स्निग्धपुरुषसन्निकर्षं परिहरति।

हंसक:—अहइं। [अथ किम्]

यौगन्धरायण:—स स्वकं विस्मयादात्मानमाविष्करोति, उत सर्वारम्भसिद्धौ रमणीयं भवति। अथ सामन्तरेण स्वामी न किञ्चिदाह।

हंसक:—अय्य ! अत्थि; पदक्खिणीकरअन्तो भट्टारं अन्तज्जलावगढाए दिट्ठीए बहुकं सन्दट्ठुकामेण विअ म्हि भट्टिणा उत्तो-गच्छ।

व्यवसित: = उद्यत:। आत्मानमनुग्रहीतुम=स्वकृतार्थयितुम। सालङ्कायनेन = प्रद्योतामात्येन। नियुक्त: = आदिष्ट:।

उताहो = अथवा। स्निग्धपुरुषसन्निकर्षम् = प्रेमिपरिजनसानिध्यम्। परिहरति = निषेधयति।

विस्मयात् = दर्पात् "चित्रे दर्पे च विस्मय:" इति यादव:। स्वकम् — निजसम्बन्धिनीम्। आत्मानम् = बुद्धिम्। आविष्करोति = प्रकटीकरोति। उत = अथवा। सर्वारम्भसिद्धौ = निखिलकार्यनिष्पत्तौ। रमणीयं भवति = प्रसन्नो भवति। अथ = किम्? मामन्तरेण = मामुद्दिश्येतिभाव:। न किञ्चिदाह = नकिमप्यचकथत्? इति प्रश्न:। तेन कथयितव्य एव इत्यभिप्रायेणेयं जिज्ञासा।

यौग०—क्या उसने स्वामी की रक्षा से निराश होकर ऐसा किया अथवा प्रेमी सेवक को स्वामी के समीप नहीं रहने देना चाहता है।

हंसक—और क्या ?

यौग०—वह अभिमान में आकर अपनी बुद्धि का परिचय दे रहा है अथवा सभी कार्य (स्वामी का पकड़ा जाना) सिद्ध हो जाने से आनन्दित हो रहा है। क्या स्वामी ने मेरे लिए कुछ नहीं कहा ? (अर्थात् जरूर कहा होगा।)

हंसक—आर्य ! है, (अर्थात् आपके लिए संदेश है।) जब मैं स्वामी की प्रदक्षिणा करके कौशाम्बी आने लगा, उस समय वे बहुत कुछ कहने को

ज्ञोअन्ध-[आर्य ! अस्ति, प्रदक्षिणीकुर्वन् भर्तारमन्तर्जलावगाढया दृष्ट्या बहुकं सन्देष्टुकामेनेवास्मि भणितः—गच्छ यौगन्ध—] (इत्यर्धोक्ते तिष्ठति ।)

यौगन्धरायणः—स्वैरमभिधीयतां, स्वामिवाक्यमेतत् ।

हंसकः—जोअन्धराअणं पेक्खेहि त्ति । [यौगन्धरायणं प्रेक्षस्वेति ।]

यौगन्धरायणः—मा तावत् । सर्वसचिवमण्डलमतिक्रम्यैको यौगन्धरायणो द्रष्टव्य इत्याह ।

हंसकः—अहइं । [अथ किम् ।]

यौगन्धरायणः—तेन हि अनर्हप्रतिक्रियमनिर्विष्टभर्तृपिण्डमनुपकृतराजसत्कारं यदि खलु मां द्रष्टव्यं मन्यते स्वामी ।

अन्तर्जलावगाढया = अन्तःबाष्पपरिपूर्णया । दृष्ट्या = नेत्रेण । बहुकम् = अत्यर्थम् ।

स्वैरम् = यथेच्छम् । अभिधीयताम् = उच्यताम् । सर्वसचिवमण्डलम् = निखिलमन्त्रिसमूहम् । अतिक्रम्य = परित्यज्य । अनर्हप्रतिक्रियम् = उपयुक्तप्रतिक्रियाहीनम् । आपद्ग्रस्ते स्वामिनि योग्यां प्रतिक्रियामकृतवन्तमिति भावः ।

अनिर्विष्टभर्तृपिण्डम् = अनिर्विष्टम् = दूषितम्, उपभुक्तः भर्तृपिण्डः = राजाऽन्नं येन स अनिर्विष्टभर्तृपिण्डः तम्, (बहु०) । न उपकृतः = अनुपकृतः — (नञ्०) = निष्प्रतिक्रियः, राजसत्कारः = भर्तृसम्मानं येन स अनुपकृतसत्कारः तम् ।

इच्छा रहते हुए भी आँखों में आँसू भर जाने के कारण (अर्थात् गले के रुँध जाने के कारण) इतना ही कह पाये कि "जाओ यौगन्ध—" (इस प्रकार आधी बात कहकर (रुक जाता है) ।

यौग०—स्वेच्छा से (निर्भय होकर) कहो, यह तो स्वामी का वाक्य (संदेश) है ।

हंसक—यौगन्धरायण से मिलो ।

यौग०—ऐसा नहीं । क्या सभी मन्त्रिमण्डल को छोड़कर यौगन्धरायण से (मुझसे) ही उन्होंने मिलने को कहा ।

हंसक—और क्या ?

यौग०—तो क्या स्वामी जिसने (विपत्ति के समय) उचित प्रतिकार नहीं किया तथा स्वामी के अन्न को खाकर जिसने उसे दूषित किया और

हंसक—आहं। [बाढम् ।]

यौगन्धरायणः—पुरुषान्तरितं मां द्रक्ष्यति स्वामी,

रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा

समुपगतविनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम्।

जितमिति कृतबुद्धिं वञ्चयित्वा नृपं तं

पुनरधिगतराज्यः पार्श्वतः श्लाघनीयम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—रिपुनृपनगरे, बन्धने वा, वने वा, समुपगतविनाशः तुल्यनिष्ठम्, प्रेत्य, जितमिति कृतबुद्धिम्, तम्, नृपम्, वञ्चयित्वा, अधिगतराज्यः, श्लाघनीयम्, माम्, पार्श्वतः "द्रक्ष्यति" ॥ १४ ॥

व्याख्या—रिपुनृपनगरे = शत्रुभूपनगर्याम्। वा = अथवा, बन्धने = कारावासे। वने वा = अरण्ये वा। समुपगतविनाशः = समुपगतः = पार्श्वागतः, विनाशो = अन्तः, यस्य स समुपगतविनाशः = पार्श्वागतान्तः। सः राजेत्यर्थः। प्रेत्य = गत्वा (स्वर्लोके) तुल्यनिष्ठम् = स्वर्गस्थं माम् (द्रक्ष्यति)। जितमिति = अहं छलेन वत्सराजं जितवान्, गृहीतवान् इति मे जयः इत्थम् कृतबुद्धिम् = कृता = उत्पादिता बुद्धिः मनीषा येन स कृतबुद्धिः। तम् = प्रद्योतमित्यर्थः नृपम् = राजानम्। वञ्चयित्वा = छलयित्वा। अधिगतराज्यः = प्राप्तराज्यः स्वामी। श्लाघनीयम् = प्रशंसनीयं मामित्यर्थः। पार्श्वतः समीपतः (द्रक्ष्यति) ॥ १४ ॥

जिसने स्वामी से प्राप्त-सत्कार का बदला नहीं चुकाया, ऐसे (इन अवगुणों से युक्त होने पर भी) मुझे देखना पसन्द करते हैं।

हंसक—हाँ।

यौग०—दूसरे पुरुष का रूप धारण करके भी मैं रहूँगा तो स्वामी मुझे देखेंगे।

स्वामी मुझे शत्रुओं की राजा की नगरी में, जेल में, एवं वन में भी अपने समीप ही देखेंगे (पायेंगे)। अथवा (अधिक क्या) मरने के बाद स्वर्ग जाकर भी स्वामी मुझे अपने समान ही पायेंगे। (अर्थात् मुझे भी स्वर्ग में पायेंगे)। जिनको (उदयन को) छलकर जो (प्रद्योत) अपना विजय मान बैठा है ऐसे उस राजा प्रद्योत को छलकर अपने राज्य को पाये हुए स्वामी मुझको अपने समीप ही पायेंगे ॥ १४ ॥

(नेपथ्ये)

हा हा भट्टा ! [हा हा भर्तः !]

यौगन्धरायणः—

एष शोकप्रतीकारो यथाशक्ति निवेद्यत ।
एतत् स्त्रीभिरसामर्थ्यं मन्त्रिणामनुवर्ण्यते ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! भट्टिमादा । [आर्य भर्तृमाता ।]

यौगन्धरायणः—किं किम् ।

प्रतीहारी—आह—

अन्वयः—एषः, शोकप्रतीकारः, यथाशक्ति निवेद्यते, स्त्रीभिः, एतत्, मन्त्रिणाम्, असामर्थ्यम्, अनुवर्ण्यते ॥ १५ ॥

व्याख्या—एषः = अयम् । शोकप्रतीकारः = दुःखहरणोपायः, यथाशक्ति = स्वबुद्ध्यनुसारम् । निवेद्यते = प्रस्तूयते । स्त्रीभिः = राजाङ्गनाभिः । एतत् = आक्रन्दनम् । मन्त्रिणाम् = अमात्यानाम् । असामर्थ्यम् = अकर्मण्यत्वम् । अनुवर्ण्यते = प्रकाश्यते । स्त्रीणां = स्वसुहृदांकृते शोकस्य प्रतीकारः रोदनमेव भवति तदेताभिः यथाशक्ति क्रियते, परन्तु मन्त्रिणां दौर्बल्यं तद्रोदनं प्रकटयतीति भावः ॥ १५ ॥

(नेपथ्य में)

हा, हा ! स्वामी

यौग०—शोक दूर करने का ही यही एक (रोना) उपाय है जो (स्त्रियों द्वारा) यथाशक्ति किया जा रहा है । (परन्तु) स्त्रियों का यह विलाप मन्त्रियों के असामर्थ्य को प्रकट कर रहा है ॥ १५ ॥

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—आर्य ! राजमाता ने ।

यौग०—क्या, क्या ?

प्रतीहारी कहा है—

यौगन्धरायणः—किमिति ।

प्रतीहारी—एवंविहस्स सुहिज्जणेण परिगहीदस्स वच्छराअस्स अअं वुत्तन्तो ! किं सक्कं कत्तुं अन्तरेण विहाणं । ता सम्माणिअ सुहिज्जणं समत्थिअदु । जो खु दाणि सङ्कटेसु वा ण विसीददि, विसमगदो वा ण पय्यवचिट्ठदि, वञ्चिदो वा ण णिव्वेदं गच्छदि, पडिघादेसु वा पाणा ण समुज्झदि, सो खु बुद्धिमन्तो पुच्छिज्जइ पढमं एव्व मे वच्छस्स वअस्सो पच्छा पमच्चो आणेदु मे पुत्तअं पुत्तओ त्ति । [एवंविधस्य सुहृज्जने परिगृहीतस्य वत्सराजस्यायं वृत्तान्तः । किं शक्यं कर्तुमन्तरेण विधानम् । तत् सम्मान्य सुहृज्जनं समर्थ्यताम् । यः खल्विदानीं सङ्कटेषु वा न विषीदति, विषमगतो वा न पर्यवतिष्ठते, वञ्चितो वा न निर्वेदं गच्छति, प्रतिघातेषु वा

एवंविधस्य = एतादृशपराक्रमशालिनः । सुहृज्जनेन = मित्रवर्गेण । परिगृहीतस्य = युक्तस्य । वत्सराजस्य = उदयनस्य । वृत्तान्तः = समुदाचारः । विधानम् = कर्म, रिपुनिर्यातनमित्यर्थः । अन्तरेण = विना, किंशक्यम् = किं कर्तव्यम् । सम्मान्य = सम्पूज्य । समर्थ्यताम् = कर्तव्यं निश्चीयताम् । यः = यौगन्धरायणः । इदानीम् = राजनिबन्धने सति । सङ्कटेषु वा = आपत्तिषु वा । न विषीदति = न दुःखितो भवति । विषमगतो = विपरीतावस्थास्थितोऽपि ।

यौग०—क्या ?

प्रतीहारी—ऐसे पराक्रमशाली एवं मित्रों से युक्त वत्सराज की यह स्थिति है । शत्रु से विना बदला लिये क्या किया जा सकता है ? अतः मित्रों का सम्मान कर उनके साथ (विचार कर) कर्तव्य का निश्चय कीजिये । इस समय जो सङ्कट में रहने पर भी दुःखी नहीं होता, विपमपरिस्थिति में भी स्वस्थ होकर नहीं बैठता, छले जाने पर भी जो ग्लानि का अनुभव नहीं करता (अर्थात् वो अनुत्साहित नहीं होता) बाधाओं के आने पर जो प्रयास (धैर्य) नहीं छोड़ता ऐसे बुद्धिमान् पुत्र पहले मेरे पुत्र (उदयन) का मित्र पीछे उसका मन्त्री यौगन्धरायण को मैं कहती हूँ कि मेरे पुत्र (उदयन) को ला दो ।

प्राणान् न समुज्झति; स खलु बुद्धिमान् पृच्छ्यते प्रथममेव मे वत्सस्य वयस्यः पश्चादमात्य आनयतु मे पुत्रकं पुत्रक इति ।]

यौगन्धरायणः—अहो नु खल्वत्रभवत्या राजवंशश्रितं धीरवाक्यमभिहितम् । अत्रभवत्या सम्भावनां पूजयामि । विजये ! आपस्तावत् ।

प्रतीहारी—अय्य ! तह । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आवो । [आर्य ! तथा । इमा आपः ।]

यौगन्धरायणः—आनय (आचम्य) विजये ! किमाह तत्रभवती ।

प्रतीहारी—आणेदु मे पुत्तअं पुत्तओ त्ति । [आनयतु मे पुत्रकं पुत्रक इति]

यौगन्धरायणः—हंसक ! किमाह स्वामी ।

न पर्यवतिष्ठते = न निश्चिन्तस्तिष्ठति । वञ्चितो वा = छलितोऽपि । निर्वेदम् = ग्लानिम् । न गच्छति = नानुभवति । प्रतिघातेषु = विघातेषु, जायमानेषु न प्राणान्समुज्झति = प्रयासशक्तिर्न त्यजति । स खलु = एवं विधः, बुद्धिमान् = मनीषी, भवान् इति भावः । पुत्रकः = पुत्ररूपः यौगन्धरायण इति भावः । प्रथमम् = प्राक् । मे = राजमातुः । वत्सस्य=पुत्रस्योदयनस्येति भावः । वयस्यः= मित्रम् । पश्चात् = ततः । अमात्यः = मन्त्री । पृच्छ्यते = कथ्यते (यत्) मे= मम । पुत्रकम् = तनयमुदयनम् । "आनयतु०" इति ।

यौग०—अहो ! राजमाता ने राजवंश के अनुरूप ही धैर्यपूर्ण बात कही है । मैं श्रीमती (राजमाता) के इस मनोरथ को पूर्ण करूँगा । विजये ! जल तो लाओ ।

प्रतीहारी—आर्य ! अच्छा (निकलकर पुनः प्रवेशकर) यह जल है ।

यौग०—लाओ । (आचमन करके) विजये ! राजमाता ने क्या कहा है ।

प्रतीहारी—हे पुत्र ! मेरे पुत्र को ला दो ।

यौग०—हंसक ! स्वामी ने क्या कहा है ?

हंसकः---जोअन्धरायणं पेक्खेहि त्ति। [यौगन्धरायणं प्रेक्षस्वेति।]

यौगन्धरायणः---विजये !

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्मि यौगन्धरायणः ॥ १६ ॥

प्रतीहारी---अय्य ! तह। [आर्य ! तथा।] (निष्क्रान्ता।)

(प्रविश्य)

निर्मुण्डकः---अय्य ! अच्छरिअं णिव्वुत्तं। भट्टिणो सन्तिणिमित्तं वट्टिअभोअणं बम्हणजणं पेक्खिअ केण वि किल उन्मत्तवेसधारिणा बह्मणेण उच्चं हसिअ उत्तं---सेरं सेरं अण्हन्तु भवन्तो अब्भुदअं खु

अन्वयः---राहुणा, शत्रुबलग्रस्तः चन्द्रमा, इव, यदि, राजानम्, न, मोचयामि, यौगन्धरायणः, न, अस्मि ॥ १६ ॥

व्याख्या---राहुणा = रक्षःशिरसा, एतन्नामकराक्षसग्रहेण। चन्द्रमा इव = शशी यथा। शत्रुबलग्रस्तः = रिपुसैन्यग्रहीतः राजा। तथाभूतं राजानम् = उदयनम्। "यदि" न मोचयामि = नोद्धारयामि चेत्। नास्मि यौगन्धरायणः = अहं यौगन्धरायणो न। अत्रायम्भावः यथा राहुणाग्रस्तश्चन्द्रः शीघ्रमेव मुच्यते तथैव प्रद्योतग्रस्तं राजानं यदि न शीघ्रतया मोचयामि तर्हि मन्नाम यौगन्धरायणो न ॥ १६ ॥

हंसक---यौगन्धरायण से मिलो।

यौग०---विजये !

राहु से ग्रस्त चन्द्रमा की तरह शत्रुओं की सेना के द्वारा पकड़े गये स्वामी को यदि मैं (शीघ्र ही) न छुड़ाऊं तो मैं यौगन्धरायण नहीं ॥१६॥

प्रतीहारी---आर्य अच्छा। (निकल जाती है।)

(प्रवेश कर)

निर्मुण्डक---आर्य ! आश्चर्य हो गया। स्वामी की शान्ति के लिए भोजन करने के लिए आये ब्राह्मण समूह को देखकर उन्मत्तवेषधारी किसी ब्राह्मण ने जोरों से हंसकर ब्राह्मणों से कहा आप लोग जितनी इच्छा हो खायें इस राजकुल का अवश्य अभ्युदय होगा। और यह कहते-कहते वह अन्तर्हित हो गया।

इमस्स राअउलस्स भविस्सदि त्ति। तदो वअणसमआलं एव्व अदंसणं गदो। [आर्य ! आश्चर्यं निर्वृत्तम्। भर्तुः शान्तिनिमित्तमुपस्थितभोजनं ब्राह्मणजनं प्रेक्ष्य केनापि किलोन्मत्तवेषधारिणा ब्राह्मणेनोच्चं हसित्वोक्तं—स्वैरं स्वैरमश्नन्तु भवन्तः, अभ्युदयः खल्वस्य राजकुलस्य भविष्यतीति ततो वचनसमकालमेवादर्शनं गतः।]

यौगन्धरायणः—अपि सत्यम्।

(ततः प्रविशति ब्राह्मणः)

ब्राह्मणः—इमेऽत्रभवता परिगृहीता आत्मप्रयोजनोत्सृष्टाः परिच्छदविशेषाः। एभिः प्रच्छादितशरीरो भगवान् द्वैपायनः प्राप्तः।

यौगन्धरायणः—एवं, द्वैपायनः प्राप्तः।

निर्वृत्तम् = सम्पन्नम्। शान्तिनिमित्तम् = कल्याणहेतुकम्। उपस्थितभोजनम् = समीपस्थान्नम्। ब्राह्मणजनम् = विप्रसमूहम्। प्रेक्ष्य = अवलोक्य। उन्मत्तवेषधारिणा = विक्षिप्ताकृतिकारिणा। उच्चम् = तारस्वरेण, उन्मुक्तमिति यावत्। उक्तम् = कथितम्। स्वैरम् = यथेच्छम्। अश्नन्तु = खादन्तु। खलु = निश्चयेन। अस्य राजपुत्रस्य = उदयनान्वयस्य। अभ्युदयः = वृद्धिः कल्याणम्। भविष्यति = यास्यति। ततो = कथनान्तरम्। वचनसमकालमेव = भाषणसमयमेव। अदर्शनं गतः = अन्तर्हितः।

इमे = हस्तस्थिताः। अत्रभवता = उन्मत्तवेषधारिणा ब्राह्मणेन। आत्मप्रयोजनोत्सृष्टाः = स्वामीप्सितसिद्धत्वात्त्यक्ताः। परिच्छदविशेषाः = वस्त्रविशेषाः। परिगृहीताः = पुनः धारिताः। प्रच्छादितशरीरः = गुप्तकायः। द्वैपायनः = व्यासः। प्राप्तः = आगतः।

यौग०—क्या यह सत्य है।

(तब ब्राह्मण प्रवेश करता है।)

ब्राह्मण—अपना कार्य पूर्ण हो जाने पर त्यागे हुए इन वस्त्रों को इन्होंने (पुनः) धारण कर लिया है। इन वस्त्रों से शरीर को छिपा कर भगवान् व्यास आये हैं।

यौग०—अच्छा, द्वैपायन आये हैं।

ब्राह्मणः—बाढम् ।

यौगन्धरायणः—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

ब्राह्मणः—पश्यतु भवान् ।

यौगन्धरायणः—कथमन्यद् रूपमिव मे संवृत्तम् । हन्त भोः ! गतोऽस्मि स्वामिसन्निकर्षमेव । इदानीं ममोपदेशार्थमिवोत्सृष्टाः ।

उन्मत्तसदृशो वेषो धारितस्तेन साधुना ।
मोचयिष्यति राजानं मां च प्रच्छादयिष्यति ॥ १७ ॥

मे = मम । कथम् = किङ्कारम् । अन्यद्रूपमिव = रूपान्तरमिव । संवृत्तम् = जातम् । स्वामिसन्निकर्षम् = भर्तृसामीप्यम् । गतोऽस्मि = प्राप्तोऽस्मि । इदानीम् = अधुना । ममोपदेशार्थमिव = मच्छिक्षणार्थमिव । उत्सृष्टाः = त्यक्ताः । अत्रायं भावः प्रतिभाति यदधुना मामुपदिशति "इमान् परिच्छदान् प्रधार्य रिपुपुरसमीपं निर्भयं भ्रम" इति ॥

अन्वयः—तेन, साधुना, उन्मत्तसदृशः, वेषः, धारितः, राजानम्, मोचयिष्यति, माम्, च, प्रच्छादयिष्यति ॥ १७ ॥

व्याख्या—तेनसाधुना = उपरोक्तद्वैपायनेन सज्जनेन । उन्मत्तसदृशः = विक्षिप्तानुरूपः । वेषः = वस्त्रादिकम् । धारितम् = कृतम् । सः राजानम् = उदयनम् । मोचयिष्यति = उद्धारं करिष्यति । माम् = यौगन्धरायणम् । प्रच्छादयिष्यति = छन्नरूपं करिष्यति ॥ १७ ॥

ब्राह्मण—हाँ ।

यौग०—तब तो मैं देखूंगा ।

ब्राह्मण—आप देखें ।

यौग० - मेरा रूप क्यों दूसरी तरह हो गया । लगता है जैसे मैं स्वामी के समीप चला आया हूं । इस समय मुझे ("इन वस्त्रों को धारण कर शत्रु के नगर में निर्भय घूमो") इस प्रकार उपदेश देने के लिए ये (इन वस्त्रों को) छोड़ गये हैं ।

उस सज्जन द्वैपायन ने पागलों का सा रूप धारण किया वह राजा को छुड़ायेगा और मुझे भी छिपावेगा ।।१७।।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! भट्टिमादा आह—इच्छामि पुत्तअं पेक्खिदुं त्ति । [आर्य ! भर्तृमाताह—इच्छामि मे पुत्रकं प्रेक्षितुमिति ।

यौगन्धरायणः—अयमहमागच्छामि । आर्य ! शान्तिगृहे मां प्रतीक्षस्व ।

ब्राह्मणः—बाढम् । (निष्क्रान्तः ।)

यौगन्धरायणः—हंसक ! विश्रम्यतामिदानीम् ।

हंसक—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।] (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—विजये ! गच्छाग्रतः ।

प्रतीहारी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—भोः !

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।

शान्तिगृहे = विश्रामालये । प्रतीक्षस्व = प्रतीक्षां कुरु ।

अन्वयः—मथ्यमानात्, काष्ठात्, अग्निः, जायते, खन्यमाना, भूमिः, तोयम्, ददाति, सोत्साहानाम्, नराणाम्, असाध्यम्, नास्ति, मार्गारब्धाः, सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ १८ ॥

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी—आर्य ! राजमाता ने कहा है कि पुत्र (यौगन्धरायण) को देखना चाहती हूँ ।

यौग०—मैं यह आ रहा हूँ । आर्य शान्तिगृह में मेरी प्रतीक्षा कीजिये ।

ब्राह्मण—अच्छा ! (निकल जाता है)

यौग०—हंसक ! इस समय तुम भी आराम करो ।

हंसक—आर्य ! अच्छा । (चला जाता है)

यौग०—विजये ! आगे-आगे चलो ।

प्रतीहारी—आर्य ! जो आज्ञा ।

यौग०—अरे !

सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ १८ ॥

(निष्क्रान्तः)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

व्याख्या—मथ्यमानात्=निर्मन्थनशीलात् । काष्ठात्=अरणेः । अग्निः=वह्निः । जायते = अभिज्वलयति, उत्पद्यते । खन्यमाना = अवदार्यमाणा । भूमिः = पृथ्वी । तोयम् = जलम् । ददाति = प्रयच्छति । सोत्साहानाम् = उत्साहयुक्तानाम्, उद्योगशीलानामित्यर्थः । असाध्यम् = कर्तुमशक्यम् । नास्ति = किमपि नास्ति । मार्गेण = उपयुक्तपथा आरब्धाः = कृताः । सर्वयत्नाः = अखिलोपायाः । फलन्ति = सफलीभवन्ति ॥१८॥

अतिशय घर्षण करने पर काठ (अरणि) से आग निकलती है; खोदी जाने पर पृथ्वी पानी देती है । उत्साही व्यक्तियों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है, समुचित प्रकार से आरम्भ किये गये सभी प्रयास सफल होते हैं ॥१८॥

(निकल जाता है ।)

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—आभीरक ! अभीरक ! गच्छ महासेनवचनात् प्रतीहार-रक्षकं ब्रूहि—एष काशिराजोपाध्याय आर्यजैवन्तिरद्य दौत्येन प्राप्तः । अस्य सामान्यदूतसत्कारं पृष्ठतः कृत्वा सुखमिव निवेश्यताम् । यथा

ततः = यौगन्धरायणादीनां रङ्गमञ्चान्निष्क्रमणानन्तरम् । प्रविशति = रङ्गमञ्चे समागच्छति ।

महासेनवचनात् = महासेनस्य = प्रद्योतस्य, वचनात् = आदेशात् (ष०तत्०)। प्रतीहाररक्षकम् = प्रतीहारस्य = द्वारस्य, रक्षकम् = पालकम्, द्वारपालमित्यर्थः (प० तत्०) काशिराजोपाध्यायः = काश्याः = वाराणस्याः, राजा नृपस्तस्य उपाध्यायः पुरोहितः (उभयत्र ष० तत्० समासः) आर्यजैवन्तिः = एतन्नामकः । दौत्येन = संवादसंवाहकत्वेन । प्राप्तः = प्राप्तः । अस्य = काशि-राजोपाध्यायस्य । सामान्यदूतसत्कारम् = अविशेषदूतसम्मानम् । पृष्ठतः कृत्वा = परित्यज्य सुखमिव = सुखं यथास्यत्तथैव । निवेश्यताम् = प्रवेशय । अर्थात् सर्वसाधारणदूतसम्मानं परित्यज्य विशेषसम्मानेनास्य अतिसत्कारं विधीयतामिति भावः । यथा च = येन प्रकारेण च । अतिथिसत्कारम् = आतिथ्यभावम् । जानीयात् = अनुभूयात्, "अनेन मत्सकारः कृत" इत्यनु-

(उसके बाद कंचुकी प्रवेश करता है)

कञ्चुकी—आभीरक ! आभीरक ! जाओ महासेन के आज्ञा से द्वारपाल को कहो कि आज काशी के राजा के पुरोहित आर्य जैवन्ति दूत बनकर आये है। सर्वसाधारण दूतों से अधिक इनका सत्कार करके इनको ठहराओ। जिस तरह यह समझ जायें कि मेरा सत्कार किया गया वैसा करो। ओ! यह प्रतिदिन अच्छे-अच्छे कुल के राजा लोग कन्या के विवाह के लिए दूत भेज रहे हैं। और महासेन न तो किसी को मना करते हैं और नहीं किसी का अनुमोदन करते हैं। यह क्या है ? अथवा कन्या का विवाह भाग्य के ही अधीन होता है। क्योंकि—

चातिथिसत्कारं जानीयात् तथा प्रयतितव्यम् इति । भोः ! एवं नामाहन्यहनि गोत्रानुकूलेभ्यः राजकुलेभ्यः कन्याप्रदानं प्रति दूतसम्प्रेषणा वर्तते । न खलु महासेनः कञ्चिदपि प्रत्याचष्टे, न चाप्यनुगृह्णीते । किन्नु खल्विदम् । अथवा दैवमत्र कन्याप्रदानेऽधिकृतम् । कुतः,

व्यक्तं न तावत् समुपैति तस्य दूतो वधूत्वे विहिता हि यस्य ।
ततो नरेन्द्रेषु गुणान् नरेन्द्रो न वेत्ति जानन्नपि तत्प्रतीक्षः ॥ १ ॥

भवेत् । तथा = तेन विधिना । प्रयतितव्यम् = प्रयासः कर्तव्यम् । भोः = इति आभीरकं प्रति सम्बोधनवाक्यम् । एवं नाम = एवमेव । अहन्यहनि = प्रतिदिनम् । वीप्सायां द्विरुक्तिः । गोत्रानुकूलेभ्यः = वंशानुरूपेभ्यः । राजकुलेभ्यः = नृपवंशेभ्यः, अनेकगोत्रोत्पन्नेभ्य इत्यर्थः । कन्याप्रदानंप्रति = पुत्रिविवाहार्थम् । दूतसम्प्रेषणा, वर्तते = भवति । कञ्चिदपि = एकमपि राजानम् । न प्रत्याचष्टेः न निषेधयति । न चाप्यनुगृह्णीते = नानुमोदयते । किन्नुखल्विदम् = किमिदमिति आश्चर्यं प्रश्नः । अथवा = स्वयमेव स्वजिज्ञासां समाधानेन शाम्यति । कन्याप्रदाने = पुत्रिपरिणये दैवम् = भाग्यम् । अधिकृतम् = स्वीकृतम् । अर्थात् कन्याविवाहः भाग्याधीनो भवति । यथोक्त "विवाहोजन्म मरणं चयदा यत्र भविष्यतीत्यादि" । इति भावः ॥ कुतः = यतो हि ।

अन्वयः—यस्य, हि, वधूत्वे, तस्य, दूतः, न तावत्, समुपैति, व्यक्तम्, ततः, तत्प्रतीक्षः नरेन्द्रः, नरेन्द्रेषु, गुणान्, जानन्नपि, न, वेत्ति, ॥ १ ॥

व्याख्या—हि = निश्चयेन । यस्य = नृपविशेषस्य । वधूत्वे = सा वासवदत्ता कान्तात्वेन = विहिताः निश्चिता (दैवेन) । तावत् = अधुनापर्यन्तम् । तस्य = वरत्वेन भाविनो राज्ञः । दूतः = सेवकः, संवादहारः । न समुपैति = नागतः । इति, व्यक्तम् = स्पष्टम् । ततः = तस्मात् कारणात् । तत्प्रतीक्षः = उपयुक्तराजदूतस्यप्रतीक्षां क्रियमाणः । नरेन्द्रः = महासेनः । नरेन्द्रेषु = प्रेषितदूतेषु नृपेषु । गुणान् = सद्गुणान् । जानन्नपि = विदन्नपि । न वेत्ति = न जानातीव ॥ १ ॥

निश्चय ही (भाग्य से) वासवदत्ता जिसकी प्रिया होने वाली है उस राजा का दूत अभी तक नहीं आया है । इसीलिए महासेन उस राजा के दूत की प्रतीक्षा करता हुआ अन्य राजाओं के गुणों को जानकर भी उनके गुणों को नहीं समझ रहा है ॥ १ ॥

अये संलीयमानान्तःपुरचरः सनाथीभवत्ययं देशः । अये अयं महासेनः, य एषः,

दूर्वाङ्कुरस्तिमितनीलमणिप्ररोहैः
पीताङ्गदैः परिगतैः परिणीवितांसः[1] ।
अस्माद् घनात् कनकतालवनैकदेशा-
न्निर्धावितः[2] शरवणादिव कार्त्तिकेयः ॥ २ ॥

अये = साश्चर्यसम्बोधनवाक्यम् । संलीयमानान्तःपुरचरः = संलीयमाना: = प्रच्छन्ना:, अन्तःपुरचराः = अन्तःपुरसेवकाः, यत्र सः देशः = प्रदेशः । सनाथी भवति = राज्ञायुक्तोवर्तते । अये = इदि सम्बोधनम् । अयं महासेनः = एष सः प्रद्योतः । य एषः = दूर्वाङ्कुरेति ।

अन्वयः— दुर्वांकुरस्तिमितनीलमणिप्ररोहैः, परिगतैः, पीताङ्गदैः, परिणीवितांसः, घनात्, अस्मात्, कनकतालवनैकदेशात्, शरवणात्, निर्धावितः, कार्तिकेयः, इव ॥ २ ॥

व्याख्या— दूर्वाङ्कुरास्तिमितनीलमणिप्ररोहैः = दूर्वाङ्कुराइव = अभिनवदूर्वा इव, स्तिमिताः=चिक्कणाः हरिताश्च । नीलमणिप्ररोहाः=नीलमुक्ताङ्कुराः येषु तैः । परिगतैः = परितः निविष्टैः पीताङ्गदैः = पीतकेयूरैः । परिणीवितांशः = स्थूलस्कन्धः । यः = महासेनः । अस्मात् = पुरो दृश्यमानात् । घनात् = गहनात् । कनकतालवनैकदेशात् = चम्पकतालारण्यैकस्थलात् । निर्धावतः = सवेगः निर्गच्छतः । शरवणात् = शरकाननात् । कार्तिकेयः = स्कन्दः, इव = यथा । शोभते । अत्रायं भावः = स्कन्दस्य उत्पत्तिः "शरवणे" इति "पौराणिकी आख्या" वर्तते, तदेवोपमयति कविः यत् चम्पकतालवन्नान्निर्धावितोमहासेनः स्कन्द इव शोभते ॥ २ ॥

अरे ! जहाँ पर अन्तःपुर के सेवक छिपे रहते हैं, स्वामी भी हैं क्या ?

अरे ! यह वही महासेन हैं, जो—

दूब के अङ्कुर की तरह चिकने एवं हरे नीलमणि से खचित, स्वर्ण के पीले एवं अच्छी तरह लपेटे गये केयूरों (भुजबन्दों) से मोटे हो गये हैं, कन्धे जिसके, ऐसा यह राजा इस चम्पक एवं ताल के वन से निकलकर (दौड़ते हुए) जाते हुए ऐसा दीख रहा है जैसे कि शरवण (सरपत के वन) से निकल कर स्वामी "कार्तिकेय" ही दौड़ रहे हों ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः ।)

राजा—

मम हयखुरभिन्नं मार्गरेणुं नरेन्द्रा
मुकुटतटविलग्नं भृत्यभूता वहन्ति ।
न च मम परितोषो यन्न मां वत्सराजः
प्रणमति गुणशाली कुञ्जरज्ञानदृप्तः ।। ३ ।।

अन्वयः—मम, हयखुरभिन्नम्, मुकुटतटविलग्नम्, मार्गरेणुम्, नरेन्द्राः, भृत्यभूताः वहन्ति, न च मम, परितोषः, यत्, माम्, गुणशाली, कुञ्जरज्ञानदृप्तः वत्सराजः न, प्रणमति ।। ३ ।।

व्याख्या—हयखुरभिन्नम् = अवश्शफविदीर्णम् । मार्गरेणुम् = पथधूलिम् । मुकुटतटविलग्नम् = किरीटप्रदेशसंलग्नम् । भृत्यभूताः = अनुचरभूताः । नरेन्द्राः = राजानः । वहन्तिः शिरसा धारयन्ति । परन्तु एतावतैव, न च=नैव, मम = महासेनस्य । परितोषो = संतोषः । यत् = यस्मात् । माम् = प्रद्योतम् । कुञ्जरज्ञानदृप्तः = हस्तिवशीकरणविद्यागर्वितः । गुणशाली = गुणवान् । वत्सराजः = उदयनः न प्रणमति = प्रणामं न करोति । ममाधीनतां न स्वीकरोतीतिभावः ।। ३ ।।

(चला जाता है)

विष्कम्भक—यह साहित्य दर्पण के अनुसार नाटक का एक सूच्यंश है। जो अंक के आदि में हुआ करता है। इसके माध्यम से बीती हुई या होने वाली कथा की सूचना दर्शकों को दी जाती है।

(उसके बाद सपरिवार राजा प्रवेश करता है)

राजा—मेरे घोड़ों के खुरों से उड़ायी गयी एवं मुकुट में लगी रास्ते की धूल को अन्य राजागण सेवक की तरह धारण करते है। परन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं होता, क्योंकि हाथियों को वश करने वाली विद्या का ज्ञाता गुणशाली वत्सराज (उदयन) जो मुझे प्रणाम नहीं करता (अर्थात् मेरी अधीनता स्वीकार नहीं करता ।। ३ ।।

वादरायण !

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महासेनः ।

राजा—निवेशितो जैवन्तिः ।

काञ्चुकीयः—निवेशितोऽनुरूपतश्च सत्कृतः ।

राजा—न्याय्यं कृतं राजवंश्यगुणाभिलाषिणा । समागतानां युक्तः पूजया प्रतिग्रहः । अथ सर्वोऽपि कन्याप्रदानं प्रति पृष्टश्चेत् परच्छन्देन तिष्ठति । (काञ्चुकीयमवलोक्य) वादरायण ! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये ।

वादरायण ! इति कञ्चुकीं प्रति सम्बोधनम् ।

राजवंश्यगुणाभिलाषिणा = नृपतिवंशोद्भवगुणपक्षपातिना (भवता) न्याय्यम् = उचितम् । कृतम् = विहितम् । समागतानाम् = अतिथीनाम् । पूजया = सत्कारेण । प्रतिग्रहः = सम्मानम् । युक्तः = उपयुक्तः । सर्वोऽपि = सचिवसमूहोऽपि । कन्याप्रदानं प्रति = पुत्रिपरिणयसम्बन्धे । पृष्टः = जिज्ञासितः चेत् = यदि, तर्हि परच्छन्देन = पराधीनेन, मदभिप्रायप्रतीक्षयेत्यर्थः । तिष्ठति = मौनमास्ते । ते सर्वे कन्याविवाहविषये स्वविचारं किमपि न प्रकाशयन्ति केवलं मद्विचारमेव ज्ञातुमिच्छन्ति इति भावः । वक्तुकाममिव = विवक्षुमिव । त्वाम् = वादरायणम् । लक्ष्ये ।

वादरायण !

(प्रवेश कर)

कञ्चु०—महासेन की जय हो ।

राजा—जैवन्ति को ठहरा दिया गया ?

कञ्चु०—ठहराया गया और उपयुक्त सत्कार भी किया गया ।

राजा—राजवंश के गुणों का सत्कार करके आपने उचित ही किया है । अतिथियों का सम्मान पूर्वक स्वागत करना ही उचित है । और सभी लोग कन्या (वासवदत्ता) के विवाह के विषय में पूछे जाने पर पराधीन की तरह (मेरे विचार जानने की इच्छा से) मौन ही रहते हैं (कञ्चुकी की ओर देखकर) वादरायण ! तुम कुछ बोलना चाहते हो ऐसा मुझे जान पड़ता है ।

काञ्चुकीयः—न खलु किञ्चित्। कन्याप्रदानं प्रति समुत्पन्नोऽभिमर्शः।

राजा—अलमलं परिहृत्य। सर्वसाधारणो ह्येष विधिः। अभिधीयताम्।

काञ्चुकीयः—महासेन! एषा मे विवक्षा—एवं नामाहन्यहनि गोत्रानुकूलेभ्यो राजकुलेभ्यः कन्याप्रदानं प्रति दूतसम्प्रेषणा वर्तते। न च महासेनः कञ्चिदपि प्रत्याचष्टे, न चाप्यनुगृह्णीते किन्तु खल्विदमिति।

राजा—बादरायण! एवमेतत्। अतिलोभाद् वरगुणानामतिस्नेहाच्च वासवदत्तायां न शक्नोमि निश्चयं गन्तुम्।

न खलु किञ्चित् = अन्यत् किमपि न। कन्याप्रदानं प्रति = पुत्रिविवाहं प्रति। अभिमर्शः = विचारः। समुत्पन्नः = जातः।

परिहृत्य = परित्यागेन। अलमलम् = नोचितम्। एषः = अयम्। विषयः = प्रसङ्गः। सर्वसाधारणः = सर्वेषामपि वर्तते इति भावः। अभिधीयताम् = उच्यताम्।

विवक्षा = वक्तुमिच्छा। प्रस्तुतस्य गद्यशकलस्य व्याख्या पूर्वमेव कृता।

कञ्चु०—नहीं, कुछ विशेष बात तो नहीं केवल वासवदत्ता के विवाह के विषय में कुछ विचार (मेरे मन में) आया है।

'राजा—तो उसे छिपाओ नहीं। यह कार्य तो सर्वसाधारण का है। कहो।

कञ्चु०—महासेन! मैं यह कहना चाहता हूँ कि इसप्रकार प्रतिदिन उपयुक्त अच्छे-अच्छे कुलों में उत्पन्न राजा लोग कन्या के विवाह के लिए दूत भेज रहे हैं। और महासेन (आप) न तो किसी को मना करते हैं और न किसी को अङ्गीकार ही करते हैं। यह क्या है!

राजा—बादरायण! बात यह है कि वर में अधिक गुण हो इस लोभ से तथा वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त स्नेह होने से मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।

कुलं तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाङ्क्षे हि मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्ति न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः ॥ ४ ॥

अन्वयः—प्रथमम्, मनसा, कुलम्, श्लाघ्यम्, अभिकाङ्क्षे, ततः, सानुक्रोशम्, हि, यतः, मृदुः, अपि, गुणः बलवान्, ततः, रूपे, कान्तिम्, न खलु, गुणतः अभिकाङ्क्षे, अपि तु स्त्रीजनभयात्। ततः, वीर्योदग्रम्, हि, युवतयः परिपाल्याः, न, "इति तु" न ॥ ४ ॥

व्याख्या—प्रथमम् = सर्वप्रथमम्, मुख्यरूपेणेत्यर्थः। तावत्, श्लाघ्यम् = प्रशंनीयम्; कुलम् = वंशम्। मनसा = चित्तेन हृदयेनेति यावत्। अभिकाङ्क्षे = वाञ्छामि। ततः = कुलानन्तरम्। सानुक्रोशम् = सानुकम्पम्। एष = स्तुत्यः, मृदुरपि = कोमलताऽपि। गुणः = सद्गुणः। बलवान्=बलशाली; परवशीकरो भवति। ततः=मार्दवानन्तरम्। रूपे = स्वरूपे। कान्तिम्=श्रियम्, सौन्दर्यमित्यर्थः। न खलु गुणतः = सौन्दर्यं हि गुण अत एव न वाञ्छामि, अपि तु स्त्रीजनभयात् = राजाङ्गनाभयात्। यतो हि स्त्रियाः प्रथमं रूपमेवाभिनन्दन्ति। ततः = सौन्दर्यानन्तरम्।, वीर्योदग्रम् = वीर्येण = शौर्येण, उदग्रम् = परिवृंहितम्, वरमिच्छामि। हि = यतः। युवतयः = कामिन्यः। परिपाल्याः = रक्ष्याः न = न भवन्ति, इति तु न = नैव। अवश्यमेव सर्वतोरूपेण रक्षणीयाः भवन्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

मैं तो मन से सर्वप्रथम वर के परिवार की कुलीनता चाहता हूँ; उसके बाद मेरी इच्छा है कि वह दयावान् हो, मृदु हो क्योंकि यह गुण भी बलवान होता है। उसके बाद मैं सुन्दरता चाहता हूँ, सुन्दरता केवल गुण की ही दृष्टि से नहीं अपितु स्त्रियों के डर से भी चाहता हूँ (स्त्रियां रूप को ही चाहती हैं।) और पश्चात् में पराक्रम को भी चाहता हूँ क्योंकि स्त्रियाँ हमेशा रक्षा करने योग्य होती हैं ॥ ४ ॥

काञ्चुकीयः—महासेनं वर्जयित्वा न हीदानीमेते गुणाः क्वचिदेकस्था दृश्यन्ते ।

राजा—अतः खलु चिन्त्ये ।

कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ॥ ५ ॥

दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः । तस्माद् देवीं तावदाहूयताम् ।

महासेनम् = कन्यापितरम् । वर्जयित्वा = त्यक्त्वा । इमे गुणाः = उपरोक्तगुणाः । एकस्थाः = एकस्मिन् वरे । न दृश्यन्ते = नाभिलक्ष्यन्ते ।

अन्वयः—प्रायः, कन्यायाः वरसम्पत्तिः, पितुः, प्रयत्नतः शेषम्, भाग्येषु, आयत्तम्, दृष्टपूर्वम्, च, अन्यथा न ॥ ५ ॥

व्याख्या—कन्यायाः = दुहितुः । वरसम्पत्तिः = उपर्युक्तगुणगणयुक्तवरप्राप्तिः । पितुः = जनकस्य । प्रयत्नतः = प्रयासेन "भवति ।" शेषम् = वरप्राप्त्यतिरिक्तं सुखदुःखादिकम् । भाग्येषु = दैवेषु । आयत्तम्=अधीनः भवति । दृष्टपूर्वम् = पूर्वविवेचितम्, "इदङ्कर्तव्यमिदमकर्तव्यम्" इति विवच्य विहितः प्रयत्नः अन्यथा=निष्फलः, न=न भवति ॥ ५ ॥

दुहितुः = कन्यायाः । प्रदानकाले = विवाहसमये । मातरः = जनन्यः । दुःखशीलाः = करुणाशीलाः । कीदृशवरहस्ते मत्पुत्री गच्छति, सुखेन स्थास्यति न वेति विचारणायां दुःखीभवन्ति मातरः । तस्मात् = तत्कारणात् । आहूयताम् = आनीयताम् । देवीं = वासवदत्ताजननीम् ।

कञ्चु०—महासेन को छोड़कर ये सब गुण किसी एक पुरुष में नहीं मिल सकते ।

राजा—इसी लिए तो चिन्तित हूं ।

पिता के प्रयत्न से कन्या को सर्वगुण सम्पन्न वर रूप सम्पत्ति तो मिल सकती है । परन्तु शेष बातें तो भाग्य के अधीन होती हैं क्योंकि पहले अच्छी तरह विचार कर पीछे किया गया कार्य निष्फल नहीं होता ॥ ५ ॥

कन्या के विवाह के समय माताओं को बड़ा दुःख होता है । इसलिए देवी (रानी) को बुलाओ ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः । (निष्क्रान्तः)

राजा—भोः काशीराजदूतसम्प्रेषणेन वत्सराजग्रहणार्थं गतं शालङ्कायनं प्रति गता मे बुद्धिः । किन्तु खल्वद्यापि वृत्तान्तं न प्रेषयति स ब्राह्मणः ।

कामं या तस्य सा लीला तत्रैवानुगतं मनः ।
ये त्वस्य सचिवाः सर्वे यत्नमास्थाय ते स्थिताः ॥६॥

(ततः प्रविशति देवी सपरिवारा ।)

देवी—जेदु महासेणो । [जयतु महासेनः ।]

अन्वयः—या, सा, तस्य, लीला, तत्रैव, मनः, कामम्, अनुगतम् तु, अस्य, सर्वे, ते, सचिवाः, यत्नम्, आस्थाय, स्थिताः ॥ ६ ॥

व्याख्या—या = प्रसिद्धा । सा लीला = हस्त्याखेटरूपा क्रीडा, वर्तते, तत्रैव = क्रीडायामेव । तस्य = वत्सराजोदयनस्य । मनः = चित्तम् । कामम् = अत्यधिकम् । अनुगतम् = संलग्नं वर्तते । तु = परन्तु । अस्य = उदयनस्य । ये = यावन्तः । सचिवाः = मन्त्रिणः, सन्ति ते = तावन्तः । सर्वे = अखिलाः । यत्नमास्थाय = उपायमालम्ब्य । स्थिताः=वर्तन्ते । अर्थात् विलास्यपि वत्सराजः स्वामिभक्तैः मन्त्रिभिःसोपायं संरक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ६ ॥

सपरिवारा = सखी सेविकादिभिः सहितेत्यर्थः ।

कञ्चु०—महाराज की जो आज्ञा (निकल जाता है)

राजा—ओ, काशिराज के दूत भेजने के कारण (उसको देखकर) वत्सराज (उदयन) को पकड़ने के लिए गए हुए शालङ्कायन की ओर मेरी बुद्धि चली गयी (अर्थात् मुझे शालङ्कायन की याद आ रही है ।) क्या बात है कि वह ब्राह्मण अभी तक कोई समाचार नहीं भेज रहा है ।

उसका (वत्सराज का) मन तो अपने प्रिय खेल (हाथियों को फसाना) में लगा रहता है । परन्तु उसके मन्त्री अनेक उपायों से उसकी रक्षा करते रहते हैं ॥ ६ ॥

(उसके बाद सपरिवार रानी का प्रवेश ।)

देवी—महाराज की जय हो !

राजा—आस्यताम् ।

देवी—जं महासेणो आणवेदि ।(उपविशति) । [यन्महासेन आज्ञापयति]

राजा—वासवदत्ता क्व ?

देवी—उत्तराए वेदालिआए सआसे वीणं सिक्खिदुं णारदीअं गआ आसी । [उत्तराया वैतालिक्याः सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत् ।]

राजा—कथमुत्पन्नोऽस्या गान्धर्वेऽभिलाषः ।

देवी—केण वि किल उग्घादेण कञ्चणमालं वीणाजोग्गं करअन्ति पेक्खिअ सिक्खिदुकामा आसी । [केनापि किलोद्घातेन काञ्चनमालां वीणायोग्यां कुर्वतीं प्रेक्ष्य शिक्षितुकामासीत् ।]

राजा—सदृशं बाल्यस्य ।

उत्तरायाः = एवन्नामिकायाः । वैतालिक्याः = वादित्रशिक्षिकायाः । सकाशे = समीपे । नारदीयाम् = नारदसम्बन्धिपद्धतियुक्ताम् । वीणाम्=तन्त्रिवादनकलाम् । शिक्षितुम् = अभ्यस्तुम् । गतासीत् ।

अस्याः = विवाहयोग्यायाः वासवदत्तायाः । गान्धर्वे = संगीतशास्त्रे । अभिलाषः = मनोरथः । कथमुत्पन्नः=कथं जातः ।

केनापि = येनकेनापि । उद्घातेन=कार्येण प्रसङ्गेनेत्यर्थः । काञ्चनमालाम्= एतन्नाम्नि स्वसखीसमीपम् । (गता) वीणायोग्याम् = वीणाऽभ्यासं कुर्वतीम् । प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा । शिक्षितुकामासीत् = पठनेच्छुका जाता ।

बाल्यस्य = शैशवस्य । सदृशम = अनुरूपमेवैतदित्यर्थः ।

राजा—बैठिए ।

देवी—महाराज की जो आज्ञा (बैठ जाती है ।)

राजा—वासवदत्ता कहाँ है ?

देवी—उत्तरा नाम की वैतालिका के समीप नारदीय पद्धति से वीणा सीखने गयी है ।

राजा—गान विद्या में उसकी अभिरुचि कैसे उत्पन्न हुई ?

देवी—किसी प्रङ्ग में काञ्चनमाला (अपनी सखी) के पास गयी थी-उसको वीणाभ्यास करते देखकर इसे भी सीखने की इच्छा हो गयी ।

राजा—यह (नकल करने की) प्रवृत्ति लडकपन के योग्य ही है ।

देवी—महासेणं वि किं विण्णविदुकामा म्हि। [महासेनमपि किमपि विज्ञापयितुकामास्मि।]

राजा—किमिति।

देवी—आअय्यं इच्छामि त्ति। [आचार्यमिच्छामीति।]

राजा—उपस्थितविवाहकालायाः किमिदानीमाचार्येण। पतिरेवैनां शिक्षयिष्यति।

देवी—हं एसो दाणि मे दारिआए कालो। [हम् एष इदानीं मे दारिकायाः कालः]

राजा—भोः! नित्यं प्रदीयतामित्यस्मानुपरुध्य किमिदानीं सन्तप्यसे।

विज्ञापयितुकामास्मि = सूचयितुमिच्छामि।

आचार्यम् = वीणाशिक्षकम्।

उपस्थितविवाहकालायाः = उपस्थितः = समीपस्थः, विवाहस्य = परिणयस्य, कालः = समयो यस्याः सा, तस्याः उपस्थितविवाहकालायाः वासवदत्ताया इत्यर्थः। इदानीम् = साम्प्रतमस्मिन् प्रसङ्गे। आचार्येण = अध्यापकेन। किम् = कथम्? नास्तिप्रयोजनमित्यर्थः। पतिरेव = वल्लभ एव। एनाम् = वासवदत्ताम्। शिक्षयिष्यति = पाठयिष्यति।

हम् = इति साश्चर्यास्वीकृतसूचकपदम्। एष इदानीम् = अधुनैवेति भावः। मे = मम। दारिकायाः = पुत्र्याः। कालः = पाणिग्रहणसमयः।

भोः! = अरे। नित्यम् = प्रतिदिनम्। प्रदीयताम् = कन्यादानं क्रियताम्।

देवी—मैं भी महासेन से कुछ कहना चाहती हूँ।

राजा—क्या कहना चाहती हो।

देवी—एक आचार्य (वीणा अध्यापक) चाहती हूँ।

राजा—अब जिसके विवाह का समय समीप आ गया है उसके लिए आचार्य का क्या प्रयोजन है। इसका पति ही इसे (वीण) सिखाएगा।

देवी—हुँः हुँः, (क्या) अभी ही हमारी कन्या के विवाह का समय हो गया (अर्थात् अभी मेरी लड़की विवाह के योग्य नहीं हुई है।)

राजा—अरे, प्रतिदिन तो तुम कहती थी कि इसका विवाह कीजिए।

देवी—अभिप्पेदं मे पदाणं। विओओ मं सन्तावेदि! अह कस्स उण दिण्णा। [अभिप्रेतं मे प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति। अथ कस्मै पुनर्दत्ता।]

राजा—न तावन्निश्चयो गम्यते।

देवी—इदाणिं पि ण दाव। [इदानीमपि न तावत्।)

राजा—

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥७॥

इति=इत्थम्। उपरुध्य = सम्प्रार्थ्य। इदानीम्=मत्कथानावसरे। किम्=कथम्। सन्तप्यसे=दुःखीभवसि।

मे = वासवदत्तामातुः। प्रदानम् = कन्याविवाहः। अभिप्रेतम्=अभिलषितः। "परन्तु" वियोगः=कन्याविश्लेषः (पतिगृहगमनजन्यः) माम्=जननीम्। सन्तापयति=दुःखं ददाति। कस्मै=वरविशेषाय। दत्ता=भवान् दास्यति।

अन्वयः—अदत्ता, इति, लज्जा, आगता, दत्ता, इति, मनः, व्यथितम्, धर्मस्नेहान्तरे, न्यस्ताः, मातरः, खलु, दुःखिताः ॥ ७ ॥

व्याख्या—अदत्तेति = (यदि कस्मैचिदपि) न दत्ता, अविवाहितेत्यर्थः। लज्जा = व्रीडा। आगता = भविष्यति। कन्यायाः कौमार्यं लज्जास्पदं भविष्यति। यदि च, दत्तेति = कस्मैचिद्दीयते, अस्याः विवाहः क्रियते, तर्हि, मनः = चित्तम्। व्यथितम् = सन्तप्तम्। अतः धर्मस्नेहान्तरे = कर्तव्यवात्सल्ययोर्मध्ये, न्यस्ताः=निक्षिप्ताः। मातरः = जनन्यः। दुःखिता=व्याकुलिताः। खलु = निश्चयेन ॥ ७ ॥

अब इस समय (मेरे कहने पर) क्यों दुःखी हो रही हो।

देवी—कन्या का विवाह करना तो अभीष्ट है, परन्तु वियोग मुझको सता रहा है। अच्छा, किसके साथ विवाह करने का विचार है?

राजा—अभी तो निश्चय नहीं हो पाया है।

देवी—अभी तक निश्चित नहीं कर पाए।

राजा—न देने पर (कन्या का विवाह न करने पर) लज्जा आती है, और विवाह करने पर मन दुःखी होता है इस तरह धर्म और स्नेह के बीच में पड़ी माताओं को बड़ा कष्ट होता है ॥ ७ ॥

सर्वथा श्वशुरपरिचरणसमर्थे वयसि वर्तते वासवदत्ता। एष चापरः काशिराजोपाध्याय आर्यजैवन्तिरद्य दौत्येन प्राप्तो विलोभयति मां चारित्रेण। (आत्मगतम्) न किञ्चिदाह। अश्रुपूर्वा व्याकुला कथं निश्चयं गमिष्यति। भवतु, निवेदयाम्यस्यै। (प्रकाशम्) श्रूयन्तेऽस्मत्सम्बन्धप्रयोजनायागता राजानः।

देवी—किं दाणि वित्थरेण। जहिं दइअ ण सन्तप्पामो, तहिं दीअदु। [किमिदानीं विस्तरेण। यत्र दत्त्वा न सन्तप्यामहे, तत्र दीयताम्।]

राजा—अहो महान् खलु लीलाभिहितो दुःखविस्तर इदानीं पश्चादुपालम्भनं श्रोतुम्। तस्माद् देवी तावन्निश्चयं गच्छतु। श्रूयताम्—

श्वशुरपरिचरणसमर्थे=श्वशुरसेवोपयुक्ते। वयसि=अवस्थायाम्। वासवदत्ताऽस्ति। दौत्येन=संवादवाहकत्वेन। प्राप्तः=आगतः। जैवन्तिः, चारित्रेण=स्वसद्व्यवहारेण, काशिराजगुणगणेन वा। मास्=प्रद्योतम्। लोभयति। अश्रुपूर्वा=नेत्राम्बुपूर्णा।

इदानीम्=साम्प्रतम्। विस्तरेण किम्=अधिकेन किम्। अहो=आश्चर्यम्। महान्=अतिदीर्घः। खलु निश्चयेन। दुःखविस्तरः=शोकसमूहः वरनिश्चयविषयकः कर्तव्यः। (त्वया) लीलया=सरलतया। अभिहितः=कथितः। पश्चात्=कन्याविवाहानन्तरम्। उपालम्भनम्=तव कन्याविषयकत्रुटिवचनम्।

सब तरह से वासवदत्ता की आयु सास-ससुर की सेवा करने योग्य है। और दूसरी बात है कि दूत बनकर आया काशिराज का पुरोहित आर्य जैवंत अपने सद्व्यवहार से, (राजा की प्रसंशा से) मुझे लुभा रहा है। (मन में) यह तो कुछ बोल ही नहीं रही है, यह तो पहले से ही रो रही है, व्याकुल है क्या निश्चय करेगी? अच्छा—कहता हूँ (प्रकटरूप से) सुनते हैं हम से सम्बन्ध के लिए राजा लोग आ रहे हैं।

देवी—इस समय अधिक कहने से क्या लाभ? जिसको देकर पछताना न पड़े उसे दीजिये।

राजा—ओहो! ऐसे कठिन दुखपूर्ण (वर निर्णय) कार्य को तुमने कितने सरल ढंग से कह दिया, जिससे मुझे पीछे तुम्हारी उलाहना सुनना पड़े। इसलिए तुम्हीं वर का निर्णय करो।

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो
वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः ।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मा
कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा ॥८॥

(प्रविश्य)

कांचुकीयः—वत्सराजः ।

श्रोतुम् = आकर्णयितुम् । अर्थादधुना स्वविचारेण येन केनाऽपि वरेण कृते विवाहे पश्चाद्यदि स कन्यायामुचितस्नेहभावं न दर्शयिष्यति तदा तवोपालम्भनं श्रोष्यामिति भावः । तस्मात् = एतस्मात् कारणात् । देवी = त्वमेव । निश्चयम् = वरनिर्णयम् । गच्छतु = करोतु । श्रूयताम् = आकर्ण्यताम् ।

अन्वयः—अस्मत्सम्बद्धः, मागधः, काशिराजः, वाङ्गः, सौराष्ट्रः, मैथिलः, शूरसेनः, एते, नानार्थैः, गुणैः, माम्, लोभयन्ते, एतेषाम्, ते, कः, राजा, पात्रताम्, याति ॥ ८ ॥

व्याख्या—अस्मत्सम्बद्धः = अस्मत्सम्बन्धेच्छुकः । मागधः = मगधनरेशः । काशिराजः = काशिनरेशः, वा = अथवा वाङ्गः = अङ्गदेशस्यराजा । सौराष्ट्रः = सौराष्ट्राधिपः । मैथिलः = मिथिलाधिपतिः । शूरसेनः = एतन्नामको राजा वा । एते = राजानः । नानार्थैः = अनेकप्रकारकैः । गुणैः = राजकीयगुणैः वैशिष्ट्यैः । माम् = प्रद्योतम् । लोभयन्ते=आकृष्यन्ते । अतः एतेषाम्=राजानाम्, मध्ये । ते = देव्याः । कः = अन्यतमः । राजा = नृपतिः । पात्रताम् = कन्यादानयोग्यताम् । याति=गच्छति । त्वद्-जामातृयोग्यः कः इति कथयतु इति भावः ।

सुनो—मगधराज, काशिराज, अङ्गाधिप, सौराष्ट्राधिप, मिथिलाधिपति एव शूरसेन ये सब मुझसे (वासवदत्ता से) सम्बन्ध (विवाह करना) चाहते हैं । ये सब मुझे अपने-अपने गुणों से लुभा रहे है, इनमें तुम्हें अपनी पुत्री के योग्य कौन सा राजा जान पड़ता है अर्थात् तुम किससे वासवदत्ता का विवाह करना चाहती हो ॥ ८ ॥

(प्रवेश कर)

कञ्चु०—वत्सराज !

राजा—किं वत्सराजः ।

कांचुकीयः—प्रसीदतु प्रसीदतु महासेनः । प्रियवचननिवेदनत्वरया क्रमविशेषो नावेक्षितः ।

राजा—प्रियवचनमिति ।

देवी—(उत्थाय) जेदु महासेणो । [जयतु महासेनः ।]

राजा—(सहर्षम्) प्रियवचनपरिहार्या हि देवी । आस्यताम् ।

देवी—जं महासेणो आणवेदि । [यद् महासेन आज्ञापयति ।] (उपविशति ।)

राजा—उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, स्वैरमभिधीयताम् ।

कांचुकीयः—(उत्थाय) तत्रभवतामात्येन शालङ्कायनेन गृहीतो वत्सराजः ।

राजा—(सहर्षम्) किमाह भवान् ।

प्रसीदतु = प्रसन्नो भवतु । क्रमविशेषः = समुदाचारनियमः । नापेक्षितः = नाङ्गीकृतः । स्वैरम् = यथेच्छम् । अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

अमात्येन = मन्त्रिणा । शालङ्कायनेन = एतन्नामकेन । गृहीतः = निबद्धः । वत्सराजः = उदयनः ।

राजा—क्या, वत्सराज ?

कञ्चु०—महासेन प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । खुशी की बात कहने की शीघ्रता में मैंने क्रम विशेष का विचार नहीं किया ।

राजा—प्रियवचन ?

देवी—(उठकर) महाराज की जय हो ।

राजा—(हर्ष के साथ) देवी भी प्रियवचन सुन लें । बैठिए ।

देवी—महाराज की जो आज्ञा । (बैठ जाती है ।)

राजा—उठो, उठो ! निर्भय होकर कहो ।

कञ्चु०—(उठकर) पूज्य मन्त्री शालङ्कायन ने वत्सराज को पकड़ लिया । (बंदी बना लिया ।)

राजा—(हर्ष के साथ) आपने क्या कहा ?

काञ्चुकीयः—तत्रभवताऽमात्येन शालंकायनेन गृहीतो वत्सराजः ।

राजा—उदयनः ।

कांचुकीयः—अथ किम् ।

राजा—शतानीकस्य पुत्रः ।

कांचुकीयः—दृढम् ।

राजा—सहस्रानीकस्य नप्ता ।

कांचुकीयः—स एव ।

राजा—कौशाम्बीशः ।

कांचुकीयः—सुव्यक्तम् ।

राजा—गान्धर्ववित्तकः ।

कांचुकीयः—एवं श्रुवन्ति ।

राजा—वत्सराजो ननु ।

पुत्रः = तनयः । नप्ता = पौत्रः । गान्धर्ववित्तकः = संगीतधनः ।

कञ्चु०—पूज्य मन्त्री शालङ्कायन ने वत्सराज को बन्दी बना लिया ।

राजा—उदयन ।

कञ्चु०—और क्या (हाँ) ।

राजा—शतानीक का पुत्र ?

कञ्चु०—निश्चय ।

राजा—सहस्रानीक का पौत्र ?

कञ्चु०—वही ।

राजा—कौशाम्बी का राजा !

कञ्चु०—अवश्य ।

राजा—संगीत विद्या का धनी ।

कञ्चु०—ऐसा ही कहा जाता है ।

राजा—क्या, वत्सराज ?

कांचुकीयः—अथ किं, वत्सराजः।
राजा—अथ किमुपरतो यौगन्धरायणः।
कांचुकीयः—न खलु, कौशाम्ब्यां किल।
राजा—यद्येवं, न गृहीतो वत्सराजः।
काञ्चुकीयः—श्रद्धत्तां महासेनः।
राजा—

न श्रद्दधाम्युदयनग्रहणं त्वयोक्तं
व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य।
यस्याहवेषु रिपवः कथयन्ति शौर्यं
यौगन्धरायणमतानि च नः स्वनन्ति ॥ ९ ॥

उपरतः = मृतः। श्रद्धत्ताम् = विश्वस्यताम्।

अन्वयः—त्वया, उक्तम्, उदयनग्रहणम्, करतलैः, मन्दरस्य, व्यावर्तनम्, इव, न श्रद्दधामि, यस्य, आहवेषु, रिपवः, शौर्यम्, कथयन्ति, यौगधन्रायण-मतानि, च नः, स्वनन्ति ॥ ९ ॥

व्याख्या—करतलैः = हस्तैः। मन्दरस्य = मन्दराचलस्य। व्यावर्तनम् = परिभ्रामणम्। इव = यथा। त्वया = काञ्चुकीयेन। उक्तम् = कथितम्। उदयनग्रहणम् = वत्सराजबन्धनम्। न श्रद्दधामि = न विश्वसिमि। आहवेषु = युद्धेषु। यस्य = उदयनस्य। शौर्यम् = पराक्रमम्। रिपवः = शत्रवः। कथयन्ति=

कञ्चु०—हाँ, वत्सराज।

राजा—क्या यौगन्धरायण मर गया।

कञ्चु०—नहीं कौशाम्बी में रह रहा है।

राजा—यदि ऐसी बात है (वह जीवित है) तो वत्सराज नहीं पकड़ा गया।

कञ्चु०—महासेन विश्वास करें।

राजा—तुम्हारे द्वारा कही गयी "उदयन का बन्दी" बताने वाली बात मुझे उसी तरह अविश्वसनीय सी लगती है जिस तरह "हाथ से मन्दराचल को घुमाने वाली" बात (क्योंकि) युद्धक्षेत्र में जिसके शौर्य की प्रशंसा शत्रु भी

काञ्चुकीयः—प्रसीदतु महासेनः। वृद्धोऽस्मि ब्राह्मणः खल्वहम्। न महासेनसमीपेऽनृतमभिहितपूर्वम्।

राजा—आ अस्त्येतत्। अथ कः प्रियदूतः शालङ्कायनेन प्रेषितः?

काञ्चुकीयः—न पुरुषः। जवातिशययुक्तेन खररथेन वत्सराजमग्रतः कृत्वा स्वयमेवामात्यः प्राप्तः।

राजा—एवं प्राप्तः। हन्त भोः! अद्य विमुक्तसन्नाहा सुखं विश्राम्य-

---

गानं, कुर्वन्ति प्रशंसन्तीत्यर्थः। यौगन्धरायणमतानि च=यौगन्धरायणमन्त्रपरिणामानि च। नः=अस्माकम्। (कर्णे) स्वनन्ति=गुञ्जन्ति॥ ९॥

वृद्धोऽस्मि=वृद्धानां वचने प्रामाण्यमिति मत्वा विश्वासं कुरु, तत्रापि ब्राह्मणः=सत्यवादिन एव भवन्ति ब्राह्मणाः नानृतं वदेदिति वेदानुशासनात्। अतः महासेनसमीपे=उपराजम्। अनृतम्=असत्यम्। नाभिहितपूर्वम्=न पूर्वोक्तम्। अतः विश्वासं विधीयतामिति।

जवातिशययुक्तेन=वेगातिशयगामिना, खररथेन=दृढरथेन। अमात्यः=शालङ्कायनः। प्राप्तः=आगतः।

हन्त भोः=हर्षपूर्णसन्तोषवचनमिदम्। विमुक्तसन्नाहा=विमुक्ताः=परित्यक्ताः, सन्नाहाः=कवचा यया सा विमुक्तसन्नाहा=परित्यक्तकवचा।

करते हैं (उसके मन्त्री) यौगन्धरायण की कूटनीति हमारे कानों में अभी भी गूँज रही है॥९॥

कञ्चु०—महासेन प्रसन्न हों। एक तो मैं वृद्ध हूं, (वृद्ध झूठ नहीं बोल सकता) दूसरे ब्राह्मण हूँ। मैंने आपके सामने पहले कभी भी झूठ नहीं बोला है।

राजा—अच्छा, तो क्या यही बात है। शालङ्कायन ने किस प्रिय दूत को भेजा है?

कंचु०—किसी दूत को नहीं। बल्कि अतिशयवेग से चलने वाले रथ पर चढ़कर वत्सराज को आगे कर स्वयं मन्त्री शालङ्कायन आए हैं।

राजा—इस तरह आगए। अच्छा कवच उतार कर सुखपूर्वक अक्षौहिणी (सेना) विश्राम करे। आज से मेरे समीप गुप्तरूप से दूत भेजने वाले राजा

त्वक्षौहिणी। अद्यप्रभृति प्रच्छन्नकृतदूतसम्प्रेषणा अशङ्किताः स्थास्यन्ति राजानः। एष समासः—अद्यास्मि महासेनः।

देवी—किं अमच्चेण आणीदो। [किममात्येनानीतः।]

राजा—अथ किम्।

देवी—एदण्णिमित्तं कस्स वि ण दिस्सामो वासवदत्तं। [एतन्निमित्तं कस्मा अपि न दित्सामो वासवदत्ताम्।]

राजा—युद्धावर्जितशत्रुः खल्वेष मम। बादरायण! शालङ्कायनः क्व?

अक्षौहिणी = सेना। विश्राम्यताम् = सुखेनास्यताम्। अद्यप्रभृति = अद्यतः। प्रच्छन्नकृतदूतसम्प्रेषणाः = प्रच्छन्नेन = गुप्तरूपेण, कृता = विहिता, दूतसम्प्रेषणा=चरविनमयो यैस्ते तथाभूताः। राजानः=नृपतयः। अशङ्किताः = निर्भयाः। स्थास्यन्ति = भविष्यन्ति। अत्रायं भावः वत्सराजभयेन अन्ये राजानः गुप्तरूपेण मया सह दूतसम्प्रेषणादिकमकुर्वन्नासन्, अद्य तद्ग्रहणेन ते सर्वे अशङ्किताः जाताः इति। एष समासः = इदं हि तत्त्वकथनम्। महासेनः = दीर्घसेनासम्पन्नपदभाक्। अद्यास्मि = अद्याहं जातः।

लोग निःशंक हो जायेंगे। सारांश यह है कि आज (मैं वास्तव में) महासेन हूँ।

देवी—क्या, अमात्य उसे लाए हैं?

राजा—और क्या?

देवी—इसी लिए तो मैं वासवदत्ता किसी को नहीं देना चाहती हूँ (अर्थात् मैं वत्सराज से ही वासवदत्ता का विवाह करना चाहती हूँ, आपने उसका नाम ही नहीं लिया)।

राजा—युद्ध में जीता गया यह मेरा शत्रु है। बादरायण! शालंकायन कहाँ है?

टिप्पणी—देवी का यह कहना है कि मैं वासवदत्ता का विवाह उदयन से करूंगा, "राजा को अच्छा नहीं लगा इसलिए उसने विजित शत्रुः" ऐसा कहकर यह ध्वनित किया कि उससे विवाह कैसे हो सकता है। दूसरा वह इतना भीतर से अप्रसन्न हो गया कि मन्त्री को एकाएक नाम लेकर पुकारने लगा जब कि आर्य! इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए था।

काञ्चुकीयः—आहितो भद्रद्वारे।

राजा—गच्छ। भरतरोहकं ब्रूहि—कुमारविधिविशिष्टेन सत्कारेण वत्सराजमग्रतः कृत्वा प्रवेश्यताममात्य इति।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः।

राजा—एहि तावत्।

काञ्चुकीयः—अयमस्मि।

राजा—वत्सराजदर्शने कश्चिन्नोत्सारयितव्यः।

शत्रुं पश्यन्तु मे पौराः श्रुतपूर्वं स्वकर्मभिः।
सिंहमन्तर्गतामर्षं यज्ञार्थमिव संयतम्॥ १०

कुमारविधिविशिष्टेन = राजकुमारोपयुक्तप्रकारेण। सत्कारेण = स्वागतेन।
वत्सराजदर्शने=उदयनस्य दर्शने। कश्चित् = कोऽपि। नोत्सारयितव्यः = न निषेध्यः।

अन्वयः—स्वकर्मभिः, श्रुतपूर्वम्, मे, शत्रुम्, यज्ञार्थम् अन्तर्गतामर्षम्, संयतम्, सिंहम्, इव पौराः, पश्यन्तु॥ १०॥

व्याख्या—स्वकर्मभिः = निजपुरुषार्थैः। श्रुतपूर्वम् = पूर्वप्रसिद्धम्। मे = मामकीनम्। शत्रुम् = रिपुम्। पौराः = पुरवासिनः प्रजा इति यावत्। यज्ञार्थम् = मखप्रयोजनाय। संयतम् = निबद्धम्। अन्तर्गतामर्षम् = हृदयस्थक्रोधम्। सिंहम् = मृगराजम्। इव = यथा। पश्यन्तु = अवलोकयन्तु। जानन्तु॥ १०॥

कञ्चु०—भद्रद्वार पर खड़ा किया गया है।

राजा—जाओ! भरतरोहक से कहो-कि राजकुमारोचित सत्कार के द्वारा वत्सराज को आगे कर अमात्य को भीतर लावे।

कञ्चु०—महाराज की जो आज्ञा।

राजा—सुनो।

कञ्चु०—यह मैं हूँ (मैं पास ही हूँ सुन रहा हूँ।)

राजा—वत्सराज के दर्शन से किसी को वञ्चित न किया जाए। अपने कार्यों (पराक्रम) से पहले से ही प्रसिद्ध मेरे शत्रु को पुरवासी (प्रजा गण) उसी तरह देखें जिस तरह यज्ञ के लिए बाँधे गये, क्रोध से परिपूर्ण सिंह को लोग देखते हैं॥१०॥

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः। (निष्क्रान्तः।)

देवी—बहूणि अब्भुदआणि इमस्सिं राअउले अणुभूदाणि। ण खु अहं ईदिसं पीदिजोग्गं महासेणस्स सुमरामि। [बहवोऽभ्युदया अस्मिन् राजकुलेऽनुभूताः। न खल्वहमीदृशं प्रीतियोग्यं महासेनस्य स्मरामि।]

राजा—अहमप्येतादृशं प्रीतिविशेषं न श्रुतपूर्वं स्मरामि, यथा गृहीतो वत्सराज इति।

देवी—वच्छराओ णं। [वत्सराजो ननु।]

राजा—अथ किम्।

देवी—बहूणि सम्बन्धप्पओअणागदाणि राअउलाणि सुदाणि। एदिणा ण पेसिदपुरुवो पुरुसो। [बहूनि सम्बन्धप्रयोजनागतानि राजकुलानि श्रुतानि। एतेन न प्रेषितपूर्वः पुरुषः।]

अस्मिन् = भवत्सम्बन्धिनि। राजकुले = राजवंशे। बहवः = अनेके। अभ्युदयाः = ऐश्वर्याणि। अनुभूताः = प्राप्तानि। परन्तु ईदृशम् = वत्सराजबन्धनसदृशम्। प्रीतियोग्यम् = प्रसन्नतोपयोगि। न खलु = अन्यं किमपि। स्मरामि पूर्वजातम् इति। अर्थात् वत्सराजग्रहणेन यथा भवान् प्रसन्नो भवत्यधुना तथा पूर्वं कस्मिन्नपि प्रमोदावसरे नानन्दितवान्।

सम्बन्धप्रयोजनागतानि = कन्यासम्बन्धहेतुकागतानि। राजकुलानि = नृप-

---

कञ्चु०—महासेन की जो आज्ञा। (निकल जाता है।)

देवी—इस राजकुल में बहुत से अभ्युदय (आनन्द के अवसर) हुए हैं परन्तु इस तरह की प्रसन्नता की बात आपके लिए कोई हुई हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं होता। (अर्थात् पहले आप कभी भी इतना प्रसन्न नहीं दिखाई दिए थे।)

राजा—मुझे भी इस प्रकार आनन्ददायिनी बात पहले नहीं सुनाई थी जैसा कि यह "वत्सराज पकड़ा गया"।

देवी—क्या वत्सराज ?

राजा—और क्या।

देवी—सम्बन्ध (वासवदत्ता से विवाह) करने के लिए बहुत से राजकुमार लोग आए। परन्तु, इसने कभी भी दूत नहीं भेजा।

राजा—देवि ! महासेन शब्दमपि न गणयति, कि सम्बन्धमभिलषति।

देवी—णगणेदि । किं बालो अपण्डिदो वा। [न गणयति । किं बालः अपण्डितो वा।]

राजा—बालः, न त्वपण्डितः।

देवी—किण्णु हु एणं उस्सेअअदि। [किन्नु खल्वेनमुत्सेकयति।]

राजा—उत्सेकयत्येनं प्रकाशराजर्षिनामधेयो वेदाक्षरसमवायप्रविष्टो भारतो वंशः। दर्पयत्येनं दायाद्यागतो गान्धर्वो वेदः। विभ्रमयत्येनं

कुलानि । राजकुमारा इत्यर्थः। अनेन = वत्सराजेन । न प्रेषितपूर्वः=न प्रेषितदूतः। पूर्वः=प्राक् । न गणयति=न श्रद्धाति। सम्बन्धम्=कन्याया विवाहम्। किमभिलषति = किं वाञ्छति। न वाञ्छतीत्यर्थः।

बालः = शिशुः। अपण्डितः=मूर्खः। वा=अथवा।

उत्सेकयति=दर्पयति।

एनम् = राजानमुदयनम् । प्रकाशराजर्षिनामधेयः = विख्यातराजर्षिनामा, अर्थात् यस्मिन् कुले विख्याताः राजर्षयो जाताः। यश्च वंशः, वेदाक्षरसमवायप्रविष्टो = वेदरूपाक्षरसमूहेऽच्चरितः। "क्रमशः अक्षरसमवायो वेदः" अर्थात् यस्य वंशस्य चर्चा वेदेऽपि क्रियते। सः भारतः = भरतस्य, वंशः = कुलम्। एनमुत्सेकयतीत्यर्थः। एवञ्चापरहेतुं प्रदर्शयति—दायाद्यागताः = वंशपरम्पराप्राप्तः। गान्धर्वः = गानरूपः वेदः, सङ्गीतविद्येत्यर्थः। एनमुत्सेकयति=उदयनं

राजा—देवि, यह 'महासेन' शब्द को भी जब कुछ नहीं समझता तब फिर सम्बन्ध को क्या चाहेगा। (अर्थात् जब यह मुझे ही कुछ नहीं समझता तो फिर मेरी लड़की से विवाह करने का प्रश्न ही क्या ?'

देवी—नहीं समझता (अर्थात् आपके नाम को कुछ नहीं समझता) यह क्या लड़कपन के कारण या मूर्खतावश ?

राजा—यह लड़का है, मूर्ख नहीं।

देवी—यह अभिमानी क्यों है ? (अर्थात् इसे किस बात का गर्व है।)

राजा—जिसमें अनेक प्रसिद्ध राजर्षि हो चुके हैं और जिसकी चर्चा वेदों में भी की गई है वह 'भरतवंश' इसे अभिमानी बना रहा है। कुलपरम्परा से

वयस्सहजं रूपम्। विस्रम्भयत्येनं कथमप्युत्पन्नोऽस्य पौरानुरागः।

देवी—अभिलसणीआ वरगुणा। कस्स वामदाए दोसो संवुत्तो। [अभिलाषणीया वरगुणाः। कस्य वामतया दोषः संवृत्तः।]

राजा—देवी ! किमिदानीमस्थाने विस्मितासि।

पश्य—

अग्निः कक्ष इवोत्सृष्टो दहत् कार्त्स्न्येन मेदिनीम्।
अस्य मे शासनं दीप्तं विषयान्तेऽवसीदति॥ ११॥

दर्पयति। वयस्सहजम् = अवस्थानुकूलम्। रूपम् = सौन्दर्यम्। एनम् = उदयनम्। विभ्रमयति = अहङ्कारयति। कथमपि = येन केनापि प्रकारेण। उत्पन्नः = जातः। अस्य = उदयनस्य। पौरानुरागः = प्रजास्नेहः। एनम् = उदयनम्। विस्रम्भयति = विश्वासमुत्पादयति।

वरगुणाः = जामातृगुणाः कुलीनतादयः। अभिलषणीयाः = वाञ्छनीयाः। उदयने वर्तन्ते, इति भावः। कस्य = दोषविशेषस्य। वामतया = अनिच्छिततया। दोषः संवृत्तः = दोषत्वं प्राप्तः।

किमिदानीमस्थाने = कथमधुनानिरर्थकम्। विस्मितासि = चकिताऽसि।

अन्वयः—कक्षे, उत्सृष्टः अग्नि इव, कार्त्स्न्येन, मेदिनीम्, दहत्, मे, दीप्तम्, शासनम्, अस्य, विषयान्ते, अवसीदति॥ ११॥

व्याख्या—कक्षे = तृणसमूहे। उत्सृष्टः = क्षिप्तः। अग्निः = वह्निः। इव = यथा। कार्त्स्न्येन = सम्पूर्णरूपेण। मेदिनीम् = पृथ्वीम्। दहत् = अभिज्वलयत्।

(वपौती) प्राप्त संगीत विद्या इसे अभिमानी बना रही है। अवस्था यौवन के अनुरूप इसकी सुन्दरता इसके अभिमान को बढ़ावा दे रही है। प्रजा प्रति प्रेम (विश्वास) इसे विश्वास दे रहा है,

देवी—ये (आपके द्वारा कहे गए) गुण तो वर में होने चाहिए। किस गुण की अवांछनीय होने से ये (सब गुण) दूषित हो रहे हैं ?

राजा—देवि ! तुम इस बात पर आश्चर्य क्यों करती हो ?

देखो—तृण-समूह में फेंकी गई अतएव प्रज्वलित आग की तरह अत्युग्र यह मेरा शासन समूची पृथ्वी को तो जलाता हुआ प्रसरित हो रहा है पर इसके

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महासेनः। यथाज्ञाप्रयुक्तसत्कारं प्रविष्टःशालङ्कायनः। स तु विज्ञापयति–इदं भरतकुलोपभुक्तं वत्सराजकुले द्रष्टव्यं घोषवती नाम वीणारत्नम्। महासेनः प्रतिग्राहयितव्य इति। (वीणां दर्शयति।)

राजा—प्रतिगृहीतं जयमङ्गलम् (वीणां गृहीत्वा) इयं सा घोषवती नाम। यैषा,

---

मे = प्रद्योतस्य। दीप्तम्=प्रज्वलितम् उग्रमित्यर्थः। शासनम् = विधिः। अस्य= उदयनस्य। विषयान्ते=जनपदक्षेत्रे। अवसीदति=निष्फलति। अत्रायं भावः—यथा तृणसमूहे प्रक्षिप्तो वह्निः प्रदीप्तो भवति तथैव प्रदीप्तं मे शासनं सम्पूर्णायां पृथिव्यां दहत् प्रसरति, परन्तु, अस्य शासनक्षेत्रे न चलतीति ॥ ११ ॥

यथाज्ञाप्रयुक्तसत्कारम् = भवदाज्ञानुरूपलब्धसम्मानः। विज्ञापयति = सूचयति। भरतकुलोपभुक्तम् = भरतवंशोद्भवराजभिः, उपभुक्तम् = कृतोपभोगम्, वादितमित्यर्थः। वत्सराजकुले = उदयनवंशे। द्रष्टव्यम् = प्रियम्। वीणारत्नम् = तन्त्रीरूपमणिः। प्रतिग्राहयितव्यः = दातव्य इतिभावः। जयमङ्गलम् = विजयस्वरूपम्। इयं सा = सुप्रसिद्धा। घोषवती = एतन्नामिका वीणा।

शासन-क्षेत्र में वह नहीं चलता है। [तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण भूमण्डल पर मेरा शासन मान्य है पर यह नहीं मानता, यही इसका दोष है ॥११॥

(प्रवेश करके)

कञ्चु०—महासेन की जय हो। आपके आज्ञानुसार सत्कार प्राप्त कर शालङ्कायन आये हुए हैं। उन्होंने सूचना दी है कि भरत वंश में उत्पन्न राजाओं के द्वारा उपयुक्त (बजायी गयी) एवं वत्सराज के कुल में प्रिय यह "घोषवती" नामक वीणा रत्न है। इसे महासेन को दे दी जाए। (वीणा दिखाता है।)

राजा—जयमङ्गल (वीणारत्न) ले लिया गया। (वीणा लेकर) यह वही घोषवती है। जो—

श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री ।
ऋषिवचनगतेव मन्त्रविद्या गजहृदयानि बलाद्वशीकरोति ॥ १२ ॥

भोः ! समरावजितानां रत्नानामिष्टजनसम्भोगः प्रीतिमुत्पादयति ।

अर्थशास्त्रगुणग्राही ज्येष्ठो गोपालकः सुतः ।
गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चास्यनुपालकः ॥ १३ ॥

अन्वयः—श्रुतिसुखमधुरा, स्वभावरक्ता, करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टतन्त्री, गजहृदयानि, ऋषिवचनगता, मन्त्रविद्या, इव बलात्, वशीकरोति ॥ १२ ॥

व्याख्या—श्रुतिसुखमधुरा = श्रुतिसुखेन = कर्णप्रियेन, मधुरा = प्रिया । स्वभावरक्ता = निसर्गतः रागाख्य धर्मवती । करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्टयन्त्री = करजस्य = नखस्य, मुखेन = अग्रभागेण, उल्लिखिता = स्पृष्टा, अतएव अग्रघृष्टा= अग्रेवादिता (स्वरार्थम्) तन्त्री = तन्तुः यस्याः सा । ऋषिवचनगता = मुनिवाणिविलसिता । मन्त्रविद्या = तन्त्रविद्या । इव = यथा । गजहृदयानि = हस्तिमनांसि । बलाद् = हठात् । वशीकरोति = स्वायत्तीकरोति ॥१२॥

समरावजितानाम् = समरे = युद्धे, अवजितानाम् = स्वायत्तीकृतानाम् । रत्नानाम् = मणीनाम् । इष्टजनेन = सुहृज्जनेन । सम्भोगः = उपयोगः । प्रीतिमुत्पादयति = आनन्दं ददाति ।

अन्वयः—ज्येष्ठः, सुतः गोपालकः, अर्थशास्त्रगुणग्राही, अनुपालकः, च, व्यायामशाली, गान्धर्वद्वेषी ॥ १३ ॥

व्याख्या—ज्येष्ठः = प्रथमः । सुतः = पुत्रः । गोपालकः = एतन्नामकः । अर्थशास्त्रगुणग्राही = राजविद्यागुणज्ञः । च = तथा । अस्य = गोपालकस्य ।

कानों को सुख देने के कारण सुन्दर एवं स्वभाव से ही (अनेक) रागों को निकालती है, और नख के अग्र भाग से जिसके तार बजाये जाते हैं, ऐसी यह ऋषियों के वचन के अन्तर्गत मन्त्र विद्या की भाँति हाथियों के हृदय (मन) को हठात् वश में कर लेती है ॥१२॥

अरे, युद्ध में जीते गये मणियों का उपभोग यदि सुहृद्गण करते हैं तो आनन्द आता है ।

क्व नु खल्वियं सुन्यस्ता भवेत् ? देवि ! वासवदत्ता वीणामुपक्रान्ता ननु ?

देवी—आम् ।

राजा—तेन हि इयमस्यै प्रदीयताम् ।

देवी—वीणाप्पदाणेण भूओ वि उम्मत्ता विअ चिट्ठदि । [वीणाप्रदानेन भूयोऽप्युन्मत्तेव तिष्ठति ।]

राजा—क्रीडतु क्रीडतु । नैतत् सुलभं श्वशुरकुले । बादरायण ! क्व सा ?

अनुपालकः = अनुजः । व्यायामशाली = मल्लविद्याभ्यासी । गान्धर्वद्वेषी = संगीतविद्याविरोधी, अर्थात् द्वयोः पुत्रयोः मध्ये कस्मैचिदपि गानविद्या न रोचते, इत्यतो जिज्ञासते ॥१३॥

क्वनु खल्वित्यादि । सुन्यस्ता = स्थापिता । भवेत् = स्यात् । अर्थात् कस्मायियं प्रदेया । वासवदत्ता = पुत्री । वीणामुपक्रान्ता = तन्त्रीमभ्यस्यते ननु = इति प्रश्ने, किमिति भावः ।

श्वसुरकुले = श्वसुरगृहे । नैतत = क्रीडनादिकम् । सुलभम् = लभ्यम् ।

मेरा बड़ा लड़का "गोपाल" तो अर्थशास्त्र का ज्ञाता है एवं उसका छोटा भाई व्यायाम का प्रेमी है (अत एव) संगीत विद्या का विरोधी है ॥१३॥

इस वीणा को किसके समीप रखा जाए ? देवी ! वासवदत्ता वीणा सीखने लगी है क्या ?

देवी—हाँ ।

राजा—तब तो यह वीणा उसे ही दी जाय ।

देवी—वीणा पा जाने से तो वह और उन्मत्त हो जायेगी । अर्थात् उपयुक्त वीणा के बिना तो वह संगीत में तल्लीन है, वीणा पा जाने पर तो और भी उन्मत्त हो जायेगी ।

राजा—खेलने दो ! खेलने दो । ससुराल में ये सब कहाँ मिलेंगे (उसे) बादरायण ! वह कहाँ है ।

काञ्चुकीयः—अमात्येन सहोपविष्टा ।

राजा—अथ वत्सेश्वरः ।

काञ्चुकीयः—आहितविनयत्वात् पादयोरङ्गे तस्य बहुप्रहारत्वाच्च स्कन्धवाह्येन शयनीयेन मध्यमगृहे प्रवेशितः ।

राजा—हा धिग् !! बहुप्रहारः । एष इदानीं निरुपस्कृतस्य तेजसो दोषः । नृशंसः खल्वस्मिन् काल उपेक्षितवान् । बादरायण ! गच्छ । भरतरोहकं ब्रूहि—क्रियतामस्य व्रणप्रतिकर्मेति ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः ।

राजा—अथवा एहि तावत् ।

काञ्चुकीयः—अयमस्मि ।

राजा—अस्य सर्वदर्शनमविमुक्तसत्कारमवगन्तव्यम् । आकारसूचिता

आहितः = प्रक्षिप्तः, विनय=निगडः, यस्य सः तस्य भावः तस्मात् अर्थात् शृङ्खलानिबद्धत्वात्, पादयोः = चरणयोः ।

हा धिग् = हवि तु बहनुशोचने । निरुपस्कृतस्य = अप्रतिबद्धसंस्कारस्य । तेजसः = ओजसः । दोषः । नृशंसः = क्रूरः । व्रणप्रतिकर्म = व्रणचिकित्सा ।

अस्य = उदयनस्य । सर्वदर्शनम् = सकलशास्त्रदृष्टिः, हृदयगतमनोरथ-

---

कञ्चुकी—मन्त्री के साथ बैठी है ।

राजा—वत्सराज कहाँ है ?

कञ्चु०—पैरों में बेड़ी पड़ी होने के कारण एवं अंगों में बहुत चोट लगने के कारण पालकी में बिठाकर मध्य गृह में भेज दिया गया है ।

राजा—हाय ! इतना अधिक प्रहार ! यह अप्रतिहत तेज का दोष है । इस समय उसकी उपेक्षा करना नृशंसता है । बादरायण ! भरतरोहक से जाकर कहो कि उसके घावों की चिकित्सा करें ।

कञ्चु०—जैसी महासेन की आज्ञा ।

राजा—या इधर आओ ।

कंचु०—यह मैं हूँ ।

राजा—उसका सब तरह से सम्मान करना । उसकी आकृति (चेष्टा) से

अस्य प्रीतयो विज्ञेयाः। अतिक्रान्तविग्रहाश्रिताः कथा न कथयितव्याः। क्षुतादिप्रयोगेष्वाशिषोऽभिधेयाः। कालसंवादिना स्तवेनार्च्यः।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः। (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महासेनः। पथ्येव कृतव्रणप्रतिकर्मा वत्सराजः। अकालस्तावदिदानीं द्वितीयस्य प्रतिकर्मण इति। मध्याह्नमारोहति दिवाकरः।

राजा—अथ कस्मिन् प्रदेशे वीरमानी ?

प्रकाशिकेत्यर्थः। अविमुक्तसत्कारम् = सम्मानपुरस्सरं यथा स्यात्तथा। अवगन्तव्यम् = अवबोधव्यम्। आकारसूचिताः = आकृतिप्रकटिताः। प्रीतयः = अभिलाषाः। विज्ञेयाः = ज्ञातव्याः। अतिक्रान्तविग्रहाश्रिताः = व्यतीतयुद्धसम्बन्धिन्यः। कथाः = वार्ताः। न कथयितव्याः = न चर्चनीयाः। क्षुतादिप्रयोगेषु = क्षुतं नासिकाजन्यक्रियाविशेष्यं "छींक" इति लोके प्रसिद्धा, तेषु प्रयोगेषु = तेन कृतेषु। आशिषोऽभिधेयाः = मङ्गलवचनंवक्तव्यम्। कालसंवादिना = समयोपयुक्तेन। स्तवेन = स्तुत्या, वन्दिगानादिभिरित्यर्थः, अर्च्यः = पूज्यः।

पथ्येव=मार्ग एव। कृतव्रणप्रतिकर्मा = कृतं = सम्पादितं, व्रणप्रतिकर्म = अभिघातोपचारादिकं यस्य सः। द्वितीयस्य व्रणप्रतिकर्मणः = अपरोपचारस्य। इदानीम् = अधुना = अकालः। दिवाकरः = सूर्यः। मध्याह्नम् = दिवसमध्यम्। आरोहति = विराजते।

कस्मिन् प्रदेशे = कुत्रस्थलविशेषे। वीरमानी = शौर्यशाली, स्वाभिमानीत्यर्थः।

ही उसके मनोरथ को जान लेना (कि वह क्या चाहता है)। बीते हुए युद्ध सम्बन्धी बातें न करना। उसके छींकने आदि पर आशीर्वादात्मक (चिरञ्जीव) वाक्यों का प्रयोग करना। समयानुकूल स्तुतियों से उसकी स्तुति करना।

कंचु०—महासेन का जैसा आदेश। (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महासेन की जय हो। मार्ग में ही वत्सराज को मलहम-पट्टी कर दी गयी है। अब दूसरी पट्टी का यह समय नहीं है। सूर्य बीच आकाश में विराज रहे हैं (अर्थात् दोपहर हो गया है।)

राजा—वह वीर, स्वाभिमानी है कहाँ ?

काञ्चुकीयः—मयूरयष्टिमुखे ।

राजा—हा धिग्, अनाश्रयणीयः खल्वयं देशः । आतपप्रातिकूल्यार्थं मणिभूमिकायां प्रवेशयेत्याज्ञापय ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महासेनः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) यदाज्ञप्तं महासेनेन तत् सर्वमनुष्ठितम् । अमात्यस्तु भरतरोहको महासेनं द्रष्टु-मिच्छति ।

राजा—व्यक्तं न रोचते तस्मै वत्सराजसत्क्रिया । अस्यैष नीतेः परिश्रमः । अहमेवैनमनुनयामि ।

अनाश्रयणीयः = निवासानुपयुक्तः । देशः = स्थलम् । आतपप्रतिकूल्यार्थम् = घर्मसंरक्षणार्थम् । मणिभूमिकायाम् = रत्नमयकक्षायाम् । प्रवेशय=तं निवासय ।

यदाज्ञप्तम् = भवद्भिः यदादिष्टम् । सर्वमनुष्ठितम् = सर्वमाचरितम् । अमात्यः = मन्त्री । महासेनम् = महाराजम् । द्रष्टुमिच्छति = दिदृक्षति ।

व्यक्तम् = स्पष्टम् । तस्मै = भरतरोहकाय मन्त्रिणे । वत्सराजसत्क्रिया = उदयनसम्मानः । न रोचते = न सुष्ठु प्रतिभाति । अस्यैव नीतेः = मन्त्रिणः नीतेरेव, एषः = अयम् । परिश्रमः = उदयनग्रहणम् । अहमेव = प्रद्योत एव । अनुनयामि = प्रसादयामि ।

कंचु०—मयूरयष्टि नामक (अट्टालिका के) ऊपरी भाग में ।

राजा—ओह ! वह स्थान रहने योग्य नहीं है । (सम्भवतः वहाँ धूप आती है, अतः राजा कहता है) धूप से बचने के लिए मणिमय (महल) में उसे ठहरावे, ऐसी मेरी आज्ञा दे आओ ।

कंचु०—जैसी महासेन की आज्ञा । (निकल जाता है पुनः प्रवेश कर) आपने जो जो आज्ञा दी थी वह सब सम्पन्न कर दी गयी । परन्तु मन्त्री भरतरोहक महासेन को देखना चाहते हैं ।

राजा—स्पष्ट है कि उसे (मन्त्री को) वत्सराज का यह सत्कार अच्छा नहीं लगता । उसी की नीति का यह फल है (कि वत्सराज पकड़ा गया) । मैं ही उसे समझाता हूँ ।

देवी--किं सम्बन्धो णिच्चिदो ? [किं सम्बन्धो निश्चितः ।]

राजा--न तावन्निश्चयो गम्यते ।

देवी--अलं दाणि तुवरिअ । बाला मे दारिआ । [अलमिदानीं त्वरित्वा । बाला मे दारिका ।']

राजा--यदभिरुचितं भवत्यै । प्रविशत्वभ्यन्तरम् ।

देवी--जं महासेणो आणवेदि । (निष्क्रान्ता सपरिवारा ।) [यन्महासेन आज्ञापयति ।]

राजा--(विचिन्त्य)

पूर्वं तावद् वैरमस्यावलेपा-
दानीतेऽस्मिन् स्यात तु मध्यस्थता मे ।

अन्वयः--पूर्वम्, तावत्, अस्य, अवलेपात्, मे, वैरम्, आनीते, अस्मिन् मध्यस्थता, स्यात्, युद्धक्लिष्टम्, विपन्नम्, एनम्, संशयस्थम्, श्रुत्वा, संशयम्, चिन्तयामि ॥ १४ ॥

व्याख्या--पूर्वं तावद् = निग्रहणात्प्राक् । अस्य = उदयनस्य । अवलेपात = दर्पात् । वैरम् = शत्रुभाव आसीत् । अस्मिन् = उदयने । आनीते तु = बद्ध्वानयने सति तु । मे = मम प्रद्योतस्येति भावः । मध्यस्थता = उदासीनता समत्वमिति यावत्, आसीत् । तु = परन्तु । युद्धक्लिष्टम् = रणपीडितम् ।

देवी--संबंध (विवाह) निश्चित हो गया क्या ?

राजा--अभी तो निश्चित नहीं हो पाया है ।

देवी--अभी शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं है । मेरी बेटी अभी बच्ची है ।

राजा--तुम्हें जो अच्छा लगे । अन्दर चलो ।

देवी--महासेन की जो आज्ञा (सपरिवार निकल जाती है ।)

राजा--(सोच कर) ।

वत्सराज के पकड़े जाने से पहले तो उससे मेरा वैर था । उसको पकड़ कर ले आने पर मैं तटस्थ हो गया । परन्तु युद्ध में पीड़ित विपत्तिग्रस्त तथा

युद्धक्लिष्टं संशयस्थं विपन्नं
श्रुत्वा त्वेनं संशयं चिन्तयामि ॥ १४ ॥

(निष्क्रान्तौ ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।



विपन्नम् = ग्रहणरूपविपत्तिग्रस्तम् । एनम् = उदयनम् । संशयस्थम् = जीवन-संदेहविषयीभूतम् । श्रुत्वा = आकर्ण्य । संशयम् = संदेहम् । चिन्तयामि = अनुशोचामि । ममापि चिन्ता जाता "सः जीवति न वेत्यर्थः ॥१४॥

प्राणसंशय में पड़े हुए इसको सुनकर मैं भी चिन्तित हो गया हूँ (कि जीवित है या मर गया) ॥१४॥

(दोनों निकल जाते हैं)

दूसरा अङ्क समाप्त ।



अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति डिण्डिकवेषो विदूषकः ।)

विदूषक—(निरूप्य) भो ! देवउलपीठिआए मम मोदअमल्लअं णिक्खिविअ दक्खिणामासआणि गणिअ बन्धिअ पडिणिवुत्तो दाणि-मोदअमल्लअं ण पेक्खामि । (विचिन्त्य) आ ! एकमोदअपरितोसिदो ण दाव ओज्झगो मं अणुसरदि । उच्चदाए पाआरस्स अगई कुक्कुराणं । अक्खदभत्तदाए अलोहणीअं पहिआणं । आदु अपि णं खाआमि । भोदु ओग्गारइस्सं दाव अहं । ही हीं वुड्ढो विअ सूअरवत्थी सुद्धवादं एव्व उग्गिरामि । अहव लोहिदकच्चाअणीए केरअं मम केरअं त्ति करिअ सिवेण पडिहत्थीकिदं भवे । (निरूप्य) जदि वि एसो बम्हआरी बहु-केहि रूवेहि अविणअं करेदि । भोदु पेक्खिस्सं दाव अहं । भो ! एदं खु मम मोदअमल्लअं सिवस्स पादमूले चिट्ठइ । जाव णं गह्लामि । देहि भट्टा ! देहि मे मोदअमल्लअं । भट्टा ! तुवं वि मम चोरो सि । अविहा !

डिण्डिकवेषः = डिण्डिकस्येव वेषो यस्य सः डिण्डिकवेषः = विकृतवेषभाषणा-दिना जनस्य हास्यं जनयन् भिक्षायाचकः ।

(इसके बाद डिण्डिक वेषधारी विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अरे ! शिवालय के चबूतरे पर मैं अपना मधुर मोदक (लड्डू) रखकर दक्षिणा में पाये हुए स्वर्ण-खण्डों को गिनकर और बांध कर (गया था) परन्तु लौट के आने पर मोदक के पात्र को नहीं देख रहा हूं। (वह भिखारी भी) जो एक लड्डू से ही सन्तुष्ट हो गया था, मेरे पीछे-पीछे नहीं आया । चहार-दिवारी के ऊंचे होने के कारण कुत्ते भी नहीं आ सकते । राही भी इसे नहीं ले सकते क्योंकि उनके पास स्वयं ही खाने की सामग्री पर्याप्त है अथवा मैंने ही इनको न खा डाला हो । अच्छा; अब मैं उगलता हूं । अरे ! फूले हुए सूअर के पेडू से जैसे शुद्ध वायु ही निकलती है उसी तरह मेरे उगलने से भी वायु निकल रही है । अथवा चामुण्डा की वस्तु को अपनी वस्तु समझ

आलिहिदं खु मम मोदअमल्लअं संदावतिमिरेण सुट्ठु ण पेक्खामि ।
भोदु पमज्जिस्सं दाव अहं । ही ही साहु ले चित्तअर ! भाव ! साहु ।
जुत्तलेहदाए वण्णाणं जह जह पमज्जामि, तह तह उज्जलदरं होइ ।
भोदु, उद्दएण पमज्जिस्सं । कहिं णु हु उदअं ? इदं सोहणं सुद्धतडाअ ।
अहं विअ सिवो वि दाव एदस्सि मोदअमल्लए णिरासो होदु । [भोः !
देवकुलपीठिकायां मम मोदकमल्लकं निक्षिप्य दक्षिणामाषकान् गणयित्वा बद्ध्वा
प्रतिनिवृत्त इदानीं मोदकमल्लकं न प्रेक्षे । आ ! एकमोदकपरितोषितो न तावदवलग्नो

देवकुलस्य = शिवालयस्य, पीठिकायाम् = अलिन्दे । मोदकैः = मिष्ठान्नैः, युक्तं मल्लकम् = पात्रम्, निक्षिप्य = संस्थाप्य । दक्षिणामाषकान् = दक्षिणात्वेन-प्राप्तान् स्वर्णलवान् । गणयित्वा = परिगणय्य, बद्ध्वाप्रतिनिवृत्तः=वस्त्रेबद्ध्वा प्रत्यागतः, इदानीम् = प्रत्यागते सति, मोदकमल्लकम् = अपूपपात्रम्, न प्रेक्षे = नावलोकयामि । इति प्रथमार्थः । देवस्य = महासेनस्य, कुलपीठिकायाम् = वंश-मालिकायाम्; यशःप्रतिष्ठाधिष्ठानभूतायां वासवदत्तायामिति भावः । मम = विदूषकस्य, मल्लकम् = प्रियश्रेष्ठम् वत्सराजमुदयनमिति भावः, निक्षिप्य = अर्पयित्वा, उदयनानुरागवती सा तमवश्यं चिन्तयिष्यतीति विस्रम्भात् अर्प-यित्वेति भावः । दक्षिणामाषान् = वत्सराजसम्प्रेषितप्रतिसन्देशवाक्यानि, गणयित्वा = ज्ञात्वा, बद्ध्वा = बुद्ध्वा मनसि स्थिरीकृत्येत्यर्थः, प्रतिनिवृत्तः = प्रत्यागतः अहमिदानीं मोदकमल्लकं न प्रेक्षे = अहमधुना मोदकस्य = प्रियकार्यस्य वासवदत्तापहरणरूपस्येतिभावः, मल्लकम् = सम्पादकम्, पात्रम् = यौगन्धरायणम् न पश्यामीति भावः । इति द्वितीयार्थः ।

एकमोदकपरितोषितः = एकेनैवपूपेनसंतोषितः, अवलग्नः = अवसक्तः, मोदकभोजनसंलग्नः इतिभावः भिक्षुकः इत्यर्थः । न मामनुसरति=न मामनु-गच्छति ही शब्दो हर्षे । वृद्धः = आध्मातः, सूकरवस्तिः = वराहमूत्राशयः,इव= यथा, शुद्धवातमेव=मोदकगन्धरहितं वायुमेव, उद्गिरामि=निस्सारयामि इति-प्रथमार्थः शुद्धवातमेव=शुद्धवाक्यमेव, उद्गिरामि=कथयामि ।

कर शंकर जी ने ही न हथिया लिया हो । अथवा इस ब्रह्मचारी (गणेश) ने ही तो कहीं यह कार्य नहीं किया है । देखता हूँ ।

मामनुसरति । उच्चतया प्राकारस्यागतिः कुक्कुराणाम् । अक्षतभक्ततयालोभनीयं पथिकानाम् । अथवा अप्येनं खादामि ? भवतु, उद्गरिष्यामि तावदहम् । ही ही वृद्ध इव सूकरवस्तिः शुद्धवातमेवोद्गिरामि । अथवा लोहितकात्यायन्याः सम्वंधि मम सम्वधीति कृत्वा शिवेन प्रतिहस्तीकृतं भवेत् । यद्यप्येष ब्रह्मचारी बहुकै रूपैरविनयं करोति । भवतु, प्रेक्षिष्ये तावदहम् । भोः ! एष खलु मम मोदकमल्लकः शिवस्य पादमूले तिष्ठति । यावद् एनं गृह्णामि । देहि भर्तः ! देहि मे मोदकमल्ल-

---

अथवा = उत, लोहितकात्यायन्याः सम्वन्धि = चामुण्डा-मन्दिरलब्धत्वात् तदीयमित्यर्थः ममसम्वन्धीतिकृत्वा = अतः स्वपरिचारदैवतस्वामिकं द्रव्यं स्वीयमिति मत्वा, शिवेन = शङ्करेण, प्रतिहस्तीकृतंभवेत् = स्वहस्तगतंकृतंस्यात्, इति प्रथमार्थः ।

लोहितकात्यायन्याः सम्वन्धि ममसम्वन्धीतिकृत्वा = वासवदत्तायाः वस्तु वत्सराजरूपं मद्वश्यमर्थात् अनायासेन कौशाम्वीं नेतुं शक्यमिति मत्वा मोदकम् = प्रियकार्यं कौशाम्वीप्रयाणविषयं मन्त्रणकर्म; प्रतिहस्तीकृतं भवेत् = अप्रधानीकृतं स्यात्, इतिद्वितीयार्थः ।

यद्यपि=अथवा, एष = निर्जने देवालयेस्थापितः ब्रह्मचारी = गणेशः ब्रह्म चरतीति=ब्रह्मचारी, बहुकैः रूपैः = अनेकप्रकारैः, अविनयम्=उपद्रवम्-करोति । भवतु=अस्तु, प्रेक्षिष्ये तावदहम् = अवलोकयिष्यामि तावदितिप्रथ-मार्थः । यावत्कालं यौगन्धरायणो नागच्छति तावत्कालपर्यन्तं प्रतीक्षां करो-मीति भावः ।

मोदकमल्लकः = अपूपपात्रम्, शिवस्य पादमूले तिष्ठति=शंकरचरणे वर्तते इति प्रथमार्थः । वासवदत्ता सहितोदयनापहरणरूपं प्रियकार्यं शिवस्य=यौगन्ध-रायणस्य, पादमूले=अधीने, तिष्ठति=वर्तते । यवदेनं गृह्णामि=एनं=यौगन्धरायणं वासवदत्तासहितवत्सराजापहरणरूपाभिलाषः पूर्णो भवेदिति याचनां करोमि ।

अरे ! यह मेरा लड्डू का वर्तन शिवजी के चरण के पास है। इनको लेता हूँ । ऐ स्वामिन् ! मेरा लड्डू दो; मेरा लड्डू दो ! अरे स्वामी तुम्हीं ने मेरा लड्डू चुराया है । स्वामी तुम्हीं चोर हो । चित्रलिखित अपने लड्डू को मैं तेज धूप के कारण चकाचौंध हुई आँखों से नहीं देख रहा हूँ । अब मैं इनको ढूढ़ूँगा ।

कम्। भर्तः ! त्वमपि चोरोऽसि । अविधा ! आलिखितं खलु मम मोदकमल्लकं सन्तापतिमिरेण सुष्ठु न प्रेक्षे । भवतु, प्रमार्जिष्यामि तावदहम् । ही ही साधु रे चित्रकर ! भाव ! साधु । युक्तलेखतया वर्णानां यथा यथा प्रमार्ज्मि, तथा तथोज्ज्वलतरं भवति । भवतु, उदकेन प्रमार्जिष्यामि । कुत्र न खलूदकम् ? इदं शोभनं शुद्धतटाकम् । अहमिव शिवोऽपि तावद् एतस्मिन् मोदकमल्लके निराशो भवतु ।]

प्राकारस्य = प्राकारतुल्यस्य यौगन्धरायणस्य, उच्चतया=प्रणीतत्वेन, कुक्कुराणाम् = नीचबुद्धित्वेन श्वतुल्यानां महासेनमन्त्रिणाम्; अगतिः=अनुपायः; अर्थात् यौगन्धरायणो विग्रहीतुमशक्यम् । अक्षतभक्ततया=अन्नसम्पन्नतया, अलोभनीयम्=अभिलाषविषयं न भवति अध्वगानाम्=पथिकानाम् । चाराणां भोगोपभोगवस्तुसम्पन्नतया स्वामिनः किमपि प्राप्तव्यं नास्ति अतः शत्रुपक्षसकाशात् किमपि स्पृहणयं नास्ति इति भावः ।

अविधा—इति खेदे, आलिखितम्=चित्रार्पितम, सन्तापतिमिरेण = उग्रघर्माभिघातजन्येन चक्षुर्जडिम्ना, सुष्ठु न प्रेक्षे=सुष्ठुतया नावलोकयामि । भवतु = अस्तु, प्रमार्जिष्यामि=हस्तेनाभिमृश्य प्रोक्षयिष्यामि ।

ही ही=इति हर्षसूचकपदम् । चित्रकर !=आलेखशिल्पिन् । वर्णानाम् = रञ्जकानाम्, प्रमार्ज्मि=करेण शोधयामि । उज्ज्वलतरं भवति=रमणीयं भवति ।

अहो नीतिकुशल ! यौगन्धरायण ! त्वत्कार्यविधानां यथायथा सारतामसारतां विवेचयामि तथा तथा सारतरं भवति इति आभ्यन्तरोऽर्थः । उदकेन प्रमार्जिष्यामि=जलेनसंशोधयिष्यामि ।

उदकव्याजेन सूचयति यत् क्वचित्कोऽपि जले आत्मानं गोपयित्वा मम मन्त्रणं शृणोति न वा ? शोभनतटाकम्=निर्मलजलसहितम् अथवा अन्य जनसंसर्ग रहितम् तटाकं यस्मिस्तत् तथा भूतमत एव शोभनम्=मङ्गलप्रदम् ।

धन्य रे चित्रकार ! धन्य ! रंगों की मिलावट इतनी अच्छी है कि जैसे-जैसे साफ करता हूँ वैसे-वैसे उजला होता जा रहा है ।' फिर भी जल से साफ करूंगा । जल कहाँ है ? यह स्वच्छ सरोवर है । मेरी तरह महादेव को भी लड्डू के लिए निराश होना पड़े ।

(नेपथ्ये)

मोदआ ! मोदआ ! हहह । [मोदकाः ! मोदकाः ! हहह ।]

विदूषकः—अविहा ! एसो उन्मत्तओ मम मोदअमल्लअं गह्निअ हसमाणो फेणायमाणमलिणवरिसारच्छोदअं विअ इदो एव्वाहावइ । चिट्ठ चिट्ठ उन्मत्तअ ! चिट्ठ । इमिणा दंडकट्ठेण सीसं दे भिन्दामि । [अविधा ! एष उन्मत्तको मम मोदकमल्लकं गृहीत्वा हसमानः फेनायमानमिलनवर्षारथ्योदकमिवेत एवाधावति । तिष्ठ तिष्ठोन्मत्तक । तिष्ठ । अनेन दण्डकाष्ठेन शीर्षं ते भिनद्मि ।]

प्रथमार्थः स्पष्टएव । शिवोऽपि=यौगन्धरायणोऽपि । मोदकमल्लके=वासवदत्तासहितवत्सराजापहरणविषये । निराशो भवतु=आशा रहितो भवतु ॥

अविधा = इति तु खेदसंसूचकमव्ययपदम् । गृहीत्वा = अपहृत्य । रथ्योदकमिव = प्रतोलीजलमिव । इत एव = अत्रैव आधावति = धावन्नागच्छति । उन्मत्तकः=यौगन्धरायणः, मोदकमल्लकम्=मन्त्रावसरम् । गृहीत्वा, द्रुततरमागच्छति ।

मोदकाः = मंत्राः किम् = अज्ञाताः किम् ? किम् शब्दो अज्ञातार्थे । कुत्र मोदकः = किं निजपक्षागतदोषप्रतीकारसम्बन्धे, अथवा परपक्षोत्थदोषप्रतीकारविषये मंत्राः कर्तव्याः । कस्य मोदकाः = किं सम्बन्धिनो मन्त्राः, किमस्माकं वश्य उत परवश्यः ? परवश्यत्वपक्षे आह—इमे मोदकाः = स्वाम्यपहरणार्थं धार्यमाणाः वेषाः किं उज्झयन्ते = किं त्यज्यन्ते ? अथवा किं पिनह्यन्ते = उत धार्यन्वेवा ? इति स्ववश्यत्वपक्षे । फलप्रत्याशाबीजं किञ्चिदस्ति न वेत्यभिप्रायः । उताहो = अथवा किं खाद्यन्ते = हन्यन्ते ? अर्थात् स्वामिमोचनार्थं वामचेष्टिताः शत्रवः ।

(नेपथ्य में)

मोदक ! मोदक ! ह ह ह !

विदूषक—यह उन्मत्तक मेरे लड्डुओं को लेकर हंसता हुआ वर्षा कालीन गली के गन्दे फेन से युक्त जल के समान इधर ही दौड़ता हुआ आ रहा है । उन्मत्तक ! ठहरो ठहरो ! इस डण्डे से तुम्हारा सिर फोड़ता हूँ !

(ततः प्रविशत्युन्मत्तकः ।)

उन्मत्तकः—मोदआ ! मोदआ ! अहह । [मोदकाः ! मोदकाः ! हहह ।]

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं [भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम् ।]

उन्मत्तकः—किं मोदआ । कहिं मोदआ । कश्श मोदआ । कि इमे मोदआ उज्झन्ति, आदु पिणज्झन्ति, उदाहो खज्जन्ति । [किं मोदकाः ? कुत्र मोदकाः ? कस्य मोदकाः ? किमिमे मोदका उज्झ्यन्ते, अथवा पिनह्यन्ते उताहो खाद्यन्ते ?]

विदूषकः—ण खज्जन्ति ण खज्जन्ति ण उज्झन्ति अ । [न खाद्यन्ते न खाद्यन्ते नोज्झ्यन्ते च ।]

उन्मत्तकः—एसा खु मम रसणा खाइदुकामा लिङ्गाणि करेदि । [एषा खलु मम रसना खादितुकामा लिङ्गानि करोति ।]

मम = उन्मत्तकस्य यौगन्धरायणस्य, रसना = बुद्धिः खादितुकामा = शत्रून् हन्तुकामा, लिङ्गानि करोति = चिह्नानि प्रकटीकरोति ।

मोदकमल्लकम् = मन्त्रावसरम्, आनय = देहि । वृत्तान्ततत्त्वं ते कथयामीति भावः । परकीये = वत्सराजे पराधीने सति पूर्वसङ्कल्पिततत्कौशाम्बीप्रयाणाय निवेशं कृत्वा शत्रुबद्धो मा भव ।

मोदकाः = स्थानस्थानेषु स्थापिताः, नियुक्ताः छन्नचारिणः वत्सराजभटाः वा रक्षन्ति ।

(इसके बाद उन्मत्तक (यौगन्धरायण) का प्रवेश ।)

उन्म०—मोदक, मोदक, हहह ।

विदूषक—ऐ उन्मत्तक ! मेरा मोदक लाओ ।

उन्म०—कैसे लड्डू, कहाँ के लड्डू ? किसके लड्डू ? क्या ये लड्डू फेंके जायेंगे अथवा बाँधे जायेंगे या खाये जायेंगे ।

विदूषक—न तो खाये जायेंगे और न तो त्यागे जायेंगे ।

उन्म०—मेरी जीभ तो खाने की इच्छा से भूखे की तरह लक्षण दिखा रही है ।

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं । मा परकेरए सिणेहं करिअ ओवज्झेहि । [भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम् । मा परकीये स्नेहं कृत्वा अवबध्यस्व !]

उन्मत्तकः—के के मं वज्झन्ति ? मोदआ खु मं रक्खन्ति । [के के मां वध्यन्ति ? मोदकाः खलु मां रक्षन्ति ।

णेवच्छविसेसमण्डिदा पीदिं उवदेदुं उवट्ठिआ ।
लाअगिहे दिण्णमुल्लिआ कालवसेण मुहुत्तदुव्वला ॥१॥
[नेपथ्यविशेषमण्डिताः प्रीतिमुपदातुमुपस्थिताः ।
राजगृहे दत्तमूल्याः कालवशेन मुहूर्तदुर्बलाः ॥]

अन्वय—नेपथ्यविशेषमण्डिताः राजगृहे, दत्तमूल्याः, कालवशेन, मुहूर्त-दुर्बलाः, प्रीतिम्, उपदातुम्, उपस्थिताः ॥ १ ॥

व्याख्या—नेपथ्यविशेषैः=अलङ्कारविशेषैः; गुल्मचणकनालिकेरादिभिरुपस्कार-भेदैः,मण्डिताः=अलङ्कृताः, पूरितान्तःभागाः । राजगृहे=नृपसदने दत्तमूल्याः = दत्तं मूल्यं येषां ते दत्तमूल्याः पदार्थाः क्रीताः इत्यर्थः; कालवशेन = समयसापेक्ष-तया, मुहूर्त्तदुर्बलाः = क्षणेनप्रभावरहिताः क्षणाधिकसमयपरिवासमसहमाना इति भावः; एवं भूताः मोदकाः, मे = मम, प्रीतिम्=तृप्तिम्, उपदातुम्=जनयितुम् उपस्थिताः = मत्करे समागताः इति वाह्यार्थः ।

नेपथ्यविशेषमण्डिताः = राजोचितालङ्कारभूषिताः, राजगृहे = स्वामिसदने, दत्तमूल्याः=नियतवेतनभोगिनः, मोदकाः = राजसेवकाः, मुहूर्तदुर्बलाः= कालवशात् अप्रकाशमानशौर्याः सन्ति परन्तु यथासमयं स्वसामर्थ्यम-वश्यं प्रकटिष्यन्ति, प्रीतिमुपदातुम् = वत्सराजापहरणे साहाय्यं कर्त्तुम्, उपस्थि-ताः = आगताः, मम स्वामिनस्य रक्षावश्यं करिष्यन्ति इति भावः । इति आभ्यन्तरोऽर्थः ॥ १ ॥

विदूषक—ऐ उन्मत्तक ! मेरे मोदक लाओ । दूसरे की वस्तु में प्रेम (लोभ) करके फंसो मत ।

उन्म०—कौन, कौन मुझे बांध सकता है ? मोदक मेरी रक्षा करेंगे ।

विशेष सामग्रियों (मसालों) से बने हुए, राजगृह में खरीदे हुए और समय पाकर सूखे हुए ये मोदक मेरी तृप्ति के लिए मुझे मिले हैं ॥ १ ॥

विदूषकः—भो उन्मत्तअ ! आणेहि मम मोदअमल्लअं । इमिणा पच्चएण उवज्झाअउलं गन्तव्वं । [भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम् । अनेन प्रत्ययेनोपाध्यायकुलं गन्तव्यम् ।]

उन्मत्तकः—मए वि इमिणा पच्चएण जोअणसदं गन्तव्वं । [मयाप्यनेन प्रत्ययेन योजनशतं गन्तव्यम् ।]

विदूषकः—किं एलावणो तुवं ? [किमैरावणस्त्वम् ।]

उन्मत्तकः—आम एलावणो अहं । ण हु दाव देवलाजो मं आशणं आलुहदि । शुदं च मया पादपाशिएहि इन्दे वज्झ त्ति । धाराणिअलेहि विज्जुम्मईहि कशाहि तालिअ वाउब्भामेण परिब्भमन्तेण भिन्दीअदि मेहबन्धणं । [आम ऐरावणोऽहम् । न खलु तावद् देवराजो मामासनमारोहति ।

अनेन = त्वद्धस्तीकृतेन, प्रत्ययेन = साधनेन पाथेयेनेत्यर्थः उपाध्याकुलम् = आचार्याश्रमम्, गन्तव्यम् = गमनीयं वर्तते । भो उन्मत्त = यौगन्धरायण, मोदकमल्लकमानय = मन्त्रावसरं देहि । अनेन प्रत्ययेन=भवद्भिर्विचारितेन मन्त्रेण, उपाध्यायकुलं गन्तव्यम्=कर्तव्यपथं निश्चित्य वत्सराजनिवासस्थानं गन्तव्यम् । इति गूढार्थः । उन्मत्तक इति । वाह्यार्थः स्पष्टः ।

अनेन प्रत्ययेन = मयाविचारितोपायेन, मयाऽपि=स्वामिसहितयौगन्धरायणेनाऽपि । योजनशतम् = योजनशतदूरस्थं कौशाम्बीनगरम् । गन्तव्यम् ॥

ऐरावणः = ऐरावतः इन्द्रहस्ती । देवराजः=इन्द्रः, पक्षे वत्सराजः । न मामासनमारोहति=मदुपरि नारोहति इति बाह्यार्थः ।

विदूषक—ऐ उन्मत्तक । मेरे मोदक लाओ । पाथेय (जलपान) की सहायता से मुझे आचार्य के घर जाना है ?

उन्म०—मैं भी तो इसी की सहायता से सौ योजन जाऊंगा ।

विदूषक—क्या तुम ऐरावत हो ?

उन्म०—हाँ मैं ऐरावत हूं, परन्तु इन्द्र मेरे ऊपर सवारी नहीं करते । सुना है कि इन्द्र पादपाशिक (हाथी के पैर में बाँधने वाली कड़ी) से बाँध लिए गये हैं । वृष्टि के प्रतिबन्धक बिजली के कोड़े से मारकर, चारों तरफ बहता हुआ वायु मेघबन्धन को तोड़ रहा है ॥

श्रुतं च मया पादपाशिकैरिन्द्रो बद्ध इति। धारानिगलैः विद्युन्मयीभिः कशाभि-स्ताडयित्वा वातोद्भ्रामेण भिद्यते मेघबन्धनम्।]

विदूषकः—भो उम्मत्तअ! ण तुवं मम दइस्सिसि, विलविस्सं दाव अहं। [भो उन्मत्तक! न त्वं मम दास्यति, विलपिष्यामि तावदहम्।]

उन्मत्तकः—विलव विलव विक्कोस वा विलव। [विलप विलप विक्रोश वा विलप।]

विदूषकः—अब्बम्मण्णं भो! अब्बम्मण्णं। [अब्रह्मण्यं भो! अब्रह्मण्यम्।]

उन्मत्तकः—अहं पि विलविस्सं। इन्दे वज्झे भो! इन्दे वज्झे भो! [अहमपि विलपिष्यामि। इन्द्रो बद्धो भोः! इन्द्रो बद्धो भोः!।]

विदूषकः— अब्बम्मण्णं। भो! अब्बम्मण्णं। [अब्रह्मण्यं भोः! अब्रह्मण्यम्।]

इन्द्रः=वत्सराजः, न मामासनमारोहति=माम् न क्वचिदपि नियुङ्क्ते। यदि नियुङ्क्ते तर्हि तत्कर्म ततोऽधिकमपि कर्तुमर्हं समर्थः। श्रुतं पादपाशिकैः=चरण-बन्धरज्जुभिः, इन्द्रः=ऐरावतस्वामी बद्धः। पादपाशिकैः क्षुद्रशालङ्कायनादिभिः, इन्द्रः = मत्स्वामी। बद्धः = निबद्ध इति।

धारानिगलैः =वृष्टिप्रपातप्रतिबन्धकैः, विद्युन्मयीभिः =तडिन्निर्मितैः कशाभिः=प्रतोदैः, मेघबन्धनम्=जलदबन्धनम्, भिद्यते=ताड्यते। इतिबाह्यार्थः।

धारानिगलैः = शत्रुसैन्यप्रतिरोधिकाभिः विद्युन्मयीभिः = तडिदिवस्फूर्त बुद्धिभिः, कशाभिः = प्रतोदैः, रिपून् = शत्रून् ताडयित्वा, मेघबन्धनं भिद्यते = अन्तरिक्षावरोधनं भेत्स्यते इति गूढार्थः।

विदूषक—ऐ उन्मत्तक यदि तुम न दोगे तो मैं विलाप करूंगा।

उन्म०—विलपो विलपो। चिल्लाओ या विलाप करो।

विदूषक—अधर्म! अधर्म!

उन्म०—मैं भी विलाप करूंगा। इन्द्र बांधा गया। इन्द्र बांधा गया!

विदूषक—अधर्म! अधर्म!

(नेपथ्ये)

मा भाआहि मा भाआहि बह्मणाउस ! मा भाआहि । [मा बिभीहि मा बिभीहि ब्राह्मणोपासक ! मा बिभीहि ।

विदूषकः—(सहर्षम्) आअदे चन्दे समाअदाणि सव्वणक्खत्ताणि । अघं ब्रह्मणभावं । ईहामत्तएण समणएण अभअं दीअदि । [आगते चन्द्रे समागतानि सर्वनक्षत्राणि । अघं ब्राह्मणभावः । ईहामात्रकेण श्रमणकेनाभयं दीयते ।]

(ततः प्रविशति श्रमणकः ।)

श्रमणकः—मा भाआहि मा भाआहि बह्मणाउस ! मा भाआहि । के के इह, किं कय्यं विलवन्दि । [मा बिभीहि मा बिभीहि ब्राह्मणोपासक । मा बिभीहि । के के इह, किं कार्यं विलपन्ति ।]

विदूषकः—अविहापडिहाररक्खअउत्तिंखु समणओ अणुहोदि । भो समणअ ! भअवं ! एसो उन्मत्तओ मम मोदअमल्लअं गहणिअ ण देदि । [अविधा प्रतिहाररक्षकवृत्ति खलु श्रमणकोऽनुभवति । भोः श्रमणक ! भगवन् ! एष उन्मत्तको मम मोदकमल्लकं गृहीत्वा न ददाति ।]

अब्रह्मण्यम् = अधर्मसूचकं वाक्यम् । ब्राह्मणभावः = ब्राह्मणत्वम् । अघः = पापम् । चन्द्रे = यौगन्धरायणे, आगते = प्राप्ते, सर्वनक्षत्राणि = सर्वे राजसेवकाः आगताः ।

अविधा = इत्यव्ययपदम् । प्रतिहारस्य=द्वारस्य, रक्षकः = पालकः तस्य वृत्तिम्=जीविकाम् । अनुभवति= आचरति । मोदकमल्लकम्=मन्त्रणासमयम् ।

(नेपथ्य में)

ऐ ब्राह्मणोपासक ! मत डरो ! मत डरो ।

विदूषक—चन्द्रमा के आ जाने पर सभी नक्षत्र आ गये । ब्राह्मणत्व पाप है । इच्छा करते ही अभय देने के लिए श्रमणक आ गया ।

श्रमणक—मत डरो ! डरो मत ! हे ब्राह्मणभक्त डरो मत ! यहाँ पर कौन-कौन; किस लिए विलाप कर रहे हैं ।

विदूषक—अरे ! श्रमणक तो चौकीदारी कर रहा है, ऐ श्रमणक हे भगवन् ! यह उन्मत्तक ! मेरा बहुमूल्य मोदक लेकर अब नहीं दे रहा है ।

श्रमणकः—मोदअं पेक्खामिव दाव । [मोदकं प्रेक्षे तावत् ।]

उन्मत्तकः—पेक्खदु पेक्खदु शमणअ ! भवं [प्रेक्षतां प्रेक्षतां श्रमणक ! भवान् ।]

श्रमणकः—थु थु [थु थु ।]

विदूषकः—हद्धि उन्मत्तअस्स इत्थे ईहामत्तएण समणएण थुथूक्किदा अधण्णस्स मम मोअदा दिट्ठपुरुवा एव्व संवुत्ता । [हा धिग् उन्मत्तकस्य हस्ते ईहामात्रकेण श्रमणकेन थुथूकृता अधन्यस्य मम मोदका दृष्टपूर्वा एवं संवृत्ता ।]

श्रमणकः—भो उन्मत्तआउस ! णीआदेहि णीआदेहि एदाणि मोदआणि कत्थूलिआफेणपण्डराणि बहुपिट्ठसमिद्धकोमलाणि णिट्ठाणिआ सुरा विअ महुराणि । मा दे खाईदाणि खअं उत्पादन्ति । [भो उन्मत्तकोपासक ! निर्यातय निर्यातय एतानि मोदकानि कस्थूलिकाफेनपाण्डराणि

अधन्यस्य=भाग्यहीनस्य । मोदकाः=स्वामिसंदेशाः दृष्टपूर्वाः=ज्ञातपूर्वाः । थुथूकृताः=समर्थिताः । भोः उन्मत्तकोपासक=उन्मत्तकभक्त । कस्य=जलस्य, स्थूलिकाः=परिबृहंणम्, तानि च फेनानि=डिण्डिराणि तानीव पाण्डराणि=शुभ्रानि बहुपिष्टसमृद्धकोमलानि=अनेकमृदिततण्डुलचूर्णैः वर्द्धितानि कोमलानि च, सुरा=मदिरा इव, मधुराणि मोदकानि निर्यातय । इति बाह्योऽर्थः । भो उन्मत्तकोपासक=हे यौगन्धरायण ! पाण्डराः=अनिष्टशङ्कारहिताः, बहुपिष्टसमृद्धकोमलाः=अनेकशः विमृष्टाः अतएव समृद्धाः=पर्याप्तदोहनयोग्याः कोमलाश्च=सुगमसाध्याश्च मोदकानि=उपायाः । मधुराः=रमणीयाः । ते=त्वया ।

श्रमणक—तब तक मोदक देखता हूँ ।

उन्म०—आप देखिए ! देखिए !

श्रमणक—थु ! थु !

विदूषक—हाय ! बहुत ही दुःख की बात है कि उन्मत्तक के हाथ में रक्खे हुए मुझ भाग्यहीन के मोदक को श्रमणक ने थु थु करके (थूक करके) अशुद्ध कर दिया अतः वे पहले के देखे हुए ही रह गये (न कि खाने योग्य भी) ।

श्रमणक—हे उन्मत्तकोपासक ! फेंक दो ! फेंक दो ! पाला और फेन की तरह श्वेत, अनेक पिसे हुए (चावल) चूर्णों से निर्मित और सिखरन युक्त

बहुपिष्टसमृद्धकोमलानि निष्ठानिताः सुरा इव मधुराणि । मा ते खादितानि क्षयमुत्पादयन्तु ।]

विदूषकः—अविहा मोदआणि त्ति करिअ कण्डिललड्डुआ मे पडिच्छिदा । [अविधा मोदका इति कृत्वा कण्डिललड्डुका मे प्रतीष्टाः ।]

श्रमणकः—उन्मत्तआउस ! णीआदेहि णीआदेहि । जदि ण णीआदेसि, एवं सवेमि । [उन्मत्तकोपासक ! निर्यातय निर्यातय । यदि न निर्यातयसि, त्वां शपामि ।]

उन्मत्तकः—पशीददु पशीददु शमअण ! भअवं । मा खु मा खु मं शविदं । गह्ण गह्ण । [प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु श्रमणक ! भगवन् ! मा खलु मा खलु मां शप्तुम् । गृहाण गृहाण ।

श्रमणकः—ब्रह्मणाउस ! पेक्ख पेक्ख मम प्पभावं । [हे ब्राह्मणोपासक ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व मम प्रभावम् ।]

विदूषकः—एसो उन्मत्तओ एदेण ईहामत्तएणसमणएण उब्भिदं सावं

एकाकिनेति भावः । खादितानि=निर्जितानि, क्षयम्=निष्फलताम्, मा उत्पादयन्तु =न कुर्युः अतः विदूषकववचनमपि श्रोतव्यम् ।

अविधा = कष्टवाचकमव्ययपदम् । कण्डिललड्डुकाः = सुराकारमोदका ।

प्रसीदन्तु = प्रसन्नो भवन्तु । प्रभावम् = निग्रहानुशक्तिम् ।

मदिरा के समान मधुर ये मोदक हैं । खाये जाने पर ये (मोदक) कहीं तुम्हें क्षय रोग न उत्पन्न कर दें ।

विदूषक—हाय ! मैंने लड्डू खाने की इच्छा से मदिरा बनाने वाले के लड्डुओं की प्रतीक्षा की ।

श्रमणक—हे उन्मत्तकोपासक ! लौटा दो ! लौटा दो ! यदि नहीं लौटाओगे तो तुम्हें शाप दूँगा (यदि मुझे मन्त्रणा का अवसर नहीं दोगे तो तुम्हारी हानि होगी ।)

उन्म०—प्रसन्न हों ! प्रसन्न हों । भगवन् ! मुझे शाप मत दीजिए । लीजिए ! लीजिए ! (नाराज मत होवो ! मन्त्रणा प्रारम्भ करो ।)

श्रमणक—हे ब्राह्मणोपासक ! मेरा प्रभाव देखो ।

विदूषक—यह उन्मत्तक तो श्रमणक की राय देने की चेष्टा मात्र का

पेक्खिअ मोदअमल्लअं भीदभीदं अग्गङ्गुलिआए पसारिदाए ठाविअ चिट्ठई। भो उन्मत्तअ ! अणेहि मम मोदअमल्लअं [एष उन्मत्तक एतेनेहामात्रकेण श्रमणकेन उज्झितं शापं प्रेक्ष्य मोदकमल्लकं भीतभीतमग्राङ्गुल्यां प्रसारितायां स्थापयित्वा तिष्ठति। भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदकमल्लकम्।]

श्रमणकः—एदु एदु भवं। एदेहि मोदएहि मं सोत्थि वाअइस्ससि। [एतु एतु भवान्। एतैर्मोदकैर्मां स्वस्ति वाचयिष्यसि।]

विदूषकः—ही ही ममकेरएहिं सोत्थि वाएमि। मए वि कोडुम्बिअस्स हत्थादो पडिग्गहगहीदाणि। ताणि भवदो वि उवाअणं भविस्सदि। सो वि समिद्धो होदु। एसो उन्मत्तओ अग्गिगिहं अहिमुहो गच्छइ। ठ्दिो मज्झह्लो। पुव्वह्णे वि दाव अअं देसो सुण्णो भविस्सदि। जाव अहं वि इमाणि दक्खिणामासअणि मग्गगेहे णिक्खिविअ गच्छामि। एकस्स शाडिआए कय्यं अवरस्स मुल्लेण। [ही ही मदीयैः स्वस्ति वाचयामि। मयापि कौटुम्बिकस्य हस्तात् प्रतिग्रहगृहीतानि। तानि भवतोऽप्युपायनं भविष्यति। सोऽपि समृद्धो भवतु। एष उन्मत्तकोऽग्निगृहमभिमुखो गच्छति। स्थितो

ईहामात्रकेण=चेष्टामात्रकेण। उज्झितम्=दत्तम्। एतुएतु=अत्रागच्छतु ! अत्रागच्छतु ! मोदकैः=उपायैः (स्वामिसंदेशैः) मां स्वस्ति वाचय इत्याभ्यन्तरो भावः।

ही शब्दोऽत्र संतोषवाचकः। कौटुम्बिकस्य=परिवारशालिनः, गृहस्थस्येतिभावः। प्रतिग्रहगृहीतानि=प्रतिग्रहरूपेणलब्धानि। समृद्धः=कृतार्थः। स्थितः=प्राप्तः। मार्गगेहे=सम्मुखसदने। इतितु बाह्योऽर्थः।

मदीयैः=निजमनोगुप्तैः संदेशैः। स्वस्ति वाचयामि=कथयामि। कौटुम्बिकस्य=स्वामिनः सकाशादितिशेषः। प्रतिग्रहगृहीतानि=प्रतिग्राह्यवस्तुप्रीतिपूर्वकं गृहीताः ते संदेशा इतिभावः, भवतोऽप्युपायनंभवेत्=(सम्मुखात्-

स्मरण करके भयभीत होकर मोदक को फैली हुई अंगुलि के अग्रभाग पर रखकर बैठा है। हे उन्मत्तक ! मेरा लड्डू लाओ !

श्रमणक—आओ ! आओ ! इन मोदकों द्वारा मुझसे "स्वस्ति" कहलावोगे। (स्वामी का संदेश कहकर मेरा कल्याण कहो।)

विदू०—ह ! ह ! अपने मोदकों से "स्वस्ति" वचन कहूँगा। मैंने भी गृहस्थ

मध्याह्नः। पूर्वाह्णेऽपि तावदयं देशः शून्यो भविष्यति। यावदहमपीमान् दक्षिणामापकान् मार्गगेहे निक्षिप्य गच्छामि। एकस्य शाटिकया कार्यमपरस्य मूल्येन।]

(सर्वे अग्निगृहं प्रविशन्ति।)

यौगन्धरायणः—वसन्तक! शून्यमिदमग्निगृहम्।

विदूषकः—आम भो! सुञ्ञं खुद इदं। [आम् भोः! शून्यं खल्विदम्।]

यौगन्धरायणः—तेन हि परिष्वजेतां भवन्तौ।

उभौ—बाढम्। (परिष्वजेते)

यौगन्धरायणः—भवतु भवतु। तुल्यपरिश्रमौ भवन्तौ। आस्तां भवान्। भवानप्यास्ताम्।

श्रुताः ते संदेशाः) उपहारपदार्थवत् भवतोऽप्यानान्दप्रदा भविष्यन्ति। दक्षिणामापकान्=स्वामिसंदेशान्। मार्गगेहे=उपायाधिष्ठानभूते यौगन्धरायणे इत्यर्थः। निक्षिप्य=त्यक्त्वा, कथयित्वेतिभावः गच्छामि। एकस्यशाटिकया=स्वामिनः वासवदत्तया, कार्यम्=प्रयोजनम्। अपरस्य=यौगन्धरायणस्य। मूल्येन=प्रयोजनेन।

के हाथ से प्राप्त किया है वे आपके लिए भी उपहार हो जायेगें। वह (गृहस्थ) भी कृतार्थ हो। यह उन्मत्तक तो अग्निगृह के सम्मुख जा रहा है। मध्याह्नकाल हो गया। मध्याह्न के पहले भी यह स्थान शून्य (निर्जन) रहेगा (जब तक मैं भी दक्षिणा में प्राप्त इन स्वर्ण-खण्डों को सामने वाले घर में रखकर जाता हूं। एक को शाटिका (साड़ी) के प्रयोजन से, दूसरे को मूल्य से (बेचने के प्रयोजन से)

(सभी अग्निगृह में प्रविष्ट हो जाते हैं।)

यौग०—वसन्तक! यह अग्निगृह शून्य है।

विदू०—हाँ जी! यह तो शून्य है ही।

यौग०—तो आप लोग मेरा आलिङ्गन करो।

दोनों—अच्छा (आलिङ्गन करते हैं।)

यौग०—अच्छा! अच्छा! आप दोनों का परिश्रम समान है। आप बैठ जाँय। आप भी बैठ जायं।

(सर्वे उपविशन्ति)

यौगन्धरायणः—वसन्तक ! अपि दृष्टस्त्वया स्वामी —

विदूषकः—आम भो ! दिट्ठो तत्तभवं । [आम् भोः ! दृष्टस्तत्रभवान् ।]

यौगन्धरायणः—हन्त भोः अतिक्रान्तयोगक्षेमा रात्रिः । दिवस इदानीं प्रतिपाल्यते ।

अहः समुत्तीर्य निशा प्रतीक्ष्यते शुभे प्रभाते दिवसोऽनुचिन्त्यते ।
अनागतार्थान्यशुभानि पश्यतां गतं गतं कालमवेक्ष्य निर्वृतिः ॥२॥

अतिक्रान्तयोगक्षेमा = अतिक्रान्तः = व्यतीतः योगक्षेमः = सकुशलंदेहयात्रा यस्यां साऽतिक्रान्तयोगक्षेमा तथाभूतारात्रिः = रजनी । इदानीम् = अधुना, दिवसः प्रतिपाल्यते=प्रतीक्ष्यते । सकुशलंव्यतीयेन्नवेतिभावः ।

अन्वयः—अहः, समुत्तीर्य, निशा, प्रतीक्ष्यते, शुभे, प्रभाते, दिवसः, अनुचिन्त्यते, अनागतार्थानि, अशुभानि, पश्यताम्, गतम्, गतं कालम्, अवेक्ष्य, निर्वृतिः ॥ २ ॥

व्याख्याः—अहः = दिवसम्; समुत्तीर्य = अतिवाह्य, सकुशलमितिविशेषः; निशा=रात्रिः, प्रतीक्ष्यते = प्रतिपाल्यते । शुभे = सुन्दरे, प्रभाते=प्रत्यूषे सञ्जाते सतीति विशेषः, दिवसः=दिनम्; अनुचिन्त्यते=परिशोच्यते कीदृशोऽद्यतनः समयो व्यतीष्यते इति चिन्त्यते इति भावः । अनागतानि = भविष्यत्समयसम्बन्धीनि, अशुभानि = अनिष्टानि, पश्यताम्=चिन्त्यताम्, निर्वृतिः = शान्तिः, गतं गतं कालम्=व्यतीतं समयम्, अपेक्ष्य = मुहुर्मुहुः विचिन्त्यैव भवतीति शेषः ॥ २ ॥

(सभी बैठ जाते हैं)

यौग०—वसन्तक ! क्या तुमने स्वामी को देखा है ?

विदू०—जी हाँ ! स्वामी को मैंने देखा है ।

यौग०—अच्छा भाई ! रात्रि तो सकुशल बीत गई । अब दिन की प्रतीक्षा है ।

दिन के व्यतीत हो जाने पर रात्रि की प्रतीक्षा की जाती है, शुभ प्रभात होने पर पुनः दिन का सोच होता है । भविष्य के अनिष्टों की आशङ्का करते रहने वालों को शुभ समय का स्मरण करते हुए ही शांति मिलती है ॥२॥

रुमण्वान्—सम्यग् भवानाह । तुल्येऽपि कालविशेषे निशैव बहुदोषा बन्धनेषु । कुतः,

व्यवहारेष्वसाध्यानां लोके वा प्रतिरज्यताम् ।
प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणां रजनी भयम् ॥३॥

यौगन्धरायणः—वसन्तक ! स्वामिना सह कथितं ननु ?

विदूषकः—आम भो ! चिरं एव्व च म्हि तत्तहोद ओवद्धो । अज्ज चउद्दसी ण्हाअमाणो पडिवालिदो अ । [आम् भोः ! चिरमेव चास्मि तत्रभवतावबद्धः । अद्य चतुर्दशीं स्नायमानः प्रतिपालितश्च ।]

कालविशेषे=कालगते भेदे, तुल्येऽपि=समानेऽपि, बन्धनेषु=बन्धनयुक्तेषु जनेष्विति भावः, निशैव=रात्रिरेव, बहुदोषा=अनेककष्टकरा ।

अन्वयः—व्यवहारेषु, असाध्यानाम्, लोके, अप्रतिराज्यताम्, वा, प्रभाते, दृष्टदोषाणाम्, वैरिणाम्, रजनी, भयम्, ॥ ३ ॥

व्याख्या—व्यवहारेषु=कार्येषु, असाध्यानाम्=गुणतोनिश्चयितुमशक्यानाम्, लोके=जने, अप्रतिरज्यताम्=स्नेहरहितानाम्, प्रभाते=दिने; दृष्टदोषाणाम्=येनकेनाऽपिप्रकारेण विज्ञातच्छलानाम्, वैरिणाम्=शत्रूणाम्, रजनी=निशा, भयम्=भीतिकरा ॥ ३ ॥

स्वामिना सह कथितम्=स्वामिनासह वार्तालापं कृतं किम् ?

अववद्धः=कथानुवद्धः । प्रतिपालितश्च=प्रतीक्षितश्च ।

रुम०—आपने अच्छा कहा, रात्रि और दिन के तुल्य होने पर भी कैदियों को रात्रि ही अधिक कष्ट देने वाली होती है । क्योंकि लोकव्यवहार में जिनके हृदय का पता नहीं लगता और जो लोगों से स्नेह नहीं रखते परन्तु दिन में किसी तरह जिनकी छल युक्त भावनायें प्रकट हो जाती हैं ऐसे शत्रुओं के लिए रात्रि भयङ्कर होती है ॥ ३ ॥

योग०—वसन्तक ! क्या स्वामी के साथ तुम्हारी वातचीत हुई ?

विदू०—हाँ ! स्वामी ने बड़ी देर तक प्रतीक्षा करवाया । आज चतुर्दशी (पूजन) के लिए स्नान कर रहे थे, अतः बहुत देर तक उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी ।

यौगन्धरायणः—स्नातः स्वामी ?

विदूषकः—ण्हादो अत्तभवं । [स्नातोऽत्रभवान् ।]

यौगन्धरायणः—कृतं देवकार्यम् ?

विदूषकः—आम भो ! पणाममत्तेण पूइदा देवदा । [आम् भोः प्रणाममात्रेण पूजिता देवताः ।]

यौगन्धरायणः—एतामपि बहुमतामवस्थां प्राप्तः स्वामी । कुत.,

स्नातस्य यस्य समुपस्थितदैवतस्य
पुण्याहघोषविरमे पटहा नदन्ति ।
तस्यैव कालविभवात् तिथिपूजनेषु
दैवप्रणामचलिता निगलाः स्वनन्ति ॥ ४ ॥

अन्वयः—स्नातस्य, यस्य, समुपस्थितदैवतस्य, पुण्याहघोषविरमे, पटहाः नदन्ति, कालविभवात्, तस्यैव, तिथिपूजनेषु दैवप्रणामचलिताः, निगलाः, स्वनन्ति ॥ ४ ॥

व्याख्या—स्नातस्य=कृताभिषेकस्य, यस्य=उदयनस्य, समुपस्थितदैवतस्य =पूजितेष्टदैवस्य, पुण्याहघोषविरमे=पुण्याहवाचनोपरान्ते, पटहाः=वाद्यविशेषाः, नदन्ति=स्वनन्ति पूर्णमिति बोध्यम्, तस्यैव=उदयनस्यैव, "इदानीम्" कालविभवात्=समयप्रभावात्, तिथिपूजनेषु=चतुर्दश्यादि-तिथिनिमित्तक-शिवादिदेवाराधनेषु, दैवप्रणामचलिताः=स्वेष्टदेवतानमस्कारकालेदोल्यमानाः, निगलाः=शृङ्खलाः स्वनन्ति=शब्दायन्ते ॥ ४ ॥

यौग०—क्या स्वामी ने स्नान किया ?

विदू०—(हाँ ।) स्वामी ने स्नान किया ।

यौग०—देवताओं का पूजन किया ।

विदू०—हाँ केवल प्रणाम के द्वारा ही देवताओं की पूजा की ।

यौग०—क्या, स्वामी ऐसी अवस्था को प्राप्त हो गये हैं ? क्योंकि स्नान करके इष्ट देवता की पूजा कर लेने पर पुण्याहवाचन के उपरान्त जिस (उदयन) के लिए नगाड़े बजते थे आज समय के प्रभाव से उसके लिए विशेष तिथियों को भी देवताओं को प्रणाम करते समय हिलती हुई बेड़ियाँ ही बज रही हैं ॥ ४ ॥

रुमण्वान्---भवत इदानीं प्रयत्न उचितं तिथिसत्कारसानेष्यति स्वामिनः ।

यौगन्धरायणः---वसन्तक ! गच्छ भूयः स्वामिनं पश्य । विज्ञाप्यतां च स्वामी---या सा प्रयाणं प्रतीह प्रस्तुता कथा, तस्याः श्वः प्रयोगकाल इति । कुतः स्थानावगाहयवसशय्याभागेष्वाश्रयेपूपन्यस्तौषधिव्याजो नलागिरिर्मन्त्रौषधिनियमसम्भृतः पुराणकर्मव्यामोहितः । अनुकूलमारुत-मोक्तव्यः सज्जितो धूपः । रोषप्रतिकूलोऽस्य सज्जितः प्रतिगजमदः । शालासन्निकृष्टमल्पसाधनं गृहमादीपयितुमग्नित्रासित्वाद् वारणानाम् । गजपतिचित्तोद्भ्रमणार्थं देवकुलेषु स्थापिताः शङ्खदुन्दुभयः । तेन नादेन सर्वसाधनपरिगतशरीरेणावश्यं श्वःप्रद्योतेन स्वामी शरणमुप-

---

उचितम्=यथापूर्वं पुण्याहवाचनोपरान्तं पटहनिनादादि सत्कारम् । प्रयाणं प्रति इह प्रस्तुता कथा=यदि कौशाम्बिप्रयाणार्थं यदत्र विचारितम् ।

स्थानावगाहयवसशय्याभागेष्वाश्रयेषु = "नलागिरेः" स्थिति-स्नान-तृणादिभक्षण-शयनादिप्रान्तेषु स्थानेषु, उपन्यस्तः=स्थापितः, औषधिरूपो व्याजः = छलः यस्य स उपन्यस्तौषधिव्याजो नलगिरिः = एतन्नामको गजः । मन्त्रौषधि-नियमसम्भृतः = मन्त्रौषध्योःनियमेन = निश्चितप्रयोगेण संभृतः=पुष्टः (शिक्षितः) इति भावः । पुराणकर्मव्यामोहितः=नूतनकार्ये सन्नद्धीकृतः । रोषप्रतिकूलः= धक्रोऽद्धिकरः । शालासन्निकृष्टम् = देवालयसमीपम् । सर्वसाधनपरिगत-शरीरेव = पूर्वकथित-मन्त्रौषधिप्रतिगजमददेवालयसमीपगृहदहनशङ्खादिनादैः

रुम०---आपके प्रयत्न से स्वामी अब उचित सत्कार को प्राप्त करेंगे ।

यौग०---वसन्तक ! जाओ स्वामी से फिर मिलो और उनसे कहो कि कौशाम्बी-प्रयाण के सम्बन्ध में जो बात यहाँ हो रही थी उसके कार्यान्वयन का काल कल है । क्योंकि--नलागिरि जहाँ रहता है, स्नान करता है, घास खाता है, सोता है उन सभी स्थानों पर औषधरूपी छल रख दिया गया है, और मन्त्रौषधि के नियमित प्रयोग से नलगिरि को ठीक कर लिया गया है, वह अपने पुराने कार्य में लगा रहेगा । हवा के अनुकूल रहने पर जिसका प्रयोग किया जायेगा वह धूप भी तैयार कर ली गई है । रोष को बढ़ाने वाला प्रति गजमद

गन्तव्यः। ततः स्वामिना शत्रोरनुमतेनैव बन्धनान्निष्क्रम्य सहव्यापन्नां घोषवतीं हस्तगतां कृत्वा नलागिरिः स्वाधीनः कर्तव्यः ततो व्यवस्थितासनस्तदानीं स्वामी नलगिरौ।

सेनाभिर्मनसानुबद्धजघनं कृत्वा जवे वारणं
सिंहानामसमाप्त एव विरुते त्यक्त्वा सविन्ध्यं वनम्।
एकाहे व्यसने वने स्वनगरे गत्वा त्रिवर्णां दशां
येनैव द्विरदच्छलेन नियतस्तेनैव निर्वाह्यते ॥५॥

परिवेष्टितात्मना। ततः=घोषवत्या स्वाधीनेसम्भूते नलगिरौ, व्यवस्थितासनः=कृतारोहः स्वामीः।

अन्वयः—सेनाभिः मनसानुबद्धजघनम्, वारणम्, जवे कृत्वा, सिंहानाम्, विरुते, असमाप्ते, एव सविन्ध्यम्, वनम्, त्यक्त्वा, एकाहे, व्यसने, स्वनगरे, वने वा, "इति" त्रिवर्णाम्, दशाम्, गत्वा, येनैव, द्विरदच्छलेन नियतः, तेनैव, निर्वाह्यते ॥ ५ ॥

व्याख्या—सेनाभिः=कृतप्रयाणं स्वामिनमनुधाव्यजिघृक्षिभिः रिपुसैन्यैरिति भावः, मनसानुबद्धजघनम्=मनसैवानुसृतपृष्ठम्। वारणम्=हस्तिनम्, जवे=वेगे, कृत्वा=विधाय "अर्थात् मनसा अनुसरणं निश्चित्य तथा कायेन कृतप्रयत्ना अपि रिपुसेनाः यथा कथमपि न गृह्णीयुरिति तथातिशयवेगयुतं हस्तिनं कृत्वेति भावः"।

भी तैयार कर लिया गया हैं। देवालय के पास वाला घर भी जलाने के लिए अल्पसामग्री वाला बना दिया गया है क्योंकि हाथी आग से डरते हैं। उस गजराज के चित्त को विक्षिप्त करने के लिए देवमन्दिरों में शङ्खदुन्दुभियाँ रख दी गयी हे। उस शब्द को सुनकर जिसके लिए मन्त्रौपधादि उपाय किए गए हैं वह प्रद्योत कल अवश्य स्वामी की शरण में जाएगा तब शत्रु को ही आज्ञा से स्वामी बंधन से निकलकर, उनके साथ ही जो विपत्ति में पड़ी थी उस घोपवती को हाथ में लेकर नलगिरि को अपने अधीन कर लेंगे उसके बाद उस नलगिरि पर सवार होकर स्वामी—

मनोवेग से पीछा करती हुई शत्रुसेना के द्वारा किसी भी अवस्था में जिससे न पकड़े जाएँ ऐसे वेग से अपने हाथी को भगाकर सिंहों की गर्जना के समाप्त

इति ।

रुमण्वान्—वसन्तक ! किमिदानीं चिन्त्यते ?

विदूषकः—एव्वं चिन्तेमि महन्तो खु भवदो पयत्तो विवज्जिस्सदि त्ति । [एवं चिन्तयामि महान् खलु भवतः प्रयत्नो विपत्स्यतः इति ।]

उभौ—न खलु वयं विज्ञातारः ।

विदूषकः—अहं पुठमं पच्चा भवन्तो । [अहं प्रथमं पश्चाद् भवन्तौ ।]

यौगन्धरायणः—अथ किं कृता कार्यविपत्तिः ?

विदूषकः—वच्छराअस्स अण्णकय्यदाए । (वत्सराजस्यान्यकार्यतया ।)

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

सिंहानाम्=व्याघ्रानाम्, विरुते=गर्जने, असमाप्त एव=अनवसान एव, सविन्ध्यं वनम्=विन्ध्यपर्वतसहितारण्यम्, त्यक्त्वा=तीर्त्वा पारङ्कृत्वेतिभावः । एकाहेः=एकस्मिन्नेव दिने, व्यसने=बन्धने, वने=विन्ध्याद्रिकानने स्वनगरे=कौशाम्ब्याम् इति त्रिवर्णाम्=त्रिप्रकाराम्, दशाम्=अवस्थाम्, गत्वा=अनुभूय, येनैव=यत्प्रकारेणैव द्विरदच्छलेन=हस्तिच्छलेन, नियतः=शत्रुवशङ्गतः तेनैव= हस्तिच्छलेनैव निर्वाह्यते=मुच्यत अपि इति भावः ॥ ५ ॥

अन्य कार्यया—स्वमुक्त्यरिक्तं कार्यं यस्य तस्य भावस्तत् तया ।

होने के पूर्व ही विन्ध्य पर्वत के सहित वन को पार करके एक ही दिन में बन्धन, वन और अपने नगर इस प्रकार तीन अवस्था को प्राप्त कर जिस हाथी के छल से पकड़ा गया था उसी छल से मुक्ति भी होगी ॥ ५ ॥

रुम०—वसन्तक ! इस प्रकार क्या सोच रहे हो ?

विदू०—यही सोच रहा हूं कि आपका यह महान् प्रयास निष्फल हो जायेगा ।

दोनों—हम लोग नहीं समझे ।

विदू०—पहले हम जानेंगे पश्चात् आप लोग जानेंगे ।

यौग०—सो कार्य विफल क्यों हो जायेगा ?

विदू०—वत्सराज के दूसरे कार्य में आसक्त होने के कारण ।

यौग०—कैसे ?

विदूषकः—सुणह भवन्तो। (शृणुतां भवन्तौ)

उभौ—अवहितौ स्वः।

विदूषकः—जा सा कालट्ठमी अदिक्कन्दा, तहि तत्तहोदी वासवदत्ता णाम राअदारिआ धत्तीदुदीआ कण्णआदंसणं णिद्दोसंत्ति करिअ अवणीदकंचुआए सिविआए ओघट्टिदपणालीपस्सुदसलिलविसमं राअमग्गं परिहरिअ जं तं बन्धणदुआरस्स अग्गदो भअवदोए जक्खिणीए ट्ठाणं, तस्सिं देवकय्यं कत्तु गआ आसा। (या सा कालाष्टमी अतिक्रान्ता, तस्यां तत्रभवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्रीद्वितीया कन्यकादर्शनं निर्दोषमिति कृत्वाऽपनीतकञ्चुकायां शिविकायामवघट्टितप्रणालीप्रस्नुतसलिलविषमं राजमार्गं परिहृत्य यत्तद् बन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या यक्षिण्याः स्थानं, तस्मिन् देवकार्यं कर्तुं गतासीत्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

कालाष्टमी = कालीदेव्याः पूजनार्थं निश्चिता याऽष्टमी तिथिः सेति भावः। अतिक्रान्ता=गता, धात्रीद्वितीया=परिचारिका सहाया, शिविकायाम्=यानविशेषे "पालकी" इति भाषायाम्। अवघट्टितप्रणालीप्रस्नुतसलिलविषमम् = अवरुद्ध प्रणालिका प्रवाहो यस्य तादृशं जलम्, तोयम् तेन विषमम्=दुर्गमम्, राजमार्गम्= राजपथम्। परिहृत्य = परित्यज्य, देवकार्यम्=देवतापूजनम् कर्तुं गतासीत्= गतवती।

विदू०—आप लोग सुनें।

दोनों—हम लोग सावधान हैं।

विदू०—जो कालाष्टमी बीत गई उसी दिन राजकुमारी वासवत्ता जिसके साथ धात्री (दाई) थी, कन्यादर्शन को निर्दोष समझकर-जिसका परदा हटा दिया गया था ऐसी पालकी में बैठकर, नाली के जल के प्रवाह के रुक जाने से दुर्गम राजमार्ग को छोड़कर उसके कारागार के द्वारके आगे जो भगवती "दक्षिणी" का स्थान है उसमें देवता की पूजा करने गई थी।

यौग०—तब क्या हुआ ?

विदूषकः—तदो तत्तभवं तं दिअसं अब्भन्तरबन्धणपरिक्खअं सिवअं णाम राअदासं अणुमाणिअ बन्धणदुवारे णिक्कन्तो। [ततस्तत्रभवान् तं दिवसमभ्यन्तरबन्धनपरिरक्षकं शिवकं नाम राजदासमनुमान्य बन्धनद्वारे निष्क्रान्तः।]

उभौ—ततस्ततः ?

विदूषकः—तदो पुरुसक्खन्धवरिवट्टणट्ठिदाए सिविआए पकामं दिट्ठा सा राअदारिआ। [ततः पुरुषस्कन्धपरिवर्तनस्थितायां शिविकायां प्रकामं दृष्टा सा राजदारिका।

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

विदूषकः—कि तदो तदो त्ति। बन्धणं दाणिं पमदवणं सम्भाविअ पउत्तो राअलीलं कत्तुं। [किं ततस्तत इति ? बन्धनमिदानीं प्रमदवनं संभाव्य प्रवृत्तो रागलीलां कर्तुम्।]

अभ्यन्तरबन्धनपरिरक्षकं = अन्तः कारागारगृहसेवकम्।
पुरुषस्कन्धपरिवर्तनस्थितायाम्=शिविकावाहकानां श्रमापनोदनायां सविनिमयस्थितायाम्। प्रकामम् = यथेष्टम्।
प्रमदवनम् = क्रीडोपवनम्। संभाव्य = मत्वा। रागलीलाम्=कामचेष्टाम्।

विदू०—उसके बाद राजा (उदयन) दिन में कारागार के भीतरी भाग की रक्षा करने वाले "शिवक" नामक कर्मचारी को प्रसन्न कर; कारागार के द्वार पर आए।

दोनों—तब क्या हुआ ?

विदू०—तब पालकी ढोने वाले (कहार थकावट दूर करने के लिए) पालकी को जिस समय एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर रख रहे थे उसी समय राजकुमारी को (राजा ने) खूब अच्छी तरह देखा।

यौग०—तब क्या हुआ ?

विदू०—तब क्या हुआ। तब क्या हुआ (बार बार) करते हो ? कारागार को प्रमदवन समझकर कामचेष्टा करने लगे।

यौगन्धरायणः—न खलु तां प्रति समुत्पन्नाभिलाषः स्वामी ?

विदूषकः—भो ! संचआरिणो अणत्थ त्ति ईदिसं एव्व। [भोः ! सङ्घचारिणोऽनर्था इतीदृशमेव।]

यौगन्धरायणः—सखे ! रुमण्वन् ! स्थिरीक्रियतामात्मा। अनेनैव वेषेण जरा गन्तव्या।

विदूषकः—भो ! अहं च एदेण उत्तो—भणेहि जोअन्धराअणस्स जहसमत्थिदा समत्थणा ण रोअदे मे। समाणे गमणे पज्जोदस्स अवमाणविसेसो चिन्तीअदि। मा कामप्पधाण त्ति मं अवमण्णेहि। अवमाणस्स अवजिदिं अण्णेसामि त्ति। [भोः ! अहं चैतेनोक्तः—भण यौगन्धरायणाय यथासमर्थिता समर्थना न रोचते मे। समाने गमने प्रद्योतस्यावमानविशेषश्चिन्त्यते। मा कामप्रधान इति मामवमन्यस्व। अवमानस्यापचितिमन्विष्यामीति।]

समुत्पन्नाभिलाषः=सञ्जातरागः॥

एतेन=उदयनेन। यथासमर्थिता=त्वदनुमोदितप्रकारा, समर्थना=विचारणा। प्रद्योतस्यावमानविशेषः=शत्रोरपमानं यथास्यात्तथोपायविशेषः (तत्कन्यापहरणरूपइतिभावः) चिन्त्यते=शोच्यते। अवमानस्य=निजापमानस्य। अपचितिम्=निष्कृतिम्। अन्विष्याम्=गवेषयम्।

यौग०—उसको देखकर स्वामी को उसके प्रति अनुराग तो नहीं उत्पन्न हो गया ?

विदू०—अरे ! विपत्तियाँ सदल-बल आती हैं। बात ऐसी ही है।

यौग०—मित्र रुमण्वान् ! हृदय को स्थिर करो ! इसी रूप में वृद्धावस्था आवेगी।

विदू०—स्वामी ने मुझसे कहा था कि यौगन्धरायण से कहो कि तुमने जो मन्त्रणा की है वह मुझे पसन्द नहीं है। जाना तो है ही परन्तु जिससे प्रद्योत का अपमान हो वैसा उपाय सोच रहा हूँ। मुझे कामी समझकर मेरा अपमान मत करो। मैं तो अपमान की प्रतिक्रिया खोज रहा हूँ।

यौगन्धरायणः—अहो शत्रुजनापहास्यमभिधानम्। अहो निरपत्रपता खलु बुद्धेः! अहो सुहृज्जनसन्तापकारणम्! अदेशकाले ललितं कामयते स्वामी कुतः,

शक्ता दर्पयितुं स्वहस्तरचिता भूमिः कटप्रच्छदा
पर्याप्तो निगलस्वनश्चरणयो कन्दर्पमालम्बितुम्।
कः श्रुत्वा न भवेद्धि मन्मथपटुः प्रत्यक्षतो बन्धने
रक्षार्थं परिगण्यमानपुरुषै राजेति शब्दापनम्॥६॥

अहो=इतिकष्टवाचकम्। निरपत्रपता=निर्लज्जता। सुहृज्जनसंतापकारणम्=मित्रजनदुःखकारणम्। अदेशकाले=स्वदेशरहिते, अनुपयुक्तसमये। ललितम्=कामवासनाम्। कामयते=चेष्टते।

अन्वय.—स्वहस्तरचिता, कटप्रच्छदा, भूमिः, दर्पयितुम्, शक्ता, चरणयोः, निगलस्वनः, कन्दर्पम्, आलम्बितुम्, पर्याप्तः, बन्धने, रक्षार्थम्, परिगण्यमानपुरुषैः, राजेति, शब्दापनम्, प्रत्यक्षतः, श्रुत्वा, कः, मन्मथपटुः, न, भवेत्॥ ६॥

व्याख्या—स्वहस्तरचिता=निजकरनिर्मिता। कटप्रच्छदा=तृणतल्पाच्छन्ना। भूमिः=पृथ्वी। दर्पयितुम्=मदयितुम्। शक्ता=समर्था। चरणयोः=पादयोः, निगलस्वनः=शृङ्खलाध्वनिः। कन्दर्पम्=कामम्। आलम्बितुम्=उद्दीपयितुम्। पर्याप्तः=समर्थः। बन्धने=कारागारे। रक्षार्थम्=सुरक्षाहेतुम्। परिगण्यमानपुरुषैः=परिगणितदासैः। राजेति शब्दापनम्="राजा" इति सम्बोधनम्। प्रत्यक्षतः=स्पष्टतः। श्रुत्वा, कः=बन्दीजनः मन्मथपटुः=कामोद्दीप्तः। न भवेत्=नस्यात् "सर्वेऽपि भवति" इति उदयनोपहासे काकुः। एतादृश्यां-

---

यौग० अहा! शत्रुजनों के हँसने की बात है। बुद्धि की इस निर्लज्जता को धिक्कार है। मित्रजनों को दुःख देने वाली इस बात पर शोक है। स्वामी परदेश में एवं समय के अनुकूल न रहने पर भी कामवासना प्रकट कर रहे हैं। क्योंकि—

अपने हाथों से बनाई हुई चटाई बिछी है जिस पृथ्वी पर वह पृथ्वी अवश्य मद उत्पन्न कर सकती है। पैर में पड़ी बेड़ियों की ध्वनि कामोद्दीपन कर

विदूषकः—भो ! दंसिदो सिणेहो। णिव्विट्ठं पुरुसआरं। साहु उज्झिअ णं गच्छामो। [भोः ! दर्शितः स्नेहः। निर्दिष्टः पुरुषकारः। साधूज्झित्वैनं गच्छामः।]

यौगन्धरायणः—वसन्तको भवान् ननु। वसन्तक ! मा मैवम्।

परित्यजाम सन्तप्तं दुःखेन मदनेन च।
सुहृज्जनमुपाश्रित्य यः कालं नाववुध्यते ॥७॥

विदूषकः—एव्वं एव्व जरं गमिस्सामो। [एवमेव जरां गमिष्यामः।]

यौगन्धरायणः—तन्ननु श्लाघ्यम्।

विदूषकः—सिलावणीओ भवे, जादि लोओ जाणादि। [श्लाघनीयं भवेद्, यदि लोको जानाति।]

स्थितौ न कोऽपि कामोद्दीप्तो भवति अस्मत्स्वामी सञ्जात इति तमुपहसन् व्यंङ्ग्यं करोति ॥६॥

पुरुषकारः=पुरुषार्थः। उज्झित्वा=त्यक्त्वा।

अन्वय—दुःखेन, मदनेन, च, सन्तप्तम्, परित्यजाम, यः, सुहृज्जनम्, उपाश्रित्य, कालम्, न, अववुध्यते ॥७॥

व्याख्या—दुःखेन = बन्धनव्यसनेन। मदनेन = कामेण, च सन्तप्तम् = व्यथितम्। सुहृज्जनम् = मित्रवर्गम्। उपाश्रित्य=तद्वाक्यमनुसृत्य। कालम् = समयम्। नाववुध्यते = न जानाति, इदानीं समयोऽनुकूलोऽस्ति नवेति ॥७॥

सकती हैं। कारागार की रक्षा के लिए नियुक्त सेवकों द्वारा "राजा" कह कर बुलाये जाने पर भला कौन कामातुर होगा ? ॥ ६ ॥

विदू०—हम लोगों ने अपना स्नेह दिखा दिया। प्रयत्न भी कर चुके। अब इसको छोड़कर हम लोग चल चलें।

यौग०—ऐसा मत कहो। आप वसन्तक हैं।

दुःख और काम से पीड़ितहोकर जो मित्रों की वात मानकर समयानुसार कार्य नहीं करता क्या उसको छोड़ दिया जाय (कदापि नहीं।) ॥ ७ ॥

विदू०—इसी वेष में बुड्ढे हो जायेंगे।

यौग०—यह तो अच्छी बात हो सकती है।

विदू०—यदि लोग जानें तो अच्छी वात हो सकती है।

यौगन्धरायणः—न नः कार्यं लोकेन, स्वामिप्रियार्थोऽयमारम्भः ।

विदूषकः—सो वि दाव ण जाणादि । [सोऽपि तावन्न जानाति ।]

यौगन्धरायणः—काले ज्ञास्यति ।

विदूषकः—कदमो दाणिं सो कालो । [कतम इदानीं स कालः ।]

यौगन्धरायणः—यदेयमारम्भसिद्धिः ।

विदूषकः—तदो तादिसो भवं बन्धणादो राआणं अन्तेउरादो राअदारिअं उभे णिय्यादेदु । [ततस्तादृशो भवान् बन्धनाद्राजानमन्तःपुराद्राजदारिकामुभे निर्यातयतु ।]

रुमण्वान्—इह भवता द्रष्टव्यम् ।

यौगन्धरायणः—उभयमिति । बाढम् । इयं द्वितीया प्रतिज्ञा—

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ॥८॥

आरम्भसिद्धिः = उदयनस्य कौशाम्बिप्रयाणप्रयाससाफल्यम् । तादृशः=सफलतारम्भप्रयत्नः । वसन्तकेन=विदूषकेण । निर्यातयतु=हरतु ।

अन्वयः - सुभद्राम्, गाण्डीवी, इव, पद्मलताम्, नागः, इव, ताम्, राजा, यदि, न, हरेद्, "तर्हि" यौगन्धरायणः, न, अस्मि ॥८॥

व्याख्या—उभयम् = उदयनापहरणम्, वासवदत्तापहरणञ्चेति । सुभद्राम्=

यौग०—हमें लोगों से क्या प्रयोजन, हमारा प्रयोजन तो स्वामी का प्रिय जिससे हो वही है ।

विदू०—वे भी नहीं जानते ।

यौग०—समय पर जानेंगे ।

विपम—वह कौन सा समय है ?

यौग०—जब हमारा प्रयास सफल हो जायेगा ।

विदू०—तो आपकी यदि इच्छा है तो कारागार से राजा को एवं अन्तःपुर से वासवदत्ता को हर ले चलिए ।

रुम०—इस विषय में विचार कर लेना चाहिए ।

यौग०—दोनों (राजा एवं वासवदत्ता का अपहरण) । अच्छा यह मेरी दूसरी प्रतिज्ञा है—

अपि च,

यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः ॥९॥

(कर्णं दत्त्वा) अये शब्द इव । ज्ञायतां शब्दः ।

विदूषकः--भो ! तह । (निष्क्रम्य प्रविश्य) भो ! प डउत्तदिवस-विस्सम्भेण अविरलं सञ्चरन्तो जणो दीसइ । किं दाणिं करम्ह ? [भोस्तथा । भोः ! परिवृत्तदिवसविस्रम्भेणाविरलं सञ्चरन् जनो दृश्यते । किमिदानीं कुर्मः ?]

कृष्णभगिनीम्, गाण्डीवी=अर्जुन, इव=यथा, पद्मलताम् = कमलवल्लरीम्, नागः= हस्ती, इव=यथा, यदि = चेत्, ताम्=वासवदत्ताम्, राजा = उदयनः, न हरेत् = नापहरणंकुर्यात्, (तर्हि). "अहम्" यौगन्धरायणः=नास्मि = मयाभिधेयो ,"यौगन्धरायण" इति न स्यात् ॥८॥

अन्वयः—यदि तां च, तं च, ताम्, आयातलोचनम्, च नृपम्, च, न, आहरामि, "यौगन्धरायणः, न, अस्मि ॥९॥

व्याख्या--यदि ताम्=घोषवतीं वीणाम्, चैव=तथैव, तम्=नलगिरिं गजम्, चैव = तथैव, आयतलोचनाम् = विशालनयनाम्, ताञ्चैव = वासवदत्ताञ्चैव, नृपञ्चैव = उदयनञ्चैव, नाहरामि = कौशाम्बीं नानयामि, "तर्हि नास्मि यौगन्धरायणः = अहं "यौगन्धरायण" नामा न स्याम ।

परिवृत्तदिवसविस्रम्भेण=प्रतीच्यभिमुखदिने आप्तधर्मशान्तिनिमित्तात् ।

जैसे अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया था, तथा हाथी कमल वल्ली को अपने अधीन कर लेता है उसी तरह यदि राजा वासवदत्ता को न हर लें तो मैं यौगन्धरायण नहीं ॥ ८ ॥

और भी—

यदि उस घोषवती वीणा को, नलगिरि हाथी को, उस विशाल नयनों वाली वासवदत्ता को और राजा को हरकर कौशाम्बी न पहुँचाया तो मैं यौगंधरायण नहीं ॥ ९ ॥

(कान लगाकर) अरे आवाज आ रही है । पता लगाओ ।

विदू०--अच्छा ! (बाहर जाकर घूमकर) शाम के होने से लोग चलने लगे हैं । अब क्या किया जाय ?

रुमण्वान्—तेन हि चतुर्द्वारमग्निगृहं भिद्यतां नः सङ्घातः।

यौगन्धरायणः—न न। अभिन्नो नः सङ्घातः। भिद्यतामरिसंघातः। स्वकार्यमनुष्ठीयताम्।

उभौ- तह। [तथा] (निष्क्रान्तौ।)

उन्मत्तकः—ही ही चन्दं गिलदि लाहू। मुञ्च मुञ्च चन्दं। यदि ण मुंचेशि, मुहं दे पाडिअ मुञ्चावइहं। एशे एशे दुट्ठअश्शे परिब्भट्टे आअच्छादि। एशे ऐशे च उप्पवहीहिआअं। जाव णं आलुहिअ वति अक्खिस्सं ऐशे एशे दालअभट्टा ! मं तालेह। माखु माखु मं तालेह। किं भणाशि-अम्हाणं किं पि णच्चेहि त्ति। दक्खह दक्खह दालअभट्टा। एशे दालअभट्टा पुणो वि मं तालेह इट्टिआहि। मा खु मा खु तालेह। तेण हि अहं पि तुम्हे तालेमि। [ही ही चन्द्रं गिरति राहुः। मुञ्च मुञ्च चन्द्रम्। यदि न मुञ्चसि, मुखं ते पाटयित्वा मोचयिष्यामि।

भिद्यताम्=विश्लिष्यतु। संघातः=समुदायः। अरिसंघातः=रिपुसमूहः। स्वकार्यम्=स्वामिसमीपगमनम्।

चन्द्रम्=उदयनम्। राहुः=प्रद्योतः। गिरति=बन्धयति। दुष्टाश्वः=उद्द-

रुम०—तब तो हम लोगों को अग्निगृह में पृथक्-पृथक् चार रास्तों से चलना चाहिए।

यौग०—नहीं नहीं हमारा समुदाय अभिन्न रहेगा। शत्रु समूह का भेदन कीजिए। हमें अपने अपने कार्य में लग जाना चाहिए।

उभौ—अच्छा (निकल जाते हैं।)

उन्मत्तक—ही ही। राहु चन्द्रमा को निगल रहा है। छोड़ो ! चन्द्रमा को छोड़ दो। यदि नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा मुंह फाड़कर निकाल लूंगा। यह दुष्ट

एष एप दुष्टाश्वः परिभ्रष्टः आगच्छति । एष एष चतुष्पथवीथिकायाम् । यावदेन-मारुह्य बलिं भक्षयिष्यामि । एते एते दारकभर्तारः ! मा ताडयथ । मा खलु मा खलु मां ताडयत । किं भणथ—अस्माकं किमपि नृत्येति । पश्यत पश्यत दारकभर्तारः ! एते दारकभर्तारः ! पुनरपि मां ताडयथ यष्टिभिः । मा खलु मा खलु ताडयत । तेन ह्यहमपि युष्मान् ताडयामि ।]

(निष्क्रान्तः ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

●

[ण्डहय , परिभ्रष्टः=बन्धनमुक्तः, व्यक्तमार्गो वा, बलिम्=भिक्षाम् । इति वाह्योऽर्थः ।

आभ्यन्तरोऽर्थः—दुष्टाश्वः=प्रद्योतः । परिभ्रष्टः=सन्मार्गच्युतः । यादवेन-मारुह्य बलिं भक्षयिष्यामि अर्थात्=तत्कन्यापहरणेन एनमारुह्य=तिरस्कृत्य, बलिम् = कौशाम्बीप्रयाणम्, भक्षयिष्यामि = साधयामि, दारकभर्तारः = बालस्वामिनः ।

घोड़ा बन्धन तुड़ाकर भागता हुआ आ रहा है । यह तो चौराहे की गली में आ गया । तब तक इस पर चढ़कर भिक्षा खाऊंगा । ये बालक मालिक मुझे मत मारो ! मुझे मत मारो । क्या कहते हो–कोई नाच करो ? बालक स्वामियों । देखो । ये बालक स्वामी फिर भी मुझे छड़ी से मार रहे हैं । मत मारो मत मारो । मैं भी उस छड़ी से आप लोगों को मारूंगा ।

(सब चले जाते हैं ।)

(तृतीय अङ्क समाप्त)

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति भटः ।)

भटः—को कालो अहं भट्टिदारिआए वासवदत्ताए उदाए कीलिदुकामाए भद्दवदीपरिचारअं गत्तसेवअं ण पेक्खामि । भाव पुप्फदन्तअ ! गत्तसेवअं ण पेक्खसि । किं भणासि-एसो गत्तसेवओ काण्डिलसुण्डिणीए गेहं पविसिअ सुरं पिबदि त्ति । गच्छदु भावो । (परिक्रम्य) इदं कण्डिलसुण्डिलगिणीए गेहं । जाव णं सद्दावेमि । भो गत्तसेवअ ! गत्तसेवअ !! [कः कालोऽहं भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया उदके क्रीडितुकामाया भद्रवतीपरिचारकं गात्रसेवकं न प्रेक्षे । भाव पुष्पदन्तक ! गात्रसेवकं न प्रेक्षसे ? किं भणसि-एष गात्रसेवकः कुण्डिलशौण्डिक्या गेहम् । यावदेनं शब्दापयामि । भो गात्रसेवक ! गात्रसेवक !!]

(नेपथ्ये)

को दाणिं एसो एत्थ राअमग्गे 'गत्तसेवअ ! गत्तसेवअ !' त्ति मं सद्दावेदि । [क इदानीमेषोऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक ! गात्रसेवकेति मां शब्दापयति ।]

क्रीडितुकामायाः = खेलाऽभिलाषिण्याः, भद्रवतीपरिचारकम् = "भद्रवती" नामिकाया हस्तिन्याः सेवकम्, कण्डिलशौण्डिक्याः = मत्तमदविक्रयिण्याः । गेहम् = गृहम् । सुराम् = मदिराम् । शब्दापयामि = आवाहनङ्करोमि ।

भट—जल-क्रीड़ा करने की अभिलाषिणी राजकुमारी (वासवदत्ता) की (हथिनी) भद्रवती के महावत गात्रसेवक को कितनी देर से नहीं देख रहा हूँ। भाव पुष्पदन्तक ! गात्रसेवक को नहीं देख रहे हो ? क्या कह रहे हो—यह गात्रसेवक शराबबेचने वाली के घर में है। जब तक इसे बुलाता हूँ। ओ गात्रसेवक ! गात्रसेवक !!

(नेपथ्य में)

कौन है जो मुझे सड़कपर गात्रसेवक ! गात्रसेवक ! कहकर बुला रहा है ।

भटः—एसो गत्तसेवओ सुरं पिबिअ पिबिअ हसिअ हसिअ मदिअ मदिअ जआपुप्फं विअ रत्तलोअणो इदो एव्व आअच्छदि। एदस्स पुरदो ण चिट्ठिस्सं। [एष गात्रसेवकः सुरां पीत्वा पीत्वा हसित्वा हसित्वा मदित्वा मदित्वा जपापुष्पमिव रक्तलोचन इत एवागच्छति। एतस्य पुरतो न स्थास्यामि।] (निवृत्य स्थितः।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो गात्रसेवकः।)

गात्रसेवक—को दाणिं एसो एत्थ राअमग्गे गत्तसेवअ ! गत्तसेवअ ! त्ति मं सद्दावेदि। पाणागारादो णिक्कन्तो दिट्ठ म्हि मम सुसुरेण सुरुट्ठेण। अमुदअमल्लएण घिदमरिअलोणखाशदे मंशखण्डे मुहे पक्खित्ते अ। णुसा रज्जइ पीदा जइ। अत्ता णं दण्डुज्जुआ होइ।

रक्तलोचनः=लोहितनयनः।

पानागारात्=मद्यशालातः सुरुष्टेन=क्रुद्धेन। अमृतमल्लकेन=सुधोपमसुरापात्रविशेषेण। स्नुषा=पुत्रवधूः। पीता यदि=यदिमद्यपानं कृतवती। रज्यति=रागवती भवति "श्वसुरेण" इति भावः। अर्थात् सुरां पीत्वा गम्यागम्य विचाररहितो भवति मद्यपायी जनः। श्वश्रूः=पतिमाता, दण्डोद्यता=दण्डदानायसन्नद्धा भवति।

भट—यह गात्रसेवक तो मदिरा पीकर हँसता हुआ मत्त होकर जपा (अड़हुल) कुसुम के सदृश लाल-लाल आँखें करके इधर ही आ रहा है। मैं तो इसके सामने नहीं रहूँगा। (घूमकर बैठ जाता है।)

(निर्दिष्ट वेश में गात्रसेवक का प्रवेश।)

गात्रसेवक—कौन इस समय राजमार्ग पर मुझे "गात्रसेवक ! गात्रसेवक।" कहकर बुला रहा है ? मद्यशाला से निकलते हुए मुझे क्रोधी श्वसुर ने देख लिया है। (अमृत के समान) मद्य के साथ मैंने भी घी मरिच और नमक मिलाकर तले हुए मांस खण्डों को मुख में डाल लिया है। मद्य यदि पुत्रवधू पीले तो वह भी श्वसुर से प्रेम करने लगती है। और तब सास पुत्रवधू को दण्ड देने के लिए तैयार हो जाती है।

धण्णा सुराहि मत्ता धण्णा सुराहि अणुलित्ता।
धण्णा सुराहि ण्हादा धण्णा सुराहि संवविदा ॥ १

अधण्णा अत्तणो पुत्तदाराणं कट्ठं पिट्ठं सुणन्ता जे मूढ. ... सुसमिद्धा सुरातटाअं ण जोजअंति। ता जाणे जमलोए वा णरअं अत्थि णत्थि य।

[क इदानीमेषोऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक! गात्रसेवक! इति मां शब्दापयति। पानागारान्निष्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि मम श्वशुरेण सुरुष्टेन। अमृतमल्लकेन घृतमरिचलवणरूषितो मांसखण्डो मुखे प्रक्षिप्तश्च। स्नुषा रज्यति पीता यदि। श्वश्रूर्ननु दण्डोद्यता भवति।

धन्याः सुराभिर्मत्ता धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः।
धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभि संज्ञापिताः ॥ १ ॥

अधन्या आत्मनः पुत्रदाराणां कष्टं पिष्टं शृण्वन्तो ये मूढा नराः सुसमृद्धाः सुरातटाकं न योजयन्ति। ततो जाने यमलोके वा नरकोऽस्ति नास्ति च।]

अन्वयः—सुराभिः, मत्ताः, धन्याः, सुराभिः, अनुलिप्ताः, धन्याः, सुराभिः, स्नाताः, धन्याः, सुराभिः, संज्ञापिताः धन्याः ॥ १ ॥

व्याख्या—सुराभिः = मदिराभिः, मत्ताः = चैतन्यहीना, धन्याः=श्लाघ्याः, सुराभिः अनुलिप्ताः = मदिरानुलिप्ताः, धन्याः। सुराभिः स्नाताः = मदिराभिः कृताभिषेकाः, धन्याः। सुराभिः संज्ञापिताः = अतिशयमदिरापानैर्मृताः धन्याः ॥ १ ॥

सुसमृद्धाः=धनशालिनः। नराः = मानवाः, मूढाः = ज्ञानरहिताः, ते ये पुत्रदाराणां कष्टपिष्टं शृण्वन्तः=स्व स्त्रीसुतानां दुःखं शृण्वन्तः, आत्मनः = स्वम्, सुरातटाकम् = मदिरासरसम् न योजयन्ति = न निमज्जन्ति।

मदिरा से जो मत्त हो जाते हैं वे धन्य हैं, सुरा से अनुलिप्त (अर्थात् शरीर में मदिरा के लेप किये) लोग भी धन्य हैं, सुरा से स्नान किये हुए एवं सुरा के द्वारा (अतिशय पान के कारण) मारे गए लोग भी धन्य हैं ॥ १ ॥

जो मूर्ख धनी स्त्री-पुत्र के कष्टों को दिनरात सुनते हुए सुरा-सरोवर में डुबकी नहीं लगाते वे अधन्य हैं। स्त्री-पुत्र के पालन-पोषण के अलावे भी यमलोक में नरक है या नहीं कौन जाने।

भटः—(उपसृत्य) भो गत्तसेवअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि। भट्टिदारिआए वासवदत्ताए उदए कीलिदुकामाए भद्दवदी ण दिस्सदि। तुमं दाव मत्तो एत्थ आहिण्डसि। [भो गात्रसेवक ! कः कालस्त्वामन्विष्यामि। भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया उदके क्रीडितुकामाया भद्रवती न दृश्यते। त्वं तावन्मत्तोऽत्राहिण्डसे।

गात्रसेवकः—जुज्जइ। सा अ ण मत्ता, सो पुरुषो वि मत्तो, अहं वि मत्तो, तुमं वि मत्तो, सव्वं मत्तसमं होइ। [युज्यते। सा च ननु मत्ता, स पुरुषोऽपि मत्तोऽहमपि मत्तः, त्वमपि मत्तः, सर्वं मत्तसमं भवति।]

भटः—सव्वं दाव चिट्ठदु। राअउले भद्दपीठिअं णणिक्कमिअ कुदो अअं आहिण्डदि त्ति। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। राजकुले भद्रपीठिकां न निष्क्राम्य कुतोऽयमाहिण्डत इति।]

गात्रसेवकः—इदो आहिण्डामि, एत्थ पिबामि, एदेण पिबामि, मा संरम्भेण। किं करीअदु। [इत आहिण्डे, अत्र पिबामि, एतेन पिबामि,

---

आहिण्डसे = परिभ्रमसि। सा = भद्रवती। राजकुले = राजप्रासादे। न निष्क्राम्य = प्रवेशमकारयित्वैव।

भद्रपीठिका = भद्रवती। यस्यां वासवदत्ताऽऽरोहतिस्म।

भट—(समीप जाकर) ऐ गात्रसेवक! कितनी देर से तुम्हें ढूंढ रहा हूँ। जलक्रीड़ा करने को इच्छुक राजकुमारी वासवदत्ता जिस पर चढ़ती हैं वह भद्रवती (हथिनी) नहीं दिखाई पड़ रही है। और तुम यहाँ मद मत्त होकर घूम रहे हो।

गात्रसेवक—अच्छा तो है। वह (भद्रवती) भी मस्त है, वह पुरुष भी मस्त है। मैं भी मदमत्त हूँ; तुम भी मदमत्त हो, सभी मदमत्त हो रहे हैं।

भट—यह सब कुछ छोड़ो। राजभवन के पास भद्रवती को न ले जाकर तुम यहाँ क्यों घूम रहे हो ?

गात्रसेवक—यहाँ घूम रहा हूँ। यहाँ पी रहा हूँ, और इसके साथ पी रहा हूँ। क्रोध मत करो। क्या करूँ ?

मा संरम्भेण किं क्रियताम् ?

भटः—हिज्जउ असम्बन्धप्पलावो । सिग्घं भद्दवदिं पवेसेहि । [भवत्वसम्बन्धप्रलापः । शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय ।]

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवदी । अंघो मए भद्दवदीए अङ्कुसं आढत्तं । [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती । अङ्घो मया भद्रवत्या अङ्कुशमाहितम् ?]

भटः—सभावविणीदाऐ भद्दवदीए अङ्कुसेण किं कय्यं ? गच्छ, सिग्घं भद्दवदि पवेसेहि । [स्वभावविनीताया भद्रवत्या अङ्कुशेन किं कार्यम् ? गच्छ, शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय ।

गात्रसेवकः—पविसदु पविसदु भद्दवदी । अंघो मए भद्दवदीए खुरप्पमाला आढत्ता । [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती । अङ्घो मया भद्रवत्याः क्षुरप्रमालाऽऽहिता ।

भटः—पुप्फबन्धिआए भद्दवदीए खुरप्पमालाए कि कय्यं ? सिग्घं

संरम्भेण = क्रोधेन ।

प्रविशतु प्रविशतु = स्वयमेव प्रवेशं करोतु, न तु तामहं प्रवेशयामि । (यतो हि तस्याः अंकुशादिकं शौण्डिकेहस्ते आहितम् = आधीकृतम् "गिरवी" इति भाषायाम् मया ।) तथा च अंकुशादिरहितां भद्रवतीं कथं प्रवेशयामि ? क्षुरप्रमाला = अर्धचन्द्रमाला ।

भट—यह सब असम्बद्ध प्रलाप रहने दो । भद्रवती को शीघ्र राजभवन के पास लाओ ।

गात्र०—भद्रवती ! प्रवेश करे । प्रवेश करे । अरे ! मैंने तो भद्रवती के अंकुश को बंधक (गिरवी) रख दिया है ।

भट—भद्रवती स्वभाव से नम्र है । उसके लिए-अंकुश की क्या आवश्यकता ।

गात्र०—भद्रवती । प्रवेश करे । प्रवेश करे । अरे मैंने तो भद्रवती की अर्द्धचन्द्रमाला को बन्धक रख दिया है ।

भट—फूल से बाँधने योग्य भद्रवती के लिए अर्द्धचन्द्र माला की क्या आवश्यकता ।

भद्दवदिं पवेसेहि । [पुष्पवन्ध्याया भद्रवत्या क्षुरप्रमालया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय ।

गात्रसेवक:—पविसदु पविसदु भद्दवदी । अंघो मए भद्दवदीए वण्टा आढत्ता ! [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती । अङ्घो मया भद्रवत्या घण्टाहिता ।]

भट:—उदए कीलिदुकामाए भद्दवदीए घण्टाए किं कय्यं ? सिग्घं भद्दवदिं पवेसेहि । [उदके क्रीडितुकामाया भद्रवत्या घण्टया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय ।

गात्रसेवक:—पविसदु पविसदु भद्दवती । अंघो मए भद्दवदीए कसिआं आढत्तं । प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती । अङ्घो मया भद्रवत्या: कशिका आहिता ।]

भट:—कसिएण किं कय्यं ? सिग्घं भद्दवदि पवेसेहि [कशिकया किं कार्यम् ? शीघ्रं भद्रवतीं प्रवेशय ।]

गात्रसेवक:—पविसदु पविसदु भद्दवदी । अंघो । [प्रविशतु प्रविशतु भद्रवती । अङ्घो ।]

भट:—कि अंघो ? [किम अङ्घो ?]

गात्रसेवक:—अंघो मए । [अङ्घो मया ?]

पुष्पवन्ध्याया: = पुष्पेण निवद्धशक्याया: !

गात्र०—भद्रवती । प्रवेश करे । प्रवेश करे । अरे मैंने तो भद्रवती का घण्टा बन्धक रख दिया है ।

भट—जल में क्रीडा करने को इच्छुक भद्रवती के लिए घण्टे की क्या आवश्यकता ? शीघ्र भद्रवती को ले आओ ।

गात्र०—भद्रवती । प्रवेश करे । प्रवेश करे । अरे । मैंने तो भद्रवती की कशिका (कोड़ा) बंधक रख दिया है ।

भट—कोड़े की क्या आवश्यकता ? शीघ्र भद्रवती को ले आओ ।

गात्र०—भद्रवती । प्रवेश करे । प्रवेश करे । अरे ।

भट—अरे क्या ?

गात्र०—अरे मैंने ।

भटः—किं तुए ! [किं त्वया ?]

गात्रसेवकः—अंघो भद्द । [अङ्घो भद्र ।]

भटः—किं भद्दंति । [किं भद्रेति ।]

गात्रसेवकः—अंघो भद्दवदी । [अङ्घो भद्रवती ।]

भटः—किं भद्दवदी [किं भद्रवती ?]

गात्रसेवकः—भद्दवदी पि आढत्ता । [भद्रवत्यप्याहिता ।]

भटः—ण तुवं एत्थ अवरज्झो । कण्डिलसुण्डिकिणी खु अवरज्झा, जा राअवाहणं गण्हिअ सुरं देदि । [न त्वमत्रापराद्धः ! कण्डिलशौण्डिकी खल्वपराद्धा, या राजवाहनं गृहीत्वा सुरां ददाति ।

गात्रसेवकः—अंघो मए उत्तं—मा मूलविद्धिं विणासेहि त्ति । [अंघो मयोक्तम्—मा मूलवृद्धिं विनाशयेति ।]

भटः—हं सद्दो विअ । [हं शब्द इव ।]

मूलवृद्धिं मा विनाशय=मूलधनस्थानस्थितायाः भद्रवत्याः सेवायाः भृतिरूपेण प्राप्तं द्रव्यं मद्यमूल्यरूपेण निश्चितरूपेण ते मिलिष्यति मत्सकाशात् अतः तस्य-विनाशो मा कृथा इति मया कथितम् ।

भट—तुमने क्या ?

गात्र०—अरे भद्र ।

भट—क्या भद्र ?

गात्र०—अरे भद्रवती ।

भट—क्या भद्रवती ?

गात्र०—भद्रवती को भी मैंने बंधक रख दिया ।

भट—इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है । मदिरा बेचने वाली का अपराध है जो राजा की सवारी को लेकर मदिरा बेचती है ।

गात्र०—अरे । मैंने उससे कहा था कि मूलवृद्धि का नाश मत करो ।

भट—अहो । कुछ शब्द सा हो रहा है ।

गात्रसेवकः—अंघो जाणामि, जाणामि, कण्डिलसुण्डिकिणीए गेहं भिन्दिअ भद्दवदी पलाअदि। [अङ्घो जानामि जानामि, कण्डिलशौण्डिक्या गेहं भित्वा भद्रवती पलायते।

भटः—किं भणासि? (आकाशे) एसो भट्टा वच्छराओ वासवदत्तं गण्हिअ णिग्गदो त्ति। [किं भणसि? एष भर्ता वत्सराजो वासवदत्तां गृहीत्वा निर्गत इति।]

गात्रसेवकः—(सहर्षम्) अविघ्नमस्तु स्वामिनः।

भटः—पिव पिव। अज्ज वि तुमं मत्तो आहिण्डेहि। [पिव पिव। अद्यापि त्वं मत्त आहिण्डस्व।]

गात्रसेवकः—आः को मत्तः, कस्य वा मदः, वयं खल्वार्ययौगन्धरायणेन स्वेषु स्वेषु स्थानेषु स्थापिताश्चारपुरुषाः। यावदहमपि सुहृज्जनस्य संज्ञां करोमि। एते ते सुहृदो निरोधमुक्ता इव कृष्णसर्पा इतस्ततो निर्धावन्ति। भोः भोः सुहृदः! शृण्वन्तु भवन्तः—

पलायते=परिधावति। अविघ्नम्=विघ्नराहित्यम्। चारपुरुषा=गुप्तचराः। स्वेषु-स्वेषु स्थानेषु=निश्चितभागेषु, स्थापिताः=नियुक्ताः। सुहृज्जनस्य=निजमित्रसमूहस्य। संज्ञाम्=संकेतम्। निरोधमुक्ताः=बन्धननिर्गताः। कृष्णसर्पा इवा=कृष्णभुजङ्गमा इव।

गात्र०—अरे! जानता हूँ जानता हूँ, मदिरा बेचने वाली के घर को तोड़ कर भद्रावती भाग रही है।

भट—क्या कहते हो? (आकाश की ओर देखते हुए) ये स्वामी वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग गये।

गात्र०—स्वामी के कार्य में विघ्न न आवे।

भट—पीओ, पीओ। आज भी तुम मस्त होकर घूम लो।

गात्र०—अरे कौन मत्त है? किसको नशा है? हम लोग तो स्थान-स्थान पर आर्य यौगन्धरायण द्वारा नियुक्त गुप्तचर हैं। तब तक मैं भी अपने मित्र-मण्डली को संकेत करता हूँ। ये तो वे ही मित्रवर्ग हैं जो बन्धमुक्त काले साँप की तरह इधर-उधर दौड़ रहे हैं। ए मित्रों! आप लोग सुनें, सुनें—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।।२ ।।

क्व नु खल्वार्ययौगन्धरायणः ? (विलोक्य) अये अयमत्रभवान् आर्ययौगन्धरायणः ! य एषः,

निशितविमलखड्गः संहृतोन्मत्तवेषः
कनकरचितचर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः ।
विरचितबहुचीरः पाण्डराबद्धपट्टः ।
सतडिदिव पयोदः किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः ।। ३ ।।

अन्वयः—यः, भर्तृपिण्डस्य कृते, न युद्धयेत्, तस्य, सलिलैः, सुपूर्णम्, नवम्, शरावम्, सुसंस्कृतम्, दर्भकृतोत्तरीयम्, मा भूत्, सः, नरकम्, गच्छेत् ।। २ ।।

व्याख्या—यः=सेवकः, भर्तृपिण्डस्य=भुक्तस्यस्वामिनः, कृते=अननिष्कृतये । न युध्येत् युद्धं न कुर्यात् । तस्य=अनिष्कृतस्वामिनः कृते, कृतघ्नस्य पुरुषस्येत्यर्थः । सलिलैः=जलैः, सुपूर्णम्=सुभरितम् । सुसंस्कृतम्=मन्त्राभिमन्त्रितम् । दर्भकृतोत्तरीयम्=कुशाच्छादितम् । शरावम्=मृत्तिकापात्रविशेषम् "सकोरा" इति भाषायाम् । मा भूत्=न स्यात्; योद्धृमात्रलभ्यत्वात्, सः=कृतघ्नः पुरुषः नरकम् गच्छेत् यमयातनां यायात् ।। २ ।।

अन्वयः—निशितविमलखड्गः, संहृतोन्मत्तवेषः, कनकरचित चर्मव्यग्रवामाग्रहस्तः, विरचित बहुचीरः, पाण्डराबद्धपट्टः, सतडित्, किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः, पयोद इव ।। ३ ।।

व्याख्या—निशितविमलखड्गः=निशितः=तीक्ष्णः, सचासौ विमलः=

[जो पुरुष स्वामी के खाये गए अन्न की निष्कृति (बदला) के लिए युद्ध न करे उस (कृतघ्न) पुरुष को जल से भरा हुआ, अच्छी तरह अभिमन्त्रित और कुश से आच्छादित नया शराव न मिले और उसे नरक जाना पड़े ।। २ ।।

कहाँ है आर्य यौगन्धरायण ? (देखकर) अरे यौगन्धरायण तो यहीं हैं । जो कि—

तेज और चम-चमाती हुई तलवार लिए, उन्मत्त का वेश धारण किये हुए सोने की बनी ढाल में बायाँ हाथ डाले अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण किये

अहो महत् प्रवृत्तं युद्धम् ।

हत्वा गजान् सगजिनः सहयांश्च योधा-
नक्षौहिणीमतिविगाह्य बलान्मुहूर्तम् ।
नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहु-
र्भ्रष्टायुधोऽपि न निवृत्तपदोऽभियातः ॥ ४ ॥

स्वच्छः खड्गः=कृपाणो यस्य सः । संहृतः = संधारितः, उन्मत्तवेषो = उन्मत्ताकृतिर्येन सः । कनकेण=स्वर्णेन, रचिते = निर्मिते, चर्मणि=शस्त्रप्रहारनिवारणायुध विशेषे, लग्नः=संलग्नः, वामाग्रहस्तः=दक्षिणेतराग्रकरो यस्य सः । विरचितबहुचीरः = विरचितम् शरीरसंलग्नानि, बहूनि=प्रकाराणि, चीराणि=वस्त्राणि येन सः । पाण्डरावद्धपट्टः=धवलशिरोवेष्टनं यस्य सः । सतडित्=सविद्युद् किञ्चिदुद्गीर्णचन्द्रः = ईषदुदितेन्दुर्यस्मिन्, तत्तथाभूतः पयोदः=जलद इव भवतीति शेषः ॥ ३ ॥

अन्वयः—सगजिनः, गजान्, हत्वा, सहयान्, योधान्, बलात्, अक्षौहिणीम्, अतिविगाह्य, नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहुः, भ्रष्टायुधोऽपि, न निवृत्तिपदः, अभियातः ॥ ४ ॥

व्याख्या—सगजिनः = आरोहीसहितान्, गजान्=हस्तिनः, हत्वा=मारयित्वा, सहयान्=घोटकसहितान्, वीरान् = भटान् हत्वा, बलात्=बलपूर्वकम् । मुहूर्तकम् = याममात्रावधी । अक्षौहिणीम्=''अक्षौहिणी' संख्याकान् शत्रुसैन्यान् । अतिविगाह्य = निर्मन्थ्य । नागेन्द्रदन्तमुसलाहतभग्नबाहुः = गजेन्द्रस्य मुसलवद्दन्तेन = रदेन, आहतः = संहतः, अतएव भग्नः = सन्धिरहितो बाहुः = भुजा यस्य सः । भ्रष्टायुधोऽपि = त्रस्ताऽस्त्रोपि, न निवृत्तपदः = न पृष्ठदेशाभिगतः अपितु अभियातः = शत्रुसम्मुखं गतः ॥ ४ ॥

हुए, सफेद पगड़ी बाँधे हुए थोड़ा सा चन्द्रमा जिसमें विकसित हो चुका हो ऐसे सविद्युत मेघ के समान (लग रहे हैं) ॥ ३ ॥

अरे यह तो घमासान युद्ध छिड़ गया ।

सवारों के सहित गजों को, घोड़ो के साथ योद्धाओं को, मुहूर्त भर में बलपूर्वक मारकर शत्रु की अक्षौहिणी सेना को छिन्न भिन्न कर, गजराज के मुसलसदृश दाँत के प्रहार से हाथ के टूट जाने पर आयुध के गिर जाने पर भी पैर पीछे नहीं किया अपितु शत्रुओं के सामने गया ॥ ४ ॥

हा धिग्, ग्रहणमुपगतः खल्वार्ययौगन्धरायणः !! यावदहमप्यार्ययौगन्धरायणस्य प्रत्यन्तरीभविष्यामि ।—(निष्क्रान्तः)

भटः—किं णु एदं पाआरतोरणवज्जं सव्वं कोसम्बी खु इदं। होदु इयं वुत्तन्तं अमच्चस्स णिवेदेमि । [किन्तु खल्वेतत् । प्राकारतोरणवर्जं सर्वं कौशाम्बी खल्विदं । भवत्विमं वृत्तान्तममात्याय निवेदयामि ।] (निष्क्रान्तः ।)

इति प्रवेशकः

(ततः प्रविशतः साधारणौ ।)

उभौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

प्रथम—अंघो कण्ठस्स दीअमाणस्स ण उच्चं विरमदि । [अङ्गो कण्ठस्य दीर्यमाणस्य नोच्चं विरमति ।

द्वितीय—अंवो भट्टिदारिआए वासवदत्ताए अवणअणविब्भमदाए

ग्रहणमुपगतः=शत्रुवशङ्गतः । प्रत्यन्तरीभविष्यामि=आसन्नो भविष्यामि । प्राकारतोरणवर्जम्=प्रकारतोरणरहितम् । कौशाम्बी=उदयनराजधानी इयं तज्जनाधिक्यादिदमुच्यते भटः ।

कण्ठस्य=गलस्य, दीर्यमाणस्य=उच्चारणाय विवृतस्य ! उच्चम्=जनसमूहोच्चरितं कोलाहलम् । न विरमति=न प्रशाम्यति । भर्तृदारिकायाः=

हाय । बड़े कष्ट की वात है कि आर्य यौगन्धरायण पकड़े गये । तब तक मैं भी यौगन्धरायण के पास जाऊं । (चला जाता है)

भट—यह क्या ? प्राकार और तोरण को छोड़कर यह तो कौशाम्बी हो रहा है । अच्छा, यह समाचार अमात्य से कहूँगा । (चला जाता है ।)

(प्रवेशक समाप्त ।)

(उसके वाद दो सामान्य भटों का प्रवेश ।)

दोनों—हट जाइये, हट जाइये, आप लोग हट जाइये ।

प्रथम—कण्ठ फाड़कर मेरे चिल्लाने पर भी लोगों का यह कोलाहल वन्द नहीं हो रहा है ।

दूसरा—राजकुमारी वासवदत्ता के अपहरण हो जाने से सव पागल हो

वरुवन्तस्स मे वअणं कोच्चि ण सुणादि। अंघो ! किं भणह–किंणिमित्त उस्सारणा वत्तदि त्ति। गहीदो अय्यजोअन्धराअणो। किं भत्तह—कहं गहीद त्ति। सुणन्तु अय्या। अय्यजोअन्धराअणेण असिदुदीएण अक्खोहिणीए अग्गवेगो मुहुत्तअं धारिदो। विजयसुन्दरस्स हत्थिणो दन्तन्तचोदिदो असी विवण्णो। असिदोसेण गहीदो, ण पुरुषदोसेण। [अंघो भर्तृदारिकाया वासवदत्ताया अपनयनविभ्रमतया विरुवतो मे वचनं कश्चिन्न शृणोति। अंघो ! किं भणत–किन्निमित्तमुत्सारणा वर्तत इति। गृहीत आर्ययौगन्धरायणः। किं भणत–कथं गृहीत इति। शृण्वन्त्वार्याः–आर्ययौगन्धरायणेनासिद्वितीयेनाक्षौहिण्या अग्रवेगो मुहूर्तं धारितः। विजयसुन्दरस्य हस्तिनो दन्तान्तचोदितोऽसिर्विपन्नः। असिदोषेण गृहीतो, न पुरुषदोषेण।]

प्रथमः—अंघो अप्पमत्ता होह तुम्हे। पाआरतोरणवज्जं सव्वं कोसम्बी खु इअं। [अंघो अप्रमत्ता भवत यूयम् प्रकारतोरणवर्ज सर्वं कौशाम्बी खल्वियम्।]

वासवदत्तायाः। अपनयनविभ्रमतया = अपहरणविक्षिप्तया। विरुवतः = उच्चस्वरेणघोषं कुर्वतः। असिद्वितीयेन = असि.कृपाण एव द्वितीयः = सहायको यस्य सः असिद्वितीयस्तेन। अग्रवेगः = प्रथमप्रवाहः। धारितः = सोढः। दन्तान्तचोदितः = दन्तान्ते = दशनाग्रे, चोदितः = प्रहृतः। विपन्नः = भग्नः।

असिदोषेण = कृपाणभङ्गतया। गृहीतः = शत्रुभिर्निबद्धः। न तु पुरुषदोषेण = कापुरुषत्वेन।

गये हैं, अतः मेरी बातों को कोई नहीं सुन रहा है। अरे। क्या कहते हो ? कि "लोग क्यों हटाए जा रहें हैं ?" (सुनो) आर्य यौगन्धरायण पकड़ लिए गए हैं। क्या कहते हो क्यों पकड़े गये ? तो आप लोग सुनें—आर्य यौगन्धरायण ने केवल तलवार की सहायता से एक मुहूर्त अक्षौहिणी सेना के पहले वेग को सहन किया। विजय सुन्दर नामक हाथी के दन्तके अग्र भाग पर प्रहार करने के कारण तलवार टूट गयी। अतः तलवार के दोष (टूटने) से यौगन्धरायण पकड़े गए न कि कायरता के कारण।

प्रथम—अरे। आप लोग सावधान हो जाइये। यह तो प्राकार तोरण के बिना कौशाम्बी लग रही हैं।

उभौ–ओदरदु ओदरदु अय्यो ओदरदु। [अवतरत्ववतरत्वार्योऽवतरतु।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः बद्धबाहुः फलकशयनेनानीयमानः।)

यौगन्धरायणः—अयमहमवतरामि।

रिपुगतमपनीय वत्सराजं ग्रहणमुपेत्य रणे स्वशस्त्रदोषात्।
अयमहमपनीतभर्तृदुःखो जितमिति राजकुले सुखं विशामि॥ ५॥

भोः ! सुखं खलु निष्कलत्राणां कान्तारप्रवेशः, रमणीयतरः खलु

अन्वयः—अयम्, अहम्, रिपुगतम्, वत्सराजम्, अपनीय, रणे, स्वशस्त्रदोषात्, ग्रहणम्, उपेत्य, अपनीत भर्तृदुःखः, जितमिति, राजकुले, सुखपूर्वकम्, विशामि॥ ५॥

व्याख्या—रिपुगतम्=शत्रुवशीभूतम्, वत्सराजम्=उदयनम्। अपनीय= विमोचयित्वा, अपहृत्येत्यर्थः। रणे=युद्धे। स्वशस्त्रदोषात्=निजकरवालभग्नत्वात्। ग्रहणम्=बन्धनम्। उपेत्य=संप्राप्य। अपनीतभर्तृदुःखः=अपनीतः= निवारितः, भर्तुः=स्वामिनः, दुःखम्=क्लेशम् येन सः। अयम्=शत्रुवशङ्गतः। अहम्=यौगन्धरायणः। इति=अतः, जितम्="मया विजयश्रीर्लब्धा" इति= इत्येवं मत्वा। सुखम्=सुखपूर्वकम्, बन्धनजन्यस्वाभाविकदुःखरहितमित्यर्थः, राजकुले=प्रद्योतराजभवने। विशामि=प्रवेशङ्करोमि॥ ५॥

निष्कलत्राणाम्=पत्नीरहितानाम्। कान्तारप्रवेशः=वनगमनम्। सुखम्= निष्कण्टकम्। प्राप्तमनोरथानाम्=लब्धाभिलषितानाम्। विनिपातः=दैवी-

---

दोनों—उतरिए, उतरिए, आप उतरिये।

(उसके बाद हाथ बँधे फलकशयन द्वारा लाये गये यौगन्धरायण का प्रवेश)

यौग०—यह मैं उतर रहा हूँ।

शत्रु के वशीभूत वत्सराज को छुड़ाकर, अपनी तलवार के टूट जाने से पकड़ा गया मैं स्वामी के दुःख को दूर करने से अपनी "विजय" मानकर मैं सुखपूर्वक इस राजभवन में प्रवेश कर रहा हूँ॥ ५॥

अरे ! पत्नीरहित पुरुषों का वन-गमन सुखदायी होता है, जिनकी अभिला-

प्राप्तमनोरथानां विनिपातः, अपश्चात्तापकरः खलु सञ्चितधर्माणां मृत्युः। मया हि,

वैरं भयं परिभवं च समं विहाय
कृत्वा नयैश्च विनयैश्च शरैश्च कर्म।
शत्रोः श्रियं च सुहृदामयशश्च हित्वा
प्राप्तो जयश्च नृपतिश्च महांश्च शब्दः ॥ ६ ॥

उभौ—उस्सरह उस्सरह अय्या! उस्सरह। [उत्सरतोत्सरतार्याः उत्सरत।]

यौगन्धरायणः—मद्दर्शनाभिलाषी जनो न कश्चिदुत्सारयितव्यः।

विपत्तिः। रमणीयतरः=मनोज्ञः। सञ्चितधर्माणाम्=उपार्जितसुकृतानाम्। मृत्युः=प्राणवियोगः। अपश्चात्तापकरः=अशोचनीयः।

अन्वयः—वैरम्, भयम्, परिभवम्, च, समम्, विहाय, नयैः, विनयैः, शरैः, च, कर्म, कृत्वा, शत्रोः, श्रियम्, सुहृदाम्, अयशः, च, हित्वा, जयः, प्राप्तः, इति, महान्, शब्दश्च, प्राप्तः ॥ ६ ॥

व्याख्या—वैरम्=विरोधम्। भयम्=भीतिञ्च, परिभवम्=अपमानम् च। समम्=युगपदेव। विहाय=त्यक्त्वा, नयैः=नीतिभिः। विनयैः=नम्रताभिः। शरैश्च=बाणैश्च। कर्म=युद्धम्। कृत्वा=विधाय। शत्रोः=प्रतिपक्षिणः, श्रियम्=राजलक्ष्मीम्। सुहृदाम्=मित्रमण्डलानाम्। अयशश्च=अपकीर्तिम् च। हित्वा=दूरीकृत्य। जयः=विजयम्। प्राप्तः=लब्धः। नृपतिश्च=उदयनश्च। "महान्" इति शब्दः=सम्बोधनं प्राप्तः=लब्धवान्।

पायें पूर्ण हो गयी है उनको दैवी विपत्तियाँ भी रमणीयता ही हैं, जिन्होंने धर्मोपार्जन कर लिया है उनके मरने से भी पश्चात्ताप नहीं होता।

मैंने तो—मैंने तो शत्रुता, भय और अपमान को एक साथ छोड़ कर नीति से, विनय से, और बाणों से कर्म करके शत्रु की राजश्री और मित्रों के अयश को दूर करके जय, राजा और "महान" शब्द को प्राप्त किया ॥ ६ ॥

दोनों—हट जाइये! हट जाइये! आपलोग हट जाइये।

यौग०—मुझे देखने वाले किसी को भी मत हटाओ।

पश्यन्तु मां नरपतेः पुरुषाः ससत्त्वा
राजानुरागनियमेन विपद्यमानम् ।
ये प्रार्थयन्ति च मनोभिरमात्यशब्दं
तेषां स्थिरीभवतु-नश्यतु वाभिलाषः ।। ७ ।।

उभौ---उत्सरह उत्सरह । किं तुम्हेहि ण दिट्ठपुरुवो अय्यजोअन्धराअणो ! [उत्सरतोत्सरत । किं युष्माभिर्न दृष्टपूर्व आर्ययौगन्धरायणः ?]

यौगन्धरायणः---दृष्टः पूर्वं, न त्वेवम् । मम हि,

उन्मत्तच्छन्नवेषस्य रथ्यासु परिधावतः ।
अवगीतमिदं रूपं कर्म सम्प्रति दृश्यते ।। ८ ।।

अन्वयः---राजानुरागनियमेन, विपद्यमानम्, माम्, ससत्त्वाः, नरपतेः, पुरुषाः, पश्यन्तु, ये, जनाः, मनोभिः, अमात्यशब्दम्, प्रार्थयन्ति, तेषाम्, अभिलाषः, स्थिरीभवतु, नश्यतु, वा ।। ७ ।।

व्याख्या---नरपतेः = प्रद्योतस्य । ससत्त्वाः = धैर्यशालिनो । पुरुषाः = भृत्याः । राजानुरागनियमेन = स्वामिभक्तिव्रतेन । विपद्यमानम् = आपद्ग्रस्तम् । माम् = यौगन्धरायणम् । पश्यन्तु = अवलोकयन्तु । ये च-राजपुरुषाः । मनोभिः = हृदयैः । अमात्यशब्दम् = "अमात्य" इति सम्बोधनम् । प्रार्थयन्ति= इच्छन्ति । तेषाम् = जनानाम् । अभिलाषः=मनोरथः । स्थिरीभवतु = दृढी भवतु वा=अथवा नश्यतु=विनष्टो भवतु मां दृष्ट्वा ते स्वामिभक्तिनिश्चयेन पूर्णाभिलाषो भवतु अथवा मद्विपत्तिं दृष्ट्वा भयभीताः सन्तः अमात्याभिलाषमेव परित्यजन्तु इति भावः ।। ७ ।।

अन्वयः---उन्मत्तच्छन्नवेषस्य, रथ्यासु, परिधावतः, मम, इदम्, अवगीतम्, रूपम् सम्प्रति कर्म, दृश्यते ।। ८ ।।

राजभक्ति के कारण विपत्ति में फँसे मुझको प्रद्योत के राज कर्मचारी धीरतापूर्वक देखें । जो लोग मन से "अमात्य" शब्द को चाहते हैं (अमात्य बनना चाहते हैं) उनकी अभिलाषाएँ (मुझे देखकर) या तो और प्रबल हो जायँ या फिर नष्ट हो जायँ ।। ७ ।।

दोनों---हट जाओ । हट जाओ । क्या आप लोगों ने इसके पहले यौगन्धरायण को नहीं देखा है ?

यौग०---पहले देखा है । परन्तु ऐसा नहीं । क्योंकि मेरा तो---

(प्रविश्य)

भटः—अय्य ! पिअं दे णिवेदेमि । गहीदो किल वच्छराओ ।
[आर्य ! प्रियं ते निवेदयामि । गृहीतः किल वत्सराजः ।]

यौगन्धरायणः—नैतदस्ति ।

चिरमरिनगरे निरोधमुक्तः स किल वनान्युपलभ्य भद्रवत्या ।
ग्रहणमुपगमिष्यति प्रयातो निमिषितमात्रगतेषु योजनेषु ॥ ९ ॥

भद्र ! कथं गृहीत इति श्रुतम् ?

व्याख्या—उन्मत्तच्छन्नवेषस्य = प्रमत्ताच्छादितस्वरूपस्य । रथ्यासु = वीथिषु, परिधावतः=इतस्ततः पलायमानस्य । अवगीतम्=गर्हितम् । इदम् = उन्मत्तवत्, रूपम् = दृष्टम् । सम्प्रति = अधुना । कर्म = मम स्वामिभक्तिपूर्णकार्यम् । दृश्यते = अवलोक्यते ॥ ८ ॥

अन्वयः—चिरम्, अरिनगरे, निरोधमुक्तः, सः भद्रवत्या, वनानि, उपलभ्य, किल, प्रयातः, निमिषिमात्रगतेषु, योजनेषु, ग्रहणम्, उपगमिष्यति ॥९॥

व्याख्या—चिरम्=बहुकालम् । अरिनगरे=शत्रुपुरे । निरोधमुक्तः = बन्धनविमुक्तः, सः = उदयनः भद्रवत्या = हस्तिन्या । वनानि = विन्ध्यवनानि । उपलभ्य = सम्प्राप्य । किल = निश्चयमेव । निमिषिमात्रगतेषु = क्षणमात्रावतीतेषु । योजनेषु=क्रोशचतुष्टयेषु । उपगमिष्यति=यास्यति । किल=कथङ्कारमपि । अर्थात् कदाऽपि कथमपि न प्राप्तुं शक्यते वत्सराजः ॥ ९ ॥

उन्मत्तवेष के कारण मेरा वास्तविक रूप तो छिपा था और मैं गलियों से दौड़ा करता था, इस प्रकार मेरे निन्दित रूप को इन लोगों ने पहले देखा है, परन्तु अब ये मेरे (सुन्दर) कर्म को देख रहे हैं ॥ ८ ॥

(प्रवेश करके)

भट—आर्य ! आपको खुशी की बात सुना रहा हूं । वत्सराज पकड़े गये ।

यौग०—यह नहीं है (नहीं हो सकता है ।)

शत्रु की नगरी में कारागार से निकल कर भद्रवती के द्वारा विन्ध्य वन को प्राप्त कर क्षण मात्र में अनेक योजन चले जाने पर वह पकड़ा जा सकता है ? कदापि नहीं । भद्र, क्या आपने सुना है कैसे पकड़ा गया ? ॥ ९ ॥

भटः—अणुसारिअ णलागिरिणा गहीदो किल। [अनुसार्य नलागिरिणा गृहीतः किल।]

यौगन्धरायणः—अस्ति वाहनसामर्थ्यम् असमायुक्तस्तु सः।

गजस्याघोरणायुक्तो जवो भवति शिक्षया।
विमुक्तं वत्सराजेन क एनं वाहयिष्यति॥ १०॥

भटः—अय्य! अमच्चो आह-आउहागारे चिट्ठदु किल अय्यो। पुरुसगुत्तो अअं देसो त्ति। [आर्य! अमात्य आह-आयुधागारे तिष्ठतु किलार्यः। पुरुषगुप्तोऽयं देश इति।]

वाहनस्य=नलागिरेः। सामर्थ्यम्=क्षमत्वम्। असमायुक्तः=असम्यक्प्रेरितः।

अन्वयः—गजस्य, जवः, आघोरणायुक्तः, भवति, शिक्षया, विमुक्तम्, एनम्, वत्सराजेन, सह, कः, वाहयिष्यति॥ १०॥

व्याख्या—गजस्य=द्विपस्य। जवः=वेगः आघोरणायुक्तः=हस्तिपकोत्पादितः। भवति। शिक्षया विमुक्तम्=शिक्षारहितम्। एनम्=नलागिरिम्। वत्सराजेन=उदयनेन समम्। कः=पुरुषः वाहयिष्यति=नेष्यति। अर्थात् भद्रवतीं व्यापारयता उदयनेन सह कः नलागिरिं तत्समानं वोढुं शक्ष्यति न कोऽपीत्यर्थः॥१०॥

पुरुषगुप्तः=आगन्तुकपुरुषसुरक्षितः।

भट—नलागिरि को उसके पीछे दौड़ाकर पकड़ा गया।

यौग०—क्या उसमें (भद्रवती को पकड़ने की) सामर्थ्य है? वह तो भली-भाँति शिक्षित भी नहीं है।

हाथी का वेग महावत से उत्पन्न होता है, शिक्षा-शून्य इस (नलागिरि) को वत्सराज के साथ कौन दौड़ा सकता है?

(भाव यह है कि समुचित शिक्षित हाथी भी वत्सराज को नहीं पकड़ सकता फिर नलागिरि तो अभी शिक्षा भी नहीं पाया है। वह तो (भद्रवती पर आरूढ़) वत्सराज को नहीं ही पकड़ सकता।)

भट—आर्य! मन्त्री ने कहा है कि—आप शस्त्रागार में ठहरें। यह स्थान अपरिचित व्यक्तियों से सुरक्षित है।

यौगन्धरायणः—अहो हास्यमभिधानम्।

अग्निं बद्ध्वा वत्सराजाभिधानं यस्मिन् काले सर्वतो रक्षितव्यम्।
तस्मिन् काले सुप्तमासीदमात्यैर्नीते रत्ने भाजने को निरोधः ॥११॥

(परिक्रम्य)

भटः—इदं आउहागारं पविसदु अय्यो। [इदमायुधागारम्। प्रविशत्वार्यः।]

(प्रविश्य)

भटः—अमच्चो आह–अवणीअदु बन्धणं त्ति ! [अमात्य आह–अपनीयतां बन्धनमिति।]

अन्वयः—वत्सराजाभिधानम्, अग्निम्, बद्ध्वा, यस्मिन् काले, सर्वतो, रक्षितव्यम्, तस्मिन्, काले, अमात्यैः सुप्तम्, आसीत्, रत्ने, नीते, भाजने, कः, निरोधः ॥ ११ ॥

व्याख्या—वत्सराजाभिधानम् = वत्सराजनामकम्। अग्निम् = वह्निम्। अर्थात् = अग्निसदृशमुदयनम्। बद्ध्वा = वशीकृत्य। यस्मिन्काले = यदा। सर्वतः = मन्त्रिवर्गैः। रक्षितव्यम् = गोप्यम्। तस्मिन् काले = तदा, सुरक्षा समये इति भावः। अमात्यैः = मन्त्रिवर्गैः। सुप्तमासीत् = निद्रितमर्थात् असावधानमासीत्। अधुना। रत्ने = मणौ। नीते = अपहृते। भाजने = मणिपात्रे। को निरोधः = का सुरक्षा ? ॥ ११ ॥

यौग०—अहो कितनी हँसी की बात है ?

वत्सराज नामक अग्नि को बाँधकर (अग्नि समान तेजस्वी वत्सराज को कैदकर) जिस समय सब तरह से रक्षा करनी चाहिए थी उस समय तो अमात्यवर्ग सो रहा था। (अब) रत्न के चोरी चले जाने पर केवल (रत्न रहित) पात्र की रक्षा से क्या ? (अर्थात् उदयन के चले जाने पर मेरे ऊपर चौकसी रखना व्यर्थ है।) ॥११॥

(परिक्रमा करके)

भट—यह शस्त्र गृह है। इसमें आप प्रवेश करें।

(प्रवेश करके)

भट—अमात्य ने कहा है कि—बन्धन हटा दो।

यौगन्धरायणः—अक्षीणं मां कुरु। व्यक्तं भरतरोहको मां द्रष्टुमिच्छति। अहमपि तावद् भरतरोहकं द्रष्टुमिच्छामि।

मद्वाक्यैः परिखिद्यमानहृदयं रोषात् प्रमत्ताक्षरैः
प्रारब्धेषु नयच्छलेषु तुलितं तुल्याधिकारोज्झितम्।
सूक्तैः शास्त्रविनिश्चितैर्विरहितं बुद्ध्याधिकं वञ्चितं
द्रष्टुं मल्लमपक्रियाविनिहतं व्रीलादिवाधोमुखम् ॥१२॥

अक्षीणम् = विश्रान्तम्।

अन्वयः—रोषात्, प्रमत्ताक्षरैः, मद्वाक्यैः, परिखिद्यमानहृदयम्, नयच्छलेषु, प्रारब्धेषु, तुलितम्; तुल्याधिकारोज्झितम्, शास्त्रविनिश्चितैः, सूक्तैः, विरहितम्, बुद्ध्या, अधिकम्, वञ्चितम्, अपक्रियाविनिहितम्, मल्लम्, व्रीलात्, अधोमुखम्, द्रष्टुम् "इच्छामि" ॥ १२ ॥

व्याख्या—रोषात् = स्वामिवञ्चनोद्देश्यकात् कोपात्। प्रमत्ताक्षरैः = निर्मर्यादितैः। मद्वाक्यैः = मत्कथनैः। परिखिद्यमानहृदयम् = दोद्रूयमानचित्तम्। नयच्छलेषु = नीतिकपटेषु। प्रारब्धेषु = उपाक्रान्तेषु सत्सु "मयेति" शेषः। तुलितम् = तुलाधृतम्। तुल्याधिकारोज्झितम् = प्राप्तव्यसमानभागेन्यूनम् मदीयकपटान्न्यूनमेवेति भावः। शास्त्रविनिश्चितैः = शास्त्रनिर्धारितैः। सूक्तैः = उपदेशैः। विरहितम् = रहितम्। बुद्ध्या = युक्त्या, धिया। अधिकम् = स्वापेक्षाऽधिकम्। वञ्चितम् = छलितम्। यथा तेनाऽहं छलितः ततोऽधिकं स मयाच्छलित इति भावः। अपक्रियाविनिहतम् = प्रतिकारप्रतिहतारम्भम्। मल्लम् = भटम्। इव। व्रीलात् = लज्जातः अधोमुखम् = अवनतवदनम्। भरतरोहकमहं द्रष्टुमिच्छामि ॥ १२ ॥

यौग०—मुझे विश्राम कराओ। स्पष्ट है कि भरतरोहक मुझको देखना चाहते हैं। मैं भी भरतरोहक से मिलना चाहता हूँ।

क्रोध में कहे गए मेरे उद्धत वचनों से जिसका हृदय दुःखी हो रहा है, प्रारम्भ नीति कपट में तौले जाने पर जो कम ही निकला, जो शास्त्रोपदिष्ट उपदेश रहित है, जो बुद्धि से भी (मेरी अपेक्षा) अधिक ठगा गया, जो इस समय निष्फल प्रयत्न वाले शूर के समान लज्जा से अवनत मुख वाला है मैं उस भरतरोहक को देखना चाहता हूँ।

(ततः प्रविशति भरतरोहकः ।)

भरतरोहकः— क्वासौ क्वासौ यौगन्धरायणः ?

अवसितनिजकार्यं वञ्चनैर्दुर्निरीक्षं
कथमिव परिभाषे भर्तुरर्थे विपन्नम् ।
चिरमवनतकार्यं चापि निर्युक्तमन्त्रं
भुजगमिव सरोषं धर्षितं चोच्छ्रितं च ॥१३॥

भटः—अय्यजोअन्धरावणो अय्यं पडिवालअन्तो आउहागारे चिठ्ठइ । [आर्ययौगन्धरायण आर्यं प्रतिपालयन् आयुधागारे तिष्ठति ।]

अन्वयः—वञ्चनैः, अवसितनिजकार्यम्, दुर्निरीक्षम्, भर्तुः, अर्थे, विपन्नम्, चिरम्, अवनतकार्यम्, निर्युक्तमंत्रम्, सरोषम्, भुजगमिव, धर्षितम्, उच्छ्रितम्, एनम्, कथम्, इव परिभाषे ॥ १३ ॥

व्याख्या—वञ्चनैः = कपटैः । अवसितनिजकार्यम् = सम्पादितस्वार्थम् । दुर्निरीक्षम् = कष्टपूर्वकं द्रष्टुं योग्यम् । भर्तुरर्थे = स्वामिकार्यार्थम् । विपन्नम् = विपदग्रस्तम् । चिरम् = वहुकालं यावत्, अवनतकार्यम् = उच्चैर्गतिहीनं कार्यं यस्य सः तम् । चापि = तथाऽपि । निर्युक्तमन्त्रम् = उच्चैर्गतिप्राप्त्यनुकूल-प्रयुक्तमन्त्रम् । सरोषम् = क्रोधयुतम् । धर्षितम् = ताडितमपमानितं वा । चोच्छ्रितम् = उत्थितफणीम् उच्चैः शिरसम् । भुजगमिव = सर्पमिव । एनं यौगन्धरायणं कथमिव = केनप्रकारेण । परिभाष्ये = उपालभे ॥ १३ ॥

(उसके वाद भरतरोहक का प्रवेश)

भरतरोहक—कहाँ है यौगन्धरायण ? कहाँ है वह ?

कपट से जिसने अपना कार्य सिद्ध कर लिया (लज्जा के कारण) जिसे मैं कठिनाई से देख पाऊँगा, जिसका कार्य वहुत समय तक अमात्य के प्रतिकूल था, जो स्वामी के लिए विपत्ति में फँसा, पराजित होने पर भी जिसका सिर ऊँचा है, अपमानित अतः क्रोधित एवं जो अपने फणों को ऊपर उठाये हुए हैं ऐसे सर्प के समान इस यौगन्धरायणको मैं किस प्रकार उपालंभ (व्यङ्ग्य) दे सकता हूँ ॥१३॥

भट - आर्य यौगन्धरायण आपकी प्रतीक्षा करते हुए शस्त्रागार में हैं ।

भरतरोहकः—भवतु भवतु ।

मन्त्रित्वे वञ्चितो ह्येष सव्याजं नीलहस्तिना
प्रत्यादेष्टुं स तद्वैरं मामिदानीं प्रतीक्षते ॥१४॥

भटः—अय्य ! एसो अमच्चो । [आर्य ! एषोऽमात्यः ।]

भरतरोहकः—(उपगम्य) भो यौगन्धरायण !

यौगन्धरायणः—भोः !

भटः—अहो सरस्स गम्भीरदा ! अय्यस्स एकक्खरेण पूरिदो अयं देसो !! [अहो स्वरस्य गम्भीरता ! आर्यस्यैकाक्षरेण पूरितोऽयं देशः !!]

भरतरोहकः—(उपविश्य) भोः ! यौगन्धरायण इत्यशरीराण्यक्षराणि श्रूयन्ते । दिष्ट्या भवान् दृश्यते ।

अन्वय—मन्त्रित्वे, हि, एष, नीलहस्तिना, सव्याजम्, वञ्चितः स, इदानीम्, तद्वैरम्, प्रत्यादेष्टुम्, माम्, प्रतीक्षते ॥ १४ ॥

व्याख्या—एष = यौगन्धरायणः । नीलहस्तिना = लौहगजेन । सव्याजम् = कपटसहितम् । मन्त्रित्वे = अमात्यस्य कार्यकाले । वञ्चितः = छलितः । स = यौगन्धरायणः । इदानीम् = अधुना । तद्वैरम् = छलमूलकं विरोधम् । प्रत्यादेष्टुम् = दूरीकर्तुम् । माम् = भरतरोहकम् । प्रतीक्षते ॥ १४ ॥

भरत—अच्छा, अच्छा ।

यह यौगन्धरायण अपने मन्त्रित्वकाल में नीले हाथी के द्वारा ठगा गया था, इस समय उसी वैर का बदला लेने के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहा है ॥१४॥

भट—आर्य ! ये अमात्य हैं ।

भरत—(पास जाकर) ऐ यौगन्धरायण ।

यौग०—ऐ !

भट—(मन ही मन) कैसा गम्भीर स्वर है ? आर्य के एक ही शब्द से यह स्थान भर गया ।

भरत—(बैठकर) अजी ! अभी तक शरीर रहित "यौगन्धरायण" ये अक्षर ही सुनाई पड़े थे । भाग्य से आप भी दिखाई पड़ रहे हैं ।

यौगन्धरायणः—दिष्ट्या भवान् दृश्यत इति । पश्यतु भवान् माम्,

एवं रुधिरदिग्धाङ्गं वैरं नियममास्थितम् ।
गुरोरवजितं हत्वा शान्तं द्रौणिमिव स्थितम् ॥१५॥

भरतरोहकः—अहो छलेनागतगजारम्भस्यात्मसम्भावना !!

यौगन्धरायणः—किं छलेनेति । तत् पुनरिदानीं युक्तम् ।

या सा मल्लिकसालवृक्षरचिता नागाश्रिता वञ्चना

अन्वयः—वैरम्, नियमम्, आस्थितम्, एवम्, रुधिरदिग्धाङ्गम्, गुरोः, अवजितम्, हत्वा, शान्तम्, स्थितम्, द्रौणिमिव ॥ १५ ॥

व्याख्या—वैरम् = वीरसम्बन्धिनम् । नियमम् = समुदाचारम् । आस्थितम् = आश्रितम्, परिपालयन्तमित्यर्थः । रुधिरदिग्धाङ्गम् = शोणिताप्लुतावयवम् । गुरोः = पितुः द्रोणाचार्यस्येत्यर्थः । अवजितम् = अवजेतारम् । हत्वा = निकृत्य । शान्तम् = क्रोधरहितम् । द्रौणिम् = अश्वत्थामानम् । इव = यथा स्थितम् (एवं मां पश्यतु) ॥ १५ ॥

छलेन = कपटेन । आगतगजारम्भस्य = आगतः = सम्प्राप्तः । गजेन = भद्रवत्या आरम्भः = उदयनापहरणरूपो प्रयत्नो यस्य तस्य आत्मसम्भावना = स्वविषयकोदर्पः ।

अन्वयः—या सा मल्लिकसालवृक्षरचिता, नागाश्रिता, वञ्चना, नः, वद्धः,

---

यौग०—भाग्य से आपके दर्शन हुए ? तो आप मुझे देखें । रुधिर से लिप्त अङ्ग वाले वीरों के नियमों को पालन करने वाले मुझको; आप गुरु (पिता) का अवमान करने वाले को मारकर शान्त अश्वत्थामा-की तरह देखें ॥१५॥

भरत०—धोखा देकर हाथी के द्वारा वत्सराज को भगाकर अपने को इतना बड़ा वीर समझते हो ?

यौग०—छल की क्या चर्चा ? क्या आपका छल करना ठीक था ?

मल्लिका और शाल वृक्ष की ओट में जो (नीले) हाथी की रचना करके छल प्रयोग किया गया था, एवं आपके बन्धन में पड़कर हाथी का तकिया लगाकर पृथ्वी पर वत्सराज का शयन करना (ये सब क्या ठीक थे ?)

वद्धः सेवितवान् हि नो नरपतिर्वाहूपधानां क्षितिम् ।
राज्ञो वारणनिग्रहे परिचयाद् वीणाश्रिता वञ्चना
पूर्वं प्रस्तुतमेव यामि भवता नैवापराधो मम ॥१६॥

भरतरोहकः—भो यौगन्धरायण ! यदग्निसाक्षिकं महासेनस्य दुहितरं शिष्यां प्रतिगृह्य अदत्तापनयनं कृतं, युक्तेयं भोस्तस्करप्रवृत्तिः ?

नरपतिः, वाहूपधानाम्, क्षितिम्, सेवितवान्, वारणनिग्रहे, राज्ञः, परिचयात्, वीणाश्रिता, वञ्चना, भवता, पूर्वम्, प्रस्तुतमेव, यामि, मम, अपराधः, नैव ॥ १६ ॥

व्याख्या—या सा = पूर्वकृता । मल्लिकसालवृक्षरचिता = मल्लिकानामकस्य "साल" जात्याख्य वृक्षविशेषस्य च मध्ये सम्पादिता । नागाश्रिता = गजसम्बद्धा । वञ्चना = छलः तत् = वञ्चनम् । युक्तं किम् ? वद्धः = निगडितः । नः = अस्माकम् । नरपतिः = स्वामी । वाहूपधानाम् = भुजोपवर्हाम् । क्षितिम् = पृथ्वीम् । सेवितवान् = शिश्ये । हि = यतः । राज्ञः = वत्सराजस्य । वारणनिग्रहे = हस्तिदमने । परिचयात् = ज्ञातकौशलात् । वीणाश्रिता = वीणापहरणनिमित्तिका । वञ्चना = कपटम् कृतमिति । अर्थात् वत्सराजस्य हस्तिदमन कौशलम्, वीणावादनकौशलञ्च असोढ्वा वीणादिकमपहृतवन्तो भवन्तः । इत्थं पूर्वम् = अग्रम् । प्रस्तुतमेव = दर्शितमेव छलं । यामि = अनुगच्छामि । मम यौगन्धरायणस्य । अपराधो नैव = नास्त्यपराधः ॥ १६ ॥

महासेनस्य = प्रद्योतस्य । दुहितरम् = पुत्रीम् । अग्निसाक्षिकम् = अग्नेः साक्षित्वे, शिष्याम् = शिष्यात्वेन पाठयात्वेनेति भावः प्रतिगृह्य = स्वीकृत्य।

हाथियों को अपने वश में कर लेने की उनकी कुशलता को सहन न कर सकने के कारण उनकी वीणा का अपहरण करना क्या ठीक था ? मैं तो आपके द्वारा पहले से किये गये कपट का अनुकरण मात्र कर रहा हूँ इसमें मेरा, कोई अपराध नहीं है ॥ १६ ॥

भरत—ऐ ! यौगन्धरायण महासेन की पुत्री को अग्नि का साक्षी वनाकर शिष्या वनाया और पुनः उस (वासवदत्ता) अविवाहिता का अपहरण कर लिया क्या यह चौर प्रवृत्ति ठीक है ?

यौगन्धरायणः—मा मा भवानेवम् । विवाहः खल्वेष स्वामिनः ।

भरतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः ।
अकृत्वा दारनिर्देशमुपदेशं करिष्यति ॥१८॥

भरतरोहकः—अद्यापि महासेनेन प्रयुक्तसत्कारो वत्सराजः । तदिदानीं किं नावेक्षते ?

यौगन्धरायणः—मा मा भवानेवम् ।

यदस्य चाज्ञां कुरुते नलागिरिः स शिक्षितानां वचनेषु तिष्ठति ।
ततो विमुक्तः स्वशरीरलक्षणे यशः प्रदातुं सुहृदां च जीवितम् ॥१८॥

अदत्तापनयनं कृतम् = अविवाहिताया अपहरणं कृतम् । तस्करप्रवृत्तिः = चौरवृत्तिः । युक्ता = उचिता किमित्याक्षेपः ?

अन्वयः—भरतानाम्, कुले, जातः, वत्सानाम्, ऊर्जितः, पतिः, दारनिर्देशम्, अकृत्वा, उपदेशम्, करिष्यति ॥ १७ ॥

व्याख्या—भरतानाम् = तदाख्यराज्ञाम् । कुले=वंशे । जातः=उत्पन्नः । वत्सानाम् = वत्सदेशवासिनाम् । ऊर्जितः = बलवान् । पतिः = राजा । दारनिर्देशम् = पत्नीत्वोचितक्रियाम् । अकृत्वा = असम्पाद्य । उपदेशम् = शिक्षाम् । करिष्यति = दास्यति । नाध्यापयेदिति निश्चयः ॥ १७ ॥

अन्वयः—नलागिरिः, यदस्य, आज्ञाम्, च, कुरुते, सः, शिक्षितानाम् वचनेषु, तिष्ठति । ततः, स्वशरीररक्षणे, सुहृदाम्, जीवितम्, यशः, च, प्रदातुम्, विमुक्तः ॥ १८ ॥

व्याख्या—यत् = यस्मात् कारणात् । नलागिरिः = हस्ती । अस्य =

यौग०—ऐसा मत कहिए । यह तो स्वामी का विवाह था ।

भरत कुल में उत्पन्न बलवान वत्सराज बिना विवाह किये किसी कन्या को उपदेश दे सकता है ? (नहीं दे सकता) ॥ १७ ॥

भरत०—आज भी महासेन ने जो सत्कार वत्सराज को दिया है, वह उसे नहीं देख रहा है ।

यौग—ऐसा न कहें—

क्योंकि नलागिरि वत्सराज की आज्ञा का पालन करता है वह (हाथी)

भरतरोहकः—यद्येवं, नलागिरिग्रहणार्थं विमुक्तश्चेद्, न पुनर्बद्धस्ते स्वामी।

यौगन्धरायणः—नेति पश्यत्युपक्रोशभयात्।

भरतरोहकः—अपरोक्षराज्यव्यवहारो भवानिति ब्रवीति समरावर्जितेषु शत्रुषु किमाह शास्त्रम्?

यौगन्धरायणः—वधः।

वत्सराजस्य। आज्ञां=आदेशपालनम्। कुरुते=विद्यते। सः=नलागिरिः=शिक्षितानाम् गजवशीकरणविद्यावताम्। वचनेषु=कथनेषु। तिष्ठति=प्रतिवसति अर्थात् तदाज्ञां पालयति। ततः=तस्मात्कारणात्। स्वशरीररक्षणे=निजप्राणरक्षणार्थम्। सुहृदाम्=निजबन्धुजनानाम्। यशः=कीर्त्यर्थम्। जीवितम्=प्राणश्च। प्रदातुम्। सः विमुक्तः=सः बन्धनान्मोचितः। न तु वत्सराजोपकाराय। अर्थात् वत्सराजः गजवशीकरणविद्यावेत्ता अतः सो यदि प्रमत्तं नलागिरिं न वशं नयेत्तर्हि महासेनसुहृदां गजदमनासामर्थ्यप्रयुक्ताऽपकीर्तिः स्यात्तद्भिया, निजजनप्राणवियोगश्च स्यादतः बन्धनान्मोचितो वत्सराजः॥ १८॥

उपक्रोश भयात्=गजंवशमानीय सुहृदां प्राणरक्षितारं पुनर्बध्नाति इति लोकापवादभयात्। अपरोक्षराज्यव्यवहारः=ज्ञातराज्यव्यवहारः।

गजवशीकरण विधा को जानने वाले के वश में रहता है इसलिए अपने शरीर की रक्षा के लिए एवं अपने सुहृत्जनों की अपकीर्ति की रक्षा से उनका प्राण बचाने के लिए महासेन ने वत्सराज को बन्धन मुक्त किया (न कि उनके उपकार की भावना से)॥ १८॥

भरत०—यदि यह बात थी कि नलागिरि को वश में करने के लिए ही छोड़े गये थे, तो पुनः आपके राजा पकड़ क्यों नहीं लिये गये?

यौग०—लोकापवाद के भय से महासेन ने ऐसा नहीं किया।

भरत०—राजनीति की बात के जानकार होकर भी ऐसा कहते हैं? युद्ध में पकड़े गये शत्रु के लिए शास्त्र में क्या विधान है?

यौग०—वध।

भरतरोहकः—वधार्हो वत्सराजश्चेत् किमस्माभिः स सत्कृतः ?

यौगन्धरायणः—एतदवेद्य खलु यदस्य शरीरं नापहृतम् ।

भरतरोहकः—एतदपि सम्भाव्यं मन्यते स्वामी ।

यौगन्धरायणः—कः संशयः ?

हस्तप्राप्तो हि वो राजा रक्षितस्तेन साधुना ।
न ह्यनारुह्य नागेन्द्रं वैजयन्ती निपात्यते ॥१९॥

भरतरोहकः—भवतु भवतु । महासेनस्य प्रतिकूलं कृत्वा कौशाम्बीं प्रति का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—अहो हास्यमभिधानम् !

भवतां चाग्रतो यातः शेषकार्येषु का कथा ।
समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाश्छेत्तुं कुतः श्रमः ॥२०॥

अन्वयः—हि, वः, हस्तप्राप्तः राजा, तेन, साधुना, रक्षितः, नागेन्द्रम्, अनारुह्य, हि, वैजयन्ती, न, निपात्यते ॥ १९ ॥

व्याख्या—हि=यतः । वः राजा=महासेनः । हस्तप्राप्तः=हस्तगतोऽपि । तेन साधुना=वत्सराजेन । रक्षितः । नागेन्द्रम्=गजेन्द्रम् । अनारुह्य आरोहणमकृत्वैव । वैजयन्ती=पताका । नहि=नैव । निपात्यते=हस्तगतो भवति ॥ १९ ॥

अन्वयः—भवताम्, च, अग्रतः, यातः, शेषकार्येषु, का कथा, समूलम्, वृक्षम्, उत्पाट्य, शाखाः छेत्तुम्, कुतः, श्रमः ॥ २० ॥

भरत०—वध करने के योग्य भी वत्सराज का हम लोगों ने सत्कार क्यों किया ?

यौग०—इसी का विचार करके तो महासेन का वध नही किया गया ।

भरत०—इसको भी आपके स्वामी सम्भवतः समझते थे ।

यौग०—इसमें क्या संशय ?

हस्तगत होने पर भी आपके राजा की उस सज्जन ने रक्षा की । विना हाथी पर चढ़े उसके ऊपर की पताका हस्तगत नही होती ॥ १९ ॥

भरत०—अच्छा ! अच्छा ! महासेन का अपराध करके आप कौशाम्बी जाने के विषय में क्या सोचते हैं ?

यौग०—यह तो बडी हंसी की बात है ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—(कर्णे) एवमिव ।

भरतरोहकः—प्रकाशमुच्यताम् ।

काञ्चुकीयः—

कारणैर्बहुभिर्युक्तैः कामं नापकृतं त्वया ।
गुणेषु न तु मे द्वेषी भृङ्गारः प्रतिगृह्यताम् ॥२१॥

यौगन्धरायणः—हा धिक् ।

व्याख्या—भवताश्च=मदपकृताः मम वधमिच्छन्ताश्च । अग्रतः=पुरस्तात् । यातः=गतः । शेषकार्येषु =कौशाम्बीप्रयाणेषु । का कथा =का वार्ता । येन महाकार्यं साधितं क्षुद्रकार्येषु का कथेति भावः । समूलम् =मूलसहितम् । वृक्ष-मुत्पाट्य = तरुनिपात्य । शाखाच्छेत्तुम् = तस्यस्कन्धादीनां लवने । कुतः श्रमः = कः प्रयासः ? ॥ २० ॥

अन्वयः—बहुभिः, कारणैः, युक्तैः, त्वया, कामम्, अपकृतम्, मे, गुणेषु, तु, न, द्वेषः, भृङ्गारः, प्रतिगृह्यताम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—त्वया =यौगन्धरायणेन । बहुभिः =अनेकैः । कारणैः =कपटैः । कामम् =पर्याप्तम् । न अपकृतम् =ममापकारो न कृतमिति मन्ये । मे =मम । द्वेषः =ईर्ष्या । गुणेषु =श्लाघनीयकलापु । न =नैव । भृङ्गारः =स्वर्णरचित-जलपात्रविशेषम् । प्रतिगृह्यताम् =स्वीक्रियताम् ॥ २१ ॥

मैं आप लोगों के समक्ष हूँ । कौशाम्बी जाने की क्या बात ? जड़ से पेड़ को उखाड डालने के बाद उसकी शाखा को काटने में क्या परिश्रम है ? २० ॥

(प्रवेश करके)

काञ्चु०—(कान में) ऐसा ।

भरत०—स्पष्ट कहो ।

काञ्चु०—बहुत कारणों से मैं तुम्हारे कपट को पर्याप्त अपराध नहीं मानता । गुणों से मुझे द्वेष नहीं है, इस भृङ्गार (स्वर्णनिर्मित जल पात्र विशेप) को स्वीकार करें ॥ २१ ॥

यौग०—धिक्कार है ।

गृहा न निर्वान्ति मया प्रदीपितास्तथैव तावद्धृदयानि मन्त्रिणाम् ।
इयं तु पूजा मम दण्डधारिणः कृतापराधस्य हि सत्कृतिर्वधः ॥२२॥

(नेपथ्ये हाहाकारः क्रियते)

भरतरोहकः—अये,

को नु खल्वेष सहसा प्रासादाग्राद् विनिःसृतः ।
श्येनपक्षाभिमृष्टानां कुररीणामिव ध्वनिः ॥२३॥

अन्वयः—मया, प्रदीपिताः, गृहाः, न, निर्वान्ति, तथैव, मन्त्रिणाम्, हृदयानि, तावत् । दण्डधारिणः, मम, तु, इयम्, पूजा, हि, कृतापराधस्य, सत्कृतिः, वधः ॥ २२ ॥

व्याख्या—मया प्रदीपिताः=गजमनोव्यग्रतां विधातुं प्रज्वालिताः । गृहाः=सामग्रीरहितगृहाः । न निर्वान्ति=नोपशाम्यन्ति । तथैव=तेनैव प्रकारेण । मन्त्रिणाम्=अमात्यानाम् । हृदयानि=चेतांसि । तावत् नोपशाम्यन्ति । दण्डधारिणः=दण्डविधानकर्तुः महासेनात् । मम तु=यौगन्धरायणस्य । पूजा=सत्कारः । अयोग्यैवेति भावः । हि=यतः । कृतापराधस्य=अपराधिनः । सत्कृतिः=सम्मानन्तु । वधः=प्राणाय हरणमेव भवति ॥ २२ ॥

अन्वयः—श्येनपक्षाभिमृष्टानां कुररीणां ध्वनिः इव प्रसादाग्रात् सहसा विनिःसृतः को नु खलु एषः (शब्दः अस्ति) ॥ २३ ॥

व्याख्या—श्येनपक्षाभिमृष्टनाम्=श्येनप्रहारसीदताम् । कुररीणाम्=पक्षिविशेषाणाम् । ध्वनिरिव=शब्दइव । प्रसादाग्राद्=हर्म्याग्रभागात् । एषः निःसृतः=आगतः । सहसा=अप्रत्याशितः । कोनु=कीदृशः शब्दः ? ॥२३॥

मैंने जिन घरों में आग लगाया वे घर एवं मन्त्रियों के हृदय शान्त नहीं हो रहे हैं । दण्ड विधान करने वाले महासेन से मेरी यह पूजा हो रही है । अपराधी का सत्कार तो वध ही होता है ॥ २२ ॥

(नेपथ्य में हाहाकार होता है ।)

भरत—अरे !

सहसा महल के अग्रभाग से वाज के द्वारा झपटी गयी कुररी के शब्द की तरह यह कैसा शब्द सुनाई पड़ रहा है ? ॥ २३ ॥

भोः ! ज्ञायतां शब्दः ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) एषा तत्रभवत्यङ्गारवती शोकाभिभूतहृदया प्रासादाच्छरीरं विमोक्तुकामा महासेनेनाभिहिता यथा—क्षत्रधर्मेणोद्दिष्टस्ते दुहितुर्विवाहः । किमिदानीं हर्षकाले सन्तप्यसे तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्, इति । तत्र हि,

> स्त्रीजनेनाद्य सहसा प्रहर्षव्याकुलक्रमा ।
> क्रियते मङ्गलाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया ॥२४॥

यौगन्धरायणः—एवं सम्बन्धं मन्यते महासेनः । तेन ह्यानीयतां भृङ्गारः ।

अङ्गारवती = महासेनस्यपत्नी । उद्दिष्टः = सम्पन्नः ।

अन्वयः—अद्य, सहसा, स्त्रीजनेन, प्रहर्षव्याकुलक्रमा, मङ्गलाकीर्णा, सवाष्पा, कौतुकक्रिया, क्रियते ॥ २४ ॥

प्रहर्षव्याकुलक्रमा = हर्षातिरेकेण व्यतिक्रमा कार्यपरिपाटी यस्याः सा । मंगलाकीर्णा = शुभवस्तुसान्द्रा । सवाष्पा = अश्रुयुक्ता । कौतुकक्रिया = मंगलविधिः, विवाहविधिरित्यर्थः । अद्य स्त्रीजनेन = वनितासमाजेन । क्रियते = अनुष्ठीयते ॥ २४ ॥

अरे, पता लगाओ यह कैसा शब्द है ।

काञ्चुकी—जैसी आपकी आज्ञा । (निकल कर फिर प्रवेश करके) शोक से अभिभूत हृदय वाली महारानी अङ्गारवती महल से कूदकर प्राण त्याग करना चाहती थीं परन्तु महासेन ने उनसे कहा—कि तुम्हारी बेटी का विवाह क्षात्र धर्म के अनुसार हुआ है । इस हर्ष के समय में क्या शोक कर रही हो ? इसलिए चित्रफलकस्थ उन दोनों वासवदत्ता एवं उदयन का विवाह कर दो । वहाँ तो—

हर्ष की अधिकता के कारण रोती हुयी स्त्रियाँ अस्त व्यस्त क्रम से मङ्गलकर्म कर रही हैं माङ्गलिक वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं ॥ २४ ॥

यौग०—तो इस प्रकार महासेन ने सम्बन्ध स्वीकार कर लिया । इसलिए लाओ दो भृङ्गार ।

काञ्चुकीयः—गृह्यताम् । (उपनयति)

भरतरोहकः—भो यौगन्धरायण! किं ते भूयः प्रियमुपहरति महासेनः ।

यौगन्धरायणः—यदि मे महासेनः प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।

(भरतवाक्यम्)

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥२५॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः ।

इति प्रतिज्ञानाटिकावसिता ।

—: ० :—

अन्वयः—गावः, अरजसः, भवन्तु, परचक्रम्, प्रशाम्यतु, इमाम्, कृत्स्नाम्, अपि, महीम्, नः, राजसिंहः, प्रशास्तु ॥ २५ ॥

व्याख्या—गावः = धेनवः अरजसः = दुःखरहिताः भवन्तु । परचक्रम् = शत्रुच्छलम् । प्रशाम्यतु = शांति भवतु । इमाम् = अस्माभिरधिष्ठिताम् । कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम् । महीम् = पृथ्वीम् । राजसिंहः = सिंह सदृशो राजा । प्रशास्तु = शासनंकरोतु ॥ २५ ॥

विहारप्रदेशीय 'मधुवनी' मण्डलान्तर्गत "अलपुरा" ग्रामवास्तव्येन श्रीजागेश्वर-झाशर्मतनयेन वैद्यनाथेन, कृतेय "मिन्दुकला" टीका सम्पूर्णा ।

काञ्चुकी—लीजिये । (ले आता है ।)

भरत०—*यौगन्धरायण ! अब महासेन तुम्हारा और क्या प्रिय करे ?*

यौग०—यदि हमारे ऊपर महासेन प्रसन्न है तो इससे अधिक क्या चाहूँगा ? (अर्थात् कुछ नहीं)

(भरत वाक्य)

गायें खुशी रहे, शत्रुओं का छल (उपद्रव) शान्त हो, और हमारे सिंह सदृश पराक्रमी राजा सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करें ॥ २५ ॥

(सब चले जाते हैं)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

प्रतिज्ञा नाटिका समाप्त ।



श्लोकानुक्रमणिका

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
४५

महाकविभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम

व्याख्याकारः-

डॉ० बालगोविन्द झा

एम. ए., पी-एच. डी.

प्रो० स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ, रोहतास (बिहार)

भूमिका-लेखकः-

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.

प्रो० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

०० ,०

© KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
POST BOX No. 1118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)

Second Edition
1989
Price Rs. 15-00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 1008, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

समर्पणम्

पूज्य पितृचरण

पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

पुरोवाक्

महाकवि भास-विरचित "स्वप्नवासवदत्तम्" की इस "कमलेश्वरी" संस्कृत-हिन्दी व्याख्या को सुधी संस्कृतज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। संस्कृतानुरागियों की सेवा करना ही प्रस्तुत व्याख्या के प्रणयन का मौलिक उद्देश्य है। छात्र-समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए व्याख्या के साथ-साथ भूमिका-भाग में अत्यन्त उपयोगी सामग्री का यथासंभव समावेश किया गया है। परिशिष्ट भाग में भी कतिपय नाटकीय तत्त्वों, छन्दों एवं अलङ्कारों का संक्षिप्त परिचय देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाया गया है।

प्रस्तुत कार्य के सम्पादन में मुझे अपने पूज्य अग्रज श्री शङ्कर झा, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च विद्यालय, उरलाहा (पूर्णियाँ) से जो सत्प्रेरणा और शुभाशीर्वाद प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन शब्दों में करके मैं कृतघ्न बनना नहीं चाहता। अन्य गुरुजनों के शुभाशीर्वाद भी प्रस्तुत व्याख्या के निर्माण में प्रेरक बने हैं। उन गुरुजनों में डॉ० श्री महाप्रभुलाल गोस्वामी, आचार्य एवं अध्यक्ष, दर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी मेरे लिए प्रातःस्मरणीय हैं। मैं उन सबके प्रति नतमस्तक हूँ। "कृष्णदास अकादमी" के व्यवस्थापक महोदय ने प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित कर मेरे साथ सहृदयता का जो व्यवहार किया है उसके लिए मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

व्याख्या कैसी बन पड़ी है, इसका निर्णय देना तो विद्वानों के अधीन है पर यदि मेरा यह तुच्छ प्रयास विद्वज्जनों, छात्रों एवं अन्य संस्कृतानुरागियों के कुछ भी काम आ सका तो फिर मेरा यह अधिकार होगा कि मैं अपने को कृतकृत्य समझूँ।

त्रुटियों को जन्म देना मानव स्वभाव का अपरिहार्य अङ्ग है, अतः पुस्तक में जो भी अशुद्धियाँ होंगी उनके लिए सहृदय सुधी-जन मुझे क्षमा करेंगे ही, ऐसा विश्वास है।

दीपावली
वि. सं. २०४०

विनयावनत
बालगोविन्द झा

भूमिका

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट्,

न्याय-व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य मीमांसाशास्त्री, आचार्य एवं अध्यक्ष,
दर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भास और उनकी कृतियों की कविकुल प्रशस्ति

कविता-कामिनी के हास भास की नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा-प्रसूत रूपक आज भी अतुलनीय प्रतिक्षण अपनी काव्य-कला की नवीनता से चकाचौंध कर रहा है। रूपकों में प्रसन्न विशद प्रवाहित सुरधुनी की नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है। महाकवि ने वासवदत्ता को निष्पक्ष रूप में देखा और मानवीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रणय-कला को त्याग की कसौटी पर खरी पाया। अपने चिरसङ्गी के कल्याण के लिए सर्वस्व विसर्जन के साथ सपत्नी को भी अङ्गीकार करने में वह अम्लान है। आह्लाद आमोद के साथ पति की कल्याण-कामना में शान्त शाश्वत संसार के आकलन में सचेष्ट है। उसके सरस जीवन को प्रतिक्षण प्रव्रज्या की प्रखर प्रभा से परिव्याप्त है, जो नारी जीवन के लिए अनुकरणीय है। भवभूति का भद्र प्रेम सुख-दुःख में अद्वैतता, विकार-शून्यता, सभी अवस्थाओं में सामरस्य, जराकृत विश्रान्ति राहित्य, प्रतिक्षण वर्द्धमानता, एवं कालकला जिस प्रेम के अनवच्छिन्न प्रवाह के अवरोध में असमर्थ है, उसी प्रेम की स्निग्ध धारा से सिञ्चित भास की काव्य-कला तूलिका-चित्रित 'स्वप्न-वासवदत्ता' है।

सम्भवतः महाकवि ने अनुभव किया कि ऐसी वासवदत्ता जाग्रत् जगत् की कामिनी कैसे हो सकती है? अतः इसे स्वप्नवासवदत्ता मानने के लिए बाध्य हुआ और इतिवृत्त को अपनी कल्पना के अनुरूप चित्रित किया, जिसकी पुनरावृत्ति काव्य-जगत् में सम्भव न हो सकी।

महाकवि ने लीलापाङ्गलोचन से प्रणयमधुर को अवलोकन कर नन्दन-कानन-निवासी वासवदत्ता के त्यागमय जीवन को चिन्मय भूमि में अवतारणा का सफल प्रयास किया। महाकवि कालिदास को अपने नाटकों की अवतारणा से पूर्व भूमिका में व्याजस्तुति के रूप में भास के उद्भास को लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

महाकवि की इस वाणी ने भास को चिरप्रतिष्ठित पद पर आसीन करने में सङ्कोच नहीं किया। इतना ही नहीं मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट शब्दों से महाकवि ने कहा—"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रथम उल्लास में साम्बशिव एवं व्यास आदि को प्रणामाञ्जलि अर्पित कर भास की प्रशस्ति को उपस्थापित किया—

सूत्रधार के द्वारा प्रारब्ध, अनेक भूमिकाओं से युक्त पताका आदि प्रासङ्गिक कथाओं से विभूषित नाटकों की रचना कर देवकुल के समान यश के भागी हुए।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥

श्रीगणपति शास्त्री ने भास-नाटक चक्र के रूप में भास की कृतियों को मनीषियों के सम्मुख रखकर उनको प्रथित यशोराशि से उद्भासित किया और बाणभट्ट की लेखनी के द्वारा लिखित 'नाटकैः' इस बहुवचन प्रयोग को समर्थित किया, अतः, उनकी कृतियों के विषय में समस्या का उद्भावन अन्वेषण की दृष्टि से उचित होते हुए भी तथ्य की दृष्टि से विप्रतिपत्तिशून्य है।

आठवीं शताब्दी के 'गउडवहो' महाकाव्य के प्रणेता वासवदत्ता के अग्निदाह की कल्पना से इतने प्रभावित थे कि भास को ज्वलनमित्र नाम से ही अभिहित किया—अग्निमित्र की यशोराशि सर्वत्र भासमान है। "भासम्मि जलणमित्तेकन्ती देवे अ जस्स रहु आरे"।

आठवीं शती के काव्यालंकारसूत्र—(गउडवहो ८००) वृत्ति के रचयिता वामन ने स्वप्नवासवदत्तम् के पद्य को उद्‌धृत कर इनकी रचना की दिग्दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति को भासित किया—

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ॥ (स्व० ४।८ का० सू० ४।३।२५)

सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरी' कथा की भूमिका में भास को अभिनन्दित किया है।

अशरीर होते नाटकों के द्वारा भास आज भी स्थित हैं; क्योंकि मुख आदि के सुलक्षण से शरीर का स्पष्ट बोध होता है।

सुविभक्तमुखाद्यङ्कैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासश्शरीरैरिव नाटकैः ॥ (अ० सु० क० ११)

जयदेवजी भास की कृतियों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने कविता-कामिनी के हास के रूप में भास का निर्देश किया है—

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः । (प्र० रा० १।२२)

बौद्धाचार्य दिङ्‌नाग ने कुन्दमाला में दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख किया है। जब कि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में ऐसा प्रसङ्ग निर्दिष्ट नहीं किया है। अतः भास का प्रतिमानाटक सुख्यात नहीं, कवियों के लिए अनुकरणीय था।

इन प्रशस्तियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि भास अपनी रचनाओं से महाकवियों के मध्य विशिष्ट स्थान प्राप्त करता रहा है इसमें सन्देह का अवसर नहीं है। दो तीन महाकवियों की गणना में यह भी गण्य है, अतः, बहुमान-सम्पन्न ऐसे कवि का परिचय एवं काव्यकला स्वभावतः जिज्ञास्य है। उसी जिज्ञासा के उपशमन की दृष्टि से कुछ लिखने की बाध्यता का अनुभव कर रहा हूँ।

भास का आविर्भाव

भारतीय मनीषी महाकवियों ने देशकाल के परिच्छेद से मुक्त अखण्ड भारतीय दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए अपने को काल, कुल की सूचना से विमुक्त

रखा है। भारती भाषा भारतीय होने से भारतवासी होने की सूचना के लिए पर्याप्त है, अतः इससे अधिक लिखना किसी सम्प्रदाय एवं किसी प्रान्त से आबद्ध करना है, जो इन मनीषियों को अभीष्ट नहीं था।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने भास का समय ९०० वर्षों में दोलायमान रखा है।

१—मिड़े, दीक्षित, गणपतिशास्त्री, हरप्रसादशास्त्री, लुपेरकर, किरत और टटके ने ई० पूर्व छठी से चतुर्थ शताब्दी के मध्य में माना है।

२—जागीदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधरी, ध्रुव और जायसवाल ने ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में माना है।

३—कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौली और वेलर ने द्वितीय शताब्दी में माना है।

४—बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली और कीथ ने भास का समय ईसा की तृतीय शताब्दी में माना है।

५—लेस्ली और विण्टरनित्ज ने ईसा की चतुर्थ शताब्दी इनका समय माना है।

६—शङ्कर ने ईसा का पञ्चम एवं षष्ठ शतक माना है। इनके अतिरिक्त आचार्यों ने भी इनके समय के लिए अपना मन्तव्य व्यक्त किया है, किन्तु कालिदास आदि ने भास का नाम निर्दिष्ट किया है, अतः चतुर्थ शताब्दी से आगे इनको ले जाना सम्भव नहीं है।

डा० पुसालकर ने भास के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका समय ईसा से पूर्व चतुर्थ एवं पञ्चम शतक माना है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक और स्वप्नवासवदत्तम में प्राचीन राज्यों का उल्लेख मिलता है, वे राज्य चतुर्थ शतक में वर्तमान थे।

> अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः।
> एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा॥
>
> (प्रति० यौ० २।८)

स्वप्नवासवदत्तम् में उज्जैन के राजा प्रद्योत, कोशाम्बी के राजा उदयन और मगध के राजा दर्शक का उल्लेख मिलता है। ईसा से पूर्व छठी शती तक ही इनका राजत्व समाप्त हो चुका था। भास ने दर्शक की राजधानी राजगृह कही है, किन्तु अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी, अतः मौर्यकाल से पूर्व इनका समय मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर डॉ० पुसालकर ने भास का समय महापद्मनन्द का राजत्व बताया है। इसके शासन काल में समस्त उत्तर भारत इसके अधीन था। भास की निर्दिष्ट राज्य-सीमा महापद्मनन्द के राज्य से साम्य रखती है।

ए० एस० पी० अय्यर ने भी इसका समर्थन किया है। अय्यर का अनुमान भास को कौटिल्य का सामयिक बताता है; क्योंकि, कौटिल्य अर्थशास्त्र के १० वें अधिकरण के तृतीय अध्याय में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अधोलिखित पद्य का उद्धरण दिया है -

नवं शरावं सलिलैः सपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत॥

(प्रति ४।२)

प्रतियौगन्धरायण के तृतीय अङ्क में ही "चन्दं गिलदिलाहू। मुंच मुंच चन्दं। यदिण मुंचेशि, मुहं दे पाडिअ मुंचावइस्सं एशे एशे दुट्ठअश्शे परिब्भट्ठे आ अच्छेदि" इस गद्य में चन्दशब्द चन्द्रगुप्त मौर्य का और राहु राक्षस का प्रतीक है। इस प्रतीक के आधार पर भास को ई० पू० चतुर्थ शती का माना है।

भास के नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह पद आया है और मौर्य राजा राजसिंह कहे जाते थे। अशोक ने सारनाथ के स्तम्भ में तीन सिंहों को प्रतीक रूप में अङ्कित किया है। तीन सिंहों का प्रतिनिधित्व चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक करते हैं। इन तीनों मौर्यवंशी राजाओं के प्रताप की सूचना सिंहों से होती है। अय्यर की दृष्टि में चन्द्रगुप्त ही राजसिंह है। चाणक्य की प्रतिज्ञा के समान यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा होने से ये दोनों समसामयिक हैं। जीवसिद्धि के साहाय्य से चाणक्य ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया; यौगन्ध-

रायण ने श्रमणक के सहयोग से उज्जयिनीनरेश प्रद्योत को अधीनस्थ किया। चन्द्रगुप्त का विवाह नन्दवंश की कुमारी दुर्धर से किया है, यह विवाह पद्मावती की ओर संकेत करता है। नीलगिरि हाथी की प्रतीकात्मकता पौरुष के प्रसिद्ध हाथी की समकक्षता को उपस्थित करता है। भारत में शत्रु की सेना के शान्त होने की चर्चा सेल्युकश की सेना के दमन करने की ओर निर्देश करती है। इस प्रकार भास के साथ कौटिल्य के सिद्धान्तों का समन्वय होने से ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी इनका समय अय्यर ने माना है।

अय्यर ने अपने भास के उक्त काल के समर्थन में यह भी कहा है कि हिमालय से विन्ध्यपर्वत पर्यन्त और आसमुद्र पृथ्वी पर चन्द्रगुप्त का राज्य था, इसी को राजसिंह कहा गया है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'महाकवि भास' में अय्यर के इन सिद्धान्तों की अवतारणा कर भास और चाणक्य के द्वारा प्रस्तुत चित्रण के आधार पर भास को चाणक्य से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है।

इसी प्रकार पुसालकर ने राजसिंह को नन्दवंश के लिए प्रयुक्त माना। स्टेन-कोनो ने राजसिंह को क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम से समन्वय किया है। ध्रुव ने, शुंग-वंशीय पुष्यमित्र से समन्वय किया, जायसवाल ने कण्वनारायण और भिडे ने इसको उदायी माना है।

नाटक के भरत-वाक्य के आधार पर विन्ध्य और हिमाचल से संवेष्टित समस्त उत्तरी भारत किसी एक राजा के अधीन था। यह स्थिति पूर्व चतुर्थ शताब्दी की है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य प्रथम सम्राट के समय की है। अतः, हरप्रसाद शास्त्री ने राज-सिंह के रूप में नन्दवंश के किसी राजा से की है, अतः भास का ई० पू० चतुर्थ शताब्दी होना चाहिए[1]।

सामाजिक और राजनीतिक विभिन्न स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ० शास्त्री ने भास को ४–३ ईसा पूर्व माना है।

---

१. महाकवि भास पृ० ३१।

2. A. C. Pushalkar. Bhasa–A study. P. 70–79।

डा० विण्टरनित्स ने कालिदास की भाषा और शैली के सान्निध्य के कारण अश्वघोष का समय ईस्वी की द्वितीय शती और भास को तृतीय शती का माना है।

डा० कीथ ने कालिदास के उल्लेख के आधार पर भास को अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती माना है। कालिदास को चतुर्थ शतक का मानने पर भास को ३५० वर्ष से पूर्व मानना पड़ेगा।

स्टेनकोनो ने विन्टरनित्स के विरुद्ध भास को ईसा की द्वितीय शती का माना है।

डॉ० दासगुप्त ने गणपतिशास्त्री एवं अन्य विदेशीय मनीषियों के विचार की आलोचना करते हुए भाषा और शैली के आधार पर अश्वघोष तथा कालिदास का मध्यवर्ती ही माना है[1]। क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने के कारण श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में ये अधिक सफल रहे हैं। स्टेनकोनों ने क्षत्रपों का समय ईसा का द्वितीय शतक है, अतः, इसी समय नाटककार भास की स्थिति होनी चाहिए, प्रथम रुद्रसिंह के समय में ही भास का जन्म माना है।

डॉ० ए० पी० बनर्जी ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० के मध्य में माना है, अर्थात् दूसरी शती के बाद और तीसरी शती से पूर्व इनका समय माना है, क्योंकि, ये ब्राह्मण धर्म और विष्णु के उपासक थे।[3]

प्रदर्शित युक्तियों के आधार पर भास का समय कालिदास से पूर्व निर्विवाद सिद्ध है। अनेक मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भास का समय ईसा पूर्व ३२७ के लगभग माना है। इसकी पुष्टि वर्णित

---

1. S. N. Dasa Gupta, History of Sanskrit Literature p. 172।

2. Stenkonow:—Indian Drama p. 5।

३. दि जर्नल ऑफ दि विहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी भाग—१ मार्च १९२३।

समाज-व्यवस्था के आधार पर भी होती है। अर्थात् ई० पू० चतुर्थ शती में अधिक आग्रह है[1]।

डॉ० सूर्यकान्त ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० माना है।

डॉ० कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग ने ई० पू० ५०० इनका जन्म-काल माना है। यह सत्य है कि भास के समय तक पाणिनि का वर्चस्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की भी चर्चा नहीं है, महेश्वर प्रणीत योगशास्त्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु, पातञ्जल योगशास्त्र की अवगति इनको नहीं थी। मानवीय धर्मशास्त्र सम्भवतः गौतम लिखित मानव धर्मशास्त्र का वोधक हो सकता है। प्रतिमानाटक की पंक्ति में इन शास्त्रों की चर्चा उपलब्ध है। "भोः काश्यप-गोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यमर्थ-शास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।"

इन प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर भास को ईसा पूर्व तृतीय शतक से चतुर्थ शतक में मानना अनुचित नहीं है।

टी० कृष्णमाचारी ने अपना विशेष निर्णय प्रस्तुत किये बिना ही गणपतिशास्त्री का मत प्रदर्शन करते हुए उपसंहार किया है।

भास का जीवनवृत्त

प्राचीन कवियों के समान ही भास ने अपने नाटकों में अपने नाम तक की चर्चा नहीं की है। किवदन्तियों के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, किन्तु, वे किवदन्तियाँ सर्वथा निराधार-सी प्रतीत होती हैं। धावक के नाम से भास की प्रसिद्धि मानी गयी है, किन्तु, श्रीहर्ष और भास के समय में इतना अन्तराल है कि इनको समकालीन माना ही नहीं जा सकता है।

एक परम्परा के अनुसार व्यास और भास की प्रतिष्ठा के लिए मतभेद की चर्चा की गयी है। दोनों अपने को विशिष्ट प्रतिभाशाली मानते थे। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में अर्पित किया गया, किन्तु भास का

---

१. महाकवि भास पृ० ४२।

स्वप्नवासवदत्तम् अग्नि में दग्ध नहीं हो सका और अन्य नाटक अग्नि में दग्ध हो गये। इसकी पुष्टि राजशेखर की इस उक्ति से मानी जाती है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

इस उक्ति से यह तो सर्वथा सुनिश्चित है कि 'स्वप्नवासदत्तम्' एक श्रेष्ठ नाटक है, जो आज भी मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। डॉ० राजा ने अपने लेख के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है[1]।

प्रस्तुत श्लोक की भिन्न व्याख्या भी डॉ० राजा ने प्रस्तुत की है। उनके कथन का सारांश है कि भास के नाटकों में दैहिक दृश्यों का बाहुल्य है, अतः उन दृश्यों के दहन के साथ वे सब भस्मावशेष रह गये, किन्तु, 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जल सका। इस व्याजस्तुति के द्वारा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के सम्मुख सौमिल्ल आदि के नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से स्थिर न रह सके। स्वप्नवासवदत्त काव्यकला-कसौटी पर खरा उतरता है। यह एक ऐसा नाटक है जहाँ जीवनाधायक तत्त्व समुपलब्ध है। भारतीय नारी और आमात्य की कर्तव्य-संवेदनशीलता सुलभ है।

भास-व्यास-कलह में भी अनेक कृतियों के लेखक एवं वैदुष्य तथा कवित्व शक्ति का वैभवतादात्म्य प्रदर्शित कर दृश्य काव्य की रचना के द्वारा भास का वर्चस्व व्यक्त किया गया है।

प्रो० ध्रुव ने गोत्र के आधार पर प्रसिद्धि मानकर अगस्त्य गोत्र के हेमोदक शाखा के 'भाष' गोत्र में महाकवि का जन्म होने से उसी के अपभ्रंश के रूप में

---

1. It is interesting to see how Dr. Raja Comes to the meaning. Bhasa's dramas contained Conflagrati on Scenes. These fires burnt all other dramas. But Svapna alone remained safe. So according to this interpretation the Svapna was a rival to Bhasa's works.

Journal of oriental Research, Madras, I, P. 227.

भास है। ये ब्राह्मण जाति के तथा प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे। कर्णभार के प्रथम के २२-२३ पद्यों के द्वारा यज्ञानुष्ठान, गो, ब्राह्मण का महत्व प्रदर्शित हो रहा है, अतः इनको ब्राह्मण मानना समीचीन प्रतीत होता है।

भास पिता, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव, सद्गृहस्थ की मर्यादा से पूर्ण परिचित ही नहीं वैदिक संस्कृति के प्रति इनकी अपार श्रद्धा भी थी। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों का समन्वय इनके जीवन में था, इसीलिए—

"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः" (स्व० १।४) भाग्यपंक्ति पहिए के आर की भाँति निम्नोन्नत होती रहती है।

"सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥"

(प्र० यो० १।१२)

भास का जन्म स्थान

काल और वंश के समान ही इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कवि के भौगोलिक एवं स्थान-विशेष के प्राकृतिक चित्रण के परिप्रेक्ष्य में उसके लिए किसी स्थान-विशेष का निर्णय करना भ्रान्ति-विजृम्भित ही मानना होगा; क्योंकि, क्रान्तद्रष्टा अपनी प्रतिभा के प्रबोध में सम्पूर्ण विश्व का साक्षात्कार करता है। असत्त्व के आपादक आवरण को कवि अपनी शब्दधारा से हटाकर निरावृत विश्व का ज्ञान रखता है। अभानापादक आवरण की निवृत्ति के लिए रसादि की आवश्यकता रहती है। अतः नाटक में वर्णित उज्जयिनी, मगध और बदरीनाथ इन स्थानों में से किसी एक को उन्होंने अपने जन्म से अलङ्कृत किया है—यह इसके लिए कोई बहुत बड़ा आधार नहीं है। कृष्णचरित्र, रामचरित्र और उदयनचरित्र का वर्णन अयोध्या, मथुरा, मगध, उज्जयिनी को छोड़कर कैसे सम्भव है?

किन्तु उपक्रम और उपसंहार वाक्य के आधार पर उसका स्थान-विशेष के प्रति आग्रह अभिव्यक्त होता है।

मेरे राजसिंह महाराज उदयन समुद्र तक विस्तृत हिमाचल और विन्ध्या-

चल रूपी दो कर्णकुण्डलों से युक्त एक श्वेतपत्र से चिह्नित सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करें[1]।

आरम्भ में वलराम का स्मरण एवं द्वितीय पद के द्वारा मगधराज का स्मरण इन तीनों स्थानों पर केन्द्रित होने को वाध्यता उपस्थित करता है। पुनः मगध के अनेक स्थानों का तपोवन एवं प्रशस्ति की दृष्टि से अभ्यास मगध के प्रति कुछ सोचने को वाध्य करता है। साथ ही आगत आपत्तियों के उद्धार में एकमात्र सहायक मगध का महत्व प्रतिक्षण वर्द्धमान है। प्रथम अङ्क की समाप्ति में वासवदत्ता का कञ्चुकी के साथ गमन के समय उसी मगध का वर्णन सुलभ है।

द्वितीय अङ्क में भी मगध की पद्मावती का ही वर्णन है। आश्चर्य की वात है 'स्वप्नवासवदत्तम्' की रचना और आरम्भ में उसमें पद्मावती का चरित्र परिव्याप्त है। वासवदत्ता के विवाह की चर्चा भी कवि मञ्च पर प्रदर्शित नहीं करता है। वासवदत्ता के चरित्र में यदि पद्मावती का हस्तावलम्बन एवं न्यास परिरक्षण तथा कर्तव्य-परायणता परिव्याप्त न हो तो 'स्वप्नवासवदत्तम्' का स्वरूप ही नहीं रहेगा। अतः कवि का मगध एवं मागध के प्रति पक्षपात सुस्पष्ट है। मगध के प्रति कवि को इतना अधिक आदर है कि वह वासवदत्ता से उत्तराकुरु की अनुभूति मगध से करा देता है। विवाह के कारण विजयप्राप्ति मगध की राजनीति का संकेत देता है। नक्षत्र, मुहूर्त आदि का भास के नाटकों में महत्व प्रदर्शित किया गया है। यह प्राचीन परम्परा होती हुई मगध से सम्बद्ध है। मगध का वर्चस्व एवं अतिशय आदर भावना इनको मागध होने का संकेत देती है।

उज्जयिनी—ईसा से पूर्व उज्जयिनी की प्रसिद्धि हो चुकी थी। मौर्यकाल में यह समृद्ध नगरी थी। महासेन प्रद्योत वहाँ का राजा बुद्ध के समय वहाँ वर्तमान था। उज्जयिनी के प्रति ममता का आधिक्य एव वहाँ साधारण स्थानों की अवगति उनको वहाँ का होना सिद्ध करती है, किन्तु, यह सत्य है कि मगध की कृपा के विना उज्जयिनी का वर्चस्व सुरक्षित नहीं रह सका और पद्मावती

---

१. स्वप्न वा० ६।१९।

के साथ विवाह कर उदयन एवं उज्जयिनी की रक्षा सम्भव हो सकी। अतः अनेक तर्कों के आधार पर इनको मागध ही माना जा सकता है। किन्तु, निश्चित रूप में भारतीय से अधिक कहना कठिन है।

भास के नाटक

भास के तेरह नाटक प्रसिद्ध हैं। डॉ० पुसालकर ने शैली, संवाद आदि के आधार पर कृतियों का अधोलिखित क्रम प्रस्तुत किया है।

१. दूतवाक्य । २. कर्णभार, ३. दूतघटोत्कच, ४. उरुभङ्ग, ५. मध्यमव्यायोग, ६. पञ्चरात्र, ७. अभिषेक, ८ बालचरित, ९. अविमारक, १०. प्रतिमा, ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२. स्वप्नवासवदत्तम् और १३. चारुदत्त ।

विषय, शैली एवं निरूपण-पद्धति आदि के आधार पर भास की रचनाओं का अय्यर ने इस प्रकार क्रम निर्धारण किया है—

१. दूतघटोत्कच, २. कर्णभार, ३. मध्यमव्यायोग, ४. उरुभङ्ग, ५. दूतवाक्य, ६. पञ्चरात्र, ७. बालचरित, ८.अभिषेक, ९.प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १०. अविमारक, ११. प्रतिमानाटक, १२. स्वप्नवासवदत्तम्, १३. चारुदत्त ।

दूतघटोत्कच—यह नाटक महाभारत की कथा पर आधारित है। कथानक को लेकर अपनी प्रतिभा-प्रसूत घटनाओं का मिश्रण कर रोचक रूप में उपस्थित किया है। हिडम्बापुत्र घटोत्कच कृष्ण का दूत बनकर कौरव-सभा में आता है। दौत्यप्रधान होने से इसका दूतघटोत्कच नाम दिया गया है। इसका कथानक कविकल्पना-प्रसूत है। घटोत्कच का कृष्णदूतरूप में आना महाभारत में उपलब्ध नहीं है। इसकी प्रधानता के आधार पर इसका यह नाम दिया गया है।

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद दूत घटोत्कच धृतराष्ट्र के सम्मुख उपस्थित होता है और युद्ध का भयंकर फल सूचित करता है, दुर्योधन व्यङ्ग्य करता है, घटोत्कच भी वैसा ही उत्तर देता है। दोनों अशान्त हो जाते हैं, घटोत्कच युद्ध के लिए ललकारता है। धृतराष्ट्र किसी प्रकार शान्त करते हैं। अभिमन्यु का बदला अर्जुन लेगा इस सूचना के साथ घटोत्कच चला जाता है।

कर्णभार—महाभारत के आधार पर इस रूपक की रचना हुई है।

महाभारत की कथा के अनुसार कर्ण का यह नियम था कि वह मध्याह्न में जल के मध्य खड़ा होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर ब्राह्मणों को दान देता था। इस अवसर पर उसके लिए अदेय कुछ भी नहीं था। इन्द्र ने इसी अवसर पर ब्राह्मण रूप में उपस्थित होकर भिक्षा के रूप में कवच की याचना की।

कविवर भास ने इस कथा को अपनी कल्पना से रूपक के अनुरूप सङ्कलित किया है। वह जल में उपस्थित नहीं वरन् रथ पर आरूढ़ अर्जुन के साथ युद्ध के लिए तत्पर हो अर्जुन के सम्मुख रथ ले जाने के लिए आदेश देता है। शल्य और परस्पर वार्तालाप के प्रसङ्ग में कर्ण अपने शाप के विषय की सूचना देता है। शल्य को दुःखी देखकर कर्ण युद्ध के गुणों का वर्णन करता है और यह कहता है कि युद्ध में मरने पर स्वर्ग और विजयी होने पर यश और राज्य की प्राप्ति होती है।

महाभारत की कथा में कर्ण स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है, किन्तु भास का कर्ण उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित है, अतः, वह स्वयं प्रतिदान की इच्छा व्यक्त नहीं करता है, देवदूत ब्राह्मण के वचन के पालन के लिए शक्ति को ग्रहण करने के लिए कहता है और कर्ण इस अनुरोध को ठुकरा नहीं पाता है। आश्चर्य की घटना है कि विप्रवेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है।

डा० भट्ट के अनुसार महाकवि भास ने कर्ण की कथा में नवीन कल्पना प्रसूत विषयों का सन्निवेश कर कर्ण का स्वरूप प्रदर्शित किया है। इसका अङ्गीकृत रस करुण है।

मध्यमव्यायोग—इस नाटक की रचना कुन्ती के मध्यम पुत्र भीम को आधृत कर एकांकी रूपक में की गयी है। इस कथावस्तु का मूल स्रोत प्रथम अध्याय के १५१-१५५ सर्ग में है। महाकवि भास ने महाभारत की कथा को विशिष्ट प्रभावपूर्ण शैली में निबद्ध कर अतिशय मनोहर बना दिया है। घटोत्कच का अपने अज्ञात पिता से युद्ध और हिडिम्बा सम्मिलन कवि कल्पना-प्रसूत है। भीम और घटोत्कच के चरित्र का व्यक्त करते हुए ब्राह्मण परिवार को माध्यम चुना तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रभाव से मध्यम को समर्पित करने

की दृष्टि प्राप्ति की। घटना-प्रधान इस नाटक में कवि की प्रतिभा कथावस्तु के संयोजन से रस-प्रवाह में सक्षम है।

भास ने घटोत्कच और हिडिम्बा में मानव-स्वभाव का समावेश किया है। इस नाटक के पढ़ने से भीम से मिलन के लिए यह षड्यन्त्र किया है। महाभारत में इतस्ततः विकीर्ण कथाओं को एक माला का रूप ही नहीं दिया वरन् अति हृदयावर्जक रूप दिया है। ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को लेकर घटोत्कच माता हिडिम्बा के पास जा रहा है, पानी पीने गये हुए मध्यम को वह बुलाता है और मध्यम पुत्र भीम उपस्थित होता है और युद्ध के बाद हिडिम्बा के सम्मुख जाते ही वह पहिचान लेती है। भीम की उदारता आत्म-समर्पण की भावना के प्रदर्शक में कवि ने अपनी कुशल काव्य-प्रतिभा का अपूर्व सन्निवेश किया है। जिससे द्रष्टा सर्वथा एकतानहृदय से आनन्द की अनुभूति करता है जो कुशल शिल्पी ने ही प्रस्तर को काँट-छाँट कर अपूर्व लावण्य की अभिव्यक्ति की है।

उरुभङ्ग—नाटक की कथा का मूल आधार महाभारत है। भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध का वर्णन मिलता है। भीम दुर्योधन की गदा के प्रहार से मूर्च्छित हो जाता है किन्तु, सहसा उठकर भीम उस पर आक्रमण करता है, वह बचने के लिए उछलता है, अवसर पाकर जङ्घा पर प्रहार कर उसे तोड़ डालता है। भूमि पर गिरते ही लात का प्रहार कर भीम उसका अपमान करता है। कतिपय परिवर्तन के साथ इस कथा को एक अङ्क के प्रशस्त रूप में बड़ी कुशलता के साथ वस्तु-योजना कर निबद्ध करते हैं। दुर्योधन के उरुभङ्ग कथानक पर ही यह केन्द्रित है।

इस प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण स्वयं उपस्थित हैं और दुर्योधन की जांघ को तोड़ने का संकेत प्राप्त कर भीम के प्रहार से वह गिर जाता है। व्यास और विदुर के साथ बलराम भी दर्शकों में उपस्थित हैं। धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन की पत्नियाँ भी वहाँ उपस्थित हैं। हस्तिनापुर की यह घटना है, युद्ध-भूमि की नहीं।

दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रति क्रुद्ध नहीं है, वह अपने कृत्य के लिए दुःखी और

बलराम के क्रोध करने पर वह कहता है—मेरी उपस्थिति में मेरी उपेक्षा कर भीम ने मर्यादा के विरुद्ध दुर्योधन की जाँघ पर गदा का प्रहार कर उसे गिरा दिया है, मैं इस अनीति को सहन नहीं करूँगा, भीम का वक्षस्थल विदीर्ण कर इसे इसका फल दूँगा। इस प्रसङ्ग में दुर्योधन कहता है—भगवन्! भीम ने युद्ध-मर्यादा का ध्यान न देकर जंघा पर गदा का प्रहार कर गिरा दिया है। मेरा शरीर अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है। आप प्रसन्न हों, भूमि पर पतित मेरे इस मस्तक का प्रणाम स्वीकार करें, क्रोध शमन कर कुरुकुल में जलाञ्जलि के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दें। वैर की अब आवश्यकता नहीं है। हम लोग अब समाप्त हो चुकें।

बलराम ने कहा – तुम क्षणभर के लिए जीवन धारण करो, मैं पाण्डवों का संहार कर तुम्हारी स्वर्ग-यात्रा में सहायक बन सकूँ।

गुरुदेव! भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी, मेरे सभी भाई मारे गये, मैं अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में हूँ, अब युद्ध से क्या लाभ है। बलराम ने कहा कि मेरे सम्मुख भीम ने छल से तुम्हें मारा इसका मुझे दुःख है। यदि आपको यह विश्वास है कि मैं छल से मारा गया हूँ तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। मुझे तो क्षीरसागरशायी, पारिजात-हरणकर्ता लोकप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट काल का ग्रास बनाया है।

धृतराष्ट्र और गान्धारी का आगमन होता है, प्रलाप के साथ दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन वीरोचित सान्त्वना देता हुआ, पत्नियों को अपना महत्त्व ख्यापन करता हुआ साहस प्रदान करता है। पुत्र दुर्जय को उपदेश देते हुए कहता है—प्रशंसितश्री अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता है यह सोचकर तुम दुःख त्याग करो। अश्वत्थामा का आगमन होता है और उसकी उत्तेजना-पूर्ण बातों को सुनकर वह उनको विनय-पूर्वक समझाता है। अश्वत्थामा यह कहता है कि आज रात्रि में रण रचना कर पाण्डवों को समाप्त कर दूँगा। महाप्रयाण की यात्रा का आरम्भ एवं विचलित मुनिजन तपोवन में धृतराष्ट्र का प्रस्थान होता है।

दूतवाक्य—इसकी कथा महाभारत से ली गयी है। उत्तरा और अभिमन्यु का परिणय हो चुका है। पाण्डवों का प्राप्तव्य दिलाने के लिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से दौत्य कार्य सम्पन्न किया है। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन पर राजसी स्वागत की तैयारी की, किन्तु कृष्ण कुन्ती के पास गये, दुर्योधन से मिले, उसके द्वारा प्रीति-भोज को अस्वीकार कर विदुर के घर रात्रि व्यतीत की। विदुर के साथ राजसभा में उपस्थित हुए। दाय-भाग देने का प्रस्ताव किया, किन्तु, दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया। गान्धारी ने भी बात मानने के लिए कहा, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा को धृतराष्ट्र ने रोका।

महाभारत की कथा को अपनी प्रतिभा से मिश्रित कर उपस्थित किया है। धृतराष्ट्र के स्थान पर दुर्योधन राजा है, कृष्ण को बन्दी बनाने के लिए सक्रिय चेष्टा उपलब्ध है। माता गान्धारी की बात की उपेक्षा कर सभा का परित्याग कर देता है। रंगमंच पर शरीरधारी शस्त्रों की अवतारणा महाकवि की प्रातिभ उद्भावना है। इस नाटक का कथोपकथन सरस और ग्राह्य है। सात्यकी के द्वारा अपने बन्दी बनाने की बात ज्ञातकर अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं। जिसको देखकर दुर्योधन मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रसङ्ग में नाटकीय स्वरूप अपूर्व है। भास राजसिंह के एकछत्र राज्य की कामना इसके भरत-वाक्य से करता है। इसमें पुरुष-पात्र का बाहुल्य है। यह रूपक के भेद व्यायोग के अन्तर्गत है। श्रीगणपतिशास्त्री ने इसका प्रधान रस धर्मवीर माना है और श्रीकृष्ण को नायक माना है। फलप्राप्ति दुर्योधन को होने से इस रूपक का नायक दुर्योधन को माना है तथा वीर रस माना गया है।

पञ्चरात्र—पञ्चानां रात्रीणां समाहारः, अथवा पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेनास्य—इस विग्रह के अनुसार पांच रात की घटनाओं के वर्णन से प्रस्तुत यह नाटक है। कुरुराज दुर्योधन एक वृहत् यज्ञ का आयोजन करता है। यज्ञ की समाप्ति पर आचार्य द्रोण से दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है। द्रोण पाण्डवों के लिए आधे राज्य को देना ही अपनी दक्षिणा के रूप में मानता है। अस्वीकृति की मुद्रा से द्रोण क्रुद्ध हो जाते हैं। शकुनि के विचार से पांच

रात्रि के अन्दर पाण्डवों का पता लगने पर राज्य का अर्ध देने की स्वीकृति देता है। यह रूपक तीन अङ्क का है।

इस रूपक की कथा महाभारत विराट पर्व से ली गयी है। कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान होने पर भीम ने कीचक का वध किया था। कौरवों ने रुष्ट होकर विराट पर आक्रमण किया और उसके गोधन को हरण किया।

महाकवि ने इसी कथा को नाटकीय शैली के द्वारा रोचक एवं परिपुष्ट कर प्रस्तुत किया है। सुई के अग्रभाग को भी न देने वाला नाटककार का दुर्योधन गुरु की आज्ञा से आधा राज्य देने को तत्पर है।

इस नाटक में महाकवि ने अपनी प्रतिभा के आधार पर निम्नलिखित परिवर्तन के द्वारा इसकी प्रेषणीयता में मणिकाञ्चन-संयोग प्रस्तुत कर दिया है—

(१) महाभारत में दुर्योधन के यज्ञ की चर्चा नहीं है, महाकवि की यज्ञ की कथा ने अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

(२) यज्ञ का प्रधान आचार्य द्रोण को बनाया है तथा यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन द्रोणाचार्य को दक्षिणा के लिए आग्रह करता है और आचार्य पाण्डवों को अर्द्धराज्य दिलाने के रूप में आग्रह-पूर्वक दक्षिणा स्वीकार करते हैं। आचार्य अपने आचार्यत्व का इस दिशा में प्रयोग करते है। इस प्रयोग ने नाटक में एक अपूर्व समन्वय प्रदर्शित किया है।

(३) शकुनि द्रोणाचार्य की दक्षिणा को प्रवञ्चना कहता है। उसका विरोध करता है, अन्त में पांच दिनों में पाण्डवों की प्राप्ति के साथ राज्य का अर्द्धभाग देने की स्वीकृति देता है।

(४) अभिमन्यु विराटनगर में अत्यधिक पराक्रम प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इस रूपक में अतिशय मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कवि ने कथावस्तु को अपूर्व सरसता से मनोग्राह्य कर दिया है।

बालचरित्र—इस रूपक में भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का

समायोजन किया गया है—इसीलिए इसका नाम बालचरित रखा गया है। इस रूपक में शृंगार की घटनाओं का सर्वथा अभाव है। 'शृङ्गार के बिना बाल-लीला' यह भास की प्रतिभा से ही संयोजित हुआ है। राधा का भी प्रवेश इसमें नहीं हुआ है। यह रूपक पाँच अङ्कों में सम्पन्न होता है।

इस नाटक की कथा मूल स्रोत श्रीमद्भागवत एवं महाभारत के हरिवंश एवं पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण-कथा है। कथावस्तु को नाटकीय स्वरूप प्रदान करके अपनी काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिक उद्भावना के साथ अतिशय रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। भास ने गोप की पुत्री को मृत दिखाकर एक अपूर्व वैशिष्ट्य समाहित किया है। मृतपुत्री को परित्याग करने वाला पुत्री के स्थान पर दैवगति से पुत्र को प्राप्त कर ले, इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी। श्वासगति के अवरोध से मृत घोषित की गई यदि श्वाससञ्चार से पुनः जीवित हो गयी तो योगमाया के लिए क्या आश्चर्य है। वासुदेव और नन्दबाबा की वार्ता भी नाटक में एक विशिष्ट स्थान रखती है। नाटककार की दृष्टि में कृष्ण सातवाँ पुत्र हैं, आठवाँ नहीं। नाटक की दृष्टि से कथा में क्रम-भेद भी किया गया है, श्रीकृष्ण का नन्द को समर्पण के समय रात्रि का पर्यवासन है। मथुरा में आगमन के समय सभी निद्रानिमग्न है। गोपकुमारियों को श्रीकृष्ण के पराक्रम के विश्लेषण के प्रसंग में अपनी कल्पना को अतिशय चमत्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ रूपक एक अनूठा और अतिशय चमत्कृतिसम्पन्न है।

अभिषेक—इस रूपक में सुग्रीव और अभिषेक का वर्णन किया गया है, अतः, इसका नाम अभिषेक किया गया है। रामायण की कथा कतिपय प्रातिभ परिवर्तनों के साथ लोक के सम्मुख राम के उदात्त चरित्र की अवतारणा की गयी है।

इसकी कथा का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर लङ्काकाण्ड के उत्तरार्द्ध की कथा है। कथा बहुचर्चित एवं सकलजन-विदित है। रामायण की मूल कथा में परिवर्तन भी किया गया है। सुग्रीव और बालि का द्वन्द्व युद्ध एक ही बार प्रदर्शित किया गया है। प्रचलित कथा के अनुसार नल

नील के द्वारा समुद्र वन्धन हुआ है किन्तु महाकवि ने भयभीत वरुण देव के द्वारा समुद्र के जल को सुखाकर बीच से मार्ग दिया है। भास के अनुसार जटायु से समाचार जानकर हनुमान ने समुद्र पार किया था, राम से सुग्रीव के मिलने से पूर्व भेंट नहीं होती है। तारा उसे मरते हुए नहीं देखती है। इस नाटक में छ अङ्क हैं। सीताहरण के वाद की कथा इसमें ली गई है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का पूरक है अतः इसका विशिष्ट परिचय प्रदान करना उचित प्रतीत होता है। यह एक सफल रूपक है। इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसकी शैली हृदयाकर्षक है। कथा के विन्यास में किसी प्रकार का गतिभङ्ग नहीं है। मुख्य भागों का सन्निवेश अतिशय लावण्याधान से अंकित किया गया है। मनोवैज्ञानिक ढङ्ग पर कर्तव्य की कसौटी पर विशुद्ध चरित्र इसमें दिये गये हैं, जिनका आद्यन्त निर्वाह करने में महाकवि सर्वथा सफल है। आत्मविश्वास का सम्वल नीति के प्रसार में आरोह अवरोह क्रम से सन्निविष्ट है। इस नाटक का नाम इसकी विशेष घटनाओं के के आधार पर दिया गया है। प्रद्योत ने वत्सराज को वन्दी वना लिया है, इसकी अवगति होते ही अमात्य यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है—यदि वत्सराज को मैं नहीं छुड़ा लेता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इस प्रतिज्ञा के सफल होने से पूर्व ही नवीन घटना प्रस्तुत होती है—उदयन वन्दीगृह से वासवदत्ता को लेकर ही भागना चाहता है। इस वृत्तान्त को जानकर पुनः प्रतिज्ञा करता है—जिस प्रकार अर्जुन सुभद्रा का हरण किया था, उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण नहीं कराया तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन प्रतिज्ञाओं से अतिरिक्त वह प्रतिज्ञा करता है कि घोषवती वीणा, भद्रवती हस्तिनी एवं वासवदत्ता का हरण नहीं करा देता तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण इसका नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण है।

रूपक की कथावस्तु का मूल गुणाढ्य की वृहत्कथा की, उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कथा है। कथा-सरित्सागर में रुमण्वान् और यौगन्धरायण मन्त्रियों के नाम हैं, जो यहाँ भी गृहीत हैं। राजा वासुकि द्वारा दी गई घोषवती वीणा के मधुर स्वरों से मदोन्मत्त हाथियों को अपने अधीन करता था। किसी उच्च

कुल की कन्या के साथ इसका विवाह सम्पन्न करना चाहता था। वासवदत्ता गुणसम्पन्न एवं उच्च कुल-प्रसूता कन्या थी। महासेन प्रद्योत विरोधी होने से उदयन से वासवदत्ता का विवाह सम्भव नहीं था। उदयन वनों में हाथियों को अधीन करने के लिए विचरण करता रहता था। प्रद्योत ने सोचा कि उदयन को पकड़ कर ले आने के बाद वासवदत्ता का शिक्षक बनाकर उसके साथ प्रेम हो जाने पर उसको अपना अधिकृत -जामाता बना लूँगा। एक नीलहस्ती के समान कृत्रिम हाथी का निर्माण कराकर योद्धाओं को उसमें छिपाकर विन्ध्याचल के अरण्य में रखवा दिया। नीलगिरिहस्ती की सूचना प्राप्त कर उसको पकड़ने के लिए जाता है और वह बन्दी बना लिया जाता है और वह संगीत शिक्षक के रूप में रहने को बाध्य होता है। दोनों का प्रेम प्रगतिशील होता है। यौगन्धरायण रुमण्वान् आदि मन्त्रियों पर राज्य-रक्षा का भार समर्पित कर वसन्तक के साथ वत्सराज को मुक्त कराने के लिए चल पड़ता है और उदयन को वासवदत्ता के साथ ले आता है।

महाकवि भास के नाटक में अनेक परिवर्तनों के साथ अतिशय रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया गया है। पूर्वप्रदर्शित प्रतिज्ञायें कवि के प्रातिभ कल्पना-प्रसूत हैं। उदयन के उदात्त चरित्र की रक्षा के लिए प्रद्योत की सेना के साथ उदयन युद्ध करता है। उदयन का घोड़ा एक पैर पर खड़ा हुआ थककर गिर जाता है और सैनिकों से बन्दी बना लिया जाता है। महाकवि की यह कल्पना नाटक की दृष्टि से अतिशय महत्त्वाधायक है। महाकवि की कल्पना के अनुसार हंसक उदयन के साथ जाता है और लौटकर बन्दी बनाने की सूचना देता है। कवि की कल्पना के अनुसार उदयन को शक्ति-शाली और सेना को शक्तिहीन सिद्ध किया है, यौगन्धरायण जादूगर के रूप में अपना वेश परिवर्तन नहीं करता है, अपितु द्वैपायन व्यास से प्रदत्त चमत्कारी वस्त्र के आधार पर वेश परिवर्तन होता है। नाटककार ने रुमण्वान् और वसन्तक को भी सहायक के रूप में भेजा है और उदयन के साथ वासवदत्ता के प्रेम को भी अभिव्यक्त किया है जिससे कथा में जीवन शक्ति का सञ्चार होता है।

यह एक सफल तथा उन्नत कोटि का नाटक है। इस नाटक की रचना में महाकवि की कवित्वशक्ति निखार पर व्यक्त होती है और महाकवि को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करती है। अब उनके शेष नाटकों का परिचय प्रदान कर स्वप्नवासव-दत्तम् का नाटकीय वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया जायगा।

अविमारक — सौवीर राजपुत्र अविमारक का चरित्र इस रूपक में वर्णित किया गया है। विष्णुसेन नाम होने पर अविरूपधारी असुर को मारने से यह अविमारक नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकरण रूपक में छ अङ्क हैं। इसकी कथा कवि कल्पना-प्रसूत है।

राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रेमलीला का वर्णन इसमें उपलब्ध है। अविमारक काशीराज की पत्नी सुदर्शना से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना ने इसे सौवीरराज की पत्नी अपनी वहन सुलोचना को दे दिया था। अतिशय क्रोधी भार्गव के शाप से चाण्डालत्व प्राप्त सौवीरराज अपने परिवार के साथ प्रच्छन्न रूप में कुन्तीभोज की नगरी में निवास करता था।

कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी उद्यान में घूमने गई थी। वहीं उन्मत्त हाथी से अविमारक ने इसकी रक्षा की थी, इस पराक्रम प्रदर्शन से कुरंगी और अविमारक में प्रेम हो जाता है। काशीराज का दूत कन्या माँगने आता है। सौवीरराज और काशीराज दोनों ही कुन्तिभोज के वहनोई थे, वह दुविधा में पड़ जाता है, काशीराज के दूत का वह प्रत्याख्यान नहीं करता है। कुरंगी और अविमारक की स्थिति परस्पर प्रेम के कारण दयनीय होती जा रही है। उसकी सखी नलिनिका धायी के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है और अविमारक को अन्तःपुर में आने का आमन्त्रण दे आई। अपने पराक्रम पर विश्वास करता हुआ उसने इसे स्वीकार कर लिया।

अविमारक अन्तःपुर में छिपकर प्रविष्ट होता है। कुरंगी सो रही है। अविमारक उसी के पास वैठा है, अविमारक उसका आलिङ्गन करता है, । चरित्र-पतन के भय से कांप जाती है, शान्त कर उसे शयनागार में ले जाता है।

इस प्रकार एक वर्ष प्रेमपूर्वक व्यतीत होता है, राजा सूचना से अविगत होता है। पकड़ाने के भय से वह निकल भागता है। वियोग से व्यथित वह आत्मघात के विषय में सोचता है। आत्महत्या के प्रसङ्ग में सस्त्रीक विद्याधर से भेंट होती है, सभी बातें ज्ञातकर एक अँगूठी देता है, जिसे बायें हाथ में धारण करने पर वह अदृश्य और दायें हाथ में धारण करने पर दृश्य हो सकता है। इस अँगूठी के बल पर पुनः प्रविष्ट होने का निश्चय किया।

वियोग-सन्तप्ता कुरंगी नलिनिका के साथ राजप्रासाद में बैठी है। अविमारक विदूषक के साथ वहाँ पहुँचता है, अविमारक अत्यधिक प्रसन्न है कुरंगी के दर्शन से। नलिनिका के जाने पर कुरंगी गले में फन्दा लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। मेघ-गर्जन से भयभीत कुरंगी का अविमारक आलिङ्गन करता है।

धात्री से ज्ञान होता है कि काशीराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरंगी से विवाह करने के लिए कुन्तीभोज के यहाँ आते हैं। सौवीर राज के उन्हीं के राज्य में निवास करने की सूचना भी प्राप्त होती है। सौवीर राज मिलता है, किन्तु उसका पुत्र नहीं मिलता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होते हैं और अन्तःपुर में कुरंगी के साथ गान्धर्व-विवाह पूर्वक निवास की सूचना देते हैं। कुन्तिभोज देवर्षि के निर्देशानुसार जयवर्मा के साथ कुरंगी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ विवाह से चिन्ता मुक्त होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से इसमें न्यूनता होने पर भी यह प्रकरण रोचक है।

प्रतिमा—इस नाटक की कथावस्तु इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण की घटना से ली गई है। दशरथ की प्रतिमा को देखने से ही उनकी मृत्यु का परिज्ञान हो जाता है। सभी घटनाएँ इसी पर आधृत हैं। राम के वनवास का बोध भी भरत को इसी घटना से होता है। इस नाटक में सात अङ्क हैं। राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने से आरम्भ कर चौदह वर्षों का वनवास व्यतीत करने के बाद अयोध्या में लौटने तक की घटना इसमें सन्निविष्ट है। राम के राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त होता है। इस नाटक की कथा रामायण

से गृहीत है। नाटकीयता और रस आदि की दृष्टि से इसमें परिवर्तन किया गया है।

कवि की प्रातिभ कल्पना

(१) वल्कल परिधान कवि की कल्पना है। राम के मधुर गार्हस्थ्य जीवन के परिपोष की दृष्टि से यह प्रसङ्ग चारुतर हो गया है।

(२) राज्याभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न अयोध्या में ही उपस्थित है।

(३) नाटक के द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दशरथ के सम्मुख उनके पूर्वजों की उपस्थिति प्रदर्शित की गई है।

(४) प्रतिमागृह की चर्चा कवि की कल्पना की देन है। भवभूति के उत्तर-रामचरित में चित्र-कल्पना पर इसका प्रभाव माना जा सकता है।

(५) मायामृग की कल्पना न कर नाटक की सजीवता की दृष्टि से काञ्चन-पार्श्व मृग की कल्पना की गई है और दशरथ के श्राद्ध के प्रसङ्ग में इस मृग के अन्वेषण के लिए राम को सीता से दूर हटाया गया है। रावण ने उपस्थित होकर अपने को श्राद्धकल्प चेतस् कहा है। श्राद्ध में सर्वोत्कृष्ट वस्तु की सूचना के प्रसङ्ग में काञ्चनपार्श्व मृग के द्वारा विहित श्राद्ध को सर्वोत्कृष्ट बताया है। रावण के सङ्केतानुसार मृग को पकड़ने के लिए जाना सीताहरण के लिए समीचीन अवसर की प्राप्ति है।

(६) सुमन्त्र का दण्डकारण्य-गमन और सीताहरण की सूचना—यह कवि की प्रातिभ कल्पना है। दुःखित भरत के द्वारा माता कैकेयी को उपालम्भ देने पर चौदह दिनों के बदले चौदह वर्ष का वनवास भ्रमवश कहा गया था। रावण के युद्ध में भरत की सेना की यात्रा भी कवि की कल्पना है। राम का राज्याभिषेक जन-स्थान में होता है। रावण-विजय के लिए सैन्य के साथ भरत भी वहीं उपस्थित होते हैं और रावण-विजय के समाचार से प्रसन्नता एवं कैकेयी की अनुमति से राम राज्य ग्रहण करने के लिए तैयार होते हैं और राज्याभिषेक होता है।

इस नाटक में करुण तथा वीर रस का सम्मिश्रण है, करुण की प्रधानता

है। दशरथ की प्रतिमा दर्शन से ही भरत मूर्च्छित होता है और राम के सम्मुख भरत के द्वारा अपने लिए निर्घृण शब्द का प्रयोग अतिशय चित्तद्रुति का सम्पादक है।

स्वप्नवासवदत्त की कथावस्तु

पुरुवंश में उत्पन्न उदयन वत्सदेश का राजा था। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। उदयन वीणा-वादन-कला में निपुण था। उसके पास घोषवती नाम की एक वीणा थी जिसकी सहायता से वह मदमत्त हाथियों को भी वश में कर लेता था। वत्सराज्य की सीमा से ही सटा हुआ अवन्तिराज्य था जहाँ का राजा प्रद्योत था। प्रद्योत अपने प्रकृष्ट सैन्यबल के कारण महासेन भी कहा जाता था। एक बार प्रद्योत के सचिव शालङ्कायन ने छलपूर्वक राजा उदयन को हर कर बन्दी बना लिया तथा उसे कारागार में डाल दिया। प्रद्योत की एक पुत्री थी जिसका नाम वासवदत्ता था। वासवदत्ता परमसुन्दरी, सुशील और गुणवती थी। उदयन के कला-कौशल से प्रभावित राजा प्रद्योत चाहता था कि उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो जाय। इसी अभिप्राय से उदयन को वासवदत्ता के वीणा-शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। वीणा-शिक्षण क्रम में ही वासवदत्ता एवं उदयन एक दूसरे के प्रति आसक्त हो गये। उदयन अवसर पाकर अपने चतुर मंत्री यौगन्धरायण के सहयोग से वासवदत्ता को अपहृत कर कौशाम्बी ले आया। कौशाम्बी आकर उदयन वासवदत्ता में इतना खोया रहता कि उसे राज-कार्य की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए उसके एक शत्रु आरुणि ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उदयन से उसका राज्य छीन लिया। आरुणि से अपने राज्य को वापस लेने के लिए उदयन के मंत्री यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् किसी शक्तिशाली राजा की सहायता के अन्वेषण में थे। तभी ज्यौतिषियों से उन्हें ज्ञात हुआ कि मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह होगा। राजा उदयन वासवदत्ता को इतना अधिक चाहते थे कि वासवदत्ता के जीवित रहते किसी अन्य स्त्री के प्रति उनका आकृष्ट होना असंभव था। इस जटिलता का अनुभव कर यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् ने एक योजना बनाई। मगधराज्य की

सीमा के पास एक गाँव था लावाणक। यौगन्धरायण उदयन को वासवदत्ता के साथ आखेट के लिए वहाँ ले गया। एक दिन जब आखेट के लिए राजा उदयन बाहर गया था तो शिविर में आग लगा दी गई और उदयन के लौटने पर उसे बता दिया गया कि वासवदत्ता उसी आग में जल मरी तथा उसे बचाने के प्रयास में यौगन्धरायण भी जल मरा। उदयन इस समाचार से बहुत शोकाकुल हुआ। रुमण्वान् आदि मंत्रियों ने उसे सम्भाला और वापस कौशाम्बी ले आये।

उधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती के पास गया और उसके पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रख छोड़ा। उदयन वासवदत्ता की याद में अतिशय विह्वल हुआ किन्तु अन्ततोगत्वा पद्मावती से विवाह करने के लिए वह तैय्यार हो गया। विवाह के बाद दोनों राज्यों की सेनाओं ने मिलकर आरुणि को परास्त कर दिया तथा शत्रु द्वारा अपहृत वत्सराज्य पुनः उदयन को प्राप्त हो गया। अन्त में बड़े ही नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और यौगन्धरायण प्रकट हुए। यौगन्धरायण ने अपने दुस्साहस के लिए उदयन से क्षमा-याचना की पर उदयन ने यौगन्धरायण द्वारा किये गये हितकारक कार्यों के प्रति बहुत आभार व्यक्त किया।

प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु का जो भाग वर्णित है उससे सम्पूर्ण कथा-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है। महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन यद्यपि नाटक में नहीं किया गया है किन्तु स्थान-स्थान पर उनका समुचित निर्देश दे दिया गया है जिससे सारी कथा-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः यह नाटक घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान ही है इसीलिए कथा-वस्तु के महत्त्वपूर्ण अंशों की भी अपने नाटकीय स्वरूप की रक्षा के लिए उपेक्षा की गई है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' नामकरण की सार्थकता

रूपक के दस भेदों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक नामक भेद है और नाटक का नाम ऐसा होना चाहिए जो उस नाटक में घटित किसी विशेष घटना को लक्षित करता हो—"नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।" साहित्य दर्पण ६।१४८। प्रस्तुत नाटक के पञ्चम अङ्क में इसी प्रकार की एक विशेष घटना घटती है। पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद विदूषक द्वारा जब

उदयन को समाचार मिलता है कि पद्मावती सिर-दर्द से बेचैन है और समुद्रगृह में है तो उदयन उसे देखने समुद्रगृह में जाता है पर तब तक मागधी पद्मावती वहाँ नहीं पहुँचती है इसलिए उदयन पद्मावती की शय्या पर बैठ जाता है और कुछ देर बाद जब उसे नींद आने लगती है तो वह वहीं सो जाता है। विदूषक उसके लिए चादर लाने बाहर चला जाता है। इसी बीच पद्मावती के सिर-दर्द का समाचार पाकर वासवदत्ता उसे देखने के विचार से समुद्रगृह में आती है और चादर ओढ़कर सोये हुए उदयन को पद्मावती समझ कर वह उसके पास ही लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता और उससे बातें करना प्रारम्भ कर देता है। वासवदत्ता इस स्थिति से पहले तो अचानक घबड़ा जाती है पर यह जान लेने पर कि उदयन स्वप्न में बोल रहा है, वह भी उसकी बातों का जवाब देने लगती है।

उपर्युक्त घटना निश्चित रूप से भास की उच्च कल्पनाशक्ति की परिचायिका है। एक व्यक्ति स्वप्न में बोल रहा हो और दूसरा व्यक्ति जाग्रत् अवस्था में उसकी बातों का उत्तर दे रहा हो, इससे विलक्षण घटना और क्या हो सकती है? चूँकि घटना की दृष्टि से यह प्रसङ्ग सर्वाधिक हृदयावर्जक है अतः इसी स्वप्न-प्रसंग के आधार पर प्रस्तुत नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया जो निश्चय ही सार्थकता का प्रतिपादक है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है—

"स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता, स्वप्नवासवदत्ता, तामधिकृत्य कृतं नाटकं स्वप्नवासवदत्तम्। "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे" (पा० सू० ४।३।८७) से अण्। अथवा "स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता इति स्वप्नवासवदत्ता (शाकपार्थिवादिवत् उत्तरपद-लोपिसमासः) सा एव अभेदोपचारात्—स्वप्नवासवदत्तम्।

प्रमुखपात्रों का चरित्र-चित्रण

उदयन

उदयन प्रस्तुत नाटक का नायक है। वह वीणा-वादनकला में निपुण, राज्य कार्य से निश्चिन्ततया कोमल स्वभाव का है अतः वह धीर ललित प्रकृति का नायक है—"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।" प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी के—"इह तया हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह

पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम, इह तया सह शयितम्" इस कथन से पता चलता है कि वासवदत्ता-विरह से व्याकुल उसके हृदय का यह चित्र वासवदत्ता के प्रति उसके अगाध प्रेम को सूचित करता है। उदयन की विरहवस्था का जो वर्णन "नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः" (१।१२) इस पद्य में किया गया है उससे उसके हृदय की संवेदन-शीलता सहज प्रकट हो जाती है।

वह गुणवान् है, ब्रह्मचारी द्वारा उदयन की प्रशंसा सुनकर तापसी कहती है—"स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्येवं प्रशस्यते।" उदयन अत्यन्त रूपवान् भी है। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा में चेटी कहती है—"ननु शरचापहीनः कामदेवः।" उदयन के हृदय में यद्यपि पद्मावती के प्रति बहुत प्रेम है पर वासवदत्ता को वह भुला नहीं पा रहा है, इस प्रकार दाक्षिण्य गुण भी उसके व्यक्तित्व में विद्यमान है, तभी तो पद्मावती कहती है—"हला मा मैवम्। स दाक्षिण्य एव आर्यपुत्रो य इदानीमपि आर्याया वासवदत्तायाः गुणान् स्मरति।"

अनुपम सौन्दर्य, अद्वितीय कला, कोमल हृदय, अगाध प्रेम आदि विभिन्न विशेषताओं का मञ्जुल सम्मिश्रण उसके चरित्र में विद्यमान है, परन्तु उसकी कुछ दुर्बलतायें भी खटकती हैं। राजा के लिए जिस प्रशासनिक क्षमता की अपेक्षा होती है वह प्रायः उसमें नहीं है अतः वह बार-बार शत्रुओं के आक्रमणों का शिकार होता रहता है और शत्रु द्वारा पराजित भी हो जाता है। एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण राज्य की उपेक्षा करना एक राजा के लिये कर्त्तव्य की दृष्टि से निश्चय ही उचित नहीं है। उदयन के हृदय की दुर्बलता बार-बार प्रकट होती है। पूरे नाटक में वह केवल वासवदत्ता के लिए रोता-तड़पता ही पाया जाता है। प्रेम की दुनियाँ में यह बात भले ही उचित-अनुचित न जान पड़े पर कर्त्तव्य के धरातल पर यह सर्वथा प्रशंसनीय नहीं है। प्रस्तुत नाटक में एक प्रेमी के रूप में वह अवश्य सफल रहा है पर एक राजा के रूप में वह असफल ही सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत नाटक का लक्ष्य चूँकि उदयन और वासवदत्ता के प्रणय का वर्णन करना ही है अतः इस दृष्टि से राजा उदयन को नहीं अपितु प्रेमी उदयन को क्षमा किया जा सकता है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता प्रस्तुत नाटक की नायिका है। नाटक के आदि से लेकर अन्त तक वासवदत्ता के चरित्र में हमें केवल आदर्श ही आदर्श के दर्शन होते हैं। यदि उदयन के चरित्र से वासवदत्ता के चरित्र की तुलना की जाये तो निश्चय ही वासवदत्ता केवल बीस नहीं बल्कि पच्चीस पड़ेगी। उदयन के प्रति वासवदत्ता के हृदय में अगाध प्रेम है पर वासवदत्ता प्रेम से अधिक कर्त्तव्य को महत्त्व देती है। उदयन के प्रेम में आसक्ति है पर वासवदत्ता का प्रेम त्याग, बलिदान एवं कर्त्तव्य-बोध पर आश्रित है। वह उदयन के प्रेम में पूर्ण समर्पित है पर उसके हित के लिए वह यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार कर उससे कुछ दिनों के लिये अलग हो जाती है। पद्मावती के यहाँ रहती हुई वह हमेशा अपने शील का परिचय देती रहती है। पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाने पर भी वह विषण्ण नहीं होती या कि पद्मावती के प्रति उसके हृदय में कभी भी सौतीयाडाह पैदा नहीं होता अपितु पद्मावती को वह बहन की तरह मानती है। विरहावस्था में वह आँसुओं की घूँट पी-पीकर भी अपने कर्त्तव्य-मार्ग से कभी च्युत नहीं होती।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वासवदत्ता के चरित्र में उदारता, महत्ता, शील, संयम, धैर्य और प्रेम का जो सम्मिश्रण है इससे उसका चरित्र नितान्त आदर्शपूर्ण बन गया है। कविवर भास की लेखनी ने वासवदत्ता का जैसा चरित्र प्रस्तुत-नाटक में चित्रित किया है वह एक भारतीय नारी से सच्चे आदर्श की प्रस्तुति में पूर्ण समर्थ है और वासवदत्ता के रूप में आदर्श भारतीय नारी का जो स्वरूप महाकवि ने प्रस्तुत किया है उसके लिए हम महाकवि भास के आभारी हुए बिना नहीं रह सकते।

पद्मावती

पद्मावती मगधराज दर्शक की बहन है। वह अत्यन्त रूपवती है। प्रथम अङ्क में वासवदत्ता उसके रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है—"अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।" विदूषक एवं उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करते

हैं। वह मधुरभाषिणी भी है। वासवदत्ता उसकी वाणी की प्रशंसा में कहती है—
"नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा।"

रूपवती और मधुरभाषिणी होने के साथ-साथ वह धर्मप्रिया और उदार भी है। प्रथम अङ्क में ही उसके इन दोनों गुणों का हमें पता चल जाता है जब कि वह तपस्वियों को मनचाही वस्तु मांगने के लिए आमन्त्रित करती है।

ब्रह्मचारी जब उदयन की शोकावस्था का वर्णन करते हुए उसकी मूर्छा की बात कहता है तो वह घबड़ा जाती है जिससे उसके हृदय की संवेदनशीलता अभिव्यक्त होती है।

पद्मावती वचन की पक्की और कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागरूक रहनेवाली है। वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखने का प्रस्ताव यौगन्धरायण द्वारा रखे जाने पर कञ्चुकी जब आनाकानी करने लगता है तो वह अपने द्वारा करवाई घोषणा का ध्यान रखती हुई झट उसे स्वीकार कर लेती है। धरोहर की रक्षा भी वह अत्यन्त कुशलता के साथ करती है। वासवदत्ता के साथ उसका बर्ताव सहेलियों जैसा ही होता है। राजकुमारी होने का जरा भी दम्भ उसमें नहीं पाया जाता है। विरहव्याकुल उदयन के प्रति उसके हृदय में प्रेम के साथ-साथ सहानुभूति भी कूट-कूट कर भरी हुई है। नाटक के अन्त में वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह उसके चरणों में सर झुकाकर अपनी विनयशीलता का परिचय देती है।

इस प्रकार सौन्दर्य, शील, निरभिमानिता, उदारता, सहानुभूति, विनम्रता आदि विविध गुणों से समन्वित पद्मावती का चरित्र निश्चय ही बहुत उत्कृष्ट है।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण उदयन का प्रधान सचिव है। वह राजनीति-निपुण, विवेकशील और व्यवहार-कुशल है। वह हृदय से उदयन का उत्कर्ष देखना चाहता है। वह केवल राजा की हाँ में हाँ मिलाने वाला सेवक नहीं है। राजा के हित के लिए वह दुःसाहपूर्ण कार्य भी कर बैठता है। प्रस्तुत नाटक में उसका अवतरण प्रथम अङ्क तथा अन्तिम अङ्क में ही होता है और वह भी बहुत थोड़े

से समय के लिए ही, पर पूरे नाटक में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रस्तुत नाटक के घटना क्रम को यदि गाड़ी का चक्का मान लिया जाय तो यौगन्धरायण को उसकी धुरी के स्थान में ही प्रतिष्ठित करना होगा। वासवदत्ता को प्रेमासक्त उदयन से अलग रखना, पद्मावती के साथ उदयन के विवाह की योजना बनाना, मगधराज की सहायता से आरुणि द्वारा अपहृत अपने राज्य को वापस लेना आदि कई बातें हैं जो यौगन्धरायण के मस्तिष्क की ही उपज हैं। 'मुद्राराक्षस' के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त के सन्दर्भ में चाणक्य की जो भूमिका रही है वह भूमिका प्रस्तुत नाटक में यौगन्धरायण की भी है। वह राज्य का एक विश्वस्त, कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, राज्यभक्त एवं स्वामिभक्त नागरिक तथा सेवक है। घटना-क्रम की दृष्टि से यौगन्धरायण की भूमिका प्रस्तुत नाटक में नितान्त महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है साथ ही आज के युग में राजनीतिक जीवन जीने वालों के लिए बहुत अधिक प्रेरणा-प्रद भी।

भास का नाट्य-कौशल

महाकवि भास संस्कृत नाट्य-साहित्य के प्रवीण पुरोहित हैं। भास के नाटकों में जो विशेषतायें उपलब्ध होती हैं उनका अनुशीलन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि एक सफल नाटककार के लिए अपेक्षित सारे गुण सम-वेत रूप से उनमें विद्यमान हैं। कथावस्तु का सम्यक् समायोजन, पात्रों का सजीव चित्रण, रसानुकूल अलङ्कारों का निबन्धन, अभिनय का सौकर्य-कथोपकथन की अत्यन्त सरल शैली, भावों की स्फुट अभिव्यक्ति आदि विविध मानदण्डों के आधार पर भास संस्कृत नाटककारों की पङ्क्ति में अन्यतम स्थान पर सुप्रतिष्ठित हैं।

भास के नाटकों के पात्र जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं। स्वप्नवासवदत्त का उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के लिए उत्कृष्ट त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति है। पद्मावती यदि आदर्श की प्रतीमा है तो मंत्री यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता का देदीप्यमान मूर्ति है। विदूपक तो पाठकों-दर्शकों को हास्य की वह मीठी बुकनी परोसता रहता है

जिस पर गम्भीर से गम्भीर लोगों की भी सारी गम्भीरता हजार जान से निछावर हो जाती है। तो यह है भास की उत्कृष्ट चरित्रचित्रण-निपुणता का भव्य निदर्शन।

भास अत्यन्त भावुक कवि है। किसी कवि की भावुकता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि कवि अपनी कृति में मार्मिक स्थलों को कहाँ तक पहचान सका है। भास इस क्षेत्र में पूर्ण सिद्धहस्त हैं। विरह-व्याकुल उदयन की मनोव्यथा के वर्णन में कवि ने अपनी मर्मज्ञता का जो परिचय दिया है वह नितान्त हृदयावर्जक है—

"नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः, नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा च दग्धाऽप्यदग्धा॥"

(स्वप्न० १३।१)

उपर्युक्त पद्य के "नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः" इस पङ्क्ति में उदयन की जिस दशा का वर्णन किया गया है वह निश्चय ही किसी भी सहृदय के हृदय में करुणा का सञ्चार करने के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में घोषवती वीणा को उपालम्भ देते हुए उदयन द्वारा कहे गये निम्न पद्य भी मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना में नितान्त सफल रहे हैं—

"श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम॥ (६।१)

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि॥"

(६।२)

तथा,

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया॥ (६।३)

तृतीय पद्य के "तां तु देवीं न पश्यामि" से जो विकलता टपक रही है उसे यदि मार्मिकता की पराकाष्ठा कहें तो प्रायः अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रस्तुत नाटक में कवि ने यदि एक ओर उदयन की मनोव्यथा का मार्मिक वर्णन किया है तो दूसरी ओर वासवदत्ता तथा पद्मावती के आदर्शपूर्ण स्वरूपों का भी प्रभावोत्पादक प्रतिपादन किया है। वासवदत्ता एवं पद्मावती की चारित्रिक विशेषताएं इसी निष्कर्ष को जन्म देती हैं कि कवि के विशाल हृदय में नारी-जाति के लिए अत्यधिक समादर भाव है और आदर्श भारतीय नारी की गरिमा को परखने की जो दृष्टि होती है उस दृष्टि से भास पूर्णतः सम्पन्न है। यौगन्धरायण के माध्यम से कवि ने अपनी राजनीतिज्ञता एवं व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया तथा विदूषक के माध्यम से संस्कृत साहित्य-जगत् में प्रचलित "भासो हासः" के कथन को सार्थकता भी प्रदान की।

छन्दों एवं अलङ्कारों के समुचित प्रयोग में तो महाकवि भास निपुण हैं ही, नाटक में प्रयुक्त छोटे-छोटे संवाद-वाक्य भी नाटक की अभिनेयता की श्रीवृद्धि करने के लिए पर्याप्त हैं। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। भाषा के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर कतिपय अपाणिनीय प्रयोग यद्यपि खटकते तो हैं पर इसमें महाकवि का कोई दोष नहीं है। पाणिनि से पूर्ववर्ती कवि की भाषा में यदि कुछ अपाणिनीय प्रयोग मिल भी जायँ तो यह कुछ असम्भावित अनौचित्य नहीं है। अपि च, भावों का प्रणेता यदि भाषागत स्खलन के चक्रव्यूह में यदा कदा घिर भी जाय तो इसे ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में महाकवि भास की चामत्कारिक प्रतिभाशक्ति, असाधारण वैदुष्य तथा विलक्षण नाट्यकौशल विद्वानों तथा सहृदय सामाजिकों के लिए निश्चय ही श्रद्धा एवं समादर के विषय हैं।

—: ००० :—

पात्र-परिचय

पुरुषपात्र

राजा : वत्सदेश का राजा उदयन ।

यौगन्धरायण : उदयन का मुख्यमंत्री ।

रुमण्वान् : उदयन का दूसरा मंत्री ।

विदूषक : वसन्तक नामक उदयन का मित्र (नर्म सचिव) ।

ब्रह्मचारी : लावाणक ग्राम का निवासी छात्र ।

प्र० काञ्चुकीय : मगध के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।

द्वि० काञ्चुकीय : उज्जयिनी के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।

संभषक, भट : पद्मावती के भृत्य ।

स्त्रीपात्र

वासवदत्ता : उदयन की प्रथम पत्नी, गुप्तवेश में यही आवन्तिका है ।

पद्मावती : मगधराज दर्शक की बहन, उदयन की द्वितीय पत्नी ।

तापसी : मगधराज्य के तपोवन में रहने वाली तपस्विनी ।

अङ्गारवती : प्रद्योत की रानी, वासवदत्ता की माता ।

मधुकरिका : पद्मावती की सखी एवं परिचारिका ।

पद्मिनिका : ,, ,, ,,

धात्री : पद्मावती की उपमाता ।

वसुन्धरा : सासवदत्ता की उपमाता ।

विजय : वत्सराज की प्रतिहारी ।

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

सटिप्पण 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

नान्द्यन्ते = नाटकमङ्गलाचरणान्ते । सूत्रधारः = प्रधाननटः ।

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ, आसवदत्तावलौ, पद्मावतीर्णपूर्णौ, वसन्तकम्रौ, बलस्य, भुजौ, त्वाम्, पाताम् ॥ १ ॥

व्या०—उदयनवेन्दुसवर्णौ = उदीयमाननूतनचन्द्रसदृशवर्णौ । आसवदत्ता-वलौ = मद्यार्पितसामर्थ्याभावौ, मद्यपाननिर्बलाविति भावः । पद्मावतीर्णपूर्णौ = कमलाऽवतरणसम्पन्नौ, कमलसदृशसुकुमाराविति भावः । वसन्तकम्रौ = मधुमास-वत्कमनीयौ । बलस्य = बलरामस्य । भुजौ = बाहू । त्वाम् = युष्मान् सभ्या-नित्याशयः । पाताम् = रक्षताम् । पद्येऽस्मिन् पदविन्यासचातुर्येण उदयनवासव-दत्तापद्मावतीवसन्तकानां प्रधानपात्राणां सूचनान्मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं हि—"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः" इति । आर्याछन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—नवश्चाऽसौ इन्दुः (कर्मधारयसमासः), तेन समानो वर्णो ययोस्तौ (बहु०) = उदयनवेन्दुसवर्णौ । आसवेन दत्तम् (तृ० त०), बलस्य अभावः अबलम्, 'अव्ययं विभक्तीत्यादिनाऽव्ययीभावसमासः, आसवदत्तम् अबलं

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—उदयकालिक चन्द्रमा के समान वर्णवाली, मद्यपान से निर्बल लक्ष्मी (अथवा कमल) के प्राकट्य से समृद्ध, वसन्त ऋतु के सदृश सुन्दर बलराम की भुजाएँ आपकी रक्षा करें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

ययोस्तौ (बहु०) = आसवदत्तावलो । अव 'तॄ प्लवनसंतरणयोः' 'नपुंसके भावे क्तः' इत्यनेन क्तः = अवतीर्णम्, पद्मायाः अवतीर्णम (ष० त०) तेन पूर्णौ (तृ० त०) = पद्मावतीर्णपूर्णौ । 'कमुकान्तौ' धातोः 'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः' इति सूत्रेण र प्रत्यये कृते कम्र इति, वसन्त इव कम्रौ (उपमानपूर्वपदकर्मधारयसमासः) = वसन्तकम्रौ । 'पा' रक्षणे + लोट् = पाताम् ।

आर्यमिश्रान् = माननीयसज्जनान् । 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः' इत्यमरः । मिश्रशब्दो माननीयताद्योतकः । विज्ञापयामि = निवेदयामि । अये = आश्चर्याऽभिव्यञ्जकमव्ययमिदम् । विज्ञापनव्यग्रे = निवेदनोत्कण्ठिते सति । अङ्ग ! = भोः । अङ्गशब्दस्य 'पुन'रित्यप्यर्थः, तद्यथा–'पुनरर्थेऽङ्ग' इत्यमरः ।

उत्सरत = अपसरत, अस्मात्स्थानादिति भावः ।

अन्वयः—मगधराजस्य, स्निग्धैः, कन्यानुगामिभिः, भृत्यैः, सर्वः, तपोवनगतः, जनः, धृष्टम्, उत्सार्यते ॥ २ ॥

व्या०—मगधराजस्य = मगधाधिपस्य, दर्शकस्येति भावः । स्निग्धैः =

माननीय सज्जनों को मैं यह बताता हू । अरे ! क्या ? मेरे निवेदन कर्म में व्यस्त होते ही यह कैसी आवाज सुनाई पड़ने लगी ? अच्छा, देखता हूँ ।

(नेपथ्य में)

हटो सज्जनो ! हटो !

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

मगधराज के स्नेही एवं राजकुमारी का अनुगमन करने वाले सेवकों द्वारा सभी तपोवनवासी व्यक्ति धृष्टतापूर्वक हटाये जा रहे है ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

(प्रविश्य)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः । उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिका-
वेषधारिणी वासवदत्ता च)

स्नेहयुक्तैः । कन्यानुगामिभिः = कन्यां राजकुमारीं पद्मावतीमनुगच्छन्ति अनुसरन्ति तच्छीलमेषामिति कन्यानुगामिनः, तैः । भृत्यैः = सेवकैः । सर्वः = सकलः । तपोवनगतः = आश्रमवासी । जनः = लोकः । धृष्टम् = बलात्, कठोरतया यथा स्यात्तथेतिभावः । उत्सार्यते = अपसार्यते, दूरीक्रियते इत्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥२॥

टिप्पणी—आर्याश्च ते मिश्रास्तान् (क० धा०) = आर्यमिश्रान् । विज्ञापने व्यग्रः, तस्मिन् (स० त०) = विज्ञापनव्यग्रे । वि + ज्ञा + णिच् + लट् + मिप् = विज्ञापयामि । श्रु + कर्मणि लट् = श्रूयते । उत् + सृ + लोट् + थ = उत्सरत । वि + ज्ञा + क्त = विज्ञातम् ।

मगधानां राजा इति मगधराजः (ष० त०), 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति समासान्तष्टच् प्रत्ययः, तस्य = मगधराजस्य । स्निह् + क्त + भिस् = स्निग्धैः । कन्योपपदपूर्वकाद् 'अनु' इत्युपसर्गपूर्वकाद् 'गम्' धातोः 'सुप्यजातौ णिनिस्ता-च्छील्ये' इत्यनेन णिनिः, 'उपपदमतिङ्' इत्युपपदसमासः, तृतीयाबहुवचने = कन्यानुगामिभिः । तपसः वनम् (ष० त०), तपोवनं गतः, 'द्वितीयाश्रितातीते'-त्यादिना द्वि० त० समासः = तपोवनगतः । धृष् + क्त = धृष्टम् । उत् + सृ + णिच् + कर्मणि लट् = उत्सार्यते ।

(सूत्रधार का प्रस्थान)

स्थापना समाप्त

प्रवेश करके)

दो रक्षक—हटो हटो सज्जनो ! हटो !

(सन्यासी वेशधारी यौगन्धरायण तथा आवन्तिका वेश में
वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

अन्वयः—धीरस्य, आश्रमसंश्रितस्य, वसतः, वन्यैः फलैः तुष्टस्य, वल्कलवतः, मानार्हस्य, जनस्य, त्रासः, समुत्पाद्यते । भोः, उत्सिक्तः, विनयाद, अपेतपुरुषः, चलैः, भाग्यैः, विस्मृतः, अयम्, कः, निभृतम्, इदम्, तपोवनम्, आज्ञया, ग्रामीकरोति ॥ ३ ॥

व्या०—धीरस्य–धैर्ययुक्तस्य, अचञ्चलचित्तस्येति भावः । आश्रमसंश्रितस्य =तपोवनाश्रितस्य । वसतः = तपोवने वासं कुर्वतः । वन्यैः= अरण्योत्पन्नैः । फलैः = आम्रादिभिः । तुष्टस्य = सन्तोषमवाप्तस्य । वल्कलवतः = वल्कलानि एव वस्त्राणि अस्य इति वल्कलवान्, तस्य वल्कलवतः । मानार्हस्य=समादरयोग्यस्य । जनस्य= लोकस्य । त्रासः=भयम् । समुत्पाद्यते=जन्यते । भोः = भटा इतियावत् । उत्सिक्तः =उद्धतः । विनयात्=नम्रतायाः । अपेतपुरुषः=रहितपुरुषः, त्यक्तविनय इति भावः । चलैः=अस्थिरैः । भाग्यैः = भागधेयैः, धनादिरूपविभवैः । विस्मितः= गर्वितः । अयं कः=एषः कः पुरुषः । निभृतम् =शान्तम् । इदम्=पुरो वर्तमानम् । तपोवनम्=आश्रमपदम् । आज्ञया = उत्सारणरूपेणादेशेन । ग्रामीकरोति = ग्रामसमतां प्रापयति ॥ ३ ॥

यौगन्धरायण (कान लगाकर) क्या यहाँ भी हटाया जा रहा है ? क्योंकि धैर्ययुक्त, तपोवन में रहने वाले, जंगली फलों से तृप्त, वल्कल पहनने वाले, मान के योग्य मनुष्यों को भयभीत किया जा रहा है। अरे ! यह कौन घमंडी चंचल भाग्यों से गर्वित, अविनयी पुरुष इस शान्त तपोवन को अपनी आज्ञा से गाँव बना रहा है ? ॥ ३ ॥

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्वा होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

भवति = माननीये ! अनिर्ज्ञातानि = अपरिचितानि । अवधूयन्ते = तिरस्क्रियन्ते । परिभवः = तिरस्कारः । भुक्तोज्झितः = पूर्वभुक्तः पश्चात्त्यक्त इति भावः ।

टि०—आश्रमं संश्रितः, 'द्वितीयाश्रितेत्यादिना द्वितीयातत्पुरुषसमासः, तस्य = आश्रमसंश्रितस्य । वन+यत्+भिस् = वन्यैः । अग्राम ग्रामं करोतीति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः' इति सूत्रेण 'अभूततद्भावे वक्तव्यम्' इति वार्तिकबलेन च्विः = ग्रामीकरोति । उत्+सृ+णिच्+लट् = उत्सारयति । पूर्वं भुक्तः पश्चादुज्झितः, 'पूर्वकालैकसर्वजरत्' इत्यनेन क० धा० समासः, प्रथमस्य च पदस्य पूर्वनिपातः = भुक्तोज्झितः ।

यौगन्धरायण—देवी ! जो धर्म से अपने आपको हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है । मैं पूछती हूँ—क्या मैं भी हटाई जाऊँगी ?

यौगन्धरायण—देवी ! इस प्रकार विना पहचाने देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है ।

वासवदत्ता—आर्य ! परिश्रम भी वैसा कष्ट नहीं दे रहा है जैसा कि यह तिरस्कार ।

यौगन्धरायण—आपने इस विषय को भोगकर छोड़ दिया है । इसमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि—

पूर्वं त्वयाप्यभिमत गतमेवमासो-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पूर्वम्, त्वया, अपि, एवम्, गतम्, अभिमतम्, आसीत। पुनः, भर्तुः, विजयेन, श्लाघ्यम्, गमिष्यसि, कालक्रमेण, परिवर्तमाना, जगतः, भाग्यपंक्तिः, चक्रारपंक्तिः, इव, गच्छति ॥ ४ ॥

व्या०—पूर्वम्=पुरा। त्वयापि=भवत्यापि, वासवदत्तयापीति भावः। एवम्=ईदृशम्। अभिमतम्=इष्टम्। गतम्=प्रस्थितम्। आसीत् अभवत्। पुनः भूयः। भर्तुः=पत्युः, उदयनस्येतिभावः। विजयेन=राज्यप्राप्तिरूपलक्षणेन। श्लाघ्यम्=प्रशंसनीयम्। गमिष्यसि = यास्यसि। कालक्रमेण=प्रतिकूलानुकूलसमयानुसारेण। परिवर्तमाना = परिभ्रमन्ती। जगतः – लोकस्य। भाग्यपंक्ति = दैवपरम्परा। चक्रारपंक्तिरिव = चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां नेमिकाष्ठानां पंक्तिः श्रेणिरिव। गच्छति=व्रजति। यथा चक्रारपंक्तिः ऊर्ध्वमधश्च गच्छति तथैव लोकस्य शुभाशुभानि भाग्यानि कालक्रमेण परिवर्तन्त इत्याशयः, तदुक्तं हि 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।' अत्र 'चक्रारपंक्ति'रिवेत्यशे लुप्तोपमा, पूर्वार्धप्रतिपादितविशेषार्थस्योत्तरार्धप्रतिपादितेन सामान्यार्थेन समर्थनादर्थान्तरन्यासः, उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

टि०—गम् + क्त = गतम्। अभि + मन् + क्त = अभिमतम्। बिभर्तीति भर्ता, तस्य, = 'डुभृञ् धारण पोषणयो' + तृच् = भर्तुः। वि + जि + अच् + टा = विजयेन। परि + 'वृतु वर्तने' + लट् + शानच् + मुक् + टाप् = परिवर्तमाना।

पहले तुम भी इसी प्रकार जाया करती थी। पति के विजय प्राप्त कर लेने पर पुनः श्लाघनीय रूप से जाया करोगी। समय के बदलने से संसार की परिवर्तनशील भाग्यरेखा पहिये के अरों की भाँति चलती है ॥ ४ ॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

अन्वयः—भवान्, नृपापवादम्, परिहरतु, आश्रमवासिषु, परुषम्, न प्रयोज्यम् । मनस्विनः, एते, नगरपरिभवान्, विमोक्तुम्, वनम्, अभिगम्य, वसन्ति ॥ ५ ॥

व्या०—भवान् त्वम् संभषक इत्याशयः । नृपापवादम्=नृपस्य राज्ञो दर्शकस्य अपवादं निन्दाम् । परिहरतु = वर्जयतु । अतः आश्रमवासिषु = तपोवननिवासिषु । परुषम् = निष्ठुरं यथा स्यात्तथा, वचनमिति शेषः । न प्रयोज्यम् = नहि प्रयोक्तव्यम् । यतो हि मनस्विनः = प्रशस्तमानसाः । एते = इमे तपोवनवासिनः । नगरपरिभवान् पुरसुलभानादरान् । विमोक्तुम् = परिहर्तुम् । वनम् = अरण्यम् । अभिगम्य = अधिगम्य । वसन्ति = वासं कुर्वन्ति । वनौकसवृत्तिमाश्रयन्ते इति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ५ ॥

दोनों रक्षक—हटो सज्जनो, हटो ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—सम्भषक ! हटाना नहीं चाहिए; नहीं चाहिए । देखो—आप राजा का अपयश न होने दें । तपोवन में रहने वालों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिए । ये मनस्वी लोग नगर में होने वाले अपमान से बचने के लिए ही वन में आकर रहते हैं ॥ ५ ॥

दोनों—आर्य ! अच्छा । (दोनों का प्रस्थान)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम्।

वासवदत्ता—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः (आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम्। एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम। सैषा नो महाराज-

---

'हन्त = हर्षविषय इत्यर्थः। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः। सविज्ञानम् = विशिष्टज्ञानसहितम्, धर्मनीत्यनुकूलमिति भावः। वत्से = वात्सल्यभाजनभूते, भगिनीति भावः। उपसर्पावः = समीपे गच्छावः। एनम् = काञ्चुकीयम्। किंकृता = केन निमित्तेन कृता। न श्लिष्यते = न संगच्छते। अपरिचयात् = अप्रत्यभिज्ञानात् महाराजमातरम्—दर्शकस्य जननीम्।

यौगन्धरायण—अहा, देखने में यह बुद्धिमान् प्रतीत होता है। बेटी ! हम लोग इसके पास चलें।

वासवदत्ता—आर्य अच्छा।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) महाशय ! लोगों को किसलिए हटाया जा रहा है ?

कञ्चुकी—हे तपस्वी !

यौगन्धरायण—(स्वगत) तपस्वी शब्द से सम्बोधन करना निश्चय ही गुणयुक्त वार्तालाप है किन्तु जान-पहचान न होने से मेरे मन में यह संगत नहीं हो रहा है।

कञ्चुकी—श्रीमन् ! सुनिये,—यह हमारे महाराज दर्शक की, जिनका 'दर्शक' नाम गुरुजनों ने यथार्थ ही रखा है; बहन पद्मावती हमारे महाराज की आश्रमवासिनी माता महादेवी से मिलकर पुनः उन पूजनीया की आज्ञा पाकर राजगृह को लौट जायेंगी। इस प्रकार आज इसकी इसी आश्रम में रहने की

मातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः॥ ६॥

अनुज्ञाता आदिष्टा। वासः=अवस्थानम्। अभिप्रेतः=अभीष्टः।

टि०—परि + हृञ् + लोट् + तिप् परिहरतु। नृपस्यापवादम् (ष० त०) = नृपापवादम्। प्रयोक्तु शक्यं प्रयोज्यम्—प्र + युज् + ण्यत्=प्रयोज्यम्। प्रशस्तं मनो येषां ते इति मनस् शब्दात् 'अस्मायामेधास्रजो विनिः' इत्यनेन विनिः= मनस्विनः। विज्ञानेन सहितम् इत्यत्र 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन तुल्ययोगे बहुव्रीहिसमासः, 'वोपसर्जनस्ये'त्यनेन सहेत्यस्य स्थाने वैकल्पिकः 'स' इत्यादेशः =सविज्ञानम्। उप + 'सृप्लृ गतौ' + लट् + वस्=उपसर्पावः।

अन्वयः—तीर्थोदकानि, समिधः, कुसुमानि, दर्भान्, तपोधनानि, वनात्, स्वैरम्, उपनयन्तु। हि, धर्मप्रिया, नृपसुता, तपस्विषु, धर्मपीडाम्, न, इच्छेत्, एतत्, अस्याः, कुलव्रतम्॥ ६॥

व्या०—तीर्थोदकानि तीर्थस्य पवित्रस्य नद्यादेर्जलानि। समिधः=काष्ठ-खण्डानि। 'काष्ठंदार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित् स्त्रियाम्' इत्यमरः। कुसुमानि पुष्पाणि। दर्भान्=कुशान्। तपोधनानि = इमानि तपस्साधनभूतानि। वनात्=अरण्यात्। स्वैरम्=यथेच्छम्। उपनयन्तु=आनयन्तु, भवन्त इति शेषः। हि=यतः। धर्मप्रिया=धर्मानुरागवती। नृपसुता=राजकुमारी, पद्मावतीति भावः। तपस्विषु = तपोधनेषु। धर्मपीडाम् = धर्माचरणव्यवधानम्। न इच्छेत्=

इच्छा है। अतः आप लोग—

लकड़ी, फूल और कुश आदि तपस्या की सामग्री को वन से स्वेच्छा-पूर्वक ले आवें। राजकुमारी धर्म में रुचि रखने वाली हैं अतः यह तप-स्वियों के धर्म-कार्य में व्यवधान डालना कदापि नहीं चाहेंगी; यह इनका वंश-धर्म है॥ ६॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम्! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति। ततः—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता॥ ७॥

नाऽभिलपेत्। एतत = धर्माचरणम्। अस्याः = नृपसुतायाः। कुलव्रतम् = वंशाचरणम्, अस्तीति शेषः। वसन्ततिलकं वृत्तम्॥ ६॥

टि०—तीर्थस्योदकानि (ष० त०) - तीर्थोदकानि। ईरणम् ईरः, 'ईर् गतौ' धातोर्भावे घञ्। स्वेन ईरः, तद्यथा तथा (क्रियाविशेषणम्) स्वैरम्। अत्र 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' इति तृतीयातत्पुरुष समासः, 'स्वादीरेरिणोः' इति वृद्धिः। उप + नी + लोट्, झि= उपनयन्तु। धर्मः प्रियो यस्याः सा (बहु०) = धर्मप्रिया। तपस् + विनिः + सुप्= तपस्विषु।

आदेशिकैः=दैवज्ञैः। ये वर्त्तमानभूतभविष्यत्कालिकं कर्म जानन्ति तदाश्रितञ्च शुभाशुभमुद्घाट्य तत्प्रतीकारादींश्चोपदिश्य जीविकोपार्जनङ्कुर्वते त एवादेशिकाः। आदिष्टा = सूचिता। स्वामिनो देवी = महाराजस्योदयनस्य महिषी।

अन्वयः—प्रद्वेषः, बहुमानः, वा, सङ्कल्पात्, उपजायते। भर्तृदाराभिलाषित्वात्, मे, अस्याम्, महती, स्वता॥ ७॥

व्या०—प्रद्वेषः = द्वेषातिशयः। बहुमानः = अत्यादरः। वा = अथवा। सङ्कल्पात् = मनोभावात्। उपजायते उद्भूयते। भर्तृदाराभिलाषित्वात्=इयं भर्तुः = स्वामिनः उदयनस्य दाराः=भार्या भूयात् इत्यभिलाषवशात्। मे = मम। अस्याम्=पद्मावत्याम्। महती = समधिका। स्वता = आत्मीयता वर्तते इति शेषः अनुष्टुप् वृत्तम्॥ ७॥

टि०—पुष्पकश्च भद्रश्चेति (द्वन्द्वसमासः), तौ आदी येषां तैः (बहु०) = पुष्पकभद्रादिभिः। आ + दिश् + क्त + टाप् = आदिष्टा।

यौगन्धरायण—(मन में) अच्छा! तो यही है वह मगध की राजकुमारी पद्मावती जिसके बारे में पुष्पक भद्रक आदि ज्योतिषियों ने बताया था कि महाराज की पत्नी होगी। इसलिए—

अधिक द्वेष या अधिक आदर मन की भावना से ही उत्पन्न होता है। यह

वासवदत्ताः—(स्वगतम्) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्पज्जइ। [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते।]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च।)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु। [एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु।]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी।)

तापसी—साअदं राअदारिआए। [स्वागतं राजदारिकायाः।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ। अभिजणाणुरूव खु से

प्रकृष्टो द्वेषः (गति०)=प्रद्वेषः। बहुश्चासौ मानः (क० धा०)=बहुमानः। उप + जन + लट् + त=उपजायते। भर्तृदारानभिलषितुं शीलमस्येति भर्तृदाराभिलाषी; भर्तृदार + अभि + लष् + णिनिः (उपपद०), तस्य भावस्तत्त्वम् भर्तृदाराभिलाषित्वम्, तस्मात्=भर्तृदाराभिलाषित्वात्। स्व + तल् + टाप्= स्वता।

भगिनिकास्नेहः-भगिनी एव भगिनिका, भगिनीतुल्यः स्नेह इति भावः। चेटी दासी। आश्रमपदम्-आश्रमस्थानम्।

महाराज की पत्नी होवे इसी इच्छा के कारण इसके प्रति मेरे मन में अत्यधिक आत्मीयता उमड़ रही है॥ ७॥

वासवदत्ता—(स्वगत) 'राजकुमारी' ऐसा सुनकर इसके प्रति मेरा बहन का स्नेह उत्पन्न हो रहा है।

(चेटी के साथ सपरिवार पद्मावती का प्रवेश)

चेटी—आइए, आइए, राजकुमारी! इस आश्रम में प्रवेश करें।

(उसके बाद बैठी हुई तापसी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी का स्वागत है।

वासवदत्ता—(स्वगत) यही वह राजकुमारी है। इसका सौन्दर्य कुलानुरूप ही है।

रूवं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्]

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अहिदिजणस्य सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथिजनस्य स्वकं गेहम् ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता— (स्वगतम्) ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि । [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति ।]

अभिजनानुरूपम्=कुलानुरूपम् । रूपम् = सौन्दर्यम् । वागपि = वचनमपि । भगिनिकाम् = स्वसारम् । न वरयति=वरणं न कुरुते । दूतसम्पातम् = सन्देशवाह-

---

पद्मावती—आर्ये ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—चिरकाल तक जीओ । बेटी ! प्रवेश करो, तपोवन तो अतिथियों का अपना ही घर होता है ।

पद्मावती—अच्छा । आर्ये ! मैं आश्वस्त हुई । आपके इस आदर वचन से मैं कृतकृत्य हुई ।

वासवदत्ता—(स्वगत) न केवल रूप ही अपितु इसकी वाणी भी बहुत मधुर है ।

तापसी—भद्रे ! क्या कोई राजा हमारे भद्रमुख महाराज की इस बहन की माँग नहीं करता ?

चेटी—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत हैं । उन्होंने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणोआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं। संवृत्ताः।]

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

पद्मावती—अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणेन तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति। [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति ?]

प्रेषणम्। अर्हा = योग्या। महत्तरे = महत्त्वशालिनी, राजकुले इत्यस्य विशेषणम्। श्रूयते = आकर्ण्यते।

टि०—भर्तुः दारिका (ष० त०) = भर्तृदारिका। दूतानां सम्पातः (ष० त०) = दूतसम्पातः, तम्, दूतसम्पातम्। अर्हतीति अर्हा, 'अर्ह' पूजायाम् + पचाद्यच् + टाप् = अर्हा।

अभिप्रेतप्रदानेन = अभिलषितवस्तुनो वितरणेन हेतुना। उपनिमन्त्र्यताम् = आहूयताम्। विस्रम्भेण = विश्वासेन, तपस्विनां स्नेहेनेति यावत्। उत्पादितविस्रम्भः = जनितविश्वासा। 'समौ विश्वासविस्रम्भौ' इति कोशः। धर्मार्थम् = धर्माचरणार्थम्।

वासवदत्ता—(स्वगत) बहुत अच्छा। तब तो यह अब अपनी ही हो गई।

तापसी—सचमुच यह आकृति सम्मान के योग्य ही है। सुना जाता है कि दोनों ही राजघराने बड़े ऊँचे हैं।

पद्मावती—आर्य ! अपने को अनुगृहीत करने के लिए कोई तपस्वी दिखाई पड़ा है ? यहाँ कौन क्या चाहता है यह पता लगाकर इच्छानुरूप वस्तु प्रदान की घोषणा के द्वारा तपस्वियों को आमन्त्रित कीजिए।

काञ्चुकीयः – यदभिप्रेतं भवत्या । भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः ! शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादित-विस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते ।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्त समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ।।८।।

अर्थेन = देयवस्तुरूपेण हेतुना । उपनिमन्त्रयते = आमन्त्रयते ।

अन्वयः—कस्य, कलशेन, अर्थः ? कः, यथानिश्चितम्, वासः, मृगयते ? दीक्षाम्, पारितवान्, पुनः, गुरोः, यत्, देयम्, भवेत्, किम्, इच्छति ? इह, धर्माभिरामप्रिया, नृपजा, आत्मानुग्रहम्, इच्छति । यस्य, यत्, समीप्सितम्, अस्ति, तत्, वदतु, अद्य, कस्य, किम्, दीयताम् ? ।। ८ ।।

व्या०—कस्य = कतमस्य तापसजनस्य । कलशेन - घटेन । अर्थः = प्रयोजनम् । कः = कतमः तपस्वी । यथानिश्चितम् = निर्णयानुसारम् । वासः = वस्त्रम् । मृगयते = अन्विष्यति अभिलषतीति भावः । दीक्षाम् = गुरुगृहवासपूर्वकमध्ययनव्रतम् । पारितवान् = समापितवान् । पुनः = भूयः । गुरोः = आचार्यस्य, आचार्यायेत्यर्थः । यत् = वस्तुजातम् । देयम् = दक्षिणात्वेन दातव्यम् । भवेत् = स्यात् । तादृश, किम् = वस्तु । इच्छति = अभिलषति । इह = आश्रमे । धर्माभिरामप्रिया - प्रियधार्मिकजना । नृपजा = राजसुता । आत्मानुग्रहम् - स्वधन्यताम् । इच्छति = कामयते । यस्य = तपस्विनः । यत् = वस्तु । समीप्सितम् = अभीष्टम् । अस्ति = वर्तते । तत् = वस्तु । वदतु = कथयतु । अद्य = अस्मिन् समये । कस्य = तपस्विनः । किम् = वस्तु । दीयताम् = समर्प्यताम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ८ ।।

टि०—निश्चितमनतिक्रम्य (अव्ययीभावस०) = यथानिश्चितम् । 'मृग अन्वेषणे' + लट् मृगयते । दातुं योग्यम्—'डुदाञ् दाने' + यत् = देयम् । धर्मे अभि-

---

कञ्चुकी—जैसी आपकी इच्छा । हे आश्रमवासी तपस्वियों ! आपलोग सुन लें कि यह मगध-राजकुमारी आपके द्वारा किये गये स्नेह से आश्वस्त होकर धर्माचरण के लिए आपको दान देने के लिए आमन्त्रित करती हैं—

किसे घट से प्रयोजन है ? कौन निश्चय के अनुसार वस्त्र चाहता है ?

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं [दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।]

तपसी—संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं । आअन्तुएण इमिणा होदव्वं । [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।]

काञ्चुकीयः—भो किं क्रियताम् ।

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

रामो येषां ते धर्माभिरामाः (बहुव्रीहि०) ते प्रियाः यस्याः सा (बहु०) = धर्माभिरामप्रिया । नृपाज्जाता = नृप + 'जनी' प्रादुर्भावे + 'पञ्चम्यामजातौ' इत्यनेनाऽप्रत्ययः = नृपजा । आप्तुमिष्टम् ईप्सितम्, सम्यक् ईप्सितम् = समीप्सितम् ।

हन्त = हर्षाभिव्यञ्जकमव्ययम् । दृष्टः = ज्ञातः । अर्थी = याचकः । दिष्ट्या = भाग्येन । तपोवनाभिगमनम् = आश्रमपर्यटनम् । सन्तुष्टतपस्विजनम् = तृप्ततापसजनम् । आगन्तुकेन = स्थानान्तरादागतेन । अनेन = याचकेन । स्वसा = भगिनी । प्रोषितभर्तृकाम् = प्रवासोषितपतिकाम् । 'नानाकार्यवशाद्यस्याः दूरदेशंगतः पतिः ।

जिसने अपनी निश्चित शिक्षा पूरी कर ली है, ऐसा कौन क्या चाहता है जो उसे गुरुदेव को देना है ? धार्मिक जनों के प्रति स्नेह रखने वाली राजकुमारी इस आश्रम में अपना कल्याण चाहती है, अतः जो जिसका अभीष्ट है, सो कहे—आज किसे क्या दिया जाये ॥ ८ ॥

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा ! मुझे उपाय सूझा । (प्रकट) महाशय ! मैं याचक हूँ ।

पद्मावती—सौभाग्य से मेरा तपोवन आना सफल हुआ ।

तापसी—इस आश्रम में सब तपस्वी सन्तुष्ट हैं । यह अवश्य कोई आगन्तुक होगा ।

कञ्चुकी—श्रीमान् ! आपके लिए क्या किया जाय ?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है । इसके पति दूर देश गये हैं । मैं चाहता हूँ कि राजकुमारी इसे कुछ समय तक अपनी देख-रेख में रखें, क्योंकि—

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥ ९ ॥

सा मनोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका ॥' इति साहित्यदर्पणे (३-८४) । परिपाल्यमानाम् = संरक्ष्यमाणाम् ।

टि० — दृश् + क्तः = दृष्टः । अर्थशब्दात् 'अर्थाच्चासन्निहिते' इत्यनेन इनिः = अर्थी । आश्रमस्य पदम् (ष० त०) = आश्रमपदम् । भू + तव्यत् = भवितव्यम्, भाववाच्ये प्रयोगः । कृ + कर्मणि लोट् + त = क्रियताम् । प्रोषितः भर्ता यस्याः सा (बहु०) = प्रोषितभर्तृका । परिपाल्यत इति परिपाल्यमाना, ताम्, परिपाल + लट्, शानच् (कर्मणि) = परिपाल्यमानाम् ।

अन्वयः—अर्थैः, न, एव, भोगैः, अपि, न, वस्त्रैः, न, कार्यम् । अहम्, वृत्तिहेतोः, काषायम्, प्रपन्नः, न । धीरा, दृष्टधर्मप्रचारा, इयम्, कन्या, मे, भगिन्याः, चारित्रम्, रक्षितुम्, शक्ता ॥ ९ ॥

व्या० — अर्थैः = धनैः । न एव = प्रयोजनं नैव वर्तते इति भावः । भोगैरपि न = भोग्यार्हवस्तुभिरपि न प्रयोजनम् । वस्त्रैर्न कार्यम् = वासोभिरपि न प्रयोजनम् । अहम् = यौगन्धरायणः । वृत्तिहेतोः = आजीविकार्थम् । काषायम् = कषायरक्तवसनम्; परिव्राजकवेशमिति भावः । प्रपन्नो न = नाङ्गीकृतवान् । अपितु, धीरा = धैर्यशालिनी पण्डिता वा । 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः । दृष्टधर्मप्रचारा = सुविज्ञातपुण्याचरणा । इयम् = पुरोवर्तिनी । कन्या = कुमारी, मगधराजपुत्रीति भावः । मे = मम । भगिन्याः = स्वसुः, वासवदत्ताया इति भावः । चारित्रम् = शीलम् । रक्षितुम् = पातुम् । शक्ता = क्षमा, अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

टि० — कृ + ण्यत् = कार्यम् । वृत्तेः हेतुः (ष० त०) तस्मात् = वृत्तिहेतोः । कषायेण रक्तं वस्त्रं तत् = काषायम्—'तेन रक्तं रागात्' इत्यणि आदिवृद्धौ रूपम् । धर्मस्य प्रचारः (ष० त०) दृष्टो धर्मप्रचारो यया (बहु०) सा = दृष्टधर्मप्रचारा । चर्यते अनेन इति विग्रहे 'चर्' धातोः 'अतिलूधूसुखनसहचर इत्रः' इत्यनेन इत्र प्रत्यये—चरित्रम्, चारित्रमेव चारित्रम्—स्वार्थेऽणि ।

धन से मुझे काम नहीं, भोगों और वस्त्रों से मुझे प्रयोजन नहीं है । मैं आजीविका के लिए काषाय-वस्त्रधारी नहीं हुआ हूँ । विदुषी और धर्म-प्रचार को देखने वाली

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ? होदु, अविचारिअ कम्मं ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महतो खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ १० ॥

हम्=विषादसूचकमव्ययमिदम्। निक्षेप्तुकामः = न्यासत्वेन अर्पयितुकामः। क्रमम्=विधानम्। 'कल्पे विधिक्रमौ' इत्यमरः।

व्यपाश्रयणा=आश्रयार्थमभ्यर्थना। प्रतिजानीमः=प्रतिज्ञां कुर्मः।

अन्वयः—अर्थः, सुखम्, दातुम्, भवेत्। प्राणाः, सुखम्, दातुम् (भवेयुः)। तपः, सुखम्, दातुम्, भवेत्। अन्यत्, सर्वम्, सुखम्, दातुं भवेत्, (किन्तु) न्यासस्य, रक्षणम्, दुःखम् ॥ १० ॥

व्या०—अर्थः=द्रव्यम्। सुखम्=सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा। दातुम्=अर्पयितुम्। भवेत्=स्यात्। प्राणाः=असवः। 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' इत्यमरः। सुखम् = अनायासं यथा स्यात्तथा। दातुम् = समर्पयितुम् भवेयुरिति शेषः। तपः = तपश्चरणम्, तज्जन्यं फलमित्यर्थः। सुखम् = कष्टं विनैव। दातुम् = अर्पयितुम्। भवेत् = स्यात्। अन्यत् = अपरम्। सर्वम् = सकलम्। सुखम् = कष्टं विनैव दातुं

यह कन्या (राजकुमारी) मेरी बहन के चरित्र की रक्षा करने में समर्थ है ॥९॥

वासवदत्ता—(स्वगत) अच्छा ! आर्य यौगन्धरायण मुझे यहाँ छोड़ना चाहते हैं। ठीक है। ये बिना सोचे समझे कोई काम नहीं करेंगे।

कञ्चुकी—इसकी यह आश्रय-प्रार्थना बहुत कठिन है। कैसे मानें ? क्योंकि—

धन देना सरल है, प्राण देना सरल है, तपस्या के फल को देना भी सरल है। अन्य सब कुछ देना सरल है किन्तु किसी की धरोहर की रक्षा करना बहुत कठिन है ॥ १० ॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेति—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी । [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! । [चिरं जीवतु भद्रे !]

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

भवेदित्याशयः । किन्तु, न्यासस्य = निक्षेपस्य । रक्षणम् = परिपालनम् । दुःखम् = दुष्करम्, कष्टसाध्य भवतीत्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १० ॥

टि०—निक्षेप्तुं कामो यस्य सः (बहु०) निक्षेप्तुकामः । 'तुंकामगनसोरपि' इत्यनेन मकारलोपः । वि + अप् + आङ् । 'श्रिञ्, सेवायाम्' + युच् + टाप् = व्यपाश्रयणा । (व्यपाश्रयण व्यपाश्रयणेति) । दा + तुमुन् = दातुम् ।

प्रथमम् = पूर्वम् । उद्घोष्य = उच्चैर्घोषणां कृत्वा । अयुक्तम् = अनुचितम् । भणति = कथयति । भगिनिकान्यासार्थं याचते इत्यर्थः । अनुतिष्ठतु = निष्पादयतु । अनुरूपम् = योग्यम् । अभिहितम् = कथितम् । अभ्युपगतम् = स्वीकृतम् । अनु-

---

पद्मावती—आर्य ! पहले 'कौन क्या चाहता है' यह घोषणा करके अब विचार करना ठीक नहीं । जो यह कहता है उसे आर्य पूरा करें ।

कञ्चुकी—यह आपने अपने अनुरूप ही कहा ।

चेटी—इस प्रकार सत्यभाषण करने वाली राजकुमारी चिरंजीवी हों ।

तापसी—भद्रे ! चिरंजीवी होओ ।

कञ्चुकी—राजकुमारी, अच्छा । (यौगन्धरायण के पास जाकर) श्रीमन् ! माननीया राजकुमारी ने आपकी बहन का संरक्षण स्वीकार कर लिया है ।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या। वत्से! उपसर्पात्रभवतीम्।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई। एषा गच्छामि मन्दभाआ। [का गतिः। एषा गच्छामि मन्दभागा।]

पद्मावती—भोदु भोदु। अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। आत्मीयेदानीं संवृत्ता।]

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि। [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि। [सुष्ठु आर्या भणति। अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः! अर्धमवसितं भारस्य।

गृहीतः=कृतकृत्यः। मन्दभागा=अल्पभाग्या। संवृत्ता=सञ्जाता=। तर्कयामि=कल्पयामि।

सुष्ठु=सम्यक्। अनुभूतं सुखं यथा सा अनुभूतसुखा, निर्विघ्नानन्देति भावः। प्रेक्षे=तर्कयामि। अर्धम्=समांशः। अवसितम्=समाप्तम्, अपगतमिति भावः।

भारस्य=वासवदत्तानिक्षेपरूपकर्तव्यस्य। समर्थितम्=निर्णीतम्। परिणमिति=फलति। उपनयतः=महाराजसमीपं प्रापयतः। विश्वासस्थानम्=प्रत्ययाधिष्ठानम्, विश्वासहेतुः, साक्षिणी वेत्यर्थः।

टि०—उद्+घुष्+णिच्+क्त्वा, ल्यप्=उद्घोष्य। वि+चर+णिच्+तुमुन्=विचारयितुम्। रूपस्य योग्यमिति विग्रहे 'अव्ययं विभक्ती'त्यादिना-

---

यौगन्धरायण—राजकुमारी के द्वारा मैं अनुगृहीत हुआ। बेटी! देवी के पास जाओ।

वासवदत्ता—(स्वगत) और क्या चारा है? यह जाती हूँ अभागिनी।

पद्मावती—आओ, आओ! अब तो यह अपनी हो गई।

तापसी—इसकी जैसी आकृति है इससे मैं समझती हूँ कि यह भी राजकुमारी ही है।

चेटी—आप ठीक कहती हैं। मुझे भी लगता है कि इसने सुख भोगे हैं।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा! कार्य का आधा भार तो समाप्त हुआ।

यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ ११ ॥

ऽव्ययीभाव-समासः = अनुरूपम् । अभि + धा + क्त=अभिहितम् । 'दधातेर्हि'-रिति ह्यादेशः। मन्दो भागो यस्याः, सा (बहु०)= मन्दभागा । उप + नी + लट्, शतृ + ङ स्=उपनयतः ।

अन्वयः—यैः, प्रथमम्, विपत्तिः, दृष्टा, अथ, पद्मावती, नरपतेः, महिषी, भवित्री, (इति) प्रदिष्टा । तत्प्रत्ययात्, इदम्, कृतम् । हि, विधिः, सुपरीक्षितानि, सिद्धवाक्यानि, व्युत्क्रम्य, न, गच्छति ॥ ११ ॥

व्या०—यैः=पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैः । प्रथमम् = पूर्वम् । विपत्तिः = राज्यस्खलनरूपा विपदिति भावः । दृष्टा = अवलोकिता, सूचितेत्यर्थः । अथ = अनन्तरम् । पद्मावती=मगधराजपुत्री । नरपतेः = राज्ञः, उदयनस्येति भावः । महिषी = राज्ञी । भवित्री=भाविनी । इति प्रदिष्टा=कथिता । तत्प्रत्ययात् = आदेशिक-विश्वासात् । इदम् = न्यासत्वेन वासवदत्तायाः स्थापनम् । कृतम् = विहितम् । हि=यतः । विधिः = दैवम् । सुपरिक्षितानि=सम्यग् विवेचितानि । सिद्धवाक्यानि=सिद्धादेशवचांसि । व्युत्क्रम्य=उल्लङ्घ्य । न गच्छति= न व्रजति ।

मन्त्रियों के साथ जैसी मन्त्रणा की थी वैसा ही फल हो रहा है। जब महाराज पुनः सत्तारूढ़ हो जायेंगे और मैं वासवदत्ता को उनके पास पहुँचाऊँगा तब देवी मगधराजपुत्री वासवदत्ता के चरित्र की साक्षिणी होगी । क्योंकि—

"पद्मावती महाराज की पत्नी होंगी" ऐसा उन सिद्धों ने कहा है जिन्होंने उदयन पर आने वाली राज्यनाश रूपी विपत्ति को पहले ही सूचित कर दिया था। उन्हीं के विश्वास से हमने यह सब काम किया है क्योंकि सिद्धपुरुषों के भली प्रकार जाँचे गये वचनों का उल्लङ्घन करके भाग्य भी नहीं चलता है ॥११॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परिश्रान्तः । अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम् । अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथा हि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

सिद्धवचनानुसारेणैव वर्तत इति भावः । अत्र सामान्यार्थेन विशेषार्थसमर्थनादर्थान्तरन्यासालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मचारी=वर्णिलिङ्गी । विश्रमयिष्ये= विश्रामं करिष्ये ।

टि०—भविष्यतीति भविष्यदर्थे— भू + तृच् + ङीप् भवित्री । तेषां प्रत्ययः, तस्मात (प० त०) तत्प्रत्ययात् । विधीयतेऽनेनेति विग्रहे विपूर्वकात धा धातोः 'उपसर्गे घोः कि'रिति कि प्रत्ययः = विधिः ।

अन्वयः—देशागतप्रत्ययाः, अचकिताः, हरिणाः, विस्रब्धम्, चरन्ति । सर्वे, वृक्षाः, पुष्पफलैः, समृद्धविटपाः, दयारक्षिताः । कपिलानि, गोकुलधनानि, भूयिष्ठम् । दिशः, अक्षेत्रवत्यः । हि, धूमः, बह्वाश्रयः । इदम्, निःसन्दिग्धम्, तपोवनम् ॥ १२ ॥

व्या० – देशागतप्रत्ययाः = स्थानप्राप्तविश्वासाः । अचकिताः=भयरहिताः । हरिणाः = मृगाः । विस्रब्धम् = विश्वासपूर्वकम्, निःशङ्कं यथा स्यात्तथेति भावः । चरन्ति=परिभ्रमन्ति । सर्वे = समस्ताः । वृक्षाः = पादपाः । पुष्पफलैः = पुष्पैः फलैश्च । समृद्धाः = सम्पन्नाः । दयारक्षिताः अनुकम्पया संवर्धिताः । कपिलानि=

(ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर की ओर देखकर) मध्याह्न हो चला । मैं अत्यन्त थक गया हूँ । अब कहाँ विश्राम करूँ ? (घूमकर) अच्छा ! देख लिया । यह चारों ओर तपोवन ही होगा, क्योंकि—

हरिण निर्भीक होकर विश्वासपूर्वक घूम रहे हैं । सभी वृक्षों की शाखायें

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम्। अये ! स्त्रीजनः।

पिङ्गलवर्णानि। 'कडारः कपिलः पिङ्ग-पिशङ्गौ कद्रुपिङ्गले' इत्यमरः। गोकुलधनानि = धेनुयूथद्रव्याणि। भूयिष्ठम् = बहूनि, प्राचुर्येण वर्त्तमानानि सन्तीति भावः। दिशः-ककुभः, प्रदेशाः इत्यर्थः। अक्षेत्रवत्यः = क्षेत्रपरिहीनाः, सन्तीतिशेषः। हि=यतः। धूमः = यज्ञीयाग्निलिङ्गम्। बह्वाश्रयः=अधिकस्थानापन्नः अस्तीति शेषः। इदम् = पुरोवर्ति। निःसन्दिग्धम् निश्चयेन। तपोवनम् =आश्रमस्थानम्, वर्तते इति शेषः। अत्र नानासाधनैस्तपोवनरूपसाध्यस्य विच्छित्त्या परिज्ञानादनुमानालङ्कारः। 'अनुमानं तु विच्छित्त्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्' इति तल्लक्षणात्। वृत्तं शार्दूलविक्रीडितम्॥ १२॥

टि०—वि० + स्रम्भु + क्तः = विस्रब्धम्। आगतः प्रत्ययो येषां, ते (बहु०) =आगतप्रत्ययाः। पुष्पाणि च फलानि च (द्वन्द्व०) तैः=पुष्पफलैः। समृद्धाः विटपाः येषां, ते (बहु०) समृद्धविटपाः। दयया रक्षिताः (तृ० त०)= दयारक्षिताः। गवां कुलानि-गोकुलानि (ष० त०) तानि धनानीव 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इत्यनेन उपमितकर्म-समासः = गोकुलधनानि। अतिशयेन बहु इति विग्रहे बहुशब्दात् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इत्यनेन 'इष्ठन्' प्रत्यये, 'बहोर्लोपो भू च बहो'रिति भू इत्यादेशे, 'इष्ठस्य यिट् चे'त्यनेन यिटि कृते=भूयिष्ठम्। बहवः आश्रयाः यस्य, स (बहु०)= बह्वाश्रयः।

आश्रमविरुद्धः=आश्रमनियमप्रतिकूलः। स्वैरम् स्वच्छन्दम्, अशङ्कितं यथा स्यात्तथेति भावः। सर्वजनसाधारणम्=सकलजनप्रवेशनीयम्। मन्न्यासः= मदीयो निक्षेपः।

फल-फूलों से लदी हुई हैं तथा उन्हें अनुकम्पा के साथ पाला-पोसा गया है। कपिला गोधन बहुतायत से हैं। दिक्प्रदेश खेतवाले नहीं हैं। यह धुआँ भी कई स्थानों से निकल रहा है अतः निश्चय ही यह तपोवन है॥ १२॥

ब्रह्मचारी—तो प्रवेश करूँ। (प्रवेश करके) अरे! ये तो आश्रम के लोग नहीं हैं। (दूसरी ओर देखकर) यहाँ तपस्वी लोग भी तो हैं। इनके नजदीक जाने में कोई दोष नहीं। अरे ! यहाँ स्त्रियाँ भी हैं।

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान्। सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम।

वासवदत्ता—हं।

पद्मावती—अम्मो! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या। भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो। [अम्मो! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या। भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः।]

काञ्चुकीयः—भोः! पूर्वं प्रविष्टाः स्मः। प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु। निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि।

यौगन्धरायणः—भोः! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य?

ब्रह्मचारी—भोः! श्रूयताम्! राजगृहतोऽस्मि! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि।

निवृत्तपरिश्रमः = अपगतश्रमः। अधिष्ठानम् = निवासस्थानम्।

राजगृहतोऽस्मि = नृपगृहादागतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थम् आम्नायवैशिष्ट्यार्थम्, वेदाध्ययनार्थमिति भावः। वत्सभूमौ = वत्सराज्ये। उषितवान् = वासं कृतवान्।

कञ्चुकी—आप निःशङ्क होकर प्रवेश करें। आश्रम तो सबके लिए बराबर होता है।

वासवदत्ता—हूँ।

पद्मावती—अहो! आर्या परपुरुष को देखना नहीं चाहती हैं। ठीक है, मुझे अपनी धरोहर की रक्षा अच्छी तरह करनी चाहिये।

कञ्चुकी—महाशय! हम यहाँ पहले से हैं। आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।

ब्रह्मचारी—(आचमन करके) बहुत अच्छा, अब मेरी थकावट दूर हुई।

यौगन्धरायण—महाशय! आप कहाँ से आये हैं? कहाँ जाना है? आपका निवास स्थान कहाँ है?

ब्रह्मचारी—महाशय! सुनिये, मैं राजगृह से आ रहा हूँ। वत्सराज्य में

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा ! लावाणकं नाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता, विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

लावाणकसङ्कीर्त्तनेन = 'लावाणके'ति नामग्रहणेन । परिसमाप्ता = पर्यवसिता । अनवसिता = अपरिसमाप्ता । अतिदारुणम् = अतिघोरम् । व्यसनम् = दुःखम् ।

टि०—निवृत्तः परिश्रमो यस्य, स (बहु०) = निवृत्तपरिश्रमः । वस +

लावाणक नामक गाँव है। वहाँ मैं वेद का विशेष अध्ययन करने हेतु कुछ समय तक रहा।

वासवदत्ता—(स्वगत) हाय, लावाणक ! 'लावाणक' नाम लेने से ही मेरा दुःख पुनः नवीन-सा हो गया है।

यौगन्धरायण—क्या अध्ययन समाप्त हुआ ?

ब्रह्मचारी—नहीं समाप्त नहीं हुआ।

यौगन्धरायण—यदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ तो फिर यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?

ब्रह्मचारी—वहाँ बड़ी भीषण विपत्ति आ पड़ी।

यौगन्धरायण—कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते हैं।

यौगन्धरायण—राजा उदयन का नाम सुना है। उन्हें क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम्। ततस्ततः?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मन्दभाआ। [अलीकमलीकं खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति। ततस्ततः?

क्तवतु = उषितवान्। अनवो नवो यथा सम्पद्यते तथा कृतः, नव + च्वि + कृतः = नवीकृतः। वि + अस् + ल्युट् = व्यसनम्।

अभिप्रेता = अभीप्सिता। मृगयानिष्क्रान्ते = मृगयार्थं निर्गते सति। अलीकम् असत्यम्।

अभ्यवपत्तुकामः = परिरक्षितुमिच्छुः। वारितः = निवारितः। सानु-

ब्रह्मचारी अवन्ति-राजकुमारी उनकी अतिप्रिया पत्नी थी।

यौगन्धरायण—होगी। फिर क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—फिर राजा के शिकार के लिए निकल जाने पर वह गाँव में आग लग जाने के कारण जल मरी।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह झूठ है बिल्कुल झूठ। मैं अभागी तो जी रही हूँ।

यौगन्धरायण—फिर, फिर क्या हुआ?

ब्रह्मचारी—तब मंत्री यौगन्धरायण उसे बचाने के लिए उसी आग में कूद पड़ा।

यौगन्धरायण—हाँ ठीक है, कूद पड़ा। उसके बाद?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणु-क्कोसत्तणं। [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परि-ष्वज्य राजा मोहमुपगतः।

क्रोशत्वम्-दयालुत्वम्।

टि०—मृगयार्थं निष्क्रान्तः, तस्मिन् (सुप्सुपा०)=मृगयानिष्क्रान्ते। अभ्यवपत्तुं कामो यस्य, सः (बहु०)=अभ्यवपत्तुकामः। 'तुं काममनसोरपी'-त्यनेन मकारलोपः। अनुक्रोशेन सहितः (तुल्ययोग-बहु०), सानुक्रोशः, तस्य भावः सानुक्रोशत्वम्।

शरीरोपभुक्तानि=देहोपभुक्तानि। दग्धशेषाणि = पूर्वं दग्धानि ततश्शेषाणि, अवशिष्टानि, अर्धदग्धानि, अग्निना विकृतानीति भावः। आभरणानि=आभू-षणानि। परिष्वज्य=आलिङ्ग्य। मोहमुपगतः=मूर्च्छितो जातः। सकामः= सफलाभिलाषः।

ब्रह्मचारी उसके बाद जब राजा शिकार से लौटे तो इस वृत्तान्त को सुनकर उन दोनों के वियोग में सन्तप्त होकर प्राण-त्याग की इच्छा से उसी आग में कूदकर मरने के लिए तत्पर हो गये किन्तु मन्त्रियों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें रोका।

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं जानती हूं। आर्यपुत्र की मुझ पर जो अनुकम्पा है उसे मैं अच्छी तरह जानती हूं।

यौगन्धरायण फिर क्या हुआ?

ब्रह्मचारी तब वासवदत्ता के पहने हुए अधजले आभूषणों को सीने से लगाकर राजा शोक से बेहोश हो गये।

सब—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणो होदु । [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सूण्णं विअ मे हिअअं । [दिष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।]

यौगन्धरायणः ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसो-

प्रकृत्या–स्वभावेन । प्रतिलब्धसंज्ञः – सम्प्राप्तचेतन्यः । संवृत्तः = सञ्जातः । दिष्ट्या भाग्येन । ध्रियते=अवतिष्ठते । शून्यमिव सज्ञारहितमेव ।

महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः = भूतलावलुण्ठनधूलिश्वेतरक्तकायः, धूलिधूसरितगात्र इत्यर्थः । प्रलपितवान् = असम्बद्धवचनानि भाषितवान् ।

सभी—हाय ।

वासवदत्ता—(स्वगत) अब आर्य यौगन्धरायण पूर्ण मनोरथ होवें ।

चेटी—राजकुमारी ! यह देवी तो रो रही है ।

पद्मावती—दयालु स्वभाव की होंगी ।

यौगन्धरायण—हाँ, हाँ । मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु हैं । फिर, फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—उसके बाद वे धीरे-धीरे होश में आये ।

पद्मावती—(स्वगत) भाग्य से ही जीवित है । 'बेहोश हो गये' यह सुनकर तो मेरा हृदय सूना-सा हो गया था ।

यौगन्धरायण—फिर, फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर जमीन पर लोटने के कारण भूरे शरीर वाले वे राजा

त्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः

टि०—शरीरे उपभुक्तानि (स० त०)=शरीरोपभुक्तानि । पूर्वदग्धानि पश्चाच्छेषाणि, तानि=दग्धशेषाणि । 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति पूर्वकालसमासः । प्रतिलब्धा संज्ञा येन (बहु०) सः = प्रतिलब्धसंज्ञः । 'धृङ् उपस्थाने' धातोर्लटि=ध्रियते । मह्याः तलम् (ष० त०) महीतलम्, तस्मिन् परिसर्पणम् (स० त०) महीतलपरिसर्पणम्, पाटलं शरीरं यस्य स (बहु०)=पाटलशरीरः, पांसुभिः पाटलशरीरः (तृ० त०) =पांसुपाटलशरीरः, महीतलपरिसर्पणेन पांसुपाटलशरीरः (तृ० त०)=महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः ।

अन्वयः—इदानीम्, तादृशाः, चक्रवाकाः, न, एव । स्त्रीविशेषैः, वियुक्ताः, अन्ये, अपि, न, एव । सा, स्त्री, धन्या, याम्, भर्त्ता, तथा, वेत्ति, हि, भर्तृस्नेहात्, सा, दग्धा, अपि, अदग्धा ॥ १३ ॥

व्या०—इदानीम् = अधुना, राज्ञो दुःखावस्थायामिति भावः । तादृशाः— उदयनसदृशाः । चक्रवाकाः = कोकाः, खगविशेषा इति यावत् । 'कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः' इत्यमरः । न एव = न वर्तन्ते । स्त्रीविशेषैः = सौन्दर्यादिगुणसम्पन्नैः स्त्रीरत्नैः । वियुक्ताः = विरहिताः । अन्येऽपि = अपरेऽपि । तादृशाः = तत्सदृशाः । नैव = नैव वर्त्तन्ते । सा = पूर्वोक्ता । स्त्री = नारी ।

एकाएक उठकर "हाय वासवदत्ता ! हाय अवन्ति-राजकुमारी ! हाय प्रिये ! हाय प्रियशिष्ये ।" ऐसा बहुत—कुछ बकते रहे । अधिक क्या कहूँ ?—

चकवे भी वैसे दुःखी नहीं हैं और न ही कोई अन्य प्रेमी, जो अपनी विशिष्ट स्त्रियों से वियुक्त हों, वैसे दुःखी हैं । वह स्त्री धन्य है, जिसे पति वैसा चाहता है । चूँकि पति का उसके प्रति इतना प्रगाढ प्रेम है, अतः वह जल कर भी नहीं जली है ॥ १३ ॥

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १३ ॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम् । स हि

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

धन्या = सुभगा । याम् = स्त्रियम्, वासवदत्तामिति भावः । भर्ता = पतिः, उदयन इति भावः । तथा = तेन प्रकारेण । वेत्ति = स्मरति । हि = यतः । भर्तृस्नेहात् = पतिप्रणयात् । सा = पूर्वोक्ता स्त्री, वासवदत्तेति भावः । दग्धाऽपि = भस्मीकृताऽपि । अदग्धा = न भस्मीकृता । मृतापि अमृतेवेति भावः । विरोधाभासोऽलङ्कारः । शालिनीवृत्तम् ॥ १३ ॥

पर्यवस्थापयितुम् = प्रकृतौ स्थापयितुम् । यत्नवान् = प्रयत्नशीलः ।

टि०—ते इव दृश्यन्ते इति तद्, पूर्वकाद् दृशधातोः 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्चे'त्यनेन कनि, 'आ सर्वनाम्नः' इत्यात्वे = तादृशाः । धनं लब्धीति, 'धन' शब्दात् 'धनगण लब्धा' इत्यनेन यत्प्रत्यये = धन्या । बिभर्तीति, भृञ् + तृच् = भर्त्ता । भर्तुः स्नेहः (ष० त०), तस्मात् = भर्तृस्नेहात् ।

अन्वयः—(स हि) अनाहारे, तुल्यः, प्रततरुदितक्षामवदनः, नृपतिसमदुःखम्, शरीरे, संस्कारम्, परिवहन्, दिवा, वा, रात्रौ, वा, यत्नैः, नरपतिम्, परिचरति । नृपः, प्राणान्, त्यजति, यदि, तस्य, अपि, सद्यः, उपरमः ॥ १४ ॥

यौगन्धरायण—अच्छा महोदय । तो क्या उस राजा को प्रकृतिस्थ करने के लिए कोई मन्त्री प्रयत्नशील नहीं है ?

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नामक मंत्री उन्हें धीरज बंधाने को अत्यधिक प्रयत्न कर रहा है । वह तो—

अनशन में वह राजा के सदृश है । निरन्तर रोते रहने से उसका मुखमण्डल निष्प्रभ हो गया है । राजा के समान दुःख पूर्वक शरीर की वेश-भूषा बनाये हुए

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपति
   नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो। [दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्। कुतः—

व्या०—(इहि = अमात्यो रुमण्वान्) अनाहारे=अनशने । तुल्यः= तत्सदृशः । यथा राज्ञः उदयनस्य भोजनेऽरुचिस्तथैव राजदुःखदुःखितस्य तस्यापि भोजनेऽरुचिरिति भावः । प्रततरुदितक्षामवदनः = सततरोदनक्षीणवदनः । नृपतिसमदुःखम् = राजसदृशकष्टम् यथा तथा । शरीरे = देहे । संस्कारम् = स्नानादिकम् । परिवहन्= धारयन् । दिवा = दिवसे वा = अथवा । रात्रौ वा = निशि वा । अहर्निशमिति तत्पर्यम् । यत्नैः=प्रयासैः । नरपतिम् = भूपतिम्, उदयनमिति भावः । परिचरति = परिषेवते । नृपः राजा, उदयन इत्यर्थः । प्राणान् = असून् । त्यजति यदि=जहाति चेत् । तदा, तस्यापि = मन्त्रिणो रुमण्वतोऽपि । सद्यः = सपदि । उपरमः = मृत्युः, भवेदिति शेषः । स तु सर्वात्मना उदयनमनुसरतीति भावः । शिखरिणीवृत्तम् ॥१४॥

सुनिक्षिप्तः = उपयुक्तस्थाने सुस्थापितः । आर्यपुत्रः = महाराज उदयनः ।

महद्भारम् = कर्त्तव्यगौरवम् । उद्वाहयति = धारयति, सम्पादयतीत्यर्थः ।

टि०—न आहारः (नञ् स०) तस्मिन् = अनाहारे । प्रततं च तद् रुदितम् (क० धा०), क्षामं वदनं यस्य स (बहु०), प्रततरुदितेन क्षामवदनः (तृ० त०)= प्रततरुदितक्षामवदनः । परि+वह्+लट्, शतृ = परिवहन् ।

है। अहर्निश परिश्रम के साथ राजा की परिचर्या कर रहा है। यदि राजा प्राण-त्याग कर दें तो उसका भी तत्काल प्राणान्त हो जाय ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—(स्वगत) भाग्य से महाराज इस समय योग्य व्यक्ति की देख-रेख में हैं।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहो ! रुमण्वान् बहुत बड़े बोझ को सम्हाल रहा है। क्योंकि—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥ १५ ॥

(प्रकाशम्) अथ भोः ! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रह्मचारी तदिदानीं न जाने । 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम् । ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि ।

अन्वयः—हि, अयम्, भारः, सविश्रमः, तस्य, तु, श्रमः, प्रसक्तः । हि, तस्मिन्, सर्वम्, अधीनम्, यत्र, नराधिपः, अधीनः ॥ ५ ॥

व्या० हि = निश्चयेन । अयम् = एष । भारः = वासवदत्तारक्षणात्मको भारः । सविश्रमः = विश्रान्तियुक्त एव, वर्तते इति शेषः । तस्य तु = रुमण्वतस्तु । श्रमः = राजरक्षणरूपः परिश्रमः । प्रसक्तः = संलग्नः । हि = यस्माद्धेतोः । तस्मिन् = अमात्ये रुमण्वति । सर्वम् = सकलम् । अधीनम् = आयत्तम् । यत्र = यस्मिन् रुमण्वति । नराधिपः = राजा, उदयन इति भावः । अधीनः = आयत्तः । यौगन्धरायणः स्वीयभारापेक्षया रुमण्वतो भारस्य गुरुतरत्वं सूचयतीति भावः । अर्थान्तरन्यासः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ १५ ॥

पर्युषितम् = स्थितम् । कुपितम् = रुष्टम् । अपक्रान्तम्=निष्क्रान्तम् । प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव अस्तंगतचन्द्रतारकमिव । अरमणीयः = अमनोहरः ।

टि०—वि + श्रमु + घञ् = विश्रामः । 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः'-

---

मेरा यह भार कुछ कम हुआ है, किन्तु उसका भार वैसा ही बना हुआ है । सबकुछ उसी पर आश्रित है जिस पर स्वयं राजा आश्रित है ॥ १५ ॥

(प्रकट) महाशय ! अब क्या राजा प्रकृतिस्थ हो गये हैं ?

ब्रह्मचारी - अभी मैं यह नहीं जानता । 'यहाँ उसके साथ मैं हँसा था', 'यहाँ उसके साथ मैंने वार्तालाप किया था', 'यहाँ उसके साथ मैं बैठा था',

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पससीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि। [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती—(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम्। [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।]

ब्रह्मचारी—आ पृच्छामि भवन्तौ। गच्छामस्तावत्।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये।

ब्रह्मचारी - तथाऽस्तु।

रिति वृद्धिनिषेधः। नराणामधिपः (ष० त०) = नराधिपः। परि+वस्+क्त= पर्युषितम्। नक्षत्राणि चन्द्रश्च (द्वन्द्व) इति नक्षत्रचन्द्राः, प्रोषिताः नक्षत्रचन्द्राः यस्मात्, तत् (बहु०) = प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्।

प्रशस्यते = स्तूयते। मन्त्रितम् = विमृष्टम्। अर्थसिद्धये = प्रयोजनसाफल्यार्थम्।

'यहाँ उससे मैं रूठा था', 'यहाँ उसके साथ मैं सोया था'—इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को मन्त्री बड़े प्रयत्न से उस गाँव से निकालकर कहीं दूर ले गये। फिर, राजा के जाने के बाद वह गाँव चाँद तारों से विहीन आकाश की भाँति सौन्दर्यहीन हो गया। फिर, मैं भी वहाँ से निकल गया।

तापसी—निश्चय ही वह राजा बड़ा गुणवान् होगा जिसकी ऐसी प्रशंसा यह आगन्तुक भी कर रहा है।

चेटी—राजकुमारी ! क्या दूसरी स्त्री उसके हाथ लगेगी ?

पद्मावती—(स्वगत) मेरे मन की बात इसने पूछी है।

ब्रह्मचारी—मैं आप दोनों से विदा माँगता हूँ। अब मैं जाता हूँ।

दोनों—अपने प्रयोजन की सफलता के लिए जाइए।

ब्रह्मचारी—वैसा ही हो। (जाता है)

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल !

पद्मावती—अय्यस्स भइणिया अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि। [आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

यौगन्धरायणः—तथास्तु ।

(निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

अभ्यनुज्ञातः = आज्ञप्तः सन् । उत्कण्ठिष्यते = समुत्सुका भविष्यति ।

टि०—प्र + शंसु स्तुतौ + कर्मणि लट् + यक् = प्रशस्यते। 'मंत्रि गुप्तपरिभाषणे' + भावे क्तः = मंत्रितम् । अर्थस्य सिद्धिः (ष० त०), तस्मै = अर्थसिद्धये । अभि + अनु + ज्ञा + क्तः = अभ्यनुज्ञातः ।

यौगन्धरायण—अच्छा ! मैं भी देवी की अनुमति से जाना चाहता हूँ ।

कंचुकी—ये आपकी अनुमति से जाना चाहते हैं ।

पद्मावती—आपकी बहन आपके विना व्याकुल होगी ।

यौगन्धरायण—सज्जन व्यक्ति के आश्रय में रहकर यह नहीं व्याकुल होगी । (कञ्चुकी को देखकर) अच्छा, तो हम चलते हैं ।

कंचुकी—जाइये । पुनः दर्शन दीजियेगा ।

यौगन्धरायण—अच्छा । (चला जाता है ।)

कंचुकी—अब भीतर प्रवेश करने का समय हो गया ।

पद्मावती—आर्य ! मैं प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि । [जाते तव सदृश भर्तारं लभस्व ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव-अहं । [आर्ये ! वन्दे-तावदहम् ।]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि । [त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय ।]

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । [अनुगृहीतास्मि] ।

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इतो भवति ! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

भर्तारम्=पतिम् । लभस्व=प्राप्नुहि । अचिरेण=शीघ्रम् । समासादय=प्राप्नुहि ।

अन्वयः—खगाः, वासोपेताः । मुनिजनः, सलिलम्, अवगाढः । प्रदीप्तः,

---

तापसी—बेटी ! तुम अपने ही अनुकूल पति को प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—तुम भी शीघ्र ही अपने पति को पुनः प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—मैं अनुगृहीत हुई ।

कञ्चुकी—तो आइये-इधर-उधर आप देवियाँ । इस समय—पक्षी अपने-अपने घोंसलों में चले गये, मुनि लोग स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हो गये हैं, यज्ञाग्नि प्रज्वलित होकर शोभायमान हो रही है, तपोवन में यज्ञ-धूम व्याप्त हो रहा है, दूर से गिरा हुआ और समेट लिया है किरणों को जिसने ऐसा वह सूर्य भी अपने रथ को मोड़कर धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी की ओर जा रहा है ।

(सभी निकल जाते हैं ।)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणासि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअ भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचुलिएणं वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्स । [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र

अग्निः भाति । धूमः, मुनिवनम्, प्रविचरति । दूरात्, परिभ्रष्टः, असौ, रविः, अपि, संक्षिप्तकिरणः, (सन्) रथम्, व्यावर्त्य, शनैः, अस्तशिखरम् प्रविशति ॥ १६ ॥

व्या०—खगाः = पक्षिणः । वासोपेताः = नीडंप्राप्ताः । मुनिजनः = तापसजनः । सलिलम् = जलम् । अवगाढः = अवतीर्णः, स्नानार्थमिति भावः । प्रदीप्तः = प्रज्वलितः । अग्निः = वह्निः । भाति = प्रकाशते । धूमः = यज्ञधूमः । मुनिवनम् = तपोवनम् । प्रविचरति = व्याप्नोति । दूरात् = दूरप्रदेशात् । परिभ्रष्टः = च्युतः । असौ = अयम् । रविः अपि = सूर्योऽपि । संक्षिप्तकिरणः = संकुचितकरः सन् । रथम् = स्यन्दनम् । व्यावर्त्य = निरुध्य । शनैः = मन्दं यथा स्यात्तथा । अस्त-

---

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—कुञ्जरिका ! ओ कुञ्जरिका ! राजकुमारी पद्मावती कहाँ है ? क्या कहा ? "यह राजकुमारी माधवी लता कुञ्ज के पास गेंद खेल रही है" ? अच्छा तो मैं राजकुमारी के पास चलती हूँ । (घूमकर, देखकर) ओहो ? यह कान की बालियों को ऊपर उठाये हुए, परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से विचित्र और थकने से सुन्दर दीखने वाले मुँह से उपलक्षित होकर इधर ही आ रही हैं । तो मैं भी इनके पास चलूँ । (जाती है)

(प्रवेशक समाप्त)

भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति! यावदुपसर्प्स्यामि]

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह।)

वासवदत्ता—हला! एसो दे कन्दुओ! [हला। एष ते कन्दुकः।]

पद्मावती—अय्ये! भोदु दाणिं एत्तअं। [आर्ये! भवत्विदानीमेतावद्।]

शिखरम्=अस्ताचलशृङ्गम्। प्रविशति - प्रवेशं करोति, गच्छतीत्यर्थः। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥ १६ ॥

टिप्पणी—प्र+विश्+तुमुन्=प्रवेष्टुम्। अनु+ग्रह+क्त+टाप्=अनुगृहीता। खे गच्छन्तीति, ख-उपपदपूर्वकाद् गम्धातोः 'अन्यत्रापि दृश्यते' इत्यनेन डप्रत्यये=खगाः। वासे उपेताः (स० त०)=वासोपेताः। अव+गाह+क्त=अवगाढः। संक्षिप्ताः किरणाः येन (बहु०) सः=संक्षिप्तकिरणः। वि+आङ्+वृत+णिच्+क्त्वा, ल्यप्=व्यावर्त्य।

इति प्रथमोऽङ्कः

—:※:—

भर्तृदारिका=राजपुत्री। भणसि=कथयसि। माधवीलतामण्डपस्य=वासन्तीलतिकाकुञ्जस्य। अम्मो=विस्मयसूचकमव्ययमिदम्। उत्कृतकर्णचूलिकेन=ऊर्ध्वस्थापितकर्णाभरणविशेषेण। व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन=क्रीडापरिश्रमसमुद्भूतघर्मजलवैचित्र्ययुक्तेन। परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन=परिश्रान्तियुक्तसुन्दरविलोकनेन। क्रीडन्ती=खेलन्ती। उपसर्प्स्यामि=समीपे गच्छामि।

(परिजनों एवं वासवदत्ता सहित गेंद खेलती हुई पद्मावती का प्रवेश)

वासवदत्ता—सखी यह रही तुम्हारी गेंद।

पद्मावती—आर्ये! अब इतना ही रहने दो।

वासवदत्ता—हला ! अदिचिर कन्दुएण कोलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता। [हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ।]

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ। णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो। [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावत् अयं कन्याभावरमणीयः कालः।]

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं म ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

टि०—उत्क्षते कर्णचूलिके यस्मिन् (बहु०) तेन उत्क्षतकर्णचूलिकेन। व्यायामेन सञ्जातः (तृ० त०), स्वेदस्य बिन्दवः (ष० त०), व्यायामसञ्जाताश्च ते स्वेदबिन्दवः (क० धा०), तैः विचित्रितेन (तृ० त०), व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन। परिश्रमणं परिश्रान्तम् (भावे क्तः) रमणीयं दर्शनं यस्य, तत् (बहु०) = रमणीयदर्शनम्, परिश्रान्तेन रमणीयदर्शनम्, (तृ० त०) तेन = परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन। क्रीड + शतृ + ङीप् = क्रीडन्ती। उप + सृ + लृट् = उपसर्प्स्यामि। आसन्नभविष्यति लट्प्रयोगः, 'उपसर्पामि' इति पाठे 'वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा' इत्यनेन वर्तमानसमीपे भविष्यति लट् प्रयोगः। अधिकः सञ्जातो रागो ययोः (बहु०) तौ = अधिकसञ्जातरागौ।

अतिचिरम् = दीर्घकालं यावत्। अधिकसञ्जातरागौ = प्रचुरोद्भूतरक्तिमौ। परकीयाविव = अन्यदीयाविव। निवर्त्यताम् = समाप्यताम्। कन्याभावरमणीयः = कुमारिकाभावमनोहरः। अपहसितुम् = उपहासं कर्तुम्। निध्यायसि = पश्यसि। 'आलोकनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः। वरमुखम् = सुन्दरं वदनम्।

वासवदत्ता—सखी ! बहुत देर तक गेंद खेलने से अधिक लाल हुए तुम्हारे हाथ पराये से हो गये हैं।

चेटी—राजकुमारी खेलें, अभी और खेलें। बचपन के इस सुन्दर समय को आनन्द में बितावें।

पद्मावती—आर्ये ! क्यों इस समय मानो मेरी हँसी उड़ाने के लिए तुम देख रही हो ?

वासवदत्ता—णहि णहि ! हला ! अधिअं अज्ज सोहदि। अभिदो बिअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि। [नहि नहि ! हला ! अधिकमद्य शोभते। अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि।]

पद्मावती—अवेहि। मा दाणिं मं ओहस। [अपेहि। मेदानी मामपहस।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणबहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआपज्जोदा णाम। तस्स परिमाणणिव्वुतं णामहेअं महासेणोत्ति। (अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य परिमाणनिर्वृत्त नामधेयं महासेन इति।)

अपेहि = दूरीभव। मेदानी मामुपहस = अधुना ममोपहासं मा कार्षीः। तूष्णीका = मौनशीला। भविष्यन्महासेनवधु = भाविप्रद्योतस्नुषे। 'समाः स्नुषाजनीवध्वः' इत्यमरः। परिमाणनिर्वृत्तम् परिमितिनिष्पन्नम्। सैन्यपरिमाणं तत्र।

टि०—कन्यायाः भावः (ष० त०), तेन रमणीयः (तृ० त०) = कन्याभावरमणीयः। निर् + वृत + णिच् + कर्मणि लोट् = निवर्त्यताम्। नि + 'ध्यै + लट् = निध्यायसि। वरं च तन्मुखम् (क० धा०) = वरमुखम्। अप + 'इण् गतौ' + लोट्, हि = अपेहि। तूष्णीम् + कन् + निपातनात् स्त्रियामाप् = तूष्णीका।

वासवदत्ता—नहीं नहीं सखी ! आज तुम्हारा मुख अधिक सुन्दर लग रहा है। आज मुझे तुम्हारा मुख सब ओर से सुन्दर दिखाई दे रहा है।

पद्मावती—हटो ! इस समय मेरा उपहास मत करो।

वासवदत्ता अच्छा तो महासेन की होने वाली पुत्रवधू ! लो यह मैं चुप हो गयी।

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—उज्जयिनी का राजा प्रद्योत है। उसकी सेना के परिमाण से उसका नाम 'महासेन' पड़ा है।

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रञ्जा सह सम्बन्धं णेच्छदि। [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।]

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्य गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि। [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन ?]

चेटी—साणुक्कोसो त्ति। [सानुक्रोश इति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि। अअ वि जण एव्वं उम्मादिदो। [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।]

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

हेतुरित्यर्थः। अभिलषति ! कामयते। सानुक्रोशः = सदयः। उन्मादितः = उन्मादं प्रापितः। विरूपः = कुरूपः, असुन्दर इति भावः।

चेटी—राजकुमारी उस राजा के साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं चाहती हैं।

वासवदत्ता—तो फिर अब किसके साथ चाहती हैं ?

चेटी—वत्सदेश के राजा उदयन हैं। राजकुमारी उनके गुणों को चाहती हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र को पति के रूप में चाहती हैं। (प्रगट) किस कारण से ?

चेटी—इसलिए कि वे दयालु हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) जानती हूँ, जानती हूँ। इस व्यक्ति को (मुझे) भी इसी प्रकार उन्मत्त किया गया था।

चेटी—राजकुमारी ! यदि वे राजा कुरूप हों तो ?

वासवदत्ता—णहि णहि । दसणीओ एव्व । [नहि नहि । दर्शनीय एव ।]

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुव जाणासि ? [आर्ये ! कथं एवं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्) हला ! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि । [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।]

पद्मावती—जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणीभिरामं खु शोभग्गं णाम । [युज्यते । न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः । सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।]

(ततः प्रविशति धात्री ।)

आर्यपुत्रपक्षपातेन = आर्यपुत्रासक्त्या । अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः । समुदाचारः = व्यवहारः, शिष्टाचार इति यावत् । उज्जयिनीयः = उज्जयिनीवासी । मन्त्रयते = कथयति । युज्यते = संभाव्यते ।

उज्जयिनीदुर्लभः = उज्जयिनीदुष्प्रापः । सर्वजनमनोभिरामम् = सफलजनहृदयाह्लादकम् ।

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, वे तो दर्शनीय हैं ।

पद्मावती—आर्ये ! तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र के प्रति अतिप्रेम के कारण मैं औचित्य का उल्लंघन कर बैठी । अब क्या करूँ ? अच्छा । (प्रगट) सखी ! उज्जयिनी के लोग ऐसा ही कहते हैं ।

पद्मावती—सम्भव है । उज्जयिनी के लोगों ने उन्हें देखा है । सौन्दर्य वही है जो सब लोगों के मन को आह्लादित करता हो ।

(धात्री का प्रवेश)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए! दिण्णासि। [जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके! दत्तासि।

वासवदत्ता—अय्ये! कस्स? [आर्ये! कस्मै?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स। [वत्सराजायोदयनाय।]

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ? [अथ कुशली स राजा?]

धात्री—कुसली ओ आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ। [कुशली स आगतः। तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।]।

वासवदत्ता—अच्चाहिदं? [अत्याहितम्।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं? [किमत्रात्याहितम्?]

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि। तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि

कुशली - कुशलयुक्तः। प्रतीष्टा = स्वीकृता।

टि० - उत् + मद् + णिच् + क्त = उन्मादितः। सम् + उद् + आ + चर् + घञ् = समुदाचारः। उज्जयिन्यामयमिति विग्रहे 'वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या' इत्यनेनोज्जयिनीशब्दस्य वृद्धसंज्ञायाम् 'तस्येदम्' इत्यस्याधिकारे 'वृद्धाच्छ' इति छप्रत्यये, ईयादेशे = उज्जयिनीयः। विगतं रूपं यस्मात्, स (बहु०) = विरूपः। सर्वे च ते जनाः (क० धा०), तेषां मनः (ष० त०) सर्वजनमनसः अभिरामम् (ष० त०) सर्वजनमनोभिरामम्। अभि + रम् + घञ् = अभिरामम्। कुशलं अस्ति अस्येति कुशलशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति इनिप्रत्यये = कुशली। प्रति + इष् + क्त + स्त्रियामाप् प्रतीष्टा।

धात्री—राजकुमारी की जय हो। राजकुमारी! तुम दे दी गयी हो।

वासवदत्ता—आर्ये! किसे?

धात्री—वत्सराज उदयन को।

वासवदत्ता—अब वे सकुशल तो हैं?

धात्री—हाँ सकुशल हैं और यहाँ आये भी हैं। उन्होंने राजकुमारी को स्वीकार भी कर लिया है।

वासवदत्ता—ओह, बहुत बुरा हुआ।

धात्री—इसमें क्या बुरा हुआ।

वासवदत्ता—नहीं कुछ नहीं, किन्तु वासवदत्ता के विरह में ऐसा संतप्त

त्ति। [न खलु किञ्चित्। तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति।]

धात्री—अय्ये! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति। [आर्ये! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।]

वासवदत्ता—अय्ये! सअं एव्व तेण वरिदा? [आर्ये स्वयमेव तेन वरिता?]

धात्री—णहि णहि। अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविञ्जाणवओरूअं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा। [नहि नहि। अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्व! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो! [एवम्! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः।]

(प्रविश्यापरा)

अत्याहितम् = अयुक्तम्, अतिरभसकृतं कर्मेति भावः। उदासीनः = तटस्थः। आगमप्रधानानि = शास्त्रवचनप्रमुखानि। सुलभपर्यवस्थानानि = सुप्राप्यसहजस्वभावानि। महापुरुषहृदयानि = श्रेष्ठजनचेतांसि। वरिता = अङ्गीकृता।

अन्यप्रयोजनेन = अन्यकारणेन। अभिजनविज्ञानवयोरूपम् = कुलकलाज्ञानावस्थासौन्दर्यम्। महाराजेन-दर्शकेन। अनपराद्धः=निरपराधः। त्वरताम्=शीघ्रतां करोत्वित्यर्थः। सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। कौतुकमङ्गलम् = उद्वाहसूत्रवन्धनादिरूपं शुभकार्यम्।

होकर अब एकाएक उसके प्रति उदासीन हो गये।

धाय—आर्ये! महापुरुषों के हृदय शास्त्रोपदेशों को मान्यता देते हुए सहज ही स्वाभाविक दशा में आ जाते हैं।

वासवदत्ता—आर्ये! क्या उन्होंने स्वयं ही पद्मावती को वरण किया?

धाय—नहीं नहीं! अन्य कार्यवश आये हुए उनके कुल, ज्ञान, आयु और रूप को देखकर स्वयं महाराज ने उन्हें पद्मावती दे दी।

वासवदत्ता—(स्वगत) यदि ऐसा है तो आर्यपुत्र बिल्कुल निरपराधी हैं।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या। अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं। अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माणं भट्टिणी भणादि। [त्वरतां त्वरतां तावदार्या। अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्। अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति।]

वासवदत्ता (आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअ। [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम्।]

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्तृदारिका।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

भट्टिनी = महाराज्ञी। भणति = कथयति, आदिशतीत्यर्थः। त्वरते = शीघ्रतां कुरुते। *अन्धीकरोति* = प्रतिपत्तिशून्य करोतीति भावः।

टि०—अति + आ + धा + क्त = अत्याहितम्। आगमः प्रधानं येषां, तानि (बहु०)= आगमप्रधानानि। सुलभं पर्यवस्थानं येषां, तानि (बहु०)= सुलभपर्यवस्थानानि। परि + अव + स्था + ल्युट् = पर्यवस्थानम्। 'ञित्वरा संभ्रमे' धातोर्लोटि=त्वरताम्। अनन्धम् अन्धं यथा सम्पद्यते तथा करोति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः' इति च्विः, 'अस्य च्वौ' इत्यकारस्येत्वे = अन्धीकरोति।

इति द्वितीयोऽङ्कः

चेटी—आर्य। जल्दी करें जल्दी करें। आज ही अच्छा मुहूर्त है। हमारी महारानी की आज्ञा है कि आज ही कौतुकमङ्गल करना है।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह जैसे-जैसे जल्दी करती है, वैसे-वैसे ही मेरे हृदय को अन्धा बना रही है।

धाय—आइए राजकुमारी, आइए।

(सब लोगों का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं। जाव दाणिं भाअदेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि। (परिक्रम्य) अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवृत्तो जा उवविसामि। (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ। ण खु अहं वाणाणि पदित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ। [विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिवृ‌र्त्तं दुःख विनोदयामि। अहो! अत्याहितम्। आर्य-

---

विवाहामोदसङ्कुले-पद्मावतीपरिणयानन्दयुक्तजनव्याप्ते। अन्तःपुरचतुःशाले = स्त्र्यागारसज्जवने। 'स्त्र्यागारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम्। शुद्धान्तश्चावरोधश्च…।' इत्यमरः।—'सज्जवनं त्विदम्। चतुःशालम्' इत्यमरः। प्रमदवनम् = अन्तःपुरोचितम्। 'प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः। भागधेयनिवृ‌र्त्तम् = दुर्भाग्यप्राप्तम्। दुःखम् = प्रियतमवियोगजन्यं कष्टम्। विनोदयामि =

(चिन्तामग्न वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाहोत्सव के उल्लास से परिपूर्ण रनिवास की चौखण्डी में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ अन्तःपुर के उद्यान में आयी हूँ। इस समय दुर्भाग्य से निष्पन्न दुःख को कुछ हल्का करूँ। (घूमकर) ओह, बहुत बुरा हुआ। आर्यपुत्र भी पराये हो गये। अच्छा बैठ जाऊँ। (बैठकर) धन्य है वह चकवी जो प्रिय से वियुक्त होकर नहीं जी सकती, किन्तु मैं अपने प्राणों को नहीं छोड़ रही हूँ। मैं अभागिन 'पति को पुनः देख पाऊँगी' इसी अभिलाषा से जी रही हूँ.

पुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावत् उपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।]

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी।)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो! इयं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा। जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये! अवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि। [क्व नु खलु गता आर्या अवन्तिका? अम्भो! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रक वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! आवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।]

तद्विषयकचिन्तया किञ्चिदुपशमयामि। चक्रवाकवधूः = कोकभार्या। धन्या = सौभाग्यवती। अन्योन्यविप्रयुक्ता = परस्परवियुक्ता।

चिन्ताशून्यहृदया = आध्याननिर्बोधमानसा। नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेव = तुषारसमाच्छादितचन्द्रकलेव। 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः। अमण्डितभद्रकम् = अनलंकृतमपि मनोहरम्। वेषम् = परिधानम्। प्रियङ्गुशिलापट्टके=फलिनीप्रस्तरखण्डे। 'प्रियङ्गु फलिनी फली' इत्यमरः। अन्विष्यामि = गवेषयामि।

टि०—चतसृणां शालानां समाहारः (समा० द्विगु०) इति चतुःशालम्, अन्तःपुरस्य चतुःशालम् (ष० त०) = अन्तःपुरचतुःशालम्। शून्यं हृदयं यस्याः, सा (बहु०), चिन्तया शून्यहृदया (तृ० त०) = चिन्ताशून्यहृदया। नीहारेण

(हाथ में फूलों को लिए हुए चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या अवन्तिका भला कहाँ चली गयी? (घूमकर और देखकर) अहो, यह चिन्ता से शून्य हृदयवाली, कुहरे से आच्छादित चन्द्रकिरण जैसी, अलंकृत न होने पर भी सुन्दर परिधान को धारण करती हुई प्रियंगुलता के नीचे शिलापट्ट पर बैठी हुई हैं। अच्छा, इनके पास चलूँ। (पास जाकर) आर्या अवन्तिका भला कब से मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—किं णिमित्तं ? [किं निमित्तम् ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउत्ता त्ति इम दाव कोदुअमालिअं गुह्यदु अय्या। [अस्माकं भर्त्रिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?]

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए। [अस्माकं भर्तृदारिकायै।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो अकरुणा खु इस्सरा। [एतदपि मया कर्त्तव्यमासीत्। अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः।]

चेटी—अय्ये ! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ। एसो जाभादुओ मणिभूमिए ह्लाअदि। सिग्घं दाव गुह्यदु अय्या। [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्त-

---

प्रतिहताः (तृ० त०), सा चासौ चन्द्रलेखा (क० धा०) = नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा। न मण्डितः (नञ् स०) अमण्डितः, भद्र एव भद्रकः इति स्वार्थे कप्रत्ययः, अमण्डितश्चासौ भद्रकः (क० धा०) तम् = अमण्डितभद्रकम्।

महाकुलप्रसूता = उत्कृष्टवंशोद्भवा। स्निग्धा = प्रिया। कौतुकमालिकाम् = वैवाहिकस्रजम्, विवाहमालामित्यर्थः। गुम्फतु = ग्रथ्नातु। गुम्फितव्यम्=ग्रथनीयम्। अकरुणाः = निर्दयाः। ईश्वराः = देवाः, भाग्यविधातारः इति भावः।

वासवदत्ता—किसलिए ?

चेटी—हमारी महारानी ने कहा है कि आप उच्चवंश में उत्पन्न हुई हैं, स्नेह रखती हैं तथा चतुर हैं अतः आप ही इस विवाह-माला को गूँथे।

वासवदत्ता—किसके लिए गूँथनी है ?

चेटी—हमारी राजकुमारी के लिए।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह भी मुझे करना था। देवता निश्चय ही निर्दय हैं !

चेटी—आर्ये ! अब कुछ और मत सोचें। जामाता रत्न-भूमि में नहा रहे हैं। आप शीघ्र इसे गूँथ दें।

यित्वा । एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं । (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी—आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहल्लेण अ । [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।]

वासवदत्ता—कीदिसो—जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो । [आर्ये, भणामि तावत्, नेदृशो दृष्टपूर्वः ।]

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?]

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो भाम खामदेवो त्ति । [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता—होदु एत्तअं । [भवत्वेतावत् ।]

मणिभूम्याम् = मणिमयवेदिकायाम् । स्नायति = स्नानं करोति ।

टि०—"ष्णा शौचे" धातोर्भौवादिक रूपम् = स्नायति ।

शरचापहीनः कामदेवः = बाणकार्मुकरहितः स्मरः, सौन्दर्ये तु साक्षात् कामदेव इत्यर्थः ।

वासवदत्ता—(स्वगत) कुछ और तो सोच ही नहीं सकती । (प्रकट) सखी ! क्या तुमने जामाता को देखा है ?

चेटी—हाँ, राजकुमारी के स्नेह और अपने कौतूहल के कारण देखा है ।

वासवदत्ता जामाता कैसे हैं ?

चेटी—आर्ये ! बस इतना कहती हूँ कि ऐसा जामाता मैंने पहले कभी नहीं देखा ।

वासवदत्ता—सखी ! कहो, कहो । क्या वे सुन्दर हैं ?

चेटी—बस, धनुषबाण से रहित कामदेव ही हैं, ऐसा कहा जा सकता है ।

वासवदत्ता—अच्छा, बस करो ।

चेटी—किण्णित्तं वारेसि ? [किंनिमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तणं सोदुम् । [अयुक्त परपुरुषसङ्कीर्तनं श्रोतुम् ।]

चेटी—तेह हि गुह्यदु अय्या सिग्घं । [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।]

वासवदत्ता—इअं गुह्यामि । आणहि दाव । [इयं गुम्फामि । आनय तावत् ।]

चेटी—गह्णदु । [गृह्णात्वार्या ।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं तावदौषधं कि नाम ?]

चेटी—अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुह्मिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च । इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम । [सपत्नीमर्दनं नाम]

वासवदत्ता—इदं ण गुह्मिदव्वं । [इदं न गुम्फितव्यम् ।]

वारयसि = निषेधसि । अयुक्तम् = अनुचितम् । परपुरुषसङ्कीर्त्तनम् = अन्यजनप्रशंसनम् । गुम्फामि = ग्रथ्नामि । सपत्नीमर्दनम् = एकपत्नीसंचूर्णनम् ।

चेटी—क्यों रोकती हैं ।

वासवदत्ता—पर-पुरुष की प्रशसा सुनना अनुचित है ।

चेटी—अच्छा तो आप शीघ्र माला गूँथ दें ।

वासवदत्ता—यह गूँथती हूँ । ले आओ ।

चेटी—यह लीजिए ।

वासवदत्ता—(रोककर और देखकर) इस औपधि का नाम क्या है ?

चेटी—यह सुहाग बनाये रखने वाली औपधि है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) इस अपने और पद्मावती के लिए अवश्य गूँथना चाहिए । (प्रकट) इस ओषधि का क्या नाम है ?

चेटी—सौत का मानमर्दन करने वाली सपत्नी-मर्दन ।

वासवदत्ता—इसे नहीं गूँथना चाहिए ।

चेटी—कीस ? [कस्मात् ?]

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति ।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरतु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते ।]

वासवदत्ता—अइ! वदामि, गह्ण एदं। [अयि! वदामि; गृहाणेतद् ।]

चेटी—सोहणं। अय्ये! गच्छामि दाव अहं। [शोभनम्। आर्ये! गच्छामि तावदहम् ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

वासवदत्ता—गदा एसा। अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ सवुत्तो! अविदा! सय्याए। मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्द

उपरता = मृता। अविधवाभिः = सौभाग्यवतीभिः स्त्रीभिरिति भावः।

चेटी—क्यों ?

वासवदत्ता—उसकी पत्नी तो मर चुकी है इसलिए बेकार है।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या जल्दी करो जल्दी करो। जामाता को सुहागिनें अन्दर चौशाला में ले जा रही हैं।

वासवदत्ता—अरी कह तो रही हूँ—लो इसे।

चेटी—यह तो बहुत सुन्दर है। अब मैं जाती हूँ।

(दोनों चेटियाँ चली जाती हैं)

वासवदत्ता—यह चली गई। ओह बहुत बुरा हुआ। आर्यपुत्र भी पराये हो गये। ओह! मैं भी शय्या पर अपने दुःख को हल्का करूँ, यदि नींद आ जाये तो।

लभामि । [गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।]

(निष्क्रान्ता ।)

इति तृतीयोऽङ्कः ।



अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो । भो ! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति ।

अविहा = विषादसूचकमव्ययम् ।

टि०—सम् + कृत् + णिच् + ईत्व + ल्युट् = सङ्कीर्त्तनम् । ओषधिरेव औषधम्, "ओषधेरजातौ" इत्यनेन स्वार्थे अण् = औषधम् । विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०), न विधवा अविधवा (नञ् स०), अविधवा क्रियतेऽनेनेति करणे ल्युटि = अविधवाकरणम् । सपत्नीमर्द्यते = अभिभूयते अनेन इति सपत्नीमर्दनम्-करणे ल्युट् । प्र + विश् + णिच् + कर्मणि लट् = प्रवेश्यते ।

इति तृतीयोऽङ्कः



(चली जाती है)

तृतीय अङ्क समाप्त



(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(हर्षपूर्वक) सौभाग्य से ही मैंने वत्सराज उदयन के अभीष्ट मंगलमय विवाह का शुभ अवसर देखा । अरे ! भला कौन जानता था कि हम वैसे अनर्थ रूपी जल-भँवर में फेंके गये भाग्य से पुनः उभरेंगे । अब हम राजमहलों में रहते हैं, अन्तपुर की बावड़ियों में स्नान करते हैं, स्वभाव से मीठी और

इदाणीं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि। जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि! भो! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च। [भोः! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति। इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः = अभीप्सितविवाहमङ्गलशोभनः। अनर्थसलिलावर्ते = संकटजलभ्रमे। "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः। प्रक्षिप्ताः = दुर्भाग्येन निक्षिप्ताः। पुनरुन्मङ्क्ष्यामः = पुनरुन्मुक्ताः भविष्यामः। दीर्घिकासु = वापीषु। "वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः। स्नायते = स्नानं क्रियते। प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि = स्वभावमिष्टमृदुकोमलानि। मोदकखाद्यानि = लड्डुकभोज्यवस्तूनि। खाद्यन्ते = भक्ष्यन्ते। अनप्सरः संवासः = अप्सरः सहवासविहीनः। उत्तरकुरुवासः = देवभूमिविशेषवासः। अनुभूयते = अनुभवगोचरीक्रियते। न परिणमति = परिपाकं न लभते। सुप्रच्छदनायाम् = शोभनास्तरणयुक्तायाम्। वातशोणितम् = एतन्नामधेयो रोगः। आमयपरिभूतम् = रोगाकुलम्। अकल्यवर्तं च = प्रातराशाभावश्च। "प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषः प्रत्युषसी अपि" इत्यमरः।

मुलायम मिठाइयाँ खाते हैं। इस प्रकार केवल अप्सराओं के सहवास को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के स्वर्ग-सुखों का उपभोग करते हुए हम उत्तर कुरुवास का अनुभव कर रहे हैं। केवल एक ही महान् दोष है कि मेरा भोजन ठीक से नहीं पचता और सुन्दर गद्दे की शय्या पर भी नींद नहीं आती। लगता है, मेरे शरीर में वातरक्त नामक रोग व्याप्त हो गया है। अरे! रोग से आक्रान्त होना और सुबह-सुबह भोजन का न मिलना, दोनों ही कष्टदायक होते हैं।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य ! वसन्तअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

विदूषकः -(दृष्ट्वा) किं णिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किं निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि ?]

चेटी -- अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्लादो जामादुओ त्ति ।
[अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

विदूषकः—किं णिमित्तं भोदि पुच्छदि । [किं निमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति । [किमन्यत् सुमनोवर्णक-मानयामीति ।]

सुमनोवर्णकम् = पुष्पचन्दनादिविलेपनम् । "गात्रानुलेपनी वर्तिर्वर्णिकं स्याद्विलेपनम्" इत्यमरः ।

टि०—अभिप्रेतं च तद्विवाहमङ्गलम् (क० धा०), तेन रमणीयः (तृ० त०) = अभिप्रेतविवाहरमणीयः । सलिलस्य आवर्त्तः (ष० त०), अनर्थ एव सलिलावर्त्तः, 'मयूरव्यंसकादयश्चे'ति रूपकसमासः, तस्मिन् = अनर्थसलिलावर्त्ते । उद् + मस्ज् + लृट् मस् = उनमङ्क्ष्यामः । वस् + कर्मणि लट् + त = उष्यते । अप्सरसा संवासः (ष० त०) = अप्सरसंवासः, अविद्यमानोऽप्सरसंवासो

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य वसन्तक कहाँ चले गये ? (घूमकर, देखकर) अहो ! यही तो आर्य वसन्तक हैं ! (पास जाकर) आर्य वसन्तक ! मैं कब से आपको ढूँढ़ रही हूं ।

विदूषक—(देखकर) भद्रे ! मुझे किसलिए ढूँढ़ रही हो ?

चेटी—हमारी महारानी ने पूछा है—क्या दामाद स्नान कर चुके ?

विदूषक—वे क्यों पूछती हैं ।

चेटी—और क्या ? फूलों की माला और चन्दनादि लेप ले आऊँ इसलिए ।

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं। सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअअं। [स्नातस्तत्रभवान्। सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम्।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किं निमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

विदूषकः—अघण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो सवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्तः इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो एव्व होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदी सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ)

यस्मिन्, सः (नञ् बहु०) अनप्सरसंवासः। उत्तराश्च ते कुरवः (क० धा०) उत्तरकुरुषु वासः (स० त०)=उत्तरकुरुवासः। प्रच्छाद्यतेऽनेन इति—प्र + छद् + करणे ल्युट् = प्रच्छदनम्, शोभनं प्रच्छदनं यस्याम्, सा (बहु०) = सुप्रच्छदना, तस्याम् = सुप्रच्छदनायाम्।

तत्रभवान् = जामातारूप उदयनः। वारयसि = निवारयसि। अधन्यस्य = भाग्यहीनस्य। अक्षपरिवर्तः इव = नेत्रपरिवर्त्तनमिव। कुक्षिपरिवर्तः - उदरपरिवर्त्तनम्, उदरविलोडनमिति भावः। वसन्तागमे कोकिलानां नयनानि रक्तिमोपेतानि भवन्ति तथैव मे कुक्षौ विलोडनं भवतीत्याशयः। "पिचण्डकुक्षिजठरं तुन्दम्" इत्यमरः। सकाशम् = समीपे।

टि०—अक्ष्णोः परिवर्त्तः (ष० त०) = अक्षिपरिवर्त्तः।

विदूषक—महाराज ने स्नान किया। आप भोजन छोड़कर सब ले आइये।

चेटी—किस कारण से आप भोजन लाने को मना कर रहे हैं ?

विदूषक—मुझ अभागे के पेट में ऐसा 'उलट-फेर' हो रहा है जैसे कोयल की आँखों में हुआ करता है।

चेटी—आप ऐसे ही बने रहें।

विदूषक—आप जाइये। मैं भी महाराज के पास चलता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।)

चेटी—किंणिमित्तं भट्टिदारिआ दमदवणं आअदा ? [किं निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मौतिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणि विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी—तेण हि इमस्सि सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि]

शेफालिगुल्मकाः = शेफालिकास्तम्बकाः । "शेफालिका तु सुवहा निर्गुण्डी नीलिका च सा" इत्यमरः । कुसुमिताः = पुष्पिताः । प्रवालान्तरितैरिव=विद्रुमान्तरालारोपितैरिव । मौक्तिकलम्बिकैः = मुक्ताकण्ठाभरणविशेषैः । आचिताः = व्याप्ताः ।

(प्रवेशक समाप्त ।)

(सेविकाओं के साथ पद्मावती तथा आवन्तिका-वेष में वासवदत्ता का प्रवेश)

चेटी—राजकुमारी प्रमदवन में किसलिए पधारी हैं ?

पद्मावती—सखी ! वे शेफालिका के गुच्छे खिले हैं या नहीं यही देखने को ।

चेटी—राजकुमारी ! वे खिल गये । मूँगों से भरी मोतियों की माला के समान वे फूलों से भर गये हैं ।

पद्मावती—सखी यदि ऐसा है तो फिर अब देर क्यों करती हो ?

चेटी—तो इस शिलापट्ट पर राजकुमारी कुछ देर बैठें । तब तक मैं भी कुछ फूल बटोर लूँ ।

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उवविसामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशावः ?]

वासवदत्ता - एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभे उपविशतः ।)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो ! विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या [अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या ।]

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं । [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

शिलापट्टके = प्रस्तरफलके, पाषाणनिर्मितासने इति भावः । अर्धमनःशिलापट्टकैरिव = अर्धनागजिह्विकाखण्डलकैरिव । 'मनःशिलामनोगुप्तामनोह्वा नागजिह्विका" इत्यमरः । मनःशिला रक्तवर्णो धातुविशेषः लोके "मैनसिल" इति नाम्ना प्रसिद्धः । अञ्जलिम् = संयुक्तकरपुटकम् । विचित्रता श्वेतपुष्पेषु रक्तिमसम्मिश्रणेन वैचित्र्यमिदमेव च सौन्दर्यमत एवाश्चर्योद्गारः । दर्शनीयता = रमणीयता ।

टि०—आवन्तिकायाः वेषः (ष० त०) त धारयतीति तच्छीला—आवन्तिकावेष + धृ + णिच् + णिनि + ङीप् = अवन्तिकावेषधारिणी । मौक्तिकानां लम्बकानि (ष० त०) तैः + मौक्तिकलम्बकैः । अव + चि + लट् = अवचेष्यामि ।

पद्मावती—आर्ये ! क्या हम यहाँ बैठें ?

वासवदत्ता—हाँ, ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठ जाती हैं ।)

चेटी—(फूलों को इकट्ठा कर) देखें, देखें राजकुमारी ! मनःसिला के टुकड़ों की भाँति शेफालिका के फूलों से भरी हुई मेरी अञ्जलि को देखें ।

पद्मावती—(देखकर) अहा, कैसे रंग-बिरंगे हैं ये फूल ? आर्या ! देखिए, देखिए ।

वासवदत्ता—अहो ! ये फूल तो दर्शनीय हैं ।

चेटी—भट्टिदारिए! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किं निमित्तं वारयसि !]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअं। [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्करं खु अहं करेमि। इअं वि णाम एवं मन्तेदि । [दुष्करः खल्वहं करोमि । इयमपि नामैव मन्त्रयते ।]

अवचेष्यामि = अवचिनुयाम्, विध्यर्थे लृट् । अवचित्य = अवचयं कृत्वा । पुष्पप्राचुर्यम् । सम्मानिता = कुसुमसमृद्धिः = समादृता ।

विरहिता = विमुक्ता । उत्कण्ठिता = उत्सुका । दुष्करम् = कठिनम् । मन्त्रयते = परिभाषते ।

चेटी—राजकुमारी ! क्या और फूल चूनूँ ?

पद्मावती—सखी ! नहीं नहीं और मत चुनो ?

वासवदत्ता—सखी क्यों रोकती हो ?

पद्मावती—आर्यपुत्र के द्वारा यहाँ आकर और इस पुष्पवृद्धि को देखकर मैं समादृत होऊँ ।

वासवदत्ता—सखी तुम्हें पति प्रिय हैं ?

पद्मावती—आर्ये ! मैं नहीं जानती पर उनके विना व्याकुल हो जाती हूँ ।

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं निश्चय ही कठिन कार्य कर रही हूँ। यह भी तो ऐसा ही कह रही है ।

चेटी—अभिजाद खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति। [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं-प्रियो मे भर्तेति।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो। [एकः खलु मे सन्देहः।]

वासवदत्ता—किं किं? [किं किम्?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति? [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति।]

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं! [अतोऽप्यधिकम्।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि? [कथं त्वं जानासि?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम् जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं न परित्यजति।]

पद्मावती—होदव्वं [भवितव्यम्।]

अभिजातम् = कुलीनतानुरूपम्, समुदाचारमनतिक्रम्येति भावः।

समुदाचारः = आत्मगोपनरूपो व्यवहारः। अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः।

चेटी—राजकुमारी ने कुलीनता के अनुरूप ही कहा है कि पति प्रिय हैं।

पद्मावती—मुझे बस एक ही सन्देह है।

वासवदत्ता—क्या, क्या?

पद्मावती—जैसे मुझे आर्यपुत्र प्रिय हैं, वासवदत्ता को भी वैसे ही अथवा......?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—तुम कैसे जानती हो?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात के कारण मैं मर्यादा को लांघ गई। अब ऐसा कहूँ (प्रकट) यदि प्रेम कम होता तो वह आत्मीय जनों को नहीं छोड़ती।

पद्मावती—हो सकता है।

चेटी--भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि--अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति। [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

पद्मावती--उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो ममार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता--तदो किं भणिद ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती--अभणिअ किञ्चि दिग्घ णिस्ससिअ तुह्णीओ संवृत्ता । [अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

वासवदत्ता--तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती--तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमिरअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्यायाः वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणताया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

स्वजनम् = आत्मीयजनम्, मातापित्रादिकमिति भावः । भण = कथय । शिक्षिष्ये = शिक्षां ग्रहीष्ये । तूष्णीकः = मौनी । संवृत्तः - सञ्जातः । तर्कयसि = ऊहसे ।

दक्षिणतायाः = उदारतायाः, शालीनतायाः इति भावः ।

टि०--अव + चि + क्त्वा, ल्यप् = अवचित्य । "शिक्षविद्योपादाने" + लट् = शिक्षिष्ये । निस् + श्वस् + क्त्वा, ल्यप् = निःश्वस्य । दक्षिणस्य भावो दक्षिणता, तस्याः, दक्षिण + तल् + टाप् + "विभाषागुणोऽस्त्रियाम्" इति हेतौ पञ्चमी = दक्षिणतायाः ।

चेटी--राजकुमारी ! पति से अच्छी तरह कहो कि मैं भी वीणा सीखूँगी ।

पद्मावती--मैंने आर्यपुत्र से कहा था ।

वासवदत्ता--फिर उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती--कुछ न कहकर लम्बी सांस लेकर चुप हो गये ।

वासवदत्ता--इससे तुम क्या समझती हो ?

पद्मावती--मैं समझती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर शिष्टाचार के कारण वे मेरे सामने नहीं रोये ।

वासवदत्ता--(स्वगत) यदि यह सत्य है तो मैं धन्य हूँ ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

विदूषकः—ही ! ही । पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [ही ही । प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ॥ १ ॥

प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयम् -संहृतस्रस्तरक्तककुसुमतनुपतनशोभनीयम् । प्रमदवनम् = अन्तःपुरोचितोपवनम् ।

अन्वयः—तदा उज्जयिनीम्, गते, अवन्तिराजतनयाम्, स्वैरम्, दृष्ट्वा, काम्, अपि, अवस्थाम्, गते, मयि, कामेन, पञ्च, इषवः, पातिताः । अद्य अपि, तैः, हृदयम्, सशल्यम्, एव । भूयश्च, वयम्, विद्धाः । मदनः, पञ्चेषुः, यदि, अयम्, षष्ठः, शरः, कथम्, पातितः ? ॥ १ ॥

व्या०—तदा = तस्मिन् समये । उज्जयिनीम् = विशालानाम्नीं पुरीम् । गते प्राप्ते । अवन्तिराजतनयाम् = प्रद्योतराजसुताम्, वासवदत्तामिति भावः । स्वैरम् = स्वेच्छानुसारम् । दृष्ट्वा = विलोक्य । कामपि = अवर्णनीयामित्याशयः । अवस्थाम्= दशाम् । गते प्राप्ते मयि उदयने विषये । कामेन = मदनेन । पञ्च इषवः= मदनस्य पञ्चबाणाः । "अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, हा ! सञ्चित और गिरे हुए बन्धूक पुष्प से प्रमदवन कितना सुन्दर लग रहा है । आप यहाँ आवें ।

राजा—मित्र वसन्तक ! यह मैं आ रहा हूँ ।

उस समय जब मैं उज्जयिनी में गया और अवन्ति राजकुमारी वासवदत्ता को जी भर कर देखा और उसे देखने से मेरी विचित्र दशा हो गई, तब कामदेव ने मुझ पर अपने पाँचों बाण चलाये । उन बाणों से आज भी मेरा हृदय विद्ध

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामण्डव गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअ गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्टा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुलं दारुपव्वदअं गदा भवे! (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही! ही! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिद गच्छन्तिं पेक्खदु दाव भवं। [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असन-

---

पञ्चबाणस्य सायकाः।" इत्यमरः। पातिताः = प्रेरिताः। एतेनोदयनस्य वासवदत्ताविषयकः प्रणयातिशयोऽभिव्यज्यते। अद्यापि = इदानीमपि। तैः मदनशरैः। हृदयम् = मदीयचित्तम्। सशल्यमेव = कण्टकयुक्तमेव। भूयश्च = पुनरपि। वयं विद्धाः = अहं ताडितः। एवं च, मदनः = मनोभवः पञ्चेषुः यदि=पञ्चशरश्चेत्। अयम् = एषः। षष्ठः = पञ्चसंख्यातिरिक्तः। कथम् = केन प्रकारेण। पातितः = प्रेरितः। उपरतायामपि वासवदत्तायाम् उदयनस्य तद्विषयकोऽनुरागातिशयोऽत्र ध्वन्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ १॥

टि०—प्रचितानि च तानि पतितानि (क० धा०), बन्धुजीवानि च तानि कुसुमानि (क० धा०) प्रचितपतितानि च तानि बन्धुजीवकुसुमानि (क० धा०), तेषां विरलपातः (ष० त०), तेन रमणीयम् (तृ० त०) प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयम्। पत् + णिच् + क्त = पातितः। शल्यैः सहितम् (तुल्ययोग बहु०) = सशल्यम्। पञ्च इषवो यस्य, सः (बहु०)=पञ्चेषुः।

लतामण्डपम् = लतापिहितगृहम्। उताहो = अथवा। "आहो उताहो किमुत" इत्यमरः। असनकुसुमसञ्चितम् = जीवकपुष्पाच्छादितम्। "सर्जकासनबन्धूक-

---

ही है और आज पद्मावती को देखकर मैं पुनः विद्ध हो गया हूँ। कामदेव जब 'पञ्चबाण' ही कहलाता है तो यह छठा बाण उसने कहाँ से फेंका? ॥ १॥

विदूषक देवी पद्मावती भला कहाँ गई होगी? लतागृह में गई होंगी या बाघ के चर्म से मढ़े हुए की भाँति असन पुष्पों से आच्छादित 'पर्वततिलक' नामक प्रस्तरखण्ड पर गई होंगी या अधिक कटु गन्धवाले सप्तच्छद वृक्षों के वन में गई होंगी या उस काष्ठपर्वत पर गई होंगी जहाँ पशु-पक्षियों के चित्र बने हुए हैं।

कुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितवलदेववाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान्।]

राजा--वयस्य ! पश्याम्येनाम् !

प्रियजीविका:" इत्यमरः। व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम् = व्याघ्राजिनेन वेष्टितम्, पर्वततिलकम्। अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम् = अतितीक्ष्णामोदयुक्तसप्तपर्णविपिनम्। "सप्तवर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः" इत्यमरः। आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलम् = चित्रितपशुपक्षिव्याप्तम्। दारुपर्वतकम् काष्ठनिर्मितपर्वतप्रतिकृतिम्। शरत्कालनिर्मले = शरत्समयस्वच्छे। प्रसारितवलदेववाहुदर्शनीयाम् = विस्तारितवलभद्रभुजमनोहराम्। सारसपंक्तिम् = सारसखगश्रेणीम्। समाहितम् = एकाग्रतापूर्वकम्।

टि०—असनानां कुसुमानि (ष० त०) तैः सञ्चितम् (तृ० त०)= असनकुसुमसञ्चितम्। अधिकः कटुको गन्धो येषां (वहु०), सप्तच्छदा येषां (वहु०), अधिककटुकगन्धाश्च ते सप्तच्छदाः (क० धा०), तेषां वनम् = अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम्। मृगाश्च, पक्षिणश्च (द्वन्द्व०), आलिखिताश्च ते मृगपक्षिणः (क० धा०) तैः सङ्कुलम्, तम् (तृ० त०) = आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलम्। वलदेवस्य वाहू (ष० त०), प्रसारितौ च तौ वलदेववाहू (क० धा०), प्रसारितवलदेववाहू इव दर्शनीया, ताम् = प्रसारितवलदेववाहुदर्शनीयाम्। "उपमानानि सामान्यवचनैः" इत्यनेन कर्मधारयसमासः।

एनाम् = सारसपङ्क्तिमिति भावः।

(आकाश की ओर देखकर) ओ ! ओ ! शरत्कालीन स्वच्छ आकाश में बलराम की भुजाओं के समान सुन्दर सारस पक्षियों की समान गति से चलती हुई पंक्ति को आप देखें।

राजा—मित्र ! मैं इसे देख रहा हूँ।

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ २ ॥

अन्वयः—ऋज्वायताम्, विरलाम्, नतोन्नताम्, निवर्तनेषु, सप्तर्षिवंशकुटिलाम्, निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य, अम्बरतलस्य, विभज्यमानाम्, सीमाम्, इव । एनां सारसपङ्क्तिम् पश्यामीति शेषः ॥ २ ॥

व्या०—ऋज्वायताम् = सरलदीर्घाम् । विरलाम् = क्वचित्क्वचित्सावकाशाम् । नतोन्नताम् = निम्नोच्चैः क्रमेणावस्थिताम् । निवर्तनेषु = विवलनेषु, घूर्णनेषु इति भावः । सप्तर्षिवंशकुटिलाम् = सप्तर्षिसमूहवक्राम् । "मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वशिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्रशिखण्डिनः ॥" इति सप्त ऋषयः । निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य = कञ्चुकहीनसर्पजठरस्वच्छस्य । अम्बरतलस्य = आकाशपृष्ठस्य । विभज्यमानाम् = क्रियमाणविभागाम् । सीमामिव - मर्यादारेखामिव । एनां सारसपंक्ति पश्यामीति शेषः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥

टि० – ऋजुश्चासौ आयता (क० धा०) ताम् = ऋज्वायताम् । सप्त च ते ऋषयः, "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इत्यनेन संज्ञायाम् समासः, सप्तर्षीणां वंशः (ष त०), स इव कुटिला (उपमानपूर्वपदसमासः), ताम् = सप्तर्षिवंशकुटिलाम् । निर्मुच्यते इति निर्मुच्यमानः - निर् + मुच् + कर्मणि लट्, शानच्, स चाऽसौ भुजगः (क० धा०), तस्य उदरम् (ष० त०) = तदिव निर्मलम् (उपमान क० धा०), तस्य = निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य । वि + भज् + लट् + शानच् + टाप् कर्मणि प्रयोगः - विभज्यमानाम् ।

यह कहीं सीधी कहीं चौड़ी, कहीं घनी कहीं पतली, कहीं ऊँची और कहीं नीची है । यह मोड़ लेने के समय सप्तर्षि तारा मंडल के समान कुटिल आकार की हो जाती है । जिसने अभी-अभी केंचुली छोड़ी हो वैसे सांप के पेट की तरह निर्मल आकाश को दो भागों में विभक्त करने वाली सीमा-रेखा-जैसी यह सारसपंक्ति प्रतीत होती है ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति। अम्भो। भट्टा। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो! भर्ता?]

पद्मावती—हं! अय्यउत्तो। अय्ये! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो। [हम्! आर्यपुत्रः आर्ये! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। [एवं भवेत्।]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—कथं भवान् जानाति।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

कोकनदमालापाण्डररमणीयाम् = रक्तकमलस्रक्पीतमनोहराम्। अत्र पाण्डरः पाण्डुर एव तदुक्तं शब्दार्णवे—"पाण्डुरस्तु पीतभागार्धः केतकीधूलिसन्निभः" इति।

अपचितकुसुमान् = लूनपुष्पान्। प्रेक्षताम् = पश्यतु।

चेटी—देखिए देखिए राजकुमारी! हल्का पीलापन लिये सफेद कमल की माला के समान सुन्दर तथा समगति से जाने वाली इस सारसपंक्ति को देखिए। अहो! स्वामी आ गये।

पद्मावती—हूँ। आर्यपुत्र आ गये। आर्ये! तुम्हारे कारण ही मैं आर्यपुत्र से नहीं मिलती! तो आओ, माधवीलता कुञ्ज में प्रवेश करें।

वासवदत्ता—अच्छा।

(लतामण्डप के भीतर चली जाती हैं)

विदूषक—देवी पद्मावती यहाँ आकर निकल गई हों।

राजा—आप कैसे जानते हैं?

विदूषक—इन फूल-चुने शेफालिका-गुच्छकों को आप देखें।

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण आणामि उज्ज इणीये उत्तामि त्ति । [वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्त इति ।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासिनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतिक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो ! तह । (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सई आदवो ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामि । [भोस्तथा ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः ।]

राजा—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभौ परिक्रामतः)

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणि करेह्म ? [एवमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमोदानीं कुर्मः ?]

वसन्तकसंकीर्तनेन = वसन्तकेति नामोच्चारणेन । प्रतीक्षिष्यावहे = प्रतिपालयिष्यावः । शरत्कालतीक्ष्णः = शरदृतुतीव्रः ।

बाढम् = समीचीनमित्याशयः । आकुलम् = विपर्यस्तम् । कर्त्तुकामः = विधातु-

---

राजा—कैसे विचित्र हैं ये फूल ? वसन्तक !

वासवदत्ता—(स्वगत) वसन्तक का नाम लेने से मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं उज्जयिनी में ही होऊँ ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिलातल पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें ।

विदूषक—ठीक है । (बैठकर फिर उठकर) ओह ! शरद ऋतु की तीखी धूप असह्य है । आइए, इस माधवीलता के कुञ्ज में चलें ।

राजा—अच्छा आगे चलो ।

विदूषक—अच्छा ।

(दोनों घूमते है ।)

पद्मावती—आर्य वसन्तक तो सब चौपट करना चाहते हैं । अब क्या करें ।

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीनं ओलम्बदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं । [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

पद्मावती—एवं करेहि । [एवं कुरु ।] (चेटी तथा करोति ।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [अविह अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि । [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।]

कामः । मधुकरपरिनिलीनाम् = षट्पदव्याप्ताम्, अवलम्बलताम् = अवलम्बभूताम्, लतान्तराश्रयभूताम् प्रधानवल्लीमिति । तात्पर्यम् । दास्याः पुत्रैः = नीचैः, पीडितोऽस्मि = व्यथितोऽस्मि । संत्रासः = भयम् । परिहार्यः = दूरीकरणीयः ।

टि०—कोकनदानां माला (ष० त०), कोकनदमाला इव पाण्डरा (उपमित०), सा चासौ रमणीया (क० धा०), ताम् = कोकनदमालापाण्डररमणीयाम् । अपचितानि कुसुमानि येभ्यस्ते, तान् (बहु०) = अपचितकुसुमान् । आस् + लट् + शानच् + ईत्व = आसीनौ । मधुकरैः परिनिलीना (तृ० त०) ताम् = मधुकरपरिनिलीनाम् । अव + "धूञ् कम्पने" + क्त्वा, ल्यप् = अवधूय । "दास्याः पुत्रैः" इत्यत्र "षष्ठ्या आक्रोशे" इत्यलुक् समासः ।

चेटी—राजकुमारी ! भौंरों से व्याप्त इस लता को हिलाकर स्वामी को रोकती हूँ ।

पद्मावती—वैसा ही करो ।

(दासी वैसा ही करती है)

विदूषक—ओह ! ओह ! ठहरिए महाराज ठहरिए ।

राजा—क्यों ?

विदूषक—ये नीच भौंरे मुझे तंग कर रहे हैं ।

राजा—मा मा भवानेवम्! मधुकरसंत्रासः परिहार्यः।

पश्य—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः॥ ३॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे।

विदूषकः—एव्वं होदु। [एवं भवतु।]

(उभावुपविशतः।)

अन्वयः—मधुमदकलाः, मदनार्ताभिः, प्रियाभिः, उपगूढाः, मधुकराः पादन्यासविषण्णाः, वयम्, इव, कान्तावियुक्ताः स्युः॥ ३॥

व्या०—मधुमदकलाः = कुसुमरसमदास्फुटमधुरशब्दाः। "ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कलः" इत्यमरः। मदनार्ताभिः = मन्मथपीडिताभिः। प्रियाभिः = वल्लभाभिः, भ्रमरीभिरित्याशयः। उपगूढाः = आलिङ्गिताः। मधुकराः=षट्पदाः। पादन्यासविषण्णाः = चरननिक्षेपखिन्नाः, सन्त इति शेषः। वयमिव = यथाहं तथैवेति भावः। कान्तावियुक्ताः = प्रियाविरहिताः। स्युः = भवेयुः। आर्यावृत्तम्॥ ३॥

टि०—मधुनो मदः (ष० त०), कलः अस्ति येषां ते कलाः—"अर्श आदिभ्योऽच्" इत्यच् प्रत्ययः। मधुमदेन कलाः (तृ० त०) = मधुमदकलाः। उप + गुह् + क्त = उपगूढा। वि + सद् + क्त = विषण्णाः।

आसष्यावहे = उपवेक्ष्यावः।

राजा—नहीं-नहीं, तुम ऐसा मत करो। भौरों को डराना नहीं चाहिए।

देखो, मधुरस को पीने के कारण मत्त होकर अस्पष्ट गुञ्जार करते हुए, तथा कामपीड़ित प्रियाओं से आलिङ्गित ये भौंरे हमारे पाँव की आहट से डरे हुए हमारी ही तरह प्रियावियुक्त हो जायेंगे॥ ३॥

इसलिए हम दोनों यहीं बैठ।

विदूषक—ऐसा ही हो।

(दोनों बैठते हैं।)

चेटी—भट्टिदारिए! रुद्धा खु ह्म वयं। [भर्तृदारिके! रुद्धाः खलु स्मो वयम्!

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो! [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो! [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः।]

चेटी—भट्टिदारिए! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी। [भर्तृदारिके! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः।]

वासवदत्ता—एषा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिठ्ठी। [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमपतितेन सोदका मे दृष्टिः।]

पद्मावती—जुज्जइ। [युज्यते]

विदूषकः—भो! सुण्णं खु इदं पमदवनं। पुच्छिदव्वं किञ्चिअत्थि। पुच्छामि भवन्तं। [*भोः! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम्! प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति।* पृच्छामि भवन्तम्।]

रुद्धाः = प्रतिरुद्धाः। दिष्ट्या + दैवेन। प्रकृतिस्थशरीरः = स्वस्थकायः। साश्रुपाता = वाष्पपतनयुक्ता। मधुकराणामविनयात् = भ्रमराणां धृष्टत्वात्। काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धपुष्परजसा। "अथोकाशमस्त्रियाम्। इक्षुगन्धा पोटगल पुंसि" इत्यमरः। सोदका = सजला, अश्रुयुक्तेति भावः। युज्यते = संभाव्यते। शून्यम् = रिक्तम्। प्रमदवनम् = अन्तःपुरोद्यानम्। छन्दतः=आशयतः। "अभि-

---

चेटी—राजकुमारी! हम लोग रोक ली गई हैं।

पद्मावती—सौभाग्य से आर्यपुत्र बैठ गये।

वासवदत्ता—(स्वगत) सौभाग्य से आर्यपुत्र स्वस्थ हैं।

चेटी—राजकुमारी! आर्या अवन्तिका की आँखों में आँसू भर आये हैं।

वासवदत्ता—मधुकरों की धृष्ठता के कारण गिरे हुए काशपुष्पराग से मेरी आँखें सजल हो गई हैं।

पद्मावती—हाँ, ऐसा ही है।

विदूषक—महाराज! यह प्रमदवन सुना है। मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। आपसे पूछूँ?

राजा—छन्दतः।

विदूषकः—का भवदो पिआ। तदाणि तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणि पदुमावदी वा। [का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्र भवती वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा।]

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

पद्मावती—हला ! जादिसे सङ्कटे निक्खित्तो अय्यउत्तो। [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ। [अहं च मन्द-भागा।]

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भव। एक्का उवरदा, अवरा असण्णि-

प्रायश्छन्द आशयः" इत्यमरः। प्रिया = वल्लभा, प्रियतरेति भावः।

टि०—आस् + लृट् + वहि = आसिष्यावहे। प्रकृतौ तिष्ठतीति प्रकृतिस्थम् = प्रकृति + स्था + क। प्रकृतिस्थं शरीरं यस्य सः (बहु०) = प्रकृतिस्थशरीरः। अश्रुणः पातः (ष० त०) अश्रुपातः, अश्रुपातेन सहिता (तुल्ययोगे बहु०) = साश्रुपाता। काशस्य कुसुमम् (ष० त०), तस्य रेणुः (ष० त०), तेन = काश-कुसुमरेणुना। प्रष्टुं योग्यम् प्रच्छ् + तव्यत् = प्रष्टव्यम्। छन्दशब्दात् "अपादाने चाऽहीयरुहोः" इत्यनेन तसि = छन्दतः।

बहुमानसङ्कटे = अत्यधिकसम्मानापदि। न्यस्यति = स्थापयति। स्वैरं स्वैरं= स्वच्छन्दतानुसारमित्यर्थः। एका = वासवदत्ता। उपरता = मृता। अपरा =

राजा—जो चाहे पूछो।

विदूषक—आपको कौन अधिक प्रिय है ? उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती ?

राजा—अब क्यों आप मुझे प्रेमसंकट में डाल रहे हैं।

पद्मावती—सखी ! कैसे संकट में आर्यपुत्र पड़ गये।

वासवदत्ता—(स्वगत) और अभागी मैं भी।

विदूषक—आप संकोचरहित होकर कहें। एक तो मर गई और दूसरी पास नहीं है।

हिदा [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान्। एकोपरता, अपरा असन्निहिता।]

राजा—वयस्य न खलु ब्रूयाम्। भवांस्तु मुखरः!

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण [एतावता भणितमार्यपुत्रेण।]

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं। एसा सन्दट्ठा मे जीहा। [भोः ! सत्येन शपे कस्मा अपि नाख्यास्ये। एषा सन्दष्टा मे जिह्वा।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम्।

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा। एत्ताएण हिअअं ण जाणादि। [अहो ! अस्य पुरोभागिता। एतावता हृदयं न जानाति।]

विदूषकः—किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं ! ऐसो रुद्धो अत्त भवं। [किं न भणति मम ? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्र भवान्।]

राजा—किं बलात्कारेण ?

पद्मावती। असन्निहिता = असमीपस्था। मुखरः = वाचालः, अनियन्त्रितजिह्वः इति भावः। सत्येन शपे सत्यं प्रमाणीकृत्य शपथ करोमि। सन्दष्टा = दन्तपीडनेन नियन्त्रिता।

पुरोभागिता = निर्बन्ध आग्रह इत्याशयः। अनाख्याय = अकथयित्वा। बलात्कारेण = प्रसभेन। "प्रसभं तु बलात्कारो हठः" इत्यमरः। वयस्यभावेन =

राजा—मित्र ! मैं नहीं कहूँगा। तुम तो मुँहफट हो।

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने में ही कह दिया।

विदुषक—महाराज ! से सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ कि किसी से भी नहीं कहूँगा। यह अपनी जीभ मैंने काटी।

राजा—मित्र ! मैं कहने को उत्साहित नहीं हो पा रहा हूँ।

पद्मावती—ओह, इसका हठ ! इतने पर भी मन की बात नहीं समझता।

विदूषक—क्यों नहीं मुझसे कहते ? बिना कहे इस शिलाखंड से एक कदम भी नहीं जा सकते। आप यहीं रोके गये।

राजा—क्या जबर्दस्ती ?

विदूषकः—आम, बलक्कारेण। [आम् बलात्कारेण।]

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत्।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो सि जइ सच्चं ण भणासि। [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।

राजा—का गतिः श्रूयताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति॥ ४॥

मित्रभावेन। का गतिः = कः उपायः।

टि०—बहुमानेन सङ्कटः (तृ० त०) तस्मिन् = बहुमानसङ्कटे। नि+ "असुक्षेपणे" + लट्, तिप् = न्यस्यति। मन्दो भागो भाग्यं यस्याः, सा (बहु०) = मन्दभागा। निन्दितं मुखं यस्य सः,–मुख शब्दात् "र प्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्यः उपसंख्यानम्" इति वार्तिकेण र प्रत्ययः = मुखरः। पुरो भजते इति पुरोभागी = पुरस्–उपपदपूर्वकाद् 'भज् सेवायाम्' धातोः 'सम्पृचानु' इत्यादि सूत्रेण घिनुणि, पुरोभागी, पुरोभागिनो भावः इत्यर्थे पुरोभागिन् + तल् + टाप् = पुरोभागिता।

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः, यद्यपि, पद्मावती, मम, बहुमता, तु, वासवदत्ताबद्धम्, मे, मनः, न, हरति, तावत्॥ ४॥

व्या०—रूपशीलमाधुर्यैः = सौन्दर्यसच्चरित्रप्रीतिविशेषैः। यद्यपि, पद्मावती = मगधराजपुत्री। मम = उदयनस्य। बहुमता = अत्यर्थं प्रिया। तु=परन्तु। वासवदत्ताबद्धम् = वासवदत्तासक्तम्। मे = मम। मनः = चित्तम्। न हरति = नापकर्षति। पद्मावत्या रूपशीलादिषु गुणेषु सत्स्वपि मे मनोऽद्यापि वासवदत्ता-

---

विदूषक—हाँ जबर्दस्ती ही।

राजा—तो फिर देख ही लेते हैं।

विदूषक—प्रसन्न हों प्रसन्न हों। यदि सत्य न कहे तो आपको मेरी मैत्री की सौगन्ध।

राजा—क्या चारा है। अच्छा सुनो—

यद्यपि रूप, शील एवं माधुर्यादि गुणों के कारण पद्मावती मुझे बहुत मान्य

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स। अहो! अञ्ञादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ। [भवतु भवतु। दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य। अहो! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।]

चेटी—भट्टिदारिए! अदक्खिण्णो खु भट्टा। [भर्तृदारिके! अदाक्षिण्यः खलु भर्ता।]

पद्मावती—हला! मा मा एव्वं! सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि। [हला! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति।]

यामेवासक्तं वर्तते इत्यर्थः। आर्यावृत्तम् ॥ ४ ॥

वेतनम् = मूल्यम्। अस्य परिखेदस्य = विरहेऽनुभूयमानस्य दुःखस्य। अज्ञातवासः = गुप्तवासः। बहुगुणः = अनेकफलसमन्वितः। अदाक्षिण्यः = दाक्षिण्यगुणविहीनः। दाक्षिण्यं चोक्तम् साहित्यदर्पणे—'एषु (नायकेषु) त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः।" ३।३५। द्वित्रासु त्रिचतुरासु वा नायिकासु तुल्यानुरागो दक्षिण-नायक इत्यर्थः। अथवा परच्छन्दानुवर्तित्वं दाक्षिण्यम्, तथा न भवति यः स एव अदाक्षिण्यः अभिजनसदृशम् = स्ववंशानुरूपम्।

टि०—बहु (अधिकं यथा तथा) मता, "सुप्सुपेति" समासः=बहुमता। रूपं न शीलं च माधुर्यं चेति रूपशीलमाधुर्याणि (द्वन्द्व०) तैः = रूपशीलमाधुर्यैः। वासवदत्तायां बद्धं (स० त०) तत् = वासवदत्ताबद्धम्। न ज्ञातः अज्ञातः (नञ्०) अज्ञातश्चासौ वासः (क० धा०) = अज्ञातवासः। बहुगुणो यस्य (बहु०) सः बहुगुणः। दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम् दक्षिण + ष्यञ्। अविद्यमानं दाक्षण्यं यस्य (नञ् बहु०) सः = अदाक्षिण्यः।

है पर वासवदत्ता पर आसक्त मेरे मन को वह आकर्षित नहीं कर पाती ॥ ४ ॥

वासवदत्ता –(स्वगत) बस, मुझे दुःख का पुरस्कार मिल गया। ओह! यहाँ का अज्ञातवास भी गुणवान् ही लग रहा है।

चेटी –राजकुमारी! स्वामी शिष्ट नहीं है।

पद्मावती—ऐसा मत कहो। आर्यपुत्र शिष्ट ही हैं जो अब भी आर्या वासवदत्ता के गुणों को स्मरण कर रहे हैं।

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया। भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ।

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो । [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः ।]

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण । उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ । [किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।]

राजा—वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण !

विदूषकः—तेण हि ण सक्कं सोदु । [तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम् ।

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं । तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा । तत्तहोदी । पद्मावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ

विप्रलपितेन = अनर्थकवचनेन । बहुमते = अधिकसम्मते । महाब्राह्मणः =

वासवदत्ता—भद्रे ! तुमने कुलीनता के अनुरूप ही ऐसा कहा है ।

राजा—मैंने कहा । अब आप कहें । उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती में आपको कौन अधिक अच्छी लगती है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसन्तक ही हो गये ।

विदूषक—मेरे बड़बड़ाने से क्या लाभ ? मेरे लिए तो दोनों ही मान्य हैं ।

राजा—मूर्ख ! मुझसे हठपूर्वक सुनकर अब तुम क्यों नहीं बतला रहे हो ?

विदूषक—क्या मुझसे भी बलपूर्वक सुनना चाहते है ?

राजा—हाँ, बलपूर्वक ही ।

विदूषक—तब आप भी नहीं सुन सकते ।

राजा—महाब्राह्मण प्रसन्न हों, प्रसन्न हों । स्वेच्छापूर्वक ही कहो ।

विदूषक—अब आप सुनें । देवी वासवदत्ता मुझे बहुत मान्य हैं । देवी

सदक्खिणा। अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता-कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता-कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ! सुमरेहि दाणिं एदं। [भवतु भवतु, वसन्तक! स्मरेदिदानीमेतत्।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता! कहिं वासवदत्ता? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता। [अविहाः वासवदत्ता? कुत्र वासवदत्ता? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

श्रेष्ठविप्रः। परिहासेनैतत्कथनम्। तरुणी = युवतिः। दर्शनीया = दर्शनयोग्या, सुन्दरीति भावः। अकोपना = कोपरहिता। अनहङ्काराः = अहङ्कारविवर्जिता। मधुरवाक् = मधुरभाषिणी, प्रियवादिनीति भावः। सदाक्षिण्या = उदारा, सुसंस्कृता वेत्यर्थः।

स्निग्धेन भोजनेन = स्वादिष्टेन भोजनेन। प्रत्युद्गच्छति = सम्मुखमागत्य सम्भावयति। अविहा = खेदव्यञ्जकमव्ययमिदम्।

टि०—महांश्चासौ ब्राह्मणः (क० धा०) = महाब्राह्मणः। दृश् + अनीयर् + टाप् = दर्शनीया। न कोपना (नञ्०) = अकोपना। अविद्यमानोऽहङ्कारो

पद्मावती युवती, सुन्दरी, अक्रोधी, अहङ्काररहित, मधुर बोलने वाली और उदार है। इनमें एक और बड़ा गुण यह है कि स्वादिष्ट भोजन से मेरा स्वागत करती हैं और पुकारती हैं कि–"आप वसन्त कहाँ गये?"

वासवदत्ता—अच्छा, अच्छा वसन्तक! अब याद करो यह सब।

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक! यह सब मैं देवी वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक—हाय! वासवदत्ता! कहाँ है वासवदत्ता? उन्हें मरे कितने दिन बीत गये।

राजा—(सविषादम्) एवम् ! उपरता ।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ । [रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

यस्याः सा (नञ् बहु०) = अनहङ्कारा । दाक्षिण्येन सहिता (तुल्ययोग-बहुव्रीहिः) = सदाक्षिण्या ।

अन्वयः—अनेन, परिहासेन, मे, मनः, त्वया, व्याक्षिप्तम् । ततः, इयम्, वाणी, पूर्वाभ्यासेन, तथा, एव, निःसृता ॥ ५ ॥

व्या०—अनेन = पूर्वोक्तेन । परिहासेन = केलियुक्तवाक्येन, नर्मप्रसङ्गेनेति भावः । "द्रवकेलिपरीहासाः क्रीडा खेला च नर्म च" इत्यमरः । मे मनः = मम चित्तम् । त्वया = वसन्तकेन । व्याक्षिप्तम् = अन्यथावृत्तिकृतम् । ततः = तस्मात्कारणात् । इयम् वाणी = एषा वाक् । पूर्वाभ्यासेन = वासवदत्ताकालिकाभ्यासेन । तथा एव = पूर्वसमयतुल्या एव । निःसृता = निर्गता । यथा पूर्वं वासवदत्ताविरुद्धं किमपि श्रुत्वा "तस्यै कथयिष्ये" इति वाक्यम् मुखान्निःसृतं भवति स्म तथैवेदानीं "सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै" इतीयं वाणी मुखान्निर्गतेति भावः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५ ॥

कथायोगः = कथनसम्बन्धः । नृशंसेन = क्रूरेण । "नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः । विसंवादितः = अन्यथाकृतः । अनतिक्रमणीयः = अनुल्लङ्घनीयः ।

टि०—वि + आङ् + क्षिप् + क्त = व्याक्षिप्तम् । पूर्वश्चासौ अभ्यासः (क० धा०) तेन = पूर्वाऽभ्यासेन । वि + सम् + वद् + णिच् + क्त = विसंवादितः । वि + श्वस् + क्त + टाप् = विश्वस्ता । धृ + णिच् + लोट्, तिप् = धारयतु । वयसा तुल्यः वयस्यः—वयस् + यत् । तत्सम्बुद्धौ = वयस्य !

राजा—(शोक पूर्वक) हां । वासवदत्ता तो चल बसी मित्र !

तुमने इस परिहास से मेरे मन को व्याकुल कर दिया । इसीलिए पूर्वाभ्यास के कारण मेरे मुँह से यह बात निकल गई ॥ ५ ॥

पद्मावती—कैसा मनोरम कथा-प्रसंग इस क्रूर विदूषक ने बिगाड़ दिया ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि। अदो! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि। [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते।]

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः ईदृशमिदानीमेतत्।]

राजा—वयस्य! जानाति भवानवस्थाम्! कुतः—

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥६॥

अन्वयः—बद्धमूलः, अनुरागः, दुःखम्, त्यक्तुम्। स्मृत्वा, स्मृत्वा, दुःखम्, नवत्वम्, याति। तु, एषा, यात्रा, यत्, इह, बाष्पम्, विमुच्य, बुद्धिः, प्राप्तानृण्या, (सती) प्रसादम्, याति॥ ६॥

व्या०—बद्धमूलः = दृढमवस्थितः। अनुरागः = प्रणयः। दुःखम् = कठिनं यथा स्यात्तथा। त्यक्तुम् = मोक्तुम्, शक्य इति शेषः। स्मृत्वा स्मृत्वा = पुनः पुनःस्मरणं कृत्वा। दुःखम् = प्रियजनवियोगरूपं कष्टम्। नवत्वम् = नूतनत्वम्। याति = प्राप्नोति। अनुभूतं दुःखं मुहुःस्मरणेन नूतनं भवतीत्याशयः। तु = किन्तु। एषा = इयम्। यात्रा = लोकव्यवहारः। यत्, इह = अस्मिन् संसारे। बाष्पम् = अश्रु। विमुच्य = विसृज्य। बुद्धिः = निश्चयात्मकं मनः। प्राप्तानृण्या = प्राप्तानृणत्वा, कृतानुरागनिष्कृतिः सतीति भावः। प्रसादम् = शान्तिम्, उद्वेगराहित्यमित्यर्थः। याति = प्राप्नोति। शालिनीवृत्तम्॥ ६॥

वासवदत्ता—(स्वगत) बस बस, विश्वस्त हो गई। अहो! कितनी प्रिय है यह बात, जिसे मैं परोक्ष में सुन रही हूँ।

विदूषक—धैर्य रखिए। धैर्य रखिए महाराज! भाग्य का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। यह तो अब ऐसा ही है।

राजा—मित्र! तुम मेरी अवस्था को नहीं जानते। क्योंकि—

दृढ़ प्रेम को त्यागना बहुत कठिन है। बार-बार स्मरण करने से दुःख नया

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः।) [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्र भवती मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

पद्मावती—अय्ये! बष्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं। जाव णिक्कमह्म। [आर्ये! वाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्। यावन्निष्क्रामामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। अहव चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ। [सुष्ठ्वार्या भणति। उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका।]

अश्रुपातक्लिन्नम् = वाष्पपतनार्द्रम्। मुखोदकम् = मुखप्रक्षालनार्थं जलमित्यर्थः। वाष्पाकुलपटान्तरितम् = अश्रुव्याप्तवसनाच्छादितम्। निष्क्रामामः = निर्गच्छामः। उत्कण्ठितम् = दुःखपर्याकुलम्। उज्झित्वा = त्यक्त्वा। अयुक्तम् = अनुचितम्। सुष्ठु = समीचीनम्। उपसर्पतु = समीपं गच्छतु।

टि०—बद्धं मूलं यस्य (बहु०) सः = बद्धमूलः। अविद्यमानं ऋणं यस्य स अनृणः (नञ् बहु०). अनृणस्य भावः = आनृण्यम्—अनृण + ष्यञ्। प्राप्तम् आनृण्यं यया सा (बहु०) = प्राप्तानृण्या। अश्रूणां पातः (ष० त०) तेन

हो जाता है। लोकव्यवहार यही है कि यहाँ आँसू बहाकर प्रेम से उऋण होकर मन शान्त हो जाता है॥ ६॥

विदूषक आपका मुँह अश्रुपात के कारण गीला हो गया है। मैं मुँह धोने के लिए जल ले आऊँ। (चला जाता है।)

पद्मावती—आर्ये! आर्यपुत्र का मुँह आँसुओं से भर गया है और वे उसे वस्त्र से ढँके हुए हैं। अब हम निकल चलें।

वासवदत्ता—ठीक है। अथवा तुम यहीं ठहरो। दुःखी स्वामी को छोड़कर तुम्हारा जाना उचित नहीं है। मैं ही चली जाती हूँ।

चेटी - आप ठीक कहती हैं। राजकुमारी अपने स्वामी के पास जायें।

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला प्रविश ।]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा ।) एसा एत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा तत्रभवती पद्मावती !]

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक । किमेतत् ?]

विदूषकः - एदं इदं । इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती -भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्यं भणतु ।]

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेणो सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्लदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवत मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीद मुखोदकम् ।

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो

क्लिन्नं (तृ० त०) = अश्रुपातक्लिन्नम् । बाष्पेण आकुलः (तृ० त०) स चासौ पटः (क० धा०) तेन अन्तरितम् (तृ० त०) = बाष्पाकुलपटान्तरितम् ।

वातनीतेन = वायुप्रापितेन । काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धपुष्पपरागेण । साश्रुपातम् = अश्रुपातपूरितम् । सदाक्षिण्यस्य = दाक्षिण्यगुणयुक्तस्य, सुसंस्कृतस्य, शिष्टाचारयुक्तस्येत्यर्थः । परिजनः = अनुचरः । अपवार्य = अपवारित विधाय,

---

पद्मावती—क्या मैं उनके पास जाऊँ ?

वासवदत्ता—सखी ! जाओ । (ऐसा कहकर निकल जाती है ।)

(प्रवेश करके)

विदूषक—(कमल के पत्ते में जल लेकर) यह देवी पद्मावती ?

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! ! यह क्या ?

विदूषक—वह यह है, यह वह है ।

पद्मावती—कहो कहो, श्रीमान् जी कहो ।

विदूषक—आर्ये ! काशपुष्प की धूलि आँख में पड़ जाने से राजा का मुँह आँसुओं से भर गया है । आप मुँह धोने के लिए यह जल लीजिए ।

पद्मावती—(स्वगत) अहो ! सुसंस्कृत व्यक्ति का सेवक भी सुसंस्कृत ही

वि सदक्खिणो एव्व होदि। (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो। इदं मुहोदअं। [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। जयत्वार्यपुत्रः। इदं मुखोदकम्।]

राजा—अये ! पद्मावती ? (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषकः—(कर्णे) एव्वं विअ। [एवमिव।]

राजा—साधु वसन्तक ! साधु। (आचम्य) पद्मावति आस्यताम्।

पद्मावती—ज अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविशति।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति।]

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि !।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

अन्यस्याश्रव्यत्वं कृत्वेति भावः। आस्यताम् = उपविश्यताम्।

टि०—दाक्षिण्येन सहितः, तस्य (तुल्ययोगबहु०) = सदाक्षिण्यस्य। अप + वृ + णिच् + क्त्वा, ल्यप् = अपवार्य।

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण, वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन, इदम्, मम, मुखम्, साश्रुपातम् ॥ ७ ॥

व्या०—हे भामिनि = हे कोपने ! शरच्छशाङ्कगौरेण = शरत्कालीनसुधाकरशुभ्रेण। वाताविद्धेन = वायुप्रेरितेन। काशपुष्पलवेन = इक्षुगन्धकुसुमलेशेन।

होता है। (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह मुँह धोने के लिए जल है।

राजा—अरे पद्मावती ! (पद्मावती की ओर मुँह फेरकर) वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—(कान में) यह ऐसा ही।

राजा—ठीक है वसन्तक ! ठीक है। (आचमन करके) पद्मावती ! बैठो।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जो आज्ञा। (बैठती है।)

राजा—पद्मावती !

सुन्दरी ! हवा से उड़ाये गये शरत्कालीन चन्द्रमा जैसे शुभ्र काशपुष्प के कण से यह मेरा मुख अश्रुपात से युक्त है ॥ ७ ॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवदोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

विदूषकः—उइदं तत्तहोदी मअधराअस्स अवरह्णकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं। सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता उट्ठेदु दाव भवं । [उचितं तत्रभवती मगधराजस्यापराह्ण-काले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

इदम् = एतत् । मम = मे । मुखम् = वदनम् । साश्रुपातम् = वाष्पपतनयुक्तम् । अस्तीति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः– नवोद्वाहा, इयम्, बाला, सत्यम्, श्रुत्वा, व्यथाम्, व्रजेत् । इयम्, कामम्, धीरस्वभावा, तु, स्त्रीस्वभावः, कातरः ॥ ८ ॥

व्या०—नवोद्वाहा = नूतनपरिणीता । इयम् = एषा । बाला = युवतिः, अप्रौढा पद्मावतीति भावः । सत्यम् = तथ्यम् । श्रुत्वा = आकर्ण्य । व्यथाम् = पीडाम् । व्रजेत् = प्राप्नुयात् । यद्यपि, इयम् = पद्मावती । कामम् = अत्यन्तम् । धीरस्वभावा = धैर्यशालिनी, वर्तते इति शेषः । तु = किन्तु । स्त्रीस्वभावः = नारी-प्रकृतिः । कातरः = भीरुकः, भवतीति शेषः । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

टि०—शशः अङ्को यस्य, सः शशांकः (बहु०) शरदि शशांकः (स० त०), स इव गौरः (उपमित क० धा०) तेन = शरच्छशांकगौरेण । नवः उद्वाहो यस्याः सा (बहु०) = नवोद्वाहा । धीरः स्वभावो यस्याः, सा (बहु०)=धीरस्वभावा । अपराह्णकाले = दिवसस्य तृतीयप्रहरे । प्रतीष्टः = अङ्गीकृतः । उत्पादयति

(स्वगत) यह बाला नव-विवहिता है । सत्य को सुनकर यह दुःखी हो जायेगी । यद्यपि यह धैर्यशालिनी है, पर स्त्री-स्वभाव तो भीरु हुआ करता है ॥ ८ ॥

विदूषक—श्रीमान् मगधराज दर्शक ने अपराह्ण-काल में आपको साथ लेकर मित्रों से भेंटना उचित समझा है । तो अब आप उठें । क्योंकि यदि सम्मान का बदला सम्मान से दिया जाय तो प्रेम बढ़ता है ।

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

= जनयति । प्रथमः कल्पः = मुख्यं विधानम् ।

अन्वयः—लोके, विशालानाम्, गुणानाम्, सत्काराणाम्, च कर्तारः, नित्यशः, सुलभाः, तु, विज्ञातारः, दुर्लभाः ॥ ९ ॥

व्या०—लोके = संसारे । विशालानाम् = महताम् । गुणानाम् = शौर्यादीनाम् । सत्काराणाञ्च = सम्मानानाञ्च । कर्तारः = प्रयोजकाः । नित्यशः = सततम् । सुलभाः = बहुलं लभ्यन्ते । तु = किन्तु । विज्ञातारः = परकृतसम्मानज्ञाः । दुर्लभाः = विरलाः, सन्तीति शेषः । गुणानां सम्मानानाञ्च कर्तारो जगति सुलभाः परं तादृशगुणानां सत्काराणाञ्च ज्ञातारोऽत्यल्पाः सन्तीत्याशयः । दीपकालंकारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ९ ॥

टि०—अह्नः अपरम् अपराह्णः । "पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे" इति एकदेशिसमासः । अहन् शब्दस्य "अह्नोऽह्न एतेभ्यः" इत्यनेन अह्नादेशः, "अह्नोऽदन्तात्" इत्यनेन नकारस्य णत्वे, अपराह्णश्चासौ कालः, (क० धा०) तस्मिन् = अपराह्णकाले । सुखेन लब्धुं शक्याः, सु + लभ् + खल् + जस् = सुलभाः । दुर् + लभ् + खल् + जस् = दुर्लभाः ।

इति चतुर्थोऽङ्कः

राजा—हाँ । यह ठीक है । यह उत्तम प्रस्ताव है । (उठकर)

महान् गुणों के अथवा सत्कारों के करने वाले लोग संसार में बहुत पाये जाते हैं पर उनके जानकार विरले ही होते हैं ॥ ९ ॥

(सब चले जाते हैं ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका ।)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं । [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअम्हि । किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं-भट्टिदारिआ पदुमावदी सीर्षवेदणाए दुक्खाविदेत्ति । [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं । एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।]

शीर्षवेदनया = शिरःपीडया । शब्दायस्व = आकारय । शीर्षवेदनां विनोद-

---

(पद्मिनिका का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुकरिका ! ओ मधुकरिका ! जल्दी आओ ।

(प्रवेश करके)

मधुकरिका—सखी ! यह मैं आ गयी । क्या करना है ?

पद्मिनिका—सखी ! क्या तू नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती शिर-दर्द से पीड़ित हैं ?

मधुकरिका—हाय, बहुत बुरा ।

पद्मिनिका—सखी ! जल्दी जा, आर्या आवन्तिका को बुला ला । केवल राजकुमारी के शिर-दर्द को ही बताना । फिर वे स्वयं ही चली आवेंगी ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि । [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

मधुरिका—जुज्जइ । कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहिके किल सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअ अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

मधुकरिका—एव्वं होदु । (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

यति = शिरःपीडामपाकरोति । शयनीयम् = शय्या । रचितम् = सज्जितम् । समुद्रगृहके = तन्नामके गृहे। समुद्रेण वेष्टित गृहं समुद्रगृहम् । समुद्रश्चात्र जलबाहुल्यवाचकः । मध्ये गृहं सर्वतश्च जलं वर्तते इति भावः । यथा चोक्तं त्रिकाण्डशेषे —"जलयन्त्रगृहं धीरैः समुद्रगृहमुच्यते" इति । अन्यच्च—"समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्" इति हारावली ।

टि०—कृ धातोः कर्मणि लोटि = क्रियताम् । 'शब्द'शब्दात् 'शब्दवैरकलहाऽभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इत्यनेन क्यङि, लोटि, थासि, ङित्त्वात् "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इत्यनेनात्मनेपदे - शब्दायस्व । शय्यतेऽस्मिन् इति विग्रहे "शोङ्-

---

मधुकरिका—सखी ! वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—वे आकर मधुर कहानियाँ सुनाकर राजकुमारी के शिरदर्द को कम करेंगी ।

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी की सेज कहाँ बिछी है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में सेज बिछी है । अब तू जा । मैं भी महाराज को सूचित करने के लिए आर्य वसन्तक को खोजती हूँ ।

मधुकरिका—ठीक है । (चली जाती है ।)

पद्मिनिका—कहिं दाणि अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदोपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं बड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि ! पद्मिनिका ? पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं–भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति । [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्व भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि । [भवति ! सत्यं ? न जानामि ।]

स्वप्ने" धातोः "कृत्यल्युटो बहुलम्" इत्यनेन अधिकरणे अनीयर्प्रत्यये कृते = शयनीयम् ।

देवीवियोगविधुरहृदयस्य = वासवदत्ताविरहव्याकुलचित्तस्य । पद्मावत

पद्मिनिका—अब मैं आर्य वसन्तक को कहाँ देखूँ ?

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—देवी वासवदत्ता के वियोग से व्याकुल हृदय वत्सराज उदयन का कामाग्निज्वलन पद्मावती के साथ विवाह होने से आज इस अत्यन्त सुखदायक विवाहोत्सव में बहुत ही उद्दीप्त हो रहा है । (पद्मिनिका को देखकर) ओह ! पद्मिनिका ! पद्मिनिका ! यहाँ क्या हो रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित हैं ?

विदूषक—देवी ! मैं सचनुच नहीं जानता ।

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा? [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति राजा)

पाणिग्रहणसमीरितस्य = पद्मावतीविवाहप्रेरितस्य। मदनाग्निदाहः = मदनानलज्वलनम्। अधिकतरम् = अत्यधिकम्। भर्त्रे = स्वामिने। शीर्षानुलेपनम् = शिरःपीडापनयनार्थमनुलेपनमौषधम् तत्प्राप्त्यर्थमिति शेषः। त्वरयामि = शीघ्रतां करोमि।

पद्मिनिका—तो फिर इसे राजा को सूचित कर दो। तब तक मैं भी शिरदर्द को दूर करने वाला लेप तैयार करती हूँ।

विदूषक—पद्मावती का बिस्तर कहाँ बिछाया है?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में बिस्तर बिछाया गया है।

विदूषक—तुम जाओ, तब तक मैं भी महाराज को सूचित करता हूँ।

(दोनों चले जाते हैं।)

(प्रवेशक समाप्त)

(राजा का प्रवेश)

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं। [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

अन्वयः—कालक्रमेण, पुनरागतदारभारः, (अहम्) लावाणके, हुतवहेन, हृताङ्गयष्टिम्, श्लाघ्याम्, अवन्तिनृपतेः, सदृशीम्, तनूजाम्, ताम्, हिमहताम्, पद्मिनीम्, इव चिन्तयामि ॥ १ ॥

व्या०—कालक्रमेण = समयपरिपाट्या । पुनरागतदारभारः = भूयः प्राप्त-सहधर्मिणीभारः, परिणीतपद्मावतीक इति भावः अहमिति शेषः । लावाणके = तन्नामके ग्रामे । हुतवहेन = अग्निना । हृताङ्गयष्टिम् = दग्धतनुलताम् । श्लाघ्याम् = स्तुत्याम् । अवन्तिनृपतेः अवन्तिराजस्य, प्रद्योतस्येति यावत् । सदृशीम् = गुणैरनुरूपाम् । तनूजाम् = सुताम् । ताम् = वासवदत्ताम् । हिम-हताम् = तुषारविदलिताम् । पद्मिनीमिव = कमलिनीमिव । चिन्तयामि = स्मरामित्यर्थः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

टि०—देव्याः वियोगः (ष० त०) = देवीवियोगः, विधुरं हृदयं यस्य सः विधुरहृदयः (बहु०) देवीवियोगेन विधुरः हृदयः, तस्य (तृ० त०) = देवी-वियोगविधुरहृदयस्य । दाराणां भारः (ष० त०) दारभारः, पुनरागतो दार-भारो यस्य सः (बहु०) = पुनरागतदारभारः । श्लाघितुम् योग्यम्—श्लाघ् + ण्यत् + टाप् = श्लाघ्याम् । अङ्गमेव यष्टिः (रूपक०) हृता अङ्गयष्टिः यस्याः, ताम् (बहु०) = हृताङ्गयष्टिम् ।

राजा—कुछ समय बीत जाने पर पुनः पत्नी-भार को प्राप्त हुआ मैं अनुरूप गुणरूपवती अवन्तिराज की उस प्रशंसनीय कन्या को जिसकी अंगयष्टि लावाणक ग्राम में अग्नि द्वारा जल गयी, हिम से विनष्ट कमलिनी की भाँति याद करता हूँ ॥ १ ॥

विदूषक—आप जल्दी करें, जल्दी करें ।

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावही सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता।]

राजा—केवमाह ?

विदूषकः—पदमिणिआए कहिदं। [पद्मिनिकया कथितम्।]

राजा—भोः ! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि॥ २॥

अन्वयः—रूपश्रिया, समुदिताम्, गुणतश्च, युक्ताम्, प्रियाम्, लब्ध्वा, अद्य, मम, शोकः, मन्द इव। पूर्वाभिघातसरुजः, अनुभूतदुःखः, अपि, पद्मावतीम्, अपि, तथैव, समर्थयामि॥ २॥

व्या०—रूपश्रिया = सौन्दर्यवैभवेन। समुदिताम् = संयुक्ताम्। गुणतश्च = माधुर्यादिभिः गुणैश्च। युक्ताम् = सम्पन्नाम्। प्रियाम् = कान्ताम्, पद्मावतीमिति भावः। लब्ध्वा = प्राप्य। अद्य = इदानीम्। मम = मे। शोकः = विषादः वासवादत्ताविषयक इत्याशयः। मन्द इव = न्यून इव, अभूदिति शेषः। पूर्वाभिघातसरुजः = प्राक्तनदवप्रहारपीडितः। अनुभूतदुःखः = निर्विष्टवेदनः अपि। पद्मावतीमपि = मगधराजतनयामपि। तथैव = तेन प्रकारेणैव। समर्थयामि = तर्कयामि। यथा वासवदत्तोपरता तथैव पद्मावत्यपि विनाशं यास्यतीति

राजा—किसलिए ?

विदूषक—देवी पद्मावती शिर-दर्द से पीड़ित है।

राजा—किसने ऐसा कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा है।

राजा—हाय, बहुत बुरा हुआ—

सौन्दर्य-सम्पत्ति से युक्त और गुणों से सम्पन्न प्रिया को पाकर वासवदत्ता की मृत्युरूपी चोट से पीड़ित मेरा शोक कुछ कम हुआ था किन्तु पूर्व के दुःखानुभव के कारण मैं पद्मावती को भी वैसी ही (वासवदत्ता के समान मृत्यु को प्राप्त करने वाली) समझता हूँ॥ २॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।]

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

विदूषकः—एदु एदु भवं। [एत्वेतु भवान्।]

(उभौ परिक्रामतः।)

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु भवं। [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।]

राजा—पूर्वं प्रविश।

विदूषकः—भो ! तह। (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [भोः ! तथा। अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

राजा—किमर्थम् ?

सम्भावयामि। उत्प्रेक्षालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

टि०—"(ञि) त्वरा" धातोर्लोटि = त्वरताम्। लभ् + क्त्वा = लब्ध्वा। पूर्वश्चासौ अभिघातः (क० धा०) = पूर्वाभिघातः, रुजया सहितः सरुजः (तुल्ययोगबहु०), पूर्वाभिघातेन सरुजः (तृ० त०) = पूर्वाभिघातसरुजः। अनुभूतं दुःखं येन सः (बहु०) = अनुभूतदुःखः। आङ् + दिश् + णिच् + लोट् + सिप् = आदेशय।

अच्छा, पद्मावती कहाँ है ?

विदूषक—समुद्रगृह में उनकी सेज विछाई गयी है।

राजा—तो फिर उसका मार्ग बताओ।

विदूषक—आइये, आप आइये।

(दोनों चलते हैं)

विदूषक—यह रहा समुद्रगृह। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

विदूषक—जी अच्छी वात है। (प्रवेश करके) ओह, ठहरिये आप ठहरिए।

राजा—क्यों

विदूषकः—एसो खु दीपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख! सर्पम्।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि॥ ३॥

दीपप्रभावसूचितरूपः = दीपकप्रकाशप्रकटितस्वरूपः। वसुधातले = पृथ्वीतले। परिवर्त्तमानः = चेष्टमानः। काकोदरः = सर्पः। "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवा काकोदरः फणी" इत्यमरः। सर्पव्यक्तिः = भुजङ्गप्रतीतिः। वैधेयस्य = मूढस्य। "अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः" इत्यमरः।

अन्वयः—हे मूर्ख! त्वम्, ऋज्वायताम्, क्षितौ, भ्रष्टाम्, मुखतोरणलोलमालाम्, सर्पम्, अवगच्छसि, या, निशि, मन्दाऽनिलेन, किञ्चित्परिवर्त्तमाना, भुजगस्य, विचेष्टितानि करोति॥ ३॥

व्या० - हे मूर्ख = हे मूढ! त्वम् = वसन्तकः। ऋज्वायताम् = सरलदीर्घाम्। क्षितौ = पृथिव्याम्। भ्रष्टाम् = पतिताम्। मुखतोरणलोलमालाम् = प्रधानबहिर्द्वारचञ्चलस्रजम्। "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्" इत्यमरः। सर्पम् = काकोदरम्। अवगच्छसि = विजानासि। या = मुखतोरणलोलमाला। निशि = रात्रौ। मन्दाऽनिलेन = मन्थरपवनेन। किञ्चित्परिवर्त्तमाना = ईषद्विवर्त्तमाना। भुजगस्य = सर्पस्य। विचेष्टितानि = विलुण्ठनादीनि। करोति = विदधाति। वायु-

---

विदूषक—यह दीपक के प्रकाश से प्रकटितस्वरूप पृथ्वीतल पर लोट-पोट होता हुआ सांप!

राजा—(प्रवेश करके देखकर मुस्कुराहट के साथ) ओह! यह मूर्ख इसे सांप समझ रहा है। मूर्ख! प्रवेशद्वार पर लटकती हुई सीधी, लम्बी एवं भूमि पर गिरी हुई माला को तू सांप समझ रहा है, जो रात में मन्द वायु के झोंके से उलट-पुलट होती हुई कुछ सांप की चेष्टाओं को कर रही है॥ ३॥

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे । [सुष्ठु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।

वशाद् विलुण्ठिता रात्रौ भुजंग इव मुखतोरणलोलमाला भासते इति भावः । भ्रान्तापह्नुतिरलङ्कारः । वसन्ततिलक वृत्तम् ॥ ३ ॥

टि०—दीपस्य प्रभावः (ष० त०) = दीपप्रभावः, सूचितं रूपं यस्य स सूचितरूपः (बहु०) दीपप्रभावेण सूचितरूपः (तृ० त०) = दीपप्रभावसूचितरूपः । परि + वृत + लट् + शानच् = परिवर्त्तमानः । वि + धा + यत् = विधेयम्, विधेयस्यायं वैधेयः "तस्येदम्" इत्यणि आदिवृद्धौ = वैधेयः, तस्य = वैधेयस्य । ऋजुश्चासौ आयता, ताम् (क० धा०) = ऋज्वायताम् । वि + चेष्ट् + क्त = विचेष्टितानि ।

निरूप्य = सम्यग्विलोक्य । निर्गता = निष्क्रान्ता । अनागतया = अनायातया । ज्ञेयम् = ज्ञातव्यम् ।

अन्वयः—हि, शय्या, अवनता, न तथा, आस्तृतसमा, व्याकुलप्रच्छदा न । अमलम्, शिरोपधानम्, शीर्षाभिघातौषधैः, क्लिष्टम्, न । रोगे, दृष्टि-

---

विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते हैं । यह साँप नहीं है । (प्रवेश कर, देखकर) प्रायः देवी पद्मावती यहाँ आकर चली गयी हों ।

राजा—मित्र ! आयी ही नहीं होंगी ।

विदूषक—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें जानना क्या ! देखो—

सेज दबी नहीं है । जैसी बिछी थी वैसी ही है । चादर में कहीं भी सिकुड़न

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
　　प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥ ४ ॥

विलोभन, जनयितुम्, काचित्, शोभा, न, कृता। प्राणी, रुजा, शयनम्, प्राप्य, पुनः, शीघ्रम्, स्वयम्, न, मुञ्चति ॥ ४ ॥

व्या०—हि = यतः। शय्या = पद्मावत्याः कृते सज्जितं शयनीयम्। अवनता न = न नम्रीभूता। तथा = यथापूर्वम्। आस्तृतसमा = आस्तरेण युक्ता। व्याकुलप्रच्छदा न = देहपरिवर्त्तनेन सङ्कुचितनिचोला न। "निचोलः प्रच्छदपटः" इत्यमरः। अमलम् = स्वच्छम्। शिरोपधानम् = उपबर्हणम्। "शिरस्" शब्दो यद्यप्यसुन्प्रत्ययान्त एव भृश प्रयुज्यते किन्तु "शिरोवाची शिरोऽदन्तो रजोवाची रजस्तथा" इति व्याख्यासुधोक्त्या कप्रत्ययान्तस्यापि शिरशब्दस्य क्वाचित्कः प्रयोगो दृश्यतेऽत एव शिरोपधानमित्युक्तम्। "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धाना मस्तकोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः। शीर्षाभिघातौषधैः = शिरःपीडापनयनक्षमैरौषधिविशेषैः। क्लिष्टं न = मलीमसं न। रोगे = पीडायाम्। दृष्टिविलोभनम् = नयनाकर्षणम्। जनयितुम् = उत्पादयितुम्। काचित् = काऽपि। शोभा = कान्तिरचना, कक्षसज्जारूपेति भावः। न कृता = न विहिता। प्राणी = जनः। रुजा = रोगेण हेतुभूतेन। शयनम् = शय्याम्। प्राप्य = लब्ध्वा। पुनः = भूयः। शीघ्रम् = सत्वरम्। स्वयम् = स्वतः। न मुञ्चति न जहाति। व्याकुलतावशात् स्थानान्तरं गन्तुं न प्रवर्तते, चिरं शय्यामधिशयान एव तिष्ठतीत्याशयः। अनुमानालङ्कारः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४ ॥

टि०—न आगता अनागता, तया (नञ्०) = अनागतया।

आस्तृता चाऽसौ समा (क० धा०) = आस्तृतसमा। व्याकुलः प्रच्छदो यस्याः सा (बहु०) = व्याकुलप्रच्छदा। अविद्यमानं मलं यस्य, तत् (नञ् बहु)=अमलम्। "क्लिश् विबाधने" + क्त = क्लिष्टम्। जन + णिच् + तुमुन् = जनयितुम्। प्राणाः सन्त्यस्मिन्निति, प्राण + इनिः = प्राणी।

नहीं है। तकिया शिरदर्द की औषधि से मैला नहीं है। रोगावस्था में आँखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की गयी है। फिर रुग्ण व्यक्ति शय्या पर जाकर स्वयं उसे शीघ्र नहीं छोड़ पाता है ॥ ४ ॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सि सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदि पडिवालेदु भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।]

राजा—बाढम्। (उपविश्य) वयस्य! निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हो त्ति करेद अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि। होम् इति करोत्वत्रभवान्।]

राजा—बाढम्।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तहिं अहिअरमणीआणि उदअह्वाणाणि वत्तन्ति किल। [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं। [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।]

मुहूर्त्तकम् = द्वादशक्षणात्मककालो मुहूर्त्तः। प्रतिपालयतु = प्रतीक्षताम्। बाधते – सादयति। होम् = श्रवणसूचकमव्ययमिदम्। अधिकरमणीयानि = अतिशयमनोहराणि। उदकस्नानानि = स्नानागाराणि, जलाशया इति भावः। अनभिप्रेता = अनीप्सिता।

विदूषक—तो इस सेज पर क्षण-भर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा – ठीक है। (बैठकर) मित्र! मुझे नींद सता रही है। कोई कहानी सुनाओ।

विदूषक—मैं सुनाता हूँ। आप हूँ-हूँ करते जाइए।

राजा—ठीक है।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ बहुत सुन्दर जल-स्नानागार है।

राजा—क्या उज्जयिनी?

विदूषक – यदि यह कहानी आपको पसन्द नहीं तो दूसरी कहता हूँ।

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा । किन्तु ।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
वाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥ ५ ॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यथा मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

टि०—सद् + णिच् + लट् = सादयति । न अभिप्रेता अनभिप्रेता ।

अन्वयः - प्रस्थानकाले, स्वजनम्, स्मरन्त्याः, स्नेहात्, प्रवृत्तम्, नयनान्त-लग्नम्, वाष्पम्, मम, एव, उरसि, पातयन्त्याः, अवन्त्याधिपतेः, सुतायाः, स्मरामि ॥ ५ ॥

व्या०—प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये, उज्जयिनीतः कौशाम्बीं प्रतीति शेषः । स्वजनम् = आत्मीयजनम् । स्मरन्त्याः = ध्यायन्त्याः । स्नेहात् = प्रेम्णः । प्रवृत्तम् = उद्गतम् । नयनान्तलग्नम् = नेत्रप्रान्तावसक्तम् । पातयन्त्याः = मुञ्चन्त्याः । अवन्त्याधिपतेः = अवन्तिराजस्य, प्रद्योतस्येति यावत् । सुतायाः = पुत्र्याः वासवदत्तायाः इति भावः । स्मरामि = चिन्तयामि । उपजाति वृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः - उपदेशेषु, अपि, बहुशः, माम्, ईक्षमाणया, यया, स्रस्तकोणेन, हस्तेन, आकाशवादितम्, कृतम् ॥ ६ ॥

राजा—मित्र ! यह कहानी पसन्द न हो ऐसी बात नहीं । किन्तु—

चलते समय आत्मीयजनों को स्मरण करती हुई अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता की मुझे याद हो आती है, जबकि वह नेत्रों के कोर में उमड़कर लटके हुए आँसुओं को प्रेम से मेरे ही वक्षःस्थल पर गिरा रही थी ॥ ५ ॥

और भी—

वीणा-वादन के शिक्षण में भी कई बार मुझे देखते हुए जिसने हाथ से

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं ब्रह्मदत्तं णामि। तहिं किल राजा कपिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

विदूषकः—किं राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः,

---

व्या०—उपदेशेषु अपि = शिक्षणेष्वपि, मत्कृतवीणावादनोपदेशेष्वपीति भावः। बहुशः = बहुबारम्। माम् = शिक्षकम्। ईक्षमाणया = विलोकयन्त्या। यया = वासवदत्तया। त्रस्तकोणेन = स्खलितवीणावादनसाधनविशेषेण। 'कोणो वीणावादनम्' इत्यमरः। लोके त्वेष "मिजराब" इत्यभिधानेन प्रथितः। हस्तेन = करेण। आकाशवादितम् = व्योमवादनम्, शून्यस्थलवादनमिति तात्पर्यम्। कृतम् = विहितम्। अनुष्टुब् वृत्तम्॥ ६॥

टि०—नयनयोः अन्तौ, नयनान्तौ (ष० त०), तयोर्लग्नं (स० त०) = नयनान्तलग्नम्। पातयतीति पातयन्ती, तस्याः—पत् = णिच् + लट् + शतृ + ङस् = पातयन्त्याः। "स्मरामि" इति क्रियापदप्रयोगे "अधीगदर्थदयेशां कर्मणि" इति सूत्रेण सुता-शब्दात् षष्ठी = सुतायाः। बहुशब्दात् "बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्" इति शस् = बहुशः इति।

अन्याम् = अपराम्, कथामित्याशयः।

'मिजराब' के गिर जाने पर शून्य में ही खाली हाथ चलाये उस वासवदत्ता को स्मरण करता हूँ॥ ६॥

विदूषक—अच्छा, दूसरी कथा कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहाँ काम्पिल्य नाम का राजा है।

राजा—क्या, क्या ?

विदूषक—(फिर वही कहता है।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य—ऐसा कहो।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

नगरं काम्पिल्यम् ?]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओठ्ठगअ करिस्सं । राजा ब्रह्मदत्तो, णअरं कपिल्ल । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं बेला । अत्तणो पावारअं गह्णिअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्र भवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढ खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए । [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

ओष्ठगतम् – अधरगतम्, कण्ठस्थितमिति तात्पर्यम् । वेला – समयः । प्रावारकम् = उत्तरासङ्गम् । "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ वृहत्तिका तथा" इत्यमरः । एतु = आगच्छतु । अग्रतः = पुरतः ।

राजा—हाँ, ऐसा ही है ।

विदूषक—तो थोड़ी देर ठहरो, जब तक मै इसे कण्ठस्थ कर लूँ । राजा, ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य (कई वार इसी को कहकर) अब आप सुनें । अरे ! आप तो सो गये । इस समय बहुत ठढक पड रही है । मैं ओढ़ने की चादर लेकर आता हूँ । (निकल जाता है ।)

(अवन्तिका वेष में वासवदत्ता एवं चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या ? इधर आइए, इधर आइए । राजकुमारी शिरदर्द से बहुत पीड़ित हैं ।

वासवदत्ता—हाय, कष्ट ! पद्मावती की सेज कहाँ विछी है ?

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।]

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि। [तेन ह्यग्रतो याहि।]

(उभे परिक्रामतः।)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु अय्या। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। (निष्क्रान्ता) [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशत्वार्या। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

वासवदत्ता—अहो! अकरुणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सथा जादा। जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य) अहो! परिजणस्स पमादो। अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि। इअं पदुमावदी ओसुत्ता जाव उवविसामि! अहव अण्णासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि। ता इमस्सिं सय्याए उववसामि। (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा। णिव्वुत्तरोआए होदव्वं! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूए दि मे आलिङ्गेहि त्ति। जाव सइस्सं (शयनं नाटयति) [अहो! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेय-

अकरुणाः=निष्ठुराः। विरहपर्युत्सुकस्य=मद्वियोगोत्कण्ठितस्य। विश्रामस्थानभूता = चित्तानुरञ्जनभाजनभूता। अस्वस्था = रुग्णा। प्रमादः = अनवधानता। "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः। दीपसहायाम् = प्रदीपसहचराम्। अवसुप्ता =

चेटी – समुद्रगृह में सेज विछी है।

वासवदत्ता—तो आगे चलो।

(दोनों चलती हैं।)

चेटी—यह रहा समुद्रगृह। आप प्रवेश करें। तब तक मैं भी शिर-दर्द का लेप जल्दी से तैयार कर लेती हूँ। (चली जाती है।)

वासवदत्ता— हाय! देवता मेरे प्रति निष्ठुर हो रहे हैं। मेरे वियोग से विकल आर्यपुत्र के मनोविनोद का एकमात्र साधन पद्मावती भी रुग्ण हो गयी।

मपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। अहो! परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यज्यति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। दिष्ट्याऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासा। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेशसंविभागतया। शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति। यावच्छयिष्ये।

शयाना। अन्यासनपरिग्रहेण = भिन्नासनाङ्गीकारेण। प्रतिभाति = प्रतीयते। प्रह्लादितमिव = आनन्दितमिव। दिष्ट्या = सौभाग्येन। अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा = निरन्तरसुखश्वासा। निवृत्तरोगया = रोगरहितया। एकदेशसंविभागतया = एकभागविभागतया। आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। नाटयति = अभिनयति।

टि०—अभि + धा + कर्मणि लोट् = अभिधीयताम्। स्वप् + क्त = सुप्तः। स्तॄ + क्त + टाप् = स्तीर्णा। त्वरा + णिच् + लट् + मिप् = त्वरयामि। ईशत इति, "ईश ऐश्वर्ये" धातोः 'स्थेशभासपिसकसो वरच्' इत्यनेन वरच् = ईश्वराः। अविद्यमाना करुणा येषां ते (नञ् बहु०) = अकरुणाः। विरहेण पर्युत्सुकः, तस्य (तृ० त०) = विरहपर्युत्सुकस्य। प्र + मद् + घञ् = प्रमादः। दीपः सहायो यस्याः, सा, ताम् (बहु०) दीपसहायाम्। अविच्छिन्नः सुखः निःश्वासो यस्याः सा (बहु०) = अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा। निवृत्तो रोगो यस्याः सा निवृत्तरोगा, तया (बहु०) = निवृत्तरोगया।

अच्छा, मैं भीतर चलूँ। (भीतर जाकर और देखकर) ओह, सेवकों की लापरवाही! जो कि पद्मावती को दीपक के सहारे अकेली छोड़कर चले गये। पद्मावती सोयी है। तो मैं भी बैठती हूँ। अथवा यदि मैं दूसरे आसन पर बैठी तो यही समझा जायेगा कि पद्मावती के प्रति मेरा प्रेम कम है। अतः इसी शय्या पर बैठ जाऊँ। (बैठकर) क्यों आज इसके साथ बैठते हुए मेरा हृदय प्रसन्न-सा हो रहा है? सौभाग्य से यह सुखपूर्वक साँस ले रही है। लगता है यह नीरोग हो गयी है। अथवा सेज पर एक ओर सोने से मानों मुझे यह कह रही है कि मुझे आलिङ्गन कर। अच्छा, मैं सो जाऊँ। (सोने का अभिनय करती है।)

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फली संवुत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि जणो । जाव मुहूतअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि । [दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।]

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

स्वप्नायते = स्वप्नं पश्यतीति भावः । सहसा = अकस्मात् । निष्फलः = व्यर्थः । संवृत्तः = सञ्जातः ।

टि०—स्वप्न + क्यङ् + ते = स्वप्नायते । निर्गतं फलं यस्मात्सः (बहु०) = निष्फलः ।

प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम् । आलपामि = वार्तालापं करोमि । कुपिता = क्रुद्धा ।

राजा—(स्वप्न में) वासवदत्ता !

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) हैं ! ये तो आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं । क्या देख ली गयी हूँ ? आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा-बोझ मेरे देखे जाने से व्यर्थ चला गया ।

राजा—हाय ! अवन्तिराजकुमारी !

वासदसत्ता—सौभाग्य से आर्यपुत्र स्वप्न में बोल रहे हैं । यहाँ कोई मनुष्य नहीं । थोड़ी देर रुककर दृष्टि और हृदय को प्रसन्न कर लूँ ।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! मुझे उत्तर दो ।

वासवदत्ता—आलवामि भट्ट ! आलवामि । [आल्पामि भर्तः ! आल्पामि ।]

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुक्खिदह्मि । [नहि नहि, दुःखितास्मि ।]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किं ? [इतः परं किम् ?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरचिआ ? [आ आपेहि इहापि विरचिका ?]

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि । (हस्तौ प्रसारयति)

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि । को वि म पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यासपलाम्बअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं । (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता ।) [चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।]

विरचिकाम् = एतन्नाम्नीं दासीम् । आ = कोपद्योतकमव्ययमिदम् । अपेहि = अपगच्छ । प्रसादयामि = आह्लादयामि । चिरम् = बहुकालपर्यन्तम् ।

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ स्वामिन् ! उत्तर देती हूं ।

राजा—क्या तुम रुष्ट हो ?

वासवदत्ता—नही, नही । मै दु.खी हूँ ।

राजा—यदि रुष्ट नही हो तो फिर तुमने अपने गहने क्यों नही पहने हैं ?

वासवदत्ता—और क्या ?

राजा—क्या तुम विरचिका को याद कर रही हो ?

वासवदत्ता—(रोषपूर्वक) हटो, क्या यहां भी विरचिका ?

राजा—तो विरचिका के लिए मैं तुझे मनाता हूं । (हाथ फैलाता है ।)

वासवदत्ता—मै देर तक रुक गयी । कोई भी मुझे देख सकता है । इसलिए अब चलती हूं । अथवा सेज से लटकते हुए आर्यपुत्र के हाथ को सेज पर रखकर चलू । (वैसा करके चली जाती है ।)

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ ! हा ! धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥ ७ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

शय्याप्रलम्बितम् = शयनस्र सितम्, नीचैः लम्बमानमिति भावः । आरोप्य = स्थापयित्वा ।

टि० - तुष् + णिच् + लट् + मिष् = तोषयामि । प्रिया चाऽसौ शिष्या (क० धा०) तत्सम्बुद्धौ = प्रियशिष्ये । आङ् + लप् + मिष् + आलपामि । अप + इण् + लोट् + सिप् = अपेहि । प्र + सृ + णिच् + लट् = प्रसारयति ।

अन्वयः—सम्भ्रमेण, निष्क्रामन्, अहम्, द्वारपक्षेण, ताडितः, ततः, अयम्, मनोरथः, भूतार्थः (वा) इति, व्यक्तम्, न, जानामि ॥ ७ ॥

व्या०—सम्भ्रमेण = त्वरया । निष्क्रामन् = निर्गच्छन् । अहम् = उदयनः । द्वारपक्षेण = द्वारस्यैकतरकपाटेन । ताडितः = प्रतिहतः, अस्मीति शेषः । ततः= तस्मात् कारणात् । अयम् = वासवदत्तासंस्पर्शः । भूतार्थः = यथार्थः । (अथवा) मनोरथः = मनोऽभिलाषः, काल्पनिक इति भावः । तत्, व्यक्तम् = स्फुटम् । न जानामि = नावगच्छामि । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ७ ॥

प्रतिबुद्धः = जागरितः । प्रियम् = अभीष्टम् । आवेदये = विज्ञापयामि । धरते = अवतिष्ठते । उपरता = मृता ।

राजा - (सहसा उठकर) वासवदत्ता । ठहरो ! ठहरो ! हा ! धिक्कार है । मैं सहसा निकलता हुआ द्वार के किनारे से टकरा गया । मैं स्पष्ट नहीं जानता कि यह घटना वास्तविक है या केवल मेरी मनोऽभिलाषा है ॥ ७ ॥

(प्रवेश करके)

विदूषक—अरे ! आप तो जाग गये हैं ।

राजा—मित्र ! मैं तुम्हें एक प्रिय बात कहता हूँ । वासवदत्ता निश्चय ही जीवित है ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता !
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदअह्णाणसङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे । [अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न । आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

टि०—भूतश्चासौ अर्थः (क० धा०) = भूतार्थः । प्रति + बुध् + क्त = प्रतिबुद्धः । उप + रम् + क्त + टाप् = उपरता ।

अन्वयः हे सखे ! (वासवदत्ता) शय्यायाम्, अवसुप्तम्, माम्, बोधयित्वा, गता । "दग्धा" इति, ब्रुवता, रुमण्वता, पूर्वम्, वञ्चितः, अस्मि ॥ ८ ॥

व्या०—हे सखे = हे मित्र ! (वासवदत्ता) शय्यायाम् = शयनीये । अवसुप्तम् = निद्रितम् । माम् = उदयनम् । बोधयित्वा = जागरयित्वा । गता = कक्षाद् बहिर्गता । दग्धा अग्निज्वलिता । इति = एवम् । ब्रुवता = वदता । रुमण्वता = एतन्नामकेन सचिवेन । पूर्वम् = प्रथमम् । वञ्चितः = विप्रलब्धः । अस्मि = अभूवम् । अहमिति शेषः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

अविहा = खेदाभिव्यञ्जकमव्ययमिदम् । असम्भावनीयम् = असम्भवम् ।

विदूषक—हा ! वासवदत्ता ! कहां वासवदत्ता ! वह तो बहुत पहले ही मर चुकी है ।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो ।

मित्र ! सेज पर सोये मुझे जगाकर वह चली गई । पहले "वासवदत्ता जल मरी" यह कहकर रुमवान् ने मुझे प्रतारित किया है ॥ ८ ॥

विदूषक—हा ! यह असम्भव है । ओफ ! मैंने जल-स्नानागार की चर्चा की थी उसी से वासवदत्ता की याद करते-करते आपने उसे स्वप्न में देखा होगा ।

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्यात्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! वअस्स ! एदस्सि णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि। सा तुए दिट्ठा भवे। [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।]

राजा—न, न,

उदकस्नानसंकीर्त्तनेन = जलावगाहचर्चाकरणेन । चिन्तयता = स्मरता ।

अन्वयः—तावत्, अयम्, स्वप्नः, यदि, अप्रतिबोधनम्, धन्यम् । अथवा, अयम्, विभ्रमः, स्यात्, चिरम्, मे, विभ्रमः, अस्तु, हि ॥ ९ ॥

व्या०—तावदयम् = वासवदत्तासङ्गमः । स्वप्नो यदि = स्वप्नावस्थः एवासीत् यदि । तर्हि, अप्रतिबोधनम् अजागरः, एव । धन्यम् = वरम् । अथवा = पक्षान्तरे । अयम् = वासवदत्तादर्शनव्यापारः । विभ्रमः = भ्रान्तिः । स्यात् = भवेत् । तर्हि, चिरम् वहुकालपर्यन्तम् । मे - मम । विभ्रमः = उन्माद एव । अस्तु हि = भवतु । स्वप्नाद् भ्रान्तेर्वा वासवदत्तासङ्गमो भवेत्तर्हि धन्योऽहं भवेयमितिभावः । अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ ९ ॥

टि०—अव + स्वप् + क्त = अवसुप्तम् । वुध् + णिच् + क्त्वा = वोधयित्वा । दह + क्त + टाप् = दग्धा । सम्भावयितुं योग्यम् = सम्भावनीयम्—सम् + भू + णिच् + अनीयर्, न सम्भावनीयम् (नञ् त०) = असम्भावनीयम् । न प्रतिवोधनम् (नञ्०) = अप्रतिवोधनम् ।

राजा—अच्छा ! क्या मैंने स्वप्न देखा ?

यदि वह स्वप्न था तो न जागना ही भला था । यदि मेरा यह भ्रम था तो चिरकाल तक मेरा यह भ्रम वना ही रहे ॥ ९ ॥

विदूषक—मित्र ! इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम की एक यक्षिणी रहती है । उसे ही प्रायः आपने देखा होगा ।

राजा—नहीं, नहीं ।

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥ १० ॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥ ११ ॥

अन्वयः—स्वप्नस्य, अन्ते, विबुद्धेन, (मया) चारित्रम्, अपि, रक्षन्त्याः, (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनम्, दीर्घालकम्, मुखम्, दृष्टम् ॥ १० ॥

व्या० —स्वप्नस्य - निद्रायाः । अन्ते = अवसाने । विबुद्धेन = जागरितेन, मयोदयनेनेति शेषः । चारित्रम् अपि = सद्वृत्तमपि । रक्षन्त्याः = पालयन्त्याः, वासवदत्तायाः इति शेषः । नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनम् = नयनदूरीकृतकज्जलम् । दीर्घालकम् = लम्बमानकेशम् । मुखम् = वदनम् । दृष्टम् = अवलोकितम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः —सन्त्रस्तया, तया, देव्या, यः अयम्, बाहुः, निपीडितः । स्वप्नेऽपि, उत्पन्नसंस्पर्शः, रोमहर्षम्, न मुञ्चति ॥ ११ ॥

व्या०—सन्त्रस्तया = भीतया । तया देव्या = वासवदत्तया । योऽयं बाहुः =य एष भुजः, मदीय इति शेषः । निपीडितः = दृढं स्वहस्तेन गृहीतः । शयनीये आरोपित इति भावः । तस्मात्कारणात्, स्वप्नेऽपि = निद्रायामपि । 'स्यान्निद्राशयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः । उत्पन्नसंस्पर्शः = सञ्जाततद्धस्तस्पर्शः, सन्नपि । रोमहर्षम = रोमाञ्चम्, सात्त्विकभावमिति भावः । न मुञ्चति = न त्यजति । वासवदत्ताकरस्पर्शेनेदानीमपि रोमाञ्चः सञ्जायते इति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ११ ॥

स्वप्न के बाद जब मैं जाग गया तब मैंने स्त्री-चरित्र की रक्षा करने वाली वासवदत्ता का मुँह देखा, जो लम्बे-लम्बे बालों से ढँका था और जहाँ नेत्रों में काजल नहीं था ॥ १० ॥

और भी—मित्र ! देखो, देखो ।

भयभीत होकर उसने जो मेरा हाथ पकड़ा, वह निद्रा में भी स्पर्श होने से अभी तक रोमाञ्चित ही है ॥ ११ ॥

विदूषकः — मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ। एदु एदु भवं। चउस्सालं पविसामो। [मेदानीं भवानमर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्। चतुःशालं प्रविशामः]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः। अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्।

टि०—चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र + स्वार्थे अण्। विप्रोषितमञ्जनं यस्मिंस्तत् (बहु०) = विप्रोषिताञ्जनम्, नेत्रयोर्विप्रोषिताञ्जनम् (स० त०) = नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्। सम् + त्रस् + क्त + टाप् + टा = संत्रस्तया। उत्पन्नः संस्पर्शो यस्य, सः (बहु०) = उत्पन्नसंस्पर्शः। रोम्णां हर्षः, तम् (ष० त०) = रोमहर्षम्।

अनर्थम् = असंगतम् विषयम्। मा = खिन्नो नैव भवत्विति भावः। चतुःशालम् = सञ्जवनम्। "सञ्जवनं त्विदम्। चतुःशालम्" इत्यमरः। शालाचतुष्टयोपेतगृहविशेषम्। बलसमुदायेन = सैन्यसमूहेन। अभिघातयितुम् = व्यापादयितुम्। सन्नद्धानि = तत्पराणि, सन्तीति शेषः।

विदूषक—अब आप व्यर्थ की बातें मत सोचिए। इधर आइए, इधर आइए, चौशाला में चलें।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो। हमारे महाराज दर्शक ने आप से कहा है कि आपका मंत्री रुमण्वान् आरुणि के विनाश के लिए भारी सैन्य-समूह लेकर आया है और मेरी भी विजय-सेना हाथी, घोड़े, रथ और पैदल शस्त्रास्त्र से सज्जित है, तो अब आप उठ खड़े हों।

अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥ १२ ॥

अन्वयः—(हे राजन्) ते, रिपवः, भिन्नाः। भवद्गुणरताः, पौराः, समाश्वासिताः। या, पार्ष्णी, तस्याः, अपि, भवत्प्रयाणसमये, विधानम्, कृतम्। अरिप्रमाथजननम्, यद्, यत्, साध्यम्, तत्तत्, मया, अनुष्ठितम्। बलैः, त्रिपथगा, नदी, अपि, तीर्णा च। वत्साश्च, तव, हस्ते (सन्ति) ॥ १२ ॥

व्या०—(हे राजन् = हे भूपते) ते = तव। रिपवः = शत्रवः। भिन्नाः = गूढोपायैः भेदं प्रापिताः। भवद्गुणरताः = भवद्दयादाक्षिण्यादिगुणानुरक्ताः। पौराः = नागरिकाः। समाश्वासिताः = "अचिरादेव विजयश्रीयुक्तो वत्सराजो भवतः पालयिष्यति" इत्याश्वासनं प्रापिताः। या पार्ष्णी = सैन्यपृष्ठम्। "पार्ष्णिः स्त्रीपुंसयोः पादमूले स्याद् ध्वजिनी करौ" इति रन्तिदेवः। तस्या अपि, भवत्प्रयाणसमये = संग्रामविजयाय भवत्प्रस्थानकाले। विधानं कृतम् = तद्रचनं विहितम्। अरिप्रमाथजननम् = रिपुनाशोत्पादकम्। यत् यत् साध्यम् = करणीयम्। तत्तन्मया = दर्शकेन। अनुष्ठितम् = सम्पादितम्। बलैः = सैन्यैः। त्रिपथगा = त्रिमार्गगामिनी, गङ्गेति भावः। स्वर्गमर्त्यपातालमार्गैः गङ्गा गच्छतीति प्रसिद्धम्। नदी अपि = सरिदपि। तीर्णा = तरणविषयीकृता। वत्साश्च = वत्सदेशाः। तव = भवतः हस्ते = करे, एवेति ज्ञायतामिति शेषः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ १२ ॥

टि०—चतस्रः अन्योन्याभिमुखाः शालाः यस्मिंस्तत् (बहु०) = चतुःशालम्।

और भी—आपके शत्रुओं में भेद कर दिया गया है। आपके गुणोंपर अनुरक्त नागरिकों को भी आश्वस्त कर दिया गया है। आपकी युद्ध यात्रा के समय पृष्ठ रक्षिणी सेना की भी व्यवस्था कर दी गयी है। शत्रु-नाश के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन्हे जुटा लिया गया है। सेना गंगा को भी पार कर चुकी है। अब वत्सराज्य आपके हाथ में ही हैं ॥ १२ ॥

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

अमा (सह) समीपे वा भवः, 'अमा'शब्दात् "अव्ययात्त्यप्" इति सूत्रेण "अमेहक्वतसित्रेभ्य एव" इति वार्तिकबलेन च त्यप् प्रत्ययः = अमात्यः । अभि + हन् + णिच् + तुमुन् = अभिघातयितुम् । हस्तिनश्च, अश्वाश्च रथाश्चेति विग्रहे "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इत्यनेन सेनाङ्गत्वात् समाहारद्वन्द्वः = हस्त्यश्वरथम्, हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयो येषु तानि (बहु०) = हस्त्यश्वरथपदातीनि । पुरि भवाः, 'पुर'शब्दात् "तत्र भवः" इत्यणि = पौराः अरीणां प्रमाथः (ष० त०), जनयतीति जननम्—"जनी प्रादुर्भावे" धातोः "कृत्यल्युटो बहुलम्" इत्यनेन ल्युटि–अरिप्रमाथस्य जननम् (ष० त०) = अरिप्रमाथजननम् । त्रयाणां पथां समाहारः = त्रिपथम्, त्रिपथेन गच्छतीति (उपपदस०) = त्रिपथगा ।

अन्वयः—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे, विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे, महार्णवाभे, युधि, उपेत्य, दारुणकर्मदक्षम्, तम्, आरुणिम्, नाशयामि ॥ १३ ॥

व्या०—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे = करिश्रेष्ठाश्वतरणाऽऽधारे । विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे = प्रक्षिप्तशरभयानकोर्मिखण्डयुक्ते । महार्णवाभे = महासमुद्रसदृशे । युधि = संग्रामे । उपेत्य = सम्प्राप्य । दारुणकर्मदक्षम् = क्रूरकार्यनिपुणम् । तम् = पूर्वोक्तम् । आरुणिम् = तन्नामकम् शत्रुम् । नाशयामि = व्यापादयामि । रूपकोपमयोः संसृष्टिः । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १३ ॥

टि०—नागानामिन्द्राः (ष० त०) नागेन्द्राः, नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च नागेन्द्रतुरङ्गम् । सेनाङ्गत्वात्समाहारद्वन्द्वः । नागेन्द्रतुरङ्गेण तीर्णः, तस्मिन् (तृ० त०) = नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे । विकीर्णाश्च ते बाणाः (क० धा०) = विकीर्णबाणाः,

---

राजा—(उठकर) ठीक है । यह मैं अब,

श्रेष्ठ हाथियों और घोड़ों का सञ्चार है जिसमें ऐसे, तथा बाणरूप भयङ्कर तरङ्गों से भययुक्त महान् समुद्र के समान रण में जाकर, क्रूर कर्म में निपुण उस आरुणि नामक शत्रु को नष्ट करता हूँ ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

उग्राश्च तरङ्गाः (क० धा०) उग्रतरङ्गाः, विकीर्णबाणा एवोग्रतरङ्गाः (रूप-क०), तैः भङ्गः यस्मिन्, तस्मिन् (व्यधिकरणबहु०) = विकीर्णबाणोग्रतरङ्ग-भङ्गे। महांश्चासौ अर्णवः (क० धा०) तस्येव आभा यस्य, तस्मिन् (व्य० बहु०) = महार्णवाभे। दारुणं च तत्कर्म (क० धा०) तस्मिन् दक्षः, तम् (स० त० = दारुणकर्मदक्षम्। नश् + णिच् + लट्, मिप् = नाशयामि।

इति पञ्चमोऽङ्कः

—:*:—

(सब निकल जाते हैं।)

पञ्चम अङ्क समाप्त

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः —भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

काञ्चनतोरणद्वारम् = स्वर्णमयमुख्यद्वारम् । अशून्यम्=स्वावस्थानेन अरिक्तम् । कस्तत्रावतिष्ठते इत्यर्थः ।

निवेद्यताम् = विज्ञाप्यताम् । वत्सराजलाभप्रवृद्धोदयाय = वत्सदेशोपलब्धिसमृद्धोत्कर्षाय । महासेनस्य = उज्जयिनीपतेः । सकाशात् = समीपम् । रैभ्यसगोत्रः = रैभ्यगोत्रोद्भवः । "गोत्रं नाम्न्यचले कुले" इति कोशानुरोधात् रैभ्यनामके गोत्रे भाव्यमिति । अङ्गारवत्या = प्रद्योतभूपतिभार्यया । प्रेषिता = प्रहिता । वासवदत्ताधात्री = वासवदत्तोपमाता । प्रतीहारभूमिम् = द्वारभुवम् । उपस्थितौ = सन्निहितौ ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—अरे ! यहाँ कौन स्वर्णमय द्वार पर खड़ा है ?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया हूँ । क्या आदेश है ?

कञ्चुकी—देवी ! वत्सराज्य की प्राप्ति से विशेष समृद्ध महाराज उदयन से आप कहें कि महाराज महासेन के पास से रैभ्यसगोत्र कञ्चुकी एवं माननीय अंगारवती द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा, दोनों ही द्वार पर खड़े हैं ।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स। [आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो। अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा। तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति। [शृणोत्वार्यः। अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा-वादिता। तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति।]

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तर्हि गच्छिअ पुच्छिदो—कुदो इमाए वीणाए आगमो

टि०—तोरणञ्च तद्द्वारम् (क० धा०) तोरणद्वारम्, काञ्चनञ्च तत्तोरण-द्वारम् (क० धा०) = काञ्चनतोरणद्वारम्। वत्सानां राज्यम् (ष० त०), तस्य लाभः (ष त०) = वत्सराज्यलाभः। प्रवृद्धः उदयो यस्य, स (बहु०) प्रवृद्धो-दयः, वत्सराज्यलाभेन प्रवृद्धोदयः, तस्मै (तृ० त०) = वत्सराज्यलाभप्रवृद्धो-दयाय। समानं गोत्रं यस्य, स सगोत्रः (बहु०), "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभि-नामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इत्यनेन समानस्य सादेशः। रैभ्यस्य सगोत्रः (ष० त०) = रैभ्यसगोत्रः।

अदेशकालः = देशकालविवर्जितः, अवसर इति शेषः। सूर्यामुखप्रासादगतेन = सूर्यामुखनामकं भवनं प्राप्तेन। केनापि = अज्ञातजनेन। वीणा = 'वल्लकी' इत्यपरनामा वाद्ययन्त्रविशेषः। घोषवत्याः = एतदाख्यायाः वीणायाः।

प्रतीहारी—आर्य ! द्वारपाल द्वारा राजा को कहने का यह उचित स्थान एवं समय नहीं है।

कञ्चुकी—स्थान और समय क्यों उचित नहीं है ?

प्रतीहारी—आर्य ! सुनें—आज महाराज के 'सूर्यामुख' नामक महल में जाकर किसी ने वीणा बजायी है। उसे सुनकर महाराज बोले—"घोषवती का-सा शब्द सुनाई पड़ता है।"

कञ्चुकी—फिर, फिर क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तब वहाँ जाकर उन्होंने उससे पूछा—"यह वीणा कहाँ

त्ति । तेण भणिअं—अह्मेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा। जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणी त्ति । तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा । तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं—दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदि त्ति । अय्य ! ईदिसो अणवसरो । कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः —कुतोऽस्या वीणाया आगम इति । तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति । तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम् —दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयामि ?]

काञ्चुकीयः —भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]

ततः = तदनन्तरम् । पृष्टः = जिज्ञासितः । आगमः = उपलब्धिः । भणितम्= उक्तम् । कूर्चगुल्मलग्ना = कुशस्तम्बपतिता । उपनीयताम् = समर्प्यताम् । अङ्के = उत्सङ्गे । "उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः" इत्यमरः । मोहम् = मूर्च्छाम् । मोहप्रत्यागतेन=प्राप्तचैतन्येन । बाष्पपर्याकुलेन = अश्रुव्याकुलेन । अनवसरः= प्रसङ्गाभावः ।

तदाश्रयम् = वासवदत्ताविषयकम् । अवतरति = अवरोहति ।

टि०—देशश्च कालश्च देशकालौ (द्वन्द्व), अविद्यमानौ देशकालौ यस्य सः

मिली ?" उसने कहा—"हमने नर्मदा के तट पर इसे कुशा की झाड़ी में पड़ी पाया । यदि इसका प्रयोजन आपको हो तो आप इसे रख लें।" तब उस वीणा को गोद में लेकर महाराज मूर्च्छित हो गये । जब वे होश में आये तो अश्रुपूरित मुख से उन्होंने कहा—"घोषवती ! तुझे तो देख लिया पर वह तो नहीं दिखायी पड़ती ।" इसलिए यह उचित अवसर नहीं है । मैं कैसे जाकर निवेदन करूँ ?

कञ्चुकी—देवी जी ! कहिए कि इसका भी सम्बन्ध उसी से है ।

प्रतिहारी—आर्य ! मैं निवेदन करती हूँ । ये महाराज सूर्यामुख भवन से नीचे उतर रहे हैं । इसलिए यहीं पर उनसे कह दूँगी ।

काञ्चुकीयः—भवति । तथा ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

(मिश्रविष्कम्भकः)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्त्वा ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

(बहु०) = आदेशकालः । सूर्यामुखं चासौ प्रासादः (क० धा०), सूर्यामुख-प्रासादं गतः, तेन (द्वि० त०) = सूर्यामुखप्रासादगतेन । वद् + णिच् + क्त + टाप् = वादिता । कूर्चानां गुल्मः (ष० त०) तस्मिन् लग्ना (ष० त०) = कूर्चगुल्मलग्ना । उप + नी + कर्मणि लोट् = उपनीयताम् । वाष्पेण पर्याकुलम्, तेन (तृ० त०) = वाष्पपर्याकुलेन । नि + वद् + णिच् + लट्, मिप् = निवेदयामि । सा (वासवदत्ता) आश्रया यस्य तत् (बहु०) = तदाश्रयम् । अव + तॄ + लट्, तिप् = अवतरति । मिश्रश्चासौ विष्कम्भकः (क० धा०) = मिश्रविष्कम्भकः ।

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः, स्तनयुगले, जघनस्थले च, सुप्त्वा, कथन्नु, विहगगणरजोविकीर्णदण्डा, प्रतिभयम्, अरण्यवासम्, अध्युषिता, असि ?

व्या० हे श्रुतिसुखनिनदे = हे श्रवणप्रियध्वनियुक्ते ! वीणे इत्याशयः । "शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः ।" इत्यमरः । देव्याः = वासवदत्तायाः ।

कञ्चुकी—देवी जी ! बहुत अच्छा ।

(दोनों चले जाते हैं ।)

(मिश्रविष्कम्भक समाप्त)

(राजा एवं विदूषक का प्रवेश)

राजा—कानों को सुख देने वाले शब्दों से युक्त हे वीणे ! (पहले तुम) वासवदत्ता के स्तनों और जङ्घाओं पर सोती थी । अब पक्षियों के मल से लिप्त-दण्ड होकर इस भयङ्कर वन प्रदेश में कैसे निवास करती हो ? ॥ १ ॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥ २ ॥

स्तनयुगले = कुचयुग्मे । जघनस्थले च = श्रोणीपुरोभागे च । "जघनं स्यात् स्त्रियाः श्रोणी पुरोभागे कटावपि" इति मेदिनी । सुप्ता = शयनं लब्धा सती । (इदानीम्) कथन्नु = केन प्रकारेण नु । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा = खग-यूथमलव्याप्तदण्डा सती । प्रतिभयम् = भयङ्करम् । "भयङ्करम् प्रतिभयम्" इत्यमरः । अरण्यवासम् = वनवासम् । अभ्युषितासि = आश्रितवत्यसि । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ १ ॥

अस्निग्धा = प्रीतिरहिता । तपस्विन्याः = वासवदत्तायाः इति भावः ।

टि०—श्रुत्योः सुखः (स० त०) श्रुतिसुखो निनदो यस्याः सा श्रुतिसुख-निनदा (बहु०) तस्मिन्बुद्धौ = श्रुतिसुखनिनदे । स्तनयोर्युगलम्, तस्मिन् (ष० त०) = स्तनयुगले । विहगानां गणः (ष० त०) तस्य रजांसि, विहगगणरजांसि (ष० त०) । विकीर्णो दण्डो यस्याः सा विकीर्णदण्डा (बहु०), विहगगण-रजोभिः विकीर्णदण्डा (तृ० त०) = विहगगणरजोविकीर्णदण्डा । उष्यते अस्मि-न्निति वासः, "वस निवासे" धातोः "हलश्च" इत्यधिकरणे घञ्, अरण्यम् एव वासः, तम् (रूपक०) = अरण्यवासः ।

तपः अस्ति अस्याः इति तपस्विनी, तस्याः=तपस्विन्याः । तपस्शब्दात् "तपः सहस्राभ्यां विनीनी" इत्यनेन विनिः, स्त्रीत्वाद् "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इत्यनेन ङीप् ।

अन्वयः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि, खेदस्तनान्तरसुखानि, उप-गूहितानि, विरहे माम् उद्दिश्य, परिदेवितानि, वाद्यान्तरेषु, सस्मितानि, कथितानि, च (न स्मरसि) ॥ २ ॥

और भी, हे घोषवती ! तू बहुत ही स्नेहहीन है, जो कि वासवदत्ता की जांघों पर उठाना, बगल में दबाना, थक जाने पर सुख से स्तनों के बीच रखना, मेरे वियोग में विलाप करना और वीणा बजाते समय बीच-बीच में मुस्कराहट

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

व्या०—या त्वं तपस्विन्याः, श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि = जघनधारणकक्षाऽधोभागसंस्पर्शनानि। खेदस्तनान्तरसुखानि = खेदे श्रमे सति कुचमध्ये सुखकराणि। उपगूहितानि = आलिङ्गनानि। विरहे = वियोगे। माम् = उदयनम्। उद्दिश्य = मामभिलक्ष्य। परिदेवितानि = विलापवचनानि। "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। बाधान्तरेषु = वीणाभ्यासवेलामध्येषु, विश्रामार्थम्मध्ये लब्धेष्ववसरेष्वितिभावः। "अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च" इत्यमरः। सस्मितानि = मन्दहासयुक्तानि। कथितानि = प्रशंसावचनानि। (न स्मरसि = न ध्यायसि) अत एवाऽप्रीतासि इत्यनेनान्वयः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

टि०—श्रोण्या समुद्वहनानि (तृ० त०), पार्श्वे निपीडितानि (स० त०) श्रोणीसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च तानि (द्वन्द्व) = श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि। स्तनयोरन्तरम् (ष० त०), तस्मिन् सुखानि (स० त०), खेदे सति स्तनान्तरसुखानि (स० त०) = खेदस्तनान्तरसुखानि। बाधस्य अन्तराणि, तेषु (ष० त०) = बाधान्तरेषु। स्मितेन सहितानि (तुल्ययोगबहु०) = सस्मितानि।

अलम् = पर्याप्तम्, वारणार्थकमव्ययम्। अतिमात्रम् = अत्यधिकम्। सतप्य = चिन्तयित्वा।

अन्वयः—चिरप्रसुप्तः, मे, कामः, वीणया, प्रतिबोधितः, यस्याः, घोषवती,

---

के साथ मुझसे बातें करना—आदि सभी बातों को भूल गयी है ॥ २ ॥

विदूषक—अब आप अधिक सन्ताप न करें।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो।

बहुत दिनों से सोये पड़े वासवदत्ता विषयक मेरे प्रेम को वीणा ने जगा

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः ।) [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—जेदु भट्टा । एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भसगोत्तो कंकुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ता-धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [जयतु भर्ता । एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ता-धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

प्रिया, ताम्, देवीम्, तु, न, पश्यामि ॥ ३ ॥

व्या०—चिरप्रसुप्तः = बहुकालं यावद् प्रतिवुद्धः । मे = मम । कामः = अभिलाषः, वासवदत्ताविषयक इति भावः । वीणया = घोषवत्या । प्रतिवोधितः = उद्‌बोधितः । यस्याः = वासवदत्तायाः । घोषवती = इयं पुरोवर्तिनी वल्लकी । प्रिया = प्रीतिप्रदा । ताम् = तादृशीम् । देवीम् तु = वासवदत्तां तु । न पश्यामि = न प्रेक्षे । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३ ॥

शिल्पिजनसकाशात् = कारुजनसमीपात् । "कारुः शिल्पी" इत्यमरः । नव-योगाम् = नूतनतन्त्र्यादिसम्बन्धयुक्ताम् ।

अङ्गारवत्या = महासेनपत्न्या । आहूयताम् = आकार्यताम् ।

दिया है किन्तु जिसे (वासवदत्ता को) यह वीणा अत्यधिक प्रिय थी, उस देवी को मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

वसन्तक ! घोषवती को कारीगरों से ठीक कराकर ले आओ ।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा । (वीणा लेकर चला जाता है ।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो । महासेन के पास से आये हुए रैभ्यस-गोत्र कञ्चुकी एवं देवी अङ्गारवती द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा, दोनों दरवाजे पर खड़े हैं ।

राजा—तेन हि पद्मावतीं तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे आदिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं । [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

टि०—सम् + तप् + क्त्वा, ल्यप् = सन्तप्य । चिरं प्रसुप्तः (सुप्सुपा०) = चिरप्रसुप्तः । प्रति + बुध् + णिच् + क्त = प्रतिबोधितः । शिल्पं (क्रियाकौशलं) यस्य स शिल्पी = शिल्प + इनिः, स चासौ जनः (क० धा०), तस्य सकाशः, तस्मात् (ष० त०) = शिल्पिजनसकाशात् । नवोयोगः (तन्त्र्यादि सम्बन्धः) यस्याः, सा, ताम् (बहु०)=नवयोगाम् । आङ् + ह्वे़ञ् + कर्मणि लोट् = आहूयताम् ।

ज्ञातिकुलस्य = स्वजनवंशस्य । "सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः"

राजा—तो पद्मावती को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—जैसी आपकी आज्ञा । (चली जाती है ।)

राजा—क्या महासेन ने यह वृत्तान्त शीघ्र ही जान लिया ?

(पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—राजकुमारी ! आइए, आइए ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—पद्मावती ! क्या तुमने सुना कि महासेन के पास से आये हुए रैभ्यसगोत्र कंचुकी और महारानी अंगारवती द्वारा भेजी गई वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा द्वारस्थल पर उपस्थित हैं ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! बन्धुजनों के वंश का समाचार सुनना मुझे प्रिय है ।

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति। पद्मावति! आस्यताम्। किमिदानीं नास्यते?

पद्मावती—अय्यउत्त! किं मए सह उवविट्ठो एवं जणं पेक्खिस्सदि? [आर्यपुत्र! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यति?]

राजा—कोऽत्र दोषः?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि। [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति। तस्मादास्यताम्।

इत्यमरः। आस्यताम् = उपविश्यताम्। अपरः = अन्यः। परिग्रहः = परिजनः। "पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः" इत्यमरः। इति = एतस्मात्कारणात्।

कलत्रदर्शनार्हम् = भार्याविलोकनयोग्यम्। "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः" इत्यमरः। "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः" इति दक्षस्मृतिवचनात् गृहस्थः पत्नीदर्शनयोग्यो भवतीति राज्ञोऽभिप्रायः। परिहरति = वर्जयति। बहुदोषम् = अधिकदूषणम्। उत्पादयति = जनयति। आविग्ना इव = भीतेव। संवृत्ता = सञ्जाता।

टि०—ज्ञातेः कुलम्, तस्य (ष० त०) = ज्ञातिकुलस्य। दृश् + लृट् + तिप् = द्रक्ष्यति। कलत्रस्य दर्शनम् (ष० त०) कलत्रदर्शनमर्हतीति, तम् (उपपद-समासः) = कलत्रदर्शनार्हम्। आङ्पूर्वकात् "ओविजीभयसचालनयोः" धातोः

राजा—यह आपने उचित ही कहा है कि वासवदत्ता के बन्धुजन मेरे ही बन्धुजन हैं। पद्मावती! बैठो। इस समय तुम क्यों नहीं बैठती?

पद्मावती—आर्यपुत्र! क्या मेरे साथ बैठकर आप उन लोगों से मिलेंगे?

राजा—इसमें दोष क्या है?

पद्मावती—आर्यपुत्र का यह दूसरा विवाह है, ऐसा सोचकर उन्हें बुरा लगेगा।

राजा—जो पत्नीदर्शन के योग्य व्यक्ति को पत्नीदर्शन से रोकता है वह बहुत बुरा करता है। इसलिए तुम बैठो।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति। आर्यपुत्र! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्ना संवृत्ता।]

राजा—पद्मावति! एवमेतत्।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः॥ ४॥

क्तः, स्त्रीत्वविवक्षायां टाप्, विग्नेति, ईषद् विग्ना इति विग्रहे "कुगति प्रादयः" इति समासः = आविग्ना।

अन्वयः—किम्, वक्ष्यति, इति, मे, हृदयम्, परिशङ्कितम्। मया, कन्या, अपहृता अपि। सा च, न, रक्षिता। चलैः, भाग्यैः, महदवाप्तगुणोपघातः, पितुः, जनितरोषः, पुत्र इव, अस्मि॥ ४॥

व्या०—किं वक्ष्यति = किं भणिष्यति, तातो महासेनो माता अङ्गारवती वेति शेषः। इति = इत्थं विचिन्त्य। मे मम। हृदयम् = चित्तम्। परिशङ्कितम् =शङ्काकुलम्, वर्तते इति शेषः। मया = उदयनेन। कन्या = कुमारी, वासवदत्तेति भावः। अपहृता = अपनीता। परिणयं विनैव अवन्तिदेशात् कौशाम्बीं प्रापितेति भावः। स च = अपहृता वासवदत्तेति भावः। न रक्षिता = न पालिता। चलैः = अस्थिरैः। भाग्यैः = प्रारब्धैः। महदवाप्तगुणोपघातः = गुरु-

---

पद्मावती—आर्यपुत्र की जो आज्ञा। (बैठकर) आर्यपुत्र! पिता या माता क्या कहेंगी यही सोचकर थोड़ा डर रही हूँ।

राजा—पद्मावती! तुमने ठीक ही कहा है।

वे क्या कहेंगे यह सोचकर मेरा हृदय शंकित हो रहा है। मैंने उनकी कन्या का अपहरण कर लिया पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका। चञ्चल भाग्यों के फेर से बड़ों के गुणों को नष्ट करने वाला मैं पिता को क्रुद्ध करने वाले पुत्र के समान डरा हुआ हूँ॥ ४॥

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता)। [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।

जनलब्धगुणभङ्गः। पितुः = तातस्य। जनितरोषः = उत्पादितक्रोधः। पुत्र इव = तनय इव। भीतोऽस्मि = शङ्कितोऽस्मि। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

प्राप्तकाले = लब्धावसरे, उचितसमये इति भावः। रक्षितुम् = त्रातुम्।

टि०—वच् + लृट् + तिप् = वक्ष्यति। अवाप्तौ गुणोपघातौ येन सः (बहु०), महताम् अवाप्तगुणोपघातः (ष० त०) = महदवाप्तगुणोपघातः। जनिते रोषे येन सः (बहु०) = जनितरोषः। प्राप्तश्चाऽसौ कालः, तस्मिन् (क० धा०) = प्राप्तकाले।

अन्वयः—इदम्, सम्बन्धिराज्यम्, एत्य, महान्, प्रहर्षः, पुनः, नृपसुतानिधनम्, श्रुत्वा, महान्, विषादः। हे देव! परैः, अपहृतम्, राज्यम्, देव्याः, कुशलं

पद्मावती—उचित समय पर क्या नहीं बचाया जा सकता है?

प्रतीहारी—कञ्चुकी और धाय द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—उन्हें शीघ्र लिवा लाओ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा। (चली जाती है)

(कञ्चुकी, धाय और प्रतीहारी का प्रवेश)

कञ्चुकी—ओह!

इस सम्बन्धिराज्य में आकर बड़ी प्रसन्नता हुई, फिर राजकुमारी की मृत्यु को याद कर बहुत खेद हुआ। हे देव! शत्रु द्वारा छीने गये राज्य की पुनः प्राप्ति

किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥ ५ ॥

प्रतीहारी— एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो । [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

धात्री—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

राजा—(सवहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयाऽस्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ? ॥ ६ ॥

च, स्यात्, यदि ? तर्हि, भवता, किं नाम, न कृतम् ॥ ५ ॥

व्या०—इदम् = एतत् । सम्बन्धिराज्यम् = भर्तृजामातृराष्ट्रम् । एत्य = प्राप्य । मम = काञ्चुकीयस्य । महान् = अत्यधिकः । प्रहर्षः = प्रमोदः । पुनः= भूयः । नृपसुतानिधनम् = राजकुमारीमरणम्, वासवदत्तामृत्युमिति भावः । स्मृत्वा = विचिन्त्य । विषादः = खेदः । हे दैव = हे विधे ! परैः = शत्रुभिः । अपहृतम् = स्वायत्तीकृतम् । राज्यम् = राष्ट्रम् । तथैव देव्याः = वासवदत्तायाः । कुशलं च = क्षेमं च । स्यात् यदि = भवेच्चेत् । तर्हि, भवता = त्वया । किं नाम =कुशलम् । न कृतम् = न सम्पादितम् । सर्वमपि त्वया सम्पादितमिति भावः ।

सवहुमानम् = समधिकसमादरसहितम् यथा स्यात्तथा ।

अन्वयः—पृथिव्याम्, राज्यवंश्यानाम्, उदयाऽस्तमयप्रभुः, मया, कांक्षित-बान्धवः, सः, राजा, कुशली अपि ?

के साथ-साथ वासवदत्ता के जीवित रहने का शुभसमाचार—ये दोनों बातें यदि एक साथ हो जातीं तो आपने क्या नहीं किया होता ॥ ५ ॥

प्रतीहारी— यह हैं महाराज, आप इनके पास चलें ।

कञ्चुकी—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

धाय—महाराज की जय हो ।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आर्य !

पृथ्वी पर राजकुल में उत्पन्न, क्षत्रियों के उत्थान तथा पतन करने में समर्थ

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य । नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः ।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः । (उपविशति)

व्या०—पृथिव्याम् = लोके । राज्यवंश्यानाम् = नृपकुलोत्पन्नानाम् । उदयाऽस्तमयप्रभुः = उत्कर्षविनाशक्षमः । एवञ्च, मया = उदयनेन, सहेति शेषः । कांक्षितबान्धवः = अभिलषितबन्धुभावः । सः = लोकविश्रुतः । राजा = नृपः, प्रद्योत इति भावः । कुशली अपि = अनामयः किमिति जिज्ञासा । अनुष्टुप् छन्दः ।

टि०—सम्बन्धिनो राज्यं तत् (ष० त०) = सम्बन्धिराज्यम् । नृपस्य सुता (ष० त०) तस्याः = निधनम् (ष० त०) = नृपसुतानिधनम् । उप + सृप् + लोट्, तिप् = उपसर्पतु । बहुश्चासौ मानः (क० धा०), बहुमानेन सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०) = सबहुमानम् । राज्ञां वंश्याः, तेषाम् (ष० त०) = राजवंश्यानाम् । उदयनम् उदयः, उद् + इण् + अच् = उदयः अस्तमयनम् अस्तमयः—अस्तम् + इण् + अच् । उदयश्च अस्तमयश्चेति उदयास्तमयौ (द्वन्द्व), तयोः प्रभुः (स० त०) = उदयास्तमयप्रभुः । बन्धोर्भावो बान्धवम् बन्धु + अण् । कांक्षित बान्धवं येन सः (बहु०) = कांक्षितबान्धवः । कुशलम् अस्ति अस्य इति—कुशल + इनिः = कुशली ।

वैदेहीपुत्रस्य = विदेहतनयासुतस्य ।

और मुझसे बन्धुभाव की इच्छा रखने वाले वे राजा (उज्जयिनी-पति) सकुशल हैं ? ॥ ६ ॥

कंचुकी—और क्या ? महासेन सकुशल हैं । यहाँ भी सबका कुशल पूछते हैं ।

राजा—(आसन से उठकर) महासेन की क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—यह विनम्रताप्रदर्शन आपके अनुरूप ही है । आसन पर बैठे हुए ही आप महासेन का संदेश सुनें ।

राजा—महासेन की जो आज्ञा । (बैठ जाता है ।)

काञ्चुकीयः—दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ ७ ॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनप्रभावः । कुतः—

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

अन्वयः—ये, कातराः, अपि वा, अशक्ताः, तेषु, उत्साहः, न, जायते । हि, प्रायेण, नरेन्द्रश्रीः, सोत्साहैः, एव, भुज्यते ॥ ७ ॥

व्या०—ये = पुरुषाः । कातराः = भीरवः । "अधीरे कातरस्त्रस्नौ भीरु-भीरुकभीलुकाः" इत्यमरः । अपि वा = अथवा । अशक्ताः = शक्तिरहिताः, असमर्थाः इति भावः । तेषु = तादृशेषु कातरजनेषु । उत्साहः = अध्यवसायः । "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्" इत्यमरः । न जायते = नोत्पद्यते । हि = यतः । प्रायेण = बहुधा । नरेन्द्रश्रीः = राज्यलक्ष्मीः । सोत्साहैरेव = उत्साहसम्पन्नैरेव जनैः । भुज्यते = सेव्यते । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

टि०—"जनीप्रादुर्भावे" + लट्, त = जायते । भुज् + लट् + त = भुज्यते ।

अन्वयः—पूर्वम्, तावत्, अहम्, अवजितः, सुतैः, सह, लालितः । मया, कन्या, दृढम्, अपहृता, भूयः, न रक्षिता, च । तस्याः, निधनम्, अपि, श्रुत्वा,

---

कंचुकी—सौभाग्य से शत्रु द्वारा छीना गया राज्य पुनः वापस ले लिया गया है । क्योंकि—

जो डरपोक और असमर्थ होते हैं उनमें उत्साह नहीं होता । प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ॥ ७ ॥

राजा—यह सब महासेन का ही प्रभाव है । क्योंकि—

पहले उन्होंने मुझे पराजित कर अपने पुत्रों के साथ मेरा पालन किया । उनकी कन्या का मैंने कठोरतापूर्वक अपहरण किया पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका । उसकी मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर भी उसके प्रति मुझ में पूर्व की भाँति ही आत्मीयता का भाव बना हुआ है । निश्चय ही मेरे उचित वत्सराज्य को पाने

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र कि कारणम् ॥ ८ ॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति।

राजा—हा! अम्ब!

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु? ॥ ९ ॥

मयि, तथा, एव, स्वता। ननु, उचितान्, वत्सान्, प्राप्तुम, अत्र, नृपः, कारणम् हि ॥ ८ ॥

व्या०—पूर्वम् तावत् = प्रथमं तावत्। अहम् = उदयनः। अवजितः = निगृहीतः। तथापि सुतैः सह = स्वकीयात्मजैः सह। लालितः = वात्सल्यभावेन पालितः। मया = उदयनेन। कन्या = राजकुमारी, वासवदत्तेति भावः। दृढम् = कठोरं यथा स्यात्तथा। अपहृता = पलाय्य स्वराष्ट्रमानीता। भूयः = पुनः। न रक्षिता = न परिपालिता। तस्याः = वासवदत्तायाः। निधनमपि = मृत्युमपि। श्रुत्वा = आकर्ण्य। मयि = मद्विषये। तथैव = तादृशी एव। स्वता = आत्मीयता। ननु उचितान् = युक्ताधिकारविषयान्। वत्सान् = वत्सदेशान्। प्राप्तुम् = अधिगन्तुम्। अत्र = इह विषये। नृपः = राजा प्रद्योत एव। कारणम् = निमित्तम्। हि = निश्चयेन। राज्ञो महासेनस्यैव महिम्ना मया स्वकीयं राज्यमधिगतमिति तात्पर्यम्। हरिणीवृत्तम् ॥ ८ ॥

टि० – स्वस्य भावः, स्व + तल् + टाप् = स्वता।

हा अम्ब! = हा मातः!

अन्वयः—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा, पुण्या, नगरदेवता, मम, प्रवासदुःखार्ता, माता, कुशलिनी ननु? ॥ ९ ॥

में महाराज महासेन ही कारण हैं ॥ ८ ॥

कंचुकी—यह महासेन का सन्देश है। महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा सुनायेंगी।

राजा—हाय माता!

अन्तःपुर की सोलह महारानियों में प्रमुख, पवित्र और नगर की देवता के

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि । [अरोगा भट्टिनी भर्त्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

राजा – सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं । [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः । उपरताऽप्यनुपरता ! 'महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण । अथवा—

व्या०—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा = षोडशानां राजदाराणां मध्ये ज्येष्ठा, प्रधाना, प्रधानराजमहिषीति भावः । अन्तःपुरशब्दो राजदारपरः । तथा हि—"अन्तःपुरं स्यादवरोधनम्", अन्यच्च "अवरोधस्तिरोधाने राजदारेषु तद्गृहे" इति । पुण्या = पुण्याचरणा । नगरदेवता = पुरदेवीस्वरूपा, नागरिकैः पूजनीयेति भावः । एवं च, मम = जामातुः । प्रवासदुःखार्त्ता = देशान्तरगमनदुःखपीडिता । माता = जननीस्थानीया, श्वश्रूरङ्गारवतीति भावः । कुशलिनी ननु = अनामया किम् ? "ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्" इति मनुस्मृतिवचनात् 'कुशल' शब्दस्य "अनामयः" इत्यर्थो विधेयोऽत्र । अनुष्टुप्छन्दः ॥ ९ ॥

अरोगा = आरोग्यसम्पन्ना । धारयतु = अवलम्बताम्, स्वमिति शेषः ।

उपरता = मृता । अनुपरता = जीविता । अनुकम्प्यमाना = अनुगृह्यमाणा ।

टि०—'अम्बा' शब्दात् सम्बुद्धौ 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति ह्रस्वः = हे अम्ब ! षोडशेषु अन्तःपरेषु ज्येष्ठा (उत्तरपद०) = षोडशान्तःपुरज्येष्ठा ।

अविद्यमानो रोगो यस्याः, सा (नञ् बहु०) अरोगा । मात्रामतिक्रान्तं यथा तथा, "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इत्यनेन समासः = अतिमात्रम् । अनुकम्प्यत इति, अनु + कपि + कर्मणि लट्, शानच् + टाप् = अनुकम्प्यमाना ।

समान तथा मेरे प्रवासदुःख से पीडित माताजी सकुशल तो हैं न ? ॥ ९ ॥

धाय—महारानी नीरोग हैं और आपका सपरिवार कुशलमंगल पूछती हैं ।

राजा—सपरिवार कुशलमंगल ? माता ! ऐसा ही कुशल है ।

धाय—महाराज ! अब आप अधिक सन्ताप न करें ।

कंचुकी – धैर्य रखें महाराज ! महासेन की पुत्री मरकर भी नहीं मरी है । जबकि आप उसके प्रति इतनी सहानुभूति रखते हैं । अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

राजा – आर्य मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥ ११ ॥

अन्वयः—मृत्युकाले, कः, कम्, रक्षितुम्, शक्तः? रज्जुच्छेदे, के घटम्, धारयन्ति? एवम्, लोकः, वनानाम्, तुल्यधर्मः, काले, काले, छिद्यते, रुह्यते च ।

व्या०—मृत्युकाले = मरणसमये । कः = जनः । कम् = जनम् । रक्षितुम्= त्रातुम् । शक्तः = समर्थः । न कोऽपीति भावः । रज्जुच्छेदे = गुणभङ्गे जाते सति । के = जनाः । घटम् = कलशम् । धारयन्ति = दधति ? न केऽपीत्यर्थः । एवम् = अनेन प्रकारेण । लोकः = जनः । वनानाम् = वृक्षाणाम्, वनस्थानामिति शेषः । तुल्यधर्मः = समानधर्मः । काले काले = समये समये । छिद्यते = कृत्यते । रुह्यते च = स्वत एवोत्पद्यते च । यथा वृक्षाः समयानुसारं छिद्यन्ते पुनश्च कालान्तरे उत्पद्यन्ते तथैव जना अपि काले प्राप्ते सति म्रियन्ते पुनरपि जायन्ते च । शालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

टि०—मृत्योः कालः, तस्मिन् (ष० त०) = मृत्युकाले । रज्जोश्छेदः तस्मिन् (ष० त०) = रज्जुच्छेदे । तुल्यः धर्मो यस्य, सः (बहु०) = तुल्यधर्मः ।

अन्वयः—महासेनस्य, दुहिता, मे, प्रिया, शिष्या, देवी, च, सा, मया, देहान्तरेष्वपि, कथम्, स्मर्त्तुम्, शक्या, न ? ॥ ११ ॥

व्या०—मे = मम । प्रिया = अभिमता । शिष्या = वीणावादनकलायां

मृत्यु का समय उपस्थित हो जाने पर कौन किसे बचा सकता है ? जब रस्सी टूट जाती है तो घड़े को गिरने से कौन रोक सकता है ? इसी प्रकार मनुष्य भी वृक्षों के समान धर्मवाला ही है – समय-समय पर मरता है और समय-समय पर पुनः जन्म लेता है ॥ १० ॥

राजा—आर्य ! ऐसा न कहो ।

वह महासेन की पुत्री मेरी शिष्या और प्रिय पत्नी थी । जन्म-जन्मान्तरों में भी मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

धात्री—आह भट्टिणी—उदरदा वासवदत्ता। मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति। एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो। अणग्गिसक्खिअं वीणा-ववदेसेण दिण्णा। अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो। अहअ अह्मे हिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमित्त-मुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपलतयाऽ-निर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

शिक्षणीया आसीदिति भावः। देवी = महाराज्ञी। च, सा = वासवदत्ता। मया = उदयनेन। देहान्तरेष्वपि = जन्मान्तरेष्वपि। कथम् = केन प्रकारेण। स्मर्तुम् = ध्यातुम्। शक्या न = पार्या नेति काकुः—

अन्यजन्मनि या विद्या ह्यन्यजन्मनि यद्धनम्।
अन्यजन्मनि या नारी ह्यग्रे धावति धावति॥

इति स्मरणादिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः॥ ११॥

भट्टिनी = स्वामिनी। गोपालकपालकौ = एतन्नामकौ पुत्रौ। अभिप्रेतः = तात्पर्यविषयीभूतः। एतन्निमित्तम् = जामातृत्वसम्पादनार्थम्। आनीतः = प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम् = न विद्यते अग्निः साक्षी यस्मिंस्तत्। वीणाव्य-पदेशेन = वल्लकीवादनशिक्षणव्याजेनेति भावः। चपलतया = चञ्चलतया। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव = असम्पन्नपरिणयोत्सव एव। चित्रफलकायाम् = आलेख्यपीठिकायाम्। प्रतिकृतिम् = प्रतिच्छायाम्। निर्वृत्तः = निष्पन्नः। एताम् = चित्रफलकाम्। निर्वृतो भव = शान्तो भव।

धाय—महारानी ने कहा है—"वासवदत्ता मर गई। तुम मेरे या महासेन के लिए गोपाल तथा पालक जैसे प्रिय पुत्र हो। हमने पहले ही तुझे जामाता

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥ १२ ॥

टि०—शास्+क्यप्+टाप् - शिष्या । अन्ये देहाः देहान्तराणि, तेषु = देहान्तरेषु, "मयूरव्यंसकादयश्चे"ति समासः । न विद्यते अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तत् (नञ् बहु०) = अनग्निसाक्षिकम् । वीणायाः व्यपदेशः, तेन (ष० त०) = वीणाव्यपदेशेन । न निर्वृत्तम् (नञ्०) = अनिर्वृत्तम् । विवाहस्य मङ्गलम् (ष० त०), अनिर्वृत्तम् विवाहमङ्गलं यस्य, सः (बहु०) = अनिर्वृत्तविवाहमङ्गलः । चित्रस्य फलका, तस्याम् (ष० त०) = चित्रफलकायाम् ।

अतिस्निग्धम् = समधिकस्नेहयुक्तम् । अनुरूपञ्च = उचितञ्च ।

अन्वयः—एतत्, वाक्यम्, राज्यलाभशतात्, अपि, प्रियतरम् । यत्, अपराद्धेषु, अपि, अस्मासु, स्नेहः, न विस्मृतः ॥ १२ ॥

व्या०—एतद् वाक्यम् = इदं वचः । राज्यलाभशतात् = बहुराज्यप्राप्तेरपि । प्रियतरम् = सविशेषमभीष्टम् अस्तीति शेषः । यत् = यतः । अपराद्धेष्वपि = कृतापराधेष्वपि, कन्यापहरणरूपादिष्विति भावः । अस्मासु = अस्मद्विषये । स्नेहः = वात्सल्यम् । न विस्मृतः = न विस्मृतिं नीतः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १२ ॥

बना लिया था । इसीलिए तुम उज्जयिनी लाये गये थे । अग्नि को साक्षी न बनाकर वीणा सिखाने के बहाने उसे तुम्हें सौंपा था, किन्तु अपनी चञ्चलता के कारण बिना विवाह किये ही तुम भाग गये । हम दोनों ने तुम्हारे और वासवदत्ता के चित्रों को फलक पर उतार कर तुम दोनों का विवाह करा दिया । वह चित्रफलक तुम्हारे पास भेजा गया है । इसे देखकर तुम धैर्य-धारण करो ।

राजा—अहो ! महारानी ने अतिप्रिय तथा अपने योग्य ही कहा है—

यह वाक्य सैकड़ों राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय है, क्योंकि वे मेरे अपराधी होने पर भी अपना प्रेम नहीं भूले हैं ॥ १२ ॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवावेदुं इच्छामि । [आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकं दर्शयति ।) [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं ! अदिसदिसी खु इअ अय्याए आवन्तिआए । (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

राजा—न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

चित्रगतम् = आलेख्यस्थितम् । अभिवादयितुम् = वन्दितुम् । अतिसदृशी = अतिशयसमाना ।

अन्वयः - अस्य, स्निग्धस्य, वर्णस्य, दारुणा, विपत्तिः, कथम् ? च इदम् मुखमाधुर्यम्, अग्निना, कथम्, दूषितम् ?

व्या०—अस्य = पुरोदृश्यमानस्य । स्निग्धस्य = स्नेहयुक्तस्य, प्रियस्येति-भावः । वर्णस्य = रूपस्य । दारुणा = भीषणा । विपत्तिः = विनाशः । कथम् = केन प्रकारेण ? च = अपि च । इदम् = अलौकिकम् । माधुर्यम् = आनन-सौन्दर्यम् । अग्निना = वह्निना । कथम् = केन प्रकारेण । दूषितम् = विकृतम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १३ ॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) को देखकर मैं प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धाय—देखिए राजकुमारी, देखिए । (चित्रपट दिखाती है ।)

पद्मावती—(देखकर स्वगत) यह तो आवन्तिका के अत्यन्त सदृश है । (प्रकट) आर्यपुत्र ! क्या यह आर्या के सदृश हैं ?

राजा—सदृश ही नहीं, मैं तो यह मानता हूँ कि यह वही है । हाय !

इस सुन्दर रूप पर ऐसी घोर विपत्ति कैसे आ पड़ी ? मुख के इस सौन्दर्य को अग्नि ने कैसे विकृत किया ? ॥ १३ ॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति।]

धात्री—पेक्खुद पेक्खुद भट्टिदारिआ। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसीत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीय-मार्यायाः सदृशीति।]

राजा—देवि! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम्?

टि०—राज्यस्य लाभः (ष० त०), तस्य शतम् (ष० त०), तस्मात्—"पञ्चमी विभक्ते" इत्यनेन पञ्चमी - राज्यलाभशतात्। अतिशयेन प्रियम्, 'प्रिय' शब्दात् "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इत्यनेन तरप् प्रत्ययः = प्रियतरम्। अप = राध् + क्त = अपराद्धेषु। अभि + वद् + णिच् + तुमुन् = अभिवादयितुम्। स्निह् = क्त = स्निग्धस्य। वि + पद् + क्तिन् = विपत्तिः। मुखस्य माधुर्यम् (ष० त०) = मुखमाधुर्यम्।

प्रतिकृतिम् = प्रतिच्छायाम्, तुल्यरूपमिति भावः। चित्रदर्शनात् = आलेख्यावलोकनात्।

प्रभृति = आरभ्य। प्रहृष्टोद्विग्नाम् = प्रसन्नां खिन्नां च।

पद्मावती—आर्यपुत्र के चित्र को देखकर ही मैं जानूंगी कि यह दूसरा चित्र आर्या (आवन्तिका) के सदृश है या नहीं।

धाय—देखें, राजकुमारी देखें।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की आर्यपुत्र की आकृति से हो रही समानता को देखकर मैं समझती हूँ कि यह दूसरा चित्र आर्या (आवन्तिका) की आकृति के समान ही है।

राजा—देवी! चित्रदर्शन से मैं तुझे प्रसन्न और उद्विग्न-सी देख रहा हूँ। यह क्या?

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि। [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम्]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि ब्रह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदसणं परिहरदि । ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो। [आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः ।]

कन्याभावे = कौमार्यावस्थायाम्, विवाहात्प्रागिति भावः । भगिनिका=स्वसा । न्यासः = निक्षेपः । निक्षिप्तः = स्थापितः । प्रोषितभर्तृका = दूरदेशोषितपतिका । परपुरुषदर्शनम् = अन्यनरविलोकनम् । परिहरति = वर्जयति ।

टि०—ज्ञा + लट् + मिप् = जानामि । चित्रस्य दर्शनम्, तस्मात् (ष० त०) = चित्रदर्शनात् । 'प्रभृति' योगे पञ्चमी । प्रहृष्टा चासौ उद्विग्ना (क० धा०) ताम् = प्रहृष्टोद्विग्नाम् । आङ् + नी + कर्मणि लोट् = आनीयताम् । प्रोषितो भर्त्ता यस्याः सा (बहु) = प्रोषितभर्तृका, "नद्यृतश्च" इति समासान्तः कप् । परश्चासौ पुरुषः (क० धा) तस्य दर्शनम्, तत् (ष० त०) = परपुरुषदर्शनम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र के समान एक नारी यहीं पर रहती हैं ।

राजा—क्या वासवदत्ता के समान ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो उसे शीघ्र ले आओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कन्या थी तभी किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी बहन है'—ऐसा कहकर मेरे पास उसे धरोहर के रूप में रखा था । उसका पति प्रवास में है, अतः वह परपुरुष-दर्शन से बचती है । तो मेरे साथ आने पर उसे आर्या (धाय) देखें और तब आर्यपुत्र जानेंगे (कि वह वासवदत्ता है या नहीं) ।

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति ।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ वह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः ।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

अन्वयः—विप्रस्य, भगिनी, यदि, (तर्हि) व्यक्तम्, अन्या, भविष्यति । लोके, परस्परगता, रूपतुल्यता, दृश्यते ॥ १४ ॥

व्या०—विप्रस्य = ब्राह्मणस्य । भगिनी = स्वसा । यदि = चेत् । (तर्हि) व्यक्तम् = स्पष्टम् । अन्या = अपरा, वासवदत्ताभिन्नत्वे तात्पर्यम् । भविष्यति = वर्तिष्यते । लोके = संसारे । परस्परगता = पारस्परिकी । रूपतुल्यता = वर्णसादृश्यम् । दृश्यते = अवलोक्यते, विद्यते इत्यर्थः । रूपसादृश्येन सैवेयमिति न सम्भाव्यत इति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १४ ॥

उज्जयिनीयः = उज्जयिनीवासी । प्रतिग्रहीतुम् = पुनरादातुम् । प्रतीहारम् = द्वारम् ।

राजा—यदि वह सचमुच ब्राह्मण की बहिन है तो निश्चय ही कोई दूसरी होगी । संसार में एक दूसरे के रूप की समानता दीख पड़ती है ॥ १४ ॥

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो । यह उज्जयिनी का रहने वाला ब्राह्मण "स्वामिनी के पास मैंने अपनी बहिन को धरोहर के रूप में रखा था, उसे लेने आया हूँ" ऐसा कहकर द्वार पर उपस्थित है ।

राजा—पद्मावती ! क्या वही ब्राह्मण है ?

पद्मावती—होदव्वं। [भवितव्यम्।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

राजा—पद्मावति! त्वमपि तामानय।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः—भोः। (आत्मगतम्)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य।

भवितव्यम् = भाव्यम्, तेनैव, ब्राह्मणेनेति शेषः। अभ्यन्तरसमुदाचारेण = राजभवनसदाचारेण, पाद्यार्घ्यादिसमर्पणरूपेणेति भावः। ताम् = आवन्तिकाम्।

टि०—वि + अञ्ज + क्त = व्यक्तम्। परस्परं गता (द्वि० त०) = परस्परगता। तुल्यस्य भावस्तुल्यता—तुल्य + तल् = टाप्, रूपस्य तुल्यता (ष० त०) = रूपतुल्यता।

उज्जयिन्यां भवः, "तत्र भवः" इति छप्रत्ययः, ईयादेशः = उज्जयिनीयः। अभ्यन्तरे समुदाचारः, तेन (स० त०) = अभ्यन्तरसमुदाचारेण। प्र + विश् + णिच् + कर्मणि लोट् = प्रवेश्यताम्। आङ् + नी + लोट्, सिप् = आनय। आत्मानं गतं यथा तथा (द्वि० त०) आत्मगतम्।

अन्वयः— नृपतेः, हितार्थम्, राजमहिषीम्, प्रच्छाद्य, मया, हितम्, इति,

---

पद्मावती—सम्भव है।

राजा—उचित सम्मान के साथ उस ब्राह्मण को शीघ्र भीतर लाओ।

प्रतीहारी - महाराज की जो आज्ञा। (चली जाती है।)

राजा—हे पद्मावती! तुम भी उसे ले आओ।

पद्मावती—आर्यपुत्र! जैसी आज्ञा करते हैं।

(यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(स्वगत) ओह!

राजा के कल्याण के लिए महारानी (वासवदत्ता) को छिपाकर 'इसी में

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १५ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः। भो ब्राह्मणः! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता?

अवेक्ष्य, इदम्, कामम्, कृतम्। मम, कर्मणि, सिद्धे, अपि, असौ, पार्थिवः, किम्, वक्ष्यति, इति, मे, हृदयम्, परिशङ्कितम्, नाम ॥ १५ ॥

व्या०—नृपतेः = राज्ञः, उदयनस्येति भावः। हितार्थम् = कल्याणार्थम्। राजमहिषीम् = महाराज्ञीम्, वासवदत्तामिति भावः। प्रच्छाद्यः = सङ्गोप्य। मया = यौगन्धरायणेन। हितम् = कल्याणम्, अपहृतराज्यप्राप्तिरूपमिति भावः। इति अवेक्ष्य = इत्यवधार्य। इदम् = एतत्, पद्मावतीसविधे वासवदत्तायाः निक्षेपत्वेन स्थापनम्, राज्ञः पद्मावत्या सह परिणयश्चेति कार्यद्वयमिति भावः। कामम् = स्वैरं यथा तथा। कृतम् = साधितम्। मम = यौगन्धरायणस्य। कर्मणि = कार्ये। सिद्धेऽपि = प्राप्तफलेऽपि। असौ = परोक्षस्थः। पार्थिवः = राजा उदयनः। किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति। इति = एवम्। मे = मम। हृदयम् = चित्तम्। परिशङ्कितम् = शङ्काकुलम्, वर्तते इति शेषः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

उपसृत्य = उपगम्य। श्रुतपूर्वः = पूर्वं श्रुतः। स्वरः = शब्दः।

टि०—नृणां पतिः, तस्य (ष० त०) = नृपतेः। प्र + छद् + णिच् +

उनका कल्याण होगा' ऐसा समझ कर मैंने यह कार्य अपनी इच्छा से किया। मेरे सभी कार्यों के सिद्ध हो जाने पर भी वह राजा क्या कहेंगे—यह सोचकर मेरा हृदय शङ्कित हो रहा है ॥ १५ ॥

प्रतीहारी—ये महाराज हैं; उनके पास चलें।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो।

राजा—यह स्वर तो पहले सुना हुआ-सा मालूम पड़ता है। ऐ ब्राह्मण! क्या अपनी बहिन को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखा था?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च ।)

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि । [एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि ।]

आवन्तिका—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—भादा दे आअदो । [भ्राता ते आगतः ।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि । [दिष्ट्येदानीमपि स्मरति ।]

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । एसो ण्णासो । [जयत्वार्यपुत्रः । एष न्यासः ।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः । इहात्र-भवान् रैभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

क्त्वा, ल्यप् = प्रच्छाद्य । पृथिव्याः ईश्वरः, पृथिवी + घञ् = पार्थिवः । वच् + लृट् + तिप् = वक्ष्यति । पूर्वश्रुतः श्रुतपूर्वः, "सह सुपे"ति समासः । त्वरा + णिच् + कर्मणि लोट् = त्वर्यताम् ।

निर्यातय = निक्षेपमर्पय । साक्षिमद् = साक्षाद् दृष्टियुक्तं यथा तथा ।

यौगन्धरायण—और क्या ?

राजा—तो इनकी बहिन को लिवा लाने के लिए शीघ्रता करो ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा । (चली जाती है ।)

(पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आओ आओ आर्या ! इधर आओ ! मैं तुम्हें प्रिय समाचार सुनाती हूँ ।

आवन्तिका—क्या, क्या ?

पद्मावती—तुम्हारा भाई आया है ।

आवन्तिका—सौभाग्य से वे अब भी मुझे याद रखते हैं ।

पद्मावती—(पास पहुँचकर) आर्यपुत्र की जय हो । यह रही धरोहर ।

राजा—पद्मावती ! लौटा दो । साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए ।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणि अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।]

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्भो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

निर्यातयितव्यः = प्रत्यर्पणीयः । अधिकरणम = आधारः, साक्षीति भावः । नीयताम् = प्राप्यताम्, स्वगृहमिति शेषः । निर्वर्ण्य - विलोक्य ।

अन्वयः—भारतानाम, कुले, जातः, विनीतः, ज्ञानवान्, शुचिः, राजधर्मस्य, देशिकः, (त्वम् असि) तत्, बलात्, हर्तुम्, न अर्हसि ॥ १ ॥

व्या० - भारतानाम् = भरतकुलोद्भवानाम् । कुले = वंशे । जातः = उत्पन्नः । विनीतः = विनयोपेतः । ज्ञानवान् = विवेकशीलः । शुचिः = शुद्धाचारः । राजधर्मस्य = राजोचितकर्त्तव्यस्य । देशिकः = प्रवर्तकः । तादृशस्त्वमसीति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात् । बलात् - हठात् । हर्तुम् = ग्रहीतुम्, परकीयन्यासमिति

इसमें माननीय रैभ्य और आर्या वसुन्धरा देवी साक्षी होंगे ।

पद्मावती—आर्य ! अब आर्या को ले जाइए ।

धाय—(आवन्तिका को देखकर) अरे ! ये तो राजकुमारी वासवदत्ता हैं ।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ? देवी ! तुम पद्मावती के साथ अन्तःपुर में जाओ ।

यौगन्धरायण—अन्तःपुर में नहीं भेजें । यह मेरी बहिन हैं ।

राजा—आप क्या कह रहे हैं ? यह तो महासेन की पुत्री हैं ।

यौगन्धरायण—हे राजन् !

आप भरतवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न, नम्र, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्म

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् । सङ्क्षिप्यतां जवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

किन्तु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

शेषः । नाऽर्हसि = न योग्योऽसि । परिकरालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १६ ॥

टि०—निर् + यत् + णिच् + लोट्, सिप् = निर्यातय । साक्षी अस्ति अस्मिन् तत् यथा तथा—साक्षिन् + मतुप् = साक्षिमत् । निर् + यत् + णिच् + तव्यत् = निर्यातयितव्यः । निर् + वर्ण + णिच् + क्त्वा, ल्यप् = निर्वर्ण्य । भरतानामपत्यानि पुमांसो भारताः, तेषाम् भरतशब्दात् "ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च" इत्यणि = भारतानाम् । वि + नी + क्तः = विनीतः । बलमाश्रित्य, "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति कर्मणि पञ्चमी : बलात् ।

भवतु = अस्तु, रूपसादृश्यम् आकृतिसाम्यम् । सङ्क्षिप्यताम् = ईषदपनीयताम् । जवनिका = अवगुण्ठनवस्त्रमिति भावः ।

अन्वयः—इदम्, किम्, सत्यम्, स्वप्नः, नु ? सा, मया, भूयः, दृश्यते । अहम्, तदा, अपि, एवम्, एव, दृष्टया, अनया, वञ्चितः ॥ १७ ॥

व्या०—इदम् = पुरोवर्त्तमानं दृश्यम्, यौगन्धरायण-वासवदत्तादर्शनमिति भावः । किं सत्यम् = किं यथार्थम् ? स्वप्नः स्वापः, अयथार्थमिति भावः ।

के प्रवर्त्तक हैं अतः मेरी बहन का बलपूर्वक अपहरण करना आपके योग्य नहीं है ॥ १६ ॥

राजा—अच्छा, हम आकृति की समानता देखते हैं । घूँघट उठाइए ।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—अरे ! ये यौगन्धरायण हैं और ये महासेन की पुत्री हैं ।

क्या यह सत्य है अथवा स्वप्न है जो मैं पुनः उसे (वासवदत्ता को) देख रहा हूँ ? पहले भी मैं इसी प्रकार इसे देखकर ठगा गया था ॥ १७ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति ।)

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

नु = वितर्के । सा = वासवदत्ता । मया = उदयनेन । भूयः = पुनरपि । दृश्यते = अवलोक्यते । अहम् = उदयनः । तदाऽपि = तस्मिन् समये, समुद्रगृहेऽपीत्यर्थः । एवमेव = इत्यमेव । दृष्टया = विलोकितया । वञ्चितः = विप्रलब्धः, अन्तर्धानेनेति शेषः । अतः किमपि निश्चेतुं न शक्यत इति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१७॥

देव्यपनयेन = वासवदत्तायाः स्वरूपप्रच्छादनपूर्वकमन्यत्र प्रापणेन । कृतापराधः = विहितापराधः ।

अन्वयः—मज्जमानाः, वयम्, मिथ्योन्मादैः, युद्धैः, शास्त्रदृष्टैः, मन्त्रितैश्च, भवद्यत्नैः, समुद्धृताः, खलु ॥ १८ ॥

व्या०—मज्जमानाः = आपत्सागरे निमग्नाः । वयम् = उदयनादयः । मिथ्योन्मादैः = अवास्तविकचित्तविभ्रमचेष्टितैः । "उन्मादश्चित्तविभ्रमः" इत्यमरः । युद्धैः=सङ्ग्रामैः । शास्त्रदृष्टैः शास्त्रसम्मतैः । मन्त्रितैश्च गुप्तविचारैश्च । भवद्यत्नैः = भवत्प्रयासैः । समुद्धृताः = उन्नमिताः, विपत्सागराद्वहिर्निष्कासिताः इत्यर्थः । खलु = निश्चयेन । वृत्तमनुष्टुप् ॥ १८ ॥

टि०—देव्याः अपनयः, तेन (ष० त०) हेतौ तृतीया = देव्यपनयेन ।

मिथ्या कल्पिताः उन्मादाः, तैः (मध्यमपदलोपी समासः) मिथ्योन्मादैः । मन्त्रणानि मन्त्रितानि, तैः, "मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे" धातोः "नपुंसके भावे क्तः" इत्यनेन क्तः = मन्त्रितैः । सम् + उद् + धृञ् + क्त + जस् = समुद्धृताः ।

यौगन्धरायण—महाराज ! महारानी को छिपाकर मैंने अपराध किया है । इसलिए महाराज मुझे क्षमा करें । (उदयन के पाँवों पर गिरता है ।)

राजा—(उठाकर) आप निश्चय ही यौगन्धरायण हैं ।

विपत्तिरूप सागर में डूबे हुए हमलोग पागलपन के झूठे बहानों, युद्धों, शास्त्रसम्मत मन्त्रणाओं एवं आपके द्वारा किये गये प्रयासों से निश्चय ही बचा लिये गये ॥ १८ ॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखी जनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ! उट्ठेहि । अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।]

स्वामिभाग्यानाम् = राजदैवानाम् । अनुगन्तारः = अनुयायिनः । सखीजनसमुदाचारेण = सखीजनोचिताऽऽचारेण, शिष्टव्यवहारेणेति यावत् । अजानन्त्या = ज्ञानरहितया । समुदाचारः = शिष्टव्यवहारः । अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः । शीर्षेण = शिरसा । प्रसादयामि = अनुनयामि । अविधवे = हे सौभाग्यशालिनि । अर्थिस्वम् = याचकधनम् । अपराध्यति = सापराधं भवति । परिपालयामि = परिरक्षामि ।

टि०—स्वामिनो भाग्यानि, तेषाम् (ष० त०) = स्वामिभाग्यानाम् । अनु + गम् + तृच् = अनुगन्तारः । न जानन्ती, तया—नञ् + ज्ञा + लट्, शतृ + ङीप् + टा = अजानन्त्या । सखी चासौ जनः (क० धा०) तस्य समुदाचारः, तेन (ष० त०) = सखीजनसमुदाचारेण । अति + क्रम + क्त = अतिक्रान्तः । प्र + सद् + णिच् + लट्, मिप् = प्रसादयामि । उद् + स्था + णिच् + क्त्वा, ल्यप् = उत्थाय । विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०) न विधवा अविधवा (नञ्०), तत्सम्बुद्धौ = अविधवे ।

यौगन्धरायण—महाराज के भाग्यों के साथ ही हमारा भी भाग्य जुड़ा हुआ है ।

पद्मावती—अहो ! यह आर्या वासवदत्ता हैं । आर्ये ! अज्ञानवश मैंने आपके साथ सहेली जेसा बर्ताव कर शिष्टाचार का उल्लङ्घन किया है । इसलिए मैं सिर नवाकर आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो-उठो, सौभाग्यवती ! उठो ! प्रार्थी (यौगन्धरायण) का धनरूप मेरा यह शरीर ही अपराध का कारण है ।

पद्मावती—अणुग्गहिदम्हि। [अनुगृहीताऽस्मि]

राजा—वयस्य ! यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम्।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम्।

राज—अहो ! शठः खलु रुमण्वान्।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्त्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च।

न्यासकारणम् = निक्षेपहेतुः। सर्वैरेव = सकलैरेव अमात्यैः न केवलं रुमण्वतेति भावः। शठः = वञ्चकः। देव्याः = वासवदत्तायाः। कुशलनिवेदनार्थम् = क्षेमज्ञापनार्थम्। अत्रभवती = वसुन्धरा। प्रतिनिवर्त्तताम् = उज्जयिनीं प्रतिगच्छतु।

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! देवी वासवदत्ता को मेरे पास से हटाने में तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा कर सकूँ। (राज्य के अन्य प्रदेश शत्रु के हाथों में चले गये थे) इसलिए।

राजा—पद्मावती के हाथ में वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखने का क्या कारण था ?

यौगन्धरायण—पुष्पक भद्रक आदि ज्योतिषियों का कहना था कि पद्मावती आपकी रानी होंगी।

राजा—क्या यह रुमण्वान् को मालूम था ?

यौगन्धरायण—महाराज ! इसे सब जानते थे।

राजा—ओह ! रुमण्वान् बड़ा धूर्त है।

यौगन्धरायण—महाराज ! देवी वासवदत्ता का कुशल-समाचार जानने के

राजा—न, न, सर्वं एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

(भरतवाक्यम्—)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

टि०—आदेशेन चरन्तीति आदेशिकाः, तैः— 'चरति' इत्यनेन ठञ् (इकः) =आदेशिकैः । या+लृट्, मस् = यास्यामः ।

व्या०—सागरपर्यन्ताम् = सागराः समुद्राः पर्यन्ताः मर्यादाः यस्याः ताम्, समुद्रसीमामिति भावः । हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् = हिमाचलविन्ध्याचलकर्णाभरणाम् । एकातपत्राङ्काम् = एकछत्रचिह्नाम् । इमाम् = एताम् । महीम् = पृथ्वीम् । नः = अस्माकम् । राजसिंहः = नृपश्रेष्ठः, उदयन इति भावः । प्रशास्तु = पालयतु, इत्याशीः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १९ ॥

टि०—सागराः पर्यन्ताः यस्याः, सा, ताम् (बहु०) = सागरपर्यन्ताम् । हिमवांश्च विन्ध्यश्चेति हिमवद्विन्ध्यौ (द्वन्द्व), हिमवद्विन्ध्यौ कुण्डले यस्याः, सा, ताम् (बहु०) = हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् । एकम् आतपत्रम् एव अङ्को यस्याः सा, ताम् (बहु०) एकातपत्राम् ।

इति 'कमलेश्वरी' व्याख्याविलासितं स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

लिए आए हुए आर्य रैभ्य एवं आर्या वसुन्धरा को आज वापस भेज दें ।

राजा—नहीं नहीं । हम सभी पद्मावती के साथ ही वहाँ चलेंगे ।

यौगन्धरायण—महाराज की जो आज्ञा ।

(भरत—वाक्य)

सागर है सीमा जिसकी, हिमालय और विन्ध्याचल हैं कुण्डल जिसके, तथा एक छत्ररूप चिह्न से युक्त इस पृथ्वी को हमारे राजसिंह नरेश शासित करें ॥१९॥

(सब चले जाते हैं ।)

परिशिष्टम्

(१) नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

१—नाटक

वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

अर्थात् जिसमें वीर अथवा शृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्य रस गौण रूप में वर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हो नाटक कहा जाता है। इतिहास-प्रसिद्ध राजा उदयन 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक है। उदयन तथा वासवदत्ता की प्रसिद्ध प्रणय-कथा इसका वर्ण्य-विषय है। छः अङ्कों में यह लिखा गया है। अतः साहित्यदर्पण के निम्नोक्त लक्षण के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नाटकत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ॥

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥" सा०द० ६।७-१० ॥

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक का जो लक्षण दिया गया है उसके अनुसार भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नाटक होना सिद्ध होता है—

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥
यस्मात्स्वभावं सन्त्यज्य साङ्गोपाङ्गगतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥" ना० शा०-१९।१४७ ॥

२—अङ्क

जो भावों तथा रसों के द्वारा अर्थों को स्फुटित करता है, जहाँ पर नाना प्रकार के विधान हुआ करते हैं, जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति तथा बीज का उपसंहार हो जाता है किन्तु बिन्दु का सम्बन्ध आंशिक रूप से बना ही रहता है उसे अङ्क कहते हैं—

'अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्कः इति सदाऽवगन्तव्यः ॥"

ना० शा०–२०।१४–१६ ।

३—नान्दी

नाटक के आरम्भ में देवता, ब्राह्मण अथवा राजाओं की जो आशीर्वादात्मक स्तुति की जाती है, उसे नान्दी कहते हैं—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवीद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥"

४—स्थापना

जब सूत्रधार, नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक के साथ नाटकीय कथावस्तु के निर्देश के लिए विचित्र वाक्यों के द्वारा वार्तालाप करता है तो उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं। सूत्रधार के स्थापकत्व के कारण ही इसे स्थापना भी कहा जाता है। भास ने अधिकांश नाटकों में प्रस्तावना के स्थान में स्थापना का ही प्रयोग किया है—

"नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥" सा० दर्पणः ॥

५—सूत्रधार

नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहा जाता है और जो उन्हें धारण करता है अर्थात् उनका संचालन करता है उसे सूत्रधार कहा जाता है—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः॥"

६—नायक

नायक या नेता शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है ले जाने वाला। जो कथावस्तु को फल की ओर ले जाता है उसे नायक कहते हैं। नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

"नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥" दशरूपक १–२॥

नायक के चार भेद माने गये हैं–धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत। प्रस्तुत नाटक का नायक राजा उदयन है, जो कोमल प्रकृति का, वीणा वादन कला में आसक्त, निश्चिन्त तथा सुखी है। अतः वह धीरललित नायक है—

"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।"

७—नायिका

नायक के ही सामान्य गुणोंसे युक्त नायिका भी होती है। स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के भेद से वह तीन प्रकार की होती है—

"अथ नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता॥" सा० द० ३।५६॥

प्रस्तुत नाटक में वासवदत्ता स्वकीया नायिका है।

८—विदूषक

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेश–भूषा तथा वचनों से जनता को

हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है तथा अपने हास्य-कार्य को उचित समझता है उसे विदूषक कहते है। नाटकों में कुसुम, वसन्तक आदि उसके नाम होते हैं—

"कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥" साहित्यदर्पण ॥

९—काञ्चुकीय

काञ्चुकीय के लक्ष्य-क्रम में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीयेत्यभिधीयते ॥"

अर्थात् काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता है। वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविध-गुणों से युक्त होता है, कामादि दोषों से वर्जित तथा ज्ञान–विज्ञान में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है। इसलिए मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

"ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः।
ज्ञान-विज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥"

१०—नेपथ्यम्

अभिनेता लोग जहाँ वेश-भूषा परिवर्त्तन करते हैं उस स्थान को नेपथ्य कहा जाता है—"कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।" रंगमंच के सौन्दर्याभिवर्धक पर्दे को भी नेपथ्य कहा जाता है—"नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिप्रसाधनम्।" वेश-भूषा के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। अभिनेता लोग रामादि की प्रतीति के लिए जिस वेश-भूपा को धारण करते हैं वह भी नेपथ्य कहलाता है—"रामादि-व्यञ्जको वेशो नटे नेपथ्यमुच्यते।" (ना० शा०)। इस प्रकार यद्यपि नेपथ्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है परन्तु वेश-भूषा परिवर्त्तन स्थल ही अधिक प्रसिद्ध है।

११—आत्मगत

जब कोई बात दूसरों को न सुनाकर मन ही मन कही जाती है तो उसे स्वगत या आत्मगत भी कहते हैं—

"अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्" ॥ सा० द० ६।१३७ ॥

१२—प्रकाश

जब कोई बात सभी को सुनाकर कही जाय तो उसे प्रकाश कहते हैं

"सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ॥" सा० द०—६।१३८ ॥

१३—प्रवेशक

कथा दो प्रकार की होती है। पहली वह, जिसे अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाय और दूसरी वह, जिसकी केवल सूचना दी जाय। नीरस अथवा अनुचित कथाभाग का रंगमंच पर अभिनय नहीं किया जाता अपितु उसे केवल दर्शकों को बता दिया जाता है—

"द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।
नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ॥"

दशरूपक १।५६—५७ ॥

अभिनेय कथावस्तु की सूचना देने के पाँच प्रकार हैं जिन्हें नाट्यशास्त्रीय भाषा में अर्थोपक्षेपक कहा जाता है—

"अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ।
चूलिकाऽङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि ॥" सा० द० ६—३४ ॥

संक्षेप में भूत या भविष्यत् की कथावस्तु की सूचना निम्नस्तर के पात्रों द्वारा दिये जाने पर प्रवेशक की स्थिति बनती है। आवश्यक रूप से निम्नस्तरीय पात्रा द्वारा प्रयुक्त होना ही विष्कम्भक और प्रवेशक के मध्य भेद स्थापित करता है—

"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥" सा० द० ६—५७ ॥

विष्कम्भक का लक्षण करते हुए कहा गया है—

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
सङ्क्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥"

१४—आकाशभाषित

जब कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ किसी अन्य पात्र के न होने पर भी वार्तालाप करता है तथा अन्य पात्र के कथन के विना भी सुनने का अभिनय करके वातचीत करता है तो उसे 'आकाशभाषित' कहा जाता है—

"किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विनापात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तस्मादाकाशभाषितम् ॥" सा० द०–६–१२० ॥

१५—अपवारित

जब कोई पात्र अपने मुख को दूसरी ओर करके दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात को कहता है तो उसे 'अपवारित' कहते हैं—

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् ।" दशरूपक–१।६६ ॥

स्वगत, प्रकाश, अपवारित, त्रिपताक, पताका, जनान्तिक और आकाशभाषित, ये सब नाट्योक्तियाँ हैं ।

(२) 'स्वप्नवासवदत्तम्' में प्रयुक्त छन्दों का परिचय

१. अनुष्टुप्—"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥"

उदाहरण—प्रथम अङ्क–२, ७, १०, १५ । चतुर्थ–५, ७, ८, ९, । पञ्चम–६, ७, ८, ९, १०, ११, । षष्ठ–७, ९, १३, १४, १६, १७, १९ ।

२. उपजाति—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उदाहरण—पञ्चम–५

३. उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उदाहरण—पञ्चम–१३

४. शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।

उदाहरण—प्रथम-१३ । चतुर्थ-६ । षष्ठ-१० ।

५. वैश्वदेवी—बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ।

उदाहरण—प्रथम-९ ।

६. वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

उदाहरण—प्रथम-४, ६, ११ । चतुर्थ-२ । पंचम-१, २, ३ । षष्ठ-२,४, ५.१५ ।

७. शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलाः गः शिखरिणी ।

उदाहरण—प्रथम-१४, १६ ।

८. हरिणी—नसमरसलाः गः षड्वेदैर्हरिणी मता ।

उदाहरण—षष्ठ-८ ।

९. शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

उदाहरण—प्रथम-३,७, १२ । चतुर्थ-१ । पंचम-४, १२ ।

१०. पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो ।
युजि तु न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

उदाहरण—प्रथम-५ । षष्ठ-१ ।

११. आर्या—यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या ॥

उदाहरण—प्रथम-१ । चतुर्थ-३, ५ ।

(३) स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त कतिपय अलङ्कारों का परिचय

१. मुद्रालङ्कार—"सुच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।"

अर्थात् प्रकृत अर्थ में तत्पर पदों से सुच्य अर्थों की सूचना जहां दी जाय वहाँ मुद्रालंकार होता है । उदाहरण—प्रथम अंक-१ म पद्य ।

२. अर्थान्तरन्यास—"सामान्यं वा विशेषणं विशेस्तेन वा यदि ।
कार्यञ्च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥ सा० द० ६-४१ ।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ॥"

अर्थात् जहाँ सामान्य में विशेष का, विशेष से सामान्य का, कारण से कार्य का या कार्य से कारण का समर्थन हो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण—प्रथम अंक–४, ७, १५। चतुर्थ अंक–८।

३. उपमा—"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक उपमा द्वयोः। सा० द० ६।१४।
उदाहरण—पंचम–१।

४. उत्प्रेक्षा—"संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।" काव्यप्रकाश–१०।९२।
जहाँ उपमेय में उपमान के साथ तादाम्य, संभावना हो वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। उदाहरण—पञ्चम–२१।

५. आभासरूपकालंकार—"स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम्॥" चन्द्रालोक।
उदाहरण—पञ्चम–१।

६. अपह्नुति–"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः।" का० प्र० १०।९६। जहाँ उपमेय का निषेध कर उपमान की सिद्धि की जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। उदाहरण—पञ्चम–३।

७. दीपक—"सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृतात्मना।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्॥" का० प्र० १०।१०२।

जहाँ उपमेय और उपमान के गुण क्रियादिरूप धर्म का एक बार उपादान अथवा कथन हो वहाँ दीपक अलंकार होता है। उदाहरण—चतुर्थ–९।

८. विरोधाभास-"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।" का० प्र० १०।११०। जहाँ दो वस्तुओं में वस्तुतः किसी विशेष के न रहने पर भी ऐसा वर्णन किया जाय जिससे विरोध की प्रतीति हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

९. स्वभावोक्ति—"स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।" का० प्र० १०।१११। जहाँ पदार्थों की अर्थात् बालक आदि की प्रकृति सिद्ध क्रिया का वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण–प्रथम–१६।

१० अनुमान—"अनुमानं तदुक्तं यत्साध्यसाधनयोर्वचः" ॥ का० प्र० १०।११७।

जहाँ साध्य-साधनरूप से किसी अर्थ का प्रतिपादन किया जाय वहाँ अनुमानालंकार होता है। उदाहरण—प्रथम-१२। पंचम-४।

१९. परिकर—"विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।" का० प्र० १०।११८

जहाँ अभिप्राययुक्त विशेषणों द्वारा प्रकृतार्थ का प्रतिपादन हो वहाँ परिकर अलंकार होता है। उदाहरण-षष्ठ-१६।

(४) स्वप्नवासवदत्तम् की सूक्तियाँ

१. "कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।" १।२

२. "प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते।" १।७

३. "सुखमर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।
सुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम्॥"

४. "...नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि॥" १।११

५. "तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः।" १।१५

६. "दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः,
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं,
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥"

७. "...स्त्रीस्वभावस्तु कातरः॥" १।८

८. "गुणानां वा विशालानां सत्काराणाञ्च नित्यशः।
कर्त्तारः सुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥" ४।९

९. "प्राणी प्राप्तरुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति।" ५।४

१०. "कातरा योऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥" ६।७

११. "कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले,
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां,
काले काले छिद्यते रुह्यते च॥" ६।१०

—:०:—

पद्यानुक्रमणिका

चौखम्बा अमरभारती ग्रन्थमाला

३६



महाकविभासकृतं

चारुदत्तम्

सपरिशिष्ट 'सुधा'संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेतम्

व्याख्याकारः

पं० परमेश्वरदीन पाण्डेयः

एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी), साहित्याचार्यः, साहित्यरत्नञ्च



चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

वाराणसी

१९७९

प्रकाशक : चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०३६
मूल्य : ६-००

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१
(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१
फोन : ६३१४५

CHAUKHAMBA AMARABHARATI GRANTHAMALA
36



CĀRUDATTM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited With

The 'Sudha' Sanskrit-Hindi Commentaries

BY

Pt. PARMESHWARDĪN PANDEY

M. A. (Sanskrit-Hindi), Sahityacharya, Sahityaratna



CHAUKHAMBA AMARABHARATI PRAKASHAN

VARANASI–221001

1979

© Chaukhamba Amarabharati Prakashan
Oriental Publishers & Book-Sellers
Post Box No. 138
K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition
1979
Price Rs. 6-00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

प्राक्कथन

प्रस्तुत 'चारुदत्तम्' महाकवि भासकृत नाटकों में से एक है। निःसन्देह नाट्य-कला में भास का सर्व-प्रथम स्थान रहा है। वैसे 'राजशेखर' ने इनके 'नाटक-चक्र' (१३ नाटकों) में 'स्वप्न-वासवदत्तम्' को भास की सर्व-श्रेष्ठ रचना माना है पर भाव तथा कला-पक्ष दोनों दृष्टिकोणों से 'चारुदत्तम्' किसी प्रकार कम नहीं है।

यद्यपि 'चारुदत्तम्' की इससे पूर्व कतिपय टीकायें की जा चुकी हैं। पर उनसे छात्रों की कठिनाइयों का समीचीन-समाधान न हो सका। सुधा-संस्कृत हिन्दी टीका में प्रत्येक शब्द की संस्कृत-व्याख्या (समास, पर्याय तथा हिन्दी शब्दार्थ एकत्र ही दिये गये हैं। वृत्त, अलङ्कार-निर्देश के साथ ही व्याकरण तथा अन्य विशिष्ट शब्दों को टिप्पणी देकर स्पष्ट कर दिया है। हिन्दी भावार्थ पृथक् से देकर अन्त में सूक्तियाँ, वृत्तलक्षण, नाटकीय पारिभाषिक शब्द, श्लोकानुक्रम परिशिष्ट में दिये गये हैं। भूमिका में भास के जीवनवृत्त, काव्य-कला, साहित्यिक मूल्याङ्कन आदि आवश्यक सम्पूर्ण सामग्री का समावेश कर दिया है। इस प्रकार अध्येतृ-वर्ग को किसी भी शंका-समाधान के लिए अब भटकना नहीं पड़ेगा।

'सुधाटीका-युक्त' 'किरातार्जुनीय (४ से ८ सर्ग)', 'रत्नावली नाटिका' तथा 'शुकनासोपदेश' पाठकों के समक्ष इससे पूर्व आचुके हैं। विश्वास है कि प्रस्तुत 'चारुदत्त' से अध्येतृ-वर्ग उपकृत हो सकेगा।

इस कार्य में जिन महानुभावों की कृतियों अथवा सत्परामर्शों से यत्किञ्चित् सहयोग मिला है, हम उन सबके कृतज्ञ हैं !

अन्त में हम उन सभी 'सहृदय-पाठकों' के सुझावों की अपेक्षा करते रहेंगे जिनसे नाटक को अधिकाधिक छात्रोपयोगी बनाया जा सके।

गङ्गादशहरा, विदुषां वशंवदः—

वि. सं. २०३६ —परमेश्वर दीन पाण्डेय

भूमिका

संस्कृत-साहित्य में नाटकों का विशिष्ट स्थान है। दृश्य तथा श्रव्य काव्य-भेदों में दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक आते है। भारतीय नाटक-साहित्य की स्वतन्त्र धारा सदा से अजस्र-प्रवाहित रही है। वैदिक काल में सम्वाद-संगीत, नृत्य तथा अभिनयादि नाटक के सभी अङ्ग किसी न किसी रूप में मिलते रहे है। ऋग्वेद में यम-यमी, उर्वशी-पुरूरवा, सरमा-पणि, इन्द्र-मरुत्, वृषा-कपि के सम्वादात्मक सूक्त नाटक को ही संकेत करते है। सामवेद को संगीत का प्राण माना जाता है। यह सम्वाद ही कालान्तर में नाटक-रूप में परिवर्तित हो गये।

वैदिक काल के अनन्तर रामायण तथा महाभारत काल में नाटक का और भी अधिक विकसित रूप सामने आया। इनमें अनेक स्थलों पर नट, नर्त्तक, रङ्गमञ्च आदि का वर्णन किया गया है। महाभारत के विराट् पर्व में रङ्गशाला तथा 'नट' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यद्यपि श्रीधरस्वामी ने 'नट' शब्द की व्याख्या 'नवरसाभिज्ञचतुरः' कह कर की है तथापि व्याकरणकार पाणिनि ने 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षु-नट-सूत्रयोः' सूत्र द्वारा नाट्यशास्त्र का ही स्मरण किया है। नाट्य-शास्त्र के प्रवर्तक भरत मुनि के मतानुसार सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने चारो मुखों से चार वेदों को उच्चरित किया। तदनन्तर 'न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु' द्वारा इन्द्रादि देवताओं के अतिरिक्त पञ्चमवेद की रचना के लिए प्रार्थना किये जाने पर पुनः चारो वेदों का स्मरण किया एवं सर्वकर्मानुदर्शक, सर्वशास्त्रार्थ-युक्त अर्थ्य, धर्म्य, तथा यशस्य सम्पन्न, सर्वशिल्प-प्रदर्शक 'नाट्य-शास्त्र' नामक पञ्चमवेद का निर्माण किया—

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यञ्च सोपदेशं ससंग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥ १॥
सर्वशास्त्रार्थ-सम्पन्नं सर्वशिल्प-प्रदर्शकम्।
नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥ २॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥ ३॥

(भरत नाट्यशास्त्र)

इस पञ्चम नाट्यवेद में ऋग्वेद से सम्वाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसादितत्व ग्रहण किये गए—

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

(भरत नाट्यशास्त्र)

इस प्रकार पर: सहस्र शताब्दियों में भारतीय नाट्यशास्त्र का पूर्ण विकास हो पाया। नाटककारों में (अश्वघोष, कालिदास, भवभूति आदि) प्रथम पंक्ति में भास का नाम आता है। यद्यपि भास से पूर्व भी सम्भवतः नाटक लिखे गये होंगे, क्योंकि आदिकवि वाल्मीकि ने समय समय पर होने वाले उत्सवों में नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है। महर्षि पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में 'शिलादित्य' तथा 'कृशाश्व' नाट्याचार्यों का तथा पतञ्जलि ने शौमिल सम्प्रदाय के नटों द्वारा अभिनीत 'कंसवध' एवं 'वलिवन्ध' नाटकों का वर्णन किया है परन्तु यह कोई भी आज उपलब्ध नहीं हैं। अत एव भास को ही सर्व प्रथम, संस्कृत नाटककार प्रामाणिक रूप से माना है। अव तक की की गई गवेषणाओं के अनुसार भास कवि के कुल १३ नाटक उपलब्ध है जिनमें से एक 'चारुदत्त' भी है।

भास का जीवनवृत्त—संस्कृत साहित्यों में आत्म-वृत्त लिखने की परिपाटी अति प्राचीनकाल से ही नहीं रही है। यही कारण है कि भास, अश्वघोष तथा कालिदास जैसे कवियों ने अपने विषय में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। नाट्यविधान के अनुसार नाटक की प्रस्तावना में नाटककार संक्षेप में आत्म-विषयक लिख दिया करते थे पर भास ने ऐसा भी नहीं किया। सम्भवतः वह भी कालिदास के समान अति नम्र एवं निरभिमानी रहे हों तथा अपने को प्रकाश में न लाना चाहते हो। परन्तु भास के ग्रन्थों में यत्र तत्र विखरी सामग्री से किञ्चित् अनुमान किया जा सकता है।

भास के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह वैष्णवमतानुयायी ब्राह्मण थे। कुछ विद्वान् भास को दक्षिण भारत में उत्पन्न मानते हैं तथा इसके प्रमाण में—१ भास के सभी नाटकों की दक्षिण भारत (केरल) में ही उपलब्धि, २ प्रतिमा नाटक में अभिषेक काल में सीता का राम के साथ उपस्थित न होना, ३ माया

का अत्यधिक आदर वर्णन करना आदि दक्षिण भारत की प्रथानुसार होना मानते हैं। परन्तु इतने मात्र से किसी कवि का स्थान निर्धारण नहीं किया जा सकता। वास्तव में इनके नाटकों में जिस प्रकार के व्यक्तियों, स्थानों, नदियों, पर्वतों आदि के नामों का उल्लेख हुआ है तदनुसार निश्चित रूप से भास कवि का जन्म उत्तर भारत के किसी स्थान पर हुआ होगा।

भास धर्मभीरु, श्रौतस्मार्त धर्मानुयायी वर्णाश्रम व्यवस्था पर निष्ठा रखने वाले, वैदिक कर्मकाण्ड के प्रबल समर्थक ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने नाटकों के अन्त में भरतवाक्य में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' लिखा है जिससे 'राजसिंह' नामक किसी राजा का आश्रित-कवि होने की शङ्का की जा सकती है। पर कदाचित् भास ने वीर राजाओं द्वारा भारत भूमि रक्षित रहने की ही कामना की होगी। हाँ, इनके वर्णनों से यह अवश्य प्रतीत होता है कि भास कवि 'माघ' जैसे पण्डितों की भाँति निर्धन न होकर सम्पन्न, सुखी, तथा स्वभाव से सरल, नम्र एवं विनोद-प्रिय नाटककार थे। इनकी विनोद-प्रियता के कारण ही जयदेव कवि ने इन्हें कविता-कामिनी का हास कहा है—भासो हास इति। (प्रसन्नराघव)।

काल-निर्धारण—कवि कुलगुरु कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना में सूत्रधार के द्वारा भास, सौमिल्ल जैसे प्रसिद्ध नाटककारों की कृतियों के सामने उपर्युक्त नाटक की सफलता में सन्देह होने का प्रश्न कराया है—'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः'। (मालविकाग्निमित्रम्)। इस कथन से स्पष्ट है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती कवि थे तथा कालिदास के समय में अत्यधिक नाटककार के रूप में आदृत हो चुके थे। कालिदास के समय निर्धारण में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वान् इन्हें ४०० ई० में जन्मा बताते हैं तथा कुछ ईसा की प्रथम शताब्दि में। तदनुसार भास ४०० ई से लेकर ईसा की प्रथम शताब्दी तक हुए ज्ञात होते हैं। श्रीगणपति शास्त्री ने इनको पाणिनि तथा चाणक्य से भी पूर्व माना है। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए 'अपीह श्लोकौ भवतः' का उल्लेख कर प्रमाण में जिन दो श्लोकों को रखा है उनमें से एक भासकृत 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में मिलता है—नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्। तत्तस्य मा भून्नरकं

च गच्छेत् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥ कदाचित् यह श्लोक चाणक्य ने भास के नाटक से ही लिया है। अतः ४०० वर्ष ई० पू० हुए चाणक्य से भास और भी प्राचीन रहे होंगे। भास ने अपने प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में बृहस्पति-कृत 'अर्थशास्त्र' में रावण के दक्षता प्राप्त करने का उल्लेख किया है यह 'बृहस्पति' चाणक्य से भी पूर्ववर्त्ती हुए क्योंकि उन्होंने अपने अर्थशास्त्र में चाणक्य (कौटिल्य) के अर्थशास्त्र का उल्लेख नहीं किया। अतः भास चाणक्य से भी पूर्व हुए यह निर्विवाद है। भास के नाटकों में अनेक स्थलों पर पाणिनि व्याकरण से विपरीत शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भास द्वारा प्रयुक्त प्राकृत भी कालिदास के नाटकों की प्राकृत से प्राचीन प्रतीत होती है। पुनः भास के रूपकों में वर्णित सामाजिक दशा मौर्य काल के अनुरूप है। अत एव भास को ५०० वर्ष ई० पू० में माना जा सकता है।

अधिकांश विद्वान् भास को कालिदास का तो पूर्ववर्ती मानते हैं पर प्रथम शताब्दी में हुए अश्वघोष का परवर्ती मानते हैं। इस प्रकार प्रथम से पञ्चम शताब्दी के मध्य का समय मान लेने पर भास का ईसा की तृतीय शताब्दी में होना समझा जाता है। परन्तु अबतक श्री टी० गणपति शास्त्री द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रबल प्रमाणों के आधार पर भास का ई० पू० चतुर्थ शताब्दी में होना अधिक न्यायसङ्गत प्रतीत होता है।

रचनाएं—महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने भास के 'नाटक चक्र' में १३ नाटकों की संख्या निर्धारित की है जिनको रचनाश्रोतों के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है—

रामायण पर आधारित भास नाटकः—१. प्रतिमानाटकम्। २. अभिषेक-नाटकम्।

महाभारत पर आधारित :—३. मध्यम-व्यायोगः। ४. पञ्चरात्रनाटकम्। ५. दूतवाक्यम्। ६. दूतघटोत्कचनाटकम्। ७. कर्णभारनाटकम्। ८. उरुभङ्ग-नाटकम्।

बृहत्कथा पर आधारित :—९. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्। १०. स्वप्नवासव-दत्तम्। ११. अविमारकम्।

भागवत पर आधारित :—१२. बालचरितम्।

कल्पित कथा पर आधारित—१३. चारुदत्तम् । (अपूर्ण नाटक) ।

इनके अतिरिक्त गोण्डल-निवासी राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री द्वारा १९४१ में प्रकाशित 'यज्ञफलम्' रूपक को भी भास-कृत माना जाता है । इस प्रकार म० म० गणपति शास्त्री द्वारा नियत नाटक चक्र के १३ एवं जीवराम कालिदास शास्त्री द्वारा प्रकाशित 'यज्ञफलम्' को मिला कर इस समय भास की १४ रचनाएं उपलब्ध हैं । पर, लोक-धारणा है कि भास ने ३० तीस नाटकों की रचना की ।

काव्य-कला—भास की नाट्य-कला का संस्कृत-साहित्य मे विशेष स्थान है । इनकी माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से युक्त, सुबोध एवं अप्रयास-साध्य वैदर्भी शैली है जिसमे बड़े-बड़े समासों का सर्वथा अभाव है। भाषा स्वाभाविक बोलचाल की है तथा अलङ्कारों का बलात् प्रयोग न कर स्वाभाविक एवं सीमित-रूप मे किया गया है । इनके पात्रों का चित्रण अत्यन्त सजीव तथा आदर्शवादी है । वाल्मीकि तथा व्यास से प्रेरित भास ने अपने नाटकों मे मानव-जीवन का व्यापक चित्राङ्कन किया है जिसमें उनका नैतिक आदर्श कहीं भी शिथिल नहीं हो सका है । शेक्सपियर के समान इनके नाटक भी चरित्र-प्रधान हैं । पात्रों का कथोपकथन अत्यन्त प्रकृत, सजीव तथा आडम्बर-हीन है । सुप्रसिद्ध कवि बाणभट्ट ने भास की नाटक-विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः । सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

(हर्षचरितम्)

अर्थात् कवि भास ने सूत्रधार से आरम्भ होने वाले, बड़ी भूमिकाओं से युक्त नाटकों की रचना कर उसी प्रकार कीर्ति प्राप्त की, जैसे कुशल शिल्पी सुन्दर देव-मन्दिर-निर्माण कर प्राप्त करता है । उनके समस्त चित्रण भारतीय-संस्कृति के प्रतीक हैं ।

भास ने मानव के समान ही प्रकृति को भी अनेक रूपों में देखा तथा मार्मिक चित्रण किया है । विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न भावों तथा विषयों का इन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया है । इनके नाटक सरलतया रंगमञ्च पर अभिनय किये जा सकते हैं ।

प्रामाणिकता—महामहोपाध्याय श्रीगणपतिशास्त्री के भास-कृत-नाटक-चक्र अर्थात् (१३ नाटकों का समुदाय) की प्रामाणिकता में अनेक मतभेद हैं। कतिपय विद्वान् 'स्वप्नवासवदत्तम्' के अतिरिक्त अन्य नाटकों को भास-कृत मानने में सन्देह करते हैं। तदनुसार अन्य नाटकों को अन्य कवि की रचना माना जाता है। कुछ लोग इनके प्रचलित नाटकों को प्रकृत-रूप न मान कर उनका संक्षिप्त रूप मानते हैं तथा अन्य विद्वान् उपलब्ध नाटकों के कुछ अंश को भास-कृत तथा शेष को प्रक्षिप्तांश मानते हैं। परन्तु नाटकों के रचना-सादृश्य भाषा-विन्यास तथा अन्य कतिपय विशेषताओं के आधार पर उन्हें एक ही नाटककार की रचना मानना अधिक संगत प्रतीत होता है। यथा—

(१) भास-कृत प्रख्यात सभी नाटकों का आरम्भ 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' से होता है। तदनन्तर सूत्रधार द्वारा मञ्चावतरण एवं मङ्गलपाठ किया जाता है।

(२) सभी उपर्युक्त नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है पर उसमें कवि अथवा नाटक का नाम-निर्देश नहीं किया गया है जैसा कि परवर्ती नाटकों में देखने को मिलता है।

(३) प्रत्येक नाटक के अन्त में भरतवाक्य द्वारा 'महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः' अथवा तत्सम किसी अन्य श्लोक से मङ्गल कामना की गई है, इस प्रकार सभी नाटकों का आद्यन्त एक सा है।

(४) सभी नाटकों की भाषा, शैली, छन्दोयोजना, भाव-कल्पना तथा घटना एक सी है।

(५) सभी नाटकों में अपाणिनीय-शब्दों (पाणिनीय-व्याकरण विरुद्ध) का प्रयोग किया गया है।

(६) सभी में समान रूप से भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्रम्' के नियमों का उल्लंघन मिलता है।

(७) सभी नाटकों में समान रूप से सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त अन्यान्य समानताओं के आधार पर उक्त १३ नाटकों का एक ही रचयिता होना प्रतीत होता है और वह भी भास के अतिरिक्त कोई अन्य नाटककार नहीं।

'चारुदत्तम्' का कथा संक्षेप—प्रस्तुत नाटक का नायक उज्जयिनी निवासी व्यापारी (सार्थवाह) पुत्र उदाराशय, निर्धन चारुदत्त ब्राह्मण है। वह अपनी परोपकार-वृत्ति तथा अन्य गुणों से लोक-प्रिय होने के कारण 'वसन्त सेना' वेश्या को अनुरक्त कर लेता है। एक रात्रि को राजवीथी से होकर जाती हुई 'वसन्तसेना' राजश्यालक 'शकार' तथा विट (नीच लम्पट पुरुष) के द्वारा पीछा किये जाने पर व्याकुल सघन अंधकार में चारुदत्त के भवन में पहुँच जाती है। विट से प्रेरित होकर शकार वसन्तसेना के धोखे से जैसे ही रदनिका (चारुदत्त की चेटी) को बलात् पकड़ने लगता है इतने में चारुदत्त का मित्र मैत्रेय आ जाता है। वह एतदर्थ राजश्यालक की भर्त्सना करता है तथा (राज-श्यालक विट सहित) अगले दिन वसन्तसेना को चारुदत्त के भवन से निकाल देने का निर्देश कर चला जाता है। चारुदत्त पर अनुरक्त वसन्तसेना 'शकार' से भयभीत होकर अपना बहुमूल्य हार चारुदत्त के पास धरोहर के रूप में रख कर मैत्रेय के साथ अपने घर चली आती है।

एक दिन चारुदत्त का सेवक संवाहक जुंआरी अन्य जुआरियों के भय से वसन्त सेना के घर पहुँचता है। वसन्त सेना संवाहक के ऋण को निपटा देती है तथा पुनः उसे चारुदत्त के घर वापस लौट जाने को कहती है। संवाहक उससे चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा करने लगता है। इसी बीच चेट (वसन्त सेना का नौकर) आकर किसी बिगडायल हाथी के द्वारा अपने को पकड़ लिए जाने पर बौद्ध भिक्षु द्वारा छुड़ाने के साहसिक कार्य पर चारुदत्त की अपना प्रावारक (चादर) पुरस्कार में देने की दानशीलता एवं उदाराशयता का वर्णन वसन्तसेना के समक्ष करता है। वह चारुदत्त पर और भी अनुरक्त हो जाती है।

इधर वसन्तसेना की मदनिका नामक किसी चेटी पर आसक्त सज्जलक उसे छुड़ाने की दृष्टि से धोखे से धन के लिए चारुदत्त के घर सेंध काट कर वसन्त सेना की धरोहर सुवर्णभाण्ड को चुरा लेता है। और उसे लेकर मदनिका के पास (वसन्तसेना के घर) आता है। मदनिका मुक्तावली देखते ही पहिचान लेती है और उसे अपनी स्वामिनी (वसन्तसेना) का बता कर 'चारुदत्त' के द्वारा भेजा हुआ कहकर उसे वसन्तसेना को वापस देने के लिए कहती है।

इसी बीच चारुदत्त के द्वारा भेजा हुआ मित्र मैत्रेय (विदूषक) आकर वसन्त सेना से यह कहता है कि 'आर्य चारुदत्त ने आप की धरोहर जुए में हार जाने के कारण अपनी पत्नी की यह मुक्तावली बदले में भेजी है' इतना कहकर वह मुक्तावली वसन्तसेना को दे देता है। इतने में मदनिका चारुदत्त के पास से किसी पुरुष के आने की सूचना वसन्तसेना को देती है तथा सज्जलक उसके पास जाकर कहता है कि मुझे आर्य चारुदत्त ने यह कहकर आपके पास भेजा है कि—आपकी यह धरोहर मेरे पास घर की दशा ठीक न होने एवं कुटुम्बियों द्वारा असुरक्षित होने के कारण वापस है, ले लीजिए। चोरी की बात समझ कर वसन्तसेना उसे चारुदत्त के पास ही वापस ले जाने के लिए कहती है तथा स्वयं चारुदत्त की ईमानदारी तथा सज्जनता पर मुग्ध होकर मदनिका सज्जलक को सौंप कर स्वयं अलंकृत हो चारुदत्त का अभिसार करने उसके घर चली जाती है।

चारुदत्तकथास्रोत—चारुदत्त की कथा का स्रोत गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' को माना जा सकता है क्योंकि यही कथानक उसमें भी उपलब्ध होता है। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' नाटक में भी इसी घटना को कुछ बढ़ा कर दिखाया गया है। देवभाषा में लिखा 'कथा सरित् सागर' अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है तथा गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इसी का वर्तमान रूप है। भास के 'चारुदत्त' की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में से एक के चतुर्थाङ्क में अन्त में 'अवसितं चारुदत्तम्' लिखा मिलता है जिससे इसको यहीं पर समाप्त होने की बात कुछ आलोचक करते हैं परन्तु अधिकांश विद्वान् इसे अपूर्ण रचना मानते हैं। तदनुसार नाटक में घटना-क्रम को देखते हुए कम से कम एक अङ्क और होना चाहिए जिसमें नायिका मिलनरूप-प्रयत्न की सम्भावना होती है। कदाचित् 'शूद्रक' ने भास के ही अधूरे कथावृत्त 'चारुदत्त' को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित कर अपने 'मृच्छकटिक' की रचना की हो।

चारुदत्त-नाम-करण—नाटकीय लक्षणों के आधार पर भास की कृति 'चारुदत्त' को रूपक के दस भेदों के अन्तर्गत 'प्रकरण' माना जाता है जिसका नायक चारुदत्त है। इसमें चारुदत्त की ही उदारता तथा रसिकता का वर्णन है। सम्पूर्ण रूपक में चारुदत्त ही केन्द्र विन्दु बना रहता है। उसी की प्रणय;

लीला की चर्चा रूपक के चारों अंकों में की गई है। चारुदत्त का वसन्तसेना पर तथा वसन्तसेना का चारुदत्त के गुणों पर मुग्ध हो अनुरक्त होना, वेश्या होकर भी अपने प्रियतम के लिए संवाहक के कर्ज को निजी धन देकर निपटाना, अपने बहुमूल्यहार को चारुदत्त की निर्धन दशा में भी विश्वास कर धरोहर के रूप में रख देना, चारुदत्त द्वारा धरोहर चोरी चले जाने पर अपने विश्वास को बनाये रखने के लिए अपनी पत्नी की मुक्तावली को वसन्तसेना के पास भेजना तथा मुग्ध वसन्तसेना द्वारा उसे चारुदत्त के ही पास वापस भेजना तथा अपनी मा का विरोध कर अलंकृत हो चारुदत्त के पास अभिसार के लिए स्वयं चल देना इत्यादि समस्त घटनाएं चारुदत्त को प्रतिक्षण केन्द्रित किये रहती है, चारुदत्त क्षणभर भी आँखों से ओझल नहीं हो पाता है। अतएव इस 'प्रकरण' को चारुदत्त नाम देना ही अधिक समीचीन है।



चारुदत्त के अङ्कों का संक्षेप

कथासार

प्रथम अङ्क

'नाद्यन्ते सूत्रधारः' से नान्दी के पश्चात् 'स्थापना' प्रारम्भ कर सूत्रधार घर से प्रातःकाल निकल पड़ता है पर भूख से व्याकुल हो जाने के कारण बाहर अधिक देर तक नहीं ठहर पाता है। घर आने पर भोजन तैयार होने की बात नटी से पूछता है पर वह अभिरूपपति नामक उपवास के प्रवन्ध किये जाने की सूचना देती है। चूर्णगोष्ठक द्वारा व्रत के विधान को नियत किये जाने की बात जानकर वह उसे धन्यवाद देता है। नटी इस उपवास में भोजन कराने के लिए एक ऐसे ब्राह्मण को निमन्त्रित करने की बात कहती है जो कि निर्धन न हो। सूत्रधार ऐसे ब्राह्मण की खोज करने निकल पड़ता है चारुदत्त का मित्र मैत्रेय 'उत्तम भोजन' का लालच व दक्षिणा दिये जाने पर भी निमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है इस पर भी सूत्रधार उसके सामने भोजन में घी गुड़

आदि स्वादिष्ट पदार्थों के होने का लालच देता हुआ चला जाता है। यहीं पर स्थापना पूर्ण हो जाता है।

अङ्क के प्रथम दृश्य से सर्वप्रथम मैत्रेय मंच पर आकार सूत्रधार द्वारा कही भोजन विषयक घी, गुड़ दक्षिणा आदि की बातें दोहराता है तथा चारुदत्त के वैभव काल की चर्चा करता हुआ सन्तोष प्रकट करता है तथा षष्ठी तिथि पर देवकार्य सम्पादनार्थ अपने मित्र चारुदत्त के लिए पूजा के फल व परिधान लेकर चारुदत्त के पास चल देता है। इतने में चारुदत्त पूजा से वापस लौटते हुए मिल जाते हैं। द्वितीय दृश्य में चारुदत्त अपनी दरिद्रता पर क्षोभ प्रकट करता है, विदूपक उन्हें सान्त्वना देता है। तृतीय दृश्य में विट तथा शकार (राज-श्यालक) संभ्रान्त गणिका वसन्तसेना का पीछा करते हैं। अंधेरी रात में भागती हुई वसन्तसेना अचानक चारुदत्त के मकान में घुस जाती है। विट के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर शकार रदनिका को ही वसन्तसेना समझ कर पकड़ने की चेष्टा करता है इतने में मैत्रेय (विदूषक) आ जाता है। वह एतदर्थ उनकी भर्त्सना करता है। विट आर्य चारुदत्त के व्यक्तित्व का भय मानकर तथा शकार अगले दिन प्रातः वसन्तसेना को मकान से बाहर निकाल देने का निर्देश देकर चले जाते हैं, अङ्क के चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ कर अपना उत्तरीय (प्रावारक) देवकार्य निमित्त भीतर ले जाने के लिए कहता है वह चुप खड़ी रहती है। इतने में विदूषक तथा रदनिका आ जाते हैं। विदूषक चारुदत्त को शकार का सन्देश देता है। वसन्त-सेना चारुदत्त को पहचान कर उनके पास अपने स्वर्णाभूपण धरोहर के रूप में रखकर विदूषक की सुरक्षा में अपने घर चली जाती है।

द्वितीय-अङ्क

इसके प्रथम दृश्य में गणिका तथा मदनिका (चेटी) प्रवेश करते हैं। वसन्तसेना उसके समक्ष चारुदत्त के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है। मदनिका उसकी दरिद्रता बतलाती है, पर वेश्या होकर भी वह दरिद्र चारुदत्त के प्रेम से विचलित नहीं होती है। द्वितीय दृश्य में चारुदत्त का सेवक संवाहक नौकरी छोड़कर जुआड़ी बन जाता है। एक दिन वह जुआड़ियों के भय से भाग कर वसन्तसेना के घर पहुँचता है। वसन्तसेना उसे चारुदत्त का सेवक

जानकर अपने पास से उसका ऋण चुकाकर चारुदत्त के यहाँ वापस लौटा देती है। तृतीय दृश्य में कर्णपूर (चेट) प्रवेश कर मार्ग में मतवाले हाथी द्वारा बौद्ध भिक्षु को पकड़े जाने पर साहस कर उसे छुड़ाने तथा चारुदत्त के द्वारा प्रसन्न होकर उसे अपना प्रवारक पुरस्कार में दिये जाने की बात वसन्त सेना को सुनाता है। वसन्तसेना की चारुदत्त के प्रति अनुरक्ति और भी बढ़ जाती है। इसके बाद चारुदत्त के दर्शन की लालसा से वसन्तसेना तथा मदनिका महल की छत की ओर चली जाती हैं।

तृतीय-अङ्क

इसके प्रथम दृश्य में मंच पर आकर चारुदत्त विदूषक मैत्रेय से वीणा की प्रशंसा करता है। फिर दोनों वर्धमानक (चेट) को पुकार कर दरवाजा खुलवाकर हाथ पाँव धो सोने की तैयारी करते हैं। वसन्तसेना के सुवर्ण-भाण्ड की सुरक्षा का भार अष्टमी तक के लिए विदूषक ने ले रखा था अतः समय समाप्त हो जाने से चेटी विदूपक को वह सुवर्णभाण्ड देना चाहती है पर वह उसे टालता है। चारुदत्त की आज्ञा से वह उसे ले लेता है। चारुदत्त के सो जाने पर विदूपक भी सुवर्णभाण्ड हाथ में लेकर सो जाता है। द्वितीय दृश्य में सज्जलक चारुदत्त के घर सुरंग (सेंध) काटता है। विदूपक नींद में ही चारुदत्त को पुकारता तथा नींद न आने, बाईं आँख फड़कने एवं किसी के द्वारा सेंध काटे जाने की बात कहता है। चारुदत्त उसे डाँट देता है। सहसा सज्जलक जलते हुए दिये को बुझा देता है। विदूषक अंधकार में स्वर्णभाण्ड के चोरी हो जाने के भय से चारुदत्त को देना चाहता है, इसके लिए वह ब्रह्म शाप देने तक का भय दिखलाता है पर चारुदत्त के बजाय उसको छिपा हुआ सज्जलक ले लेता है। नगाड़े की ध्वनि सुनकर प्रभात होना जानकर सज्जलक भाग जाता है। तृतीय दृश्य में रदनिका प्रवेश कर धरोहर सेंध काटकर चोरी कर लिये जाने की सूचना देती है। विदूपक अंधेरे में चारुदत्त को सुवर्णभाण्ड देने की बात कहता है जिस पर चारुदत्त को आश्चर्य होता है। चारुदत्त समझ जाता है कि स्वर्ण-भाण्ड (वसन्तसेना की धरोहर) चोरी चला गया है। उसे इसके लिए बड़ा पश्चाताप होता है। वह सोचता है कि मेरी दरिद्रता में लोग सुवर्णभाण्ड के चोरी जाने की बात पर विश्वास नहीं करेंगे, मुझे बदनाम करेंगे। इतने में

उसकी पत्नी ब्राह्मणी आ जाती है। चेटी द्वारा धरोहर के अलंकार के चोरी चले जाने की बात सुनकर चारुदत्त की पत्नी (ब्राह्मणी) चकित हो अपने पति को लोकापवाद से बचाने के लिए अपनी शत सहस्र मूल्य वाली मुक्तावली दे देती है। चारुदत्त उस मुक्तावली को धरोहर (सुवर्णभाण्ड) के बदले में देने के लिए विदूषक को वसन्तसेना के पास भेजता है।

चतुर्थ-अङ्क

इसके प्रथम दृश्य में वसन्तसेना मदनिका (चेटी) के साथ चित्रफलक लिए हुए प्रवेश करती है। वसन्तसेना चित्रांकित में अपने प्रियतम चारुदत्त की प्रतिकृति का आरोप करती हुई मदनिका से तर्क वितर्क करने लगती है। इतने में एक चेटी आकर वसन्तसेना को उसकी मां का आदेश सुनाती है कि राजश्यालक शकार (संस्थान) की गाड़ी (रब्बा) दरवाजे पर आ चुकी है अतः उसे वहाँ जाने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। यह सुनकर वसन्तसेना खिन्न हो जाती है। द्वितीय दृश्य में मदनिका को प्रेम करने वाला सज्जलक उसे वसन्तसेना से मुक्त कराने के लिए चोरी करके लाये स्वर्णभाण्ड को लाता है तथा अपनी प्रेयसी से अपने चोरी के साहसिक कार्य की प्रशंसा करता है। आभूषण देखते ही मदनिका पहिचान लेती है तथा उसे अपनी मालकिन (वसन्तसेना) को वापस कर देने के लिए जैसे तैसे सज्जलक को तैयार करती है। तृतीय दृश्य में वसन्तसेना को चेटी चारुदत्त के यहाँ से किसी ब्राह्मण के आने की सूचना देती है। वसन्तसेना उसे तुरन्त अपने पास बुला लेती है। ब्राह्मण (विदूषक) वसन्तसेना से कहता है कि आर्य चारुदत्त ने तुम्हारा अलङ्कार जुए में हार जाने के कारण यह शतसहस्र मूल्य वाली मुक्तावली उसके बदले मे भेजी है, आप इसे ग्रहण करें। वसन्तसेना मुक्तावली लेकर विदूषक को वापस कर देती है। इतने मे मदनिका पुनः वसन्तसेना के पास जाकर (बहाने से) किसी व्यक्ति के चारुदत्त के पास से आने की सूचना देती है। चतुर्थ दृश्य में मदनिका अपने प्रेमी सज्जलक को साथ लेकर वसन्तसेना के पास पहुँचती है। सज्जलक कहता है कि मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है—'आपने जो अलंकार धरोहर में मेरे पास रखा है, अब घर की दशा अच्छी न रहने तथा कुटुम्बियों से असुरक्षित होने के कारण आप के पास वापस लौटा रहा हूँ "ले लीजिए"।

वसन्तसेना चोरी वाले रहस्य तथा मदनिका सज्जलक के प्रेम को समझ जाती है तथा उस स्वर्णभाण्ड को पुनः चारुदत्त के पास वापस ले जाने के लिए कहती है पर सज्जलक ऐसा नहीं करता है। प्रसन्न होकर वसन्तसेना मदनिका का अलङ्कार कर सज्जलक को समर्पित कर देती है तथा स्वयं भी अलंकृत हो कर आर्य चारुदत्त का अभिसरण कर उसके घर जाने को तैयार होती है।

पात्र-चरित्र-चित्रण

चारुदत्त—प्रस्तुतरूपक का आर्य चारुदत्त नायक हैं। वह उज्जयिनी नगरी के व्यवसायी ब्राह्मण का पुत्र हैं। जाति से ब्राह्मण होकर भी कर्म से व्यापारी होने के कारण आर्य चारुदत्त को 'सार्थवाह पुत्र' नाम दिया गया है। आर्य चारुदत्त अपनी परोपकार वृत्ति, उदारता तथा अन्य उत्तम गुणों एवं मृदु व्यवहार से सभी लोगों को प्रभावित कर लेता है। वह सुन्दर, संगीत-प्रेमी, चतुर पारखी एवं अत्यन्त ईमानदार व्यक्ति हैं। चारुदत्त धनवान् होते हुए भी अपनी असीमित उदारता सदाशयता तथा द्यूत-प्रवृत्ति के कारण निर्धन हो जाते हैं। यहाँ तक कि उनके भवन की देहली की उचित विधि से सफाई पुताई आदि तक नहीं हो पाती है जिससे घास तथा जौ के पौधे अंकुरित हो गये हैं। उसे अपनी दरिद्रता पर पश्चात्ताप होता है। वह दरिद्रता काल में अपने मित्रों की ओर से की गई उदासीनता का कटु अनुभव करता है। वह दरिद्रता को छठा महापातक मानता है इस पर भी वह अपना बौद्धिक सन्तुलन नहीं खोता है। वह अपनी उदारता के कारण जब भी किसी सत्कार्य अथवा उत्तम सेवा का अवसर पाता है तुरन्त व्यय करने के लिए तैयार हो जाता है। निर्धन होने पर भी कर्णपूर द्वारा बौद्ध भिक्षु को हाथी द्वारा पकड़ लिए जाने पर साहसिक कार्य कर छुड़ाने पर अपना प्रावारक तक पुरस्कार में दे देता है। वह दरिद्रता में भी अपने पास रखी वसन्तसेना की धरोहर को चोर द्वारा चुरा लिए जाने की सूचना पाकर अपनी शतसहस्र मूल्य वाली मुक्तावली को यह कह कर वसन्तसेना के पास धरोहर के बदले में भेज देता है कि ऐसा न करने पर लोग धरोहर चोरी जाने की उसकी बात का विश्वास नहीं करेंगे। उसे बेईमान सोचने लगेंगे। इस प्रकार वह दरिद्रावस्था में भी अपने सद्विवेक से अपने

उज्ज्वल चरित्र की रक्षा करता है। वह धर्मनिष्ठ भी है। विदूषक जब उसके द्वारा चौराहे पर मातृका वलि देने की वात पर अपनी अश्रद्धा प्रकट करता है तो वह विदूषक को फटकारता है—'मूर्ख यथाविभवेनाच्यर्यताम्। भक्त्या तुष्यन्ति देवतानि'। चारुदत्तभाग्यवादी भी है उनके विचार से—'भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति, यान्ति।' अर्थात् भाग्यानुसार घन आता और जाता है।

चारुदत्त विलास-प्रिय व्यक्ति हैं। वसन्तसेना के धन तथा यौवन पर अनुरक्त होकर भी वह अपने गार्हस्थ्य जीवन तथा धर्म को नहीं भुलता हैं। वह अपनी ब्राह्मण-पत्नी की 'किञ्चाहं दरिद्रः, यस्य मम—विभवानुवशा भार्या।' कह कर प्रशंसा भी करते है। वह सहृदय हैं। उन्हे विदूषक (मैत्रेय) जैसे मित्र पर भी सन्तोप है। वह चतुर भी है तथा इस वात से भी परिचित है कि अपनी प्रेयसी को किस प्रकार प्रसन्न रखा जा सकता है। इतने पर भी चारुदत्त अपने विलासमय जीवन मे नैतिक नियमों का पालन करने में सदा जागरूक रहते थे।

वसन्तसेना—प्रस्तुत प्रकरण की वसन्तसेना नायिका है जो कि अनिन्द्य सुन्दरी विभवयुक्ता युवती गणिका है। वह चारुदत्त की उदारता, त्याग, विनोद आदि अनेक गुणों पर अनुरक्त होकर उसके प्रेम मे विह्वल हो जाती है। वेश्या होकर भी पैसे के लिए वह शरीर वेचने वाली नही है तथा नहीं जिस किसी व्यक्ति से अनुराग रखने वाली हैं। राजश्यालक शकार से अपने को बचाने के लिए वह अपनी साहसी प्रवृत्ति का भी परिचय दे देती है। चारुदत्त की दरिद्रता से भलिभाँति परिचित होकर भी वह उससे अनन्य अनुराग रखती है। उसका प्रेम अर्थमूलक अथवा कृत्रिम नही है। जुआड़ियों से भयभीत होकर वसन्तसेना के घर छिपने तथा चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा करने पर वसन्तसेना उसकी निर्धनता मे नौकरी छोड़कर जुआड़ी वने हुए संवाहक के कर्ज को वह अपने प्रियतम के प्रेम के कारण ही अपना धन देकर निपटा देती है। इसी प्रकार वह मदनिका के द्वारा यह कहने पर कि 'यदि उसे चारुदत्त से अनन्य प्रेम है तो उसके घर क्यों नहीं चली जाती'! वह उत्तर देती है कि वह इस प्रकार जा सकती है परन्तु सन्देह है कि चारुदत्त अपनी दरिद्रता के कारण प्रत्युपकार करने मे अपने को असमर्थ पाकर कही उसे ठुकरा न दे। वसन्तसेना

अपने उपकार का बदला भी नहीं चाहती है। सम्वाहक जब अपना कर्ज चुका दिये जाने पर तेल मालिश की अपनी कला को उसके परिवार के अन्य व्यक्तियों को भी सिखा देना चाहता है तो वह केवल यह कह कर टाल देती है कि तुमने जिस व्यक्ति (चारुदत्त) के लिए यह कला सीखी है तुम्हें उसी की सेवा करनी चाहिए। कितनी निःस्पृह वसन्तसेना थी।

चारुदत्त के समान ही वसन्तसेना को भी ललित कलाओं से अनुराग है। वह अत्यन्त गम्भीर प्रकृति की सामान्य नायिका है। उसका चारुदत्त के प्रति पवित्र तथा अनन्य अनुराग है तथा वह भी चारुदत्त के अनुरूप ही अपना कर्त्तव्य प्रदर्शित करती है।

विदूषक——यह आर्य चारुदत्त का मित्र मैत्रेय नाम का ब्राह्मण है जो कि सुख और दुःख सर्व-काल में उसका घनिष्ठ सहायक है। चारुदत्त की सम्पन्नता में वह आनंदमय जीवन व्यतीत कर चुका है। वह किसी प्रकार भी अपने मित्र चारुदत्त को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता है। चारुदत्त के समान वह कट्टर धार्मिक अवश्य नहीं है क्योंकि जब चारुदत्त 'चत्वरे बलिमुपहर' कहकर मातृकाबलि के लिए उससे कहता है तो वह स्पष्ट कह देता है कि मुझे इन सब कार्यों में विशेष रुचि नहीं है। वह विनोदप्रिय भी है। वह भलीभाँति जानता है कि गणिका संसर्ग किसी प्रकार भी हितकर नहीं हो सकता है, वेश्याएँ अत्यन्त कुटिल स्वभाव की होती है। अत एव वह अपने मित्र चारुदत्त के भी गणिका-प्रेम को देखकर सन्तुष्ट नहीं रहता है। वह चतुर तथा शिष्टाचार से सुपरिचित है इसी लिए जब वह वसन्तसेना के पास मुक्तावली लेकर जाता है और वह बिना कुछ संदेश कहे मुक्तावली लेकर विदा करने लगती है तो वह——'कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः' कहकर बड़बड़ाने लगता है। वह किसी प्रकार अपने मित्र की हानि भी नहीं करना चाहता है क्योंकि जब चारुदत्त मुक्तावली धरोहर के बदले में लेकर वसन्तसेना के पास जाने को कहता है तो वह आश्चर्य चकित होकर कह उठता है—अहो 'अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डस्य'। वह चतुर, विनोदप्रिय, आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाला रसिक व्यक्ति है।

सज्जलक—यह वसन्तसेना की चेटी मदनिका का अनुरागी चतुर व्यक्ति है। अपनी प्रेमिका की मुक्ति के लिए चोरी जैसे नीच और साहसिक कार्य करने को भी तैयार हो जाता है। वह चोरी के कार्य में अत्यन्त निपुण है। सेंध कहाँ पर और कैसी लगाई जाय इसका उसे अच्छा ज्ञान है। प्रेम में पागल होकर भी उसका विवेक साथ नहीं छोड़ता है—'किं वा न कारयति मन्मथः, यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च।' ज्ञान उसे निरन्तर बना रहता है। वह प्रत्युत्पन्नमति भी है। जब सेंध लगाने को उसे नापने के लिए कोई वस्तु नहीं मिल पाती तो वह अपने यज्ञोपवीत को ही पैमाना (sekal) बना लेता है। बुद्धिमान् होने के कारण चोरी करके लाये गये सुवर्ण भाण्ड को पुनः पहिचान कर चारुदत्त को वापस दे आने के लिए मदनिका जब उससे अनुरोध करती है तो प्रथम तो वह 'अथेदानीं सोऽमर्षान्मां चोर इति रक्षिपुरुषैर्ग्राहयिष्यति चेदत्र किं करिष्यामि।' कहकर चारुदत्त के पास जाने से मना कर देता है पर बाद में सोचकर इसके लिए सहमत हो जाता है। वह गुण-ग्राही पुरुष है क्योंकि वसन्तसेना द्वारा अलंकृत मदनिका सज्जलक को समर्पित कर दिये जाने पर वह प्रत्युपकार के लिए प्रयत्न करता है परन्तु असमर्थता के कारण केवल 'शान्तं पापम्' कहकर चुप हो जाता है।

मदनिका—प्राचीन प्रथानुसार मदनिका वसन्तसेना की क्रीतदासी तथा सज्जलक की प्रेमिका है। वह एक सरल स्वभाव वाली उत्तम परिचारिका है। अपनी स्वामिनी के हित चिन्तन पर वह अपने प्रेम को भी न्योछावर कर सकती है क्योंकि जब सज्जलक स्वर्णपात्र चारुदत्त के घर से चुरा कर उसके पास ले जाता है और अपने प्रेम की दुहाई देकर केवल उसे छुड़ाने के लिए ही चोरी करना बतलाता है तो आभूषण पहिचान कर वह तुरन्त उसे वापस कर चारुदत्त को देने के लिए कहती है। वह अपनी विवेकशील बुद्धि से सोच कर यह भी सज्जलक को समझाती है कि इस प्रकार के कार्य (चोरी) से हमारी मुक्ति सम्भव नहीं है। वह अपने हृदय में एक आदर्शगृहणी बनने की भी सद्भावना संजोये हुए है तथा गणिका-जीवन से गृहस्थ-जीवन को वह उत्तम समझती है। वह अत्यन्त सरल-स्वभाव की महिला है। जब वसन्तसेना प्रसन्न होकर उसे अपने आभूषणों से सजा कर सज्जलक के हाथ में सौंपती

है तो वह तुरन्त प्रसन्नता से वैवाहिक जीवनयापन करने के लिए राजी हो जाती है।

ब्राह्मणी—यह आर्य चारुदत्त की परिणीता पति-परायणा आर्य-महिला है। 'पतिरेव गतिः स्त्रीणाम्' को ही आदर्श मान कर वह अपने पति के सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी रहना चाहती है। उसे अपने पति चारुदत्त में पूर्ण निष्ठा है तथा उन्हें सदैव प्रसन्न रखने के लिए प्रयत्नशील रहती है। दरिद्रता में भी जब वह सुन जाती है कि वसन्तसेना की धरोहर चोरी चले जाने के कारण उसके पति अत्यन्त व्याकुल हैं तो वह अपने पास अवशिष्ट अपनी अत्यन्त प्रिय तथा शतसहस्र मूल्य वाली मुक्तावली को भी पति को निश्चिन्त करने के लिए उसके हाथ में सहर्ष सौंप देती है। उसके इस त्याग की स्वयं चारुदत्त भी—'किन्चाहं दरिद्रः यस्य मम विभवानुवशा भार्या'! कह कर प्रशंसा करता है। पत्नी अपने पति को 'परस्त्री' पर रञ्जित देखकर 'नागिन' बन जाती है पर ब्राह्मणी में यह बात भी नहीं है। वह तो सब प्रकार से अपने पति को प्रसन्न रखना ही नारी का पावन कर्तव्य मानकर उसी का पालन करने में जुटी रहती है। वास्तव में वह एक धार्मिक, धैर्यशीला पति-परायण उत्तम श्रेणी की भारतीय गृहिणी तथा धीरा नायिका का आदर्श रूप है।

संवाहक—यह चारुदत्त का सेवक, वणिक् जाति का पाटलिपुत्र का निवासी है। यह बात उस समय प्रकट होती है जब वह जुआरियों द्वारा पीछा किये जाने पर वसन्तसेना के घर में छिप जाता है तथा वसन्तसेना को बातचीत के प्रसंग में वह यह सब बतलाता है। वह यह प्रशंसा सुनकर कि 'उज्ज-यिनी में विशेष प्रकार के उदार श्रीसम्पन्न तथा गुणग्राही पुरुष सरलता से मिल जाते हैं' पाटिल पुत्र से आ कर चारुदत्त के यहाँ ही नौकरी करने लगा था परन्तु चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर वह नौकरी छोड़ कर जुआ खेलने लगा, यह सम्वाह (तेल मालिश) की कला का अच्छा जानकार था एक दिन जुएँ में पराजित होने पर जुआड़ियों द्वारा पीछा किये जाने पर वसन्तसेना के घर बचाव के लिए छिप जाता है तथा जुएँ में हारने वाली तथा चारुदत्त के घर से नौकरी छोड़ देने वाली बात वसन्तसेना से कहता है। चारुदत्त से अनुराग रखने के कारण वसन्तसेना अपने पास से उसका क़र्ज निपटा कर चारुदत्त के

यहाँ वापस जाने का सुझाव देती है परन्तु वह इस घटना से खिन्न होकर संन्यास ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार सम्वाहक एक चतुर, कला-प्रेमी, कृतज्ञ तथा दृढ़ विचारक व्यक्ति है।

शकार—यह इस नाटक का खलनायक है जो कि राजा का साला है। बात-चीत से यह मूर्ख जान पड़ता है क्योंकि वसन्तसेना का पीछा किये जाने पर जब वह चारुदत्त के घर घुसने लगती है तो उसे धमकी देते हुए कहता है—'अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनः सीतामिवाहरामि।' इसी प्रकार वह असन्तुलित चित्त वाला भी दिखलाई पड़ता है। विट के द्वारा यह कहने पर कि 'सुगन्धित स्नान द्रव्य से व्याप्त यह गन्ध है।' तो शकार भी बकता है हाँ—'शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम्, अन्धकारिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामीति।' वह वसन्तसेना से अनुराग करना चाहता है क्योंकि वह समझता है कि यह गणिका है तथा गणिकाएँ शरीर बेचने की ही आजीविका रखती हैं। चारुदत्त के घर वसन्तसेना के भाग कर घुस जाने पर भी वह यही कह कर हटता है कि 'सा श्वो निर्यातयितव्या। मा तावत् तव च मम च दारुणः क्षोभो भवतीति।' इस प्रकार शकार चारुदत्त के गुणों से सर्वत्र ईर्ष्या करता हुआ उसका प्रतिद्वन्द्वी बना रहता है।

पात्राणां परिचयः

पुरुष-पात्राणि

१. नायकः—दरिद्रसार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तः

२. विदूषकः—मैत्रेयश्चारुदत्तस्य मित्रम् ।

३. शकारः राजश्यालकः संस्थानकः ।

४. विटः—शकारस्य सहचरः ।

५. संवाहकः—चारुदत्तस्य भृत्यः, द्यूतकरः ।

६. कर्णपूरः—वसन्तसेनायाश्चेटः ।

७. सज्जलकः—मदनिका-प्रेमी ।

८. चेटः—चारुदत्तस्य प्रथमो गृहानुचरः ।

९. वर्धमानकः—चारुदत्तस्य द्वितीयो गृहानुचरः ।

१०. सूत्रधारः—प्रकरणस्य प्रधानः नटः ।

स्त्री-पात्राणि

१. नायिका—गणिका वसन्तसेना ।

२. ब्राह्मणी—चारुदत्तस्य पत्नी ।

३. रदनिका—चारुदत्तस्य चेटी ।

४. मदनिका—वसन्तसेनायाश्चेटी सखी च ।

५. विच्छित्तिका—वसन्तसेनायाः परिचारिका ।

६. चतुरिका— ,, ,,

७. नटी—सूत्रधार-पत्नी ।



भासनाटकचक्रे

चा रु द त्त म्

सटिप्पण 'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—किण्णु खु अज्ज पच्चूस एव्व गेहादो णिक्खन्तस्स बुभुक्खाए पुक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू विअ चञ्चलाअन्ति विअ मे अक्खीणि । (परिक्रम्य) जाव गेहं गच्छिअ जाणामि किण्णु खु संविधा विहिदा ण वेत्ति । (परिक्रम्य) एदं अम्हाणं गेहं । जाव पविसामि । (प्रविश्यावलोक्य) जह लोहीपरिवट्टणकालसारा भूमी,

---

शरदिन्दुनिभां शुभ्रां शुभ्रवस्त्रैरलङ्कृताम् ।
कलहंसकृतावासां वरदां शारदां नुमः ॥

नान्द्यन्त इति । नान्द्याः = रङ्गविघ्नोपशान्तये कृताशीर्नमस्कारादिमङ्गलाचरणरूपाया अन्ते (नाटक के निर्विघ्न समाप्त होने के लिए किये गये आशीर्वाद, नमस्कार आदि मङ्गलाचरण के) । अन्ते = समाप्तौ (अन्त में) । ततः = तदनन्तरम् (तदनन्तर) । सूत्रधारः=नाटकारम्भकर्त्ता (नाट्यवस्तु का आरम्भ करने वाला व्यक्ति) । प्रविशति = प्रवेशं करोति ।

(नान्दी पाठ के अन्त में तब सूत्रधार प्रवेश करता है)

सूत्रधार—क्यों, आज प्रातःकाल ही घर से निकले हुए खाने की इच्छा से कमल पत्र पर पड़े जलबिन्दुओं के समान मेरे दोनों नेत्र चंचल हो रहे हैं ।

गेोउब्भामणसुगन्धो विअ गन्धो, सुणिमित्तं विअ परिब्भमन्तो वड्डिवस्सअजणो, किण्णु खु संविधा विहिदा । आदु वुभुक्खाए ओदणमअं विअ जीवलोअं पेक्खामि । जाव अय्यां सद्दावेमि । अय्ये ! इदो दाव । [किन्तु खल्वद्य प्रत्यूष एव गेहान्निष्क्रान्तस्य वुभुक्षया पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव चञ्चलायेते इव मेऽक्षिणी : यावद् गेहं गत्वा जानामि किन्तु खलु संविधा विहिता न वेति । एतदस्माकं गेहम् । यावत् प्रविशामि । यथा लौहीपरिवर्तनकालसारा भूमिः, स्नेहोद्भावनसुगन्ध

किन्त्विति । किन्तु खलु = किमिति नूनम् (निश्चय ही, क्यों) । अद्य = अस्मिन् दिने (आज) । प्रत्यूष एव = प्रभात एव (प्रातःकाल ही) । गेहात् = गृहात् (घर से) निष्क्रान्तस्य = निष्क्रमण-कृतस्य (निकलते हुए) । मे=मम (मेरे) । अक्षिणी = नयने (दोनों नेत्र) । बुभुक्षया-भोक्तुमिच्छा बुभुक्षा तया (खाने की इच्छा से) । पुष्करपत्रपतितजलबिन्दू इव-पुष्करस्य = कमलस्य पत्रम् = दलम्, तत्र पतितौ जलबिन्दू = वारिसीकरे इव (कमलदलपर पड़े हुए दो जलबिन्दुओं के समान) । चञ्चलायेते इव = चपलायेते इव (मानो चञ्चल हो रहे हैं) । (परिक्रम्य) यावत् = यावत्कालम् (जबतक) । गेहम् = गृहम् (घर को) । गत्वा = यात्वा (जाकर) । किन्तु खलु = किं नूनम् (क्या वास्तव में) । संविधा=व्यवस्था (भोजन की व्यवस्था) । विहिता=सम्पादिता (की गई है) । न वा = अथवा नैव कृता (अथवा नहीं की गई है) । इति = एतत् (यह) । जानामि = वेद्मि (जानता हूँ) (परिक्रम्य) । एतत् = इदम् (यह) । अस्माकम् = मामकानाम् (हमारा) । गृहम् = गेहम् (घर) । (अस्ति) । यावत् (जबतक) । प्रविशामि =प्रवेशं करोमि (प्रवेश करता हूँ) । प्रविश्य = प्रवेशं विधाय (प्रवेश करके) । अवलोक्य = दृष्ट्वा (देख कर) । यथा = येन प्रकारेण (जैसे) । लौहीपरिवर्तनकालसारा—लौह्याः = लौहनिर्मित-

---

(घूम कर) जब तक घर जाकर मालूम करता हूँ कि क्या भोजन व्यवस्था कर ली गई है अथवा नहीं ! (घूम कर) यह हमारा घर है । तो प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश करके, देख कर) । जैसे—लोहे से बने चमचे को पलटने से भूमि अत्यन्त काली पड़ गई है । घी आदि चिकनाई वाले पदार्थों के छौंकने की महक

इव गन्धः, सुनिमित्तमिव परिभ्रमन् वरिवस्यकजनः, किन्तु खलु संविधा विहिता। अथवा बुभुक्षयौदनमयमिव जीवलोकं पश्यामि। यावदार्यां शब्दापयामि। आर्ये! इतस्तावत्।]

रन्धनदण्डस्य परिवर्त्तनेन = अवघर्षणकारणेन, कालासारा = अत्यन्तकृष्ण-वर्णभूता, भूमिः = पृथ्वी (लोहे से बने चमचे के परिवर्तन के कारण अत्यन्त काली बनी हुई भूमि)। स्नेहाद् भावनसुगन्ध इव—स्नेहस्य = घृतादिस्निग्ध-पदार्थस्य, उद्भावनम् = उद्गमनम्, तेन सुगन्धः = शोभन-गन्धः इव (घी आदि चिकने पदार्थों के छौंकन की सुगन्ध के समान) गन्धः=घ्राणग्राह्यगुणः (महक)। सुनिमित्तम् इव = शोभनं निमित्तं सुनिमित्तम् तादृशम् (सुन्दर कारण के समान) वरिवस्यकजनः=सुश्रूषकजनः (सुश्रूषा या पूजा करने वाला व्यक्ति)। परिभ्रमन्= चङ्क्रमणं कुर्वन् (चक्कर काटता हुआ)। किन्तु खलु=(निश्चित रूप से क्या)। संविधा = भोजनव्यवस्था। विहिता = कृता (की गई है) अथवा (अथवा) बुभुक्षया—भोक्तुमिच्छा, तया = अत्तुमभिलाषया (खाने की इच्छा से) ओदन-मयम् इव = सिद्धान्नमयमिव (ओदनमय पकवान जैसा)। जीवलोकम् = संसारम् (संसार को)। पश्यामि = अवलोकयामि (देखता हूँ)। यावत् (जब तक)। आर्याम्=श्रीमतीम् (श्रीमती जी को)। शब्दापयामि=आह्वयामि (पुकारता हूँ)। आर्ये! = देवि! (हे देवी जी)। तावत् इतः=तावदत्रागच्छ (जरा इधर तो आओ)।

टिप्पणी—वरिवस्यकजन-वरिवस् अव्यय पद का अर्थ सुश्रूषा या पूजा है। इसी को करने वाला सुश्रूषक अथवा पूजक व्यक्ति।

सूत्रधार—रंग शाला की व्यवस्था करने वाले व्यक्ति को सूत्रधार कहा जाता है। यथा—नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारः स उच्यते॥

मानों आ रही हैं। सुन्दर निमित्त के उद्देश्य से ही पूजक लोग इधर उधर घूमते दिखलाई पड़ रहे हैं। क्या वास्तव में भोजन की व्यवस्था हो गई है! अथवा मैं भोजन करने की इच्छा से जीवलोक (संसार का सब कुछ) अन्नमय (पकवान जैसा) ही देख रहा हूँ। तब तो श्रीमतीजी को पुकारता हूँ। आर्ये! इधर तो आओ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअं म्हि । अय्य ! दिट्ठिआ खु सि आअदो [आर्य ! इयमस्मि ! आर्य ! दिष्ट्या खल्वस्यागतः] ।

सूत्रधारः—अय्ये ! किं अत्थि अम्हाण गेहे को वि पादरासो । [आर्ये ! किमस्त्यस्माकं गेहे कोऽपि प्रातराशः] ।

नटी—अत्थि । [अस्ति] ।

आर्य-पुत्र—नाट्यशास्त्र में पति के लिए आर्य तथा पत्नी के लिए आर्या शब्द का प्रयोग किया जाता है। यथा—सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्यः आर्यः ! (भ. ना. शास्त्र) ।

पात्र-भाषा—नाटक में नायक अथवा विशिष्ट पात्र के अतिरिक्त नायिका सहित समस्त स्त्रियों तथा अन्य नीच पात्रों की भाषा प्राकृत रहती है। यथा—

आर्यावर्तप्रसूतासु सर्वास्वेव हि जातिषु ।
शौरसेनीं समाश्रित्य भाषां काव्ये प्रयोजयेत् ॥ (भरतनाट्यशास्त्रे)

आर्य इति । आर्य = श्रेष्ठ (हे आर्य) । इयम् = एषा (यह) । अस्मि = वर्ते (हूँ) । आर्य ! दिष्ट्या = सौभाग्येन (सौभाग्य से) । खलु = नूनम् (निश्चय ही) अस्य आगतः = भवान् आयातः अस्ति (आप आ गये हैं) ।

आर्ये इति । आर्ये ! देवि (देवी जी) । किम् (क्या) । अस्माकं गेहे = अस्मद्गृहे (हमारे घर में) । कः अपि = कश्चिदपि (कुछ भी) । प्रातराशः प्रातः = प्रभाते, अश्यते = भोज्यत इति, प्रातराशः = प्रातःकालीनं भोज्यम् (सवेरे का नाश्ता) । अस्ति = वर्तते हैं ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य ! मैं यहाँ हूँ । हे आर्य ! सौभाग्य से आप भी आ गये है ।

सूत्रधार—हे आर्ये ! क्या हमारे घर प्रातःकालीन कुछ जलपान तैयार है ?

नटी—है ।

सूत्रधारः—चिरं जीव। एव्वं सोभणाणि भोअणाणि दन्तिआ होहि। [चिरं जीव। एवं शोभनानि भोजनानि दात्री भव]।

नटी—अय्य ! तुवं एव्व पडिवालन्ती चिट्ठामि। [आर्य ! त्वामेव प्रतिपालयन्ती तिष्ठामि]।

सूत्रधारः—अय्ये ! किं अत्थि अब्भत्थिदं ! [आर्ये ! किमस्त्यभ्यर्थितम्]।

नटी—अत्थि। [अस्ति]।

सूत्रधारः—एव्वं देवा तुमं अस्सासअन्तु। अय्ये ! किं किं। [एवं देवास्त्वामाश्वासयन्तु। आर्ये ! किं किम्]।

अस्तीति। चिरम् = बहुकालम् (बहुत दिनों तक)। जीव=तिष्ठ (जीवित रहो)। एवम्=ईदृशम् (ऐसा) शोभनानि=सुस्वादूनि (स्वादिष्ट)। भोजनानि= खाद्यान्नानि (पकवान)। दात्री = प्रदानकर्त्री (देने वाली)। भव = भूयाः (होओ)। त्वाम् एव = भवन्तमेव (आप को ही)। प्रतिपालयन्ती=प्रतीक्षन्ती (प्रतीक्षा करती हुई)। तिष्ठामि = अवस्थितास्मि (बैठी हूँ)।

आर्य इति। अभ्यर्थितम् = प्रार्थितम् (चाही हुई वस्तु)। किम् अस्ति = वर्तते किम् (क्या विद्यमान है) !

एवम् = अनेन प्रकारेण (इस प्रकार)। देवाः = सुराः (देवता)। त्वाम् = सूत्रधारम् (आप को)। आश्वासयन्तु = धैर्यं धारयन्तु (आश्वासन दिलायें)। आर्ये = देवि ! किं किम्=किं किं वस्तु वर्तते (क्या क्या चीज है)।

सूत्रधार—चिरञ्जीव बनो और इसी प्रकार सुन्दर सुन्दर भोजन देती रहो।

नटी—आर्य ! मैं तो आप की ही प्रतीक्षा कर रही हूँ।

सूत्रधार—आर्ये ! चाही हुई क्या वस्तु है ?

नटी—है।

सूत्रधार—इस प्रकार तो तुम्हें देवताओं द्वारा धैर्य दिलाया जाना चाहिए। आर्ये ! क्या क्या भोज्यवस्तु है ?

नटी—घिदं गुलं दहिं तण्डुला ज सव्वं अत्थि । [घृतं गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति] ।

सूत्रधारः—एदं सव्वं अम्हाणं गेहे अत्थि ? [एतत् सर्वमस्माकं गेहेऽस्ति] ?

नटी—णहि णहि । अन्तलावणे । [नहि नहि । अन्तरापणे] ।

सूत्रधार—(सरोषम्) आः अणय्ये ! एव्वं दे आसा छिन्दीअदु । अभावं च गमिस्ससि : अहं चण्डप्पवादलण्डिओ विअ वरण्डो पव्वदादो दूरं आरोविअ पाडिदो म्हि । [आः अनार्ये ! एवं ते आशा छिद्यताम् । अभावं च गमिष्यसि । अहं चण्डप्रवातलण्डित इव वरण्डः पर्वताद् दूरमारोप्य पातितोऽस्मि] ।

घृतम् = आज्यम् (घी) गुडम् = इक्षुरसनिर्मितं मिष्टम् (गुड) । दधि = पयोविकारम् (दही) तण्डुलाः = अक्षताः (चावल) । सर्वम् = निखिलम् (सब) अस्ति = वर्तते (हैं) ।

एतत् = इदम् (यह) सर्वम् = अखिलम् (सब) अस्माकं गेहे = अस्मद्गृहे (हमारे घर में) अस्ति = वर्तते (वर्तमान है) ।

नहि नहि = एतत्खलु नास्ति (नहीं नहीं) । अन्तरापणे = आपणमध्ये (बाजार में) ।

सरोषमिति । सरोषम्—रोषेण सहितम् = सकोपम् (क्रोधसहित) । आः अनार्ये = अयि दुष्टे ! एवम् = इत्थम् (इस प्रकार) । ते = तव (तुम्हारी) । आशा = अभिलाषा (आशा) । छिद्यताम् = भज्यताम् (भंग हो जाये) । च = तथा, अभावम् = न्यूनताम् (अभाव को) । गमिष्यसि = यास्यसि (जाओगी) । अहम् = सूत्रधारः (मैं) चण्डप्रवातलण्डितः-चण्डः = तीव्रः प्रवातः = वायुः, तेन लण्डितः = उत्क्षिप्तः (तेज वायु से फेंका हुआ) । वरण्ड

नटी—घी, गुड़, दही और चावल सब कुछ है ।

सूत्रधार—यह सब हमारे घर में हैं ?

नटी—नहीं, नहीं । बाजार में है ।

सूत्रधार—(क्रोध के साथ) अरी दुष्टे ! इस प्रकार तेरी आशा नष्ट हो

नटी—मा भाआहि मा भाआहि। मुहुत्तअं पडिवालेदु अय्यो। सव्वं सज्जं भविस्सदि। लद्धं णाम एदं। अज्ज मम उववासस्स अय्यो सहायो होदु। [मा विभीहि मा विभीहि। मुहूर्तकं प्रतिपालयत्वार्यः सर्वं सज्जं भविष्यति। लब्धं नामैतत्। अद्य ममोपवासस्यार्यः सहायो भवतु]।

सूत्रधारः—किण्णामहेओ अय्याए उववासो। [किन्नामधेय आर्याया उपवासः]।

इव = तृणसमूह इव (ववण्डर के समान)। पर्वतात् = महीधरात् (पहाड़ पर से)। दूरम् आरोप्य = उच्चस्थानं नीत्वा (ऊपर चढ़ाकर)। पातितः अस्मि = भ्रंशितः अस्मि (गिरा दिया गया हूँ)।

टिप्पणी—वरण्डः = वण्डरा, तेज वायु चलने के कारण तृणसमूह ऊपर उड़ने लगता है वही वरण्ड या वण्डरा कहलाता है।

मा विभीहीति। मा विभीहि = भयं मा कुरु (मत डरो)। मुहूर्त्तकम् = क्षणम् (थोड़ी देर)। आर्यः = भवान् (आप)। प्रतिपालयतु = प्रतीक्ष्यताम् (प्रतीक्षा करें)। सर्वम् = सम्पूर्णम् (सब)। सज्जम् = प्रस्तुतम् (तैयार)। भविष्यति = वर्तिष्यति (हो जायेगा)। लब्धं नामैतत् = एतत्सर्वं तु प्राप्तमेव (यह सब तो मौजूद ही है)। अद्य=अस्मिन् दिने (आज)। आर्यः = भवान् (आप)। मम = नट्याः (मेरे)। उपवासस्य = व्रतस्य (उपवास के) सहायः (सहायक)। भवतु = अस्तु (होवें)।

किन्नामधेयः = किन्नामकः (किस नाम का)। आर्यायाः = भवत्याः (आप का)। उपवासः = व्रतम् (व्रत) (अस्ति)।

जाये और तुम अभाव को प्राप्त हो जाओ। मैं तेज वायु से फेंके ववण्डर के (तृणसमूह) समान पहाड़ पर ऊँचे चढ़ा कर गिरा दिया गया हूँ।

नटी—डरे मत, डरे मत। आप क्षणभर प्रतीक्षा करें। सब तैयार हो जायेगा यह सब तैयार है। आज आप मेरे उपवास के सहायक बनें।

सूत्रधार—किस नाम का आप का उपवास है?

नटी—अभिरूववदी णाम। [अभिरूपपतिर्नाम]।

सूत्रधारः—किं अण्णजादीए। [किमन्यजात्याम्]।

नटी—आम। [आम्]।

सूत्रधारः—सव्वं दाव चिट्ठदु। को णु दाणिं अय्याए उववासस्स उवदेसिओ। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। को न्विदानीमार्याया उपवासस्योपदेशिकः]।

नटी—इमिणा वडिवस्सएण चुण्णगोट्ठेण। [अनेन वरिवस्यकेन चूर्णगोष्ठेन]।

अभिरूपपतिः–अभिरूपः = अनुकूलः पतिः वरः येन सः (अनुरूप वर-पति दिलाने वाला)। नाम = नामकः (नामक)।

अन्यजात्याम्–अन्या जातिः, तस्याम् = अपरजन्मनि (अन्य जन्म मे)।

आम् = एवम् (हाँ)।

सर्वं तावत् तिष्ठतु = एतत्सर्वं पृथग् भवतु (यह सब रहने दो)।

नु = नूनम् (निश्चय ही)। इदानीम् = सम्प्रति (अब)। आर्यायाः = भवत्याः (आप का)। उपवासस्य = व्रतस्य (उपवास का)। उपदेशिकः = उपदेष्टा (उपदेशक)। कः = कः पुरुषः (कौन व्यक्ति)। अस्ति (है)।

अनेनेति। अनेन = एतेन (इससे)। वरिवस्यकेन = धार्मिकेण ('वरिवस्या तु सुश्रूषा परिचर्या ह्युपासना' इत्यमरः) (धार्मिक अथवा पूजक के द्वारा) चूर्णगोष्ठेन = एतन्नाम्ना (चूर्णगोष्ठ नामक द्वारा)।

नटी—अनुरूपपति नामक।

सूत्रधार—क्या अन्य जन्म में भी (है)।

नटी—हाँ।

सूत्रधार—यह सब रहने दो। आप के उपवास का इस समय उपदेशक कौन है ?

नटी—इस चूर्ण-गोष्ठ पूजक ने (उपदेश दिया है)।

सूत्रधारः—साहु चुण्णगोट्ठ ! साहु । [साधु चूर्णगोष्ठ ! साधु] ।

नटी—जइ अय्यस्स अणुग्गहो, तदो इच्छेअं अम्हारिसजणजोग्गं किंवि बम्हणं निमन्तेदुं । [यद्यार्यस्यानुग्रहः, तत इच्छेयमस्मादृशजनयोग्यं कञ्चिद् ब्राह्मणं निमन्त्रयितुम्] ।

सूत्रधारः—धम्मिट्ठो खु णिओओ । तेण पादरासो वि मे भविस्सदि । जइ एव्वं, पविसदु अय्या । अहं वि अम्हारिसजणजोग्गं किंवि बम्हणं अण्णेसामि । [धर्मिष्ठः खलु नियोगः । तेन प्रातराशोऽपि मे भविष्यति । यद्येवं प्रविशत्वार्या अहमप्यस्मादृशजनयोग्यं कञ्चिद् ब्राह्मणमन्वेषे] ।

साधु = 'शाबाश' इति भाषायाम् ।

यदि = चेत् (जो) । आर्यस्य = भवतः (आप की) । अनुग्रहः = कृपा (भवतु) । तदा = तर्हि (तो) । अस्मादृशजनयोग्यम् = अस्मादृशस्य (मेरे जैसे) । जनस्य = लोकस्य, योग्यम्=अनुकूलम् (मेरे जैसे व्यक्ति के योग्य) । कंचिद् ब्राह्मणम्=कमपि विप्रम् (किसी ब्राह्मण को) । निमन्त्रयितुम्=निमन्त्रणं दातुम् (निमन्त्रण देने को) । इच्छेयम् = अभिलषेयम् (चाहूँ) ।

धर्मिष्ठः = धर्मे तिष्ठतीति (धर्मनिष्ठ) । खलु = नूनम् (अवश्य) । नियोगः = कार्यः (करने योग्य है) । तेन = एतेन (इससे) । प्रातराशः अपि=प्रातःकालीनं जलपानमपि (सवेरे का नाश्ता भी) भविष्यति (होगा) । यद्येवम् = एवं चेत् (यदि ऐसा है) । आर्या = भवती (आप) । प्रविशतु = प्रवेशं करोतु (प्रवेश करें) । अहमपि = सूत्रधारोऽपि (मैं भी) । अस्मादृशजनयोग्यं=आत्मानुकूलम् (अपने जैसा) कञ्चिद्ब्राह्मणम् (किसी ब्राह्मण को) । अन्वेषे = अन्वेषणं करिष्यामि (ढूंढूंगा) ।

सूत्रधार—शाबाश चूर्णगोष्ठ ! शाबाश ।

नटी—यदि आप की कृपा हो तो अपने योग्य किसी ब्राह्मण को मैं निमंत्रित करना चाहूँगी ।

सूत्रधार—वास्तव में धार्मिक कार्य है। इससे प्रातःकाल का मेरा जलपान भी हो जायेगा । यदि ऐसा है तो आप प्रसन्न हो जायें । मैं अपने अनुकूल किसी ब्राह्मण को ढूँढता हूँ ।

नटी—जं अय्यो आणवेदी। (निष्क्रान्तः) [यदार्य आज्ञापयति]।

सूत्रधारः—कहिं णु खु दरिद्दबम्हणं लभेअं। (विलोक्य) एसो अय्यचारुदत्तस्स वअस्सो अय्यमेत्तेओ णाम बम्हणो इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवणिमन्तेमि। (परिक्रम्य) अय्य ! णिमन्तिदो सि। आमन्तणस्स मा दरिद्द त्ति मं अवमण्णेहि। सम्पण्णं अह्लिदव्वं भविस्सदि। घिदं गुलं दहिं तण्डुला अ सव्वं अत्थि। अविअ दक्खिणामासआणि भविस्सन्ति। [कुत्र नु खलु दरिद्रब्राह्मणं लभेय। एष आर्यचारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रेयो नाम ब्राह्मण इत एवागच्छति। यावदुपनिमन्त्रयामि। आर्य ! निमन्त्रितोऽसि। आमन्त्रणस्य मा दरिद्र इति मामवमन्यस्व। सम्पन्नमशितव्यं

यद् = यथा (जो)। आर्यः = भवान् (आप)। आज्ञापयति=आदिशति (आज्ञा देते हैं)। निष्क्रान्ता = निर्गता (निकल गई)।

कुत्र नु खलु=क्व नूनम् (निश्चित रूप से कहाँ)। दरिद्रब्राह्मणम्=अकिञ्चनं विप्रम् (निर्धन ब्राह्मण को)। लभेयम् = प्राप्नुयाम् (प्राप्त कर सकूँ)। विलोक्य = दृष्ट्वा (देखकर)। एषः = अयम् (यह)। आर्यचारुदत्तस्य = तत्रभवतश्चारुदत्तस्य (श्रीमान् चारुदत्त के)। वयस्यः = सखा (मित्र)। आर्यमैत्रेयः = श्रीमैत्रेयाभिधः (श्रीयुत मैत्रेय)। ब्राह्मणः=द्विजः (ब्राह्मण)। इत एव = अस्मादेव स्थानात् (इधर से ही)। आगच्छति = आयाति (आ रहे हैं)। यावत् = यावत्कालम् (जबतक)। उपनिमन्त्रयामि = निमन्त्रितं करोमि (निमन्त्रित कर रहा हूँ)। परिक्रम्य = परिभ्रम्य (घूमकर)। आर्य = श्रेष्ठ (हे आर्य)। निमन्त्रितोसि = निमन्त्रणं कृतः असि (निमंत्रित हो)। दरिद्र इति = निर्धन इति (गरीब है यह)। मा अवमन्यस्व=अपमानं मा कुरु (अपमान न करो)। सम्पन्नम् = धनिकम् (सम्पन्न व्यक्ति को)।

नटी—जो आप की आज्ञा।

सूत्रधार—मैं दरिद्र ब्राह्मण कहाँ पा सकूँ। (देखकर) यह आर्य चारुदत्त का मित्र आर्य मैत्रेय नामक ब्राह्मण इधर ही आ रहा है। तो (इसी को) निमन्त्रित किये देता हूँ। (घूमकर) आर्य मैत्रेय ! आप निमन्त्रित हैं। 'दरिद्र हूँ' यह कह कर मेरे निमन्त्रण का अपमान मत करना। भोजन सामग्री

भविष्यति । घृतं गुडो दधि तण्डुलाश्च सर्वमस्ति अपि च दक्षिणामापका भविष्यन्ति]।

(नेपथ्ये)

अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भवं। अरित्तओ दाव अहं। [अन्यमन्यं निमन्त्रयतु तावद् भवान्। अरिक्तकस्तावदहम्]।

सूत्रधारः—

घिदगुलदहिसुसमिद्धं धूविअसूवोवदंससम्भिण्णं।
सक्कारदत्तमिट्ठं भुञ्जीअदु भत्तमय्येण ॥ १ ॥

[घृतगुडदधिसुसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसम्भिन्नम्।

अशितव्यम् = भोजयितव्यम् (खिलाना चाहिए)।

घृतम् = आज्यम् (घी)। गुडः = इक्षुरसोद्भूतं मिष्टम् (गुड) दधि (दही)। तण्डुला = अक्षतानि (अक्षत) दक्षिणामाषकाः = दक्षिणरूपमुद्राः (दक्षिणा रूप में मुद्रा)।

टिप्पणी—वरिवस्यक = वरिवस्या = सुश्रूषा करने वाला या पूजक, धार्मिक व्यक्ति। सम्पन्न ब्राह्मण–ब्राह्मण का सम्पन्न होना असम्भव है। किसी कवि ने लक्ष्मी द्वारा विष्णु भगवान् से यही कहलाया है—'तस्मात् खिन्ना सदाऽहं द्विजकुलसदनं नाथ! नित्यं त्यजामि'। इसी को हिन्दी के नरोत्तम कवि ने भी 'ब्राह्मण के धन केवल भिक्षा' कहकर प्रमाणित किया है। बौद्ध धर्मानुसार भी—अनागारमकिञ्चनम्। कहकर ब्राह्मण का निर्धन होना बतलाया गया है।

अन्यमिति। अन्यमन्यम् = अपरमपरम् (और किसी व्यक्ति को)। अरिक्तम् = न रिक्त। यः सः अरिक्तकः = धनादिरहितो नैव (सम्पन्न)।

घृतगुडदधिसुसमृद्धम्—घृतेन = सर्पिषा, गुडेन दध्ना च सुष्ठुतया समृद्धम् =

तैयार हो जायेगी। घी, गुड़, दही, चावल सब कुछ है तथा दक्षिणा में मुद्राएँ भी होंगी।

(नेपथ्य में)

तो आप अन्य व्यक्ति को निमन्त्रित कर लें। मैं तो सम्पन्न व्यक्ति हूँ।

सूत्रधार—घी, गुड़, दही आदि से भली प्रकार बनाया गया, हींग आदि

सत्कारदत्तमिष्टं भुज्यतां भक्तमार्येण ॥ १ ॥]

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति विदूषकः)

सुसंस्कृतम् (घी गुड दही आदि भोज्य पदार्थों से भली प्रकार बनाया गया) । धूपितसूपोपदंशसम्भिन्नम्—धूपितेन=हिंग्वादिवासितेन, सूपेन=द्विदलेन, उपदंशेन = कन्दमूलादिना, सम्भिन्नम् मिश्रितम् (हींग आदि सुगन्ध से युक्त तथा कन्दमूल आदि से मिश्रित) । आर्येण = श्रीचारुदत्तेन (आर्य चारुदत्त द्वारा) । सत्कारदत्तम्—सत्कारेण दत्तम्=स्वागत-प्रदत्तम् (स्वागत हेतु दिया गया) । इष्टम् = आकांक्षितम् (चाहा हुआ) । भक्तम् = ओदनादि पक्वान्नम् (भात-पकवान) । भुज्यताम् = खाद्यताम् (भोजन करें) । आर्यावृत्तम् । तद् यथा—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रा तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।

टिप्पणी—नेपथ्य = पर्दे के पीछे का भाग जहाँ पात्र वेशपरिवर्तन करते हैं । यथा—रामादिव्यञ्जको वर्णो नटो नेपथ्यमुच्यते ।

स्थापना = प्रस्तावना—नाटक के जिस भाग में नटी, विदूषक परिपार्श्वक तथा सूत्रधार आदि के द्वारा विचित्र प्रकार के वाक्यों द्वारा बातचीत की जाती है उसे आमुख प्रस्तावना अथवा स्थापना कहते हैं । यथा—नटी विदूषको वापि परिपार्श्वक एव वा । सूत्रधारेण सहिता संल्लापं यत्र कुर्वते ॥ चित्रैः वाक्यैः स्वकार्योत्थैः स्तुताऽऽक्षेपिभिर्मिथः । आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥ (सा० द०) ।

सुगन्धित द्रव्यों की छौंक से सुवासित किया गया आर्य चारुदत्त के द्वारा सम्मान से दिया गया रुचिकर पकवान् उपभोग करें ।

(निकल जाता है)

स्थापना

(इसके बाद विदूषक का प्रवेश होता है)

विदूषकः—अण्णं अण्णं णिमन्तेदु दाव भवं। अरित्तओ दाव अहं। णं भणामि अहं अरित्तओ त्ति। किं भणामि—सम्पण्णं असणं अहिलिदव्वं भविस्सदि त्ति। अहं पुण जाणामि। अहिअमहुरस्स अम्बस्स अजोग्गदाए अट्ठिं ण भक्खीअदि त्ति। किं दाणि मं उल्लालिअ उल्लालिअ भणासि। भणामि वावुदो त्ति। किं भणासि—दक्खिणामासआणि भविस्सदि त्ति। एसो वाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुवन्धीअमाणो गच्छीअदि। अहो अच्चाहिदं। अहं वि णाम परस्स आमन्तणाणि त्ति तक्केमि। जो अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स गेहे अहोरत्तपय्यत्तसिद्धेहि णाणाविधेहि हिङ्गुविद्धेहि ओग्गारणसुगन्धेहि भुक्खेवमत्तपडिच्छिदेहि अन्तरन्तरपाणीएहि असणप्पआरेहि चित्तअरो विअ बहुमल्लएहि परिवुदो आअण्ठमत्तं अहिलिअ चच्चरवुसहो विअ मोदअखज्जएहि रोमन्थाअमाणो दिवसं खेवेमि, सो एव्व दाणि अहं तत्तहोदो चारुदत्तस्स दरिद्ददाए सम पारावदेहि साहारणवृत्ति उवजीवन्तो अण्णहि चरिअ चरिअ तस्स आवासं एव्व गच्छामि। अण्णं च अच्छरिअं। मम उदरं अवत्थाविसेसं जाणादि। अप्पेणावि तुस्सदि। बहुअं वि ओदणभरं भरिस्सदि दीअमाणं। ण आएदि अदीअमाणं, ण पच्चाचिक्खदि। ण खु अहं एरिसेण ण सन्तुट्ठो। ता सट्ठीकिददेवकय्यस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स कारणादो गहीदो सुमणो अन्तलिक्खवासो अ। जाव से पस्सपरिवत्ती होमि। (परिक्रम्यावलोक्य) एसो तत्तभवं चारुदत्तो पभादचन्दो विअ सकरुणप्पिअदंसणो जहाविभवेण गिहदेवदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व आअच्छदि। जाव णं उवसप्पामि। (निष्क्रान्तः)। [अन्यमन्यं निमन्त्रयतु तावत् भवान्। अरिक्तकस्तावदहम्। ननु भणाम्यहमरिक्तक इति। किं भणसि—सम्पन्नमशनमशितव्यं भविष्यतीति। अहं पुनर्जानामि। अधिकमधुरस्य

अन्यमिति। पुनः = भूयः (फिर)। जानानि = वेद्मि (जानता हूँ)।

विदूषक—तो फिर आप किसी और को निमन्त्रित करलें। मैं तो सम्पन्न हूँ। निःसंदेह मैं कह रहा हूँ कि सम्पन्न हूँ। क्या कह रहे हो! सम्पन्न स्वादिष्ट भोजन होगा! मैं पुनः जानता हूँ। अत्यधिक मीठे आम की अयोग्यता के कारण

आम्रस्य अयोग्यतया अस्थि न भक्ष्यत इति । किमिदानीं मामुल्लाल्योल्लाल्य भणसि । भणामि व्यापृत इति । किं भणसि—दक्षिणा मापका भविष्यन्तीति । एष वाचा प्रत्याख्यातो हृदयेनानुवध्यमानो गम्यते । अहो अत्याहितम् । अहमपि नाम परस्यामन्त्रणानीति तर्कयामि । योऽहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गेहेऽहोरात्रपर्याप्तसिद्धैर्नानाविधैर्हिङ्गुविद्धैरुद्गारसुगन्धिभिः भ्रूक्षेपमात्रप्रतीष्टैरान्तरान्तरापानीयै-

---

अधिकमधुरस्य = अधिकं मधुरम्, तत् तस्य = अतिमिष्टस्य (अत्यन्त मीठे) । आम्रस्य = चूतफलस्य (आम की) । अयोग्यतया = अज्ञानतया (अयोग्यता से) । अस्थि = बीजकोषः (गुठली) । न भक्षत इति = न खाद्यत इति (नहीं खाई जा रही हैं) । इदानीम् = सम्प्रति (इस समय) माम् (मुझ को) । उल्लाल्योल्याल्य = प्रलोभनं दत्वा दत्वा (लालच दे दे कर) । किं भणसि = किं कथयसि (क्या कहते हो) । व्यापृतः=व्यस्तः (अन्य कार्य में लगे हुए) । वाचा = वाण्या (वाणी द्वारा) प्रत्याख्यातः=निन्दितः (निन्दित) । हृदयेन= चेतसा (हृदय से) । अनवध्यमानः=अनुरुध्यमानः (अनुरोध किया हुआ) । गम्यते = गन्तुमिष्यते (जाने की इच्छा रखता है) । अहो ! अत्याहितम् = अहो दुर्भाग्यम् (अहो दुर्भाग्य) । परस्य=अन्यस्य (दूसरे के) । आमन्त्रणानि= निमन्त्रणानि (आमन्त्रणों को) । इति तर्कयामि = इति कल्पयामि (यह कल्पना करता हूँ) । यः अहम् = मैत्रेयः (मैं जो) । आर्यचारुदत्तस्य=वयस्य-चारुदत्तस्य (आर्य चारुदत्त के) । गेहे = गृहे (घर में) । अहोरात्रम् = अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रम् = रात्रिन्दिवम् (रात दिन) । पर्याप्तसिद्धैः=सुपक्वैः (भलीभांति पकाये गये) । नानाविधैः = वहुप्रकारैः (अनेक प्रकार से) । हिङ्गुविद्धैः— हिङ्गुनाविद्धैः = हिङ्गुमिश्रितैः (हींग से मिश्रित) । उद्गार-

---

कहीं गुठली तक न खा जाना । इस समय मुझे ललचा ललचा कर क्या कह रहे हो ?—कार्य में व्यस्त हूँ । क्या कह रहे हो—दक्षिणा भी मोहरें भी मिलेंगी । यह वाणी से प्रत्याख्यान किया हुआ है पर हृदय से तो अनुमोदन किया गया है । अहा—दुर्भाग्य ! मैं भी दूसरों के आमन्त्रणों की कल्पना करता हूँ, जो कि आर्य चारुदत्त के घर दिन रात भली भांति पकाये गये, डकार आने पर अनेक प्रकार हींग आदि की सुगन्ध से युक्त, महकीले, भौंह के संकेत मात्र

रशनप्रकारैश्चित्रकर इव बहुमल्लकैः परिवृत आकण्ठमात्रमशित्वा चत्वरवृषभ इव मोदकखाद्यैः रोमन्थायमानो दिवसं क्षिपामि, स एवेदानीमहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य दरिद्रतया समं पारावतैः साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा चरित्वा तस्या-

---

सुगन्धैः = उद्गारकाले सुगन्धैः = मनोरथगन्धैः (डकार आने के समय मनोहर सुगन्ध वाले)। भ्रूक्षेपमात्रप्रतीष्टैः— भ्रूचालनमात्रेण प्रतीष्टैः = प्रस्तुतैः (भौंह चलाने मात्र—संकेत मात्र पर प्रस्तुत होने वाले) आनीतैः (लाये गये)। अन्तरान्तरपानीयैः—अन्तरेऽन्तरे = मध्येमध्ये, पानीयम् = पेयपदार्थम् येषु तैः (बीच बीच में पीने योग्य)। अशनप्रकारैः—अशनस्य = भोजनस्य प्रकारास्तैः (भोजन के तरीकों से)। चित्रकर इव = विचित्र इव (विचित्र सा)। बहुमल्लकैः = अनेकमल्लैः (अनेक पहलवानों द्वारा)। परिवृतः = आवृतः (घिरा हुआ)। आकण्ठमात्रम् = कण्ठपर्यन्तम् (गले तक)। अशित्वा = भुक्त्वा (खाकर)। चत्वर वृषब इव = आङ्गणाड्वान् इव (आंगन में बंधे रह कर खाने वाले बैल के समान)। मोदकखाद्यैः = मोदकाद्युत्तमपदार्थैः (लड्डु आदि उत्तम भोजनों से)। रोमन्थायमानः=पुलकायमानः (पुलकित)। चर्वितस्य = पुनश्चर्वणविधीयमानः (पघुराई करते हुए)। दिवसम् = कालम् (समय)। क्षिपामि = नयामि (बिता रहा हूँ)। स एव = इदृश एव (इसी प्रकार सुख में रहने वाला मैं)। इदानीम्=साम्प्रतम् (इस समय)। तत्रभवतः = श्रीमतः (श्रीमान्) चारुदत्तस्य (चारुदत्त की)। दरिद्रतया= विपन्नतया (गरीबी से)। पारावतैः समम्=कपोतसदृशम् (कबूतर की भांति) साधारणवृत्तिम् = सामान्यजीविकाम् (साधारण जीविका)। उपजीवन् = जीवनं धारयन् (जीवन धारण करता हुआ) इतस्ततः (इधर उधर)। चरित्वा चरित्वा = भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा (घूम घूम कर)। तस्य = चारुदत्तस्य

से प्राप्त होने वाले, भोजन के बीच बीच में पीने योग्य पदार्थों वाले, विविध प्रकार के भोजनों वाले, चित्रकार के समान, अनेक पहलवानों से घिसे रहने वाला, ठूंस ठूंसकर भोजन करके आँगन में आराम से बंधे बैल के समान पघुराने वाला, लड्डू आदि स्वादिष्ट पदार्थों से पुलकायमान शरीर वाला मैं (मैत्रेय) दिन काट रहा हूँ। वही मैं इस समय श्रीमान् चारुदत्त की दरिद्रता से कबूतर के समान साधारण जीवन बिताता हुआ, अन्यत्र घूम-घूमकर उन्हीं

वाममेव गच्छामि । अन्यच्चाश्चर्यम् । ममोदरमवस्थाविशेषं जानाति । अल्पेनापि तुष्यति । बहुकमप्योदनभरं भरिष्यति दीयमानम् । न याचते अदीयमानं, न प्रत्याचष्टे । न खल्वहमीदृशेन न सन्तुष्टः । तत् षष्ठीकृतदेवकार्यस्य तत्रभवतश्चारुदत्तस्य कारणाद् गृहीतानि सुमनसोऽन्तरीयवासश्च । यावदस्य पार्श्वपरिवर्ती

(उनके) । वासम् एव = निवासस्थानम् एव (निवास स्थान को ही) । गच्छामि = प्रयामि (जा रहा हूँ) । च=तथा । अन्यत्=अपरम् (दूसरा) । आश्चर्यम् = वैचित्र्यम् (आश्चर्य) । मम = मैत्रेयस्य (मेरा) । उदरम् = जठरम् (पेट) । अवस्थाविशेषम् = विशिष्टप्रकारकम् (विशेष प्रकार की दशा को) । जानाति = वेत्ति (जानता है) । यत् अल्पेनैव = स्वल्पेनैव (जो थोड़े से ही) । तुष्यति = सन्तुष्टं भवति (प्रसन्न हो जाता है) । बहुकम्=अधिकम् (बहुत) । दीयमानम् = प्रदीयमानम् (दिये जाने पर) अपि (भी) अधिकमपि (बहुत सा भी) । ओदनभरम् = पक्वान्नभारम् (पकवानों का बोझ) । भरिष्यति = पूरिष्यति (भर लेगा) । अदीयमानम् = प्रदानेन विना (विना दिये हुए) । न याचते = याचनां न करोति (मांगता नहीं है) । न प्रत्याचष्टे = न निन्दां करोति (न निन्दा करता है) । न खलु = न नूनम् (न तो निश्चय ही) अहम् (मैं—मैत्रेय) । सन्तुष्टः = प्रसन्नः (प्रसन्न हूँ) इति नास्ति (ऐसा नहीं है) । तत्=अतः । षष्ठीकृतदेवकार्यस्य षष्ठ्यां तिथौ विहित-देव कार्यस्य (छठीं तिथि पर देव कार्य करने वाले) । तत्रभवतः = श्रीमतः (श्रीमान्) चारुदत्तस्य (चारुदत्त के) । कारणात् = हेतोः (कारण से) । गृहीतानि = स्वीकृतानि (ग्रहण किये गये) सुमनसः = पुष्पस्य (फूलों की) । अन्तःपरिवाससः = अन्तरीयपरिधानम् (फूलों और वस्त्रों को) यावत् (जब तक) । अस्य = एतस्य (इनके) । पार्श्ववर्ती—पार्श्वे वर्तत इति पार्श्ववर्ती

(चारुदत्त) के निवास स्थान को जा रहा हूँ। एक और आश्चर्य भी है – मेरा पेट मेरी विशेष दशा को जानता है वह थोड़े से ही सन्तुष्ट हो जाता है। दिये जाने पर बहुत से पकवानों का ढेर भर लेता है, न दिये जाने पर मांगता नहीं है। न निन्दा ही करता है। मैं इस प्रकार से सन्तुष्ट नहीं हूँ। अतः मैं छठी तिथि पर देव कार्य करनेवाले आर्य चारुदत्त के निमित्त फूल तथा अन्तरीय वस्त्र लाया हूँ। तो फिर इनके समीप चला जाऊँ। यह चारुदत्त महाशय प्रातः-

भवामि । एप तत्रभवांश्चारुदत्तः प्रभातचन्द्र इव सकरुणप्रियदर्शनो यथाविभवेन गृहदैवतान्यर्चयन् इत एवागच्छति । यावदेनमुपसर्पामि] ।

(ततः प्रविशति वलिमुपहरन्नायको विदूपकश्चङ्गेरिकाहस्ता चेटी,च)

(निकटवर्ती) । भवामि (वनता हूँ) । प्रभातचन्द्र इव–प्रभातस्य = प्रातःकालस्य चन्द्रः इव विधुरिव (प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान कान्तिहीन) । सकरुणप्रियदर्शनः–करुणया सहितः सकरुणः, प्रियं दर्शनं यस्य सः प्रियदर्शनः, सकरुणश्च प्रियदर्शनश्च सकरुणप्रियदर्शनः=सदयचारुदर्शनः (दयालु तथा सुन्दर) । यथाविभवेन = विभवानुसारेण (वैभव के अनुसार) । गृहदैवतान् = गृहदेवान् (गृह देवताओं को) । अर्चयन्=पूजयन् (अर्चना करते हुए) । एनम् = एतम् (इनको) उपसर्पामि = पार्श्वं चलामि (समीप चलता हूँ) ।

टिप्पणी—निमन्त्रयतु–नि + √मन्त्र् + णिच् + लोट् प्र० पु०, ए० व० ।

व्यापृता—वि + आ + √पृ + तल् + टाप् ।

प्रत्याख्यात—प्रति + आ + √ख्या + तल् ।

उपजीवन्—उप + √जीव् + शतृ ।

विदूषक—कार्य, शरीर, वेशभूषा, भाषा इत्यादि से नायक को हसाने तथा प्रसन्न रखने वाला, हर समय सहयोग देने वाला नाटक का पात्र विदूषक कहलाता है । प्रभातचन्द्र—प्रातःकालीन चन्द्रमा क्षीण कान्त हो जाता है । यहाँ चारुदत्त के लिए विभवहीनता में इसका प्रयोग हुआ है ।

तत इति । वलिम् = पूजाद्रव्यम् (पूजा की सामग्री) । आहरन् = आनयन् (लाते हुए) । चङ्गेरिकाहस्ता—चङ्गेरिका हस्ते यस्याः सा = पुष्पधारणपात्रविशेषहस्ता (फूल रखने का विशेषपात्र—डलिया हाथ में लिए हुए) । चेटी = दासी ।

काल के चन्द्रमा के समान विभवहीन सदय तथा देखने में सुन्दर, वैभव के अनुसार गृह देवताओं की पूजा करते हुए इधर ही आ रहे हैं । तब तक इनके पास चलता हूँ ।

(तब पूजा सामग्री लिए हुए नायक (चारुदत्त) विदूपक (मैत्रेय) तथा हाथ में फूल व अन्तरीयवस्त्रवाली टोकरी लिए हुए चेटी का प्रवेश होता है) ।

नायकः—(दीर्घं निश्वस्य) भोः ! दारिद्र्यं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम् । कुतः,

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पः ।

दीर्घं निःश्वस्य = उच्चैः निश्वासं कृत्वा (लम्बी श्वास छोड़ कर)

दारिद्रयम्—दरिद्रस्य भावो दारिद्र्यम्=दरिद्रता खलु=नूनम् (निश्चय ही) । मनस्विनः = मनस्विपुरुषस्य (मनस्वी पुरुष का) सोच्छ्वासम्—ऊर्ध्वगतं श्वासमुच्छ्वासं, तेन साकम् सोच्छ्वासम् = उच्छ्वासयुक्तम् (उच्छ्वासयुक्त) मरणम्—निधनम् (मृत्यु) (अस्ति) ।

टिप्पणी—चङ्गेरिका—यह शब्द वात पित्त हरण करने वाली चक्रिका औषधि के लिए आता है । यथा—चङ्गेरी चुक्रिका दन्त शठाम्बष्ठाम्ललोणिका । (अमर कोष) परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में चङ्गेरिका हाथ में लिए चेटी का होना दिखलाया गया है जिसका अर्थ 'चारुदत्तस्य कारणाद् गृहीतानि सुमनोऽन्तरीयवासश्च' इस पूर्वोक्तभाव से फूलादि लिए होना प्रकट होता है । सम्भवतः 'चङ्गेरिका' शब्द के स्थान पर 'वङ्गेरिका' शब्द रहा होगा जिसका अर्थ टोकरी होता है क्योंकि दशकुमार चरित में वङ्गेरिका शब्द का प्रयोग किया गया है ।

यासामिति । यासाम्=एतासाम् । (जिनकी) मद् गृहदेहलीनाम्—मद् = मम गृहाणि = भवनानि तेषां देहल्यस्तासाम् = ममगेहद्वारपिण्डिकानाम् (मेरे घर की देहलियों की) । बलिः = पूजाद्रव्यम् (पूजा की वस्तु) । हंसैः मरालैः (हंसो द्वारा) । सारसगणैः च = सारसपक्षिसमुहैः च और (सारस पक्षियों के झुण्डों से) । विभक्त-पुष्पः—विभक्तानि=पृथक् कृतानि पुष्पाणि = कुसुमानि यस्य स तादृशः (पृथक् कृत फूलों वाली) । भवति = आसीत् (थी) तासु

नायक—(लम्बी निःश्वास लेकर) अरे ! दरिद्रता वास्तव में मनस्वी पुरुष की दीर्घोच्छ्वास सहित मृत्यु है ।

क्योंकि—मेरे घर की जिन देहलियों की बलि (पूजोपहार) पहले हंसो तथा सारसगणों द्वारा चुग कर समाप्त कर दी जाती थी उसी पहले की

तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥ २ ॥

विदूषकः—अलं दाणि भवं अदिमत्तं सन्तप्पिदुं पुरुसजोव्वणाणि विअ गिहजोव्वणाणि खु दसाविसेसं अणुहोन्ति। आसमुद्दआणविपण्ण-विभवस्स वहुलपक्खचन्दस्स जोह्लापरिक्खओ विअ भवदो एव्व रमणीओ अअं दरिद्दभावो [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्तुम्।

एव (उन्हीं)। पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु—पूर्वः वलिः = पूजोपहारः, तस्मात् रूढानि = उद्गतानि यवाङ्कुराणि यासु तासु (पहले पूजोपहार में विखेरने पर उगे जौं के अङ्कुरों वाली)। मद्गृहदेहलीषु (मेरे घर की देहलियों पर)। कीट-मुखावलीढः कीटानां मुखानि कीटमुखानि, तैरवलीढः = अर्द्धमुक्तः (कीड़ों के मुखों से अवखायी या चाटी हुई)। बीजाञ्जलिः—बीजानाम् = यवादीनाम् अञ्जलिः (जौ आदि बीजों की अंजलि)। पतति = च्युता भवति (पड़ी है)। वसन्ततिलकावृत्तम्। यथा—उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः ॥ २ ॥

टिप्पणी—द्वारवलि—देहली पर पूजोपचार विखेरना। मार्कण्डेयपुराण में द्वार पर वलि-प्रदान करने का वर्णन है—'दद्याद् धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च'। इससे द्वार पर वलि प्रदान करने की प्राचीन भारतीय-सभ्यता प्रकट होती है। आज भी पितृपक्ष में देहली पर लीप कर यव पुष्प आदि विखेरने की परिपाटी है। कदाचित् यह उपर्युक्त का ही प्रतीक है।

'विभक्तपुष्पः' के स्थान पर 'विभुक्तपूर्वः' पाठ समीचीन लगता है। मृच्छ-कटिक में इसके स्थान पर 'विलुप्तपूर्व' का प्रयोग किया गया है।

अलमिति। इदानीम् = साम्प्रतम् (अव)। भवान् = श्रीमांश्चारुदत्तः (आप) अतिमात्रम् = अत्यन्तम् (अत्यधिक) सन्तप्तुम् = सन्तापं कर्त्तुम् (सन्तप करने को)। अलम् = निषेधाव्ययम् (वस) अर्थात् सन्ताप करना

वलि में उगे हुए जौं के अंकुरों वाली गृह देहलियों पर कीड़ों के मुखों द्वारा अधखाई या चाटी गई यवाङ्कुर बीजों की अञ्जलि पड़ी हुई है ॥ २ ॥

विदूषक—अव आप को अधिक सन्ताप करना ठीक नहीं है। पुरुषों के

पुरुषयौवनानीव गृहयौवनानि खलु दशाविशेषमनुभवन्ति। आसमुद्रदानविपन्न-विभवस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य ज्योत्स्नापरिक्षय इव भवत एव रमणीयोऽयं दरिद्रभावः।]

नायकः—न खल्वहं नष्टां श्रियमनुशोचामि। गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसनं दारुणतरं मां प्रतिभाति। कुतः,

---

व्यर्थ है। पुरुषयौवनानीव—पुरुषाणां = जनानाम् यौवनानि = तारुण्यानि इव (पुरुषो के यौवन के समान)। गृहयौवनानि—गृहाणाम्=भवनानां यौवनानि= विभवान् (गृहवैभव)। खलु = नूनम् (निश्चय ही)। दशाविशेषम् = विशिष्टा-वस्थाम् (दशाविशेष को)। अनुभवन्ति=प्राप्नुवन्ति (प्राप्त करते हैं)। आसमुद्र-दानविपन्नविभवस्य—आसमुद्रम् = समुद्रपर्यन्तम् दानम्, तेन विपन्नो विभवो अस्य तस्य=समुद्रपर्यन्त-दानक्षीणार्थस्य (समुद्रपर्यन्त समस्तदान में दे डालने से क्षीण विभव वाले)। भवतः=चारुदत्तस्य (आप, चारुदत्त का)। अयम् = एषः (यह)। दरिद्रभावः = दारिद्रयम् (दरिद्रभाव)। बहुलपक्षचन्द्रस्य—बहुल-पक्षस्य = कृष्णपक्षस्य चन्द्रः—विधुः, तस्य (कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की)। ज्योत्स्नापरिक्षयः इव—ज्योत्स्नायाः = चन्द्रिकायाः परिक्षयः = नाशः, तद्वत् (ज्योत्सना की क्षीणता के समान)। रमणीयः=शोभनः (सुन्दर)। (अस्ति)। अहम् = चारुदत्तः (मैं) नष्टाम् = क्षीणाम् (क्षीण हुई) श्रियम् = शोभाम् लक्ष्मीं च (लक्ष्मी को)। न खलु शोचामि = नूनमेव नैव चिन्तयामि (निश्चित रूप से मैं नहीं सोच रहा हूँ)। गुणरसज्ञस्य-गुणश्च रसश्च गुणरसौ, जानातीति=गुणरसज्ञः, तस्य=अनुभूतविभवानन्दस्य (गुण और रसों का अनुभव किये हुए) पुरुषस्य=जनस्य (मनुष्य का)। तु (तो)। व्यसनम्=विपन्नत्वम्

यौवन के समान गृहवैभव भी वास्तव में विशेषदशा को प्राप्त करता है। समुद्र-पर्यन्त सब वैभव दान कर देने से निर्धन बने हुए आप का यह दरिद्रभाव उसी प्रकार सुन्दर लग रहा है जैसे कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा क्षीण ज्योति वाला अच्छा लगता है।

नायक—वास्तव में मैं सम्पत्ति का नष्ट होना नहीं सोच रहा हूँ। दान दाक्षिण्यादि गुण तथा कारुण्यादि रसों के ज्ञाता पुरुष का व्यसन (कष्ट) और भी अधिक दारुण प्रतीत होता है।

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ ३ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! समुद्दपट्टणसारभूदो तादिसो अत्थसञ्चओ कहिं गओ। [भो वयस्य ! समुद्रपत्तनसारभूतस्तादृशोऽर्थसञ्चयः क्व गतः]।

(कष्ट, विपन्नता)। दारुणतरम्—अतिशयेन दारुणमिति दारुणतरम् (अत्यन्त-दारुण)। प्रतिभाति = प्रतीयते। (मालूम पड़ता है)।

सुखमिति। हि = यतः (क्योंकि) सुखम् = आनन्दः (आनन्द)। दुःखानि = कष्टानि (दुःखों को)। अनुभूय = अनुभवं कृत्वा (अनुभव करके) यथा (जैसे)। अन्धकारात्=तमसः (अन्धकार से)। दीपदर्शनम् इव—दीपस्य दर्शनं दीपदर्शनम् = दीपावलोकनमिव (दीपक देखने के समान)। शोभते = शोभितं भवति (शोभित होता है)। यः तु = यो नरस्तु (परन्तु जो मनुष्य) सुखात् = आनन्दानुभवात् (आनन्दानुभव करके)। दरिद्रतां दशाम् = विपन्नस्थितिम् (विपन्नदशा को)। याति=गच्छति (जाता है)। सः (वह)। शरीरेण देहेन (देह से)। स्थितः = अवस्थितः (स्थित होता हुआ)। मृतः = मृतः प्रायः (मरा हुआ सा)। जीवति = जीवनं धारयति (जीवित रहता है)। अर्थात् सुखसम्पन्नावस्थातो यो नरो दरिद्रतां याति सः जीवन् सन्नपि मृत एवास्ति। वंशस्थवृत्तम् अत्र ॥ ३ ॥

भोः इति। समुद्रपत्तनसारभूतस्य—समुद्रः = सागरः च पत्तनम् = नगरञ्च, तयोः सारभूतः = तत्त्वभूतः, (समुद्र और नगर का सारभूत)।

क्योंकि—दुःखों का अनुभव करने के बाद सुख उसी प्रकार अच्छा लगता है जैसे अन्धकार से दीपक का प्रकाश शोभित होता है। जो मनुष्य सुख भोगने के बाद दरिद्र-दशा को प्राप्त होता है वह शरीर धारण किया हुआ भी मृतवत् जीवन बिताता है ॥ ३ ॥

विदूषकः—हे मित्र ! समुद्र तथा नगरों का सारभूत इस प्रकार का आपका विशाल धनसंग्रह कहां चला गया ?

नायकः—(निःश्वस्य) वयस्य ! यत्र गतानि मे भागधेयानि । पश्य–

क्षीणा ममार्थाः प्रणयिक्रियासु
विमानितं नैव परं स्मरामि ।
एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्यं
सत्त्वं सखे ! न क्षयमभ्युपैति ॥ ४ ॥

तथाविधः=तादृशो महान् (उतना सब) अर्थसञ्चयः—अर्थस्य=वित्तस्य सञ्चयः=संग्रहः (धन संग्रह) । गतः = कुत्र प्रयातः (कहाँ चला गया) ?

निःश्वस्य = निःश्वासं नीत्वा (लम्बी साँस लेकर) भागधेयानि=भाग्यानि (भाग्य) ।

क्षीणा इति । मम = चारुदत्तस्य (मेरे) । अर्थाः=विभवाः (वैभव, धन-सम्पत्ति) प्रणयिक्रियासु । प्रणयिनाम् = प्रेमभाजाम् क्रियासु = प्रार्थनादि-कार्येषु (प्रियजनों के प्रार्थनादि कार्यों में) ! क्षीणाः = नष्टाः (नष्ट हुए हैं) । परम् = किन्तु विमानितम् = अपमानितम् (अपमानित) नैव (नहीं) । स्मरामि = स्मृतिपथं नयामि । (याद कर रहा हूँ) । सखे = मित्र ! (मैत्रेय) एतत् तु = इदं तु (यह तो) प्रत्ययदत्तमूल्यम् । प्रत्ययेन = विश्वासेन यद् दानादिकर्मणा कल्याणं भवति तेन, दत्तम् = प्रदत्तम् मूल्यम् = धनम्, तत् ('दानादि कल्याण कर होता है' इस विश्वास से दिया गया धन) मे = मम (मेरा) । सत्वम् = महत्वम् (सत्व) । क्षयम् = क्षीणताम् (क्षय को) । न अभ्युपैति = न प्राप्नोति (प्राप्त नहीं होता है) । अत्रेन्द्रवज्रा वृत्तम् । तद्यथा स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौ गः ॥ ४ ॥

नायक—(निःश्वास लेकर) जहां मेरे भाग्य गये (वहीं धन भी चला गया) । देखो—

मेरी धनसम्पत्ति प्रेमी जनों के दानादि कार्यों में समाप्त हुई है परन्तु याचकों को निराश कर मैं अपने को अपमानित करने की बात नहीं सोचता हूँ । मित्र ! 'दानादि में व्यय किया गया धन श्रेयस्कर होता है' यही मेरा सत्व क्षीण नहीं होता है ॥ ४ ॥

(चिन्तां नाटयति)

विदूषकः—किं भवं अत्थविभवं चिन्तेदि। [किं भवानर्थविभवं चिन्तयति]।

नायकः—

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनश्रियो मे
यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति ॥ ५ ॥

किमिति। अर्थविभवम् = धनसम्पत्तिम् (धनसम्पत्ति को)। चिन्तयति = शोचति (सोच रहे हो)।

सत्यमिति। सत्यम्=तत्थ्यम् (सत्य है) धनविनाशगता—धनस्य विनाशः धनविनाशः, तत्र गता = वित्तनाशोत्पन्ना (धन विनाश से उत्पन्न)। मे=मम (मेरे)। विचिन्ता = विशिष्टा चिन्ता (विशेष चिन्ता) नास्ति = नैव वर्तते (नहीं है)। हि = यतः धनानि (धन)। भाग्यक्रमेण = भाग्यानुसारेण (भाग्य के अनुसार)। भवन्ति = जायन्ते (होते हैं)। मां तु = चारुदत्तं तु (मुझे तो)। एतत् = इदम् (यह) (कष्टम्)। दहति=ज्वलयति सन्तापयति वा (पीड़ित करता है) यत् (कि) नष्टधनश्रियः—नष्टा धनश्रीः यस्य तस्य (धनश्री नष्ट हुए)। मे = मम (मेरे)। सौहृदानि = मित्राणि (मित्र) सुजने = सज्जने (मेरे जैसे सत्पुरुष में)। शिथिलीभवन्ति = स्नेहं शिथिलयन्ति (स्नेह शिथिल कर देते हैं)। वसन्ततिलकावृत्तम्। तद्यथा—उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः ॥ ५ ॥

(चिन्ता का अभिनय करता है)।

विदूषक—क्या आप धन-विभव की चिन्ता कर रहे हैं ?

नायक—यह सच है कि मुझे धन के विनाश की चिन्ता नहीं है क्योंकि धन भाग्यानुसार पुनः हो जाता है। मुझे तो यह बात पीड़ित कर रही है कि धन नष्ट हो जाने पर मेरे मित्रजन भी मेरे जैसे सुजन में अपना स्नेह शिथिल कर देते हैं ॥ ५ ॥

अपि च—

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥ ६ ॥

दारिद्र्येति। दारिद्र्यात् = धननाशात् (दरिद्रता से)। पुरुषस्य = नरस्य (मनुष्य को)। बान्धवजनः = कुटुम्बवर्गः (कुटुम्ब समुदाय) (सगोत्रबान्धवज्ञातिः बन्धुः स्वजनः समः। इत्यमरः)। वाक्ये = कथने (कहने में) न संतिष्ठते न विश्वसिति (विश्वास नहीं करता है)। सत्वम्=बलम् (बल-तत्त्व) हास्यम् उपहासताम् (उपहास को)। उपैति = उपयाति (चला जाता है)। शीलशशिनः शीलमेव शशी, तस्य=आचारचन्द्रस्य (आचरणरूपी चन्द्रमा की)। कान्तिः = प्रकाशः (कान्ति)। परिम्लायते = मलिना जायते (मलिन पड़ जाती है)। निर्वैराः निर्गतं वैरं येभ्यस्ते = शत्रुभावरहिताः (शत्रु भाव से रहित व्यक्ति)। सुहृदः = सज्जनाः सखायो वा (सज्जन, मित्र)। विमुखीभवन्ति = प्रतिकूलाः संजायन्ते (विपरीत हो जाते हैं।) आपदः = विपत्तयः (विपत्तियाँ)। स्फीताः = सघनाः (घनी) भवन्ति = जायन्ते (हो जाती हैं, बढ़ जाती हैं)। च = तथा। यत् पापं कर्म—यत् चौर्यादिजुगुप्सितम् (चोरी आदि जो नीच कर्म)। परैः = अन्यैः (दूसरों के द्वारा) कृतम् = विहितम् (किया गया)। तत् कर्म = तन्निन्दनीयं कर्म (वह पाप कर्म)। तस्य = दारिद्र्योपेतस्य (उस निर्धन व्यक्ति के)। सम्भाव्यते = अनुमीयते (होने की सम्भावना की जाती है) शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तद्यथा—
सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥

और भी—दरिद्रता से मनुष्य का बन्धुवर्ग भी विश्वास नहीं करता है। बल का उपहास होता है, चरित्र रूपी चन्द्रमा की कान्ति मलिन पड़ जाती है। वैरहीन (प्रिय) मित्र विमुख हो जाते हैं, आपत्तियाँ घनी हो जाती हैं तथा जो पाप कर्म दूसरे का किया होता है उसका अनुमान भी लोग निर्धन-पुरुष के लिए ही करने लगते है ॥ ६ ॥

विदूषक:—एदे दाणि दासीएपुत्ता अत्थवावारा गोवदारआ विअ मसअभीदा गिहादो णिग्गच्छन्ति। धणविणासदुक्खस्स उण चिन्तिअमाणस्य वसन्ते वुड्ढस्य सरत्थम्बस्स विअ अङ्कुरङ्कुरा उब्भमन्ति। ता अलं भवदो सन्दावेण। [एत इदानीं दास्याः पुत्रा अर्थव्यापारा गोपदारका इव मशकभीता गृहाद् निर्गच्छन्ति। धनविनाशदुःखस्य पुनश्चिन्त्यमानस्य वसन्ते वृद्धस्य शरस्तम्बस्येवाऽङ्कुराङ्कुरा उद्भ्रमन्ति। तदलं भवतः सन्तापेन।]

एत इति। इदानीम् = साम्प्रतम् (इस समय)। एते = इमे (ये) दास्याः पुत्राः = नीचाः (नालायक, ससुरे—एक प्रकार की गाली)। अर्थव्यापाराः = विभवव्यापाराः (धन वैभव आदि) मशकभीताः—मशकैः = मत्सरैः, भीताः = त्रस्ताः (मच्छरों से डरे हुए)। गोपालदारका इव—गाः पायलन्तीति गोपालास्तेषां दारकाः = गोरक्षपुत्राः (ग्वालों के लड़के)। इव = समान। गेहात् = गृहात् (घर से)। निर्गच्छन्ति=निःसरन्ति (निकलते हैं)। पुनः = भूयः (फिर) धनविनाशदुःखस्य—धनस्य विनाशस्तस्य यद्दुःखं तस्य = वित्तनाशदुःखस्य (धन नाश होने के दुःख का)। चिन्त्यमानस्य = चिन्ताकारकस्य (चिन्ता करने वाले के)। वसन्ते = ऋतुराजकाले (वसन्त में)। वृद्धस्य = सुपक्वस्य (पके हुए)। शरस्तम्बस्य इव = शरगुच्छस्येव (सरकण्डे के समान, या खरपतवार के गुच्छों जैसे)। अङ्कुराङ्कुराः = अङ्कुरैः अङ्कुराः = यथा वसन्ते शरपतस्याङ्कुरेष्वप्यङ्कुरा निर्गच्छन्ति तथैव धनहीनतया चिन्तास्वपि चिन्ता उद्गच्छन्ति इत्याशयः। (अंकुरों से अंकुर गुच्छों में)। तद् = अतः। भवतः सन्तापेनालम् = सन्तापं मा करोतु भवान् (आप सन्ताप न करें)।

विदूषक—इस समय यह ससुरे अर्थव्यापार गडरियों के बालक जिस प्रकार (मच्छरों से डर कर घर से निकल पड़ते है, उसी प्रकार निकल पड़े हैं। चिन्त्यमान, धन विनाश के दुःख की चिन्ताएँ एक पर एक उसी प्रकार उमड़ पड़ी हैं जैसे वसन्त में खरपतवार के अङ्कुर में से अङ्कुरों के गुच्छे निकल पड़ते हैं। अतः आपको सन्ताप नहीं करना चाहिए।

नायकः—वयस्य ! किमर्थं सन्तापं करिष्ये। किञ्चाहं दरिद्रः, यस्य मम,

विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान्।
सत्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥ ७ ॥

(ततः प्रविशति गणिका सम्भ्रान्ता विटेन शकारेण चानुगम्यमाना।)

शकारः—चिट्ठ चिट्ठ वशन्तशेणिए ! चिट्ठ,

यस्येति। यस्य मम = चारुदत्तस्य (जिस मुझ चारुदत्त की)। भार्या = पत्नी (स्त्री)। विभवानुवशा = प्रचुरधनवशात् सर्वथा वशीभूता (अपार धन होने के कारण सब प्रकार वशवर्तिनी), भवान् = मैत्रेयः (आप) समदुःख-सुखः—समं दुःखं च सुखं च यस्य सः = दुःखसुखयोः समस्वभावः (सुख और दुःख में सदा समान रहने वाले हैं)। च = तथा। सत्वम् = बलम् (बल)। परिभ्रष्टम् = न स्खलितं जातम् (और बल भ्रष्ट नहीं हुआ है)। यत् (जो कि)। दरिद्रेषु = निर्धनेषु (निर्धन लोगों में)। दुर्लभम्=दुष्प्राप्यम् (भवति)। अनुष्टुब्वृत्तम्। तद्यथा—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्। द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ ७ ॥

तत इति। ततः = तदनन्तर (तत्पश्चात्। विटेन = लम्पटेन कामुकेन (लम्पट कामुक पुरुषद्वारा) सम्भ्रान्ता—भ्रमयुता (भौचक्की)। शकारेण = राजश्यालकेन (राजश्यालक शकार के द्वारा)। च = तथा। अनुगम्यमाना = अनुगमनकर्त्री (पीछा की जाती हुई।) गणिका=वेश्या, (वसन्त सेना)। प्रविशति = प्रवेशं करोति (प्रवेश करती है।)

नायक—मित्र ! मैं सन्ताप क्यों करूँ। क्या मैं दरिद्री हूँ।

जिस मुझ चारुदत्त की पत्नी वैभव से वशीभूत है तथा दुःख और सुख में समान रहने वाले आप हैं तथा जिसका बल भी परिभ्रष्ट नहीं हुआ है जो कि निर्धन पुरुषों में दुर्लभ होता है ॥ ७ ॥

(तब विट तथा शकार के द्वार पीछा की जाती हुई व्याकुल गणिका वसन्तसेना प्रवेश करती है)।

शकार—ठहरो ठहरो, वसन्तसेने ! ठहरो।

किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती
शाहु प्पशीद ण मलीअसि चिट्ठ दाव ।
कामेण शम्पदि हि उज्झइ मे शलीलं
अङ्गालमज्झपडिदे विअ चम्मखण्डे ॥ ८ ॥

[तिष्ठ तिष्ठ वसन्तसेने ! तिष्ठ,

किं यासि धावसि प्रधावसि प्रस्खलन्ती!
साधु प्रसीद न मार्यसे तिष्ठ तावत् ।
कामेन सम्प्रति हि दह्यते मे शरीर-
मङ्गारमध्यपतितमिव चर्मखण्डम् ॥ ८ ॥]

विटः—वसन्तसेने !

प्रस्खलन्ती = स्खलितपदा (लड़खड़ाती हुई)। किम् = किमर्थम् (किस लिए)। यासि = गच्छसि (जा रही हो)। धावसि, प्रधावसि = वेगेन चलसि (तेजी से दौड़ रही हो) तावत् (जरा)। तिष्ठ = स्थिरा भव (रुक जाओ) साधु=शाबाश। प्रसीद=प्रसन्ना भव (प्रसन्न हो जाओ)। न मार्यसे= मया न ताड्यसे (मैं तुम्हें मारूँगा नहीं) हि=यतः (क्योंकि)। सम्प्रति = साम्प्रतम् (इस समय)। कामेन = स्मरेण (मदन के द्वारा) (कामः पञ्चशरः स्मरः इत्यमरः)। मे = मम शकारस्य (मुझ शकार का)। शरीरम् = कायः (देह) अङ्गारमध्यपतितम्—अङ्गारस्य = अग्नेः मध्ये = अन्तरे, पतितम् = स्खलितम् तत्, (अङ्गार के बीच में पड़े) चर्मखण्डम् इव = त्वक् खण्डसमम् (चर्मखण्ड के समान)। दह्यते = सन्तप्यते (जला जा रहा है।) अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। वसन्त-तिलका-वृत्तम्। यथा—उक्ता वसन्त-तिलका तभजाजगौ गः ॥ ८ ॥

तुम लड़खड़ाती हुई क्यों जा रही हो, तेज दौड़ क्यों रही हो। शाबाश ! प्रसन्न हो जाओ, मैं मारूँगा नहीं। क्योंकि इस समय मेरा शरीर कामदेव से उसी प्रकार जल रहा है जैसे अङ्गारों के बीच में पड़ा हुआ चर्मखण्ड जलता है ॥ ८ ॥

विट—वसन्तसेने !

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि-
र्व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव यासि ॥ ९ ॥

शकारः—भावे ! एशा गच्छइ वशन्तशेणिआ,
[भाव, एषा गच्छति वसन्तसेना]।

किमिति। भयेन = त्रासेन (भय से) परिवर्तितसौकुमार्या—परिवर्तितम् सौकुमार्यम् यया सा = द्रुतगमनेन परित्यक्तसुकुमारगतिः (तेज चलने के कारण कोमल—मन्थर गति का परित्याग किये हुए) । नृत्तोपदेशविशदौ–नृत्तस्य = भावाश्रयस्य गात्रविक्षेपस्य उपदेशः = शिक्षणम्, तत्र विशदौ = अतिकुशलौ (भवेद् भावाश्रयं नृत्तं नृत्यं ताललयाश्रितम्। (दशरूपक) (नृत्य शिक्षा में अत्यन्त कुशल) । चरणौ = पादौ (दोनों पाँव)। क्षिपन्ती = पातयन्ती (डालती हुई) । उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टिः—उद्विग्नः = व्यग्रः अतएव चञ्चलः कटाक्षः = चपलापाङ्गदृष्टिः, इत्युद्विग्नचञ्चलकटाक्षः = तेन निविष्टा दृष्टिर्यस्याः सा, तादृशी (व्याकुल चञ्चल कटाक्ष से टकटकी बाँधे हुए जैसी) व्याघ्रानुसारचकिता—व्याघ्रस्य यदनुसारम् = अनुगमनम् तेन चकिता (व्याघ्र द्वारा पीछा किये जाने के कारण चकित) । हरिणी इव = मृगीव (हरिणी के समान) । त्वम्=वसन्तसेना (तुम) किम्=किमर्थम् (किस लिए) । यासि = गच्छसि (जा रही हो ।) अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ९ ॥

टिप्पणी—विटन–ाटक में नीच पुरुषपात्र होता है ' यह प्रायः नायक अथवा नायिका को परेशान करने का प्रयास करता है।

भावेति। भावे—भावयति = चिन्तयति गूढतत्त्वमितिभावस्तत्सम्बुद्धौ हे भावे ! = हे विद्वन् ! (हे भाव !)

भय से तेज भागने के कारण कोमल मन्थर गति को छोड़ देने वाली, नृत्तशिक्षण में कुशल दोनों पावों को पटकती हुई व्याकुल चञ्चल कटाक्षों से टकटकी बाँधे हुए, व्याघ्र द्वारा अनुसरण करने से चकित बनी हुई हरिणी की भाँति तुम कहाँ जा रही हो ॥ ९ ॥

शकार—हे भाव ! यह वसन्त सेना जा रही है :—

दुवेहि अम्हेहि अणुबन्धअन्ती जहा शिगाली विअ कुक्कुलेहि।
शणूपुला मेहलणादहाशा शवेट्ठणं मे हलअं हलन्ती ॥ १० ॥
[द्वाभ्यामावाभ्यामनुवध्यमाना यथा शृगालीव कुक्कुराभ्याम्।
सनूपुरा मेखलानादहासा सवेष्टनं मे हृदयं हरन्ती ॥१०॥]
विटः—वसन्तसेने !

किं त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती
नागीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता।

यथा = येन प्रकारेण (जैसे)। द्वाभ्याम् कुक्कुराभ्याम् = युगलश्वभ्याम् (दो कुत्तों के द्वारा)। अनुवध्यमाना = अनुगम्यमाना (पीछा की गई)। शृगाली इव = जम्बुकी इव (सियारिन की भांति)। द्वाभ्याम् = विटशकाराभ्याम् (हम विट तथा शकार दोनों द्वारा)। अनुवध्यमाना = अनुगम्यमाना (पीछा की जाती हुई)। सनूपुरा = नूपुरैः सहिता (नूपुरों से युक्त)। मेखलानादहासा—मेखला = काञ्ची, तस्याः नादः = शब्दः, स एव हासो यस्याः सा (करधनी की आवाजरूपी हंसी वाली) (वसन्त सेना)। मे = मम (मेरा)। सवेष्टनम् = आवरणसहितम् (धैर्य आदि पूर्ण)। हृदयम्=चित्तम् (हृदय को)। हरन्ती = आकर्षन्ती (आकर्षण करती हुई)। गच्छतीति। उपेन्द्रवज्रावृत्तम्। यथा—उपेन्द्रवज्रा जसजस्ततो गौ) ॥ १० ॥

पदादिति। अयि वसन्तसेने ! पदात् = प्रथमपदात् (एक कदम से)। पदशतानि—पदानि च तानि शतानि, पदशतानि=शतसंख्यकानि पदानि (सैकड़ों कदम) निवेशयन्ती = निक्षिपन्ती (डालती हुई)। त्वम्=वसन्तसेना (तुम)। पतगेन्द्रभयाभिभूता—पतगानाम् = खगानाम् इन्द्रः = स्वामी = गरुडः तस्माद् भयम् तेनाभिभूता = आक्रान्ता (पक्षिराज गरुड के भय से आक्रान्त)। नागी इव = उरगी इव (सापिन की भांति)। किम् यासि=किमर्थं गच्छसि (क्यों

दो कुत्तों के द्वारा पीछा की जाती हुई शृगाली की भाँति हम दोनों द्वारा पीछा की गई, नूपुर पहने हुए तथा करधनी की ध्वनि रूपी हंसी से युक्त (यह वसन्त सेना) मेरे धैर्यादि गुणों से आच्छादित हृदय को अपहरण करती हुई जा रही है ॥ १० ॥

विट—वसन्तसेने ! एक कदम में सौ सौ कदम डालती हुई तुम गरुड के

वेगादहं प्रचलितः पवनोपमेयः
किं त्वां ग्रहीतुमथवा न हि मेऽस्ति शक्तिः ॥ ११ ॥

गणिका—(समन्तादवलोक्य) पल्लवअ ! पल्लवअ ! परहुदिए ! परहुदिए ! महुअरअ ! महुअरअ ! सारिए ! सारिए ! हद्धि, णट्ठो मे परिजणो । एत्थ सअं एव अप्पा रक्खिदव्वो । [पल्लवक ! पल्लवक ! परभृतिके ! परभृतिके ! मधुकरक ! मधुकरक ! शारिके ! शारिके ! । हा धिक्, नष्टो मे परिजनः । अत्र स्वयमेवात्मा रक्षितव्यः ।]

शकारः—विलव विलव णाए ! विलव पल्लवं वा, परहुदिअं वा, महुअरं वा, शालिअं वा, शव्वं वशन्तमाशं वा । के के तुमं परित्तअशि ।

जा रही हो) । पवनोपमेयः—उपमातुं योग्य उपमेयः, पवनेन उपमेयः यः सः इति पवनोपमेयः = मरुदिव वेगवान् (वायु के समान वेगवान्) । प्रचलितः = गच्छन् (चलता हुआ) । अहम्=विटः (मैं, विट) । वेगात् = जवात् (तेजी से) । त्वाम् = वसन्तसेनाम् (तुमको) । गृहीतुम् = हस्ते कर्त्तुम् (पकड़ने को) । किम् समर्थः (क्या समर्थ हूँ) । अथवा हि = यतः (क्योंकि) । मे = मम (मेरी) । शक्तिः = सामर्थ्यम् (वल) (त्वाम् गृहीतुम्) । न अस्ति = न वर्तते (नहीं है) । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ११ ॥

टिप्पणी—निवेशयन्ती—नि + √विश् + णिच् + शतृ + ङीष् ।

समन्तादिति । समन्तात् = परितः (चारों ओर) । अवलोक्य = दृष्ट्वा (देख कर) । पल्लवक ! पल्लव इव पल्लवकः, तत्सम्बुद्धौ हे पल्लवक ! (अरे पल्लवक) । परिजनः = अनुचरः (नौकर) । रक्षितव्यः = गोपायितव्यः

समान द्रुतगति से भयभीत सर्पिणी की भाँति क्यों जा रही हो । पवन के समान तेज चलता हुआ मैं विट क्या तुम्हे पकड़ने मे समर्थ हूँ अथवा (क्योंकि) तुम्हें पकडने मे मेरी शक्ति नही है ॥ ११ ॥

गणिका (चारों ओर देख कर) पल्लवक ! पल्लवक ! परभृतिके ! परभृतिके ! मधुकरक ! मधुकरक ! शारिके ! शारिके ! हाय धिक्कार है । मेरा सेवक नष्ट हो गया । अब स्वयं मुझे अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

किं वाशुदेवे शवपट्टणेशे कुन्तीशुदे वा जणमेजए वा ।
अहं तुमं गह्णिअ केशहत्थे दुःशाशले शीदमिवाहलामि ॥ १२ ॥

[विलप विलप ज्ञाते ! विलप पल्लवं वा, परभृतिकां वा, मधुकरं वा, शारिकां वा, सर्वं वसन्तमासं वा । कः कस्त्वां परित्रास्यते ।

किं वासुदेवः शवपत्तनेशः कुन्तीसुतो वा जनमेजयो वा ।
अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनः सीतामिवाहरामि ॥ १२ ॥

(रक्षा करनी चाहिए) । विलप=विलापं कुरु (रोओ, विलाप करो) जाते ! हे स्त्रि ! (हे स्त्री) । परित्रास्यसे=रक्ष्यसे (बचायी जाओगी) ।

टिप्पणी—रक्षितव्यः—√रक्ष्+तव्यत् ।

परित्रास्यसे—परि+√त्रा+लृट् म० पु० ए० व० ।

किमिति । किम् (क्या) । वासुदेवः—वसुदेवस्यापत्यं पुमान् वासुदेवः = जनार्दनः (वासुदेव), शवपत्तनेशः–शवानां पत्तनम्=नगरम्, तस्येशः=यमराजः (यमराज) । वा = अथवा । कुन्तीसुतः = अर्जुनः (कुन्तीपुत्र अर्जुन) । वा जनमेजयः=परीक्षितपुत्रः (परीक्षित पुत्र जनमेजय) (कः त्वां परित्रास्यते) । अहम् = शकारः (मैं—शकार) त्वाम् = वसन्तसेनाम् (तुमको) केशहस्ते कचहस्ते (बालों को हाथ में) । गृहीत्वा = आदाय (पकड़ कर) । दुःशासन इव=दुर्योधनभ्रातृसदृशः (दुःशासन के समान) सीताम् जानकीम् (सीता को) । आहरामि = अपहरामि (अपहरण कर रहा हूँ) । इन्द्रवज्रावृतम् । तद्यथा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौगाः ॥ १२ ॥

शकार—विलाप करो, विलाप करो । हे स्त्री ! पल्लवक को या परभृतिक को या मधुकर को या सारिका को या इकट्ठे वसन्तमास को भी पुकार लो । कौन कौन तुम्हारी रक्षा करेंगे ।

वासुदेव कृष्ण, यमराज अथवा कुन्तीपुत्र अर्जुन या जनमेजय कौन तुम्हारी रक्षा करेगा ? मैं तुम्हे बाल पकड़कर दुःशासन के द्वारा पकड़ी गई सीता के समान खींच कर लाता हूँ ॥ १२ ॥

विटः—वसन्तसेने ! सर्वत्र भयानभिज्ञहृदयं मां कुरु । पश्य,

परिचिततिमिरा मे शीलदोषेण रात्रि-
बहुलतिमिरकालास्तीर्णपूर्वा विघट्टाः ।
युवतिजनसमक्षं काममेतन्न वाच्यं
विपणिषु हतशेषा रक्षिणः साक्षिणो मे ॥ १३ ॥

टिप्पणी—गृहीत्वा–√ग्रह् + क्त्वाच् ।

आहरामि—आ + √हृ + लट् उ० पु० ए० व० । यहाँ पर शकार (राजश्यालक का अपलाप है क्योंकि वह बक रहा है कि दुःशासनः सीतामिवाहरामि में द्रौपदीमिव न कहकर सीतामिव कह दिया है ।

वसन्तेति । भयानभिज्ञहृदयम्—नाभिज्ञमनभिज्ञम्, भयेन अनभिज्ञम् = भयशून्यम् (भय से अनभिज्ञ) ।

शीलदोषेण—शीलस्य दोषस्तेन=स्वभावदोषेण (स्वभाव दोष के कारण) । मे मम विटस्य (मुझ विट की) । रात्रिः=निशा (रात) परिचिततिमिरा—परिचितं तिमिरं यस्यां सा = परिचितान्धकारा (परिचित अन्धकार वाली) (आसीत्) बहुलतिमिरकाला—बहुलस्य=कृष्णपक्षस्य तिमिरकालाः=अन्धकारसमयाः (अन्धकार वाली) विघट्टाः मार्गाः (गलियां) । तीर्णपूर्वाः=तीर्णाः पूर्वं ये ते=पूर्वभ्रान्ताः (पहले की घुमी हुई) । एतत्=इदम् कर्म (यह कार्य) । युवतिजनसमक्षम्—युवतिजनानां समक्षम् = तरुणीजनसम्मुखम् (युवतियों के सामने) । कामम् = इष्टम् (अभीष्ट) । न वाच्यम् = न कथनीयम् (नहीं कहना चाहिए) । विपणिषु=आपणेषु (दूकानों या बाजारों में) । हतशेषाः—हतेभ्यः शेषाः = हतशेषाः (मरने से बचे हुए) । रक्षिणः = रक्षापुरुषाः (रखवारे-सिपाही) । मे = मम (मेरे) । साक्षिणः = साक्षीभूताः (गवाह) (सन्ति) । मालिनीवृत्तम् । तद्यथा—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै ॥१३॥

विट—वसन्तसेने ! हर समय भय से अनभिज्ञ मुझे न करो । देखो—

स्वभाव दोष के कारण मेरे लिए अंधेरी रातों की पहिचान है । कृष्ण पक्ष के अन्धकार पूर्ण मार्ग (गलियाँ) मैंने पहले ही पार कर लिये है । युवतियों के सामने यह कहना ठीक नहीं है । बाजारों या दूकानों की गलियों में मारने से बचे हुए पहरेदार मेरे साक्षी है ॥ १३ ॥

गणिका—(आत्मगतम्) हं इदाणि संसइदा संवुत्ता, जो अप्पगुणाणि सअं एव्व मन्तेदि। कहं एदे अकय्य ण करिस्सन्ति। [अहम् इदानीं संशयिता संवृत्ता, य आत्मगुणान् स्वयमेव मन्त्रयते। कथमेतेऽकार्यं न करिष्यन्ति]।

विटः—भवति, क्रियतामस्माकमनुनयप्रग्रहः। पश्य,

जनयति खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः
किमिव च रुपितानां दुष्करं मद्विधानाम्।
अनुनयति समर्थः खड्गदीर्घः करोऽयं

आत्मेति। आत्मगतम् = स्वगतम् (मन में)। संशयिता = संशययुता (शंकालु)। संवृत्ता = संजाता (हो गई हूँ)। आत्मगुणान्=स्वगुणान् (अपने गुणों को)। मन्त्रयते = कथयति (स्वयं कह रहा है)। एते = इमे जनाः (ये लोग)। अकार्यम् = अनिष्टम् (अपकार)।

अनुनयप्रग्रहः—अनुनयस्य प्रग्रहः=विनयग्रहणम् (अनुनय का ग्रहण करना)।

टिप्पणी—आत्मगतम्—नाटक में जो बात सुनाई नहीं पड़ती है उसे 'आत्मगतम्' कहते हैं—अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिहात्मगतम् मतम्।

जनयतीति। भिद्यमानः = भग्नः (टूटा हुआ)। प्रश्रयः = अनुनयः (अनुनय)। खलु = नूनम् (निश्चय ही)। रोषम् = क्रोधम् (क्रोध को)। जनयति = उत्पादयति (उत्पन्न करता है)। च = तथा। मद्विधानाम् = मादृशानाम् (मेरे जैसे लोगों का) रुपितानाम्=क्रुद्धजनानाम् (क्रुद्ध लोगों का)। दुष्करम् किमिव = कठिनमेव किम् (कठिन ही क्या है)? अयम् = एषः (यह)। समर्थः = सशक्तः (समर्थ)। खड्गदीर्घः—खड्गेन = असिना दीर्घः = विस्तृतः (तलवार पकड़ने के कारण बढ़ा हुआ)। करः = हस्तः (हाथ)। अनुनयति = अनुनयं करोति (विनती कर रहा है)। माम् =

गणिका—(मन ही मन) इस समय से संशय में पड़ी हूँ। यह अपने मुह मियाँ मिट्ठ बन रहा है। क्या वे अकार्य (अनिष्ट) नहीं करेंगे!

विट—देवीजी ! हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए।

देखो ! भंग हुआ अनुनय क्रोध उत्पन्न कर देता है। मेरे जैसे क्रुद्ध पुरुषों के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं हैं। यह समर्थ, तल्वार पकड़े रहने के कारण बढ़ा हुआ मेरा हाथ अनुनय (खुशामद) कर रहा है। (अतः) मेरी तथा

युवतिवधघृणाया मां शरीरं च रक्ष ॥ १४ ॥

गणिका—(आत्मगतम्) अणुणओ वि खु से भाएदि । [अनुनयोऽपि खल्वस्य भाययति]।

शकारः—वशन्तशेणिए । शुट्ठु भावे भणादि । बहुण्णिअदि खु दाव बलिअजणदुल्लहे अणुणए ! पेक्ख वाशु !

अशि क्खु तिक्खे शिहिगीवमेअए
खिवेमि शीशं तव मालए हवा ।
अलं तु अम्हालिशकाणि लोशिअ
मडे खु जो होइ ण णाम जीवइ ॥ १५ ॥

[वसन्तसेने ! सुष्ठु भावो भणति । बहु मान्यते खलु तावद् बलवज्जन-दुर्लभोऽनुनयः । पश्य वासु !

असिः खलु तीक्ष्णः शिखिग्रीवामेचकः क्षिपामि शीर्षं तव मारयेऽथवा ।
अलं त्वस्मादृशकान् रोषयित्वा मृतः खलु यो भवति न नाम जीवति ॥१५॥]

विटम् (मुझ विट को) । च = तथा शरीरम् = देहम् (शरीर को) । युवति-वधघृणायाः युवत्याः वधः युवतिवधः, तत्र या घृणा, तस्याः = तरुणीहनन-जुगुप्सायाः (युवती की हत्या रूपी घृणा से) । रक्ष = पाहि (बचाओ) । मालिनीवृत्तम् ॥ १४ ॥

आत्मेति । भाययति = भयमुत्पादयति (भय उत्पन्नकर रहा है) ।

सुष्ठु = शोभनम् (अच्छा) । भणति=कथयति (कहता है) । बलवज्जनः—बलवांश्चासौ जनः बलवज्जनः, तस्माद् दुर्लभः = बलशालिदुष्प्राप्यः (बलवान् व्यक्ति से दुर्लभ) । अनुनयः विनयः (अनुनय—खुशामद) खलुतावत् = नूनमेव (निःसन्देह ही) । बहुमन्यते = बहुपूज्यते (बहुमान्य होता है) ।

असिरिति । शिखिग्रीवामेचकः=शिखिनः ग्रीवा शिखिग्रीवा, तद्वन्मेचकः=

मेरे शरीर की रक्षा करो—बचाओ ॥ १४ ॥

गणिका—(मन ही मन) इसका तो अनुनय भी भय उत्पन्न कर रहा है ।

शकार—वसन्तसेने ! यह विट महाशय ठीक कह रहे हैं । वास्तव में बलवान् पुरुष का दुर्लभ अनुनय बहुमान्य होता है । देखो वासु—

मयूरकण्ठ के समान नीली पैनी तलवार है जिससे मैं तुम्हारा शिर गिराये

गणिका—अय्य ! कुलउत्तजणस्स सीलपरितोसोवजीविणी गणिआ खु अहं। [आर्य ! कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम्]।

विटः—अतः खलु प्रार्थ्यसे।

गणिका—अय्य ! इमादो जणादो किं इच्छीअदि सरीरं वा आदु अलङ्कारो वा। [आर्य ! अस्माज्जनात् किमिष्यते शरीरं वाथवालङ्कारो वा]।

मयूरकण्ठश्यामः (मोर की ग्रीवा के समान श्यामल)। तीक्ष्णः = खरः (पैना)। असिः = खड्गः (खड्ग)। तव = वसन्तसेनायाः (तेरे) शीर्षम्= शिरः (शिर को) क्षिपामि = पातयामि (गिराये देता हूँ)। अथवा = वा (या) (त्वाम्) मारये = हनानि (मार डालूँ) तु अस्मादृशकान् = मद्विधान् (मेरे जैसे लोगों को)। रोपयित्वा = कोपयित्वा (क्रुद्ध करके)। अलम् = व्यर्थम् (वेकार है)। खलु = नूनम् (निश्चय ही) यः मृतः (भवति) = मृत्युं यातः (भवति)। (जो मरा होता है)। (सः) न = नैव (नहीं) जीवति नाम = सजीवो भवतीति (जीवित होता है)। वंशस्थवृत्तम्। तद्यथा-जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥ १५ ॥

आर्य इति। कुलपुत्रजनस्य = कुलपुत्रपुरुषस्य (कुलवान् पुरुष की)। शीलपरितोषोपजीविनी—शीलेन परितोषः तेन जीवतीति शीलपरितोषणी = आचरणसन्तोषिणी (आचरणरूपी परितोष पर जीवित रहने वाली)। गणिका= वाराङ्गना (वेश्या) प्रार्थ्यसे = निवेद्यसे (तुम्हारी प्रार्थना की जा रही है)।

अस्मात् जनात् = एतस्या गणिकायाः (मुझ इस गणिका से)। इष्यते = वांछसि (चाहते हो) शरीरम् = भोगविलासार्थं देहम् (शरीर को भोग विलास के लिए) वा = अथवा, अलङ्कारम् = आभूषणम् (आभूषण) ?

देता हूँ। अथवा मारे डालता हूँ। मेरे जैसे लोगों को तो क्रुद्ध करना व्यर्थ है तथा जो मर जाता है वह जीवित भी नहीं होता है ॥ १५ ॥

गणिका—आर्य ! कुलपुत्रजन के शीलरूपी सन्तोष पर जीवन विताने वाली मैं तो गणिका हूँ।

विट—इसी लिए तो प्रार्थना की जा रही है।

गणिका—आर्य ! इस जन (मुझ) से तुम क्या चाहते हो, शरीर अथवा आभूषण ?

विटः—न पुष्पमोक्षणमर्हति लता। कृतमलङ्कारेण।

गणिका—अहं खु दाणिं अत्ताणं ण सन्दावेअ। [अहं खल्विदानीमात्मानं न सन्तापयेयम्]।

शकारः—वशन्त्तशेणिए! अहं भट्टिपुत्ते कामइदव्वे। [वसन्तसेने अहं भर्तृपुत्रः कामयितव्यः]।

गणिका—सन्तो सि। [शन्तोऽसि]।

शकारः—शुणाहि भावे! शुणाहि। एशा वशन्त्तशेणिआ मं शन्तो गित्ति भणादि। [शृणु भाव! शृणु। एषा वसन्तसेना मां श्रान्तोऽसीति भणति]।

विटः—(आत्मगतम्) आक्रुष्टमात्मानं न जानाति मूर्खः। ध्वंस इत्युक्ते श्रान्त इत्यवगच्छति। अपि च,

---

लता = वल्लरी (वेल)। पुष्पमोक्षणम् = पुष्पाणां मोक्षणम् = कुसुमत्यजनम् (फूल गिराना)। न अर्हति=योग्या न भवति (योग्य नही होती है)। कृतमलंकारेण = आभूषणेनालम् (आभूषणों को लेने की आवश्यकता नही)।

सन्तापयामि = पीडयामि (पीडित करती हूँ)।

वसन्तेति। भर्तृपुत्रः = भर्त्तुः सुतः = स्वामिसुतः (भर्त्ता का पुत्र) कामयितव्यः = कामनापूर्तियोग्यः (कामना पूर्ण करने योग्य है)।

शृणु = आकर्णय (सुनो) भाव! अयि! (ऐ जी) श्रान्तः = क्लान्तः (थका हुआ)।

आत्मानम् = स्वम् (अपने को) आक्रुष्टम्=निन्दितम् (निन्दित) 'ध्वंस= 'नाश' इत्युक्ते=एतत्कथने (यह कहने पर) अवगच्छति=जानाति (जानता है)।

विट—लता फूल से अलग होने योग्य नही होती है। (मुझे) अलङ्कारों से मतलब नही है।

गणिका—मैं वास्तव मे अपने को सन्ताप देना नही चाहती।

शकार—वसन्तसेने! मुझ स्वामी के पुत्र (मेरी) इच्छा पूरी करनी चाहिए।

गणिका—शान्त होओ (चुप रहो)।

शकार—सुनो जी सुनो! यह वसन्त सेना मुझ से 'थके हो' ऐसा कह रही है।

विट—(मन ही मन) यह मूर्ख अपने को निन्दित नही समझ रहा है। 'ध्वंस' यह कहने पर 'श्रान्त' समझ रहा है। और भी—

अभिनयति वचांसि सर्वगात्रैः
किमपि किमप्यनवेक्षितार्थमाह ।
अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्यः
पुरुषमयस्य . . पशोर्नवावतारः ॥ १६ ॥

(प्रकाशम्) वसन्तसेने ! किमिदं मत्सन्निधौ वेशवासविरुद्धमभिहितम् । पश्य,

---

अभिनयेति । (एषः) सर्वगात्रैः = सर्वैः गात्रैः=निखिलाङ्गैः (सभी अङ्गो द्वारा) । वचांसि = वचनानि (वचन) । अभिनयन्ति = अभिनयरूपेण प्रकटयति (अभिनय रूप में प्रकट कर रहा है) । किम् अपि किम् अपि = किञ्चित्किञ्चिद् (कुछ कुछ) । अनवेक्षितार्थम्—न अवेक्षितः अनवेक्षितः=अनालोचितः अर्थः = अभिप्रायः यस्मिंस्तत् तथा (अस्पष्टार्थ को) । आह=कथयति (कहता है) । पुरुषमयस्य=पुरुषरूपस्य (पुरुष रूप का) । पशोः=जीवस्य (जानवर का)। अनुचितगतिः—अनुचिता गतिर्यस्य सः (अनुचित चाल वाला) । अप्रगल्भवाक्यः—अप्रगल्भं वाक्यं यस्य सः = प्रतिभाशून्यवाक्यः (प्रतिभारहित आवाजवाला) । नवावतारः—नवः=नूतनः अवतारः जन्म यस्य सः (नये अवतार वाला व्यक्ति) । (अस्ति) । आर्यावृत्तम् । तद्यथा—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रा तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥ १६ ॥

टिप्पणी—अभिनयति—अभि+√नी+लट् प्र० पु० ए० व० ।

मत्सन्निधौ—मम सन्निधौ = निकटे (मेरे पास) । वेशवासविरुद्धम् = वेशे = गणिकागृहे वासः = निवासः, तस्य विरुद्धम्=विपरीतम् (वेश्याभाव के विपरीत) अभिहितम् = कथितम् (कहा है) ।

यह सम्पूर्ण गात्र (अङ्ग प्रत्यङ्ग) से कुछ कुछ कहने का अभिनय सा करता है । कुछ कुछ अस्थिर रूप से कहता है । यह पुरुष रूपी जीव निन्दित गति वाला तथा प्रतिभाशून्य वचनों वाला एक नया अवतार लिए हुए जैसा है ॥ १६ ॥

(प्रकट रूप में) हे वसन्तसेने ! तुमने मेरे पास 'वेश्याभाव' के विपरीत 'शान्त होवो' यह क्या कह दिया है । देखो—

तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियं च ॥ १७ ॥

गणिका—एसो मे अभिणिवेसो अभिजणेण तुलीअदि। [एष मेऽभिनिवेशोऽभिजनेन तोल्यते]।

तरुणेति। वेशवासः = वेश्यालयः (वेश्याओं का घर)। तरुणजनसहायः—तरुणाश्च ते जनाश्च, तरुणजनाः, तेषां सहायः = युवकजन-सहयोगी (युवकों का सहायक) (इति)। चिन्त्यताम् = विचार्यताम् (यह सोचना चाहिए)। त्वम् = वसन्तसेना (तुम)। मार्गजाता = मार्गे जाता = वर्त्मभूता (मार्ग में उत्पन्न हुई)। लता इव = वल्लरी इव (लता के समान)। गणिका = वेश्या सामान्यभोग्या (सबके भोगयोग्य वेश्या)। विगणय = जानीहि (गिनो, समझ लो)। हि = यतः (क्योंकि)। धनहार्यम्—धनेन हार्यम्=धन-ग्राह्यम् (धन से लिए जाने योग्य)। पण्यभूतम् = क्रयविक्रय-योग्यम् (खरीद तथा बिक्री के योग्य)। शरीरम् = देहम् (शरीर)। वहसि = धारयसि (वहन करती हो) अतः भद्रे! प्रिये! सुप्रियम्=प्रियतमम् (अच्छी प्रिय)। अप्रियश्च= अरुचिकरम् च (और अरुचिकर)। समं समानम् (एक समान)। उपचर = आचर (आचरण करो)। मालिनी वृत्तम् ॥ १७ ॥

एष इति। एषः = अयम् (यह)। मे = मम (मेरा)। अभिनिवेशः = संकल्पः (संकल्प, चारुदत्त के प्रति प्रेम)। अभिजनेन = कुलेन (कुल से)। तोल्यते = तुलनां नीयते (तोला जा रहा है)।

वेश्यावास युवक जनों का सहायक समझो। तुम तो मार्ग में उगी हुई लता वेल के समान (सामान्य जन भोग योग्य) गणिका हो। क्योंकि तुम धन से क्रयविक्रय योग्य शरीर धारण किये हो अतः हे प्रिये! प्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार से समान आचरण करो ॥ १७ ॥

गणिका—यह मेरा चारुदत्त के प्रति प्रेम कुल अथवा जाति से तोला जा रहा है।

शकारः—भावे ! एशा अन्धआलपूलिदगम्भीला लच्छा दीशइ । मा खु णाए एत्थ भंशइदव्वा । आ कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तशत्थुलं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुअं कामेदि एशा । इदं तश्श गेहश्श पक्ख-दुवालं । भाव ! एषान्धकारपूरितगम्भीरा रथ्या दृश्यते । मा खलु ज्ञाता अत्र भ्रंशयितव्या । आ कामदेवानुयानात् प्रभृति नयनमात्रसंस्थुलं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तवटुकं कामयत एषा । इदं तस्य गृहस्य पक्षद्वारम्] ।

गणिका—(सहर्षमात्मगतम्) एवं तस्स गेहं । दिट्ठिआ दाणि अमि-त्तजणणिरोहेण पिअजणसमीवं उवणीदम्हि । भोदु, एवं दाव करिस्सं । (अपसरति ।) [एतत् तस्य गेहम् । दिष्ट्यं दानीममित्रजननिरोधेन प्रियजन-

---

अन्धकारपूरितगम्भीरा—अन्धकारेण पूरिता = तिमिरयुक्ता चासौ गम्भीरा च (अन्धकार युक्त तथा गम्भीर) । रथ्या = वीथी (गली) । दृश्यते = अवलोक्यते (दिखलाई पड़ रही है) । भ्रंशयितव्या = दूषयितव्या (भ्रष्ट की जाने योग्य) । आकामदेवानुयानात् प्रभृति—आकामदेवस्य = मदनस्य अनु-यानम्=मदनमहोत्सवगमनम्, तस्मात् प्रभृति (मदनमहोत्सव में जाने से लेकर) । नयनमात्रसंस्थुलम्—नयनमात्रम् = नेत्रमात्रम् संस्थुलः = रमणीकः तम् (नयन मात्र को सुखकर) । दरिद्रसार्थवाहपुत्रम्—दरिद्रस्य = निर्धनस्य, सार्थवाहस्य= व्यापारिणः, पुत्रस्तम्=निर्धनं चारुदत्तवटुकम् ((निर्धन सार्थवाहपुत्र चारुदत्तको) । एषा = इयम् (यह) । कामयते = अभिलषति (चाहती है) । इदम् = एतत् (यह) । तस्य = चारुदत्तस्य (उस चारुदत्त का) । गृहस्य = गेहस्य (घर का) । पक्षद्वारम् = पार्श्वद्वारम् (पास वाला दरवाजा है) ।

सहर्षम् = हर्षेण सहितम् (प्रसन्नता से) । दिष्ट्या=भाग्येन (भाग्य से) । अमित्रजननिरोधेन—न मित्रममित्रम्, अमित्रजनानाम् = शत्रुजनानाम् निरोधेन

शकार—भाव ! यह अन्धकार से पूर्ण गंभीर गली दिखलाई पड़ रही है । कहीं यह (वसन्त सेना) ऐसे में गायब हो जाये । मदन महोत्सव को जाने के आरम्भ से लेकर नयनों के लिए सुखकर दरिद्र सार्थवाहपुत्र चारुदत्तवटुक को यह चाहने लगी है । यह उस (चारुदत्त) के घर पक्ष द्वार है ।

गणिका—(हर्ष के सहित मन ही मन) यह उन (चारुदत्त) का घर

समीपमुपनीतास्मि । भवतु, एवं तावत् करिष्यामि]।

शकारः—(विलोक्य) भावे ! णट्ठा णाए णट्ठा। [भाव ! नष्टा ज्ञाता नष्टा]।

विटः—कथं नष्टा । अन्विष्यतामन्विष्यताम् ।

शकारः—भावे ! ण दिश्शदि । [भाव ! न दृश्यते]।

विटः—हन्त वञ्चिताः स्मः । वसन्तसेने ! उपलब्धेदानीमसि ।

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं
सौदामनीव जलदोदरसन्निरुद्धा ।

अवरोधेन (शत्रुजनो के निरोध से)। उपनीता = समानीता (लाई गई हूँ)। नष्टा = अदृश्या जाता (अदृश्य गायब हो गई)। अन्विष्यताम् = अन्वेषणं क्रियताम् (ढूढों)।

दृश्यते = लक्ष्यते (दिखलाई पड़ती है)।

हन्त ! (खेदे = हाय हाय !) । वञ्चिताः स्मः = छलिताः स्मः (हम सब ठग लिये गये) । उपलब्धा = प्राप्ता (प्राप्त हुई)।

काममिति । त्वम् = वसन्तसेना (तुम) । जलदोदरसन्निरुद्धा—जलं ददातीति जलदः = वारिदः, तस्य यदुदरम्=अन्तरम्, तत्र सन्निरुद्धः=तिरोहिता (वादलों के अन्दर छिपी हुई)। सौदामिनी = विद्युत् इव (बिजली के समान)। प्रदोषतिमिरेण—प्रदोषस्य = सन्ध्याकालस्य यत् तिमिरम्=तमस्तेन (सायंकाल के अन्धकार से) । कामम्=यथेष्टम् (अच्छी प्रकार) । न दृश्यसे=

है । सौभाग्य से इस समय अमित्र जनों (शत्रुओं) के निरोध से प्रियजन के पास ले आई गई हूँ । अस्तु, तो ऐसा ही करूँगी ।

शकार—(देखकर) भाव ! गायब हो गई, यह गायब हो गई ।

विट—कैसे गायब हो गई । ढूँढो ।

शकार—हे भाव ! दिखलाई नहीं पड़ रही है ।

विट—हाय हाय ! हम सब ठग गये हैं । हे वसन्तसेने ! अब मिल जाओ ।

(हे वसन्त सेने) ! तुम वादलों के अन्दर छिपी बिजली के समान प्रदोष (सन्ध्या) काल के अन्धकार के कारण भली प्रकार दिखलाई नहीं पड़ रही

त्वां सूचयिष्यति हि वायुवशोपनीतो
गन्धश्च शब्दमुखराणि च भूषणानि ॥ १८ ॥
(गणिका मालामपनीय भूषणानि चोत्सारयति)

विटः—अहो बलवांश्चायमन्धकारः । सम्प्रति हि,
लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १९ ॥

नावलोक्यसे (दिखलाई नहीं पड़ रही हो) । हि = यतः (क्योंकि) । वायुवशोपनीतः = वायोः = पवनस्य वशेनोपनीतः आनीतः (वायु के वश लाई गई) । गन्धः = सुरभिः (गन्ध) । च = तथा । शब्दमुखराणि = ध्वनितानि (बजते हुए) । भूषणानि = आभरणानि (आभूषण) । त्वाम् = वसन्तसेनाम् (तुम, वसन्त सेना को) । सूचयिष्यति=सङ्केतं दास्यति (सूचित कर देगा) । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १८ ॥

अपनीय=दूरी कृत्वा (हटाकर) । उत्सारयति=अवतारयति (उतारती है) ।

लिम्पतीति । सम्प्रति = साम्प्रतम् (इस समय) । तमः = अन्धकारम् (अन्धकार) । अङ्गानि = शरीरावयवानि (अङ्गों को) । लिम्पति इव = लेपं करोतीव (मानो लेप कर रहा है) । नभः=गगनम् (आकाश) । अञ्जनम्—कज्जलम् (काजल) । वर्षति इव = वर्षा करोति इव (मानो काजल बरसा रहा है) । असत्पुरुषसेवा = असताम् = दुष्टानाम् सेवा = सपर्या तदिव (दुष्ट पुरुषों की की गई व्यर्थ सेवा के समान) । दृष्टिः = अवलोकनशक्तिः (देखने की शक्ति) । विफलताम् = व्यर्थताम्, गता = प्राप्ता (व्यर्थ हो गई है) । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥ तद्यथा—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपंचमम् । द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

हो । (क्योंकि) फिर भी वायु के द्वारा लाई गई सुगन्ध तथा बजते हुए आभूषण तुम्हारी सूचना देंगे ॥ १८ ॥

(गणिका माला हटा कर आभूषण उतारती है) ।

विट—अरे ! यह बड़े जोरों का अन्धकार है । क्योंकि इस समय—

अन्धकार मानो अङ्गों में लिपट रहा है आकाश से जैसे काजल बरस रहा है। नीच पुरुषों कि की गई निष्फल सेवा के समान दृष्टि बिल्कुल बेकार हो गई है ॥१९॥

अपि च,

सुलभशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ॥ २० ॥

तथाहि—

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशसञ्छन्ना ।
उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण ॥ २१ ॥

सुलभेति । सुलभशरणम्—सुलभं शरणं यत्र तत् = सरलतया प्राप्यरक्षास्थानम् (सरलता से प्राप्त रक्षा स्थान) । तिमिरम्=अन्धकारम् (अंधेरा) । च = तथा । वनगहनम्–वनं च तद्गहनम् = सघनं विपिनम् (घना जंगल) । तुल्यम्=समम् (एक समान) । भयानाम्=त्रासार्तानाम् (डरे हुए लोगों का) । आश्रयः = शरणम् (आश्रय) (भवति) हि = यतः (क्योंकि) यः आश्रय (जो आश्रय) । भयानि = त्रासानि (डर) । जनयति = उत्पादयति (उत्पन्न करता है) । यश्च (और जो) । भीतः = त्रस्तः (डरा हुआ) । उभयम् अपि (दोनों को) । अन्धकारः = तमः (अन्धकार) । रक्षते = त्रायते (रक्षा करता है) । आर्यावृत्तम् ॥ २० ॥

आलोकेति । आलोकविशाला—आलोके = प्रकाशे विशाला = विस्तृता (प्रकाश में विस्तृत) । मे = मम (मेरी) । दृष्टिः = अवलोकनशक्तिः (देखने की शक्ति) । सहसा = झटिति (सहसा) । तिमिरप्रवेशसञ्छन्ना–तिमिरस्य प्रवेशः, तेन सञ्छन्ना = अन्धकारप्रवेशावृता (अन्धकार के प्रवेश से घिरी हुई) । उन्मीलितापि = दर्शनशीलापि (खुली हुई भी) । अन्धकारेण = तमसा (अंधेरे के द्वारा) । निमीलिता इव=मुद्रिता इव (बन्द सी) भवति । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ २१ ॥

और भी—सफलता से शरण देने वाला (छिपाने वाला) अन्धकार और सघन वन यह दोनों ही भयभीतों को एक समान आश्रय देते है क्योंकि जो अन्धकार भय उत्पन्न करता है और जो डरता है उन दोनों को अन्धकार बचाता है ॥२०॥

और भी—आलोक में विशाल (दूर तक देखने वाली) मुझ विट की दृष्टि सहसा अन्धकार के आगमन से घिर जाती है और खुली हुई दृष्टि भी अन्धकार से मानों बन्द हो जाती है ॥ २१ ॥

गणिका—अम्महे भित्तिपरिणामसूइदं पक्खदुवालं। असम्भोअमलिणदाए इह अहिअं अन्धआरो। ता इह एव्व चिट्ठिस्सं। (स्थिता)। [अहो भित्तिपरिणामसूचितं पक्षद्वारम्। असम्भोगमलिनतयेहाधिकमन्धकारः। तद् इहैव स्थास्यामि]।

नायकः—मैत्रेय ! गच्छ, चतुष्पथे वलिमुपहर मातृभ्यः।

विदूषकः—ण मे सद्धा, अण्णो गच्छदु। [न मे श्रद्धा, अन्यो गच्छतु]।

नायकः—किमर्थम्।

विदूषकः—मम बुद्धी आदंसमण्डलगआ विअ छाआ वामेसु दक्खिणा दक्खिणेसु वामा होइ। [मम बुद्धिरादर्शमण्डलगतेव च्छाया वामेषु दक्षिणा दक्षिणेषु वामा भवति]।

'अहो' इति। भित्तिपरिणामसूचितम्—भित्तेः परिणामः, तेन सूचितम् तत्=भित्तिपरिवर्तनवोधितम् (दीवार के परिवर्तन को सूचित करने वाला)! पक्षद्वारम् = पार्श्वद्वारम् (पास का दरवाजा)। असम्भोगमलिनतया = असम्भोगेन = असंस्कारेण मलिनता, तया (दीवार की सफाई पुताई आदि न होने के कारण मलिनता से)। इह = अत्र (यहाँ)। अधिकम् अन्धकारः = अत्यन्तं तमः (अस्ति)। तत् = अतः। इह एव=अत्रैव (यहीं)। स्थास्यामि = स्थिरा भविष्यामि (ठहरूँगी)!

गच्छ = याहि (जाओ)। चतुष्पथे=चतुर्मार्गे (चौराहे पर)। वलिम्=भोजनद्रव्यम् (भोजन सामग्री)। उपहर = देहि (रख आओ)।

वुद्धिः = प्रज्ञा। श्रद्धा = आस्था। आदर्शमण्डलगता = आदर्शस्य=दर्पणस्य मण्डलम्, तद्गता (शीशे के मण्डल में पड़ी हुई)। छाया इव = विम्बमिव

गणिका—दीवार में परिवर्तन वतलाने वाला यह पक्षद्वार है। सफाई पुताई आदि न होने के कारण मलिनता से यहाँ अधिक अंधेरा है। अतः यहीं रुकूँगी।

नायक—हे मैत्रेय, जाओ, चौराहे पर मातृवलि चढ़ा आओ।

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं है। और कोई चला जाय।

नायक—किस लिए (श्रद्धा नहीं है)।

विदूषक—मेरी वुद्धि शीशे में पड़ी छाया की भांति उल्टी (प्रतिकूल में अनुकूल और अनुकूल में प्रतिकूल) हो रही है।

नायकः—मूर्ख ! यथाविभवेनार्च्यताम् । भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि । तद् गम्यताम् ।

विदूषकः—एआई अहं कहं गमिस्सं । [एकाक्यहं कथं गमिष्यामि] ।

नायकः—रदनिके ! अनुगच्छात्रभवन्तम् ।

रदनिका—जं भट्टा आणदेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति] ।

विदूषकः—भोदि ! दीवं अहं णइस्सं । [भवति ! दीपमहं नेष्यामि] ।

नायकः—यथा भवान् मन्यते तथास्तु ।

विदूषकः—(दीपं गृहीत्वा) भो रदणिए ! अवावुद पक्खदुवालं । [भो रदनिके ! अपावृणु पक्षद्वारम्]

(छाया के समान) । वामेषु = प्रतिकूलेषु (प्रतिकूलों में) । दक्षिणा=अनुकूला (अनुकूल) । च = तथा दक्षिणेषु (अनुकूलों में) । वामा = प्रतिकूला (विपरीत) भवति ।

यथा-विभवेन–सम्पत्त्यनुसारेण (सम्पत्ति के अनुसार) । अर्च्यताम् = पूज्यताम् (पूजा करो) । दैवतानि = देवाः (देवता) । भक्त्या = आदरेण (भक्ति से) । तुष्यन्ति = सन्तुष्टाः भवन्ति (प्रसन्न होते हैं) ।

एकाकीति । एकाकी = अद्वितीयः (अकेला) । भवन्तम् = विदूषकम् (आप को) । अनुगच्छ = अनुगमनं कुरु (अनुगमन करो) ।

भर्ता = स्वामी (आप) । आज्ञापयति = आदिशति (आज्ञा देते हैं) । मन्यते = अनुमीयते (मानते हो) । अपावृत=उद्घाटय (खोलो) । वस्त्रान्तेन= वासःप्रान्तेन (वस्त्र के छोर से) । निर्वापयति=शान्तं करोति (बुझा देती है)

नायक—मूर्ख ! सामर्थ्य के अनुसार पूजा करो । भक्ति से देवता प्रसन्न होते हैं । अतः जाओ ।

विदूषक—अकेला मैं कैसे जाऊँगा ।

नायक—रदनिके ! आप (विदूषक) के साथ चली जाओ ।

रदनिका—जो आप की आज्ञा ।

विदूषक—श्रीमतीजी ! दीपक मैं ले जाऊँगा ।

नायक—जैसा आप चाहें वही करें ।

विदूषक—(दीपक लेकर) हे रदनिके ! पास वाला दरवाजा खोल दो ।

रदनिका—तह । (नाट्येन द्वारमपावृणोति) [तथा] ।

(गणिका वस्त्रान्तेन दीपं निर्वापयति)

विदूषकः—अविहा ! अविहा ! । [अविहा ! अविहा !] ।

नायकः—वयस्य ! किमेतत् ।

विदूषकः—अवावुदपक्खदुवारपिण्डीकिदप्पविट्ठेण राअमग्गसङ्किण्णेण वादेण सहसा णिग्गच्छन्तस्स मम हत्थे णिव्वावुदो दीवो । [अपावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन राजमार्गसङ्कीर्णेन वातेन सहसा निर्गच्छतो मम हस्ते निर्वापितो दीपः] ।

नायकः—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ।

अविहा = खेदे ऽव्ययम् । (हाय हाय) ।

अपावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन—अपावृतम् = उद्घाटितम् पक्षद्वारम् = पार्श्वद्वारम्, इत्यपावृतपक्षद्वारम्, तेन पिण्डीकृतम् = एकत्रितम्, तत्र प्रविष्टः प्रवेश-निमित्तम्, तेन (खुले हुए पार्श्वद्वार मे एकसाथ प्रविष्ट हुए) राजमार्गसङ्कीर्णेन = राजमार्गेण = राजपथेन सङ्कीर्णः = घनीभूतः, तेन (राजमार्ग सङ्कीर्ण होने से) । वातेन=पवनेन (वायु से) सहसा, निर्गच्छन्ती=निःसरन्ती (निकलती हुई) । मम हस्ते = मम करे (मेरे हाथ मे) । दीपः = प्रदीपः (दीपक) । निर्वापितः = शमितः (बुझा दिया) ।

रदनिका—अच्छा । (अभिनय के ढंग से दरवाजा खोलती है । गणिका वस्त्र के छोर से दीपक बुझा देती है ।

विदूषक—हाय हाय ।

नायक—मित्र ! यह क्या है ?

विदूषक—खुले हुए पार्श्व द्वार में एकत्रित होकर प्रविष्ट, राजमार्ग में सङ्कीर्ण पवन द्वारा सहसा निकलते हुए मेरे हाथ मे पकड़ा हुआ दीपक बुझा दिया गया ।

नायक—मूर्ख ! तुझे धिक्कार है :

विदूषकः—अप्पं खु मे अवरद्धं। रदणिए! गच्छ, चउप्पहे म पडिवालेहि। जावं अहं वि अब्भन्तरचउस्सालादो दीवं गह्णिअ आअच्छामि। (निष्क्रान्तः)। [अल्पं खलु मेऽवराद्धम्। रदनिके! गच्छ, चतुष्पथे मां प्रतिपालय। यावदहमप्यभ्यन्तरचतुश्शालाद् दीपं गृहीत्वाऽऽगच्छामि]।

चेटी—अय्य! तह। (परिक्रामति)। [आर्य! तथा]।

गणिका—दिट्ठिआ मम पवेसणिमित्तं अवावुदं पक्खदुवालं। अलं चारित्तभएण। जाव पविसामि। (अभ्यन्तरं प्रविश्य तिष्ठति।) [दिष्ट्या मम प्रवेशनिमित्तमपावृतं पक्षद्वारम्। अलं चारित्रभयेन। यावत् प्रविशामि]।

विटः-(विलोक्यात्मगतम्) भवनान्निर्गत्य क्वाचिदियमागच्छति। भवतु, अनया वराकं वञ्चयामि। (प्रकाशम्) सुरभिस्नानधूपानुविद्ध इव गन्धः।

अल्पम् = स्वल्पम् (थोड़ा)। अपराद्धम् = अपराधं कृतम् (अपराध किया। चतुष्पथे = चतुर्मार्गे (चौराहे पर)। प्रतिपालय = प्रतीक्षस्व (प्रतीक्षा करो)। अभ्यन्तरचतुश्शालात्—चतसृणां शालानां समाहारः इति चतुःशालम्, अभ्यन्तरस्य चतुःशालम्, तस्मात् = चतुःशालान्तरस्थानात् (चतुःशाला के अन्तर से)। चारित्रभयेन = आचारभिया (आचरण के डर से)।

भवनात् = प्रासादात् (महल से)। निर्गत्य = बहिरेत्य (बाहर निकल कर)। वराकम् = मन्दभाग्यम् (वेचारे को)। वञ्चयामि = छलामि (छलता हूँ)। सुरभिस्नानधूपानुविद्धः इव—स्नानस्य धूपः = सुगन्धि द्रव्यम्, सुरभिः स्नानधूपः, तेनानुविद्धः इव=व्याप्त इव (सुगन्धित स्नान द्रव्य से व्याप्त जैसा)।

विदूषक—वास्तव मे मेरा तो थोड़ा ही अपराध है। रदनिके! जाओ। चौराहे पर मेरी प्रतीक्षा करो। तव तक चतुःशाला के अन्दर से दीप लेकर मैं आ रहा हूँ।

चेटी—आर्य! ऐसा ही करती हूँ। (चलने लगती है)।

गणिका—सौभाग्य से घुसने के लिए पार्श्व द्वार खुला हुआ है। आचरण का भय मत करो। तब तक मै प्रवेश करती हूँ।

विट—(देखकर, मन ही मन) महल से निकल कर यह कोई आ रही है। अस्तु, इसके द्वारा वेचारे को ठगता हूँ। (प्रकट रूप में) सुगन्धित स्नान द्रव्य से व्याप्त जैसी गन्ध है।

शकारः—आम भावे ! शुणामि गन्धं शवणेहि। अन्धआलपूलिदेहिं णाशापुडेहिं शुट्ठु ण पेक्खामि। [आम भाव ! शृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम्। अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि]।

विटः—तिष्ठ तिष्ठ। क्व यास्यसि। (चेटीं गृह्णाति)।

(चेटी सभयं भूमौ पतिता)।

शकारः—गण्ह भावे ! गण्ह। [गृहाण भाव ! गृहाण]।

विटः—

एषा हि वयसो दर्पात् कुलपुत्रावमानिनी।
केशेषु कुसुमन्यासैः सेवितव्येषु धर्षिता ॥ २२ ॥

आमिति। आम् इति स्वीकारेऽव्ययम् ! (हां)। शृणोमि = आकर्णयामि (सुनता हूँ)। श्रोत्राभ्याम् = कर्णाभ्याम् (दोनों कानों से)। अन्धकार पूरिताभ्याम् - अन्धकारेण पूरिताभ्याम् = तमोयुताभ्याम् (अन्धकार से युक्त)। नासापुटाभ्याम् = नासीकारन्ध्राभ्याम् (नथुनों से)। सुष्ठु=शोभनम् (सुन्दर)। न पश्यामि = नावलोकयामि (नहीं देख रहा हूँ)। भयेन सहितम् सभयम् (डर के साथ)।

टिप्पणी—श्रोत्राभ्यां गन्धं शृणोमि, नासापुटाभ्यां न पश्यामि। एक प्रकार का राजपुरुषों का अपलाप (बकना)।

एतेति। हि = यतः (क्योंकि)। वयसः = आयुषः (आयु के)। दर्पात् = अभिमानात् (अभिमान से)। कुलपुत्रावमानिनी = कुलपुत्राणाम् = अभिजातसुतानाम् (कुलपुत्रों का)। अवमानिनी = अपमानकारिणी (अपमान करने वाली)। एष = इयम् (यह)। कुसुमन्यासैः—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् न्यासैः = विन्यासैः (फूलों के न्यास गूंथने से)। सेवितव्येषु = अलङ्कार-

---

शकार—हां ! भाव ! मैं दोनों कानों से गन्ध को सुनाता हूँ। अन्धकार पूरित नासापुटों से अच्छी तरह देख नहीं रहा हूँ।

विट—ठहरो ठहरो। कहाँ जा रही हो। (चेटी को पकड़ लेता है)।

(चेटी डर कर भूमि पर गिर पड़ती है।)

शकार—पकड़ो, पकड़ो। भाव।

क्योंकि आयु के अभिमान (तरुणाई) के कारण कुलीनों का अपमान

शकारः—भावे ! किं गहीदा । [भाव ! किं गृहीता] ।

विटः—अथ किम् । एषा गन्धानुसारेण गृहीता ।

शकारः—दाशीए पुत्तीए शीशं दाव छिन्दिअ पच्चा मालइश्शं । [दास्याः-पुत्र्याः शीर्षं तावच्छित्त्वा पश्चान्मारयिष्यामि ।]

विटः—गृह्यतां तावत् ।

शकारः—(चेटीं गृहीत्वा)

एषा हि वाशू शिलशि ग्गहीदा केशेशु बालेशु शिलोलुहेशु ।
कूजाहि कन्दाहि लवाहि वात्तं महेश्शलं शङ्कलमिश्शलं वा ॥२३॥

[एषा हि वासूः शिरसि गृहीता केशेषु वालेषु शिरोरुहेषु ।

युतेषु = अलङ्कारयुक्त) । केशेषु = शिरोरुहेषु (बालों में) । धर्षिता = बलाद् गृहीता (जबर्दस्ती पकड़ी गई है) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २२ ॥

गृहीता = हस्ते धृता (पकड़ ली) । अथ किम् = आम् (और क्या) । गन्धानुसारेण—गन्धस्य = सुरभेः अनुसारेण = अनुसरण्या (सुगन्ध का अनुसरण करने से) ।

दास्याः पुत्र्याः ('छिनाल का' इति भाषायाम्) । शीर्षम्=शिरः (सिर) । छित्वा = उत्कृत्य (काट कर) । मारयिष्यामि=हनिष्यामि (मार डालूंगा) ।

एषेति । एषा = इयम् (यह) । वासूः = बाला (युवती) । शिरसि = उत्तमाङ्गे (शिर में) । केशेषु = कचेषु (केशों में) । वालेषु = कुन्तलेषु (बालों मे) । शिरोरुहेषु=शिरसि रोहन्ते इति शिरोरुहास्तेषु (शिरोरुहों में) । (केशपर्यायत्वादधिकम्) ('चिकुटः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः'

करने वाली यह (वसन्तसेना) फूलों की सजावट से आभूषणों से युक्त केशों को पकड़ कर जबर्दस्ती खींची गई है ॥ २२ ॥

शकार—भाव ! क्या पकड़ ली गई ?

विट—और क्या ! यह महक का अनुसरण करके पकड़ ली गई है ।

शकार—छिनाल का शिर काट कर बाद में मैं मार डालूंगा ।

विट—तब तो पकड़ लो ।

शकार—(चेटी को पकड़ कर) यह बाला शिर से, बालों से, केशों से तथा

कूज क्रन्द लप वार्त महेश्वरं शङ्करमीश्वरं वा ॥ २३ ॥]

(चेटीं बलादाकर्षति)

चेटी—किं अय्यमिस्सेहि ववसिदं। [किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम्]।

शकारः—भावे ! जाणामि शलयोगेण ण होइ वशन्त्तशेणिआ।

[भाव ! जानामि स्वरयोगेन न भवति वसन्तसेना]।

विटः—न मोक्तव्या। वसन्तसेनेवैषा।

एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया।

इत्यमरः)। गृहीता = हस्तेधृता (पकड़ी गई है)। (सम्प्रति) शङ्करम् = शिवम् (शिवजी को)। ईश्वरम् = विष्णुम् (विष्णुभगवान् को)। वा = अथवा महेश्वरम्—महांश्चासावीश्वरः, तम् = महाप्रभुम् (महाप्रभु को)। आर्तम्=कातरस्वरम् (कातर आवाज) लापं=विलापं कुरु (विलाप करो)। क्रन्द = क्रन्दनं कुरु (क्रन्दन करो)। कूज=वद (टेरो)। अगोपजाति वृत्तम्। यथा—उपेन्द्रवज्रा अथ इन्द्रवज्रा एतद् द्वयम् यत्र हि सोपजातिः ॥ २३ ॥

किमिति। आर्यमिश्रैः = आर्यजनैः (आर्य जनों के द्वारा)। व्यवसितम् = विहितम् (किया गया है)। स्वरयोगेन = स्वरस्य योगस्तेन = ध्वनियोगेन (आवाज के मेल से)।

मोक्तव्या = त्याज्या (छोड़नी चाहिए)।

एषेति। हि = यतः (क्योंकि)। एषा = इयम् (यह)। रङ्गप्रयोगेण—रङ्गस्य = नाट्यागारस्य प्रवेशेन = प्रवेशज्ञानेन (रंगमञ्च के प्रवेश से, अर्थात् अभिनय करने के कारण)। च = तथा। कलानाम् = गीतवाद्यादिकलानाम् (गाना बजाना आदि कलाओं की)। शिक्षया=अभ्यासेन (शिक्षा के कारण)।

शिरोरूहों से मेरे द्वारा पकड़ ली गई है। अब शङ्करजी को, विष्णु भगवान् को अथवा महा प्रभु को आर्त्त स्वर से पुकार, चिल्ला या विलाप कर ॥ २३ ॥

(चेटी को जबर्दस्ती खींचता है।)

चेटी—आर्य जनों के द्वारा यह क्या किया जा रहा है ?

शकार—भाव ! आवाज के मेल से मैं समझता हूँ कि यह वसन्तसेना नहीं है।

विट—छोड़ना मत, वसन्त सेना ही यह है।

क्योंकि नाटकीय रंगमंच पर प्रवेश करने के कारण, तथा गाने बजाने

स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तुं तन्न मुच्यताम् ॥ २४ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—(दीपं गृहीत्वा) राअमग्गसङ्किण्णेण सीअसुउमारेण वादेण पदे पदे विक्खोहिअमाणजणिअतरङ्गतेल्लपुण्णभाअणं दीवं कहं त्रि रक्खिअ गण्हिअ आअदो म्हि । [राजमार्गसङ्कीर्णेन शीतसुकुमारेण वातेन पदे पदे विक्षोभ्यमाणजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनं दीपं कथमपि रक्षित्वा गृहीत्वा-गतोऽस्मि] ।

स्वरान्तरेण स्वरस्य = ध्वनेः अन्तरेण = भेदेन=विभिन्नस्वरपरिवर्तनेन (अनेक प्रकार से आवाज बदल लेने के कारण) एव (ही) । व्याहर्त्तुम् = कथयितुम् (बोलने को) । दक्षा = कुशला (चतुर) (अस्ति) । तत् = अतएव । न मुच्यताम् = न त्यजताम् (न छोड़ो) अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २४ ॥

दीपमिति । राजमार्गसङ्कीर्णेन = घण्टापथसघनेन (राजमार्ग-सड़क के सघन होने से) । शीतसुकुमारेण = शीतत्वेन सुकुमारेण = शीतलस्निग्धेन (शीतल एवं स्निग्ध) । वातेन = पवनेन (वायु से) । पदे पदे = प्रतिपदे (कदम कदम पर) । विक्षोभ्यमाणजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनम्—विक्षोभ्यमाणम्=आलोड्य-मानम् अतएव जनिततरङ्गम् तैलपूर्णं भाजनम् = उत्पन्नवीचिरूपस्नेहयुक्तपात्रम् (हिलने के कारण उत्पन्न लहराते तेल से भरे पात्र वाले) । दीपम् = दीप्तिम् (दीपक को) । कथं कथमपि = यथा कथंचिदपि (जैसे तैसे) । रक्षित्वा = गोपायित्वा (बचाकर) । गृहीत्वा = हस्ते धृत्वा (लेकर) आगतः अस्मि = अहमागतवान् । (मैं आया हूँ) ।

आदि कलाओं की शिक्षा के कारण स्वर बदल लेने से ही बोलने में कुशल (वसन्त सेना ही) है अतः इसे छोड़ना नहीं चाहिए ॥ २४ ॥

(प्रवेश कर)

विदूषक—(दीपक लेकर) राजमार्ग की सङ्कीर्णता से, शीतल तथा सुकुमार (मृदुल) पवन कदम कदम पर आलोडित होने के कारण उत्पन्न लहरों वाले (लहराते हुए) तैल से परिपूर्ण पात्र वाले दीपक को किसी प्रकार बचाकर ले आया हूँ ।

चेटी—(शकारं पादेन ताडयन्ती रुदित्वा) अज्ज ! मेत्तेअ ! अयं परिभवो आदु अवलेवो । [आर्य ! मैत्रेय ! अयं परिभवोऽथवावलेपः] ।

विदूषकः—मा दाव, मा दाव ! (सखड्गं विटं शकारं च दृष्ट्वा शङ्कितस्तिष्ठति) । [मा तावद्, मा तावत्] ।

विटः—अये आर्यचारुदत्तस्य वयस्यो मैत्रेयः खल्वयम् । नेयमपि वसन्तसेना । महाब्राह्मण ! अन्यशङ्कया खल्विदमस्माभिरनुष्ठितं न दर्पात् । पश्यतु भवान्,

---

परिभवः = अपमानम् (अपमान) । अवलेपः = अहङ्कारः (अभिमान) । खड्गम् = असिम् (तलवार को) ।

महाब्राह्मण ! (हे नीचब्राह्मण) ! अन्यशङ्कया=अन्यस्य शङ्का, तया परसन्देहेन (अन्य व्यक्ति होने की शङ्का से) । अलम् = निषेधेऽव्ययम् (बस) । अनुष्ठितम्= सम्पादितम् (सम्पादित किया) । दर्पात्=गर्वात् (अभिमान से) ।

टिप्पणी—महाब्राह्मण—सामान्यतया 'महान्' विशेषण से युक्त ब्राह्मण का अर्थ श्रेष्ठ ब्राह्मण होना चाहिए परन्तु व्यञ्जनाशक्ति से यहां 'महा' शब्द निन्दासूचक है अतः इसका अर्थ नीच ब्राह्मण होता हैं। 'महा' विशेषण विशेषताद्योतक होकर भी निम्न स्थलों पर निन्दासूचक बन जाता है :—

शङ्खे तैले च मांसे च वैद्ये ज्योतिषिके द्विजे । यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न दीयते ॥

चेटी—(शकार को पाँव से ठोंकर मारती हुई) आर्य ! मैत्रेय !, यह मेरा अपमान अथवा उसका अभिमान है ।

विदूषक—ऐसा मत करो । ऐसा मत करो । (तलवार सहित विट तथा शकार को देखकर शङ्कित होकर खड़ा हो जाता है) ।

विट—अरे ! यह तो आर्य चारुदत्त के मित्र मैत्रेय हैं । यह भी वसन्तसेना नहीं है । अरे ! दुष्ट ब्राह्मण ! अन्य व्यक्ति होने की शङ्का से ही वास्तव में मैंने यह व्यवहार किया है, अभिमान से नहीं किया ! आप देखें—

अकामा ह्रियतेऽस्माभिः काचित् स्वाधीनयौवना ।
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेयं शीलवञ्चना ॥ २५ ॥

शकारः—अविहा दलिद्दशत्थवाहपुत्तश्श चालुदत्तवडुअश्श चेडी खु इअं, ण होइ वशन्तशेणिआ । शाहु, वशन्तशेणिए ! शाहु ! अन्धआलं कलिअ अन्तला वञ्चिदे भावे, अहके दावे वञ्चिदे कूडकावडशीलए । शौवहा दुक्खडे कडे । [अविहा दरिद्रसार्थवाहपुत्रस्य चारुदत्तवटुकस्य चेटी खल्वियं, न भवति वसन्तसेना । साधु वसन्तसेने ! साधु । अन्धकारं कृत्वाऽन्तरा वञ्चितो भावः । अहं तावद् वञ्चितः कूटकपटशीलया । सर्वथा दुष्करं कृतम्] ।

अकामेति । अकामा-नास्ति कामः = कामना यस्याः सा = कामरहिता (हम लोगों से कामरहित) । स्वाधीनयौवना-स्वाधीनं यौवनं यस्याः सा = स्वेच्छाचारिणी युवती (स्वच्छन्द यौवनवाली) । काचित् = कापि (कोई) । वसन्त सेना नाम की) । अस्माभिः=अस्माभिः जनैः (हम लोगों के द्वारा) । ह्रियते = बलान्नीयते (जबर्दस्ती अपहरण की जा रही है) । सा = वसन्तसेना भ्रष्टा = पलायिता जाता (भ्रष्ट हो गई, भाग गई है) । तस्याः = एतस्याः (उसके) । शङ्कया = भ्रमेण (भ्रम से) । इयम् = एषा (यह बेचारी) । शीलवञ्चना = शीलस्य = वञ्चना = आचारनाशसम्भावना (आचरण नष्ट होने की सम्भावना वाली) । प्राप्ता=अभिमता (प्राप्त हुई है) । अनुष्टुब्वृत्तम ॥२५॥

अविहेति । 'अविहा' इति खेदे ऽव्ययम् (हाय हाय) । अन्धकारम् = तमः (अंधेरा) । कृत्वा = विधाय (करके) । अन्तरा = मध्येन (बीच से) । भावः = विटः (विट) । वञ्चितः=छलितः (ठगा गया है) । कूटकपटशीलया—कूटं च कपटं च शीलं यस्यास्तया = छलकपटस्वभावया (छलकपट स्वभाव वाली द्वारा) । सर्वथा = नितांतम् (नितान्त) दुष्करम्=कठिनम् (कठिन) ।

हम लोग किसी ऐसी स्त्री का पीछा कर रहे है जो कि हमसे प्रेम नहीं कर रही है तथा जो स्वच्छन्द यौवन विताने वाली है । वह तो भाग गई, पर उसके भ्रम से यह आचार भ्रष्ट करने वाली आ गई है, मिल गई है ॥ २५ ॥

शकार—हाय ! यह तो सार्थवाह पुत्र चारुदत्त की दासी है । वसन्तसेना नहीं है । शावास, वसन्त सेने ! शावास ! (छल से) अन्धकार करके विट को ठग लिया है । मैं तो कूट कपट आचरण करने वाली तेरे द्वारा ठग लिया गया हूँ । सर्वथा कठिन कार्य किया है ।

विदूषकः—मा दाव । ण जुत्तमिदं । [मा तावत् । न युक्तमिदम्] ।

विटः—भो महाब्राह्मण ! अयमनुनयसर्वस्वमञ्जलिः ।

विदूषकः—भोदु, भोदु ! अणवरद्धो भवं । अणुणीदो अहं एव्व एत्थ अवरद्धो । [भवतु, भवतु । अनपराद्धो भवान् । अनुनीतोऽहमेवात्रापराद्धः] !

शकारः—भावे ! दिढं खु भाआशि तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तं चालुदत्तवडुअं । [भाव ! दृढं खलु बिभेषि तं दरिद्रसार्थवाहपुत्रं चारुदत्तवटुकम्] ।

विटः—सत्यं भीतोऽस्मि ।

शकारः—किश्श भावे ! किश्श । [कस्मात् भाव ! कस्मात्] ।

विटः—तस्य गुणेभ्यः !

युक्तम् = उचितम् (ठीक) ।

अनुनयसर्वस्वम्–अनुनयस्य = विनम्रतायाः सर्वस्वम् = विनयप्रधानम् (विनय प्रधान) । अनपराद्धः = अपराधरहितः (निरपराधी) । अनुनीतः= अनुनयकारकः (अनुनय कराने वाला) ।

दृढं बिभेषि = अत्यन्तं भयं करोषि (अत्यन्त भय कर रहे हो) ।

भीतः = त्रस्तः (डरा हुआ) । कस्मात् = कस्मात् कारणात् इति । (किस कारण से) ।

विदूषक—ऐसा मत कहो । यह ठीक नहीं है ।

विट—अरे नीच ब्राह्मण ! यह मेरी खुशामद रूपी अञ्जलि है ।

विदूषक—अच्छा, अच्छा । आप अपराधी नहीं हैं । यह खुशामत कराने का अपराधी तो मैं ही हूँ ।

शकार—हे विट ! तुम तो वास्तव में उस दरिद्र सार्थवाह पुत्र चारुदत्त से बहुत डर रहे हो ।

विट—सचमुच, मैं डर रहा हूँ ।

शकार—हे विट ! किस कारण से ? किस कारण से ?

विट—उनके गुणों से ।

पश्यतु भवान्,

स मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तस्य कश्चिद् विभवैरमण्डितः ।
निदाघसंशुष्क इव ह्रदो महान्
नृणां तु तृष्णामपनीय शुष्यति ॥ २६ ॥

महाब्राह्मण ! अयमर्थः सार्थवाहपुत्रस्य न कथयितव्यः ।

(निष्क्रान्तो विटः)

स इति । सः = चारुदत्तः (वह, चारुदत्त) । मद्विधानाम् = मादृशानाम् (हमारे जैसे व्यक्तियों से) । प्रणयैः = प्रेमभिः (प्रेम से) । कृशीकृतः = क्षीणधनजातः (निर्धन बना हुआ है) । तस्य = एतस्य (उनके) । विभवैः = सम्पद्भिः (सम्पत्ति, वैभव से) । कश्चित् = कोऽपि (कोई भी) । अमण्डितः न = असत्कृतः नास्ति (असत्कृत नहीं हुआ है) । निदाघसंशुष्कः–निदाघे = ग्रीष्मे संशुष्कः = सम्यग्रूपेण शोपमुपगतः (ग्रीष्मकाल में भली प्रकार सूखे हुए) । महान् = विशालः (विशाल) । ह्रदः इव = जलाशय इव (तालाव या झील के समान) । नृणाम् = पुरुषाणाम्, पिपासार्तानाम्, याचकानां वा (प्यासे लोगों या याचकों की) । तृष्णाम् = पिपासाम्, अर्थपिपासाम्वा (प्यास या धन की प्यास को) । अपनीय = अपहृत्य (दूर करके ही) । शुष्यति = शोषं गच्छति (सूख जाता है, समाप्त हो जाता है) । वंशस्थवृत्तम् । तद्यथा— जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥ २६ ॥

महाब्राह्मण इति । कथयितव्यः = भणितव्यः (कहना चाहिए) ।

आप देखें—वह (आर्य चारुदत्त) हमारे जैसे लोगों के प्रेम से, धन से क्षीण हो गये हैं । उनके वैभव से कोई भी व्यक्ति असत्कृत नहीं हुआ है। ग्रीष्मकाल में जिस प्रकार प्यासों की प्यास मिटा कर तालाव स्वयं सूख जाता है उसी प्रकार याचकों की अर्थ पिपासा मिटाकर निर्धन बन गये हैं ॥ २६ ॥

हे महाब्राह्मण ! यह बात तुम्हें सार्थवाह पुत्र चारुदत्त से नहीं कहनी चाहिए ।

(विट निकल जाता है) ।

शकारः—मालिश ! वडुअ ! मालिश ! भणेहि तं दलिद्दशत्थवाह-पुत्तं चालुदत्तवडुअं मम वअणेण—लाअशाले शण्ठाणे शवट्टेण शीशेण अणुवन्दिअ भणादि—णाडअइत्थिआ वशन्तशेणिआ णाम गणिआदारिआ शुवण्णवण्णा दुवेहि अम्मेहि वलक्कालेण णीअमाणा महन्तेण शुवण्णा-लङ्कालेण तव गेहं पविट्ठा । शा शुवे णिय्यादइदव्वा । मा दाव तव अ मम अ दालुणो खोहो होदि त्ति । वडुअ ! मालिश ! इदं च भणाहि-मा दाशीएपुत्त ! पालावदगलप्पविट्टं विअ मूलकन्दं शीशकवालं मडम-डाइश्शं । मा खु कवाडशम्पुडप्पुडप्पविट्ठं विअ पक्ककविट्ठं शीशं दे चुण्णचुण्णं मडमडाइश्शं ति । [मारिष ! वटुक ! मारिष ! भण तं दरिद्र-सार्थवाहपुत्रं चारुदत्तवटुकं मम वचनेन—राजश्यालः संस्थानकः सपट्टेन शीर्षेणा-नुवन्द्य भणति—नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिका सुवर्णवर्णा द्वाभ्या-मावाभ्यां वलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण तव गेहं प्रविष्टा । सा श्वो निर्यातयितव्या । मा तावत् तव च मम च दारुणः क्षोभो भवतीति । वटुक ! मारिष ! इदं च भण—मा दास्याःपुत्र । पारावतगलप्रविष्टमिव मूलकन्दं

वचनेन = कथनेन (कहने से) । सपट्टेन = सोष्णीषेण (पगड़ी सहित) । शीर्षेण=शिरसा (सिर से) । अनुवन्द्य = प्रणम्य (प्रणाम करके) । भणति = कथयति (कहता है) । गणिकादारिका—गणिकायाः=वेश्यायाः दारिका=पुत्रिका (रण्डी की लौंडी) । सुवर्णवर्णा=सुवर्णमिव वर्णं यस्याः सा (सुनहले रंग वाली) । वलात्कारेण = हठात् (जवर्दस्ती) । नीयमाना = प्राप्यमाणा (ले जाई जाती हुई) । महता = वहुना (वहुत से) । सुवर्णालङ्कारेण-स्वर्णभूषणेन (स्वर्ण-भूषणों के साथ) । गेहम् = गृहम् (घर) । दारुणः = कठिनम् (कठिन) ।

शकार—मारिष ! वटुक ! मारि ! मेरे कहने से उस व्यापारी चारुदत्त से कहो—राजश्याल संस्थानक पगड़ी सहित सिर से प्रणाम करके कहते हैं—कि नाटक स्त्री वसन्तसेना नाम वाली वेश्या पुत्री स्वर्ण वर्ण के समान सुन्दरी हम दोनों (शकार तथा विट) द्वारा वल पूर्वक ले जाई गई वहुत से स्वर्णाभूषणों के साथ तुम्हारे घर में घुस गई है । उसे कल (अपने घर से) निकाल देना चाहिए । ऐसा न हो कि तुम्हारा और हमारा दारुण क्षोभ हो जावे । हे वटुक !

शीर्षकपालं मडमडायिष्यामि। मा खलु कपाटसम्पुटप्रविष्टमिव पक्वकपित्थं शीर्षं ते चूर्णचूर्णं मडमडायिष्यामि इति]।

विदूषकः—भो ! तह। (शकारं दीपेनोद्वेजयति)। [भो ! तथा]।

शकारः—(सर्वतो विलोक्य) कहिं भावे। गदे भावे। अविहा भावे !। [क्व भावः। गतो भावः। अविहा भाव !]।

(निष्क्रान्तः शकारः)

विदूषकः—किदं देवकय्यं ति तत्तहोदो णिवेदइस्सामो। भोदि ! अवणीअदु दे हिअअमण्णू। अअं पुत्तन्तो अब्भन्तरं ण पेसिदव्वो। [कृतं देवकार्यमिति तत्रभवतो निवेदयिष्यामः। भवति ! अपनीयतां ते हृदयमन्युः। अयं वृत्तान्तोऽभ्यन्तरं न प्रेषयितव्यः]।

पारावतगलप्रविष्टम्—पारावतस्य = कपोतस्य गलप्रविष्टम् = कण्ठगतम् इव (कबूतर के गले में पड़ा हुआ जैसा)। शीर्षम् = शिरः (शिर)। चूर्णचूर्णम् = सुपिष्टम् (चकनाचूर)। मडमडायिष्यामि = खादयिष्यामि (खा डालूंगा)। उद्वेजयति = आकुलयति (व्याकुल कर रहा है)।

कृतमिति। कृतम् = सम्पादितम् (कर लिया)। अपनीयताम् = दूरीक्रियताम् (हटा दो)। हृदयमन्युः—हृदयस्य मन्युः = चेतसः क्रोधः (हृदय

मारिष ! यह और कह दो कि हे दासीपुत्र (नालायक) ! मैं कबूतर के गले में पड़े हुए मूलकन्द की भांति तुम्हारे सिर तथा कपाल को नहीं फोड़ूँगा अथवा दरवाजे के बीच में पड़े पके कैथे की भाँति तुम्हारे शिर को चकनाचूर करके नहीं खा डालूँगा।

विदूषक—अरे ! ऐसा ही होगा।

(शकार को दीपक दिखा कर व्याकुल करता है)।

शकार—(चारों ओर देख कर) भाव ! आप कहाँ गये। कहाँ चले गये। हाय, हाय।

(शकार निकल जाता है)।

विदूषक—देवकार्य समाप्त कर लिया गया है। यह श्रीमान् चारुदत्त के लिए हम दोनों निवेदन करेंगे। श्रीमती जी, अपने हृदय का क्रोध निकाल दो। यह समाचार राज-महल मे नहीं भेजना चाहिए।

चेटी—अय्य ! रदणिआ खु अहं । [आर्य ! रदनिका खल्वहम्] ।

विदूषकः—एहि गच्छामो ! [एहि गच्छावः] ।

(उभौ परिक्रामतः)

नायकः—भद्रे ! कृतं देवकार्यम् ।

गणिका—(आत्मगतम्) परिजणत्ति मं सद्दावेदि । भोदु, रक्खिदम्हि । [परिजन इति मां शब्दापयति । भवतु, रक्षितास्मि ।

नायकः—मारुताभिलाषी प्रदोषः । तद् गृह्यतां प्रावारकम् ।

गणिका—(प्रावारकम् गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम्) अणुदासीणं जोव्वणं से पडवासगन्धो सूएदि । [अनुदासीनं यौवनमस्य पटवासगन्धः सूचयति] ।

का क्रोध) । अभ्यन्तरम्=अन्तः पुरम् (अन्तःपुर को) । प्रेषयितव्यः=संदिष्टव्यः (भेजना चाहिए) । परिक्रमतः = परिभ्रमतः (दोनों घूमते हैं) ।

भद्र इति । भद्रे ! = प्रिये (हे प्रिये) । परिजनः = परिचारकः (सेवक) । शब्दापयति = आह्वयति (बुला रहा है) । भवतु, अस्तु (अच्छा) रक्षिता = सुरक्षिता) ।

मारुताभिलाषी—मारुतस्याभिलाषी = पवनाकांक्षी (वायुका इच्छुक) प्रदोषः = संध्याकालः (सायंकाल) । प्रावारकम् = उत्तरीयम् (दुपट्टा) ।

अनुदासीनम्—न उदासीनमनुदासीनम्—उदासीनतारहितम् (उदासीनता हीन) । यौवनम् = तारुण्यम् (यौवन) । पटवासगन्धः = सुरभिः (सुगन्ध) । सूचयन्ति = निर्दिशन्ति (बतला रहे हैं) ।

चेटी—आर्य, मैं रदनिका हूँ ।

विदूषक—आओ चलें । (दोनों चलने लगते हैं) ।

नायक—भद्रे ! देवकार्य समाप्त कर लिया ?

गणिका—(मन ही मन) परिजन जान कर मुझे पुकार रहे हैं । अस्तु, (अब मैं) रक्षित हूँ ।

नायक—संध्याकाल में शीतल वायु चल रही है । अतः चादर ले लो ।

गणिका—(चादर लेकर प्रसन्नता के साथ मन ही मन) इस (चादर) की सुगन्ध बतला रही है कि उनका यौवन उदासीन नहीं है ।

नायकः—रदनिके ! प्रवेश्यतामभ्यन्तरचतुःशालम् ।

गणिका—(आत्मगतम्) अभःइणी अहं अब्भन्तरप्पवेसस्स । [अभागिन्यहमभ्यन्तरप्रवेशस्य] ।

नायकः—किमिदानीं न प्रविशसि ।

गणिका—(आत्मगतम्) इदाणिं अहं किं भणिस्सं । [इदानीमहं किं भणिष्यामि] ।

नायकः—रदनिके ! किं विलम्बसे ।

(रदनिकाविदूषकावुपसृत्य)

चेटी—भट्टिदारअ ! इअं म्हि । [भर्तृदारक ! इयमस्मि] ।

नायकः—इयमिदानीं का ।

अविज्ञातप्रयुक्तेन धर्षिता मम वाससा ।

अभ्यन्तरचतुःशालम् = अन्तःपुरम् (अन्तःपुर को) ।

अभागिनी—नास्ति भाग्यं यस्याः सा = मन्दभाग्या (भाग्यहीना) ।

विलम्बसे = वेलातिक्रमं क्रियसे (देर कर रही हो) । उपसृत्य = पार्श्वमुपगम्य (निकट जाकर) ।

भर्तृदारक = हे भर्त्तः (हे भर्तृदारक) ।

अविज्ञातप्रयुक्तेनेति । मम = चारुदत्तस्य (मेरे) अविज्ञातप्रयुक्तेन—न विज्ञातमविज्ञातम्, तेन प्रयुक्तम्, तेन = अज्ञात-प्रदत्तेन (अनजान में दिये गये) । वाससा = वस्त्रेण (वस्त्र-चादर से) । धर्षिता = पीडिता (पीडित या व्याकुल

नायक—रदनिके ! (यह चादर) चतुःशाला के अन्दर ले जाओ । —

गणिका—(मन ही मन) मैं अन्तःपुर मे प्रवेश के लिए अभागिन हूँ ।

नायक—क्या इस समय अन्दर नही जा रही हो !

गणिका—(मन ही मन) अब मैं क्या कहूँ ?

नायक—रदनिके ! देर क्यों कर रही हो ।

(रदनिका और विदूषक आगे बढ कर) ।

चेटी—हे भर्तृदारक ! मै यह हूँ ।

नायक—यह अब कौन है—

इस समय अजात रूप से प्रयुक्त मेरे वस्त्र (चादर) के कारण पीडित,

संवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते ॥ २७ ॥

गणिका—(आत्मगतम्) दीवालोअसूइदरूवो सो एव्व दाणि एसो, जस्स किदे अहं णिस्सासमत्तलक्खिदं सरीरं उव्वहामि। [दीपालोकसूचितरूपः स एवेदानीमेषः, यस्य कृतेऽहं निःश्वासमात्ररक्षितं शरीरमुद्वहामि]।

विदूषकः—भो चारुदत्त ! राअसालो सण्ठाणो सवट्टेण सीसेण अणुवन्दिअ विण्णवेदि—णाडअइत्थिआ वसन्तसेणिआ णाम गणिआदारिआ अम्हेहिं बलक्कारेण णीअमाणा महन्तेण सुवण्णालङ्कारेण तुम्हाणं गेहं पविट्ठा। सा तुवे णिय्याअइदव्वत्ति। [भोः चारुदत्त ! राजश्यालः संस्थानः सपट्टेन शीर्षेणानुवन्ध्य विज्ञापयति—नाटकस्त्री वसन्तसेना

बनाई गई)। शरदभ्रेण—शरदोऽभ्रम् शरदभ्रम्, तेन = शरत्कालीनघनेन (शरत्काल के बादल द्वारा) संवृता = संछन्ना (घिरी हुई) चन्द्रलेखा इव= चन्द्रकान्तिरिव (चन्द्रमा की कान्ति के समान) इयम् = एषा (यह) शोभते= राजते (शोभित हो रही है)। अत्रोपमालङ्कारः। अनुष्टुव्वृत्तम् ॥ २७ ॥

दीपालोकेति। दीपालोकसूचितरूपः = दीपस्यालोकः, तेन सूचितं तादृशं रूपं यस्य सः = दीपप्रकाशप्रकटिताकृतिः (दीपक के आलोक से प्रकटित स्वरूप वाले)। सः एव = चारुदत्तः एव इव, (चारुदत्त ही हैं)। यस्य कृते = यस्य हेतोः (जिनके कारण)। निःश्वासमात्ररक्षितम् = निःश्वासमात्रेण रक्षितम् = उच्छ्वासमात्रधृतम् (केवल निःश्वास धारण किया हुआ) शरीरम् = देहम् (शरीर को)। उद्वहामि= धारयामि (धारण किए हूँ)। सपट्टेन = सोष्णीषेण शीर्षेण = शिरसा (पगड़ी बाँधे हुए शिर से)। अनुवन्द्य = प्रणम्य (प्रणाम करके)। विज्ञापयति = निवेदयति (निवेदन कर रहा है)।

शरत्काल के बादल से घिरी चन्द्र कला के समान यह कौन शोभित हो रही है ॥ २७ ॥

गणिका—(मन ही मन) दीपक के प्रकाश से सूचित रूप वाले यह तो वही (चारुदत्त ही) है जिनके लिए मैं केवल निःश्वासों में जीवित हूँ।

विदूषक—हे चारुदत्त ! राजश्यालक संस्थानक पगड़ी बाँधे शिर से प्रणाम करके निवेदन करते हैं कि नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम की वेश्यापुत्री हमारे

नाम गणिकादारिकास्माभिर्बलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण युष्माकं गेहं प्रविष्टा। सा श्वो निर्यातयितव्येति]।

गणिका—(आत्मगतम्) हं बलक्कारेण णीअमाणत्ति णं भणादि। भोदु, अअं पत्तकालो। (प्रकाशम्) अय्य ! सरणागदम्हि। [अहं बलात्कारेण नीयमानेति ननु भणति। भवतु, अयं प्राप्तकाल:। आर्य ! शरणागतास्मि]।

नायक:—न भेतव्यम्, न भेतव्यम्। किं वसन्तसेनैषा।

विदूषक:—अविहा वसन्तसेणा। (अपवार्य) भो चारुदत्त ! वसन्तसेणा खु इअं, जा भवदा कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तसंथुदा सण्णिहिदमणोभवेण हिअएण उव्वहीअदि ! ता पेक्खदु इअं। [अविहा वसन्तसेना। भो: चारुदत्त ! वसन्तसेना खल्वियं, या भवता कामदेवानुयानप्रभृति नयनमात्रसंस्तुता सन्निहितमनोभवेन हृदयेनोदुह्यते। तत् पश्यत्विमाम्]।

दारिका = पुत्रिका (लड़की)। नीयमाना = प्राप्यमाणा (लाई गई)। प्राप्त: काल:—प्राप्त: काल: य: स: = उचितावसर: (उचित समय है)। न भेतव्यम् = भयं न करणीयम् (डर नहीं करना चाहिए)।

भवता = आर्येण चारुदत्तेन (आप, आर्य चारुदत्त के द्वारा)। कामदेवानुयानप्रभृति—कामदेवस्य = मदनस्य अनुयानम् = अनुगमनम् = मदनोत्सवगमनानन्तरम्, तत: प्रभृति (कामदेव, मदनमहोत्सव में जाने के बाद से ही)। नयनमात्रसंस्तुता—नयनमात्रेण = केवलमवलोकनेन संस्तुता = परिचिता (देखने मात्र से परिचित बनी हुई)। सन्निहितमनोभवेन—सन्निहित: = सञ्जात: मनोभव: = कामदेव: यस्य तेन (उत्पन्न कामभाव से)। हृदयेन =

द्वारा बलात् लाई गई बहुत से स्वर्णभूषणों के साथ आप के घर में घुस गई है। उसे कल (अपने घर से) निकाल दीजिए।

गणिका—(मन ही मन) वह कहता है कि मैं जबर्दस्ती लाई गई हूँ। अच्छा, यह ठीक अवसर है। (प्रकट रूप में) आर्य ! मैं शरण में हूँ।

नायक—मत डरो, मत डरो। क्या यह वसन्तसेना हैं ?

विदूषक—हाय वसन्तसेना ! (रोक कर) हे चारुदत्त ! यह तो वसन्त सेना है। जिससे आपने मदनमहोत्सव में जाने के आरम्भ से लेकर देखने मात्र

नायकः—वयस्य ! पश्याम्येनां,

यत्र मे पतितः कामः क्षीणे विभवसञ्चये ।
रोषः कुपुरुषस्येव स्वाङ्गेष्वेवावसीदति ॥ २८ ॥

गणिका—अदिण्णभूमिप्पवेसपधरिसणेण अवरद्धा अहं अय्यं सीसेण पसादेमि । [अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेनापराद्धाहमार्यं शीर्षेण प्रसादयामि] ।

चेतसा (हृदय से) उदुह्यते = उद्वाहरूपेण धार्यते (स्वीकार किया जा रहा है) । पश्यतु = अवलोकयतु (देखें) । इमाम् = एताम् (इसको) ।

वयस्य इति । इमाम् = एताम् (इसको) । पश्य=अवलोकय (देखें) ।

विभवसञ्चये = विभवस्य सञ्चयस्तस्मिन् = अर्थसङ्ग्रहे (धनसंग्रह में) । क्षीणे = नष्टे सति (नष्ट हो जाने पर) । यत्र = यस्याम् (जिस पर) । मे = मम (मेरी) । कामः = इच्छा (कामना या अनुराग) । पतितः = गतः (पड़ा, उत्पन्न हुआ) । कुपुरुषस्य—कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः, तस्य = निन्दित-जनस्य (नीच पुरुष के) । रोषः इव = क्रोधः इव (क्रोध के समान) । स्वाङ्गेषु—स्वस्याङ्गानि स्वाङ्गानि, तेषु = आत्मावयवेषु एव (अपने ही अङ्गों में) । अवसीदति = लीयते (छिप गया है) । अत्रोपमालङ्कारः । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २८ ॥

अदत्तेति । अदत्तभूमिप्रवेशप्रधर्षणेन—अदत्तः भूमिप्रवेशः, तेन, प्रधर्षणम् तेन= अदत्तभूप्रवेशानुमतिपीडनेन (गृह प्रवेश की अनुमति दिये बिना बलात् प्रवेश करने की पीडा से) । अपराद्धा=अपराधकृता (अपराधिनी) । शीर्षेण=शिरसा (सिर से, माथा टेक कर) । प्रसादयामि=अनुमोदयामि (प्रसन्न करती हूँ) ।

से परिचय प्राप्त किया और उत्पन्न कामना वाले हृदय से जिसे स्वीकार किया था । अतः इसे देखिए—

नायक—मित्र ! देखो—धन वैभव के क्षीण हो जाने पर जिस वसन्तसेना में मेरा अनुराग उत्पन्न हुआ है, कायर-पुरुष के क्रोध के समान वह (अनुराग) अपने अङ्गों में ही गायब हो रहा है ॥ २८ ॥

गणिका—गृह-प्रवेश की आज्ञा दिये बिना ही प्रवेश करके किये गये अपराध को क्षमा करने के लिए मैं माथा टेक कर प्रार्थना करती हूँ ।

नायकः—यद्येवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि।

विदूषकः—भो! विवहन्ता इव सअडिअं दुव्विणीदवलीवद्दा अण्णोण्णं सङ्किलेसन्ति। अहं दाणि कं पसादेमि। भोदु, दाणि रदणिअं पसादेमि। रदणिए! पसीददु, पसीददु होदी। [भोः! विवदन्ताविव शकटिकां दुर्विनीतवलीवर्दावन्योन्यं संक्लेशयतः। अहमिदानीं कं प्रसादयामि। भवतु इदानीं रदनिकां प्रसादयामि। रदनिके! प्रसीदतु, प्रसीदतु भवती]।

नायकः—भवति! परवानस्मि। किमनुतिष्ठति स्नेहः।

अविज्ञातप्रयुक्तेन— न विज्ञातमविज्ञातम्, तदवस्थायां प्रयुक्तम्, तेन (अज्ञात दशा में प्रयुक्तम्)। प्रेष्यसमुदाचारेण=प्रेष्यस्य=दासस्य समुदाचारः, तेन = दासवदाचरणेन (नौकर के समान व्यवहार करने के कारण से)। सापराधः—अपराधेन सहेति = अपराधसहितः (अपराधयुक्त, मैं)।

शकटिकाम् = यानम् (गाड़ी को)। विवदन्तौ = विवदमानौ (झगड़ते हुए)। दुर्विनीतवलीवर्दौ इव—दुर्विनीतौ = मदोद्धतौ वलीवर्दौ = वृषभौ इव (मतवाले बैलों के समान)। अन्योन्यम् = परस्परम् (आपस में)। संक्लेशयतः = पीडयतः (क्लेश पहुँचा रहे हैं)। प्रसीदतु = प्रसन्ना भव (प्रसन्न हो जाओ)।

परवान् = परवशः (पराधीन)। अनुतिष्ठति = वर्तते (टिकता है)।

नायक—यदि ऐसा है तो मैं भी अनजाने में नौकरों जैसे किये गये व्यवहार से अपराधयुक्त होने के कारण आप से क्षमा-प्रार्थना कर रहा हूँ।

विदूषक—अरे! गाड़ी खींचने में लगे हुए मतवाले (बिगड़े हुवे) बैलों की भाँति यह दोनों दुष्ट विवाद करते हुए (एक दूसरे को) अनुनय विनय में क्लेश पहुँचा रहे हैं। मैं इस समय किसे प्रसन्न करूँ। अस्तु, अब रदनिका को प्रसन्न करता हूँ। रदनिके! प्रसन्न हो जाओ। आप प्रसन्न हो जाओ।

नायक—श्रीमती जी, मैं पराधीन हूँ। (अतः मेरा यह) स्नेह आपको क्या लाभ करेगा।

गणिका—(आत्मगतम्) महुरं खु इच्छिदव्वं। अदक्खिणं खु पढमदंसणे जदिच्छागदाए इह वसिदुं। ता एवं करिस्सं। (प्रकाशम्) जइ मे अय्यो पसण्णो, अज्जं मे अलङ्कारो इह एव्व चिट्ठदु। अलङ्कारणिमित्तं पावा मं अणुसरन्ति। अहं पि अय्येण रक्खिदा गेहं गन्तुमिच्छामि। [मधुरं खल्वेष्टव्यम्। अदक्षिणं खलु प्रथमदर्शने यदृच्छागतयेह वस्तुम्। तदेवं करिष्यामि। यदि मे आर्यः प्रसन्नः अयं मेऽलङ्कार इहैव तिष्ठतु। अलङ्कारनिमित्तं पापा मामनुसरन्ति। अहमप्यार्येण रक्षिता गेहं गन्तुमिच्छामि]।

नायकः—अन्वर्थमुपदिशति। मैत्रेय! गृह्यताम्।

विदूषकः—ण मे सद्धा। [न मे श्रद्धा]।

नायकः—मूर्ख! गृह्यताम्।

एष्टव्यम् = एषितुं योग्यम् = प्रार्थनीयम् (प्रार्थनायोग्य)। अदक्षिणम् = अकुशलम् (अकुशल, मूर्ख को)। प्रथमदर्शने=प्रथमसाक्षात्कारे (प्रथम मिलन में)। यदृच्छया = स्वेच्छया (स्वेच्छा से)। इह = अत्र (यहाँ) वस्तुम् = निवासं विधातुम् (रहने को)। पापाः = पापिष्ठाः (पापी लोग)। अनुसरन्ति = अनुगच्छन्ति (पीछा कर रहे हैं)। गेहम् = गृहम् (घर को)। गन्तुम् = प्रयातुं (जाने को)।

अन्वर्थमिति। अन्वर्थम् = सार्थकम् (सफल)। उपदिशति = शिक्षयति (उपदेश देती है)। गृह्यताम् = गृहाण (ले लो)।

गणिका—(मन में) वास्तव में मधुर वस्तु प्राप्त करने योग्य समय है। प्रथम दर्शन में इच्छानुसार यहाँ रहना ठीक नहीं है। अतः ऐसा करती हूँ (प्रकट रूप में) यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा यह आभूषण यहीं रहने दीजिए (रख लीजिए) आभूषण के लिए पापी लोग मेरा पीछा कर रहे हैं। मैं भी आप से रक्षित होकर घर को जाना चाहती हूँ।

नायक—ठीक कह रही है। मैत्रेय! ले लो।

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं है।

नायक—मूर्ख! ग्रहण कर लो।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। आणेदु भोदी। [यद् भवानाज्ञापयति। आनयतु भवती]।

(गणिका विमुच्यालङ्कारं प्रयच्छति)।

विदूषकः—(गृहीत्वा) रदणिए! गह्ण एदं सुवण्णालङ्कारं तुवं। सट्ठीए सत्तमीए अ धारेहि। अहं अट्ठमीए अणज्झाए धारइस्सं। [रदनिके। गृहाणैतं सुवर्णालङ्कारं त्वम्। षष्ठ्यां सप्तम्यां च धारय। अहमष्टम्यामनध्याये धारयिष्यामि]।

चेटी—(विहस्य) सत्थं वक्खाणअन्तस्स भट्टिपुत्तस्स तदाणिं अवसरो होदि। आणेदु अय्यो। (गृहीत्वा निष्क्रान्ता)। [शास्त्रं व्याचक्षाणस्य भर्तृपुत्रस्य तदानीमवसरो भवति। आनयत्वार्यः]।

नायकः—कोऽत्र भोः! : दीपिका तावत्।

आनयतु = आहरतु (ले आओ), विमुच्य = उन्मुच्य (उतार कर)। ददाति = प्रयच्छति (देती है)।

अनध्याये = अध्ययनावकाशे (अवकाश के दिन)। धारयिष्यामि = गृहीष्यामि (ले लूँगी)।

व्याचक्षमाणस्य = व्याख्याक्रियमाणस्य (व्याख्यान करने में लगे हुए)। भर्तृपुत्रस्य = भवतः (आप)। तदानीम् = तत्समये (उस समय)। दीपिका तावत् = दीपकं त्वानय (दीपक तो ले आओ)।

विदूषक—जो आप की आज्ञा। श्रीमतीजी! लाइये।

(गणिका उतार कर आभूषण देती है।)

विदूषक—(लेकर) रदनिके! रदनिके! इन स्वर्णाभूषणों को तुम ले लो। षष्ठी या सप्तमी तक रख लो। मैं अष्टमी को अनध्याय (अवकाश के दिन) पर ले लूँगा।

चेटी—(हंस कर) शास्त्रों की व्याख्या करने वाले आर्य पुत्र का उस समय अवसर होगा। आप ले आयें।

नायक—अरे! यहाँ कौन है? दीपिका (लालटैन) तो ले आओ।

विदूषकः—भोः ! दीविआ गणिका विअ णिस्सिणेहा संवुत्ता ।
[भोः ! दीपिका गणिकेव निःस्नेहा संवृत्ता] ।

नायकः—कृतं दीपिकया । (विलोक्य) उदितो भगवान् सर्वजन-सामान्यप्रदीपश्चन्द्रः । अतः खलु,

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा

निःस्नेहा— निर्गतः स्नेहः-यस्याः सा = स्नेहहीना = तैलहीना (तेल या स्नेह हीन) । सम्वृत्ता = सञ्जाता (हो गई है) ।

कृतं दीपिकया = अलं दीपकेन (दीपक की आवश्यकता नहीं है) । उदितः = प्रकटितः (उदित हो गये हैं) । सर्वजनसामान्यप्रदीपः—सर्वेषां सामान्यजनानां प्रदीपः = सर्वलोकदीपकः (सर्व साधारण जन का दीपक) ! चन्द्रः = विधुः (चन्द्रमा) ।

उदयतीति । युवतिजनसहायः — युवतिजनानां सहायः = तरुणीजनसहकारः (युवतियों का सहयोगी) । क्लिन्नखर्जूरपाण्डुः— क्लिन्नः = स्वेदयुक्तः खर्जूरः 'खजूर' इति पादपविशेषः, तद्वत्पाण्डुः = श्वेतः (श्वेतः हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः इत्यमरः) (गीले खजूर के पेड़ के समान पाण्डु रंग वाला) । राजमार्ग-प्रदीपः—राजमार्गस्य = घण्टापथस्य प्रदीपः = प्रकाशकः (राजमार्ग को प्रकाशित करने वाला) । शशाङ्कः = चन्द्रः (चन्द्रमा) उदयति = प्रकटितो भवति (उदित हो रहा है) । हि = यतः (क्योंकि) । तिमिरनिचयमध्ये— तिमिरस्य = अन्धकारस्य यो निचयः = समूहः, तस्य मध्ये (तमः पुञ्ज के

विदूषक—अरे ! दीपिका (लालटैन) वेश्या के समान स्नेहहीन (तेल-रहित, प्रेमरहित) हो गई है ।

नायक—लालटैन की अब आवश्यकता नहीं है । (देख कर) भगवान् सर्वजन-साधारण के दीपक चन्द्रदेव उदित हो गये हैं ।

इसी लिए तो—अभिसार काल में युवतियों को सहयोग देने वाला, गीले खजूर के समान पाण्डु वर्ण वाला तथा राजमार्ग को प्रकाशित करने वाला चन्द्रमा निकल रहा है जिसकी गौरवर्ण किरणें अन्धकार-समूह में उसी प्रकार

हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥ २९ ॥

भवति ! राजमार्गे निष्क्रमणः क्रियताम् । सखे ! अनुगच्छात्रभवतीम् ।

विदूषकः—जं भव आणवेदि । एदु एदु भोदी । [यद् भवानाज्ञापयति । एत्वेतु भवती ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

बीच) गौराः = गौरवर्णाः (गोरे रंग की) रश्मयः = किरणाः (किरणें) । हृतजलपङ्के—हृतं जलं यस्मात् तादृशे पङ्के = जलशुष्ककर्दमे (जलसोखी हुई कीचड़ में) । क्षीरधाराः इव = क्षीरस्य = दुग्धस्य धाराः = रेखाः इव (दूध की धाराएँ जैसी) । पतन्ति = क्षरन्ति (गिर रहीं हैं) । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ २९ ॥

भवति = श्रीमति (आप) । राजमार्गे = राजपथे (सड़क पर) । निष्क्रमणः = निर्गमनम् (निष्क्रमण) । क्रियताम् = विधीयताम् (कीजिए) । सखे ! मित्र (हे मित्र) । अनुगच्छ = अनुचल (अनुसरण करो) ।

एतु एतु = आगच्छत्वागच्छतु (आइये, आइये) ।

इति सुधायां प्रथमोऽङ्कः ।

पड़ रही हैं मानो जलशून्य कीचड़ में दूध की धाराएँ गिर रही हों ॥ २९ ॥

श्रीमति ! राजमार्ग पर चलें । सखे ! आपके (वसन्त सेना के) पीछे पीछे चलो ।

विदूषक—जो आप की आज्ञा । श्रीमतीजी, आइये, आइये ।

(सब निकल जाते हैं) ।

इति हिन्दीटीकायां प्रथमोऽङ्कः ।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गणिका चेटी च)

गणिका—तदो तदो । [ततस्ततः] ।

चेटी—अम्महे ण किम्बि मए भणिदं । किं तदो त्ति । [अम्महे न किञ्चिन्मया भणितम् । किं ततस्तत इति] ।

गणिका—हञ्जे ! किं मए मन्तिदं । [हञ्जे ! किं मया मन्त्रितम्] ।

चेटी—अज्जुए ! सिणेहो पुच्छदि, ण पुरोभाइदा । किं चिन्तीअदि । [अज्जुके ! स्नेहः पृच्छति, न पुरोभागिता । किं चिन्त्यते] ।

गणिका—हञ्जे । तुमं दाव किं ति तक्केसि । [हञ्जे ! त्वं तावत् किमिति तर्कयसि] ।

तत इति । ततः = तदनन्तरम् (तदनन्तर) ।

ततस्ततः = ततः किमभवत् (फिर क्या हुआ) ?

हञ्जे ! चेटीसम्बोधनम् (हे चेटी) (हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचां चेटीं सखीं प्रति । इत्यमरः) । मन्त्रितम् = कथितम् (कहा) ।

ऋजुके = सरले ! अज्जुके = गणिके वा ('नाट्योक्तौ गणिकाज्जुका' इत्यमरः) । (हे सरले, गणिके !) । स्नेहः = अनुरागः (स्नेह) । पृच्छति—प्रष्टुं प्रेरयति (पूछ रहा है) । न पुरोभागिता = न दोषैकदर्शिता, न उद्दण्डता वा (उद्दण्डता नहीं) । चिन्त्यते = विचार्यते (सोचा जा रहा है) ।

तर्कयसि = अनुमन्यसे (अनुमान कर रही हो) ।

(तब गणिका और चेटी प्रवेश करती है) ।

गणिका—फिर क्या हुआ ?

चेटी—मैंने कुछ नहीं कहा । 'फिर क्या हुआ' 'फिर क्या हुआ' ऐसा क्यों पूछ रही हो) ।

गणिका—हे सखी ! मैंने क्या कहा ?

चेटी—हे भोलीभाली ! प्रेम पूछ रहा है, उद्दण्डता नहीं । क्या सोच रही हो ?

गणिका—हञ्जे ! तुम क्या अनुमान कर रही हो ?

चेटी— अप्पओअणदाए गणिआभावस्स अज्जुआ कं पि कामेदि त्ति तक्केमि। [अप्रयोजनतया गणिकाभावस्याज्जुका कमपि कामयत इति तर्कयामि]।

गणिका—सुट्ठु तुए किदं। अवञ्चिदा दे दिट्ठी। ईदिसवण्णव्येव। [सुष्ठु त्वया कृतम। अवञ्चिता ते दृष्टिः। ईदृशवर्णैव!]

चेटी—अणलंकिदं पि अज्जुअं मण्डिदं विअ पेक्खामि। कामो हि भअवं अणवगीदो ऊसुवो तरुणजणस्स। [अनलङ्कृतामप्यज्जुकां मण्डितामिव पश्यामि। कामो हि भगवाननवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य]।

अप्रयोजनतया = व्यर्थतया (वे मतलब से)। गणिकाभावस्य = वेश्यावृत्तेः (वेश्या वृत्ति के)। अज्जुका = गणिका (वेश्या)। कमपि=प्रेमिजनम् (किसी प्रेमी को)। कामयते = इच्छति (चाहती है)।

सुष्ठु = शोभनम् (अच्छा)। कृतम् = विहितम् (किया)। ते = तव (तुम्हारी)। दृष्टिः = अवलोकनशक्तिः (दृष्टि)। अवञ्चिता = वञ्चनाहीना (अचूक है)। ईदृशो वर्णो यस्याः सा = ईदृशवर्णा = (ऐसी दशा वाली)।

अनलङ्कृतेति। अनलङ्कृताम्—न अलङ्कृता अनलङ्कृता ताम् = अभूषिताम् (आभूषणों से रहित)। अपि = भी। अज्जुकाम् गणिकाम् (वेश्या को)। मण्डिताम् इव = भूपिताम् इव = राज्जीकृतामिव (राजी हुई सी)। पश्यामि = अवलोकयामि (देख रही हूँ)। भगवान् कामः = कामदेवः (कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः इत्यमरः)। (मदन) अनवगीतः= अनिन्दितः (अनिन्दित)। उत्सवः = समारोहः (उत्सव)।

चेटी—'वेश्यावृत्ति की अनावश्यकता से (धनाढ्या होने के कारण) आप किसी प्रेमी को चाहती है' मैं यह अनुमान कर रही हूँ।

गणिका—तुम ठीक अनुमान किया। तुम्हारी दृष्टि अचूक है। मेरी ऐसी ही दशा है।

चेटी—अलंकार (सजावट) के बिना भी मैं आपको सजा-संवार देख रही हूँ। क्योंकि भगवान् कामदेव युवा जनों के अनिन्दित उत्सव है।

गणिका—हदासे ! उक्कण्ठिदव्वे का दे रदी। [हताशे ! उत्कण्ठितव्ये का ते रतिः]।

चेटी—अज्जुए ! इच्छामि पुच्छिदुं वहुमाणो विअ रमणीओ कोच्चि राअकुमारो। [अज्जुके। इच्छामि प्रष्टुं वहुमान इव रमणीयः कश्चिद राजकुमारः]।

गणिका—रमिदुं इच्छामि, ण सेविदुं। [रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम्]।

चेटी—किण्णु खु विज्जाविसेसरमणीओ कोच्चि बह्मणदारओ। [किन्नु खलु विद्याविशेषरमणीयः कश्चिद् ब्राह्मणदारकः]।

हताशे हताः = भग्नाः आशाः = कामनाः यस्याः साः, तत्सम्बुद्धौ = हे निराशे ! (हे भग्न कामनाओं वाली)। उत्कण्ठितव्ये = उत्कण्ठाकरणयोग्ये जने (उत्कण्ठा योग्य जन में। ते = तव (तुम्हारी) का रतिः = कोऽनुरागः (क्या प्रेम है)।

अज्जुके = गणिके (हे वाराङ्गने !) वहुमानः = मानधनी (वहुमानी) रमणीयः = रमणयोग्यः (रमण करने योग्य) राजकुमार इव = राजपुत्र इव (राज कुमार सा है)। प्रष्टुम् इच्छामि = पिपृच्छामि (पूछना चाहती हूँ) !

रन्तुम् = रमणं कर्तुम् (रमण करने को)। सेवितुम् सेवां कर्तुम् (सेवा करने को)। विद्याविशेषरमणीयः—विद्यायाः = ज्ञानस्य विशेषेण = विशिष्टतया रमणीयः = सुन्दरः (विद्या रूपी विशेषता से रमणीयः)। ब्राह्मणदारकः = विप्रसुतः (ब्राह्मणकुमार)।

गणिका—हे भग्न आशाओं वाली। उत्कण्ठा करने योग्य वस्तु में तेरा अनुराग ही क्या ?

चेटी—अज्जुके ! मैं यह पूछना चाहती हूँ कि क्या आप बहुमानी किसी राज कुमार को चाहती हैं ?

गणिका—मैं रमण करना चाहती हूँ, सेवा करना नहीं चाहती।

चेटी—क्या विद्या विशेष से रमणीय कोई ब्राह्मण कुमार है ?

गणिका—अत्थि अदिबहुमदो विस्सम्भो। पूअणीओ खु सो जणो। [अस्त्यतिबहुमतो विश्रम्भः। पूजनीयः खलु स जनः]।

चेटी—किण्णु हु वणिजदारओ कोच्चि आगन्तुओ। [किन्नु खलु वणिग्दारकः कश्चिदागन्तुकः]।

गणिका—उन्मत्तिए। आसाच्छेदं उक्कण्ठन्ता का सहेदि। [उन्मत्तिके! आशाच्छेदमुत्कण्ठमाना का सहते]।

चेटी—किं ण सक्कं सोढुं। को अम्हाणं मणोरहाउत्तो। [किं न शक्यं श्रोतुम्। कोऽस्माकं मनोरथावुत्तः!]

गणिका—किं तुवं कामदेवाणुयाणे ण आअदा सि। [किं त्वं कामदेवानुयाने नागतासि]।

अतिबहुमतः=अत्यादृतः (अत्यादर युक्त)। विश्रम्भः=प्रणयः (अनुराग)। पूजनीयः = पूजार्हः (पूजा करने योग्य)।

वणिग्दारकः = वैश्यपुत्रः (वणिक्पुत्र)। आगन्तुकः = अभ्यागतः = वैदेशिको वा (परदेशी)।

उन्मत्तिके = हे उन्मादकारिणि (अरी पगली)। उत्कण्ठमाना=उत्कण्ठिता (उत्कण्ठा युक्त रमणी)। आशाच्छेदम्=आशायाः छेदः नाशः यस्य तम्=भग्नाशम् (आशा भङ्ग करने वाले को)। आगन्तुकस्य=वैदेशिकस्य (परदेशी का)। का सहते = न कापि नारी सहते (कोई भी स्त्री नहीं सहन करती है)। श्रोतुम् = आकर्णयितुम् (सुनने को)। शक्यम्=सामर्थ्यम् (समर्थता)। मनोरथावुत्तः= मनोरथः = अभीष्टः आवुत्तः = भगिनीपतिः (मनचाहे जीजाजी)।

किमिति। कामदेवानुयाने—कामदेवस्यानुयाने=समारोहे (मदनोत्सव में)।

गणिका—ब्राह्मण-पुत्र में मेरा विशेष रूप से प्रेम है क्योंकि वह पूजनीय है।

चेटी—तो क्या कोई आगन्तुक व्यापारी पुत्र ··· ··· ···।

गणिका—पगली! उत्कण्ठा युक्त कौन नारी आशा का भङ्ग (परदेशी के परदेश चले जाने के वियोग में) होना सहती है।

चेटी—तो क्या मैं भी सुन सकती हूँ कि कौन हमारे मनोरथ पूरा करने वाले जीजाजी है!'

गणिका—क्या तुम मदनोत्सव में नहीं आई थीं।

चेटी—णं आअदम्हि। [नन्वागतास्मि]।

गणिका—केण उदासीणं मन्तेसि। [केनोदासीनं मन्त्रयसे]।

चेटी—भणादु, भणादु अज्जुआ, भणादु। [भणतु, भणत्वज्जुका, भणतु]।

गणिका—हञ्जे! सुणाहि दाव। अत्थि सत्थवाहपुत्तो चारुदत्तो णाम। [हञ्जे! शृणु तावत् अस्ति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम]।

चेटी—जेण सरणागदा तुवं रक्खिदा। [येन शरणागता त्वं रक्षिता]।

गणिका—सो एव्व। [स एव]।

चेटी—हद्धि, दरिद्दो क्खु सो। [हा धिक्, दरिद्रः खलु सः]।

गणिका—अदो क्खु कामीअदि। अदिदरिद्दपुरुससत्ता गणिआ अवअणीआ होइ। [अतः खलु काम्यते। अतिदरिद्रपुरुषसक्ता गणिका अवचनीया भवति]।

उदासीनम् = विरक्तम् (अनुरागहीन को)। मन्त्र्यसे = कथयसि (कहती हो)। शरणागत—शरणे आगता = प्राप्ता (शरण मे आई हुई)। हा धिक् = कष्टं भोः (हाय दुःख हैं)। अवचनीया = अकथनीया (अनिन्दनीय)। काम्यते = कामना क्रियते (कामना की जाती है)। अतिदरिद्रपुरुषसक्ता—अतिदरिद्रे पुरुषे सक्ता = अतिनिर्धनानुरक्ता (अतिनिर्धन व्यक्ति से अनुराग रखने वाली)।

चेटी—आई तो थी।

गणिका—विरक्त सी क्यों बोल रही हो।

चेटी—कहो कहो, अज्जुके! कहो।

गणिका—हञ्जे! तो सुनो। चारुदत्त नामक सार्थवाहपुत्र (व्यापारी-सुत) है।

चेटी—जिन्होंने शरण में पहुँची हुई तुम्हारी रक्षा की थी।

गणिका—वही तो।

चेटी—हाय धिक्कार है, वह तो निर्धन हैं।

गणिका—इसी लिए तो चाहती हूँ। अतिदरिद्र पुरुष पर आसक्त होने वाली वेश्या निन्दित नहीं होती है।

चेटी–अज्जुए ! उद्धूदपुप्फं सहआरं महुअरा उवासन्ति । [अज्जुके ! उद्धूतपुष्पं सहकारं मधुकरा उपासते] ।

गणिका—हञ्जे ! एवं, उवासन्ति । दे महुअरा त्ति पुच्छीअन्ति । [हञ्जे ! एवम्, उपासते । ते मधुकरा इति पृच्छ्यन्ते] ।

चेटी— किं, विहवमन्ददाए वेसवासप्पसङ्गकादरो दुक्खं त्ति जइ ण आअच्छे ! [किं, विभवमन्दतया वेशवासप्रसङ्गकातरो दुःखमिति यदि नागच्छेत्] ।

गणिका – णं अहं तं कामेमि । [नन्वहं तं कामये] ।

चेटी—जइ एत्तओ वहुमाणो, किं णाभिसरीअदि । [यद्येतावान् बहुमानः, किं नाभिस्रियते] ।

अज्जुए इति । उद्धूतपुष्पम्—उद्धूतानि पुष्पाणि यस्य तम् = मञ्जरीयुतम् (बौर से लदे) । सहकारम्=रसालम् (आम के पेड़ को) । मधुकराः = भ्रमराः (भौरे) । उपासते = सेवन्ते (सेवन करते हैं) ।

पृच्छयन्ते = उपालभ्यन्ते (उलाहना दिये जाते है) ।

विभवमन्दतया—विभवस्य = सम्पदायाः मन्दता = क्षीणता, तया (धन की क्षीणता से) । वेशवासप्रसङ्गः—वेशवासस्य = वेश्यालयस्य प्रसङ्गः= प्रसक्तिः तस्मिन् कातरः (वेश्या गृह की आसक्ति से कातर) । न आगच्छेत् = नायात् (यदि न आ जायें) ।

बहुमानः = समादरः (आदर) । अभिस्रियते = अभिसरणं क्रियते (पास चली जाती हो) ।

चेटी—गणिके ! मञ्जरी वाले आम के वृक्ष को भौंरे सेवन करते है ।

गणिका—हे सखी ! हाँ, वे बैठते है । उसी से लोग मधुहारक कहकर उलाहना देते हैं ।

चेटी—यदि धन की कमी के कारण वेश्यागृह में अनुराग होने से व्याकुल वह दुःख मान कर न आयें तो ।

गणिका—मैं तो वास्तव में उन्हें चाहती हूँ ।

चेटी—यदि ऐसा आकर्षण है तो (उनके पास) चली क्यों नहीं जाती हो ।

गणिका - ण हु ण गच्छामि। किन्तु सहसा अभिसरिदो पच्चुअ-आरदुल्लभदाए पुणो मे दुल्लभो भवे त्ति विलम्बेमि। [न खलु न गच्छामि। किन्तु सहसाभिसृतः प्रत्युपकारदुर्लभतया पुनर्मे दुर्लभो भवेदिति विलम्बे]।

चेटी—हं किं एतण्णिमित्तं तहि एव्व सो अलङ्कारो ठाविदो। [हं, किमेतन्निमित्तं तत्रैव सोऽलङ्कारः स्थापितः]।

गणिका—ईदिसं एव्व। [ईदृशमेव]।

(ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण संवाहकः)

संवाहकः—अय्ये ! सरणागदो म्हि। [आर्ये ! शरणागतोऽस्मि]।

गणिका—अलं अय्यस्स सम्भमेण। [अलमार्यस्य सम्भ्रमेण]।

चेटी—हं को दाणिं एसो। [हं क इदानीमेषः]।

अभिसारितः=अभिसारीकृतः (अभिसार किया हुआ)। प्रत्युपकारदुर्लभतया—प्रत्युपकर्त्तुमसमर्थतया (उपकार का वदला चुकाने में असमर्थ होने के कारण)। दुर्लभः = दुष्प्राप्यः (दुर्लभ)।

स्थापितः = धृतः (रखा है)।

तत इति। अपटीक्षेपेण—पटाक्षेपेण विनैव (पर्दा गिरे विना)।

ससम्भ्रमेण = भ्रान्त्या सह (भ्रम से)।

गणिका—नहीं, नहीं जाऊँगी। पर सहसा अभिसरण (पास जाने) के वाद उपकार का वदला चुकाना कठिन समझ कर वह फिर कहीं मेरे पास न आयें। इसी लिए विलम्ब कर रही हूँ।

चेटी हाँ—इसीलिए क्या वह आभूषण वहीं रख दिये हैं !

गणिका—ऐसा ही है।

(तव विना पर्दा गिरे संवाहक प्रवेश करता है।)

संवाहक—आर्ये ! मैं शरण में आया हूँ।

गणिका—आपको भय की आवश्यकता नहीं हैं।

चेटी—हाँ—यह कौन है ?

गणिका—उम्मत्तिए ! किं सरणाअदो पुच्छीअदि । [उन्मत्तिके ! किं शरणागतः पृच्छयते] ।

चेटी—अवि णाम साहसिओ भवे । [अपि नाम साहसिको भवेत्] ।

गणिका—उम्मत्तिए ! गुणवन्तो रक्खिदव्वो होदि । [उन्मत्तिके ! गुणवान् रक्षितव्यो भवति] ।

संवाहकः—अय्ये ! णं भएण उवआरो विस्सरिदो, ण परिभवेण । पेक्खदु अय्या, भीदाहवा पधरिसिदाहवा आवण्णाहवा सुलभचारित्तवञ्चणाहवा अवराहेदुं समत्था होन्ति । [आर्ये ! ननु भयेनोपचारो विस्मृतः, न परिभवेन । पश्यत्वार्या, भीता अथवा प्रधर्षिता अथवा आपन्ना अथवा सुलभचारित्रवञ्चना अपराधयितुं समर्था भवन्ति] ।

गणिका—भोदु, भोदु । विस्सत्थो भोदु अय्यो । गणिआ क्खु अहं । [भवतु, भवतु । विश्वस्तो भवत्वार्यः । गणिका खल्वहम्] ।

साहसिकः=अपराद्धः (अपराधी) । भयेन = त्रासेन (डर से) । उपचारः= शिष्टत्वम् (शिष्टता) । विस्मृतः = पृष्टे कृतः (भुला दिया) । परिभवेन = अपमानेन (अपमान से) । प्रधर्षितः = तिरस्कृतः (तिरस्कृत) आपन्ना = विपद्ग्रस्ता (विपत्तिग्रस्त) । सुलभचारित्रवञ्चना = चरित्रमेव चारित्रम्, तस्य वञ्चनम् = चारित्रवञ्चनम्, सुलभं चारित्रवञ्चनं येषां ते = सरलचरित्रभ्रष्टाः (सरलता से चरित्र भ्रष्ट लोग) । अपराधयितुम् = अपराधं कर्तुम् (अपराध करने को) । समर्थाः = सशक्ताः (समर्थ) ।

विश्वस्तः = आश्वस्तः (धैर्यवान्) ।

गणिका—पगली ! शरणागत के सम्बन्ध में क्या पूछती है ?

चेटी—हो सकता है कोई साहसी (अपराधी) हो ।

गणिका—उन्मत्तिके ! गुणवान् रक्षण करने योग्य होता है ।

संवाहक—आर्ये ! भय से तो शिष्टाचार ही भूल गई थी । आप देखें—भयभीत अथवा अपमानित अथवा दुःखी अथवा सरलता से चरित्र भ्रष्ट लोग अपराध करने में समर्थ होते हैं ।

गणिका—अच्छा, अच्छा ! आप आश्वस्त हो जायें । मैं तो वेश्या हूँ ।

संवाहकः—अभिजरोण, ण सीलेण। [अभिजनेन, न शीलेन]।

गणिका—हञ्जे ! एवं विअ। [हञ्जे ! एवमिव]।

चेटी—अज्जुआ अय्यं पुच्छदि, कुदो अय्यस्स भअं ति। [अज्जुका आर्यं पृच्छति, कुत आर्यस्य भयमिति]।

संवाहकः—अय्ये ! धणिआदो। [आर्ये ! धनिकात्]।

गणिका—जइ एवं, आसणं देदु अय्यस्स। [यद्येवम्, आसनं दीयतामार्यस्य]।

चेटी—तह। (आसनं ददाति)। [तथा]।

गणिका—उवविसदु अय्यो। [उपविशत्वार्यः]।

संवाहकः—(स्वगतम्) पूआविसेसेण जाणामि कय्यं त्ति। (उपविशति)। [पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति]।

गणिका—हञ्जे ! एवं विअ। [हञ्जे ! एवमिव]।

अभिजनेन=कुलेन (उच्च कुल से)। शीलेन = व्यवहारेण (व्यवहार से)।

कुतः = कस्मात् (किससे)। भयम् = त्रासः (डर)।

आर्ये इति। धनिकात् = धनिकजनात् (धनी पुरुष से)

पूजाविशेषेण—पूजायाः विशेषस्तेन = बहुसत्कारेण (अत्यादर से)।

संवाहक—कुल से वेश्या, न कि व्यवहार से वेश्या।

गणिका—सखी ! ऐसा ही है।

चेटी—अज्जुका आप से पूछ रही हैं कि आपको भय किससे है ?

संवाहक—आर्ये ! धनी पुरुष से !

गणिका—यदि ऐसा है तो आर्य को आसन दीजिए।

चेटी—ऐसा करती हूँ। (आसन देती है)।

गणिका—आर्य बैठ जायें।

संवाहक—(मन में) विशेष सत्कार से कार्य की सफलता जानता हूँ।

गणिका—सखी ! ऐसा ही है।

चेटी—अज्जुए ! तह । अय्य ! राअमग्गे विस्सत्थसम्पादं अय्यं कादुं इच्छदि अज्जुआ । कस्स किं कत्तव्वं । [अज्जुके ! तथा । आर्य ! राजमार्ग-विश्वस्तसम्पातमार्यं कर्तुमिच्छत्यज्जुका । कस्य किं कर्तव्यम्] ।

संवाहकः—सुणादु अय्या [शृणोत्वार्या] ।

गणिका—अवहिदम्हि । [अवहितास्मि] ।

संवाहकः—पाडलिपुत्तं मे जम्मभूमी । पकिदीए वणिजओ अहं । तदो भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए संवाहअवुत्तिं उवजीवामी । [पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः । प्रकृत्या वणिगहम् । ततो भागधेयपरिवृत्ततया दशया संवाहक-वृत्तिमुपजीवामि] ।

राजमार्गविश्वस्तसम्पातम्—विश्वस्तः सम्पातो यस्य तम्, राजमार्गे विश्वस्त-सम्पातम् = राजपथे भयरहितम् (राजमार्ग में भयरहित) ।

शृणोतु = आकर्णयतु (सुनै) ।

अवहितेति । अवहिता = सावधाना (सावधान) ।

जन्मभूमिः—जन्मनः भूमिः = उत्पत्तिस्थानम् (जन्मस्थान) । प्रकृत्या = स्वभावेन (स्वभाव से) । वणिक्=व्यापारी । भागधेयपरिवृत्तया—भागधेयस्य= भाग्यस्य परिवृत्तता परिवर्तनम्, तया (भाग्य के विपरीत होने से) । दशया= स्थित्या (दशा से) । सम्वाहकवृत्तिम्—सम्वाहकस्य = अङ्गमर्दकस्य वृत्तिः= उपजीविका, ताम् (तेल मालिश करने की वृत्ति को) । उपजीवामि=जीविकां वहामि (जीविका चलाता हूँ) ।

चेटी—अज्जुके ! ऐसा ही है । आर्य ! राजमार्ग में आपको अज्जुका निर्भय करना चाहती हैं । कोई क्या कर सकता है ।

संवाहक—आर्यें सुनें ।

गणिका—मैं सावधान हूँ ।

संवाहक—पाटलिपुत्र (पटना) मेरी जन्मभूमि है । प्रकृति से मैं बनियाँ हूँ फिर भाग्य के प्रतिकूल होने से संवाहक वृत्ति (तेल मालिश करने की रोजी) से जीविका चलाता हूँ ।

गणिका—संवाहओ अय्यो। सुउमारा कला सिक्खिदा अय्येण। [संवाहक आर्यः सुकुमारा कला शिक्षितार्येण]।

संवाहकः—कलेत्ति सिक्खिदा। आजीविआ दाणिं संवुत्ता। [कलेति शिक्षिता। आजीविकेदानीं संवृत्ता]।

गणिका—णिव्वेदसूअअं विअ वअणं अय्यस्स। तदो तदो। [निर्वेद-सूचकमिव वचनमार्यस्य। ततस्ततः]।

संवाहकः—अज्जुए! सो दाणि अहं आअन्तुआणं सुणिअ पुरुस-विसेसकोदूहलेण आअदो म्हि इमं उज्जअणि। [अज्जुके! स इदानीमहमागन्तुकानां श्रुत्वा पुरुषविशेषकौतूहलेनागतोऽस्मीमामुज्जयिनीम्।]

गणिका—तदो तदो। [ततस्ततः।]

संवाहकः—तदो इह आअदमत्त एव्व कोच्चि सत्थवाहपुत्तो समासादिदो। [तत इहागतमात्र एव कश्चित् सार्थवाहपुत्रः समासादितः।]

सुकुमारा = मृदुला (कोमल)। आजीविका=वृत्तिका। संवृत्ता = संजाता (हो गई है)।

निर्वेदसूचकम्—निर्वेदस्य=दुःखस्य सूचकम् (दुःख की सूचना देने वाला)। वचनम् = कथनम् (कहना)।

आगन्तुकानाम् = परदेशागतानाम् (परदेशियों की)। श्रुत्वा = आकर्ण्य (सुनकर)। पुरुषविशेषकौतूहलेनपुरुषाणां विशेषः पुरुषविशेषः, तस्मिन् कौतूहलम्, तेन हेतुना=विशिष्टपुरुषाश्रयेण (संवाहक वाले पुरुष विशेष के कौतूहल से)।

आगतमात्र एव = समायाते सत्येव (आते ही)। समासादितः = प्राप्तः (प्राप्त किया)।

गणिका—आप संवाहक हैं। सुकुमार कला आपने सीखी है!

संवाहक—कला के रूप में तो सीखा है। (पर) आजीविका बन गई है।

गणिका—आपका कथन दुःख सूचक है। फिर।

संवाहक—गणिके! इस प्रकार इस समय मैं आगन्तुकों (परदेशियों के द्वारा सुनकर व्यक्ति-विशेष पर आकृष्ट होकर इस उज्जयिनी को आया।

गणिका—तब क्या हुआ।

संवाहक—तब वहां आते आते ही किन्हीं सार्थवाह पुत्र से भेंट हो गई।

गणिका—केरिसो । [कीदृशः ।]

संवाहकः—आइदिनन्तो अविब्भमन्तो अणुच्छित्तो ललिदो ललिदत्ताए अविम्हओ चउरो महुरो दक्खो सदक्खिण्णो अभिमदो आइदो तुट्ठो होदि दव्य ण विकत्थेदि । अप्पं वि सुमरदि, बहुअं पि अवइदं विसुमरदि । अज्जुए ! किं वहुणा, तस्स कुलपुत्तस्स गुणाणं चउब्भाअं पि सुदिग्घेण वि गिम्हदिअहेण वण्णिदुं ण सक्कं । किं वहुणा, दक्खिण्णदाए परकेरअं विअ अत्तणो सरीरं धारेदि । [आकृतिमान् अविभ्रमन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति । दत्त्वा न विकत्थते । अल्पमपि स्मरति, वहुकमप्यपकृतं विस्मरति । अज्जुके ! किं वहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन वर्णयितुं न

आकृतिमानिति । आकृतिमान् = रूपवान् । अविभ्रमन् = स्थिरचेताः सन् (दृढचित्त होता हुआ) । अनुत्सिक्तः = उत्सेकरहितः, (निरभिमान) । ललितः = सुकुमारः (सुकुमार) । ललिततया = ललितस्य भावो ललितता, तया = सौकुमार्येण (सुकुमारता के कारण) । अविस्मयः = विस्मयहीनः (आश्चर्यहीन) । चतुरः = दक्षः (चतुर) मधुरः = मृदुः (मधुर) । दक्षः = अनुकूलः (अनुकूल) । अभिमतः = अभीप्सितः (अभीष्ट) । आचितः = छन्नः (गूढ़ गुणों वाला) । तिष्ठति = वर्तते (है) । दत्वा = प्रदाय (देकर) । विकत्थते=प्रशंसां न करोति (स्वयं प्रशंसा नहीं करता है) । वहुकम् = अत्यधिकम् (अत्यधिक) । अपकृतम् = अपकारकृतम् (अपकार करने वाले को) । चतुर्भागमपि = चतुर्थांशम् अपि (चौथाई भी) । सुदीर्घेण = विशालेन (लम्बे) । ग्रीष्मदिवसेन—ग्रीष्मस्य = ग्रीष्मकालस्य दिवसः = दिनम् तेन (गर्मी के दिन द्वारा) । वर्णयितुम् = प्रशंसयितुम्

गणिका—कैसे हैं वह !

संवाहक—वह आकृतिमान, शान्त, अभिमानरहित, ललित, सुन्दरता के कारण विस्मयरहित, चतुर, मधुर, दक्ष, चातुर्ययुक्त तथा अभीष्ट गुणों से युक्त सन्तोषी व्यक्ति हैं । वह दे कर आत्मश्लाघा नहीं करते हैं । छोटी से छोटी बात को भी याद रखते हैं । किये गये वड़े से वड़े अपमान को भी वह भुला देते हैं । गणिके ! अधिक क्या, उन कुलीन पुरुष के गुणों का चतुर्थांश भी लम्वे ग्रीष्मकालीन

शक्यम् ! किं बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवात्मनः शरीरं धारयति ।]

गणिका—(अपवार्य) हञ्जे ! कोण्णु क्खु सो अय्यचारुदत्तस्स गुणाणं अणुकरेदि । [हञ्जे ! को नु खलु स आर्यचारुदत्तस्य गुणानामनुकरोति ।

चेटी—मम वि कोदूहलं सोदुं । को ण्णु हु उज्जअणिं अत्तणो गुणेहि मण्डेदि । [ममापि कौतूहलं श्रोतुम् ! को नु खलूज्जयिनीमात्मनो गुणैर्मण्डयति !]

गणिका—तदो तदो । [ततस्ततः]

संवाहकः—तदो तस्स गुणविक्किणिदसरीरो विस्सरिदकलत्तो उवजीविओ संवुत्तो। [ततस्तस्य गुणविक्रीतशरीरो विस्मृतकलत्र उपजीवी संवृत्तः ।]

(वर्णन करने को) । शक्यम् = समर्थम् (समर्थ) । दक्षिणतया=अनुकूलतया (अनुकूल होने के कारण) ! परकीयम् = परस्येदं परकीयम् (पराया) । आत्मनः = स्वस्य (अपना) ।

अपवार्य = आक्षिप्य (मना करके) । अनुकरोति = अनुकरणं करोति (अनुकरण कर रहा है) ।

श्रोतुम् = आकर्णयितुम् (सुनने को) । मण्डयति = शोभितं करोति (शोभित कर रहा है) ।

गुणविक्रीतशरीरः—गुणेन = दानदयादाक्षिण्यादिगुणेन विक्रीतम् = वशीकृतम् शरीरम् = कायः यस्य, तम् (दान दयादि गुणों से वशीकृत शरीर वाला) । विस्मृतकलत्रः–विस्मृतम्–कलत्रम् = पत्न्यादिकम् येन सः (पत्नी

सम्पूर्ण दिन भर में वर्णन करने की शक्ति नहीं है। अधिक क्या कहें– अनुकूलता के कारण वह परायों में अपना जैसा शरीर धार किए हुए है।

गणिका—(रोक कर) सखी ! वह कौन ऐसा है जो कि आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण करता है ।

चेटी—मुझे भी सुनने के लिए कौतूहल है । वास्तव में कौन पुरुष उज्जयिनी को अपने गुणों से शोभित कर रहा है ।

गणिका—फिर ।

संवाहक—तब उन के गुणों पर अपने शरीर को न्योछावर कर, अपनी पत्नी आदि को भुला कर मैं उन का सेवक बन गया।

गणिका—किं सो दरिद्दो। [किं स दरिद्रः।]

संवाहकः—कहं अणाचक्खिदे अय्या जाणादि। [कथमनाख्यात आर्या जानाति।]

गणिका—एअस्सिं दुल्लहो गुणविभवो त्ति। तदो तदो। [एकस्मिन् दुर्लभो गुणविभव इति। ततस्ततः।]

चेटी—को णाम सो अय्यो। [को नाम स आर्यः।]

संवाहकः—अय्यचारुदत्तो णाम [आर्यचारुदत्तो नाम।]

गणिका—जुज्जइ। तदो तदो। [युज्यते। ततस्ततः।]

संवाहकः—तदो सो विभवमन्ददाए अस्साहीणपरिजणो विसज्जिअकुडुम्बभरणो चारित्तमत्तावसेसो सत्थवाहकुले पडिवसिदि। अहं पि तेण अय्येण अब्भणुण्णादो—अण्णं उवचिट्ठदु त्ति। कहं अण्णं एरिस मणुस्सरअणं लभेअं त्ति, कहं च तस्स कोमललल्लिदमहुरसरीरप्पदरिसकिदत्थं मे हत्थं साहारणसरीरसम्बद्देण सोअणीअं करिस्स त्ति जादणिव्वेदो दड्ढसरीररक्खणत्थं जूदोवजीवी संवुत्तो। [ततः स विभवमन्दतया स्वाधीनपरिजनो विसर्जितकुटुम्बभरणश्चारित्रमात्रावशेषः सार्थवाहकुले प्रतिवसति।

आदि को भूला हुआ)। उपजीवी = उपजीव्यते अनेन इत्युपजीवी=जीविकार्थी (जीविका चलाने वाला)। संवृत्तः = सञ्जातः (हो गया)।

किमिति। किम् = किं नाम (किस नाम वाला)।

अनाख्यातः = अवर्णितः (विना कहे हुए)।

गुणविभवः – गुणानां = वैशिष्ट्यानाम् विभवः = ऐश्वर्यम् (गुणों का वैभव)। विभवमन्दतया—विभवस्य मन्दता, तया = धनक्षीणतया (धन

गणिका—क्या वह दरिद्र है ?

संवाहक—विना कहे ही आप कैसे जानती हैं ?

गणिका—एक ही व्यक्ति मे यह सब गुण दुर्लभ है। फिर क्या हुआ ?

चेटी—किस नाम के वह महाशय है ?

संवाहक—आर्य चारुदत्त नाम के।

गणिका—ठीक है। फिर क्या हुआ ?

संवाहक—तब वह विभव की क्षीणता से सेवकों द्वारा परित्यक्त, परिवार

अहमपि तेनार्येणाभ्यनुज्ञातोऽन्यमुपतिष्ठतामिति। कथमन्यमीदृशं मनुष्यरत्नं लभेयेति, कथं च तस्य कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थं मे हस्तं साधारणशरीर-संमर्दनं शोचनीयं करिष्यामीति जातनिर्वेदो दग्धशरीररक्षणार्थं द्यूतोपजीवी संवृत्तः]।

क्षीण हो जाने से)। अस्वाधीनपरिजनः—न स्वाधीनोऽस्वाधीनः, = पराधीनः परिजनः = सेवकवर्गः यस्य सः (परिजनों से परित्यक्त)। विसर्जित-कुटुम्बभरणः–विसर्जितम् = परित्यक्तम् कुटुम्बस्य = परिवारस्य भरणम् = पालनपोषणम् येन सः (कुटुम्ब के भरणपोषण का भार त्यागे हुए)। चारित्र-मात्रावशेषः = चरित्रमेवचारित्रम्, चारित्रमात्रम् अवशिष्टं यस्य सः = आचरण-मात्रावशेषः (आचरण मात्र को बचाये हुए)। सार्थवाहस्य = व्यापारिणः कुले, इति सार्थवाहकुले (व्यापारी के वंश में)। प्रतिवसति = निवसति (निवास कर रहे हैं)। अभ्यनुज्ञातः = आदेशितः (आज्ञा लिए हुए)। मनुष्यरत्नम्–मनुष्येपु रत्नम् = श्रेष्ठपुरुषन् (उत्तम पुरुप को)। कोमल ललित मधुरशरीरस्पर्शकृतार्थम्–कोमलं च तल्ललितम् कोमलललितम्, कोमल-ललितं च मधुरं च, एवंभूतं शरीरम्, तस्य स्पर्शे कृतार्थम् = कृतकृत्यम् एवंभूतम् (कोमल, ललित और मधुर शरीर के स्पर्श से कृतकृत्य बने हुए)। हस्तम् = करम् (हाथ को)। साधारशरीरसम्मर्दनेन—साधारणशरीरस्य = सामान्य-देहस्य संमर्दनम् तत् तेन (सामान्य व्यक्ति के शरीर संमर्दन से)। शोचनीयम्= शोचितुं योग्यम् (शोचनीय)। जातनिर्वेदः–जातः = उत्पन्नः निर्वेदः = दुःखम् यस्य सः (दुःखी)। दग्धशरीररक्षार्थम्–दग्धं च शरीरञ्च दग्धशरीरम्, तस्य रक्षार्थम् = पालनार्थम् (जले (दुःखी) शरीर की रक्षा के लिए)। द्यूतोप-जीवी—द्यूतेन = अक्षैः क्रीडनेन उपजीवतीति द्यूतोपजीवी = द्यूताचारी (जुआ खेलने वाला, जुआरी)। संवृत्तः = सञ्जातः (हो गया)।

के भरण पोषण का भार छोड़ कर, आचरण मात्र की रक्षा करते हुए, सार्थवाह कुल (व्यापारी के वंश) में रहने लगे! उन महाशय ने मुझे भी आदेश दिया कि तुम अन्य व्यक्ति की सेवा करो। 'इस प्रकार के अन्य पुरुषरत्न को मैं कैसे पा सकूँगा और उस के कोमल ललित मधुर शरीर-स्पर्श से कृतार्थ अपने हाथ को साधारण व्यक्ति के शरीर संमर्दन से शोचनीय कैसे करूँगा' इस प्रकार दुःखी मन में व्याकुल शरीर की रक्षा करने के लिए जुआरी बन गया।

(गणिका सहर्षबाष्पं चेटीमवलोकयति)

चेटी—तदो तदो । [ततस्ततः] ।

संवाहकः—तदो बहूणि दिणाणि मए पराइदेण पुरुसेण कदाइ अहं पि दहसु सुवण्णेसु पराइदो म्हि । [ततो बहूनि दिनानि मया पराजितेन पुरुषेण कदाचिदहमपि दशसु सुवर्णेषु पराजितोऽस्मि] ।

गणिका—तदो तदो । [ततस्ततः] ।

संवाहकः—तदो अज्ज वेसमग्गे जइच्छोवणदो समासादिदो म्हि । तस्स भएण इह पविट्ठो । एवं अय्या जाणादु । [ततोऽद्य वेशमार्गे यदृच्छोपनतः समासादितोऽस्मि । तस्य भयेनेह प्रविष्टः । एवमार्या जानातु ।]

गणिका—(आत्मगतम्) अहो अच्चाहिदं ! एवं खु मण्णे वासपादपविणासेण पक्खिणो आहिण्डन्ति-त्ति । (प्रकाशम्) एवं गदे अत्तकेरओ अय्यो हला ! एहि तं जणं विसज्जेहि । [अहो अत्याहितम् । एवं खलु मन्ये

गणिकेति । बहूनि = अनेकानि (बहुत, अनेकों) । सुवर्णेषु = स्वर्णमुद्रासु (अशर्फियों में) ।

वेशमार्गे—वेशः = वेश्यागृहः, तस्य मार्गस्तस्मिन (वेश्यालय के मार्ग में) । यदृच्छोपनतः—यदृच्छया = स्वेच्छया उपनतः = आगतः (स्वेच्छा से आया हुआ) । समासादितः = प्राप्तः (पाया) । इह = अत्र (यहां) । जानातु = वेत्तु (समझ लें) ।

अत्याहितम् = महद्भयम् जातम् (बड़ा भय उत्पन्न हो गया है) । मन्ये=

(गणिका प्रसन्नता से आँसू भर कर चेटी को देखती है)

चेटी—फिर क्या हुआ ?

संवाहक—तब बहुत दिनों तक मेरे द्वारा पराजित किए गए पुरुष से मैं दस सुवर्ण मुद्राओं से हार गया ।

गणिका—तब क्या हुआ ?

संवाहक—तब आज वेश्यागृह के मार्ग में स्वेच्छा से आते हुए मुझे वह (धनिक) मिल गया । उसके भय से ही मै यहाँ घुस आया । ऐसा आप समझ लें ।

गणिका—(मन ही मन) हाय ! बड़ा डर उपस्थित हो गया है । मैं तो समझती हूँ कि ,जिस प्रकार वासवृक्ष के विनाश से पक्षी (आश्रयहीन होकर)

वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्त इति । एवं गत आत्मीय आर्यः । हला ! एहि तं जनं विसर्जय]।

चेटी—तह । (निष्क्रान्ता) । [तथा]।

गणिका–ण खु अय्येण अत्थणिमित्ता चिन्ता कादव्वा । अय्यचारुदत्तो एव्वदेदि त्ति अय्यो जाणादु । [न खल्वार्येणार्थनिमित्ता चिन्ता कर्तव्या । आर्यचारुदत्त एव ददातीत्यार्यो जानातु]।

(प्रविश्य)

चेटी—अज्जुए ! विसज्जिदो सो जणो, परितुट्ठो गदो अ । [अज्जुके ! विसर्जितः स जनः, परितुष्टो गतश्च]।

अनुमीये (मैं अनुमान करती हूँ) । वासपादपविनाशेन—वासस्य = निवासस्य पादपः वृक्षः, तस्य विनाशस्तेन (आवास वृक्ष के नष्ट हो जाने से) । पक्षिणः = खगाः (आश्रयहीनाः) (पक्षी) । आहिण्डन्ते = इतस्ततः उड्डीयन्ते (इधर उधर उड़ते फिरते हैं) । आत्मीयः = स्वकीयः (अपने) । तम् = विजयिनम् (उस विजयीपुरुष को) । विसर्जय = त्यज (विदा कर दो) ।

आर्येण = भवता संवाहकेन (आप द्वारा) । अर्थचिन्ता = अर्थस्य चिन्ता (धन की चिन्ता) । न कर्तव्या = न करणीया (नहीं करनी चाहिए) । ददाति = यच्छति (देता है) । जानातु = वेत्तु (समझ लें) ।

अज्जुक इति । विसर्जितः = त्यक्तः (विदा कर दिया) । परितुष्टः = सन्तुष्टः (प्रसन्न) । निर्वर्तयितुम् = आवर्तयितुम् (वापस करने के लिए) ।

इधर उधर उड़ते फिरते हैं उसी प्रकार ... ... । (प्रकट रूप में) इस प्रकार आप अपने (सगे) ही बन गए हैं । सखी ! जाओ । (कुछ धन देकर) उस धनिक को विदा कर दो ।

चेटी—अच्छा (निकल जाती है) ।

गणिका—आप को धन के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए । 'आर्य चारुदत्त ही दे देंगे' आप ऐसा समझ लें ।

(प्रवेश करके)

चेटी–अज्जुके ! उस व्यक्ति को भेज दिया, और प्रसन्न होकर (वह) गया ।

संवाहकः—अणुग्गहिदो म्हि । [अनुगृहीतोऽस्मि]।

गणिका—गच्छदु अय्यो सुहिज्जणदंसणेण पीदिं णिव्वत्तेदुं । [गच्छत्वार्यः सुहृज्जनदर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम्]।

संवाहकः—अज्ज एव कदाइ णिव्वेदेण पव्वजेअं । जइ इअं परिअणे सङ्कन्ता कला भवे, तदो अय्याए अणुग्गहिदो भवेअं । [अद्यैव कदाचिन्निर्वेदेन प्रव्रजेयम् । यदीयं परिजने सङ्क्रान्ता कला भवेत्, तत आर्यानुगृहीतो भवेयम्]।

गणिका—जस्स किदे इअं कला सिक्खिदा, सो एव्व अय्येण उवचिट्ठिदव्वो भविस्सदि । [यस्य कृते इयं कला शिक्षिता, स एवार्येणोपस्थातव्यो भविष्यति]।

संवाहकः—(स्वगतम्) णिउणं खु पच्चाचक्खिदो म्हि । को हि णाम अप्पणा किदं पच्चुअआरेण विणासेदि । (प्रकाशम्) अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [निपुणं खलु प्रत्याख्यातोऽस्मि । को हि नामात्मना कृतं प्रत्युपकारेण विनाशयति । आर्ये ! गच्छामि तावदहम्]।

निर्वेदेन = दुःखेन, वैराग्येण (वैराग्य से)। प्रव्रजेयम् = संन्यस्तो भवेयम् (संन्यास ले लेना चाहिए)। परिजने = पारिवारिकजने (परिवार के व्यक्ति में)। कला = संमर्दनकला (तेल मालिश करने की कला)। शिक्षिता = ज्ञाता (सीखी है)। उपस्थातव्या = सेवितव्या (सेवा और पूजा करनी चाहिए)।

निपुणम्–सम्यक् (अच्छी तरह)! प्रत्याख्यातः = निन्दितः (निन्दा

संवाहक—आपका मैं अनुगृहीत हूँ।

गणिका—आप अपने मित्रजनों को दर्शन कर प्रसन्न करने के लिए जाय।

संवाहक—आज ही कदाचित् मुझे वैराग्य के कारण संन्यास ले लेना चाहिए। यदि यह (संमर्दन) कला परिवार को सिखा दी जाय तो मैं आपका अनुगृहीत होऊँगा।

गणिका—जिसके लिए यह कला आपने सीखी है, उसी की आपको सेवा या पूजा करनी चाहिए।

संवाहक—(मन ही मन) गणिका ने बड़ी निपुणता से मेरी बात का

गणिका—गच्छदु अय्यो पुणोदंसणाअ। [गच्छत्वार्यः पुनर्दर्शनाय]।

संवाहकः—अय्ये ! तह। (निष्क्रान्तः)। [आर्ये ! तथा]।

गणिका—हं सद्दो विअ। [हं शब्द इव]।

(प्रविश्य)

चेटः—विच्छित्तिए ! विच्छित्तिए ! कहिं कहिं अज्जुआ। [विच्छित्तिके ! विच्छित्तिके ! कुत्र कुत्राज्जुका]।

गणिका—हञ्जे ! किं एवं। [हञ्जे किमेतत्]।

चेटः—हं, विप्पलद्धो म्हि, वाहाअणणिक्कामिदपुव्वकाआए ओणमिअपओहराए कण्णऊरस्स परिप्फन्दो अज्जुआए जेण ण दिट्ठो। [हं, विप्रलब्धोऽस्मि, वातायननिष्क्रामितपूर्वकायया ऽवनमितपयोधरया कर्णपूरस्य परिस्पन्दोऽज्जुकया येन न दृष्टः]।

की)। आत्मना = स्वेन (अपने द्वारा)। प्रत्युपकारेण = उपकारेण (उपकार के द्वारा)। पुनः = भूयः (फिर)। दर्शनाय = अवलोकनाय (दर्शन करने के लिए)। शब्द इव = ध्वनिरिव (आवाज सी)।

विच्छित्तिके ! विच्छित्तिका नाम वसन्तसेनापरिचारिका, तत्सम्बुद्धौ। (हे विच्छित्तिके) ! विप्रलब्धः=मन्दभाग्यः। (मन्दभाग्य वाला)। वातायन-निष्क्रामितपूर्वकायया वातायने = गवाक्षे निष्क्रामितः = संक्रामितः पूर्वकायो यस्याः, तया। (खिड़की में अपने शरीर का ऊपरी भाग वाहर निकाले हुए) !

प्रत्याख्यान किया है कौन व्यक्ति अपने किये उपकार को उपकार के द्वारा विनाश करना चाहता है। (प्रकट रूप में) आर्ये ! तव तो मैं जा रहा हूँ।

गणिका—आप जायें (तथा) पुनः दर्शन दें।

संवाहक—आर्ये ! ऐसा ही करता हूँ। (निकल जाता है)।

गणिका—हाँ—आवाज सी हो रही है।

(प्रवेश करके)

चेट—विच्छित्तिके ! विच्छित्तिके ! गणिका (वसन्तसेना) कहाँ है ?

गणिका—हे सखी ! यह क्या है ?

चेट—हाँ मैं मन्द भाग्य वाला हूँ कि खिड़की के वाहर अपने शरीर के

गणिका—लहुजणस्स सुलहो विम्हओ। किं दे उस्सेअस्स कारणम्। [लघुजनस्य सुलभो विस्मयः। किं ते उत्सेकस्य कारणम्]।

चेटः—सुणादु अज्जुआ एसो उग्गवेगेण ओगाहणणिव्वत्तिदेण पस्सुद-मदगन्धं राअमग्गं करन्तेण मङ्गलहत्थिणा भद्दकवोदएण अणेअपुरुस-सङ्कुलेसु राअमग्गेसु उत्तरिअपडविराअदाए अहिअलक्खणीओ कोच्चि प्पव्वइदो समासादिदो। [शृणोत्वज्जुका एष उग्रवेगेनावगाहननिर्वर्तितेन प्रस्नुतमदगन्धं राजमार्गं कुर्वता मङ्गलहस्तिना भद्रकपोतकेनानेकपुरुषसंकुलेषु राजमार्गेषूत्तरीयपटविरागतयाऽधिकलक्षणीयः कश्चित् प्रव्रजितः समासादितः]।

अवनमितपयोधरा—अवनमितौ पयोधरौ यस्यास्तया = अधोनमितकुचया (झुके हुए स्तनों वाली)। कर्णपूरस्य = तन्नाम्नो वसन्तसेनादासस्य (कर्णपूर नामक वसन्त सेना के नौकर का)। परिस्पन्दः = वीरत्वम् (वीरत्व)। लघुजनस्य= सामान्यजनस्य (साधारण पुरुष का)। सुलभः = सरलः (सरल है)। उत्सेकस्य = दर्पस्य (अभिमान का)।

शृणोत्विति। उग्रवेगेन=उग्रेण वेगेन (तीव्र वेग से)। अवगाहननिर्वर्तितेन—अवगाहनेन = स्नानेन निर्वर्तितः = निवृत्तो जातः, तेन (नहाकर लौटे हुए)। राजमार्गम् = राजपथम् (राजमार्ग को)। प्रस्नुतमदगन्धम्—प्रस्नुतः मदगन्धः यस्मिन् सः तम् = प्रसृतसुरभिम् (फैली हुई मदगन्ध वाला)। कुर्वता = विदधता (करते हुए)। मङ्गलहस्तिना = मङ्गलेन गजेन (मङ्गल हस्ती के द्वारा)। भद्रक-पोतकेन—भद्रकश्चासौ पोतकश्च, तेन = भद्रकनाम्ना कलभेन (भद्रक गजकलभ के द्वारा)। अनेकपुरुषसङ्कुलेषु—अनेकाश्च ते पुरुषाः अनेकपुरुषास्तैः सङ्कुलेषु = अनेकनरप्रपूर्णेषु (अनेक लोगों की भीड़भाड़ पूर्ण)। राजमार्गेषु = राजपथेषु

ऊपरी भाग को निकाले झुके हुए पयोधरों वाली (आपने) मुझ कर्णपूर का वीरकर्म नहीं देख पाया।

गणिका—साधारण पुरुष का विस्मय सरल ही होता है। तुम्हारे अभिमान का क्या कारण है ?

चेट—आप सुन लें, गहरे रंग से रंगे उत्तरीय वस्त्र के कारण दूर से ही पहिचाना जा सकने वाला यह कोई संन्यासी तेजी से स्नान कर के वापस आते

गणिका—हं, तदो तदो। [हं, ततस्ततः]।

चेटः—तदो मए हत्थिहत्थाभिहदाडिअमाणो दन्तन्तरपरिवत्तमाणो हत्थिहत्थपडिवचरणो तदो हा हा विपाडिदो हा हा हदो त्ति जणवादे सवुत्तो तदो दिण्णकरप्पहारेण परिवत्तिदं हत्थि करिअ मोइदो सो परिव्वाजो। [ततो मया हस्तिहस्तामर्दताड्यमानो दन्तान्तरपरिवर्तमानो हस्तिहस्तपतितचरणः ततो हा हा विपाटितो, हा हा हत इति जनवादे संवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण परिवर्तितं हस्तिनं कृत्वा मोचितः स परिव्राट्]।

(राजमार्गों में)। उत्तरीयपटविरागतया—उत्तरीयं पटमित्युरीयपटं तस्य विरागता, तया = उत्तरीयवस्त्रविरागत्वेन (उत्तरीय वस्त्र के रंगीन होने के कारण)। अधिकलक्षणीयः=बहुलक्षणयुतः (अनेक लक्षणों वाला)। प्रव्रजितः= परिव्राट् (संन्यासी)। समासादितः=प्राप्तः, गृहीत इति (पकड़ लिया गया)।

हस्तिहस्तामर्दताड्यमानः—हस्तिनः = गजस्य हस्तः = शुण्डः, तस्यामर्दन आघातेन ताड्यमानः (हाथी की सूंड की चोट से ताडित)। दन्तान्तरपरिवर्तमानः—दन्तानाम् = रदानाम् अन्तरम् = मध्यम् तत् तस्मिन् (दातों के बीच में)। परिवर्तमानः = परिविद्यमानः (विद्यमानः दातों के बीच में पड़े हुए)। हस्तिहस्तपतितचरणः—हस्तिहस्ते = गजशुण्डादण्डे पतितः-गतश्चरणो यस्य सः (हाथी की सूंड में पहुँचे हुए पांव वाला)। परिव्राट् = परिव्रजितः (संन्यासी)। हा विपाटितः = हा विदलितः (हाय फाड़ डाला गया)। हा हतः = हा घातितः (हाय मार डाला)। इति = इत्थम् (इस प्रकार)। जनवादे—जनानां = लोकानाम् वादे = कोलाहले (लोगों के कोलाहल में)। संवृत्ते = सञ्जाते (होने पर)। दत्तकर-प्रहारेण—दत्तः कर-प्रहारो येन तेन (हाथ की चोट देने से)। परिवर्तितम् = मार्गान्तरितम् (बदले, लौटाए हुवे)।

हुए, राजमार्ग को गन्धयुक्त करते हुए मङ्गल- हस्ती 'भद्रक' द्वारा पकड़ लिया गया।

गणिका—हाँ, तब क्या हुआ ?

चेट—तब मैं ने हाथी की सूँड़ के आघात से चोट खाते हुए, उस के दाँतों के बीच पहुँचे हुए, हाथी की सूँड़ से पाव पकड़े जाने पर— हाय ! हाय ! फाड़

गणिका—पिअं मे । तदो तदो । [प्रियं मे । ततस्ततः] ।

चेटः—तदो सव्वो जणो भणादि—अहो चेडस्स कम्म त्ति । ण उण कोच्चि किं पि इच्छइ दाउं । तदो अज्जुए ! केण वि कुलवुत्तेण उइदाणि आभरणट्ठाणाणि विलोइअ अङ्गुट्ठेणाणिअ वि उण अलद्धं पेक्खिअ दव्वं उवालभिअ दिग्घं णिस्ससिअ एत्तओ मे विभवो त्ति करिअ परिजणहत्थे अअं पावरओ पेसिदो। [ततः सर्वो जनो भणति—अहो चेटस्य कर्मेति । न पुनः कश्चित् किमपीच्छति दातुम् । ततोऽज्जुके ! केनापि कुलपुत्रेणो-चितान्याभरणस्थानानि विलोक्याङ्गुष्ठेनानीयापि पुनरलब्धं प्रेक्ष्य दैवमुपालभ्य दीर्घं निःश्वस्यैतावान् मे विभव इति कृत्वा परिजनहस्तेऽयं प्रावारकः प्रेषितः] ।

हस्तिनम् = गजम् (हाथी को) । कृत्वा = विधाय (करके) । मोचितः = मुक्तः कृतः (छुड़ा लिया) । प्रियम् = रुचिकरम् (रुचिकर) ।

तन इति । अहो चेटस्य कर्म = चेटककर्मणे धन्यम् (चेटक के कार्य को धन्य है) । दातुमिच्छति = दिदित्सति (देना चाहता है) ।

कुलपुत्रेण = कुलीनपुरुषेण (कुल पुत्र के द्वारा) । आभरणस्थानानि = आभरणानामलङ्करणानाम् स्थानानि, तानि (आभूषणों के स्थान) । विलोक्य = दृष्ट्वा (देख कर) । आनीय = आकृष्य (खींच कर) । अलब्धम् = अप्राप्तम् (अप्राप्त) । प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा (देख कर) । दैवम् = भाग्यम् (भाग्य को) । उपालभ्य = विनिन्द्य (उलाहना देकर) । एतावान् = एतन्मात्रम् (इतना भर) । परिजनहस्ते—परिजनस्य = सेवकस्य हस्ते = करे (सेवक के हाथ में) । प्रावारकः=ऊर्ध्ववस्त्रम् (उत्तरीय, चादर) । प्रेषितः= प्रहितः (भेजा) ।

डाला, हाय ! मार डाला इस प्रकार लोगों का कोलाहल होने पर हाथ से चोट देकर हाथी को पीछे लौटा कर उस संन्यासी को छुड़ा लिया ।

गणिका—मेरे मन का कार्य किया । फिर क्या हुआ ?

चेट—तब सब लोग कहने लगे–धन्य है चेट का कार्य ! फिर भी कोई कुछ देना नहीं चाहता है । हे गणिके ! तब किसी कुलीन व्यक्ति ने उचित आभूषण स्थानों को देख कर अगूँठे से खींच कर भी पुनः अप्राप्त देख कर भाग्य को कोस कर लम्बी साँस लेकर 'इतना मेरा विभव है' यह कह कर सेवक के द्वारा यह दुपट्टा भेजा है ।

गणिका—को ण खु अय्यचारुदत्तस्य गुणाणं अणुकरेदि। [को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति]।

चेटी—अज्जुए! मम वि कोदूहलं अत्थि। को ण खु एसो। [अज्जुके ! ममापि कौतूहलमस्ति। को नु खल्वेषः]।

गणिका—केण वि साहुणा पुरुसेण होदव्वं। [केनापि साधुना पुरुषेण भवितव्यम्]।

चेटी—साहु पुच्छीअदु दाव। [साधु पृच्छ्यतां तावत्]।

गणिका—हञ्जे ! एकपुरुसपक्खवादिदा सव्वगुणाणं हन्ति। [हञ्जे ! एकपुरुषपक्षपातिता सर्वगुणान् हन्ति]।

चेटी—भद्द ! से णाम तुवं जाणासि। [भद्र ! अस्य नाम त्वं जानासि]।

चेटः—ण हु जाणामि। न खलु जानामि]।

अनुकरोति = अनुसरति (अनुकरण कर रहा है)। कौतूहलम् = उत्कण्ठा साध्विति। साधु = भद्रम् (अच्छा)। पृच्छ्यताम् = आचक्ष्यताम् (पूछो)। एकपुरुषपक्षपातिता—एकस्मिन् पुरुषे पक्षपात इत्येकपुरुषपक्षपातः तस्य भावः= एकमनुष्यपक्षपातिता (एक पुरुष में गुणों का पक्षपाती बनना)। सर्वगुणान्—सर्वे च गुणाः सर्वगुणास्तान् = इतरान्यगुणान् (दूसरे सभी गुणों को)। हन्ति= नाशयति (नष्ट कर देता है)।

जानामि = वेद्मि (जानती हूँ)।

गणिका—ऐसा कौन पुरुष है जो आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुसरण कर रहा है ?

चेटी—मुझे तो कौतूहल है— आखिर यह कौन व्यक्ति है ?

गणिका—कोई सज्जन पुरुष होना चाहिए।

चेटी—अच्छा तो पूछ लिया जाय।

गणिका—हे सखी ! एक पुरुष के गुणों के प्रति पक्षपात दूसरों के गुणों को सहन नहीं करता।

चेटी—भाई ! क्या आप उस व्यक्ति का नाम जानते हैं ?

चेट—मैं नहीं जानता हूँ।

गणिका—अदिलहु तुए किदं। [अतिलघु त्वया कृतम्]।

चेटी—जइ एवं, इह तुए को त्ति मन्तिदं। [यद्येवम्, इह त्वया क इति मन्त्रितम्]।

चेटः—अहं एत्तअं तु जाणामि–भद्दओ अविम्हओ त्ति। [अहमेतावत् तु जानामि—भद्रकोऽविस्मय इति]।

गणिका—एहि दाव तं पेक्खामो। [एहि तावत् तं पश्यामः]।

चेटः – पेक्खदु पेक्खदु अज्जुआ। एसो गच्छइ। [पश्यतु पश्यत्वज्जुका। एष गच्छति]।

गणिका—(प्रासादाद् विलोक्य) हञ्जे! एसो हि सो अय्यचारुदत्तो एव्व जण्णोववीदमत्तपावरओ गच्छइ। ता जाव दूरं गओ ण भविस्सदि एसो, पेक्खम्ह दाव णं। [हञ्जे! एष हि स आर्यचारुदत्त एव यज्ञोपवीतमात्र-

---

अति लघु—अतिशयेन लघु = अति तुच्छं कर्म (बहुत तुच्छ कार्य)। कृतम् = विहितम् (किया)।

मन्त्रितम् = चिन्तितम् (सोचा)।

भद्रकः = व्यवहारश्रेष्ठः (व्यवहारादि से श्रेष्ठ)। अविस्मयः = अगर्वः (गर्व हीन)।

यज्ञोपवीतमात्रप्रावारकः-यज्ञोपवीतमात्रमेव प्रावारको यस्य सः ब्रह्मसूत्र-

---

गणिका—तुम ने ठीक नहीं किया।

चेटी—यदि ऐसा हो तो आप ने किस पुरुष को सोचा?

चेट—मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह भला और निरभिमानी व्यक्ति है!

गणिका—चलो हम लोग उसे देखते हैं।

चेट—अज्जुका! देखें देखें। यह जा रहा है।

गणिका—(महल से देख कर) हे सखी! यह तो वही आर्य चारुदत्त हैं

प्रावारको गच्छति । तद् यावद् दूरं गतो न भविष्यत्येष, पश्यामस्तावदेनम्] ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे) ।

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

मात्रोत्तरीयः (यज्ञोपवीत की चादर के डाले हुए) ।

निष्क्रान्ताः = मञ्चाद् अपगताः (निकल गये) ।

इति सुधायां द्वितीयोऽङ्कः ।

जो कि यज्ञोपवीत को चादर के समान गले में डाले हुए जा रहे है । अतः जब तक यह दूर नहीं चले जाते तब तक इन्हें देखते रहें ।

(सब लोग निकल गए)

इति हिन्दीटीकायां द्वितीयोऽङ्कः ।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नायको विदूषकश्च)

नायकः—वयस्य ! वीणानामासमुद्रोत्थितं रत्नम् । कुतः,

> उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
> सङ्कीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी ।
> क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
> स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी ॥ १ ॥

तत इति । ततः = तदनन्तरम् (तदनन्तर) ।

वीणानाम = वीणाभिधम् (वीणा नाम का) । असमुद्रोत्थितम्—समुद्रादुत्थितमिति समुद्रोत्थितम्, न समुद्रेणोत्थितमित्यसमुद्रोत्थितम् = असागरोद्गतम् (समुद्रात्तु चतुर्दशैव रत्नानि समुद्गतानि, परमियं वीणा तद्विशिष्टा जातेत्याशयः (समुद्र से न निकला हुआ) । रत्नम्=मणिः (रत्न) (अस्ति) ।

कुतः—वीणा = विपञ्ची (वीणा) । उत्कण्ठितस्य = आकुलितस्य (इष्ट वस्तुप्राप्ति के लिए आकुलित पुरुष की) । हृदयानुगता—हृदयमनुगता=मनोगता (हृदय में बसी हुई) । सखी इव = हेलेव (सखी के समान) । विषयेषु = रूपरसादिभोगेषु (रूपरसादि भोगों में) । सङ्कीर्णदोषरहिता—सङ्कीर्णाः दोषाः, सङ्कीर्णदोषास्तैः रहिता = सङ्करदोषहीना (सङ्कीर्ण दोषों से रहित) । गोष्ठी इव = परिषदिव (गोष्ठी के समान) । मदनव्यसनेषु—मदनस्य व्यसनानि, तेषु = कामव्यसनेषु (कामजनित व्यसनों—दुर्गुणों में) । क्रीडारसेषु = क्रीडनानन्देषु (क्रीडानन्दों में) । कान्ता = पत्नी इव (कान्ता के समान) । स्त्रीणाम् तु = नारीणां तु (स्त्रियों के लिए तो) । कान्तरतिविघ्नकरी-कान्ते = भर्तरि या रतिः = प्रेम, तत्र विघ्नकरी = विघ्नदायिनी (पति प्रेम से विघ्न डालने

(तब नायक तथा विदूषक का प्रवेश होता है)

मित्र ! वीणा नामक असमुद्र से निकला हुआ १४ रत्नों से भिन्न रत्न है । क्योंकि—

वीणा उत्कण्ठित पुरुष की हृदय में वसी हुई सखी के समान विषयों (इन्द्रिय सुखों) में ओछे दोषों से रहित गोष्ठी के समान, कामव्यसनों

विदूषकः—भो वयस्य ! को कालो किदपरिघोसणदाए णिसम्पादा राअमग्गा। कुक्कुरा वि ओसुत्ता। वअं णिद्दं ण लभामो। अण्णं च दाणि अच्छरीअं। इमं हृदवीणं ण रमामि। अहिअदिढत्थाणे विच्छिण्णन्तिआ होदु। [भो वयस्य ! कः कालः कृतपरिघोषणतया निःसम्पाता राजमार्गाः। कुक्कुरा अप्यवसुप्ताः वयं निद्रां न लभामहे। अन्यच्चेदानीमाश्चर्यम्। इमां हतवीणां न रमे ! अधिकदृढस्थाने विच्छिन्नतन्त्रीका भवतु।]

वाली)। सपत्नीः अपरपत्नी इव (सौत की भाँति)। (भवति)। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १ ॥

टिप्पणी—समुद्रोत्थितरत्न—समुद्रमन्थन के समय चतुर्दश रत्न निकले थे—१. लक्ष्मी २. विष (कालकूट) ३. सुधा ४. ऐरावत (हाथी) ५. कल्पवृक्ष ६. चन्द्रमा ७. उच्चैःश्रवा ८. मदिरा ९. कामधेनु १०. शङ्ख ११. शार्ङ्ग (धनुष) १२. कौस्तुभ मणि १३. रंभा (अप्सरा) १४. धन्वन्तरि (वैद्य)।

यथा—लक्ष्मीसुराकौस्तुभशार्ङ्गशङ्खा उच्चैःश्रवा कामदुघाऽथ रम्भा।
ऐरावतः कल्पतरुर्मृगाङ्को धन्वन्तरिश्चाऽपि विषं सुधा च ॥

भोः वयस्येति। कृतपरिघोषणतया—कृता परिघोषणा येषु तेषां भावस्तया (की गई घोषणा के कारण से)। निःसम्पाता—निर्गतः सम्पातो यैस्ते=गमनागमनशून्याः (आवागमन से शून्य)। राजमार्गाः = राजपथाः (राजमार्ग) (सन्ति)। कुक्कुरा अपि = श्वानोऽपि (कुत्ते भी)। अवसुप्ताः = प्रसुप्ताः (सो गये हैं)। लभामहे = प्राप्नुमः (पा रहे हैं)। हतवीणाम् हता = दुष्टा वीणा = तन्त्री या ताम् (इस दुष्ट वीणा को)। न रमे = आनन्दितो न भवामि (मेरा मन नहीं रम रहा है)। अधिकदृढस्थाने = अत्यन्तं निरापदस्थले

से सम्बन्धित क्रीडारसों में पत्नी के समान तथा स्त्रियों के पतिरति में विघ्न डालने वाली सौत के समान होती है।

विदूषक—हे वयस्य ! कितनी देर हो गई है। की गई घोषणा के कारण गमनागमन से राजमार्ग शून्य (सुनसान) हो गया है। कुत्ते भी सो गए हैं। हमें नींद नहीं आ रही है यह और भी आश्चर्य है। इस दुष्ट वीणा में मेरा मन

नायकः—वयस्य ! भावशाबलेन वहुशः खल्वद्य मधुरं गीतम् । न च भवान् रमते ।

विदूषकः—अदो एव्व एदं अहं ण रमामि । मधुरं पि वहु खादिअं अजिण्णं होइ । [अत एवैतामहं न रमे । मधुरमपि वहु खादितमजीर्णं भवति ।]

नायकः—सर्वथा सुव्यक्तं गीतम् । कुतः,

रक्तं च तारमधुरं च समं स्फुटं च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम् ।

(अतीव निरापद स्थान पर) । विच्छिन्नतन्त्रीका विच्छिन्ना = श्लथिता तन्त्री यस्याः सा=श्लथतन्त्रीयुता (ढीले तारों वाली करके) । भवतु=अस्तु (हो जावे) ।

भावशावलेन—भावानां शावलम्, तेन = भाववैचित्र्येण (भावों की विचित्रता से) । वहुशः=वारम्वारम् (वरावर) । मधुरम् = मृदुलम् (मृदुल) । गीतम् ते अगायत (गाया) ।

खादितम्=भक्षितम् (खाया हुआ) । अजीर्णम्=अपचन् (अपचवदहज्मी) ।

रक्तमिति । (वीणया) । रक्तम् = अनुरागयुतम् (अनुरागयुक्त) । च = तथा तारमधुरम् - तारम् = उच्चैः च मधुरञ्च = श्रुतिसुखदं च (जोर से तथा कर्णप्रिय) । समम् = साकम्, वैषम्यभावरहितम् । (एक साथ-विषमभाव से रहित) । च स्फुटम् = स्पष्टम् (विल्कुल स्पष्ट) । भावार्पितम् = भावेन

नहीं लग रहा है (अतः) इसे निरापद स्थान पर ढीला कर के (उतार कर) रख दिया जाय ।

नायक—वयस्य ! अनेक भावों के कारण आज वीणा ने वास्तव में मधुर गाया है । पर आप का मन नहीं लग रहा है ।

विदूषक—इसी लिए मेरा मन नहीं लग रहा है । अधिक खाया हुआ स्वादिष्ट भोजन भी अपच वन जाता हैं ।

नायक—सव प्रकार से वीणा ने सुस्पष्ट गाया । क्योंकि—

अनुरागयुक्त तथा उच्च स्वर व मधुर स्वर लयादि से समान और सुस्पष्ट भावपूर्ण एवं अभिनीय कलाओं से युक्त गाना (इस वीणा ने) गाया है ।

किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा
भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम् ॥२॥

विदूषकः—कामं पसंसेदु भवं । मम खु दाव गाअन्तो मणुस्सो इत्थिआ वि पठन्ती उभअं आदरं ण देदि । गाअन्तो दाव मणुस्सो रत्त-सुमणावेढ्ठिदो विअ पुरोहिदो दिढ ण सोहइ । इत्थिआ वि पठन्ती छिण्ण-णासिआ विअ धेणुआ अदिविरूवा होइ । [कामं प्रशंसतु भवान् । मम खलु तावद् गायन् मनुष्यः स्त्र्यपि पठन्त्युभयमादरं न ददाति । गायंस्तावन्मनुष्यो

अर्पितम् = भावयुक्तम् (भावों से युक्त) । च = तथा । साभिनयप्रयोगम्—अभिनयस्य=अभिनीयभावस्य प्रयोगः, तेन सहितम्, साभिनयप्रयोगेण (नाटकीय भावों सहित) । वा = अथवा । विविधैः = अनेकैः (अनेक) बहु प्रशंस्य = बहुविधां प्रशंसां कृत्वा (अनेक प्रकार से प्रशंसा करके) । तत् उक्त्वा = तद् भणित्वा (यह कह कर) । यदि = चेत् (यदि) । भित्त्यन्तरम् = कुड्यन्तरम् (दीवार के अन्दर) । भवेत् = स्यात् (हो जाये) । (तो) । युवती = तरुणी (अस्ति) । इति = एवम् (अहम्) (इस प्रकार से मैं) । विद्याम् = जानीयाम् (समझ लूँ) । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २ ॥

काममिति । कामम् = अभीष्टम् (जी भर कर) । प्रशंसतु = प्रशंसां करोतु (प्रशंसा करो) । मा खलु तावत् (नूनं तावदेतन्माभूत् (ऐसा भले ही न हो) । गायन् = गायनं कुर्वन् (गायन करते हुए) । मनुष्यः = नरः (मनुष्य) । पठन्ती = पाठं विदधन्ती (पढ़ती हुई) । स्त्री अपि = नारी अपि (स्त्री भी) । उभयम् = द्वावपि (दोनों ही) । आदरम् = सम्मानम् (सम्मान) । न ददाति = न यच्छति (नहीं देता है) । रक्तसुमनो-

---

अनेक प्रकार से अधिक प्रशंसा कर के तथा यह सब कह कर क्या लाभ है ? यदि यह गाना दीवार की आड़ से गाया गया हो तो मैं समझूँगा कि कोई तरुणी गा रही है ।

विदूषक—आप खूब प्रशंसा करें । मुझे तो वास्तव में गाता हुआ मनुष्य और पढ़ती हुई स्त्री दोनों ही अच्छे नहीं लगते हैं । गाता हुआ मनुष्य तो लाल फूलों की माला पहने हुए पुरोहित के समान बहुत अच्छा नहीं लगता स्त्री भी

रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो दृढं न शोभते। स्त्र्यपि पठन्ती छिन्ननासिकेव धेनुरतिविरूपा भवति।]

नायकः—सखे! उपारूढोऽर्धरात्रः। स्थिरतिमिरा राजमार्गाः! निस्सम्पातपुरुषत्वात् प्रसुप्तेवोज्जयिनी प्रतिभाति। कुतः,

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं गतो ह्यष्टमपक्षचन्द्रः।

वेष्टितः रक्तैः सुमनोभिः वेष्टितः = लोहितकुसुमावृतः (लाल फूलों से आवेष्टित, लाल फूलों की माला पहने हुए)। पुरोहित इव = पुरोधा इव (पुरोहित के समान)। न शोभते = न रमते (अच्छा नहीं लगता है)। स्त्री अपि = नारी अपि (स्त्री भी)। छिन्ननासिका —छिन्ना नासिका यस्याः सा = कर्त्तितघ्राणेन्द्रिया (कटी नाक वाली)। धेनुरिव = गौरिव (गाय के समान)। अतिविरूपा = अत्यन्तं विकृतरूपा (अत्यन्त विरूपा)। भवति = अस्ति (हो जाती है)।

अर्द्धरात्रः—रात्रेः अर्द्धमित्यर्द्धरात्रः = मध्यरात्रिकालः (आधी रात का समय)। उपारूढः = सञ्जातः (हो गया है)। स्थिरतिमिराः = स्थिरं तिमिरं यत्र तादृशाः (घने अन्धकार वाले)। निस्सम्पातपुरुषत्वात्—निर्गतः सम्पातः = गमनागमनम् यस्मात् एवंभूतः पुरुषो यत्र, तेषां भावस्तस्मात् (पुरुषों का यातायात समाप्त हो जाने से)। प्रसुप्ता इव = निद्रितेव (सोती हुई सी)। प्रतिभाति = प्रतीयते (मालूम पड़ती है)।

असौ = एषः (यह)। अष्टमपक्षचन्द्रः = शुक्लपक्षस्याष्टम्याश्चन्द्रः (क्षीणकान्तिः) (शुक्ल पक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा के समान विभव हीन)। तिमिरावकाशम् – तिमिरस्य = अन्धकारस्य अवकाशम् = प्रचारस्थानम्, तत् (अन्धकार को फैलने का स्थान)। दत्वा = प्रदाय (दे कर)। अस्तंगतः—अस्तम् = अस्ताचलस्थानम् गतः = प्राप्तः (अस्ताचल को पहुँच गया है)।

पढती हुई नाककटी गाय के समान अत्यन्त विकृत (भोंड़े) रूप वाली होती है।

नायक—सखे! आधी रात का समय हो गया है। राजपथ घने अन्धकार युक्त है। लोगों का आवागमन न होने के कारण उज्जयिनी नगरी सोती सी जान पड़ती है। क्योंकि—

वह अष्टमी का चन्द्रमा (क्षीणकान्ति) तिमिर को फैलने का अवसर देकर

तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोटीव निमज्जमाना ॥ ३ ॥

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणादि। अन्तद्धिअमाणचन्दलद्धावआसो ओदरदी विअ पासादादो अन्धआरो। [सुष्ठु भवान् भणति। अन्तर्दधानचन्द्रलब्धावकाशोऽवतरतीव प्रासादादन्धकारः]।

नायकः—(परिक्रम्य) इदमस्मदीयं गृहम्। वर्धमानक! वर्धमानक!

विदूषकः—वद्धमाणअ! वद्धमाणअ! दुवारं अवावुद। [वर्धमानक! वर्धमानक! द्वारमपावृणु]।

हि = यतः (क्योंकि)। तोयावगाढस्य—तोये = जले अवगाढः = स्थितः (जल में घुसा हुआ)। वनगजस्य = अरण्यकरिणः (जङ्गली हाथी का)। निमज्जमाना = अवगाहमाना (डुबी हुई)। विषाणकोटी इव = विषाणश्रेणीव= दन्तश्रेणी, इव (दाँतों के आगे के भाग जैसी)। 'विषाणः स्यात् पशुशृङ्गेभदन्तयोः इत्यमरः। अत्रोपजातिवृत्तम् ॥ ३ ॥

सुष्ठ्विति। सुष्ठु = शोभनम् (सुन्दर)। भणति = कथयति (कह रहे हैं आप)। अन्तर्दधानचन्द्रलब्धावकाशः—अन्तर्दधानश्चासौ चन्द्रश्चान्तर्दधानचन्द्रः, तस्मात् लब्धः अवकाशः येन सः = तिरोहितविधुप्राप्तावसरः (अस्त चन्द्रमा से अवसर पाया हुआ)। अन्धकारः = तमः (अंधेरा)। प्रासादात्=राजभवनात् (महल से)। अवतरति इव=अधोगच्छति इव (मानों नीचे उतर रहा हो)।

अस्मदीयम् = अस्माकम् (हमारा)। वर्धमानकः = चारुदत्तस्य गृहसेवकः (चारुदत्त का गृहसेवक)।

द्वारकम् = द्वारम् (दरवाजा)। अपावृणु = उद्घाटय (खोल दो)।

अस्ताचल को चला गया है क्योंकि जल में प्रविष्ट हुए जङ्गली हाथी का दन्ताग्र भाग भी जल में डूब सा गया है ॥ ३ ॥

विदूषक—आप ठीक कह रहे हैं। तिरोहित हुए चन्द्रमा से अवकाश पाया हुआ अन्धकार मानो महल से उतर रहा है।

नायक—(घूमकर) यह हमारा घर है। वर्धमानक! ओ वर्धमानक।

विदूषक—हे वर्धमानक! द्वार खोल दो।

(प्रविश्य)

चेटः—अम्मो अय्यमेत्तेओ। [अम्मो आर्यमैत्रेयः]।

नायकः—वर्धमानक!

चेटः—अम्मो भट्टिदारओ। भट्टिदारअ! वन्दामि। [अम्मो भर्तृदारकः। भर्तृदारक! वन्दे]।

नायकः—पादोदकमानय।

चेटः—(परिक्रम्य) इदं पादोदअं। (नायकस्य पादौ प्रक्षालयति!) [इदं पादोदकम्]।

विदूषकः—वड्ढमाणअ! मम वि पादं पक्खालेहि। [वर्धमानक! ममापि पादं प्रक्षालय]।

अम्मो = अहो!

भर्तृदारक! हे स्वामिपुत्र! (हे मालिक!)। वन्दे = प्रणमामि (मैं प्रणाम करता हूँ)! पादोदकम् = पादस्य = चरणप्रक्षालनस्य उदकम् = जलम् तत् (पाँव धोने के लिए जल)। आनय = आहर (ले आओ)।

प्रक्षालयति = धौति (धोता है)।

मम = विदूषकस्य (मेरे, विदूषक के)। पादम् = चरणम् (पाँव को)। प्रक्षालय = क्षालय (धोओ)।

(प्रवेश करके)

चेट—अरे! आर्य मैत्रेय है।

नायक—वर्धमानक!

चेट—अरे! भर्तृदारक! हे भर्तृदारक! प्रणाम करता हूँ!

नायक—पाँव धोने के लिए जल ले आओ।

चेट—(घूम कर) यह पादोदक है।

(नायक के पाँव धोता है)।

विदूषक—वर्धमानक! मेरे भी पाँव धोओ।

चेटः—सुहोदेसु पादेसु भूमीए पलोट्ठिदव्वं। उदअं विणासेहि। अहव आणेहि। पक्खालइस्सं। (नाट्येन विदूषकस्य पादौ प्रक्षालयति)। [सुधौतयोः पादयोर्भूम्यां प्रलोठितव्यम्। उदकं विनाशय। अथवा नय। प्रक्षालयिष्यामि]।

विदूषकः—ण केवलं दासीएपुत्तेण पादा धोदा, मुहं वि धोदं। [न केवलं दास्याः पुत्रेण पादौ धौतौ, मुखमपि धौतम्]।

नायकः—वयस्य !

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।

सुधौतयोः—सुष्ठु धौतौ सुधौतौ, तयोः = सुक्षालितयोः (भली प्रकार धोए हुए)। पादयोः = चरणयोः (दोनों चरणों को)। भूम्याम् = धरण्याम् (धरती पर)। प्रलोठितव्यम् = प्रलोठनं कर्तव्यम् (लोटपोट करना होगा)। उदकम् = नीरम् (जल)। विनाशय = पातय (गिरा दो)। आनय = आहर (ले आओ)।

दास्याः पुत्रेण = दुष्टेन (हरामजादे ने)। धौतौ = प्रक्षालितौ (धोये हुए)। मुखम् = आननम् (मुख को)। धौतम् = क्षालितम् (धोया)।

इयमिति। हि = यतः (क्योंकि)। इयम् = एषा (यह)। नयनावलम्बिनी—नयने अवलम्बेते या सा = नेत्राधारिणी (नेत्रों का अवलम्बन करने वाली) निद्रा (नींद)। ललाटदेशात्=ललाटस्य = मस्तकस्य देशः = स्थानम्, तस्मात् (ललाटदेश से)। माम्=चारुदत्तम् (मुझ चारुदत्त को)। उपसर्पति इव = उपागच्छतीव (मानों खिसक कर समीप आ रही है)। या (जो)

चेट—भलीभाँति धोये गये पाँवों को तो भूमि पर ही लोटना होगा। जल गिरा दो। अथवा ले आओ। धो लूँगा। (नाटकीय ढंग से पैर धोता है)।

विदूषक—इस हरामजादे ने केवल पाँव ही नहीं धोये बल्कि मुख भी धो डाला।

नायक—वयस्य,

यह नेत्रों पर अवलम्बित रहने वाली निद्रा माथे पर से उतर कर मानो

अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते ॥ ४ ॥

मैत्रेय ! सुप्यताम् । (निष्क्रान्तश्चेटः)

(प्रविश्याभरणसमुद्गहस्ता)

चेटी—अय्यमेत्तेअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि । [आर्यमैत्रेय ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ]।

विदूषकः—भोदि ! किं एदं । [भवति ! किमेतत्] ।

चेटी—इअं सुवण्णभण्डं सट्ठीए सत्तमीए परिवेट्टामि । अट्ठमी खु अज्ज । [इदं सुवर्णभाण्डं षष्ठ्यां सप्तम्यां परिवर्तयामि । अष्टमी खल्वद्य] ।

अदृश्यमाना = अलक्ष्यमाना (दिखलाई न पड़ती (हुई) । चपला = चञ्चला (चञ्चल निद्रा) । जरा इव = वृद्धत्वमिव (बुढ़ापे की भांति) । मनुष्य-वीर्यम् = मनुष्यस्य = पुरुषस्य वीर्यम् = पराक्रमम् (मनुष्य के पराक्रम को) परिभूय=पराजित्य (पराजित करके) ! वर्धते=एधते (बढ़ती है) । अत्रोत्प्रेक्षा-लङ्कारः । वंशस्थवृत्तम् । तद् यथा—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ॥ ४ ॥

टिप्पणी—परिभूय—परि + √भू + ल्यप् ।

वर्धते—√वृध् + लट् प्र० पु० ए० व० ।

प्रविश्येति । आभरणसमुद्गहस्ता—आभरणस्य = आभूषणस्य समुद्गकम्= गृह्यमाणम् (पेटिका इति भाषायाम्) । हस्ते यस्याः सा (आभूषणों की पेटी हाथ में लिए हुए) ।

सुवर्णभाण्डम् = सुवर्णस्य = हेटकस्य भाण्डम् = पात्रम्, तत् (स्वर्णपात्र) । परिवर्तयामि = परिवर्तनं करोमि (वापस कर रही हूँ) । स्वकम् = सम्पत्तिः (सम्पत्ति है) ।

मेरे पास आ रही है । जो चञ्चल बुढ़ापे की अवस्था मनुष्य बल को पराजित कर बढ़ती रहती है ॥ ४ ॥

मैत्रेय ! सो जाओ । (चेट निकल गया) ।

(प्रवेश करके हाथ में आभूषणों की पेटी लिए हुए) ।

चेटी—आर्य मैत्रेय ! उठो, उठो ।

विदूषक—भवति ! यह क्या है ?

चेटी—यह सुवर्ण भाण्ड षष्ठी या सप्तमी को लौटाने को हूँ पर आज तो अष्टमी है ।

नायकः—इदं तद् वसन्तसेनायाः स्वकम्।

चेटी—आम। भणादु भणादु भट्टिदारओ, गण्हदु त्ति। [आम। भणतु भणतु भर्तृदारकः गृह्णात्विति]।

नायकः—मैत्रेय ! गृह्यताम्।

विदूषकः—किं णिमित्तं अअं अलङ्कारो अब्भन्तरचउस्सालं ण प्पवेसीअदि। [किन्निमित्तमयमलङ्कारोऽभ्यन्तरचतुःशालं न प्रवेश्यते]।

नायकः—मूर्ख ! बाह्यजनवारितमलङ्कारं गृहजनो न द्रक्ष्यति।

विदूषकः—का गई। आणेहि गण्हामि चोरेहिं गण्हिअमाणं। [का गतिः। आनय गृह्णामि चोरैर्गृह्यमाणम्]।

(चेटी दत्त्वा निष्क्रान्ता)

गृह्णातु = स्वीकरोतु (ग्रहण करो)।

अभ्यन्तरचतुःशालम्—चतसृणाम् शालानाम् समाहार इति चतुःशालम्, अभ्यन्तरे चतुःशालमित्यभ्यन्तरचतुःशालम् (अन्तःपुर की चतुःशाला में)। प्रवेश्यते = धार्यते (रखा जा रहा है)।

बाह्यजनवारितम्—बहिर्भवा बाह्याः, बाह्यैः जनैः वारितमिति बाह्यजनवारितम् (बाहरी लोगों के द्वारा पहना हुआ)। गृहजनः = गृहिणी (पत्नी)। न द्रक्ष्यति = न अवलोकयिष्यति (नहीं देखेगी)।

का गतिः=किं सामर्थ्यम् (क्या गति है)। आनय=आहर (ले आओ)। चोरैः = तस्करैः (चोरों के द्वारा)। गृह्यमाणम् = ग्रहणयोग्यम् (ग्रहण करने योग्य)।

नायक—यह तो वसन्त सेना की सम्पत्ति है।

चेटी—हाँ भर्तृदारक ! कह दें कि (आर्य मैत्रेय) ले लेवें।

नायक—मैत्रेय ! ले लो।

विदूषक—यह अलङ्कार अन्तःपुर में क्यों नहीं रखा जा रहा है।

नायक—मूर्ख ! अन्यजन (वसन्त सेना) का पहना हुआ यह अलङ्कार गृहजन (गृहिणी—ब्राह्मणी) नहीं देख लेगी।

विदूषक—क्या करूँ। ले आओ, लेलूँ, चोरों द्वारा गृह्यमाण आभूषण।

(चेटी देकर निकल जाती है)।

विदूषकः—भो! किंणिमित्तं सो पावरओ तस्स गणिआपरिआरअस्स दिण्णो। [भोः! किन्निमित्तं स प्रावारकस्तस्मै गणिकापरिचारकाय दत्तः]।

नायकः—सानुक्रोशतया।

विदूषकः—इह वि साणुक्कोसदा। [इहापि सानुक्रोशता]।

नायकः—वयस्य! मा मैवम्।

विदूषकः—अहं भरिदगद्दभो विअ भूमीए पलोट्ठामि। [अहं भरितगर्दभ इव भूम्यां प्रलुठामि]।

नायकः—निद्रा मां बाधते। तूर्ष्णीं भव।

विदूषकः—सअदु भवं सुहप्पबोहाअ। जाव अहं पि सुविस्सं। [शेतां भवान् सुखप्रबोधाय। यावदहमपि स्वप्स्यामि]।

भोः किमिति। प्रावारकः = उत्तरीयवस्त्रम् (पिछौरा या चादरा)। गणिकापरिचारकाय—परिचरतीति परिचारकः, गणिकायाः परिचारकः, तस्मै = वेश्यासेवकाय (वेश्या के नौकर के लिए)। दत्तः=प्रदत्तः (दिया)।

सानुक्रोशतया—अनुक्रोशेन सहितम् सानुक्रोशम्, तस्य भावस्तया सानुकम्पया (कृपा करके)। भरितगर्दभ इव—भरः सञ्जातोऽस्य सः भरितः, भरितश्चासौ गर्दभः इति भरितगर्दभः भारयुतः खरः (बोझ से लदा गधा जैसा)।

बाधते=पीडयति (बाधा कर रही है)। तूष्णीम् = मौनम् (चुपचाप)। शेताम् = शयनं करोतु (सो जाओ)। सुखप्रबोधाय-सुख पूर्वकं प्रबोधो यथा स्यात् तथा, तस्मै = सुखेन जागरणाय (सुख पूर्वक जागरण के लिए)। स्वप्स्यामि = शयनं करिष्यामि (सो जाऊँगा)।

विदूषक—अरे यह प्रावारक (चादर)। किस लिए उस गणिका—सेवक के लिए दिया गया है?

नायक—अनुग्रह करके।

विदूषक—यहाँ भी अनुग्रह करना है।

नायक—वयस्य! नहीं, ऐसा नही है।

विदूषक—मैं बोझ लदे गधे के समान भूमि पर लोटूँगा।

नायक—मुझे नीद बेचैन कर रही है। चुप रहो।

विदूषक—आप सुख से सोयें, तब तक मैं भी सो लूँगा।

(द्वावपि स्वपितः)

(ततः प्रविशति सज्जलकः)

सज्जलकः—एष भोः !

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम् ।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ५ ॥

भोः ! वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धि छित्त्वा प्रविष्टोऽस्मि । यावदिदानीं चतुःशालमुपसर्पामि । (सनिर्वेदं विचिन्त्य) भोः !

कृत्वेति । शिक्षाबलेन—शिक्षायाः बलं शिक्षाबलम्, तेन = शिक्षणशक्त्या । (शिक्षा के बल से) । च = तथा । बलेन = पौरुषेण (पौरुष से) । च=तथा । शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम्–शरीरस्य = देहस्य परिणाहः=विशालता ('परिणाहो विशालता इत्यमरः) । तस्य सुखेन प्रवेशः यस्मात्, तम् = देहविशालतया अनायासप्रवेशयोग्यम् (देह की विशालता के कारण अनायास प्रवेश के योग्य) । कृत्वा = विधाय (करके) । भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वः–भूमौ परिसर्पणमिति भूमिपरिसर्पणम्, तेन घृष्टौ पार्श्वौ यस्य सः = सुरङ्गभूमौ शयितः सन्नग्रे सर्पण-घृष्टवामदक्षिणभागः (सुरङ्गभूमि में सरकने के कारण कठोर बने पार्श्वभागवाले)। निर्मुच्यमानः = कञ्चुकाद् हीयमानः (केंचुली से रहित) । जीर्णतनुः–जीर्णम् तनुः यस्य सः = क्षीणकायः (दुर्बल शरीर वाला) । भुजङ्ग इव = सर्प इव (सांप के समान) । गच्छामि=यामि (जा रहा हूं) । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥५॥

भो इति । वृक्षवाटिकापक्षद्वारे-वृक्षाणां वाटिका वृक्षवाटिका, तस्य पक्ष-

---

(दोनों सोने लगते हैं) ।

(तब सज्जलक प्रवेश करता है) ।

सज्जलक—अरे ! शिक्षाबल से तथा शरीर बल से शरीर की विशालता के कारण अनायास प्रवेश करके पृथ्वी पर सरक-सरक कर चलने के कारण दोनों घिसे हुए पार्श्व भागों वाले, केंचुली रहित जीर्ण शरीर वाले भुजङ्ग के समान मैं जा रहा हूं ॥ ५ ॥

अरे ! वृक्षवाटिका के पार्श्व द्वार में सेंध काट कर मैं घुस आया हूं ।

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्यं न कार्कश्यता ।
स्वाधीना वचनीयताऽपि तु वरं बद्धो न सेवाञ्जलि-
र्मार्गश्चैष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥ ६ ॥

द्वारम्, तस्मिन्=पादपोद्यानपार्श्वद्वारे (वृक्षोद्यान के पार्श्वद्वार पर)। सन्धिम्=रन्ध्रम् (सेंध) । छित्वा = कृत्वा (छेद कर)। उपसर्पामि = उपगच्छामि (चलता हूँ)। सनिर्वेदम् = निर्वेदेन सहितम् सनिर्वेदम् = सदुःखम् (दुःख के सहित)। विचिन्त्य = विचार्य (सोचकर)। भोः = अयि !

यत् = चौरादि कर्म (चोरी आदि जो कार्य)। सुप्तेषु = निद्रावस्थासु (सोई दशा में)। वर्त्तते = भवति (होता है)। विबुधाः=विद्वांसः (विद्वान् लोग)। इदम् = एतत् (यह)। कामम्=अत्यन्तम् (अत्यधिक)। नीचम् = निम्नम् (नीच कोटि का)। वदन्तु = भणन्तु (कहे)। हि=यतः (क्योंकि)। विश्वस्तेषु = विश्वसनीयेषु (विश्वसनीय लोगों में या स्नेही जनों में)। वञ्चना-परिभवः = वञ्चनया = छलेन परिभवः = अनादरः (छल से अनादर)। शौर्यम् = पराक्रमः (पराक्रम) नास्ति (नहीं है)। कार्कश्यता = क्रूरत्वम् (क्रूरता) (भवति)। स्वाधीनतयास्वच्छन्दतया । वचनीयता = निन्दाया सा स्वाधीनवचनीयता (स्वच्छन्दता से युक्त निन्दा)। वरम् = श्रेष्ठम् (श्रेष्ठ)। (भवति)। तु=अपितु (बल्कि)। बद्धः सेवाञ्जलिः=दास्यभावेन सेवानिमित्तं प्रणामादिकरणम् (दास्यभाव से सेवा के लिए किया गया प्रणामादि कार्य)। न वरम्। च = तथा। पूर्वं = प्राक् (पहले)। नरेन्द्रसौप्तिकवधे—सुप्तभवाः सौप्तिकाः, नरेन्द्राश्च ते सौप्तिकाश्च, तेषां वधः = निद्राकाले धृष्टद्युम्नादिनृपवधः, तस्मिन् (सोते समय धृष्टद्युम्न आदि राजाओं के वध में)। एषः = अयम् (यह)। मार्गः = वर्त्म (मार्ग) । द्रौणिना द्रोणस्य सुतो द्रौणिस्तेन =

तब तक चतुःशाला की ओर बढ़ता हूँ ! (दुःख के साथ सोचकर) अरे—

सोते समय लोगों पर जो कार्य (चोरी आदि) ! किया जाता है उसे विद्वान् अत्यन्त नीच कर्म भले ही कहें क्योंकि विश्वासी लोगों का छल-कपट से अनादर करना पराक्रम नहीं बल्कि कर्कशता होती है। (पर)। यह छल कपट भी स्वतन्त्रता युक्त होने के कारण अच्छा होता है। हाथ जोड़ना खुशामद

(विचिन्त्य)

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च ।
यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि दुःखोपहतो न चित्ते ॥ ७ ॥

यद्वा तद्वा भवतु । किं वा न कारयति मन्मथः । यावदारभे कर्म । भोः !

अश्वत्थाम्ना (अश्वत्थामा ने) । कृतः=सम्पादितः (किया है, बनाया है) । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । तद् यथा—सूर्याश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥६॥

लुब्ध इति । यः लुब्धः = यः लोभीजनः (जो लालची व्यक्ति) । अर्थवान्= धनिकः (धनवान्) । साधुजनावमानी—साधुजनानाम् = सत्पुरुषाणाम् अवमानी = अपमानकर्ता (साधुजनों का अपमान करने वाला) । वा = अथवा । यः च = तथा यो नरः (और जो व्यक्ति) । वणिक् = व्यापारी स्ववृत्ती = स्वस्य वृत्तिः स्ववृत्तिस्तस्याम् = आत्मकर्मणि—व्यापारे (अपने कार्य व्यापार में) । अतिकर्कशः = अतिकठोरः (अत्यन्त क्रूर) । (अस्ति) तस्य = उपर्युक्तयोर्द्वयोरेकस्य (उन दोनों में एक का) । गेहम् (घर) । यदि नाम लप्स्ये = यद्यहं प्राप्नुयाम् (यदि पा जाऊँ) । तथा = तर्हि (तो) । चित्ते = चेतसि (चित्त में) । दुःखोपहतः—दुःखेन उपहतः = क्लेशप्रताडितः (दुःख से पीड़ित) । न भवामि=न स्याम् (न रहूँ) । उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥७॥

टिप्पणी—लप्स्ये—√लभ् + लृट् उ० पु० ए० व० ।

यद्वेति । कारयति = कर्त्तुं प्रेरयति (करा लेता है) । आरभे = प्रारम्भं करोमि (प्रारम्भ करता हूँ) ।

करना अच्छा नहीं होता । यह मार्ग महाभारतकाल में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भी धृष्ट-द्युम्न आदि राजाओं का सोते पर वध करके अपनाया था ॥ ६ ॥

(सोचकर)

यदि मैं लोभी मनुष्य धनवान् साधु पुरुष का अपमान करने वाले और अपने कर्म में कठोर रहने वाले व्यापारी के घर में प्रवेश करता हूँ तो चित्त में दुःखी नहीं होऊँगा ॥ ७ ॥

चाहे जो कुछ हो । मदन क्या नहीं करा लेता है ? अच्छा, कार्य आरम्भ करता हूँ । अरे—

देशः को नु जलावसेकशिथिलश्छेदादशब्दो भवेत्
भित्तीनां क्व नु दर्शितान्तरसुखः सन्धिः करालो भवेत् ।
क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्यं क्व जीर्णं भवेत्
कुत्र स्त्रीजनदर्शनं च न भवेत् स्वन्तश्च यत्नो भवेत् ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य) इयं वास्तुविभागक्रिया । सोपस्नेहतया गृहविशिष्ट

भित्तीनाम् = प्राकाराणाम् (दीवारों का) । क्व नु देशः = किन्तु ईदृक् स्थानम् (ऐसा कौन सा स्थान है) । (यत्र) जलावसेकशिथिलः—जलस्यावसेकः जलावसेकः, तेन शिथिलः=वारिसेकश्लथः (पानी से भीगने के कारण कमजोर) । छेदात् = सन्धिभेदात् (सेंध काटने से) । अशब्दः—नास्ति शब्दः = ध्वनिः यत्र स (शब्द रहित) । भवेत् = स्यात् (होवे) । कः नु सन्धिः = रन्ध्रम् (कौन सी सेंध) । दर्शितान्तरसुखः—दर्शितम् अन्तरम् = मध्यभागम् सुखेन = सरलतया यत्र सः (सरलता से भीतर का भाग दिखाई देने वाला) । करालः = विशालः (कराल) । भवेत् = स्यात् (हो जाये) । च = तथा क्व=कुत्र (कहाँ) । क्षारक्षीणतया—क्षारस्य क्षीणता, तया (खारेपन की क्षीणता के कारण) । चलेष्टकृशम्—चलम् = चपलम् इष्टकम् = मृन्निर्मितमिष्टकम्, तेन कृशम् = चञ्चलेष्टह्रासप्राप्तम् (हिलती हुई ईंट ढीली बनी हुई) । जीर्णम् = शीर्णम् (कमजोर) । हर्म्यम् = गृहम् (घर) । भवेत्=स्यात् (हो गया हो) । च = तथा । कुत्र = क्व (कहां) । स्त्रीजनदर्शनम्—स्त्रीजनस्य = नार्याः दर्शनम् = अवलोकनम् (स्त्रियों का दिखलाई पड़ना) । स्वयत्नः = स्वस्य यत्नः—आत्म-प्रयासः (अपना प्रयत्न) । शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८ ॥

इयमिति । इयम् = एषा (यह) । वास्तुविभागक्रिया—वास्तुनः = वास्तु-

---

दीवारों का कौन सा ऐसा स्थान है जहाँ जल से भीगे होने के कार पोला हो, जहाँ पर काटने से शब्द न हो, जहाँ सरलता से अन्दर का विस्तृत रूप से दिखलाई पड़ जाये लोनी लगी होने के कारण हिलती हुई ईंटों से घर कमजोर पड़ गया हो और कहाँ पर से स्त्रियाँ दिखलाई न पड़े, तथा मेरा प्रयास (सेंध लगाना) भी सफल हो जाये ॥ ८ ॥

(घूमकर) यह भवन की दर्ज (ईंटो के बीच में छुटा हुआ स्थान (नमी

इवायं भवनविन्यासः। इह तावत् प्रवेशावकाशं करिष्ये। भोः! कीदृश इदानीं सन्धिच्छेदः कर्तव्यः स्यात्।

सिंहाक्रान्तं पूर्णचन्द्रं झषास्यं चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्रं त्रिकोणम्।
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्यमस्मत्पक्ष्या विस्मितास्ते कथं स्युः ॥८॥

गृहस्य विभाग-क्रिया=विभजनम् (मकान के जोड़ का स्थान), सोपस्नेहतया—उपस्नेहेन सहेति, सोपस्नेहम्, तस्य भावः सोपस्नेहता, तया=स्निग्धतया (स्नेह होने के कारण)। गृहविशिष्ट इव = भवनविशेष इव (विशेष प्रकार के भवन जैसा)। भवनविन्यासः—भवनस्य=गृहस्य विन्यासः सन्निवेशः (घर का बनाव चुनाव) (अस्ति)। प्रवेशावकाशम्—प्रवेशाय अवकाशः = मार्गः सुरङ्गादिकम्, तम् (घुसने के लिए सुरंग आदि)। सन्धिच्छेदः— सन्धेः = रन्ध्रस्य छेदः (सेंध का छिद्र)।

सिंहेति। सिंहाक्रान्तम्—सिंहेन = वनराजेन, आक्रान्तम् = आक्रमणकृतमिव (सिंह के द्वारा दबोचे गये व्यक्ति के आकार वाली)। पूर्णचन्द्रम्—पूर्णश्चासौ चन्द्रः = पूर्णचन्द्रस्तादृशम् इव (पूर्ण चन्द्रमा के आकार की)। झषास्यम्—झषस्य = मकरस्य आस्यम् मुखम् तादृशम् (मकर के मुख के आकार की)। चन्द्रार्द्धम्—चन्द्रस्य = विधोः, अर्द्धम् = अर्द्धभागस्तादृशम् (चन्द्रमा के अर्द्ध भाग के आकार की)। व्याघ्रवक्त्रम्—व्याघ्रस्य वक्त्रम् = आननम् इव (व्याघ्रमुखी)। त्रिकोणम्—त्रीणि कोणानि सन्ति यस्मिन्, तत् = त्रिभुजाकारम् (त्रिकोणाकार की)। पीठिका = चतुरस्रम् (चौकोर)। वा = अथवा; गजास्यम्—गजस्य = हस्तिनः, आस्यम् = मुखम् इव (हाथी के मुख के समान आकार वाली)। वा = अथवा (या)। सन्धिच्छेदः—सन्धेः रन्ध्रस्य छेदः = कर्तनम् = रन्ध्रच्छेदनम् (सेंध काटना)। स्यात् = भूयात् (होवे)। अस्मत्पक्ष्याः—अस्मादृशकर्मकराश्चोराः (हमारे जैसा काम करने वाले चोर)।

के कारण विशेष प्रकार का 'यह घर का बनाव हो तो फिर यहीं पर सुरङ्ग करता हूँ। अरे! इस समय कैसी सेंध लगानी चाहिए?

सिंह के आक्रमण जैसी टेढ़ी सेंध लगाऊँ या पूर्णचन्द्रमा के समान गोल या मकर मुखाकार की या व्याघ्रमुख के आकार की या त्रिकोण के आकार की या

भवतु, सिंहाक्रान्तमेव च्छेदयिष्ये।

विदूषकः—भो! जागत्ति खु भवं, णहि। [भोः! जागर्ति खलु भवान्, न हि।

नायकः—किमर्थम्।

विदूषकः—अहं खु दाव कत्तव्वकरत्थीकिदसङ्केदो विअ सक्किअसमणओ णिद्दं ण लभामि। वामं खु मे अक्खि फन्देदि। चोरो सन्धि छिन्ददी विअ पेक्खामि। जइ ईदिसी अवत्था अत्थाणं, जादीए दरिद्दो एव्व होमि। [अहं खलु तावत् कर्तव्यकरस्त्रीकृतसङ्केत इव शाक्यश्रमणको निद्रां न लभे। वामं खलु मेऽक्षि स्पन्दते। चोरः सन्धि छिनत्तीव पश्यामि। यदीदृश्यवस्थाऽर्थानां, जात्या दरिद्र एव भवामि]।

विस्मिताः स्युः = आश्चर्यचकिताः भवेयुः (अचम्भित हो जायें)। शालिनीवृत्तम्—तद् यथा—शालिन्युक्ताम्नो तगौ गोऽब्धिलोके ॥ ९ ॥

भवत्विति। भवतु = अस्तु (हो)! छेदिष्ये = छेदनं करिष्ये (काटूंगा)। जागर्त्ति = जाग्रतः अस्ति (जग रहे हैं)। कर्तव्यकरस्त्रीकृतसङ्केतः—कर्तव्यं करोतीति कर्त्तव्यकरः, तस्य स्त्री, तया कृतः तादृशः सङ्केतः = श्रमिकपत्नीकृतसमयनिर्देशः (मजदूर की स्त्री के द्वारा समय निर्देश किए हुए)। शाक्यश्रमणक इव = बौद्ध-भिक्षुक इव (बौद्ध भिक्षु के समान)। कामम् = अभीष्टम् (जी भर कर)। अक्षि = चक्षुः (आंख)। स्पन्दते = स्फुरति (फड़कती है)। चौरः = तस्करः (चोर)। सन्धिम् = रन्ध्रम् (सेंध)। छिनत्ति = कर्तयति

चौकोर या हाथी के मुखाकार की सेंध लगाऊँ जिस से मेरे समान (अर्थात् चोर लोग) सेंध को देखकर दङ्ग रह जाये ॥ ९ ॥

तो सिंहाक्रान्त सेंध ही काटूंगा।

विदूषक—अरे क्या आप जग रहे हैं या नहीं?

नायक—किस लिए?

विदूषक—मुझे तो बौद्ध भिक्षु को मजदूर-स्त्री के द्वारा किए गए स्थान-सङ्केत के समान नींद नहीं आ रही है। मेरी बाईं आँख फड़क रही है। शायद

नायकः—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ! दारिद्रयमभिलषसि ।

सज्जलकः—अथ केनेदानीं सन्धिच्छेदमार्गः सूचयितव्यः स्यात् । नन्विदं दिवा ब्रह्मसूत्रं रात्रौ कर्मसूत्रं भविष्यति ।

अद्यास्य भित्तिषु मया निशि पाटितासु
छेदात् समासु सकृदर्पितकाकलीषु ।
काल्यं विषादविमुखः प्रतिवेशवर्गो
दोषांश्च मे वदतु कर्मसु कौशलं च ॥ १० ॥

(काट रहा है) ! इव = यथा । पश्यामि = अवलोकयामि (देख रहा हूँ) । अर्थानाम् = धनानाम् (धन की) । जात्या = जन्मना (जन्म से) ।

अथेति । सूचयितव्यः सूचयितव्यः स्यात् = निवेदितव्यः स्यात् (निवेदन किया जाय) । दिवा = दिने (दिन में) । ब्रह्मसूत्रम्=यज्ञोपवीतम् (जनेऊ) । रात्रौ = निशायाम् (रात में) । कर्मसूत्रम् = कार्यसाधनम् (कार्य सूत्र) ।

अद्य = अस्मिन् दिने (आज) । अस्य = एतस्य (इसकी) । भित्तिषु = गृहभित्तिषु (दीवारों पर) । रात्रौ = निशायाम् (रात मे) । मया = चौरेण (मुझ चोर के द्वारा) । पाटितासु छेदात् = रन्ध्रात् (छेद से) । सकृद् = एकवारम् (एक वार) । अर्पित काकलीषु—अर्पिता काकली यत्र तासु = दत्तकाकलीयन्त्रेषु (काकली-यन्त्र—सावर लगा देने पर) । काल्यम् = प्रत्यूषकाले (सवेरे) । विषादविमुखः—विषादेन=खेदेन, विमुखः=विवर्णमुखः (दुःख से व्याकुल) । प्रतिवेशवर्गः=परिजनसमूहः (पड़ोसी समुदाय) । मे =

चोर सेंध लगा रहा है यदि धन की ऐसी दशा है तो मैं जाति से दरिद्र ही रहना चाहूँगा ।

नायक—मूर्ख ! तुम्हे धिक्कार है । दरिद्रता चाहते हो ।

सज्जलक—आज किस प्रकार सेंध काटने का मार्ग बतलाया जाय । वास्तव मे यह दिन का यज्ञोपवीत ही रात मे कर्मसूत्र बन जायेगा अर्थात् रात में यह यज्ञोपवीत ही सेंधा नापने के काम आएगा । .

आज रात में इस की दीवार मे छेद कर दिया । काकली यन्त्र (सावर) क एक वार से ही यह सुन्दर सुरंग बन गया ! प्रातःकाल दुःखी मन पड़ोसी तो

नमः खरपटाय। नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्यः। (तथा करोति)। हन्त अवसितं कर्म। प्रविशामस्तावत्। (प्रविश्य) अये! ज्वलति दीपः। अपसरामि तावत्। धिक् सज्जलकः खल्वहम्।

मार्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने
निद्रा सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने संसर्पणे पन्नगः।

मम (मेरे)। दोषान् = अवगुणान् (दोषों को)। च = तथा। कर्मसु = कर्तव्येषु (कार्यों में)। कौशलम् = दक्षता (कौशल)। वदतु = कथयतु (कहो)। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ १०॥

नम इति। खटपटाय = चौरदेवाय (चोरों के देवता के लिए)। नमः= नमस्कारः (नमस्कार है)। रात्रिगोचरेभ्यः = रात्रिश्चरेभ्यः (रात्रि गोचर)। देवेभ्यः = सुरेभ्यः (देवताओं के लिए) तथा करोति = सन्धि छिनत्ति (सेंध काटता है)। हन्त! आश्चर्यम् (अहा)! अवसितम् = समाप्तम् (समाप्त हो गया)। कर्म = सन्धिकर्म (सेंध काटना)। अपसरामि = अपगच्छामि (हट जाता हूँ)।

मार्जार इति। प्लवने = कूर्दने (छलंग लगाने में)। मार्जार इव = विडाल इव (बिलाड़ की भाँति)। अपसरणे = तीव्रगमने (तेज चलने में)। वृकः (भेड़िया जैसा)। गृहावलोकने—गृहे अवलोकनम्, तस्मिन् = गृहान्तर्वस्तु-सन्दर्शने (घर में रखी वस्तु को देखने में)। श्येनः इव (बाज पक्षी सा)। सुप्तमनुष्यवीर्यतुलने—सुप्तश्चासौ मनुष्यश्च, तस्य यद् वीर्यम् तस्य तुलने=निद्रायमाणजनशक्तिमापने (सोते हुए व्यक्ति की शक्ति की तुलना करने में)। निद्रा (नींद के समान)। संसर्पणे = संसर्पणकार्ये (सरकने मे)। वर्णशरीरभेद-

---

मेरी बुराइयां करेंगे ही, कर्म (चौर कर्म) में मुझे लोग चतुर भी कहेंगे॥१०॥

चोरों के देवता (खरपट देव) के लिए नमस्कार है। रात्रि में दिखलाई पड़ने वाले देवताओं के लिए नमस्कार है। (वैसा करने लगता है, सेंध लगाता है) अहो काम पूरा हो गया! अब घुसते हैं। (घुसकर) अरे! दीपक जल रहा है। तो हट जाता हूँ। धिक्कार है! वास्तव में मैं सज्जलक हूँ।

उछलने में बिल्ली के समान, तेज भागने में भेड़िया जैसा, घर की वस्तुओं को देखने में बाज पक्षी सा, सोते हुए मनुष्य की शक्ति की तुलना में नींद सा,

माया वर्णशरीरभेदकरणे वाग् देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु सङ्कटे च तिमिरं वायुः स्थले नौर्जले ॥ ११ ॥

(सर्वतो विलोक्य) आगन्तुकत्वादविदितसमृद्धिविस्तरः केवलं भवन-प्रत्ययादिह प्रविष्टोऽस्मि । न चेदानीं कश्चित् परिच्छदविशेषं पश्यामि । किन्नु खलु दरिद्र एवायम् । उताहो अयं संयमननिरर्थकं द्रष्टव्यं

करणे = वर्णदेहविश्लेषणे (स्थूल सूक्ष्म शरीर का भेद रखने में) । माया = भ्रम (माया के समान) । देशभाषान्तरे—देशभाषासु = विभिन्नवाणीषु अन्तरम् = भेदः, तस्मिन् (विभिन्न भाषाओं के भेद में) । वाग् = सरस्वती (सरस्वती देवी सी) । रात्रिषु = निशासु (रातों में) । दीपः = दीप्तिः (दीपक के समान) । सङ्कटे = कष्टे (संकट में) । तिमिरम् = तमः (अन्धकार के समान) । च = तथा । स्थले = भूमौ (स्थल में) । वायुः = पवनः (वायु के समान) । जले=अम्भसि (जल में) । नौः इव=तरणिरिव (नाव के समान) (भवामि) । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

सर्वत इति । सर्वतः = चतुर्दिक्षु (सभी ओर) । आगन्तुकत्वात्=वैदेशि-कत्वात् (परदेशी होने के कारण) । अविदितसमृद्धिविस्तरः—समृद्धेः विस्तर इति समृद्धिविस्तरः, अविदितः समृद्धिविस्तरः यस्य सः = अज्ञात-विभवप्रस्तारः (अज्ञात वैभव विस्तार वाला) । भवनप्रत्ययात् = भवनरमणीय-त्वात् (सुन्दर भवन होने के कारण) ! कश्चित् = कमपि (किसी को) । परिच्छदविशेषम्—परिच्छदानां = वस्त्राणाम्, विशेषम् = वैशिष्ट्यम् (विशेष प्रकार की पोशाकें) । न पश्यामि = नावलोकयामि (नहीं देख रहा हूँ) । किन्नु खलु = किम् निश्चयेन (निश्चित रूप से क्या) । अयम् = एषः (यह) ।

सरकने में सांप जैसा, स्थूल शरीर का भेद करने में माया के समान, विभिन्न भाषाओं का अन्तर करने में सरस्वती के समान, रात्रि में दीपक सा, सङ्कटों में अन्धकार जैसा, स्थूल पर वायु के समान और जल में नाव के समान मैं बन जाता हूँ ॥ ११ ॥

(चारों ओर देखकर) आगन्तुक (परदेशी) होने के कारण वैभवविस्तार का ज्ञान न होने से केवल भवन देखकर ही मैं घुस आया हूँ और यहाँ कुछ भी विशेष पोशाकें आदि समान नहीं देख रहा हूँ ! अवश्य ही यह निर्धन होगा ।

धारयति । अथवा, अभिजातोऽयं भवनविन्यासः । उपभुक्तप्रनष्टविभवेनानेन भवितव्यम् ।

तथा विभवमन्दोऽपि जन्मभूमिव्यपेक्षया ।
गृहं विक्रयकालेऽपि नीलस्नेहेन रक्षति ॥ १२ ॥

भवतु पश्यामस्तावत् । अथवा, न खलु मे तुल्यावस्थः कुलपुत्रः पीडयितव्यः गच्छामि तावत् ।

दरिद्रः = निर्धनः (निर्धन) । उताहो = अथवा संयमननिरर्थकम्—संयमनेन = भूमौ स्थापनादिना निरर्थकम् = व्यर्थम् (संयम के द्वारा व्यर्थ) । द्रष्टव्यम्—दृश्यं वस्तु (दिखलाई पड़ने वाली वस्तु) । धारयति = रक्षति (रखता है) । अभिजातः = मनोहरः (मनोरम) । भवनविन्यासः = गृहनिर्माणम् (घर की बनावट) । उपभुक्तविनष्टविभवेन—उपभुक्तः प्रनष्टश्च विभवो यस्य सः, तेन = भुक्तनष्टैश्वर्येण (उपभुक्त और नष्ट वैभव वाला) । भवितव्यम् (होना चाहिए) ।

तथेति । विभवमन्दः अपि—विभवेन मन्दः = विभवक्षीणः अपि (धनहीन होता हुआ भी) । विक्रयकाले अपि = निर्धनतया गृहविक्रयावसरेऽपि (घर बेचने की दशा में भी) । जन्मभूमिव्यपेक्षया—जन्मभूमेः = जन्मभुवः व्यपेक्षया = अनुरागेण (जन्मभूमि के अनुराग से) । नीलस्नेहेन = गाढ़प्रेम्णा (गाढ़ प्रेम होने के कारण) । गृहम् = सदनम् (घर को) । रक्षति = अवति (बचाये हुए हैं) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १२ ॥

भवत्विति । तुल्यावस्थः—तुल्या = समाना अवस्था = दशा यस्य सः

अथवा यह बहुमूल्य पदार्थों को भूमि मे छिपा कर बेकार की वस्तुएँ रखा दिखलाई पड़ रहा है । अथवा इसका भवनविन्यास मनोरम है । अतः एव अवश्य ही इसे धन का उपभोग कर धन वैभव से विनष्ट व्यक्ति होना चाहिए ।

तथा—विभव से क्षीण होकर भी घर बेचने की स्थिति में आ जाने पर भी जन्मभूमि के अनुराग के कारण गहरा प्रेम होने से यह घर को बचाए हुए है, बेचता नहीं है ॥ १२ ॥

अच्छा, तब तो देखते हैं । अथवा मुझे अपने समान अवस्था वाले निर्धन कुलीन व्यक्ति को पीड़ित नहीं करना चाहिए । मैं तो जा रहा हूँ ।

विदूषकः—भो ! गण्ह एदं सुवण्णभण्डअं । [भो ! गृहाणैतत् सुवर्ण-भाण्डम् ।]

सज्जलकः—कथं सुवर्णभाण्डमित्याह । किं मां दृष्ट्वाऽभिभाषते । आहोस्वित् सत्त्वलाघवात् स्वप्नायते । भवतु पश्यामस्तावत् । (दृष्ट्वा) भूतार्थं सुप्त एवायम् । तथाहि,

निश्वासोऽस्य न शङ्कितो न विषमस्तुल्यान्तरं जायते
गात्रं सन्धिषु दीर्घतामुपगतं शय्याप्रमाणाधिकम् ।

(समान अवस्था वाला अर्थात् निर्धन) । कुलपुत्रः = कुलीनो नरः (कुलवान् मनुष्य) । पीडयितव्यः = सन्तप्तव्यः (पीडित करने योग्य है) ।

सुवर्णभाण्डम् = स्वर्णपात्रम् (सुवर्ण भाण्ड को) । माम् = सज्जलकम् (मुझ सज्जलक को) । दृष्ट्वा = अवलोक्य (देखकर) । अभिभाषते = ब्रवीति (कह रहा है) । आहोस्वित् = अथवा ।

सत्वलाघवाद् = बलक्षयात् (पराक्रम की कमी से) । स्वप्नायते = स्वप्नं पश्यति (सपना देख रहा है) । सुप्तः = निद्रितः (सोया हुआ) ।

निःश्वासेति । अस्य=एतस्य (इसका) । निःश्वास=श्वासबहिर्गमनम् (श्वास छोड़ना) । शङ्कितः = सन्दिग्धः न (शङ्कित नहीं है) । न विषम् = न चासमः (और विषम नहीं है) । (-परम्) तुल्यान्तरम् = समानान्तरम् = (समान अन्तर वाली) । जायते = भवति (हो रहा है) । सन्धिषु = शरीरसंधिषु (शरीर के जोड़ों पर) । गात्रम्=अङ्गम् (अङ्ग को) । दीर्घताम्=विस्तारम् (फैलाव को) । उपगतम् = प्राप्तम् (पहुँच गया है) । शय्याप्रमाणाधिकम्= शय्यायाः प्रमाणम्, तस्मात् अधिकम् = शय्याप्रमाणबहिर्भूतम् (चारपाई की

विदूषक—अरे ! यह सुवर्णपात्र ले लो ।

सज्जलक—क्या कहा—सुवर्ण-भाण्ड । क्या मुझे देखकर ही कह रहा है । अथवा धन नष्ट होने के कारण स्वप्न देख रहा है । अच्छा, देखता हूँ । (देखकर) । यह तो सोता हुआ ही दिखाई पड़ रहा है ।

क्योंकि—इसका निःश्वास शङ्का रहित और विषम नहीं है परन्तु तुल्य अवस्था में चल रहा है । शरीर के जोड़ों पर फैलाव होने के कारण अङ्गों में दीर्घता आ गई है तथा शय्या के प्रमाण से वे अधिक बढ़ गये हैं । दृष्टि गहरी

दृष्टिर्गाढनिमीलिता न चपलं पक्ष्मान्तरं जायते
दीपं चैव न मर्षयेदभिमुखः स्याल्लक्षसुप्तो यदि ॥ १३ ॥

क्व नु खलु तत्। अये जर्जरप्रावरणैकदेशे दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपं दृश्यते। सुपरिगृहीतमनेन। अयमत्र प्राप्तकालः। इमे मया गृहीताः शलभाः। दीपनिर्वापणार्थमेकं मुञ्चामि। (भ्रमरकरण्डकादेकं मुञ्चति।) अये! एष दीपं निर्वाप्य पतति।

नाप से भी अधिक) (प्रतीयते)। दृष्टिः = अवलोकनम् (दृष्टि)। गाढनिमीलिता—गाढं निमीलनम् यस्यां तादृशी = सघनमीलिता (कस कर बन्द की गई)। पक्ष्मान्तरम्=नेत्रलोमस्थानम् (पलक)। चपलम् = चञ्चलम् (चंचल)। न जायते = न भवति (नहीं हो रहा है)। यदि = चेत् (यदि)। लक्षसुप्तः—लक्षेण सुप्तः = व्याजसुप्तः (वहाना करके सोया हुआ)। अभिमुखः=सम्मुखः (सामने)। दीपकम्=दीपम् (दिया को)। न मर्षयेत् = न सहेत (न सहन कर सके)। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तद्यथा—सूर्याश्वैर्मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १३ ॥

क्वेति। क्व = कुत्र (कहाँ)। जर्जरप्रावारणैकदेशे—जर्जरस्य प्रावारणस्य एकदेशे = जीर्णप्रावारकप्रान्ते (कमजोर पिछौरे के एक छोर पर)। दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपम्—दीपस्य प्रभा दीपप्रभा, तया व्यक्तीकृतं रूपं यस्य तत् = दीपकान्तिप्रकटितरूपम् (दीपक के प्रकाश से प्रकटित रूप)। सुपरिगृहीतम्—सुष्ठुपरिगृहीतं सुपरिगृहीतम् = सम्यग्गृहीतम् (भली प्रकार पकड़ा हुआ)। प्राप्तकालः = उपयुक्तावसरः (उचित अवसर) (अस्ति)। शलभाः=पतङ्गाः (पतिङ्गे)। दीपनिर्वापणार्थम्—दीपस्य निर्वापणम्, तदर्थम् = दीपकशमनार्थम् (दीपक बुझाने के लिए)। मुञ्चामि = त्यजामि (छोड़ रहा हूँ)।

पलकें बन्द हैं जो कि हिल तक नहीं रही हैं। यदि यह सोने का वहाना करके सोया होता तो सामने दीपक जलने का प्रकाश सह नहीं पाता। (अत एव यह अवश्य सो रहा है) ॥ १३ ॥

वह कहाँ है? अरे! पुराने पिछौरे के एक छोर पर पड़ते हुए दीपक के प्रकाश से प्रकटित रूप दिखलाई पड़ रहा है। इसने भली प्रकार से सुवर्णपात्र पकड़ रखा है। यही उपयुक्त अवसर है। मैंने यह पतिङ्गे पकड़ रखे हैं।

विदूषकः—अविहा णिव्वाविदो दीवो दाणिं। मुसिदो म्हि। भो चारुदत्त ! गण्ह एवं सुवण्णालङ्कारं। अहं खु भीदीए उप्पहप्पवुत्तो विअ वणिजो णिद्दं ण लभामि। मम बम्हत्तणेण साविदो सि, जइ ण गण्हसि। [अविहा निर्वापितो दीप इदानीम् ! मुषितोऽस्मि। भोश्चारुदत्त ! गृहाणेमं सुवर्णालङ्कारम्। अहं खलु भीत्योत्पथप्रवृत्त इव वणिग् निद्रां न लभे। मम ब्रह्मत्वेन शापितोऽसि, यदि न गृह्णासि।]

सज्जलकः—किमत्र शपथपरिग्रहेण। एष प्रतिगृह्णामि। (गृह्णाति)

विदूषकः—(दत्वा) अहं विक्किणिदभण्डओ विअ वणिजओ सुहं सइस्सं। [अहं विक्रीतभाण्डक इव वणिक् सुखं शयिष्ये।]

भ्रमरकरण्डकात्—भ्रमराणां करण्डकम् = मिलिन्दपेटिकातस्मात् (भौंरों की पेटी से)। निर्वाप्य = संशाम्य (बुझाकर)।

मुषितः = लुण्ठितः (लुट गया हूँ)। भीत्या = भयेन (डर से)। उत्पथ-प्रवृत्त इव—उत्पथे = विमार्गे प्रवृत्त इव (गलत मार्ग पर पड़ा हुआ जैसा)। वणिक् (व्यापारी)। ब्रह्मत्वेन = द्विप्रत्वेन (ब्राह्मण होने के नाते)।

शपथपरिग्रहेण—शपथस्य परिग्रहस्तेन = शापदानेन (शाप देने से)। प्रतिगृह्णामि = आददामि (ले रहा हूँ)।

विक्रीतभाण्डकः—विक्रीतानि भाण्डकानि येन सः (वेंच दिये भांडों वाला)। सुखं शयिष्ये = आनन्देन शयनं करिष्यामि (आनन्द से सोऊँगा)।

दीपक बुझाने के लिए एक छोड़े देता हूँ। (भ्रमर पेटिका से एक छोड़ देता है)। अरे ! यह दीपक बुझा कर गिर पड़ा है।

विदूषक—हाय हाय ! अब दीपक बुझा दिया गया है। मैं तो लुट गया। हे चारुदत्त ! इस स्वर्णालङ्कार को ले लो। मुझे तो डर से विमार्ग पर पड़े बनिये के समान नींद नहीं आ रही है। यदि तुम इसे नहीं लेते हो तो ब्राह्मण होने के नाते मैं तुम्हें शाप दिये देता हूँ।

सज्जलक—शाप देने से क्या लाभ है ? मैं इसे लिए लेता हूँ। (ले लेता है)।

विदूषक—(देकर) बर्तन भांडे बेचे हुए (निश्चिन्त) बनिये के समान मैं आनन्द से (अब) सोऊँगा।

सज्जलकः—सुखं स्वपिहि महाब्राह्मण ! (विचिन्त्य) भो ! ब्राह्मणेन विश्वासाद् दीयमानं मया हर्तव्यमासीत्।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदं च यौवनम्।
यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च ॥ १४ ॥

(नेपथ्ये पटहशब्दः क्रियते।)

सज्जलकः—(कर्णं दत्वा) अये प्रभातसमयः संवृत्तः। अपसरामि तावत्।

(निष्क्रान्तः सज्जलकः)

सुखमिति। स्वपिहि = शयिष्व (सोओ)। विश्वासात्=प्रतीतेः (विश्वास से)। हर्तव्यम् = हरणीयम् (चुरा लेना चाहिये)।

खलु = नूनम् (निश्चय ही)। दारिद्रयम् = निर्धनताम् (दरिद्रता को)। अनिर्वेदम्—अविद्यमानः निर्वेदः = तृप्तिः यस्मिंस्तत् (अतृप्त)। यौवनम् = तारुण्यम् (तरुणाई)। दारुणम्=कठिनम् (कठोर)। कर्म=कार्यम् (कार्य)। निन्दामि = निन्दां करोमि (निन्दा कर रहा हूँ)। अनुष्टुव् वृत्तम् ॥ १४ ॥

नेपथ्ये = यवनिकान्तराले (नेपथ्य में)। पटहशब्दः = पटहस्य-'नगाड़ा' इत्येतस्य वाद्यविशेषस्य शब्दः = ध्वनिः (नगाड़ का शब्द)। क्रियते = विधीयते (किया जाता है)।

कर्णं दत्वा = श्रुत्वा (सुन कर)। संवृत्तः = सञ्जातः (हो गया है)। अपसरामि = अपसरेणं करोमि। (हट जाता हूँ)।

सज्जलक—हे महाब्राह्मण ! तुम सुख से सो जाओ। (सोच कर) अरे! ब्राह्मण के द्वारा विश्वास करके दिया गया स्वर्ण आभूषण मैंने चुराया था।

वास्तव में निर्धनता तथा अतृप्त यौवन को धिक्कार है। जो कि जानता हुआ अभी मैं यह दारुण कर्म कर रहा हूँ और निन्दा भी कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

(नेपथ्य में नगाड़े की आवाज होती है)।

सज्जलक—(कान लगा कर (अरे ! सवेरे का समय हो गया है। तब तो खिसक जाऊँ।

(सज्जलक निकल जाता है)।

(प्रविश्य)

चेटी—(साक्रन्दम्) अय्यमेत्तेअ ! अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्खदुवाले सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठो। [आर्यमैत्रेय ! अस्माकं वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धि छित्वा चोरः प्रविष्टः] !

विदूषकः—(सहसोत्थाय) किं भणादि होदि। [किं भणति भवती]

(चेटी रुक्खवाडिअत्ति पठति)।

विदूषकः—चोरं छिन्दिअ सन्धी पविट्ठो। [चोरं छित्वा सन्धिः प्रविष्टः]।

चेटी—हदास ! सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठ। [हताश ! सन्धि छित्वा चोरः प्रविष्टः]।

विदूषकः—आअच्छ णं दंसेहि। [आगच्छ ननु दर्शय]।

चेटी—(परिक्रम्य) एदं। [एतत्]।

विदूषकः—अविहा दासीएवुत्तेण कुक्कुरेण पवेसो किदो। भोदि ! आअच्छ, चारुदत्तस्स पिअं णिवेदेमि। [अविहा दास्याः पुत्रेण कुक्कुरेण प्रवेशः कृतः। भवति ! आगच्छ चारुदत्तस्य प्रियं निवेदयामि]।

साक्रन्दमिति। साक्रन्दम् = उच्चैः आक्रोश्य (जोर से चिल्ला कर)।

दास्याः पुत्रेण = नीचेन (हरामजादे ने)। कुक्कुरेण = शुना (कुत्ते ने)। निवेदयामि = कथयामि (कहता हूँ)।

(प्रवेश करके)

चेटी—(जोर से चिल्ला कर) आर्य मैत्रेय ! हमारी वृक्ष-वाटिका के पक्ष द्वार पर सेंध काट कर चोर घुस आया।

विदूषक—(सहसा उठकर) आप क्या कह रहीं है ?

(चेटी वृक्षवाटिका……इत्यादि फिर कहती है)।

विदूषक– चोर को काट कर सेंध घुस आया ?

चेटी—हताश ! सन्धि काट कर चोर घुस आया।

विदूषक—आओ ! दिखलाओ तो।

चेटी—(घूम कर) यह है !

विदूषक—हाय हाय ! हरामजादे कुत्ते ने प्रवेश किया। श्रीमतीजी ! आइये। चारुदत्त को प्रिय समाचार निवेदन करें।

(उभावुपगम्य)

भो चारुदत्त! पिअं दे णिवेदेमि। [भोश्चारुदत्त! प्रियं ते निवेदयामि।]

नायकः—(बुद्ध्वा) किं मे प्रियं। ननु वसन्तसेना प्राप्ता।

विदूषकः—ण खु वसन्तसेणा, वसन्तसेणो पत्तो। [न खलु वसन्तसेना, वसन्तसेनः प्राप्तः]।

नायकः—रदनिके! किमेतत्?

चेटी—भट्टिदारअ! अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्खदुवारे सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठो। [भर्तृदारक! अस्माकं वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धि छित्वा चोरः प्रविष्टः]।

नायकः—किं चोरः प्रविष्टः।

विदूषकः—भो वअस्स! सव्वहा तुवं भणासि, मुक्खो मेत्तेओ अपण्डिदो मेत्तेओ त्ति। णं मए सोभणं किदं तं सुवण्णभण्डअं तव हत्थे समप्पअन्तेण। [भो वयस्य! सर्वथा त्वं भणसि, मूर्खो मैत्रेयोऽपण्डितो मैत्रेय इति। ननु मया शोभनं कृतं तत् सुवर्णभाण्डकं तव हस्ते समर्पयता]।

बुद्ध्वेति। बुद्ध्वा = ज्ञात्वा (जानकर)। वसन्तसेनः = तन्नामको विदूषकः (वसन्त सेन नामक विदूषक)। प्राप्तः = आगतः (आया है)।

अपण्डितः (मूर्ख)। शोभनम् = सुन्दरम् (अच्छा)। कृतम् = विहितम् (किया)! समर्पयता = ददता (समर्पण करते हुए)।

(दोनों समीप जाकर)।

हे चारुदत्त! आपको प्रिय समाचार सुना रहा हूँ।

नायक—(जानकर) मेरा प्रिय क्या है? क्या वसन्त सेना आई है?

विदूषक—वसन्त सेना नहीं, वसन्त सेन आया है।

नायक—रदनिके! यह क्या है?

चेटी—भर्तृदारक! हमारी वृक्षवाटिका के पक्षद्वार पर सेंध काट कर चोर घुस आया।

नायक—क्या चोर घुस आया?

विदूषक—हे मित्र! तुम सर्वथा कहते थे मैत्रेय मूर्ख है, मैत्रेय अपण्डित है। वास्तव में मैंने वह सुवर्ण भाण्ड तुम्हारे हाथ में सौंप कर अच्छा ही किया।

नायकः—किं भवता दत्तम् ?

विदूषकः—अहइं । [अथ किम्] ।

नायकः—कस्यां वेलायाम् ।

विदूषकः—अद्धरत्ते । [अर्धरात्रे ।]

नायकः—किमर्धरात्रे । बाढं दत्तम् ।

विदूषकः—भो चारुदत्त ! जं वेलं पडिवुद्धो आसि, तस्सि वेलाअं खु दिण्णं । [भोश्चारुदत्त ! यस्यां वेलायां प्रतिवुद्ध आसीः तस्यां वेलायां खलु दत्तम् ।]

नायकः—हन्त हृतं सुवर्णभाण्डकम् ।

विदूषकः—दाणिं मे हत्थे पडिच्छदु अत्तभावं । [इदानीं मम हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान् ।]

नायकः—(आत्मगतम्)

किमिति । दत्तम् = समर्पितम् (दिया) ।

वेलायाम् = समये (समय पर) ।

अर्द्धरात्रे—अर्द्धा रात्रिर्यस्मिस्तत्, तस्मिन्=मध्यरात्रौ (आधी रात को) । प्रतिबुद्धः = जागृतः (जागृत) । हृतम् = चोरितम् (चुरा लिया गया) । प्रयच्छतु = ददातु (दे दीजिए) ।

आत्मगतम्=स्वगतम् (मन ही मन) ।

नायक—क्या आपने दे दिया ?

विदूषक—और क्या ?

नायक—किस समय ?

विदूषक—आधी रात मे ।

विदूषक—क्या आधा रात में ! अच्छा, दिया ।

नायक—हे चारुदत्त ! जिस समय पर तुम जगे थे उसी समय निश्चित रूप से दिया था ।

नायक—हाय ! सुवर्ण भाण्ड चुरा लिया गया ।

विदूषक—इस समय मेरे हाथ में आप दे दें ।

नायक—(मन ही मन) ।

क: श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता ॥ १५ ॥

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी—रदणिए ! रदणिए ! आअच्छ । णहि सुणादि । कवाडसद्दं दाव करिस्सं । (तथा करोति) । [रदनिके ! रदनिके । आगच्छ । न हि शृणोति । कवाटशब्दं तावत् करिष्यामि]।

चेटी—हं, कवाडसद्दो विअ । भट्टिदारिआ मं सद्दावेदि । (परिक्रम्य) भट्टिदारिए ! इअ म्हि । [हं, कवाटशब्द इव । भर्तृदारिका मां शब्दापयति । भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

भूतार्थम्—भूत: = सत्य:, तस्यार्थम् = सत्यनिमित्तम् (सचाई के लिए) । क: = क: पुरुष: (कौन व्यक्ति) । श्रद्धास्यति = विश्वासं करिष्यति (विश्वास करेगा) । (अपितु) सर्व: = निखिललोक: (सब) । माम् = चारुदत्तम् (मुझको) । तुलयिष्यति = तुलनां करिष्यति (तुलना करेगा) । हि = यत: (क्योंकि) । दोषेषु = अवगुणेषु (दोषों में) । निष्प्रभावा—निर्गत: प्रभाव: यस्या: सा (प्रभावहीन) । दरिद्रता = निर्धनता । शङ्कनीया = शङ्कास्थानं भवति (शंकनीय होती है) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १५ ॥

रदनिक इति । शृणोति = आकर्णयति (सुनती है) । कवाटशब्दम् = कवाटयो: शब्द:, तम् = कवाटध्वनिम् (किवाड़ों की आवाज, खटखटाना) ।

शब्दापयति=आह्वयति (पुकार रही है) ।

सच्ची बात पर अब कौन विश्वास करेगा । सभी लोग मुझे (अन्य लोगों के समान ही) तुलना किया करेंगे । क्योंकि (निर्दोष होते हुए भी) दोषों में प्रभाव हीन दरिद्रता से लोग शङ्का करेंगे । अर्थात् प्रभाव मिटाने वाली दरिद्रता के कारण मुझे ही दोष लगाया जायेगा ॥ १५ ॥

(प्रवेश करके)

ब्राह्मणी—रदनिके ! रदनिके ! आओ । सुनती नहीं हो । तब तो किवाड़ खटखटाऊँ ।

चेटी—हाँ—किवाड़ों के खटकने जैसी आवाज मालूम पड़ती है । भर्तृदारिका मुझे बुला रही है । (घूमकर) हे भर्तृदारिके ! मैं यहाँ हूँ ।

ब्राह्मणी—ण परिक्खदो ण वावादिदो अय्यउत्तो अय्यमेत्तेओ वा। [न परिक्षतो न व्यापादित आर्यपुत्र आर्यमैत्रेयो वा]।

चेटी—कुसली भट्टिदारओ अय्यमेत्तेओ अ। जो तस्स जणस्स अलङ्कारो चोरेण गहीदो। [कुशली भर्तृदारक आर्यमैत्रेयश्च। यस्तस्य जनस्यालङ्कारश्चोरेण गृहीतः]।

ब्राह्मणी—किं भणसि चोरेण गहीद त्ति। [किं भणसि चोरेण गृहीत इति]।

चेटी—अह इं। [अथ किम्]।

ब्राह्मणी—किणु खु तस्स जणस्स दादव्वं भविस्सदि। अहव एदं दइस्सं। (कर्णौ स्पृष्ट्वा) हद्धि तालीपत्तं खु एदं। सो दाणिं परिअओ मं विलम्वेदि। किं दाणिं करिस्सं। (विचिन्त्य) भोदु, विट्टं। मम ञ्जादिकुलादो लद्धा सदसहस्समुल्ला मुत्तावली। तं पि अय्यउत्तो सोढीरदाए पडिच्छदि। भोदु, एवं दाव करिस्सं (निष्क्रान्ता) [किन्तु खलु तस्मै जनाय दातव्यं भविष्यति। अथवैतद् दास्यामि। हा धिक् तालीपत्रं

परिक्षतः=आहतः (घायल)। व्यापादितः = घातितः (मारा गया)। तस्य जनस्य = वसन्तसेनायाः (उस व्यक्ति का)। दातव्यम्=दातुं योग्यम्, (देने योग्य)। तालीपत्रम् = तालदलम् (ताड़ का पत्ता)। परिचयः =

ब्राह्मणी— आर्यपुत्र (चारुदत्त) अथवा आर्य मैत्रेय घायल या मारे तो नहीं गये हैं ?

चेटी—आर्य चारुदत्त तथा आर्य मैत्रेय सकुशल हैं। उनका जो आभूषण था (वह) चोर चुरा ले गया।

ब्राह्मणी क्या कहते हो कि चोर ने चुरा लिया ?

चेटी—और क्या ?

ब्राह्मणी—अब उस (वसन्त सेना) को क्या दिया जायेगा ? अथवा यह दे दूँगी। (दोनों का स्पर्श करके) हाय ! यह तो ताड़पत्र का कर्णभूषण है

खल्वेतत् । स इदानीं परिचयो मां विडम्बयति । किमिदानीं करिष्यामि । भवतु, दृष्टम् । मम ज्ञातिकुलाद् लब्धा शतसहस्रमूल्या मुक्तावली । तामप्यार्यपुत्रः शौटीरतया प्रतीच्छति । भवतु, एव तावत् करिष्यामि] ।

विदूषकः—इमस्स अन्धआरुप्पादिदस्स अवराहस्स किदे भवन्तं सीसेण पसादेमि। दाणि मे हत्थे पडिच्छदु अत्तभवं । [अस्यान्धकारोत्पादितस्यापराधस्य कृते भवन्तं शीर्षेण प्रसादयामि । इदानीं मे हस्ते प्रयच्छत्वत्रभवान् ।]

नायकः—किं भवानीदानीं मां बाधते ।

अभिज्ञानम् (परिचय) । विडम्बयति = तिरस्करोति (विडम्बना कर रहा है) । जातिकुलात् = वंशात् (जाति, कुल से) । लब्धा = प्राप्ता (पाई है) । मुक्तावली = मौतिकमाला (मोतियों की माला) । शौटीरतया = अभिमानेन (अभिमान से) । प्रतीच्छति = ग्रहीष्यति (ले लेगा) ।

अस्येति । अस्य = एतस्य (इसके) । अन्धकारोत्पादितस्य—अन्धकारे = तमसि उत्पादितम्, तस्य (अन्धकार में उत्पादित किये गये) । अपराधस्य = अपराधहेतोः (अपराध के कारण) । भवन्तम् = आर्यचारुदत्तम् (आप आर्य चारुदत्त को) । शीर्षेण = शिरसा (शिर से) । प्रसादयामि = प्रसन्नं करोमि (प्रसन्न कर रहा हूँ) । इदानीम् = सम्प्रति (उस समय) । प्रयच्छतु = ददातु (दे दीजिए) ।

बाधते = पीडयति (पीडित कर रहे हो) ।

अब यह पुराना परिचय मुझे कष्ट दे रहा है । मैं अब क्या करूँगी । (सोचकर) अस्तु, उपाय सोच लिया । मेरे परिवार से मिली हुई हजारों गुनी मूल्य की मुक्तावली है । उसे भी आर्यपुत्र अपने कुलाभिमान से क्या लेना चाहेंगे ? अस्तु, तो फिर ऐसा ही करूँगी ।

विदूषक—इस अन्धकार द्वारा उत्पन्न किये गये अपराध (अन्धकार में भूषण दे देने का अपराध) के लिए मैं आपको माथा टेक कर खुशामद कर रहा हूँ । (क्षमा माँग रहा हूँ) । अब आप वह आभूषण मेरे हाथ में दे दें ।

नायक—आप मुझे इस समय पीड़ित क्यों कर रहे है ?

भवांस्तावदविश्वासी शीलज्ञो मम नित्यशः।
किं पुनः स कलाजीवी वञ्चनापण्डितो जनः॥ १६॥

विदूषकः—मण्णे मय मन्दभग्गेण कुम्भीलस्स हत्थे दिण्णं। (विषण्ण-स्तिष्ठति।) [मन्ये मया मन्दभाग्येन कुम्भीलस्य हस्ते दत्तम्।]

(प्रविश्य)

ब्राह्मणी—रदणिए! अय्यमेत्तेअं सद्दावेहि। [रदनिके! आर्यमैत्रेयं शब्दापय।]

चेटी—अय्यमेत्तेय! भट्टिदारिआ तुमं सद्दावेदि। [आर्यमैत्रेय! भर्तृदारिका त्वां शब्दापयति।]

भवान् = आर्यमैत्रेयः (आप)। मम=चारुदत्तस्य (मुझ चारुदत्त का)। शीलज्ञः-शीलं जानातीति शीलज्ञः = चरित्रज्ञः (चरित्र को जानने वाला)। नित्यशः=सर्वदा (नित्य)। अविश्वासी=विश्वासहीनः (अविश्वासी) (अस्ति) (तदा)। कलाजीवी = अभिनयादिकलाश्रितः (नाट्यादिकला पर आश्रित)। वञ्चनापण्डितः = वञ्चनाकर्मणि = छलनायाम् पण्डितः = कुशलः (दूसरों को ठगने में चतुर)। स जनः = सा व्यक्तिः (वह वसन्त सेना)। किं पुनः = किं भूयः (क्या फिर)। विश्वासी भवेत्। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ १६॥

मन्य इति। मन्ये = सम्भावयामि (शायद)। मन्दभाग्येन—मन्दं भाग्यं यस्य, तेन = भाग्यहीनेन (मन्दभाग्यवाले, अभागे ने)। कुम्भीलस्य = चोरस्य (कुम्भील चोर के)। हस्ते = करे (हाथ में)।

शब्दापय = आह्वय (पुकारो)।

यदि आप मेरे शील को जानते हुए भी नित्य अविश्वास रखते हैं तब तो अभिनयादि कला पर जीवित रहने वाला तथा दूसरों को वञ्चित करने में कुशल वह व्यक्ति (वसन्त सेना) पुनः किस प्रकार विश्वासी बन सकेगा॥१६॥

विदूषक—शायद मुझ अभागे ने कुम्भीलक (चोर) के हाथ में दे दिया। (दुःखी होकर खड़ा रहता है)! (प्रवेश करके)

ब्राह्मणी—रदनिके! आर्य मैत्रेय को बुलाओ।

चेटी—आर्य मैत्रेय! भर्तृदारिका तुम्हें बुला रही है।

विदूषकः—भोदि ! किं मं । [भवति किं माम् ।]

चेटी—आम् । [आम् ।]

विदूषकः—एस आअच्छामि । [एष आगच्छामि ।] (उपसर्पति ।)

ब्राह्मणी—अय्यमेत्तेअ ! इमं पडिग्गहं पडिगण्ह । [आर्यमैत्रेय ! इमं प्रतिग्रहं प्रतिगृहाण ।]

विदूषकः—अवत्थाविरुद्धो खु अअं पदाणविभवो । कुदो एदस्स आगमो । [अवस्थाविरुद्धः खल्वयं प्रदानविभवः । कुत एतस्यागमः ।]

ब्राह्मणी—णं सट्ठिं उववसमि । सव्वसारविभवेण बम्हणेण सोत्थि वाअइदव्वं त्ति एसो इमस्स आगमो ! [ननु षष्ठीमुपवसामि । सर्वसारविभवेन ब्राह्मणेन स्वस्ति वाचयितव्यमित्येपोऽस्यागमः]।

विदूषकः—अट्ठमी खु अज्ज । [अष्टमी खल्वद्य ।]

प्रतिग्रहम् = दानम् (दान) । प्रतिग्रहाण=गृह्णातु भवान् (ग्रहण करो) । अवस्थाविरुद्धः—अवस्थायाः = निर्धन दशायाः, विरुद्धः = विपरीतः (अवस्था के विपरीत) । प्रदानविभवः—प्रदानस्य विभवः = प्रदानसम्पत्तिः (प्रदान करने की सम्पत्ति) । आगमः = आगमनम् (आगम, आना, प्राप्त होना) । उपवसामि = व्रतं धारयामि (उपवास रहती हूँ) । सर्वसारविभवेन—सर्वेषां सारः एवंभूतो विभवस्तेन=सर्वमूलधनेन (सब तत्व धन से) । स्वस्तिवाचयितव्यम्—स्वस्तिमन्त्राः पठितव्याः (स्वस्ति मन्त्रों का पाठ करना चाहिए) । अस्य = एतस्य जनस्य, ब्राह्मण्याः । (इस जन अर्थात् मुझ ब्राह्मणी का) ।

विदूषक—श्रीमतीजी, क्या मुझे ?

चेटी—हाँ ।

विदूषक—यह आ रहा हूँ । (आगे बढ़ता है) ।

ब्राह्मणी– आर्य मैत्रेय ! यह दान ग्रहण कीजिये ।

विदूषक—यह दान का धन तो निर्धन अवस्था के विपरीत है ।

ब्राह्मणी—मैं षष्ठी का उपवास रहती हूँ । सब के तत्वभूत धन के द्वारा ब्राह्मण से स्वस्तीवाचन कराना चाहती हूँ ।

विदूषक—आज तो अष्टमी है ।

ब्राह्मणी—पमादादो अदिक्कमो किदो। अज्ज पूआ णिव्वत्तीअदि। [प्रमादाद् अतिक्रमः कृतः। अद्य पूजा निवर्त्यते]।

विदूषकः—अणणुरूवदाए पदाणस्स अणुक्कोसो विअ पणिभादि। (जनान्तिकम्) रदणिए! किं करिस्सं। [अननुरूपतया प्रदानस्याक्रोश इव प्रतिभाति। रदनिके! किं करिष्यामि]।

चेटी—(अपवार्य) किणु खु तस्स जणस्स दावव्वं भविस्सदि त्ति एदण्णिमित्तं भट्टिदारओ सन्तप्पदि त्ति भट्टिदारिआ तव हत्थे दइअ अय्यउत्तं अणिरिणं करिस्सामि त्ति एवं करेदि। ता गण्ह एदं। [किन्तु खलु तस्मै जनाय दातव्यं भविष्यतीत्येतन्निमित्तं भर्तृदारकः संतप्यत इति भर्तृदारिका तव हस्ते दत्त्वाऽऽर्यपुत्रमनृणं करिष्यामीत्येवं करोति। तद् गृहाणैतत्]।

अस्मीति। प्रमादात् = भ्रमात् (प्रमाद से)। अतिक्रमः = अतिक्रमणम्। (उल्लंघन)। निर्वर्त्यते = सम्पद्यते (किया जा रहा है)।

अननुरूपतया = प्रतिकूलतया (विपरीत होने के कारण)। प्रदानस्य = प्रतिग्रहस्य (दान का)। अनुक्रोशः=दया इव (दया के समान)। प्रतिभाति= प्रतीयते (ज्ञात होता है)। जनान्तिकम् = परस्परामन्त्रणालापः (आपस में परामर्श करना)।

अपवार्य = आक्षिप्य (रोक कर)। एतन्निमित्तम् = एतदर्थम् (इस निमित्त)। सन्तप्यते = खिद्यते (खेद किया जा रहा है)। अनृणम् = ऋण-रहितम् (ऋणमुक्त)।

ब्राह्मणी—प्रमाद से दिन भूल गये हो। आज पूजा करनी है।

विदूषक—प्रतिकूल होने के कारण यह धन-दान दया जैसा मालूम पड़ता है। रदनिके! क्या करूँ?

चेटी—(मना करके) 'उसको क्या दिया जायेगा' इस निमित्त भर्तृदारक सन्ताप करेंगे, यह समझ कर भर्तृदारिका ने तुम्हारे हाथ में देकर 'आर्य पुत्र को मैं अनृण (ऋण मुक्त) करना चाहती हूँ' ऐसा विचार कर यह किया है। अतः इस मुक्तावली को ग्रहण कीजिए।

ब्राह्मणी—उदअसम्भवदाए मुत्तावलीए तव अदुल्लहदाए उवआरो विस्सरिदो। गण्ह एदं। (ददाति) [उदकसम्भवतया मुक्तावल्यास्तव च दुर्लभतयोपचारो विस्मृतः। गृहाणैतत्]।

विदूषकः—(गृहीत्वा)सव्वं दाव चिट्ठदु। रोदिदी विअ होदिए दिट्ठी। [सर्वं तावत् तिष्ठतु। रोदितीव भवत्या दृष्टिः]।

ब्राह्मणी—देवउलधूमेण रोदाविदा। [देवकुलधूमेन रोदिता]।

विदूषकः—साविदासि तत्तहोदा चारुदत्तेण, जइ अलिअं भणासि। [शापितासि तत्रभवता चारुदत्तेन, यद्यलीकं भणसि]।

उदकसम्भवतया—उदकात् सम्भवो यस्यास्तस्याः भावस्तया = जलजन्मकारणेन (जल से उत्पन्न होने के कारण)। मुक्तावल्याः = रत्नमालायाः (मुक्तावली का)। दुर्लभतया = दुष्प्राप्यतया (दुर्लभ होने के कारण)। उपचारः=सत्कारः (सत्कार)। विस्मृतः=विस्मृतिपथं नीतः (भुला दिया)।

टिप्पणी—जनान्तिके—नाटक में ऐसी गोपनीय मन्त्रणा जो कोई और न सुन सके जनांतिक कहलाती है।

सर्वमिति। भवत्या = ब्राह्मण्याश्चारुदत्तपत्न्याः (आप की)। दृष्टिः = अवलोकनशक्तिः (दृष्टि)। रोदितीव = रोदनं कुर्वन्ती इव (रोती हुई सी)।

देवकुलधूमेन = देवकुलस्य = देवालयस्य धूमेन (मन्दिर के धुओं द्वारा)। रोदिता = रोदनं कारिता (रुला दी गई)।

शापिता = शपथदत्ता (सौगन्द दिलाई गई)। अलीकम् = असत्यम् (झूठ)। एषा = ब्राह्मणी। वाचा = वाण्या (वाणी से)। दुःखम् = व्याकुलताम् (दुःख)। रक्षयित्वा = गोपायित्वा (छिपा कर)। अश्रुभिः =

ब्राह्मणी—जल से उत्पन्न होने के कारण, तथा आपके दर्शन भी समय पर दुर्लभ होने के कारण उपचार (स्वागत सत्कार) करना भी मैं भूल गई। इसे आप ग्रहण कर लें।

विदूषक—(मुक्तावली लेकर) ये सब रहने दीजिये। आपकी दृष्टि रो सी रही है।

ब्राह्मणी—मन्दिर के धुएँ ने रुला दिया।

विदूषक—यदि आप झूठ बोलें तो आप को आर्य चारुदत्त की सौगन्ध है।

ब्राह्मणी—हद्धि। (निष्क्रान्ता)। [हा धिक्]।

विदूषकः—एसा वाआए दुक्खं रक्खिअ अस्सूहिं इअ सुगआ। (उपगम्य) भो ! इदं। [एषा वाचा दुःखं रक्षित्वाऽश्रुभिः सूचयित्वा गता। भोः ! इदम्]।

नायकः—किमेतत्।

विदूषकः—सरिसकुलदारसङ्गहस्स फलं। [सदृशकुलदारसंग्रहस्य फलम्]।

नायकः—किं ब्राह्मणी मामनुकम्पते।

विदूषकः—एवं विअ। [एवमिव]।

नायकः—धिगात्मानम्। अद्य हतोऽस्मि।

अश्रुपातैः (आंसुओं से)। सूचयित्वा = प्रकटयित्वा (सूचित करके)। गता = याता (गई है)।

सदृशकुलदारसंग्रहस्य—सदृशं कुलं सदृशकुलम्, तस्मात् दारसंग्रहस्तस्य = उत्तमकुलपत्नीग्रहणम् (उत्तम कुल की पत्नी चुनने का)। फलम् = लाभः (लाभ) (अस्ति)।

अनुकम्पते = कृपान्विता भवति (कृपा कर रही है)।

आत्मानम् = स्वम् (अपने को)।

ब्राह्मणी—हाय ! (निकल जाती है)।

विदूषक—यह वाणी से दुःख को छिपाये हुए है (पर) आँसुओं से दुःख सूचित कर गई है। (नायक के निकट जाकर) अरे ! यह।

नायक—यह क्या है ?

विदूषक—सदृश कुल (उत्तम कुल) की पत्नी करने का फल है।

नायक—क्या ब्राह्मणी मेरे ऊपर कृपा कर रही हैं।

विदूषक—ऐसा ही है।

नायक—मुझे धिक्कार है। आज मैं तो मर गया हूँ (अर्थात् बिल्कुल बेकार हो गया हूँ)।

मयि द्रव्यक्षयक्षीणे स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।
अर्थतः पुरुषो नारी या नारी साऽर्थतः पुमान् ॥ १७ ॥

विदूषकः—तत्तहोदी हिअएण तुमं याचेदि । अहं सोसेण याचेमि । गण्ह एदं । [तत्रभवती हृदयेन त्वां याचते । अहं शीर्षेण याचे । गृहाणैतत्] ।

मयीति । मयि = चारुदत्ते (मुझ चारुदत्त में) । द्रव्यक्षयक्षीणे—द्रव्यस्य क्षयः = धननाशः, तेन क्षीणस्तस्मिन् = धनक्षयदुर्बले सति (धन नष्ट हो जाने के कारण दुर्बल हो जाने पर) । स्त्रीद्रव्येण—स्त्रियाः = नार्याः द्रव्यम् = धनम्, तेन (नारी के धन से) । अनुकम्पितः = कृपान्वितो जातः (अनुकम्पित हुआ हूँ) । अर्थतः = यस्य पार्श्वे धनमस्ति स एव पुमान् = वास्तविकः पुरुषः, अर्थहीनः पुमान् पुमान् न भवति (धन से) । तथैव या नारी = याऽबला कथ्यते सापि अर्थतः पुंवद्भवति (जिस स्त्री के पास धन होता है वह अबला होकर भी अबला या असमर्थ न होकर पुरुष के समान पौरुषवाली) । (भवति) अनुष्टुव्वृत्तम् ॥ १७ ॥

टिप्पणी—अर्थतः पुरुषो नारी—धन की गर्मी ही मनुष्य में गर्मी या पौरुष लाती है । धन-हीन पुरुष बेकार हो जाता है । यह धन की ही महिमा है क्योंकि "अर्थोष्मणाभिरहितः पुरुषः क्षणेन सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्र-मेतत्" । कह कर भर्तृहरि ने भी यही प्रमाणित किया है ।

तत्रेति । हृदयेन = चेतसा (हृदय से) । त्वाम्=चारुदत्तम् (आप, चारुदत्त को) । याचते=कामयते (चाहती है)। अहम्=मैत्रेयः (मैं, मैत्रेय) । शीर्षेण = शिरसा (शिरसे) । याचे=कामये (चाहता हूँ) । एतत्=इदमाभूषणम् (यह आभूषण मुक्तावली) । गृहाण = आत्मीयां कुरु (स्वीकार करो) ।

मेरे धनक्षय से दुर्बल हो जाने पर पत्नी ने अपनी मुक्तावली देकर मेरे ऊपर कृपा की है । अर्थात् अब मैं स्त्री धन से पल रहा हूँ । मेरा पौरुष मिट गया है ।

वास्तव में धन हीन हो जाने पर पुरुष भी स्त्री जैसा असहाय, असमर्थ हो जाता है तथा धन युक्त होने पर स्त्री में भी पौरुष आ जाता है ॥ १७ ॥

विदूषक—ब्राह्मणीजी तो आपको हृदय से चाहती हैं पर मैं शिर से चाहता हूँ । (अर्थात् उनसे भी अधिक चाहता हूँ) । अतः आप यह आभूषण मुक्तावली ले लीजिये ।

नायकः—तथा। (गृहीत्वा) वयस्य ! इमां मुक्तावलीं गृहीत्वा वसन्तसेनायाः सकाशं गच्छ।

अर्थेषु काममुपलभ्य मनोरथो मे
स्त्रीणां धनेष्वनुचितं प्रणयं करोति।
माने च कार्यकरणे च विलम्बमानो
धिग् भोः ! कुलं च पुरुषस्य दरिद्रतां च ॥ १८ ॥

विदूषकः—अहो अप्पमुल्लस्स सुवण्णभण्डअस्स किदे सदसहस्समुल्ला मुत्तावली णीआदइदव्वा। [अहो अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डकस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातयितव्या।]

सकाशम् = पार्श्वम् (समीप)।

अर्थेष्विति। मे = मम (मेरा)। मनोरथः = अभीष्टम् (मनोरथ)। अर्थेषु = वित्तेषु (धन में)। कामम् = इष्टम् (जी भर कर)। उपलभ्य = प्राप्य (पाकर)। माने = सम्माने (सम्मान की रक्षा में)। च = तथा। कार्यकरणे = कर्तव्यपालने (कर्तव्य पालन करने में)। विलम्बमानः = कालक्षेपं कुर्वन् सन् (समय विताता हुआ)। स्त्रीणाम् = नारीणाम् (स्त्रियों के)। धनेषु = वित्तेषु (धन में)। अनुचितम् = अनुपयुक्तम् (अनुचित)। प्रणयम् = प्रेम। करोति = विदधाति (करता है)। भोः = अयि ! (अरे)। पुरुषस्य = नरस्य (मनुष्य के)। कुलम् = वंशम् (कुल को)। च = तथा दरिद्रताम् = निर्धनताम् (निर्धनता को)। धिक् (धिक्कार है)। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १८ ॥

अहो इति। अल्पमूल्यस्य—अल्पम् = न्यूनम् मूल्यम् = अर्घम् यस्य तस्य

नायक—ऐसा ही। (लेकर) वयस्य ! इस मुक्तावली को लेकर वसन्त सेना के पास चले जाओ।

मेरा मनोरथ धन को जी भर पाकर सम्मान-रक्षा में तथा कर्तव्य करने में लगा हुआ स्त्रियों के धन में अनुचित प्रणयकर रहा है। अतः इस मर्यादा से युक्त ऊँचे कुल तथा दरिद्रता दोनों को धिक्कार है ॥ १८ ॥

विदूषक—अहो ! थोड़े से मूल्य वाले सुवर्णभाण्ड के लिए एक लाख मूल्य वाली मुक्तावली (क्या) दे देनी चाहिए ?

नायकः—वयस्य ! मा मैवम् ।

यं समालक्ष्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु कृतस्तया ।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्य प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः ।

—:०:—

(थोड़े से मूल्य वाले) । सुवर्णभाण्डस्य = स्वर्णपात्रस्य (स्वर्णभाण्ड के) । कृते = निमित्तम् (निमित्त) । शतसहस्रमूल्या—शतसहस्रं मूल्यं यस्याः सा (एक लाख मूल्य वाली) । मुक्तावली=रत्नावली । निर्यातयितव्या=प्रदातव्या (दे देनी चाहिए) ?

यमिति । तया = वसन्तसेनया (उस वसन्त सेना ने) । यम् विश्वासम्= यत्प्रत्ययम् समालक्ष्य = उद्दिश्य (उद्देश्य करके) । अस्मासु = अस्मद्विधासु (हम जैसे निर्धन पुरुष में) । न्यासः = क्षेपः (धरोहर) । कृतः = विहितः (किया है) । तस्य = उपर्युक्तस्य (उक्त का) । महतः = अत्यधिकस्य (अत्यधिक) । प्रत्ययस्य = विश्वासस्य (विश्वास का) । मूल्यम् = अर्घम् (मूल्य) । एतत् = मुक्तावली रूपं निक्षिप्तं धनम् (यह मुक्तावली के रूप में रखा गया धन) । प्रदीयताम्=दीयताम् (दे दीजिए) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ १९ ॥

इति सुधायां प्रथमोऽङ्कः ।

नायक—मित्र ! ऐसा नहीं है—

उस (वसन्त सेना) ने जिस विश्वास को मानकर मुझ निर्धन के पास धरोहर रखी है उस महान् विश्वास का मूल्य मुक्तावली को तुम उसे दे आओ ॥ १९ ॥

इति हिन्दीटीकायां तृतीयोऽङ्कः ।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सोत्कण्ठा वसन्तसेना, चित्रफलकमादाय वर्तिकाकरण्डहस्ता चेटी च)

गणिका—हञ्जे । पेक्खसि सरिसो तस्स जणस्स । [हञ्जे ! पश्यसि सदृशस्तस्य जनस्य] ।

चेटी—अज्जुए ! तस्सिं हत्थिविमद्दकोलाहले वहुमाणपय्यत्थाए दिट्ठीए दूरदो दिट्ठो सो भट्टिदारओ ईदिसो एव्व । [अज्जुके ! तस्मिन् हस्तिविमर्दकोलाहले बहुमानपर्यस्तया दृष्ट्या दूरतो दृष्टः स भर्तृदारक ईदृश एव] ।

तत इति । ततः = तदनन्तरम् (इसके बाद) । सोत्कण्ठा—उत्कण्ठया सहेति सोत्कण्ठा = सोत्सुका (उत्कण्ठा से युक्त) । चित्रफलकम् = चित्रपटलम् (फोटो बनाने के तख्ते को) । आदाय = नीत्वा (लेकर) । वर्तिकाकरण्ड-हस्तावर्तिका = तूलिका करण्डम्, पेटिका च = वर्तिकाकरण्डे, ते हस्तौ यस्याः सा = तूलिकारङ्गपेटिकाकरा (ब्रुश और रंग की पेटिका हाथ में लिए हुए) ।

हञ्जे ! सखि ! (हे सखी) । सदृशः=समानाकृतिः (समान आकृति) ।

अज्जुके ! =गणिके (हे गणिके) । हस्तिविमर्दकोलाहले—हस्तिनः विमर्दः= गजाक्रमणम्, तेन कोलाहलः = हाहाशब्दः (हाथी के आक्रमण से उत्पन्न कोलाहल में) । बहुमानपर्यस्तया—बहुमानेन = अतिसम्मानेन पर्यस्ता = प्रेरिता, तया = अत्यादरप्रेरितया (अत्यन्त आदर से प्रेरित) । दृष्ट्या = चक्षुषा (दृष्टि से) । दूरतः = दूराद् (दूर से) । दृष्टः = अवलोकितः (देखा हुआ) । ईदृशः = एतत्समः (ऐसा) । दक्षः = चतुरः (चतुर) । वेशवास-जनः = वाराङ्गना (वेश्याएँ) । जनापवादम् = लोककथनम् (लोगों का

(तब उत्कण्ठिता वसन्त सेना, चित्रफलक लेकर ब्रश तथा रंग का डिब्बा हाथ में लिए हुए चेटी प्रवेश करती है) ।

गणिका—सखी ! देख रही हो (यह) चारुदत्त के समान आकृति के हैं) ।

चेटी—गणिके ! उस हाथी के आक्रमण से उत्पन्न कोलाहल में अत्यन्त आदर से प्रेरित दृष्टि से दूर से देखे जाने पर यह भर्तृदारक जैसे ही लगते है ।

गणिका—तुमं दाव दक्खो वेसवासजणो त्ति जणवादं पूरअन्ती अलिअं भणसि। [त्वं तावद् दक्षो वेशवासजन इति जनवादं पूरयन्त्यलीकं भणसि]।

चेटी—किं एदं वेसवासजणो सव्वो दक्खिणो होइ त्ति। पेक्खदु अज्जुआ, चम्पआरामे पिचुमन्दा जाअन्ति। अदिसरिसं त्ति मम हिअअं अहिरमदि। परमत्थदो एव्व पसंतीअदि, णं कामदेवो। [किमेतद् वेशवासजनः सर्वो दक्षिणो भवतीति। पश्यत्वज्जुका, चम्पकारामे पिचुमन्दा जायन्ते। अतिसदृश इति मम हृदयमभिरमते। परमार्थत एव प्रशस्यते, ननु कामदेवः]।

गणिका—हञ्जे! सहीजणेण अवहसणीअत्तणं अत्तणो परिहरामि। [हञ्जे! सखीजनेनापहसनीयत्वमात्मनः परिहरामि]।

कहना)। पूरयन्ती = सम्पादयन्ती (पूरा करती हुई)। अलीकम् = असत्यम् (मिथ्या)। भणसि = वदसि (कहती हो)।

दक्षिणः = चतुरः (चतुर)। चम्पकारामे = चम्पकस्यारामे = उद्याने (चंपा के उद्यान में)। पिचुमन्दाः=निम्बपादपाः (नीम के पेड़)। जायन्ते= उत्पादिता भवन्ति (उत्पन्न होते हैं)। अभिरमते = मोदिते भवति (प्रसन्न हो रहा है)। परमार्थतः = तत्वतः (वास्तव में)। प्रशस्यते=स्तूयते (प्रशंसा की जाती है)। ननु = नूनम् (निश्चय ही)। कामदेवः=मदनः (कामदेव)।

अपहसनीयत्वम् = उपहास्यत्वम् (हंसी करना)। परिहरामि = त्यजामि (बचाती हूँ)।

गणिका—तुम तो 'वेश्याएँ चतुर होती है' इस कहावत को पूरा करती हुई झूठ बोल रही हो।

चेटी—क्या ये वेश्याएँ सभी चतुर होती है? अज्जुके! आप देखें, चम्पा के उद्यान मे नीम के पेड़ उत्पन्न होते हे अर्थात् जहाँ अच्छाइयाँ होती हैं वहीं बुराइयाँ भी! यह अत्यन्त समान आकार के हैं अतएव मेरे हृदय को प्रसन्न कर रहे हैं। वास्तव में ही मैं प्रशंसा कर रही हूँ, सचमुच (यह) कामदेव ही है।

गणिका—सखी! सखियों की हंसी मजाक से मैं अपने को बचा रही हूँ।

चेटी—एदं जुज्जइ। सहीजणसपत्तिओ गणिआजणो णाम। [एतद् युज्यते। सखीजनसपत्नीको गणिकाजनो नाम]।

(ततः प्रविशत्याभरणहस्ताऽपरा चेटी)

चेटी—सुहं अज्जुआए। [सुखमज्जुकायाः]।

गणिका—हञ्जे! साअदं दे। [हञ्जे! स्वागतं ते]।

चेटी—अज्जुए! अत्ता आणवेदि—इदं दुवारं पविट्ठं पोक्खरं उवावत्तिदं पहवणं। ता तुवरमाणमण्डणा गहीदावउण्ठणा आअच्छदु त्ति। इह अलङ्कारं अलङ्करेदु अज्जुआ। [अज्जुके! अम्बाऽऽज्ञापयति—इदं द्वारं प्रविष्टं पौष्करमुपावर्तितं प्रवहणम्। तत् त्वरमाणमण्डना गृहीतावगुण्ठनाऽऽगच्छत्विति। इहालङ्कारमलङ्करोत्वज्जुका]।

सखीजनसपत्नीकः समाना पतिर्यस्य सः सपत्नी, सखीजनः सपत्नी यस्य सः सखीजनसपत्नीकः (सखियों को सौत मानने वाला)। गणिकाजनः = वेश्याजनः (वेश्याएँ)।

तत इति। अपरा = अन्या (दूसरी)।

आज्ञापयति = आदिशति (आज्ञा देती हैं)। पौष्करम्—पुष्करेण युक्तं पौष्करम् = पद्मध्वजाङ्कितम् (पुष्करध्वज से युक्त)। प्रवहणम्—प्रकर्षेण वहतीति प्रवहणम् = गोशकटम् (रव्वा, रहलू)। उपावर्तितम् = समागतम् (आया है)। त्वरमाणमण्डना—त्वरमाणं मण्डनं यस्याः सा = द्रुतालङ्कृता (शीघ्र सजी संवरी)। गृहीतावगुण्ठना—गृहीतमवगुण्ठनं यया सा=कृतावगुण्ठना (घूँघट काढ़े हुए)। अलङ्करोतु = आत्मानं भूषयतु (शृङ्गार कर लीजिए)।

चेटी—यही ठीक है। सखियां रूपी सौते ही वेश्याएँ होती है।

(तब आभूषण हाथ में लिए हुए चेटी प्रवेश करती है)।

चेटी—अज्जुका (गणिका) जी की कुशल तो है?

गणिका—सखी! तुम्हारा स्वागत है।

चेटी— अज्जुके! माताजी ने कहा है कि यह पौष्कर (पुष्करध्वज से युक्त) रव्वा (बैलगाड़ी) दरवाजे पर आ गया है। अतः शीघ्रता से सजधज कर घूँघट काढ़े हुए आ जाओ। आप यहाँ यह आभूषण पहन लीजिए।

गणिका—तुमं दाव दक्खो वेसवासजणो त्ति जणवादं पूरअन्ती अलिअं भणसि। [त्वं तावद् दक्षो वेशवासजन् इति जनवादं पूरयन्त्यलीकं भणसि]।

चेटी—किं एदं वेसवासजणो सव्वो दक्खिणो होइ त्ति। पेक्खदु अज्जुआ, चम्पआरामे पिचुमन्दा जाअन्ति। अदिसरिसं त्ति मम हिअअं अहिरमदि। परमत्थदो एव्व पसंसीअदि, णं कामदेवो। [किमेतद् वेशवासजनः सर्वो दक्षिणो भवतीति। पश्यत्वज्जुका, चम्पकारामे पिचुमन्दा जायन्ते। अतिसदृश इति मम हृदयमभिरमते। परमार्थत एव प्रशस्यते, ननु कामदेवः]।

गणिका—हञ्जे! सहीजणेण अवहसणीअत्तणं अत्तणो परिहरामि। [हञ्जे! सखीजनेनापहसनीयत्वमात्मनः परिहरामि]।

कहना)। पूरयन्ती = सम्पादयन्ती (पूरा करती हुई)। अलीकम् = असत्यम् (मिथ्या)। भणसि = वदसि (कहती हो)।

दक्षिणः = चतुरः (चतुर)। चम्पकारामे = चम्पकस्यारामे = उद्याने (चंपा के उद्यान में)। पिचुमन्दाः=निम्बपादपाः (नीम के पेड़)। जायन्ते= उत्पादिता भवन्ति (उत्पन्न होते हैं)। अभिरमते = मोदिते भवति (प्रसन्न हो रहा है)। परमार्थतः = तत्वतः (वास्तव में)। प्रशस्यते=स्तूयते (प्रशंसा की जाती है)। ननु = नूनम् (निश्चय ही)। कामदेवः=मदनः (कामदेव)।

अपहसनीयत्वम् = उपहास्यत्वम् (हंसी करना)। परिहरामि = त्यजामि (बचाती हूँ)।

गणिका—तुम तो 'वेश्याएँ चतुर होती है' उस कहावत को पूरा करती हुई झूठ बोल रही हो।

चेटी—क्या ये वेश्याएँ सभी चतुर होती हैं? अज्जुके! आप देखें, चम्पा के उद्यान मे नीम के पेड़ उत्पन्न होते है अर्थात् जहाँ अच्छाइयाँ होती हैं वहीं बुराइयाँ भी! यह अत्यन्त समान आकार के हैं अतएव मेरे हृदय को प्रसन्न कर रहे है। वास्तव में ही मैं प्रशंसा कर रही हूँ, सचमुच (यह) कामदेव ही है।

गणिका—सखी! सखियों की हंसी मजाक से मैं अपने को बचा रही हूँ।

चेटी—तह । (निष्क्रान्ता) । [तथा] ।

(ततः प्रविशति सज्जलकः)

सज्जलकः—

कृत्वा निशायां वचनीयदोषनिद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च ।
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यः शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥ १ ॥

दिष्टया कर्मान्ते प्रभातम् । यावदिदानीं वसन्तसेनायाः परिचारिकाया मदनिकाया निष्क्रयार्थं मयेदं कृतम् । (परिक्रम्य) इदं वसन्त-

---

करणीयः (अभिसार करने योग्य) । मण्डयामि = भूषयामि (सजाती शृङ्गार करती हूँ) ।

तथा = एवमेव भवतु (अच्छा) ।

कृत्वेति । निशायाम् = रात्रौ (रात्रि में) । वचनीयदोषम् = चौर्यरूप-दोषम् (चोरी रूपी दोष को) । कृत्वा = विधाय (करके) । निद्राम्=स्वप्नम् (सोना,) । तिमिरम् = अन्धकारम् (अंधकार) । भयम्=भीतिम् (भय) । हित्वा = त्यक्त्वा (छोड़ कर) । सः एव = एष एव (यही) । सूर्योदय-मन्दवीर्यः—सूर्यस्योदयः सूर्योदयस्तस्मिन् = प्रभाते मन्दं वीर्यम् यस्य सः = प्राप्तः क्षीणबलः (सूर्योदय पर पर बलहीन) । (अहम्) शनैः = मन्दं मन्दम् (धीरे धीरे) । दिवाचन्द्रः इव = दिवसशशीव (दिन के चन्द्रमा के समान क्षीण) (अस्मि) । अत्रोपमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ॥ १ ॥

दिष्ट्येति । दिष्ट्या = सौभाग्येन (सौभाग्य से) । कर्मान्ते—कर्मणोऽन्तेः कर्मान्ते = कार्यसमाप्तौ (चोरी का काम पूरा हो जाने पर) । परिचारि-कायाः = सेविकायाः (परिचारिका का) । निष्क्रयार्थम् = निष्क्रयः=मोचनम्,

---

चेटी—अच्छा । (निकल जाती है) ।

(तब सज्जलक प्रवेश करता है) ।

सज्जलक—रात्रि में नींद, अंधेरा तथा भय को छोड़ कर चोरी रूपी दोपकार्य को छोड़कर वही मैं सूर्योदय काल में क्षीणकान्त दिन के चन्दमा के समान धीरे धीरे भयभीत हो रहा हूँ ॥ १ ॥

सौभाग्य से काम पूरा हो-जाने पर सवेरा हुआ । इस समय तो मैंने यह चोरी का काम वसन्त सेना की परिचारिका मदनिका के निष्क्रय (छुड़ाने) के

सेनाया गृहम्। यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य) किन्नु खल्वभ्यन्तरस्था मदनिका। अथवा, पूर्वाह्णे गणिकानामभ्यन्तरे सान्निध्यम्। अतस्तत्रैव तया भवितव्यम् : यावच्छब्दापयामि। मदनिके! मदनिके!।

चेटी—(आकर्ण्य) सज्जलअस्स विअ सरो। वावुदा अज्जुआ। ता उअसप्पिस्सं। [उपगम्य] इअम्हि। [सज्जलकस्येव स्वरः। व्यापृताऽज्जुका। तदुपसर्पिष्यामि। इयमस्मि]।

सज्जलकः—इतस्तावत्।

चेटी—किं तुवं सङ्किदवण्णो विअ। [किं त्वं शङ्कितवर्ण इव]।

सज्जलकः—न खलु, किञ्चित् कथयितुकामः।

तस्यार्थम् (छुटकारा पाने के लिए)। इदम् = एतच्चौरकर्म (यह चोरी का कार्य)। अभ्यन्तरस्था अभ्यन्तरे = हर्म्यमध्ये तिष्ठतीत्यभ्यन्तरस्था। (अन्दर बैठी हुई)। पूर्वाह्णे = दिवसस्य प्रथमयामे (दिन के प्रथम प्रहर में)। गणिकानाम् = वेश्यानाम् (वेश्याओं के)। अभ्यन्तरे = गृहान्तरे (घर के अन्दर)। सान्निध्यम् = सामीप्यम् (निकट रहना पड़ता है)।

शब्दापयामि = आह्वयामि (पुकारता हूँ)।

स्वरः = ध्वनिः (आवाज)। व्यापृता = संलग्ना (कार्य में संलग्न)। उपसर्पिष्यामि = समीपं गमिष्यामि (निकट चली जाऊँगी)।

शङ्कितवर्ण इव—सन्दिग्ध इव (शङ्का युक्त जैसा)।

कथयितुकामः = आख्यातुमिच्छुकः (कहने का इच्छुक)।

लिए किया है। (घूमकर) यह वसन्त सेना का घर है। तो प्रवेश करता हूँ (प्रवेश करके) क्या मदनिका अन्दर बैठी है? अथवा दिन के प्रथम पहर में गणिकाओं के घर के अन्दर ही वह रहती है। अतः उसे वहीं होना चाहिए। तो पुकारता हूँ—मदनिके! मदनिके।

चेटी—(सुनकर) सज्जलक जैसी आवाज मालूम पड़ती है। आर्या वसन्तसेना कार्य संलग्न है। अतः वहीं चलूँगी। (निकट जाकर) मैं यह हूँ।

सज्जलक—इधर आओ।

चेटी—क्या तुम शङ्कित से दिखलाई पड़ते हो?

सज्जलक—नहीं तो। कुछ कहना चाहता हूँ।

गणिका—हञ्जे ! इमं चित्तफलअं सअणीए ठावेहि (विलोक्य) कहिं गआ हदासा । अहव अदूरगआए होदव्वं । जाव णं पेक्खिस्सं (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो इअं सा अदिसिणिद्धाए दिट्ठीए केण वि मणुस्सेण पिवन्ती विअ सह मन्तअन्ती चिट्ठइ । तक्केमि एसो जो कोवि कएण मं याचेदि । [हञ्जे ! इदं चित्रफलकं शयनीये स्थापय । कुत्र गता हताशा । अथवा अदूरगतया भवितव्यम् । यावदेनां प्रेक्षिष्ये । अम्मो इयं साऽतिस्निग्धया दृष्ट्या केनापि मनुष्येण पिबन्तीव सह मन्त्रयमाणा तिष्ठति । तर्कयाम्येष यः कोऽपि क्रयेण मां याचते] ।

सज्जलकः—श्रूयतां रहस्यम् ।

गणिका—अजुत्तं पररहस्सं सोदुं, अहं गमिस्सं । [अयुक्तं पररहस्यं श्रोतुम्, अहं गमिष्यामि] ।

हञ्जे इति । शयनीये = शय्यायाम् (पलंग पर) । स्थापय = धारय (रख दो) । अदूरगतया—नास्ति दूरमदूरम्, अदूरं गतिर्यस्यास्तया (थोड़ी ही दूर गई होगी) । प्रेक्षिष्ये = अवलोकयिष्यामि (देखूँगी) । अतिस्निग्धया-दृष्ट्या = अतिप्रेम्णा (अत्यन्त स्निग्ध दृष्टि से) । मन्त्रयमाणा = आलपमाना (बात चीत करती हुई) । तर्कयामि = मन्ये (मैं समझती हूँ) । क्रयेण = मूल्यं दत्वा (मूल्य से) । याचते = कामयते (लेना चाहता है) ।

रहस्यम् = भेदम् (रहस्य की बात) ।

श्रोतुम् = आकर्णयितुम् (सुनने को) । अयुक्तम्=अनुचितम् (अनुचित) ।

गणिका—हे सखी ! इस चित्रफलक को पलंग पर रख दो । (देखकर) हताशा कहाँ गई है ? अथवा थोड़ी ही दूर गई होगी । जब तक उसे देखूँ (घूमकर और देखकर) अम्मो ! यह तो अत्यन्त स्निग्ध दृष्टि से किसी मनुष्य के साथ पीती हुई सी खड़ी मन्त्रणा कर रही है । शायद यह जो कोई भी मूल्य देकर मुझे लेना चाहता है ।

सज्जलक—रहस्य की बात सुनो !

गणिका—पराया रहस्य सुनना ठीक नहीं, मैं चली जाऊँगी ।

सज्जलकः—अपि वसन्तसेना (इत्यर्धोक्ते)।

गणिका—अहं अहिइदा एदाअं कहाअं। होदु, सुणिस्सं दाव भविस्सदि। (पुनः प्रतिनिवृत्य स्थिता)। [अहमधिकृतैतस्यां कथायाम्। भवतु, श्रोष्यामि तावद् भविष्यति]।

सज्जलकः—किं दास्यति त्वां निष्क्रयेण।

गणिका—सो एव्व एसो। होदु, सुणिस्सं। [स एवैषः। भवतु, श्रोष्यामि]।

चेटी—सज्जलअ ! मम पदाणं पुढमं एव्वं अज्जुआए उत्तं। [सज्जलक ! मम प्रदानं प्रथममेवाज्जुकयोक्तम्]।

सज्जलकः—तेन हीममस्यै प्रयच्छ, एवं वक्तव्या च—

अधिकृता = सम्बन्धिता (सम्बन्धित)।

निष्क्रयेण = द्रव्यविनिमयेन (धन के बदले से)।

स इति। प्रदानम् = प्रत्यावर्तनम् (देना, वापस करना)। उक्तम् = भणितम् (कहा है)।

अस्यै = एतस्यै वसन्तसेनायै (इस वसन्त सेना के लिए)।

सज्जलक—क्या वसन्त सेना भी (इस प्रकार अर्धोक्ति में)।

गणिका—यह कथा मुझ से सम्बन्धित है। अच्छा, तो सुन लूँगी। (फिर वापस होकर खड़ी हो गई)।

सज्जलक—क्या तुम्हें धन के बदले दे दूंगी।

गणिका—वही यह है। अच्छा, सुनूँगी।

चेटी—सज्जलक ! मेरा प्रदान करना (वापस करना) पहले ही अज्जुका ने कह दिया है।

गणिका—ऐसा ही है। अच्छा, सुनूँगी।

चेटी—सज्जलक ! मेरा वापस करना तो प्रथम ही गणिकाजी ने कह दिया है।

सज्जलक—इसीलिए यह (अलङ्कार) इनके (वसन्त सेना के) लिए दे दी तथा कहना कि—

अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।
अप्रकाश्यो ह्यलङ्कारो मत्स्नेहाद् धार्यतामिति ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खामि दाव। [पश्यामि तावत्]।

सज्जलकः—गृह्यताम्। (दर्शयति)।

चेटी—दिट्ठपुरुवो विअ अअं अलङ्कारो। [दृष्टपूर्व इवायमलङ्कारः]।

गणिका—ममकेरओ विअ अअं अलङ्कारो। [मदीय इवायमलङ्कारः]।

चेटी—भणाहि भणाहि। को इमस्स आअमो। [भण भण। कोऽस्यागमः]।

सज्जलकः—त्वत्स्नेहात् साहसं कृतम्।

अयम् = एषः (यह) अप्रकाश्यः—प्रकाशितुं=प्रकटितुं योग्यः प्रकाश्यः, न प्रकाश्यः अप्रकाश्यः (प्रकट न करने योग्य)। अलङ्कारः = आभूषणम् (आभूषण)। तव = ते (तुम्हारे)। शरीरस्य = देहस्य (शरीर के)। प्रमाणात् = प्रमाणं कृत्वैव (नाप से ही)। निर्मितः=विनिर्मितः (बनवाया गया है)। मत्स्नेहात् = मयि स्नेहहेतोः (मुझ पर प्रेम होने से)। धार्यताम् = स्वीक्रियताम् (ग्रहण कीजिए)। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ २ ॥

पश्यामीति। पश्यामि = अवलोकयामि (देखती हूँ)।

दृष्टपूर्वः—दृष्टः पूर्वं यः सः = प्राग्दृष्टः (पहले का देखा हुआ)।

आगमः = आगमनम् (आगमन, प्राप्ति)।

साहसम् = चौरकर्म (साहस का कार्य—चोरी)। कृतम् = विहितम् (किया)।

यह अप्रकाश्य (छीपा कर रखने योग्य) अलङ्कार आपके शरीर की नाप के अनुसार ही बना है, मेरे प्रेम के कारण आप इसे धारण कर लें ॥ २ ॥

चेटी—तो देखती हूँ।

सज्जलक—ग्रहण कीजिये। (दिखलाता है)।

चेटी—यह अलङ्कार पहले का देखा हुआ सा जान पड़ता है।

गणिका—मेरे अलङ्कार जैसा यह है।

चेटी—कहो कहो। यह कहाँ से आया?

सज्जलक—तुम्हारे स्नेह के कारण साहस (चौर कार्य) किया।

उभे—हं, साहसिओ। [हं, साहसिकः]।

चेटी—(आत्मगतम्) आ अज्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मदारुणदाए उव्वेअणीआ संवुत्ता। (प्रकाशम्) हद्धि मम किदे उभअं संसइदं संवुत्तं—तव सरीरं चारित्तं च। [आ, अज्जुकायाः खल्वस्याकृतिः कर्मदारुणतयोद्वेजनीया संवृत्ता। हा धिग् मम कृते उभयं संशयितं संवृत्तं—तव शरीरं चारित्रं च]।

सज्जलकः—उन्मत्तिके! साहसे खलु श्रीर्वसति।

चेटी—अपण्डिदो खु सि। को हि णाम जीविदेण सरीरं विक्कीणिस्सदि। अह कस्स गेहे इअं विस्सासवञ्चणा किदा। [अपण्डितः खल्वसि। को हि नाम जीवितेन शरीरं विक्रेष्यति। अथ कस्य गेहे इयं विश्वासवञ्चना कृता]।

सज्जलकः—यथा प्रभाते मया श्रुतं—श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति सार्थवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम।

आकृतिः = आकारः (आकृति)। कर्मदारुणतया—कर्मणो दारुणता, तया=कर्मकठोरतया (कर्म की दारुणता से)। उद्वेजनीया = उद्वेगकरणीया (व्याकुल)। संवृत्ता = संजाता (हो गई है)! संशयितम् = सन्दिग्धम् (संशय युक्त)। चारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम् तत्=आचरणम् (आचरण)।

अपण्डितः = मूर्खः (मूर्ख)। विश्वासवञ्चना = विश्वासघातः (विश्वासघात)। श्रेष्ठिचत्वरे = श्रेष्ठिनां चत्वरे = श्रेष्ठिजननिवासस्थाने (सेठ लोगों

दोनों—अच्छा, यह चोर है।

चेटी—(मन ही मन) अरे—अज्जुका (गणिका) के लिए तो इनकी आकृति तथा कार्य की कठोरता (चौर कार्य) दोनों हो (वसन्त सेना को) भयभीत करने वाले वन गये हैं (प्रकट रूप में) हाय! धिक्कार है। मेरे लिए तुम्हारा शरीर और चरित्र दोनों ही संशययुक्त हो गये हैं।

सज्जलक—पगली! साहस (उद्योग) में लक्ष्मी का निवास रहता है।

चेटी—वास्तव में तुम मूर्ख हो। ऐसा कौन है जो जीवित रहते शरीर को वेचेंगा। किसके घर में यह (चोरी का) विश्वास घात किया?

सज्जलक—जैसे ही प्रातःकाल मैंने सुना—सेठों के मुहल्ले में सार्थवाहपुत्र चारुदत्त नाम के रहते हैं।

उभे—हुम्।

सज्जलकः—अयि,

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।
मृगीव शरविद्धाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे॥ ३॥

चेटी—सच्चं भणाहि। सत्थवाहकुले साहसं करन्तेण तुए कोच्चि कुलवुत्तो सत्थेण अत्थि परिक्खदो वावादिदो वा। [सत्यं भण। सार्थवाह-कुले साहसं कुर्वता त्वया कश्चित् कुलपुत्रः शस्त्रेणास्ति परिक्षतो व्यापादितो वा]।

के मोहल्ले में)। सार्थवाहः = व्यापारी। (वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वणिजो वणिक् इत्यमरः)।

विषादेति। विषादस्रस्तसर्वाङ्गी—विषादेन = दुःखेन स्रस्तानि सर्वाङ्गाणि यस्याः सा = दुःखस्रस्तनिखिलाङ्गा (विषाद से त्रस्त सम्पूर्ण अङ्गों वाली)। सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना—सम्भ्रमेण उत्फुल्ले लोचने यस्याः सा=चञ्चलोत्फुल्लनेत्रा (चञ्चलता से विकसित नेत्रों वाली)। शरविद्धाङ्गी—शरेण विद्धम् शरविद्धम्, अङ्गम् यस्याः सा=बाणविद्धशरीरा (बाण से बिंधे शरीर वाली)। मृगी इव= हरिणी इव (मृगी के समान)। कम्पसे = वेपसे (काँप रही हो)। च = तथा। अनुकम्पसे। दया करोषि (दया कर रही हो)। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। अनुष्टुब्वृत्तम्॥ ३॥

सत्यमिति। सार्थवाहकुले = व्यापारिवंशे (व्यापारी के वंश में)। साहसम् = उद्योगम् (साहस)। कुर्वता = विदधता (करते हुए)। कुल-पुत्रः = आभिजातः (कुलवान्)। परिक्षतः = आहतः (घायल)। वा = अथवा। व्यापादितः = घातितः (मार डाला)। पृष्टव्यम् = पृच्छायोग्यम् (पूछने योग्य)।

दोनों—हाँ।

सज्जलक—अरे! विषाद से त्रस्त अङ्गों वाली, चञ्चलता से उत्फुल्ल नयनों वाली तथा बाण से बिंधे शरीर वाली हरिणी के समान तुम काँप रही हो और मुझ पर कृपा भी कर रही हो॥ ३॥

चेटी—सच कहो। सार्थवाह कुल में साहस करते हुए तुमने क्या किसी कुलवान् को शस्त्र से घायल किया अथवा मारा है?

गणिका—सुट्ठु, मए वि पुच्छिदव्वं एदाए पुच्छिदं। [सुष्ठु, मयापि प्रष्टव्यमेतया पृष्टम्]।

सज्जलकः—मदनिके ! एतावत् किं न पर्याप्तं, द्वितीयमप्यकार्यं करिष्यामि। न खल्वत्र शस्त्रेण कश्चित् परिक्षतो व्यापादितो वा।

चेटी—सज्जलअ ! सच्चं। [सज्जलक ! सत्यम्]।

सज्जलकः—सत्यम्।

चेटी—साहु सज्जलअ ! पिअं मे। [साधु सज्जलक ! प्रियं मे]।

सज्जलकः—किं किं प्रियमित्याह। ईदृशं मदनिके !

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
सन्तुष्टपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः।

एतावत् = धनापहरणमात्रम् (इतना मात्र)। पर्याप्तम्=बहु (काफी)।

हि = यतः (क्योंकि)। सन्तुष्टपूर्वपुरुषे—सन्तुष्टः पूर्वपुरुषः यस्मिन्, तथाभूते = परितुष्टपूर्वजे (पूर्वजों के द्वारा सन्तुष्ट रहने वाले)। त्वत्स्नेहबद्धहृदयः—तव स्नेहेन बद्धं हृदयं यस्य सः = तव प्रेमवशचेता (तुम्हारे प्रेम के वश में हुए चित्त वाला)। (अहम्) अकार्यम्—कर्तुं योग्यं कार्यम्, न कार्यमकार्यम् = अकरणीयम् (न करने योग्य कर्म-चोरी)। करोमि = सम्पादयामि

गणिका—अच्छा, मुझे भी यह पूछना था जो इसने पूछा है।

सज्जलक—मदनिके ! क्या इतना काम (चोरी कर आभूषण लाना) पर्याप्त नहीं है ? (नहीं तो) दूसरा अकार्य (हत्या आदि) करूँगा। इस कार्य में कोई न तो शस्त्र से घायल किया गया और न मारा ही गया है।

चेटी—सज्जलक ! क्या यह सच है ?

सज्जलक—सच है।

चेटी—शाबाश सज्जलक ! तुमने मेरा प्रिय कार्य किया।

सज्जलक—क्या, क्या ? 'प्रिय' ऐसा कह रही हो। ऐसा है मदनिके !—

सदा सन्तुष्ट रहने वाले पूर्वजों के वंश में उत्पन्न हुआ तुम्हारे प्रेम से व्याकुल हृदय में यह अकार्य (चोरी) कर रहा हूँ तथा कामदेव से पीड़ित

रक्षामि मन्मथगृहीतमिदं शरीरं
मित्रं च मां व्यपदिशस्यपरं च यासि ॥ ४ ॥

चेटी—सज्जलअ ! सुणाहि । अज्जुआए अअं अलङ्कारो । (कर्णे) । एवं विअ । [सज्जलक ! शृणु । अज्जुकाया अयमलङ्कारः । एवमिव] ।

सज्जलकः—एवम् ।

अज्ञानाद् या मया पूर्वं शाखा पत्रैर्वियोजिता ।
छायार्थी ग्रीष्मसन्तप्तस्तामेव पुनराश्रितः ॥ ५ ॥

(करता हूँ) । मन्मथगृहीतम् = मन्मथेन = मदनेन ("मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः । कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः ॥ इत्यमरः) । गृहीतम् = अभिभूतम् (कामदेव से व्याकुल) । इदम् = एतत् (यह) । शरीरम् = कायः (देह) । रक्षामि = पालयामि (पालन कर रहा हूँ) । व्यपदिशसि = उपदिशसि (कह रही हो) । (परम्) यासि = गच्छसि (जा रही हो) । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

सज्जलक इति । अज्जुकायाः = गणिकायाः (गणिका वसन्त सेना का) ।

अज्ञानात् = अपाण्डित्यात् (अज्ञानतावश) । या शाखा = या वल्लरी (जो शाखा) । मया = सज्जलकेन (मुझ सज्जलक ने) । पूर्वम्=प्राक् (पहले) । पत्रैः = दलैः (पत्तों से) । वियोजिता = पृथक् कृता (अलग करदी थी) । पुनः = भूयः (फिर) । ग्रीष्मसन्तप्तः—ग्रीष्मेण सन्तप्तः = ग्रीष्मपीडितः (गर्मी से पीड़ित) । छायार्थी = छाया अर्थं यस्य स छायार्थी = छायेच्छुकः (छाया का इच्छुक–मैं) । ताम् = छिन्नदलशाखाम् (उसी–कटे पत्तों वाली

इस शरीर की रक्षा कर रहा हूँ । (परन्तु) तुम मुझे (सामने तो) मित्र कहती हो और अन्य पुरुष के पास (चारुदत्त के पास) जा रही हो ॥ ४ ॥

चेटी—सज्जलक ! सुनो, यह अज्जुका (गणिका) का अलङ्कार है । (कान में) ऐसा ही है ।

सज्जलक—हाँ—अज्ञानता वश जो शाखा मैंने पहले पत्तों से अलग की थी (अब) पुनः गर्मी से पीड़ित होकर मैं छाया की कामना से उसी के पास आया हूँ अर्थात् जिस वसन्त सेना के अलङ्करण का मैंने अपहरण किया था

गणिका—सन्तप्पदि त्ति तक्केमि एदेण अकय्यं किदं ति । [संतप्यत इति तर्कयामि एतेनाकार्यं कृतमिति] ।

सज्जलकः—मदनिके ! एवं गते किं कर्तव्यम् ।

चेटी—तहिं एव णिय्यादेहि, णहि मण्डइस्सदि अज्जुआ । [तत्रैव निर्यातय, नहि मण्डयिष्यत्यज्जुका] ।

सज्जलकः—अथेदानीं सोऽमर्षान्मां चोर इति रक्षिपुरुषैर्ग्राहयिष्यति चेदत्र किं करिष्यामि ।

शाखा को) । एव (ही) । आश्रितः = शरणमायातोऽस्मि (शरण में आया हूँ) । (अर्थात् कामातुर होकर मैं जिस वसन्त सेना के पास से मदनिका को छुड़ाना चाहता था उसी का अलङ्करण मैंने चुरा लिया है) । अनुष्टुब्वृत्तम् ॥५॥

सन्तप्यत इति । सन्तप्यते = व्याकुलीभूयते (व्याकुल हुआ जा रहा है) । अकार्यम् = दुष्कर्म (कोई अपकार्य) ।

तत्र एव = चारुदत्तपार्श्वम् एव (वहीं चारुदत्त के पास) । निर्यातय = प्रत्यर्पय (लौटा दो) । नहि = नैव (नहीं) । मण्डयिष्यति = अलङ्करिष्यति (अलंकार नहीं करेगी) ।

इदानीम् = सम्प्रति (इस समय) । अमर्षाद् = क्रोधात् (क्रोध से) । रक्षिपुरुषैः = रक्षकपुरुषैः (सिपाहियों द्वारा) । ग्राहयिष्यति = अधिकारे करिष्यति (पकड़वा लेंगे) ।

उसी के पास मैं अपनी प्रेयसी मदनिका को उसका अलङ्करण देकर छुपाने आया हूँ ॥ ५ ॥

गणिका—शायद इसने कोई अपकार कर डाला है जिसके लिए सन्ताप कर रहा है ।

सज्जलक—मदनिके ! ऐसा होने पर मुझे क्या करना चाहिए ।

चेटी—वहीं (इस अलङ्कार को) वापस कर दो । अज्जुका (वसन्त-सेना) सजावट नहीं करेगी ।

सज्जलक—यदि वह अब क्रोधवश 'चोर' कह कर सिपाहियों को मुझे पकड़ा दें तो मैं क्या करूँगा ?

चेटी—मा भाआहि मा भाआहि। कुलवुत्तो खु सो गुणाणं परितुस्सदि। [मा विभीहि मा विभीहि। कुलपुत्रः खलु स गुणानां परितुष्यति]।

गणिका—साहु भद्दे ! अवत्तव्वासि, अलङ्किदा विअ एदेण वअणेण। [साधु भद्रे ! अवक्तव्यासि, अलङ्कृतेवैतेन वचनेन]।

सज्जलकः—सर्वथा न शक्ष्याम्यहं तत्र गन्तुम्।

चेटी—अअं अण्णो उवाओ। [अयमन्य उपायः]।

गणिका—एदे गुणा वेसवासस्स। [एते गुणा वेशवासस्य]।

सज्जलकः—कोऽन्य उपायः।

चेटी—णं तव रूपञ्जा अज्जुआ अवि सत्थवाहपुत्तो अ। [ननु तव रूपज्ञाज्जुकाऽपि सार्थवाहपुत्रश्च]।

मा विभीहि = भयं मा कुरु (भय मत करो)। कुलपुत्रः = कुलीनः (कुलवान् खानदानी व्यक्ति)। (अस्ति) गुणानाम् = सुकार्याणाम् (गुणों का)। परितुष्यति = सन्तुष्टो भविष्यति (सन्तुष्ट हो जायेंगे)।

भद्रे = प्रिये ! अवक्तव्या=अनिर्वचनीया (अप्रशंसनीया हो)। अलङ्कृता= शोभिता (शोभित)। वचनेन = कथनेन (कहने से)।

शक्ष्यामि = समर्थोऽस्मि (समर्थ हूँ)। गन्तुम् = यातुम् (जाने को)।

वेशवासस्य = वेश्यालयस्य (वेश्या घर का)।

नन्विति। ननु = नूनम् (निश्चय ही)। रूपज्ञा—रूपं जानातीति रूपज्ञा= परिचिता (गुणो से परिचित)।

चेटी—मत डरो, मत डरो। वास्तव मे कुल-पुत्र (चारुदत्त) गुणों पर सन्तुष्ट हो जायेंगे।

गणिका—शाबास प्रिय ! तुम्हारी जितनी भी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है। मैं तो तुह्मारे इन वचनों से ही अलङ्कृत हो गई हूँ।

सज्जलक—मैं तो किसी प्रकार वहां जाने में समर्थ नहीं हूँ।

चेटी—यह अन्य उपाय है।

गणिका—वेश्यालयों में भी यह गुण होते हैं।

सज्जलक—और उपाय क्या है?

चेटी—निश्चय ही तुह्मारी स्थिति को भी (गुणों को भी) वसन्त सेना तथा चारुदत्त जानते होंगे !

सज्जलकः—न खलु।

चेटी—तेण हि इमं दाव अलङ्कारं तस्स सत्यवाहपुत्तस्स वअणादो अज्जुआए णिय्यादेहि। एवं च किदे तुवं रक्खिदो, सो अय्यो अ अणिव्विण्णो भविस्सदि। अहं च पीडिदा ण भविस्सं। आदु अज्जुअं च पुणो वञ्चिय पुणो एव्व दासभावो भवे। [तेन हीमं तावदलङ्कारं तस्य सार्थवाहपुत्रस्य वचनादज्जुकायै निर्यातय। एवं च कृते त्वं रक्षितः, स आर्यश्चानिर्विण्णो भविष्यति। अहं च पीडिता न भविष्यामि। अथवा अज्जुकां च पुनर्वञ्चयित्वा पुनरेव दासभावो भवेत्]।

सज्जलकः—मदनिके! प्रीतोऽस्मि।

गणिका—भोदु अब्भन्तरं पविसिअ उवविसामि। (तथा करोति)। [भवत्वभ्यन्तरं प्रविश्योपविशामि]।

तेन = एतेन (इससे)। वचनात् = कथनात् (कहने से)। निर्यातय = प्रत्यावर्तय (लौटा दो। आर्य=चारुदत्त। (आर्य चारुदत्त)। अनिर्विण्णः= दुःखहीनः (दुःखरहित)। पीडिता = सन्त्रस्ता (पीड़ित)। अज्जुकाम् = वसन्तसेनाम् (वसन्त सेना को)। वञ्चयित्वा = वञ्चनं कृत्वा (छल कर)। दासभावः = दासत्वमेव (दास भाव)। न पुनर्मोक्षः।

प्रीतः = प्रसन्नः (प्रसन्न)। अभ्यन्तरम् = गृहाभ्यन्तरे (अन्दर)। प्रविश्य = प्रवेशं विधाय (प्रवेश करके)।

सज्जलक—नहीं तो।

चेटी—इससे यह अलङ्कार सार्थवाह पुत्र (चारुदत्त) के कहने से वसन्त सेना को वापस कर दो। ऐसा करने से तुम बच जाओगे और आर्य चारुदत्त दुःखी नहीं होंगे तथा मैं भी पीड़ित नहीं हो सकूँगी। अन्यथा वसन्त सेनाजी को ठग कर मुझे फिर दासी ही रहना पड़ेगा, छुटकारा नहीं हो पायेगा।

सज्जलक—मदनिके! मैं प्रसन्न हूँ।

गणिका—अस्तु, अन्दर घुस कर बैठ जाती हूँ। (वैसा ही करती है)।

चेटी—सज्जलअ ! आअच्छ, कामदेवउले मं पडिवालेहि । अहं ओसरं जाणिअ अज्जुआए णिवेदेमि । [सज्जलक ! आगच्छ, कामदेवकुले मां प्रतिपालय । अहमवसरं ज्ञात्वाऽज्जुकायै निवेदयामि] ।

सज्जलकः— बाढम् । (निष्क्रान्तः) ।

(ततः प्रविशत्यपरा चेटी)

चेटी—सुहं अज्जुआए । एसो सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि बम्हणो आअदो अज्जुअं पेक्खिदुं । [सुखमज्जुकायाः । एष सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद् ब्राह्मण आगतोऽज्जुकां द्रष्टुम्] ।

गणिका—(सादरम्) गच्छ, सिग्घं पवेसेहि णं । [गच्छ, शीघ्रं प्रवेशयैनम्] ।

चेटी—तह । (उपसृत्य) एदु एदु अय्यो । [तथा । एत्वेत्वार्यः] ।

कामदेवकुले = मदनमहोत्सवभवने (मदनमहोत्सव मनाने के लिए बने मन्दिर में) । प्रतिपालय = प्रतीक्षस्व (प्रतीक्षा करो) । अवसरम् = उपयुक्तं कालम् (ठीक समय) । ज्ञात्वा = विज्ञाय (जानकर) निवेदयामि=कथयामि (कहे देती हूँ) । बाढम्—स्वीकारोक्तावव्ययम् (अच्छा) ।

सुखमिति । सुखम् = आनन्दम् (सुख) । सकाशात् = समीपात् (पास से) । द्रष्टुम् = अवलोकितुम् (देखने को) ।

शीघ्रम्=द्रुतम् (शीघ्र) । एनम्=एतमागतम् (इस आये हुए व्यक्ति को) ।

चेट—सज्जलक ! आओ । कामदेव मन्दिर में तुम मेरी प्रतीक्षा करो । मैं अवसर जान कर वसन्त सेनाजी से निवेदन करती हूँ ।

सज्जलक—अच्छा । (निकल जाता है ।

(तब दूसरी चेटी प्रवेश करती है) ।

चेटी—अज्जुकाजी आनन्द से तो हैं ! यह सार्थवाह पुत्र (चारुदत्त) के समीप से कोई ब्राह्मण आप का दर्शन करने आया है ।

गणिका—(सादर) जाओ, शीघ्र उन्हे अन्दर ले आओ ।

चेटी—ऐसा ही (करती हूँ) । (आगे जाकर) आइये, आप आइये ।

विदूषकः—(प्रविश्य सर्वतो विलोक्य) अहो गणिआवाडस्स मस्सिरीअदा। णाणापट्टणसमागदेहि आअमिएहि पुत्थआ वाईअन्ति। संओजअन्ति अ आहारप्पआराणि। वीणा वादीअन्ति। सुवण्णआरा अलङ्कारप्पआराणि आदरेण जोजअन्ति। [अहो गणिकावाटस्य सश्रीकता। नानापट्टणसमागतैरागमिकैः पुस्तकानि वाच्यन्ते। संयोज्यन्ते चाहारप्रकाराः। वीणा वाद्यन्ते। सुवर्णकारा अलङ्कारप्रकारानादरेण योजयन्ति]।

चेटी—एसा अज्जुआ उपसप्पदु अय्यो। [एषज्जुका। उपसर्पत्वार्यः]।

विदूषकः—(उपगम्य) सोत्थि होदीए। [स्वस्ति भवत्यै]।

गणिकावाटस्य—गणिकायाः वाटस्य = वेश्यामार्गस्य (गणिकावाट—गणिका घर की)। सश्रीकता = शोभा (सुन्दरता)। नानापट्टनसमागतैः—नानापट्टनैः = विभिन्ननगरैः आगतास्तैः (विभिन्न नगरों या राज्यो से आये हुए लोगों द्वारा)। आगमिकैः = शास्त्रज्ञैः (शास्त्रज्ञों के द्वारा)। पुस्तकानि = ग्रन्थाः (पुस्तकें, ग्रन्थ)। वाच्यन्ते = पठयन्ते (पढे जाते हे)। सयोज्यन्ते = संयोजिताः क्रियन्ते (आयोजित किये जा रहे है)। आहार-प्रकाराः—आहारस्य = अशनस्य प्रकाराः = भेदाः (भोजनों के प्रकार)। अलङ्कार प्रकारान् अलङ्काराणां प्रकारान् (अनेक प्रकार के भूषणों को)। योजयन्ति = घटयन्ति (वना रहे है)। आदरेण = श्रद्धया (आदर से)।

स्वस्ति भवत्यै = श्रीमत्यै कल्याणं भवतु (आपका कल्याण हो)।

विदूषक—(प्रवेश कर चारो ओर देखकर गणिकावाट (वेश्या घर) की सजावट को धन्य है। विभिन्न नगरों (पत्तनों-राज्यों) से आये हुए शास्त्रज्ञों के द्वारा ग्रन्थ वांचे जा रहे है। अनेक प्रकार के भोजनों के आयोजन किये जा रहे हे। वीणाएँ (सितार आदि वाद्ययन्त्र) वजाये जा रहेह। सुवर्णकार (सुनार लोग) अनेक प्रकार के अलङ्कारों का आदर से निर्माण कर रहे है।

चेटी—यह अज्जुका (गणिका) जी है। आप (उनके) निकट पहुँच जाये।

विदूषक—(निकट जाकर) आपका कल्याण हो।

गणिका—साअदं अय्यस्स। हञ्जे! आसणं अय्यस्स, पादोदअं च। [स्वागतमार्यस्य। हञ्जे! आसनमार्यस्य, पादोदकं च]।

विदूषकः—(आत्मगतम्) सव्वं आणेदु वज्जिअ भोअणं। [सर्व-मानयतु वर्जयित्वा भोजनम्]!

चेटी—जं अज्जुआ आणवेदि। (आसनं ददाति पादोदकं च)। उवविसदु अय्यो! [यदज्जुकाज्ञापयति। उपविशत्वार्यः]।

विदूषकः–(उपविश्य) पडिच्छदु आसणं भोदी। अहं किञ्चि भणिदुं आअदो। [प्रतीच्छत्वासनं भवती। अहं किञ्चिद् भणितुमागतः।

गणिका—(उपविश्य) अवहिदम्हि। [अवहितास्मि]।

विदूषकः—केत्तिअमत्तं खु दस्स अलङ्कारस्स मुल्लप्पमाणं। [किय-न्मात्रं खलु तस्यालङ्कारस्य मूल्यप्रमाणम्]।

स्वागतमिति। स्वागतम् = सम्मानम् (स्वागत है)। आसनम्=उपवेष्टनम् (आसन या बिछौना)। पादोदकम् = पादे प्रक्षालनार्थमुदकम् = जलम् (पैर धोने के लिए जल)।

वर्जयित्वा = निषिध्य (छोड़कर)।

प्रतीच्छतु = गृह्णातु (ग्रहण करों)। भणितुम् = कथयितुम् (कहने को)।

अवहिता = सावधाना (सावधान)।

मूल्यप्रमाणम् = मूल्यस्य प्रमाणम् (मूल्य का प्रमाण)।

गणिका—आप का स्वागत है। सखी! आर्य के लिए आसन तथा पांव धोने के लिए जल ले आओ।

विदूषक—(मन ही मन) भोजन को छोड़ कर सब कुछ ले आओ।

चेटी—जैसी आपकी आज्ञा। (आसन तथा पादोदक देती है)। आर्य! बैठिये।

विदूषक—(बैठकर) श्रीमती जी भी आसन ग्रहण करें। मैं कुछ कहने के लिए आया हूँ।

गणिका—(बैठ कर) मैं सावधान हूँ।

विदूषक—उस अलङ्कार का मूल्य कितना है ?

गणिका—किंणिमित्तं खु अय्यो पुच्छदि। [किन्निमित्तं खल्वार्यः पृच्छति]।

विदूषकः—सुणादु भोदी। तत्तहोदो चारुदत्तस्स गुणप्पच्चाअणणिमित्तं खु तुए अलङ्कारो तहिं णिक्खित्तो। सो तेण जूदे हारिदो। [शृणोतु भवती। तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गुणप्रत्यायननिमित्तं खलु त्वयालङ्कारस्तस्मिन् निक्षिप्तः। स तेन द्यूते हारितः]।

गणिका—जूदे। जुज्जइ। तदो तदो। [द्यूते। युज्यते। ततस्ततः]।

विदूषकः—तदो तस्स अलङ्कारस्स मुल्लभूदं इमं मुत्तावलिं पडिच्छदु भोदी। [ततस्तस्यालङ्कारस्य मूल्यभूतामिमां मुक्तावलीं प्रतीच्छतु भवती]।

गणिका—(आत्मगतम्) धिक् खु गणिआभावं। लुद्धत्ति मं तुलअदि। जइ ण पडिच्छे, सो इव्व दोसो भविस्सदि। (प्रकाशम्) आणेदु अय्यो। [धिक् खलु गणिकाभावम्। लुब्धेति मां तुलयति। यदि न प्रतीच्छामि, स एव दोषो भविष्यति। आनयत्वार्यः]।

शृणोत्विति। गुणप्रत्यायननिमित्तम्—गुणानां प्रत्यायनम्, तदेव निमित्तम् यस्मिन् कर्मणि तत् = गुणप्रतीतिहेतोः (गुणों का विश्वास करने के लिए)। निक्षिप्तः=न्यासे धृतः (धरोहर में रखा है)। द्यूते = द्यूतकर्मणि (जुएँ में)।

मूल्यभूतम् = मूल्यरूपम् (मूल्य के रूप में)। प्रतीच्छतु=गृह्णातु (ग्रहण करें)। गणिकाभावम् = गणिकायाः भावस्तम्=वेश्यात्वं (वेश्या भाव को)।

तुलयति = तुलनां करोति (तुलना करता है)। प्रतीच्छामि = गृह्णामि (ले रही हूँ)। दोषः = अपराधः (दोष, अपराध)।

गणिका—आप किस निमित्त पूछ रहे हैं ?

विदूषक—आप सुनें। श्रीमान् चारुदत्त के गुणों का विश्वास करने के निमित्त निश्चित रूप से तुमने अलङ्कार उनके पास धरोहर रूप में रखा था वह उन्होंने जुएं में हरा दिया।

गणिका—जुए में ! ठीक है। फिर क्या हुआ !'

विदूषक—तब उसके मूल्यरूप में इस मुक्तावली को आप ग्रहण कर लें।

गणिका—(मन ही मन) गणिका भाव को धिक्कार है। (मैं) 'लोभी हूँ' यह (चारुदत्तजी) तुलना कर रहे हैं। यदि यह नहीं लेती हूँ तो यह अपराध होगा। (प्रकट रूप में) आप ले आयें।

विदूषकः—इदं गण्हदु भोदी। [इदं गृह्णातु भवती]।

गणिका—(गृहीत्वा) पडिच्छिदं तए त्ति अय्यो णिवेदेदु। [प्रतीष्टं तयेत्यार्यो निवेदयतु]।

विदूषकः—(आत्मगतम्) कोवि उवआरो वि ण इदाए भणिदो। (प्रकाशम्)। एवं होदु। (दत्वा निष्क्रान्तः)। [कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः एवं भवतु]।

गणिका—साहु चारुदत्त ! साहु। भाअधेअपरिवुत्तदाए दसाए माणावमाणं रक्खिदं। [साधु चारुदत्त ! साधु। भागधेयपरिवृत्ततायां दशायां मानावमानं रक्षितम्] !

(प्रविश्य)

मदनिका—अज्जुए ! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि मणुस्सो आअदो इच्छइ अज्जुअं पेक्खिदुं। [अज्जुके ! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात् कश्चिद मनुष्य आगत इच्छत्यज्जुकां द्रष्टुम्]।

प्रतीष्टम् = स्वीकृतम् (स्वीकार कर लिया)। निवेदयतु = आवेदयतु (निवेदन कर दीजिए)।

कोऽपीति। उपचारः = शिष्टाचारः (उपचार)।

भागधेयपरिवृत्ततायाम्—भागधेयस्य = भाग्यस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्यां तस्यां तथा (भाग्य की प्रतिकूल दशा में)। मानापमानम्—मानश्चापमानश्च तयोः समाहारस्तत् (मानापमान को)। रक्षितम् = सुरक्षितम् (बचा लिया)।

सकाशात् = पार्श्वात् (पास से)।

गणिका–(लेकर) आप (आर्य चारुदत्त से) कह दें कि उन्होंने ले लिया है।

विदूषक—(मन ही मन) इस (वसन्तसेना) ने तो कोई उपचार के रूप में बात तक न कही। (प्रकटरूप में) ऐसा ही हो। (देकर निकल गया)।

गणिका—शावास, चारुदत्त ! शाबास। भाग्य की प्रतिकूलदशा (निर्धनता) होने पर भी मानापमान की रक्षा की।

(प्रवेश करके)

मदनिका—अज्जुके ! सार्थवाहपुत्र (आर्य चारुदत्त) के पास से कोई व्यक्ति आया है, और अज्जुका (गणिका) जी को देखना (मिलना) चाहता है।

गणिका—किं दिट्ठपुरुषो णवदंसणो वा। [किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा]।

मदनिका—अज्जुए! णहि, तस्सकेरओत्ति मे पडिभादि। [अज्जुके! नहि, तदीय इति मे प्रतिभाति]।

गणिका—गच्छ, पवेसेहि णं। [गच्छ, प्रवेशयैनम्]।

मदनिक—तह। (निष्क्रान्ता)। [तथा]।

गणिका—अहो रमणिज्जदा अज्ज दिवसस्स। [अहो रमणीयताऽद्य दिवसस्य]।

(ततः प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह)।

सज्जलकः—कष्टा खल्वात्मशङ्का नाम,

य: कश्चिच्चकितगतिर्निरीक्षते मां
सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा।

दृष्टपूर्वः = दृष्टः = अवलोकितः पूर्वम् = प्राक् यः सः (पहले का देखा हुआ)। नवदर्शनः = नवं दर्शनं यस्य सः = नूतनदर्शनः (नया दिखलाई देने वाला)। प्रतिभाति = प्रतीयते (मालूम पड़ता है)।

रमणीयता=रमते मनो यत्र तद्रमणीयम्, तस्य भावो रमणीयता=सुन्दरता।

आत्मशङ्का—आत्मनः शङ्का = स्वभीरुता (अपनी शङ्का)। खलु=नूनम् (निश्चय ही)। कष्टा नाम = कष्टदायिका (कष्टदायिनी है)।

यः कश्चित्=यः कोऽपि (जो कोई)। चकितगतिः—चकिता गतिर्यस्य सः = चञ्चलस्थितिः (चञ्चल दशा वाला)। माम्=सज्जलकम् (मुझ सज्जलक को)।

गणिका—क्या वही पहले का देखा हुआ है या नवागन्तुक है?

मदनिका—अज्जुके! नहीं, मुझे मालूम पड़ता है उनका (व्यक्ति) नहीं है।

गणिका—जाओ! उसे अन्दर ले आओ।

मदनिका—ऐसा ही करती हूँ! (निकल गई)।

गणिका—आज का दिन धन्य है।

(तब सज्जलक के साथ मदनिका प्रवेश करती है)

सज्जलक—आत्मशङ्का वास्तव में बड़ी कष्टदायिनी है।

जो व्यक्ति चकित होकर मुझे देखता है, सभ्रम, शीघ्रता से पास में आता

सर्वास्तांस्तुलयति दोषतो मनो मे
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥ ६ ॥

मदनिका—एसा अज्जुआ। उवसप्पदु अय्यो। [एषाज्जुका। उपसर्पत्वार्यः]।

सज्जलकः—(उपसृत्य) सुखं भवत्यै।

गणिका—साअदं अय्यस्स। हञ्जे! आसणं देदु अय्यस्स। [स्वागतमार्यस्य। हञ्जे! आसनं दीयतामार्याय]।

निरीक्षते = अवलोकयति (देखता है)। सम्भ्रान्तः = संत्रस्तः (व्याकुल)। द्रुतम् = शीघ्रम् (शीघ्र)। उपसर्पति = उपयाति (निकट जाता है)। वा = अथवा स्थितः (खड़ा रहता है)। दोषतः = चौर्यादिदोषहेतोः (चोरी आदि दोष से)। मे = मम (मेरा)। मनः = चित्तम् (चित्त)। तान् = एतान् (उनको)। सर्वान् = निखिलान् (सबको)। तुलयति = तोलनं करोति (तुलना करता है)। हि = यतः (क्योंकि)। मनुष्यः = नरः (मनुष्य)। स्वैः = आत्मभिः (अपने)। दोषैः = अवगुणैः (अवगुणों से)। शङ्कितः = शङ्कालुः (शंकित) भवति (होता है)। प्रहर्षिणीवृत्तम्। तद् यथा—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ॥ ६ ॥

एषेति। एषा = इयम् (यह)।

है, या खड़ा होता है तो चोरी आदि कर्मों के दोष से मेरा मन उन सबको तोलता है (कि कहीं यह मुझे पकड़ने के लिए तो नहीं आ रहा है)। क्योंकि मनुष्य अपने अवगुणों से शङ्कित हुआ करता है ॥ ६ ॥

मदनिका—यह (तो) अज्जुका जी हैं। आप (स्वयं) उनके पास चले जायें।

सज्जलक—(आगे बढ़कर) श्रीमती जी सुखी रहें।

गणिका—आर्य का स्वागत है। हञ्जे! आर्यजी को आसन दो।

सज्जलकः—भवतु भवतु। गृहीतमासनम्। त्वरिततरमनुष्ठेयं किञ्चित् कार्यमस्ति।

गणिका—एवं भणादु अय्यो। [एवं, भणत्वार्यः]।

सज्जलकः—आर्यचारुदत्तेनास्मि प्रेषितः—यस्तावदलङ्कारो मम हस्ते निक्षिप्तः, स त्वसंभोगमलिनतया गृहस्यासान्निध्यात् कौटुम्बिकानां दुरारक्षः। तद् गृह्यताम् इति।

गणिका—इमं तस्स चारुदत्तस्स देदु अय्यो। [इमं तस्मै चारुदत्ताय ददात्वार्यः]।

त्वरितम् = द्रुतम् (तुरन्त)। अनुष्ठेयम् = अनुष्ठातुं योग्यमनुष्ठेयम् = करणीयम् (करने योग्य)।

प्रेषितः = प्रहितः (भेजा गया)। असम्भोगमलिनतया न सम्भोगः = संस्कारः सम्मार्जनादिकम्, तेन मलिनम् = मलयुक्तम्, तस्य भावस्तया (संस्कार लेप पति के न हो पाने से मलिन हो जाने से)। गृहस्य = भवनस्य (घर के)। कौटुम्बिकानाम् = पारिवारिकाणाम् (परिवार वालों के)। असान्निध्यात्—न सान्निध्यम् = सन्निकटभावः, तस्मात् हेतोः (कुटुम्बी लोगों के पास में न रह पाने के कारण)। दुरारक्षः = दुःखेन रक्षितुं योग्यः (दुःख से रक्षा करने योग्य)। गृह्यताम् = स्वीक्रियताम् (ग्रहण कीजिए)।

इममिति। इमम् = एतदाभूषणम् (इस आभूषण को)। ददातु=प्रयच्छतु (देदें)।

सज्जलक—अच्छा, अच्छा। आसन ग्रहण कर लिया है। अविलम्ब कुछ कार्य करना है।

गणिका—आप उसको कह दें।

सज्जलिक—मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है—वह अलङ्कार जो आपने मेरे पास धरोहर मे रखा था घर की सफाई आदि न हो पाने की मलिनता से तथा पारिवारिक लोगो के समीप ये न रह पाने के कारण से रक्षित रह पाना कठिन है। अतः आप उसे ले लीजिये।

गणिका—यह (आभूषण) आप उन चारुदत्त के लिए दे दें।

सज्जलकः—भवति ! न खल्वहं गच्छामि ।

गणिका—अहं जाणामि तस्स गेहे साहसं करिअ आणीदो अअं अलङ्कारो । तस्स गुणाणि अणुकम्पेदु अय्यो । [अहं जानामि तस्य गेहे साहसं कृत्वानीतोऽयमलङ्कारः । तस्य गुणाननुकम्पतामार्यः] ।

सज्जलकः—(आत्मगतम्) कथं विदितोऽस्म्यनया ।

गणिका—को एत्थ, पवहणं दाव अय्यस्स । [कोऽत्र, प्रवहणं तावदार्यस्य] । णेमिसद्दो विअ सुणीअदि ! आअदेण पवहणेण होदव्वं [नेमिशब्द इव श्रूयते । आगतेन प्रवहणेन भवितव्यम्] । (स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आरुहदु अय्यो अय्याए सह पवहणं ! [आरोहत्वार्य आर्यया सह प्रवहणम्] ।

साहसं कृत्वा = चौर्यं कर्म विधाय (चोरी करके) । तस्य = चारुदत्तस्य (उन चारुदत्त के) । गुणान् = दानदयादिगुणान् (दान दया आदि गुणों को) । अनुकम्पताम् = दयताम् (कृपा कीजिये) ।

विदितः = ज्ञातः (जान लिया) । कथम्=केन प्रकारेण (किस प्रकार) । अनया = एतया वसन्तसेनया (इस वसन्त सेना के द्वारा) ।

प्रवहणम् = गोशकटम् (बैलगाड़ी—रव्वा) । नेमिशब्दः—नेमेः शब्दः = नेमिध्वनिः (नेमि की आवाज) । श्रूयते = आकर्ण्यते (सुनाई पड़ रहा है) । आगतेन = समुपस्थितेन (आया हुआ) । स्वैः=आत्मभिः (अपने) । आभरणैः= आभूषणैः (आभूषणों के द्वारा) । अलङ्कृत्य = भूषयित्वा (सजाकर) । आरोहतु=आरोहण करें) । आर्यया सह=मदनिकया सह (मदनिका के साथ) ।

सज्जलक—श्रीमती जी ! मैं तो नहीं जाऊँगा ।

गणिका—मैं जानती हूँ—उनके घर में चोरी करके यह अलङ्कार लाये हो । उनके गुणों पर आप कृपा करें ।

सज्जलक—(मन ही मन) इन्होंने कैसे (चोरी करना) जान लिया !

गणिका—अरे यहाँ कोई है ? आर्य के लिए बैलगाड़ी (रव्वा) तो ले आओ । नेमि शब्द सा सुनाई पड़ रहा है । शायद, बैलगाड़ी आरही होगी ।

मदनिका—अज्जुए ! किं एदं । [अज्जुके ! किमेतत्] ।

गणिका—मा खु मा खु एवं मन्तिअ । अय्या खु सि दाणिं संवृत्ता । गण्हदु अय्यो ! । (मदनिकां गृहीत्वा सज्जलकाय प्रयच्छति) । [मा खलु मा खल्वेवं मन्त्रयित्वा । आर्या खल्वसीदानीं संवृत्ता । गृह्णात्वार्यः] ।

सज्जलकः—(आत्मगतम्) भोः ! कदा खल्वस्याः प्रतिकर्तव्यं भविष्यति । अथवा, शान्तं शान्तं पापम् ।

नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम् ।
द्विषतामेव कालोऽस्तु योस्या भवतु तस्य वा ॥ ७ ॥

मा खलु मा खलु मन्त्रयित्वा = विचार्य = एतत्खलु न विचारणीयम् (नहीं नहीं, ऐसा नहीं सोचना चाहिए) । आर्या = श्रीमती (श्रीयुक्ता) । सम्वृत्ता = सञ्जाता (हो गई हो) । प्रयच्छति = ददाति (दे देती है) ।

कदा = कस्मिन्नवसरे (किस अवसर पर) । प्रतिकर्त्तव्यम् = प्रत्युपकारम् (उपकार का बदला देना) । शान्तं पापम्=अनिष्टं दूरे तिष्ठतु (पाप शान्त हो) ।

प्रत्युपकारार्थी—प्रत्युपकारमर्थयते इति प्रत्युपकारार्थी = प्रत्युपकारेच्छुकः (उपकार का बदला देने का इच्छुक) । नरः = मनुष्यः (व्यक्ति) । विपत्तौ= सङ्कटे (सङ्कटकाल में) (प्रत्युपकारस्य) । फलम् = परिणामम् (फल-लाभ) । लभते = प्राप्नोति (पाता है) । परं यः = यादृशः (जो) । अस्याः=एतस्याः वसन्तसेनायाः (इस वसन्त सेना का) । वा तस्य=चारुदत्तस्य (या चारुदत्त

(अपने आभूषणों से मदनिका को अलंकृत करके) आप श्रीमती (मदनिका) के साथ गाड़ी पर बैठ जायें ।

मदनिका—अज्जुके ! यह क्या है ?

गणिका— नहीं नहीं, ऐसा नहीं सोचना चाहिए । अब तुम श्रीमती बन गई हो आर्य (श्रीमती मदनिका को) स्वीकार करें (मदनिका को पकड़ कर सज्जलक के लिए दे देती है) ।

सज्जलक—(मनमें) इन (वसन्त सेना) के उपकार का बदला कब चुकाऊँगा ? अथवा पाप शान्त हो ।

प्रत्युपकार करने वाला व्यक्ति विपत्ति पड़ने पर फल प्राप्त करता है ।

(तया सह निष्क्रान्तः सज्जलकः)।

गणिका—चउरिए !। [चतुरिके !]

चेटी—(प्रविश्य) अज्जुए ! इअम्हि। [अज्जुके। इयमस्मि]।

गणिका—हञ्जे ! पेक्ख जागरन्तीए मए सिविणो दिट्ठो एव्वं। [हञ्जे ! पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्टः एवम्]।

चेटी—पिअं मे, अमुदंकणाडअं संवुत्तं। [प्रियं मे, अमृताङ्कनाटकं संवृत्तम्]।

गणिका—एहि इमं अलङ्कारं गण्हिअ अय्यचारुदत्तं अभिसरिस्सामो ! [एहीममलंकारं गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्यावः]।

का) (विपत्)। कालः=समयः (विपत्ति का समय) (तस्य)। द्विपताम्= शत्रूणाम् (शत्रुओं का)। अस्तु = भवतु (होवे)। अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ७ ॥

चतुरिक इति। चतुरिके = हे सखि चतुरिके ! (हे चतुरिके)।

इयम् = एषा (यह)।

जाग्रत्या = जागरणं कुर्वन्त्या (जागती हुई)। मया = वसन्तसेनया (मुझ वसन्त सेना ने)। एवम् = इत्थम् (इस प्रकार)।

अमृत्यंकनाटकम्—अमृतम् = अमृतवत्सुखदायकोऽङ्कः यस्मिन् नाटके तत् (अमृत जैसे सुखदायी अङ्क वाला नाटक)। सम्वृत्तम् = सञ्जातम् (पूरा हो गया)।

गृहीत्वा = आदाय (लेकर)। अभिसरिष्यावः = अभिसारं करिष्यावः (हम दोनों अभिसार करेंगी)।

(अतः) जो इस (वसन्त सेना) का या उस (चारुदत्त) का विपत्काल हो वह उनके शत्रुओं को भोगना पड़े ॥ ७ ॥

(उसके (मदनिका के) साथ सज्जलक निकल गया)।

गणिका—चतुरिके !

चेटी—(प्रवेश करके) अज्जुके ! हे अज्जुके ! मैं यह हूँ।

गणिका—हञ्जे ! देखो जागती हुई मैंने ऐसा स्वप्न देखा।

चेटी—मेरी प्रिय बात, अमृत के समान सुखदायक हुई।

गणिका—आओ ! इस आभूषण को पहन कर आर्य चारुदत्त का अभिसार करेंगे।

चेटी—अज्जुए! तह। एदं पुण अभिसारिआसहाप्रभूदं दुद्दिणं उण्णमिदं। [अज्जुके! तथा। एतत् पुनरभिसारिकासहायभूतं दुर्दिनमुन्नमितम्]।

गणिका—हदासे! मा हु वड्ढावेहि। [हताशे। मा खलु वर्धय]।

चेटी—एदु एदु अज्जुआ। [एत्वेत्वज्जुका]। (निष्क्रान्ते)।

इति चतुर्थोऽङ्कः।

अभिसारिकासहायभूतम्—अभिसारिकायाः सहायभूतम् = सहायसदृशम्, (अभिसारिका को सहायक के रूप में)। दुर्दिनम् = दुष्टं दिनंदुर्दिवसम् (दुर्दिन को)।

घनान्धकारे वृष्टौ च दुर्दिनं कवयो विदुः। इति सिद्धान्तः। उन्नमितम् = उत्थितम् (उठ खड़ा हुआ, उमड़ पड़ा)।

हताशे—हता आशा यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे हताशे = भग्नाशे (हे भग्न आशा वाली)। वर्धय = वृद्धिं कुरु (बढ़ाओ)।

एतु = आगच्छतु (आइये)।

इति सुधायां चतुर्थोऽङ्कः।

चेटी—गणिके! ऐसा ही करती हूँ। फिर यह अभिसारिका (पति को प्रसन्न करने के लिए जाने वाली नारी) की सहायता करने वाला दुर्दिन (आंधीपानी आदि अंधकार युक्त) उठ खड़ा हुआ है।

गणिका—हे अभागिन! मेरी उत्तेजना बढ़ाओ नहीं।

चेटी—गणिका जी! आइये आइये।

इति हिन्दी टीकायां चतुर्थोऽङ्कः॥

टीकाकर्तुः परिचयः

अस्त्युत्तर-प्रदेशोऽत्र राज्येषु भारतस्य वै ।
हृदयमिव सुराष्ट्रस्य तत्रास्ते शाहजीपुरम् ॥ १ ॥
तस्मिन् मण्डले लोक-विश्रुतो नाहिलाभिधः ।
ग्रामो विप्रप्रमुखाणां विदुषां व्यापारिणामपि ॥ २ ॥
पाण्डित्ये कर्मकाण्डे च ज्योतिष्कर्मणि वैद्यके ।
वयने च विदुर्लोकाः 'लघुकाशीति' प्रागमुम् ॥ ३ ॥
सनाढ्येषु च तत्रैव सत्सु पाराशरान्वये !
पाण्डेयोपाह्वविप्रोऽभूद् रेवतीरामविश्रुतः ॥ ४ ॥
चत्वारश्चाभवंस्तस्य पुत्राः पंक्तिपावनाः ।
जगन्नाथोऽथ जयलालो रामलालस्तथैव च ॥ ५ ॥
प्यारेलाल इति ख्यातो गीतवाद्य-विशारदः ।
द्वितीयश्च चतुर्थश्च तेषु यातावपुत्रिणौ ॥ ६ ॥
तृतीये विदुरो जातः कथा-कीर्त्तन-कोविदः ।
सुदामा-देविगर्भाद् आद्यस्याभवतां सुतौ ॥ ७ ॥
ज्येष्ठो ज्येष्ठगुणोपेतः रामचन्द्रः प्रतापवान् ।
परमेश्वरदीनश्च कनिष्ठो वागुपासकः ॥ ८ ॥
बाणदेवखनेत्राब्दे ज्येष्ठे गाङ्गेयपर्वणि ।
शुभे शुक्रे समानीतं 'चारुदत्तं' 'सुधायुतम्' ॥ ९ ॥

शुभं भूयात् ।



परिशिष्टम्

चारुदत्तान्तर्गतानि सुभाषितानि

१. अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान् ।
२. उद्धृतपुष्पं सहकारं मधुकरा उपासते ।
३. एकपुरुषपक्षपातिता सर्व-गुणान् हन्ति ।
४. एकस्मिन् दुर्लभो गुणिविभवः ।
५. कामो हि भगवानवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य ।
६. किं वा न कारयति मन्मथः ।
७. को हि नामात्मना कृतं प्रत्युपकारेण विनाशयति ।
८. गुणवान् रक्षितव्यो भवति ।
९. चम्पकारण्ये पिचुमन्दा जायन्ते ।
१०. दक्षो वेशवासजन इति जनापवादम् ।
११. दारिद्र्यं हि खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम् ।
१२. धिगस्तु खलु दारिद्र्यम् ।
१३. धिग् भोः ! कुलं च पुरुषस्य दरिद्रतां च ।
१४. न पुष्पमोचनमर्हति लता ।
१५. नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम् ।
१६. निष्प्रभावा दरिद्रता ।
१७. पुरुषयौवनानीव खलु गृह-यौवनानि दशाविशेषामनुभवन्ति ।
१८. बहुमान्यैः खलु तावत् बलवज्जनदुर्लभोऽनुभवः ।
१९. वासवृक्षविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्ते ।
२०. भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि ।
२१. मधुरमपि बहुखादितमजीर्णं भवति ।
२२. लघुजनस्य सुलभो विस्मयः ।
२३. सखीजनसपत्नीको गणिका जनो नाम ।
२४. साहसे खलु श्रीर्वसति ।
२५. स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ।

—:०:—

चारुदत्तान्तर्गत-प्रयुक्त-च्छन्दसां लक्षणानि

१. अनुष्टुप्— श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्रलघुपञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

प्रथमाङ्के—७–१९–२२–२४–२५–२७–२८ = ७ श्लोकाः ।
तृतीयाङ्के—१२–१४–१५–१६–१७–१९ = ६ श्लोकाः ।
चतुर्थाङ्के—२–३–५– = ३ श्लोकाः ।

२. आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रा तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥

प्रथमाङ्के—१–१६–२०–२१ = ४ श्लोकाः ।

३. इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।
प्रथमाङ्के—४–१२ = २ श्लोकौ ।

४. उपजाति—उपेन्द्रवज्रा अथ इन्द्रवज्रा एतद् द्वयं यत्र हि सोपजातिः ।
प्रथमाङ्के—२३ = १ श्लोकः । चतुर्थाङ्के—१–३–७ = ३ श्लोकाः ।

५. उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जसजस्ततो गौ ।
प्रथमाङ्के—१० = १ श्लोकः । तृतीयाङ्के—३–७ = द्वौ श्लोकौ ।

६. वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गाः ।
प्रथमाङ्के—२–५–८–९–११–१८ = ६ श्लोकाः ।
तृतीयाङ्के—१–२–५–१०–१८ = ५ श्लोकाः ।
चतुर्थाङ्के—४ = १ श्लोकः ।

७. वंशस्थम्—जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ ।
प्रथमाङ्के—३–१५–२६ = ३ श्लोकाः ।
तृतीयाङ्के—४ = १ श्लोकः ।

८. मालिनी—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोके ।
प्रथमाङ्के—१३–१४–१७–२९ = ४ श्लोकाः ।

९. शार्दूलविक्रीडितम्—सूर्याश्वैर्मसजस्ततः स गुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।
प्रथमाङ्के—६ = १ श्लोकः ।
तृतीयाङ्के—६–८–११–१३ = ४ श्लोकाः ।

१०. शालिनीवृत्तम्—शालिन्युक्ता म्नौ तगौ गोऽब्धिलोके ।
तृतीयाङ्के—९ = १ श्लोकः ।

११. प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।
चतुर्थाङ्के—६ = १ श्लोकः ।

नाटकीयाः परिभाषाः

रूपकम्— अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ॥

नाटकम्— अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ।

वीरशृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

नान्दी— आशीर्वचनसंयुता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

सूत्रधारः—नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयते यस्तु सूत्रधारः स उच्यते ॥

प्रस्तावना—नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैः वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

नायकः—त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥

नायिका— नवानुरागा कन्याऽत्र नायिका नृप-वंशजा ।
सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ॥
देवी पुनर्भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृप-वंशजा ।
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ॥

विदूषकः— कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेपभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरीतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

कञ्चुकि:—अन्त:पुरवासी षण्ढो वृद्धो धार्मिको ब्राह्मण: ।
अन्त:पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित: ।
सर्वकार्यार्थकुशल: कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

अङ्क:— प्रत्यक्ष-नेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वल: ।
भवेदगूढशब्दार्थ: क्षुद्रचूर्णकसंयुत: ॥
नानेकदिननिर्वर्त्य कथया सम्प्रयोजित: ।
आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मित: ॥
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवै: ।
अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तित: ॥

विष्कम्भक:—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शक: ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ: आदावङ्कस्य दर्शित: ॥

प्रवेशक:— प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित: ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेय: शेषं विष्कम्भके यथा ॥

नेपथ्यम्— रामादिव्यञ्जकौ वेषो नटे नेपथ्यमुच्यते ।

आत्मगतम्—अश्राव्यं खलु यद्वस्तु, तदिहात्मगतं मतम् ।

प्रकाशम्—सर्वश्रव्यं प्रकाशं स्यात् ।

जनान्तिकम्—अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात् जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।

आकाशभाषितम्—किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वैवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥

अपवारितम्—रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते ।
तद्भवेदपवारितम् ।

सङ्गीतकम्—नृत्यगीतादिकं वाद्यं त्रयं सङ्गीतमुच्यते ।

बीजम्— अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजमित्यभिधीयते ॥

पताकास्थानम्—यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गोऽन्य: प्रयुज्यते ।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ॥

प्ररोचना—उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसात: प्ररोचना ।

भरतवाक्यम्—आशीरिष्टजनाशंसा नाट्यान्ते कविकामना ।

प्राकृत-भाषा

भारतवर्ष की मूल-भाषा संस्कृत दो रूपों में मिलती है १—वैदिक संस्कृत तथा २–लौकिक संस्कृत। आदि काल में जब वैदिक संस्कृत पण्डितों तथा विद्वानों की भाषा थी उस समय जन-सामान्य की (बोलचाल की) भाषा संस्कृत या लौकिक संस्कृत बन चुकी थी। भाषा-परिवर्तन का यह प्रकृत-नियम हैं कि जब साहित्यिक भाषा व्याकरणादि कठोर नियमों में बंध कर विद्वानों की भाषा बन जाती है तो जन-सामान्य नियमों को शिथिल कर अपनी बोलचाल की उससे सरल भाषा बना लेते हैं। इसी के आधार पर आगे चल कर जब लौकिक संस्कृत (तत्कालीन लोगों की बोलचाल की भाषा) भी विद्वानों का कण्ठहार बन गई (पौराणिक काल)। तब सामान्य-जनों में लौकिक संस्कृत का जो बिगड़ा हुआ स्वरूप व्यवहृत हुआ उसी का नाम प्राकृत पड़ा।

'प्रकृतेरागतं प्राकृतम्' व्याख्यानुसार 'प्रकृत' अर्थात् मूलभाषा—लौकिक संस्कृत का बिगड़ा हुआ भाषास्वरूप ही प्राकृत कहलाया। तदनुसार ही तत्काल-रचित संस्कृत नाटकों में नायक अथवा अन्यशिष्टजन के अतिरिक्त स्त्री आदि सामान्य किं वा नीच पात्रों की भाषा भी प्राकृत होने का 'नाट्यशास्त्रम्' में प्रावधान किया गया। (आर्यावर्त-प्रसूतासु सर्वास्वेव हि जातिषु। शौरसेनीं समाश्रित्य भाषां काव्ये प्रयोजयेत् ॥ इति भरतनाट्यशास्त्रम्)। 'प्राकृत' भाषा भी स्थान-भेद से तीन प्रकार की बन गई—१ महाराष्ट्री प्राकृत, २ शौरसेनी प्राकृत तथा ३—मागधी प्राकृत। इन तीनों प्रकार की प्राकृतों में शौरसेनी प्राकृत संस्कृत से अति सन्निकट होने के कारण नाटकों में प्रयुक्त की गई। वर्तमान हिन्दी की उत्पत्ति भी इसी से हुई है। संयोगात्मकता, सरलता एवं संक्षिप्तता की प्राकृत-भाषा की अपनी विशेषता रही है।

परिवर्त्तन

भाषा-परिवर्तन के निम्नाङ्कित कारणों के आधार पर संस्कृत से प्राकृत में हुआ परिवर्तन माना जाता है—१–प्रयत्नबाधक, २–सांस्कृतिक विकास,

३–जलवायु का प्रभाव, ४–आर्येतर-जन-भाषा एवं शैली का प्रभाव। तदनुसार प्राकृत में धातु रूप प्रायः एक से चलते हैं। शब्दरूप अधिकांश में अकारान्त के समान तथा धातु रूप भ्वादि गणी के धातु रूप जैसे प्रायः परस्मैपदी में चलते हैं। प्रथमा द्वितीया में समान रूप तथा द्विवचन, चतुर्थी-विभक्ति एवं लिट्, लङ्, लुट् लकारों का अभाव रहता है। ह्रस्वस्वर के बाद दो से अधिक व्यञ्जन नहीं रहते हैं तथा पद में अन्तिम व्यञ्जन का प्रायः लोप हो जाता है। संयुक्ताक्षरों में पूर्वसवर्ण एवं पर-सवर्ण का नियम रहता है।

वर्ण-परिवर्तन सम्बन्धी कतिपय निम्नाङ्कित विशिष्ट नियम :—

क—आरम्भ में न, य, श, ष के अतिरिक्त अन्य अकेला व्यञ्जन पूर्ववत् बना रहता है किन्तु उपर्युक्त न, य, श, ष क्रमशः ण, ज, स में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा—नयनम्>णअणं, यथा>जधा, शीघ्रम्>सिग्घं, परितोषः> पडितोसो।

ख—पूर्ण-पद में उत्तर-पद का प्रथमाक्षर मध्यगत शब्द माना जाता है। अतः उसका लोप हो जाता है किन्तु धातु-रूप का प्रथमाक्षर प्रायः बना रहता है। यथा—चित्रफलकम्>चित्तफलअं।

ग—उच्चारण-स्थान-परिवर्तन होकर दन्त्य को तालव्य या मूर्धन्य हो जाता है। यथा—तिष्ठति>चिट्ठदि, नूनम्>णूणं। परन्तु श, ष के स्थान पर 'स' हो जाता है। केवल मागधी प्राकृत में स, ष के स्थान पर श रहता है।

घ—मध्यगत क, ग, च, ज, त, द वर्णों का प्रायः लोप हो जाता है। मध्यगत य का सर्वथा तथा प, ब का कभी कभी लोप हो जाता है। यथा—अकाल> अआल, भगवान्>भअवं, मदनावस्था >मअणावत्था, वयस्यः>वअस्सो।

ङ—मध्य-गत क, त, प को क्रमशः ग, द, व हो जाते हैं। यथा— कृतम्>किदं, लतामण्डपम्>लदामण्डवं।

च—मध्यगत महाप्राण ख, घ, थ, ध, फ, भ को 'ह' हो जाता है। यथा— साधु>साहु। मुखम्>मुहं, श्लाघ्यते>सलाहीअदि, राज्यलाभेन>रज्जलाहेण।

छ—कहीं कहीं स्वर वर्णों के मध्यव्यञ्जन का लोप न होकर द्वित्व हो जाता है। यथा—यौवनम्7जोव्वणं, प्रेम7पेम्म।

ज—प्राकृत में ऋ, ऌ, स्वर नहीं होते हैं इनके स्थान पर र तथा इ का प्रयोग किया जाता है। यथा—ऋषिः7रिसी, कृतम्7किदं।

झ—स्वरों के मध्य ट, ठ को ड, ढ हो जाता है। यथा—कुटुम्ब∠कुडुम्ब।

ञ—ऊर्ध्वगत र् को लोप होकर परवर्ण का द्वित्व हो जाता है। यथा—सर्वम्7सव्वं।

ट—सभी अन्तिम स्पर्श वर्णो का लोप हो जाता हैं, अनुनासिकों का अनुस्वार तथा अः विसर्ग का ओ हो जाता है। यथा—सर्वम्7सव्वं, लोकः7लोओ।

महाराष्ट्री–शौरसेनी–मागधी–प्राकृतों में अन्तर

क—संस्कृत का मध्यगत 'त' शौरसेनी में 'द' हो जाता है पर महाराष्ट्री में इसका लोप हो जाता है। यथा—सं० पुनाति, शौ० पुणादि, म० पुणाइ।

ख—संस्कृत का मध्यगत 'थ' शौरसेनी में 'ध' पर महाराष्ट्री में 'ह' हो जाता है। यथा—सं० अथवा, शौ० अधवा, म० अहवा।

ग—मागधी में स, ष, श, को 'श' हो जाता है जब कि अन्य दोनों में 'स'। यथा—सं० वेशेषु महा० तथा शौर० में वेसेसु और मागधी7वेशेशु।

घ—मागधी में प्रायः शब्दारम्भ में 'र्' को 'ल', 'ज' को 'य', 'च्छ' को 'श्च' तथा ण्य, न्य, ज्ञ, ञ्ज के स्थान पर ञ्ञ हो जाता है। यथा—
राज्ञः7लाआणो। समरे7शमले। जायाति7याणादि। पुण्य7पुञ्ञ।

शब्द–रूप

प्राकृत भाषा में शब्द रूपों में द्विवचन का अभाव रहता है तथा चतुर्थी–विभक्ति का समावेश षष्ठी में ही होता है। अधिकांश शब्दरूप प्रायः निम्न प्रकार चलते हैं :—

क–पुंलिंग या नपुंसकलिंग के अकारान्त शब्द। ख–पुंलिंग या नपुंसक लिंग के इकारान्त, उकारान्त शब्द। ग–स्त्री लिंग के आ,इ,ई, उ, ऊ स्वरान्त शब्द।

अकारान्त पुंलिंग 'पुत्त' शब्द

विभक्ति	ए० व०	ब० व०
प्रथमा	पुत्तो	पुत्ता
द्वितीया	पुत्तं	पुत्ते-पुत्ता
तृतीया	पुत्तेण	पुत्तेहि
पञ्चमी	पुत्तादो	पुत्तेहि
चतुर्थी/षष्ठी	पुत्तस्स	पुत्ताणं
सप्तमी	पुत्ते	पुत्तेसु

अकारान्त नपुंसक लिंग फल शब्द

विभक्ति	ए० व०	ब० व०
प्रथमा/द्वितीया	फलं	फलाणि
		(फलाइ-महा०)

शेष रूप पुंलिगवत् ।

इकारान्त पुंलिंग 'अग्गि' शब्द

प्रथमा	अग्गी	अग्गीओ, अग्गीणो
द्वितीया	अग्गि	अग्गीणो
तृतीया	अग्गिणा	अग्गीहि
पञ्चमी	अग्गिणो	अग्गीहि
चतुर्थी/षष्ठी	अग्गिणो	अग्गीणं
सप्तमी	अग्गिम्मि	अग्गीसु

इकारान्त नपुंसक लिंग 'दहि' शब्द

प्रथमा/द्वितीया	दहि	दहीइं

शेष रूप इकारान्त पुंलिगवत् ।

उकारान्त पुंलिंग 'साहु' शब्द

प्रथमा	साहू	साहओ
द्वितीया	साहुं	साहओ
तृतीया	साहुणा	साहूहि
पञ्चमी	साहुणो	साहूहि
चतुर्थी/षष्ठी	साहुणो	साहूणं
सप्तमी	साहुम्मि	साहुसु

उकारान्त नपुंसक लिंग 'महु' शब्द

प्रथमा/द्वितीया	महु	महूणि-महूइं

शेष उकारान्त पुंलिगवत्

आकारान्त स्त्रीलिंग 'माला' शब्द

प्रथमा	माला	मालाओ
द्वितीया	मालं	मालाओ
तृतीया	मालाए	मालाहि

पञ्चमी	मालादः	मालाहितो
चतुर्थी/षष्ठी	मालाए	मालाणं
सप्तमी	मालाए	मालासु
सं०	माले	मालाओ

ईकारान्त स्त्रीलिंग 'देवी' शब्द

प्र०	देवी	देवीओ
द्वि०	देविं	देवीओ
तृ०	देवीए	देवीहि
पं०	देवीदो	देवीहिंतो
च०/ष०	देवीए	देवीणं
स०	देवीए	देवीसु
सम्बो०	देवि	देवीओ

ऊकारान्त स्त्रीलिंग 'वहू' शब्द

प्र०	वहू	वहूओ
द्वि०	वहुं	वहूओ
तृ०	वहूए	वहूहि
पं०	वहूदो	वहूहिंतो
च०/ष०	वहूए	वहूणं
स०	वहूए	वहूसु
सम्बो०	वहु	वहूओ

धातु-रूप

प्राकृत-भाषा में शब्दों के समान धातु-रूपों में भी द्विवचन का अभाव रहता है। लिट्, लुङ्, लङ् लकारें तथा आत्मने पद प्रायः समाप्त हो चुके हैं। भूत-काल का प्रयोग कृदन्त द्वारा किया जाता है। दशगणों के स्थान पर प्रायः भ्वादि तथा चुरादि के ही रूप मिलते हैं।

पुच्छ (पृच्छ्) धातु लट् लकार (भ्वादि)

पुरुष	ए० व	ब० व०
प्रथम	पुच्छदि—पुच्छइ	पुच्छन्ति
मध्यम	पुच्छसि	पुच्छद—पुच्छह
उत्तम	पुच्छामि	पुच्छामो

लोट् लकार

प्र० पु०	पुच्छदु-पुच्छउ	पुच्छन्तु
म० पु०	पुच्छ-पुच्छसु	पुच्छथ
उ० पु०	पुच्छामु	पुच्छाम्ह

लृट् लकार

प्र० पु	पुच्छस्सदि	पुच्छिस्सन्ति
म० पु०	पुच्छस्ससि, पुच्छिहिसि	पुच्छिस्सध, पुच्छिस्सह
उ० पु०	पुच्छिस्सं	पुच्छिस्सामो

विधिलिङ् का प्रयोग अर्द्धमागधी तथा जैन महाराष्ट्री के अतिरिक्त अन्य प्राकृतों में बहुत कम मिलता है।

कह (कथ्) धातु लट् लकार (चुरादि)

प्र० पु०	कधेदि, कहेहि	कधेन्ति, कहेन्ति
म० पु०	कथेसि, कहेसि	कधेथ, कहेह
उ० पु०	कधेमि, कहेमि	कधेमो, कहेमो

लोट् लकार

प्र० पु०	कहेदु	कहेन्तु
म० पु०	कहेहि, कहेसु	कहेह
उ० पु०	कहेमु	कहेम्ह

लृट् लकार में भ्वादि-गण के समान ही चुरादि-गण के भी रूप चलते हैं।

श्लोकानुक्रमणिका